क्षयनाशक घृत ।

शकृद्रसा गोश्वगजाव्यजानां क्वाथा मिताश्चापि तथैव भागैः ॥
मूर्वाहरिद्राखदिरद्रुमाणां क्षीरस्य भागस्त्वपरो घृतस्य ॥ ४३ ॥
भागान्दशैतान्विपचेद्विधिज्ञो दत्त्वा त्रिवर्गं मधुरं च कृत्स्नम् ॥
कटुत्रिकं चैव सभद्रदारु घृतोत्तमं यक्ष्मनिवारणाय ॥ ४४ ॥

गौ, घोडा, हाथी, भेड, बकरी इनका गोबर लेकर रस निचोडलेना सबका रस एक एक भाग ले और मूर्वा, हलदी और खैर इनका क्वाथ जुदा जुदा एकएक भाग ले (ऐसे ये आठ भाग हुए) और एक भाग दूध लेवे और एकही भाग घृत लेवे ॥ ४३॥ फिर इन दश वस्तुओंके दश भागोंको विधिज्ञ वैद्य पकावे इसमें त्रिवर्ग (त्रिफला) और सब मधुरद्रव्य (काकोल्यादि), त्रिकटु और भद्रदारु पकतेमें डाले यह घृत यक्ष्मा (राजयक्ष्मा) के निवारण करनेमें उत्तम है ॥४४॥

द्वे पंचमूल्यौ वरणं करंजं भल्लातकं बिल्वपुनर्नवे च ॥
यवान्कुलत्थान्बदराणि भार्ङ्गीं पाठां हुताशं समहीकदंबम् ॥ ४५ ॥
कृत्वा कषायं विपचेद्धि तस्य षड्भिर्हि पात्रैर्घृतपात्रमेकम् ॥
व्योषं महावृक्षपयोऽभयां च चव्यं सुराख्यं लवणोत्तमं च ॥ ४६ ॥
एतद्धि शोषं जठराणि चैवं हन्यात्प्रमेहांश्च सहानिलेन ॥ ४७॥

दोनों पंचमूल अर्थात् दशमूल, वरणा, करंज, बिल्व, दोनों सांठी, जौ, कुलथी, बेर, भारंगी, पाठा, चित्रक और पृथ्वीकदंब ॥ ४५ ॥ इन सबका क्वाथ बनाकर छः पात्र लेवे इसमें एक पात्र घृत डालकर पकावे और त्रिकटु, थोहरका दूध, हरडे, चव्य, देवदारु, सैंधव इनका कल्क करके इसमें डाले यह घृत शोषरोग, उदरविकार और वायुसहित प्रमेहोंको नष्ट करता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

गोश्वाव्यजेभैणखरोष्ट्रजातैः शकृद्रसक्षीररसक्षतोत्थैः ॥
द्राक्षाश्वगंधामगधासिताभिः सिद्धं घृतं यक्ष्मविकारहारि ॥ ४८ ॥

गौ, घोडी, भेड, बकरी, हथनी, हिरनी, गधी, ऊँटनी इन सबके गोबरका रस, दूध, मांसरस और रुधिर तथा मुनक्का, असगंध, पीपल, मिश्री इनसे सिद्ध किया हुआ घृत राजयक्ष्माके विकारको नष्ट करता है ॥ ४८ ॥

एलाजमोदामलकाभयाक्षगायत्र्यरिष्टासनशालसारान् ॥
विडंगभल्लातकचित्रकोग्राकटुत्रिकांभोदसुराष्ट्रजाश्च ॥ ४९ ॥

(श्लो० ४५) बदराणि बदरीफलानि । पात्रम् आढकप्रमाणम् ।

पक्त्वा जले तेन पचेद्धि सर्पिस्तस्मिन्सुसिद्धे त्ववतारिते च ॥
त्रिंशत्पलान्यत्र सितोपलाया दत्त्वा तुगाक्षीरिपलानि षट् च ॥५०॥
प्रस्थे घृतस्य द्विगुणं च दद्यात्क्षौद्रं ततो मंथहतं विदध्यात् ॥
पलं पलं प्रातरतः प्रलिह्यात्पश्चात्पिबेत्क्षीरमतंद्रितश्च ॥ ५१ ॥
एतद्धि मेध्यं परमं पवित्रं चक्षुष्यमायुष्यमथो यशस्यम् ॥
यक्ष्माणमाशु व्यपहंति चैतत्पांड्वामयं चैव भगंदरं च ॥ ५२ ॥
श्वासं च हंति स्वरभेदकांश्च हृत्प्लीहगुल्मग्रहणीगदांश्च ॥
न चात्र किंचित्परिवर्जनीयं रसायनं चैतदुपास्यमानम् ॥ ५३ ॥

इलायची, अजमोदा, आंवले, हरडे, बहेडा, खैर, नींब, विजैसार, शालसार, (खैरसे लेके शालतकका सार लेना सार न हो तो अन्तरछाल लेनी), विडंग, भिलावें, चित्रक, उग्रा (वच कई अजवायन कहते हैं), त्रिकटु, नागरमोथा और फटकडी ॥ ४९ ॥ इनको जलमें पकाकर क्काथ करे इससे फिर घृत सिद्ध करे और उतारले, तीस पल इसमें मिश्री और छः पल वंशलोचन डाल दे ॥ ५० ॥ प्रस्थभर घृतमें दो प्रस्थ शहद मिलावे और इन सबको रईसे मथकर मिला लेवे फिर इसमेंसे एक पल प्रभात लेवे (चाटे) और ऊपरसे सावधान होकर दूध पीवे ॥ ५१ ॥ यह योग परम पवित्र और मेध्य है, नेत्रोंको हित, आयु बढानेवाला और यश देनेवाला है और राजयक्ष्माको यह शीघ्रही दूर करदेता है तथा पांडुरोग और भगंदरको भी नाश करदेता है ॥ ५२ ॥ तथा श्वास, स्वरभेद, हृदयरोग, प्लीहा, गुल्म, ग्रहणी इन सबको यह दूर करता है इसमें किसी भी बातका त्याग नहीं है और इसका सेवन करना रसायन है ॥ ५३ ॥

प्लीहोदरोक्तं विहितं च सर्पिस्त्रीण्येव चान्यानि हितानि चात्र ॥
उपद्रवांश्च स्वरवैकृतादीञ्जयेद्यथास्वं प्रसमीक्ष्य शास्त्रम् ॥ ५४ ॥

प्लीहोदरमें कहाहुआ घृत तथा अन्य तीन घृत (उदररोगोक्त) भी यहां हितकारक हैं और स्वरभेदादिक अन्य जो जो उपद्रव हों उन्हें यथायोग्य शास्त्र देखकर शांत करे ॥ ५४ ॥

(वक्तव्य) पूर्व जो घृत कहे वे ये हैं-१ "हरीतकीचूर्णप्रस्थम्" इत्यादि । २ "गव्ये पयसि" इत्यादि । ३ "चव्यचित्रक" इत्यादि । देखो चिकित्सितस्थान अध्याय १४ परन्तु ये अनुलोमजक्षयीमें स्रोतोवरोधकी शांतिके लिये विरेचनीय हैं ॥ ५४ ॥

अजाशकृन्मूत्रपयोघृतासृङ्मांसालयानि प्रतिसेवमानः ॥
स्नानादिनानाविधिना जहाति मासादशेषं नियमेन शोषम् ॥ ५५ ॥
रसोनयोगं विधिवत्क्षयार्तः क्षीरेण वा नागबलाप्रयोगम् ॥
सेवेत वा मागधिकाविधानं तथोपयोगं जतुनोऽश्मजस्य ॥ ५६ ॥

बकरीकी मैगनी, बकरीका मूत्र, बकरीका दूध, बकरीका घृत, बकरीका रुधिर, बकरी (या बकरे) का मांस और बकरीके रखनेका स्थान इन सबको यथायोग्य स्नान, भोजनादिमें नाना प्रकारसे उपयोग करे तो अवश्य एक महीनेमें शोष (यक्ष्मा) निःशेष नष्ट होजावे। बकरीकी मैगनी उबटनमें डाले, मूत्रसे शरीर धोवे फिर साफ पानीसे साफ करले इसीप्रकार दूध और मांसादिको पीने और खानेमें नियमसे उपयोग करे ॥ ५५ ॥ अथवा क्षयका रोगी लहसनको विधिपूर्वक सेवन करे अथवा दूधसे नागबलाका प्रयोग करे अथवा पीपलोंको या शिलाजीतको दूधके संग उपयोग करे ॥ ५६ ॥

क्षयरोगमें पथ्यापथ्य ।

शोकं स्त्रियं क्रोधमसूयनं च त्यजेदुदारान्विषयान् भजेत ॥
वैद्यान्द्विजातींस्त्रिदशान्गुरूंश्च वाचश्च पुण्याः शृणुयाद्द्विजेभ्यः ॥ ५७ ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतन्त्रे कायचिकित्सायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

शोक, स्त्रीसंगम, क्रोध, पराई निंदा और उदार विषय (अति चिंता, श्रम, प्रयास आदिको त्याग देवे और विद्वान् वैद्य, द्विज (ब्राह्मणादि), देवता और गुरुओंको सेवन करे तथा पंडितोंसे पवित्र वाणी (कथा पुराणादि) सुनता रहे (कई उदारविषयोंको "भजेत" के साथ लगाकर यों अर्थ करते हैं कि उदार-विषयोंको जो धर्मके अविरुद्ध और मनके अनुकूल हों उन्हें सेवन करे ॥ ५७ ॥

डाक्टरीमें राजयक्ष्मा (क्षयी) को "थाइसिस" (Pthisis) कहते हैं और उरःक्षतको "न्यूमोनिया" से मिलाते हैं ॥

और यूनानीवाले इनको "सिलही" समझते और कहते हैं पर उसका भी कारण छाती और फेफडोंपर नजूल गिरनेसे वहां जखम पडजाना कहतेहैं ॥

इति प० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतत्रे कायचिकित्सायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

(श्लो० ५५) अजाशब्दः शकृदादिभिः आलयांतैः प्रत्येकं संबध्यते । (श्लो० ५६) रसोनयोगमिति–विधिवद्यथाशास्त्रं सेवेतेति नागबलाप्रयोगं च मागधिकाविधानाभ्यां संबध्यते तथेति क्षीरेणेत्यर्थः (इति नि० सं०)

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ४२.

अथातो गुल्मप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

यहांसे अगाडी अब हम गुल्मचिकित्साकी व्याख्या करतेहैं ॥

गुल्मकी संप्राप्ति और रूप।

यथोक्तैः कोपनैर्दोषाः कुपिताः कोष्ठमागताः ॥ जनयंति नृणां गुल्मं स पंचविध उच्यते ॥ १ ॥ हृद्वस्त्योरंतरे ग्रंथिः संचारी यदिवाऽचलः ॥ चयापचयवान्वृत्तः स गुल्म इति कीर्तितः ॥ २ ॥

पहले सूत्रस्थानमें कहेहुए वातादि दोषोंके कोपके कारणोंसे कुपित हुए वातकफादि दोष जब कोष्ठ (उदर) में स्थित होतेहैं तब मनुष्योंके गुल्म (गोला या गाँठ) उदरमें पैदा करदेते हैं वह गुल्म रोग पांच प्रकारका होताहै ॥ १ ॥ हृदय और वस्तिके बीचमेंसे कहीं स्थिर अथवा चलायमान (टहलनेवाली) जो ग्रंथि हो और घटने बढनेवाली तथा गोल (छोटे बेरसे लेकर बडे कैथके फलतक अनुमानकी प्रायः गोलगाँठसी उदरके भीतर) हो उसे गुल्म कहतेहैं ॥ २ ॥

गुल्मके स्थान और निरुक्ति।

पंच गुल्माश्रया नृणां पार्श्वे हृन्नाभिवस्तयः ॥
कुपितानिलमूलत्वाद्गूढमूलोदयादपि ॥३॥
गुल्मवद्वा विशालत्वाद्गुल्म इत्यभिधीयते ॥ ४ ॥

मनुष्योंके उदरमें गुल्मके पाँच स्थान हैं दोनों पँसवाडोंकी तरफ तथा हृदय (कौडीके पास), नाभि (नाभिके पास) तथा वस्तिस्थान (अर्थात् इन स्थानोंमें गुल्म होताहै) ॥ ३ ॥ कुपित हुई वायु इसका मूल होनेसे तथा गूढ (उदरांतर्गत) मूलके उदय होनेसे तथा गुल्म (कंद) की भांति विशाल होनेसे इसे गुल्म कहते हैं ॥ ४ ॥

स यस्मादात्मनि चयं गच्छत्यप्स्विव बुद्बुदः ॥
अंतः सरंति यस्माच्च न पाकमुपयात्यतः ॥ ५ ॥

(श्लो० २) चयापचयवान् वृद्धिक्षयवान् कदाचिद्वर्द्धते कदाचित्क्षीयते इत्यर्थः । (श्लो० ४) गुल्मः एकमूलेषु संघातजातेषु शरेक्षुप्रभृतिषु तृणभेदेषु कंदेषु च तद्वद्विशालत्वाद्गुल्म इत्यभिधीयते ॥

(श्लो० ५) स गुल्मः यस्मात्कारणात् आत्मनि स्वावयवे चयं गच्छति अप्सु जले बुद्बुदः यथा उद्गच्छति तथा गुल्मरूपो दोषः स्वयमेवोद्गच्छति । अंतः अंतरे सरति भ्रमति एवंभूतः प्रायेण वातिको भवति स च न पच्यते इतरे च वदंति गुल्मो यदा रक्तादिस्थानमधिष्ठायावतिष्ठते तदा कदाचित् पच्येत् (इति नि० सं०)

यह गुल्म अपने समान व्यक्तियोंसे संचित होताहै जैसे जलमें बुलबुला उठकर यदि टूटे तो उसीमें प्रविष्ट होजाताहै इसी कारणसे गुल्म पकता नहीं (और अंतर्विद्रधि अपने असमानदोषों पित्तरक्तादिसे होता है वह शीघ्र पकजाता है)॥५॥

(वक्तव्य) गुल्ममें विशेष भाग वायु या कफका होताहै जो उसके स्थानकी व्यक्तिके प्रायः समानही व्यक्ति है इसीसे यह नहीं पकता है परन्तु हां यदि इसमें भी दूषित रक्तपित्त आदिका माद्दा विशेष हो तो पक भी जाताहै-देखो टिप्पणी ॥

सर्व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि वोच्छ्रितैः ॥
पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः ॥ ६ ॥

मनुष्योंके अर्थात् पुरुषोंके वायु आदि पृथक् दोषोंसे तथा सबके सन्निपातसे गुल्म होताहै और स्त्रियोंके रक्तसे भी गुल्म होताहै-(यद्यपि बहुधा रक्तगुल्म स्त्रियोंहीके होताहै जो आर्तव या प्रसूतावशिष्ट रक्तके रुकनेसे होताहै परन्तु कभी२ पुरुषोंके भी शारीरक रक्तधातुसे रक्तगुल्म होजाताहै) ॥ ६ ॥

सदनं मंदता वह्नेराटोपोऽन्त्राविकूजनम् ॥
विण्मूत्रानिलसंगश्च सौहित्यासहता तथा ॥
द्वेषोऽन्ने वायुरूर्द्ध्वं च पूर्वरूपेषु गुल्मिनाम् ॥ ७ ॥

शरीरमें शिथिलता होना, मंदाग्नि, अफारा, आंतें बोलना, दस्त, पेशाब और अधोवायुका रुककर आना, तृषाकी अक्षमता होना, अन्नपर अरुचि होना और वायुका ऊर्द्ध्वगमन होना ये लक्षण गुल्मके पूर्वरूपमें होते हैं ("सौहित्यासहता" का अर्थ डल्लनमिश्रजीने तृष्णाका अक्षमत्व लिखा है परन्तु वाचस्पत्यादिमें सौहित्यका अर्थ तृप्ति है अर्थात् पेट भरेपर सहा न जाय भोजन भरपेट करनेपर पेट फटासा जावे और ऐसाही भावमिश्रजीने लिखा है-देखो टिप्पणी) ॥ ७ ॥

वातगुल्म और पित्तगुल्मके लक्षण ।

हृत्कुक्षिशूलं मुखकण्ठशोषो वायुर्निरुद्धो विषमाग्निता च ॥
ते ते विकाराः पवनात्मकाश्च भवंति गुल्मेऽनिलसंभवे तु ॥ ८ ॥

(श्लो० ६) रक्तेन चापर इत्यत्र चकारात् धातुरक्तेनापि गुल्मो जायते स च पुंसां स्त्रीणां च भवति (इति डल्लनः) वृद्धवाग्भटे अष्टविधो गुल्मः पठितः । तथाचोक्तम्-"गुल्मोऽष्टधा पृथग्दोषैः संसृष्टैर्निचयं गतैः ॥ आर्तवस्य च दोषेण नारीणां जायतेऽष्टमः ॥ १ ॥" इति (श्लो० ७) सौहित्यासहता तृष्णासहत्वम् । वायुरूर्ध्वं च इति सन्ततोद्गार इत्यर्थः । (इति नि० सं०) वाचस्पत्ये तु सौहित्यं तृप्तिः तस्य असहत्व तृप्तिपर्यतकृतभोजने असहत्वम् उदरस्फोटनवद्भवतीति । तथाचोक्त भावप्रकाशे "तृष्ण्यक्षमत्वांत्रविकूजन च" इति ।

स्वेदज्वराहारविदाहदाहास्तृष्णाऽगरागः कटुवक्त्रता च ॥
पित्तस्य लिंगान्यखिलानि यानि पित्तात्मके तानि भवंति गुल्मे ॥ ९॥

हृदय और कूखमें शूल हो, मुख और कंठ सूखे, वायु रुकजावे, जठराग्नि विषम होजावे तथा वायुके अन्यविकार भी होवें ये लक्षण वायुके गुल्ममें होतेहैं ॥ ॥ ८ ॥ पसीना आवे, ज्वर रहे, भोजनके पीछे विदाह हो (अर्थात् जलीजलीसी डकार आवें), दाह हो, तृषा अधिक लगे, शरीर (तथा चेहरे) का रंग ललाई लिये हो, मुँहमें कटुता (चरकापन) रहे तथा पित्तके अन्य जो जो चिह्न हैं वे भी हों ये लक्षण पित्तगुल्ममें होतेहैं ॥ ९ ॥

कफज सन्निपातज और रक्तज गुल्मके लक्षण ।

स्तैमित्यमन्नेऽरुचिरंगसादश्छर्दिः प्रसेको मधुरास्यता च ॥
कफस्य लिंगानि च यानि तानि भवंति गुल्मे कफसंभवे तु॥१०॥
सर्वात्मकः सर्वविकारयुक्तः सोऽसाध्य उक्तः क्षतजश्च वक्ष्ये ॥
नवप्रसूताऽहितभोजना या या चामगर्भं विसृजेद्दतौ वा ॥ ११ ॥
वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं करोति गुल्मं सरुजं सदाहम् ॥
पैत्तस्य लिंगेन समानलिंगं विशेषणं चाप्यपरं निबोध ॥ १२ ॥
न स्यंदते नोदरमेति वृद्धिं भवंति लिंगानि च गर्भिणीनाम् ॥
तं गर्भकालातिगमे चिकित्स्यमसृग्भवं गुल्ममुशंति तज्ज्ञाः ॥१३॥

कफके गुल्ममें स्तैमित्य (शरीर गीलासा) हो, अन्नमें अरुचि हो, अंगोंमें शिथिलता हो, वमन हो, मुँहसे लार बहे या पानी भरभर आवे, मुँह मीठा रहे तथा कफके जो और लक्षण हैं (जैसे गुरुता आदि) वे भी कफके गुल्ममें होतेहैं ॥ १० ॥ सन्निपातके गुल्ममें सबके लक्षण और सब दोषोंके विकार होतेहैं यह सन्निपातका गुल्म असाध्य होताहै इससे आगे हम क्षतज गुल्मको कहेंगे क्षतज रक्तगुल्मको समझिये), नवीन प्रसूता स्त्री अहित भोजन करे या जिसके गर्भपात हो वह अहित भोजन करे या ऋतुधर्मके समय अहित वातुल आहार, विहार करे तो वायु उसके रुधिरको रोककर पीडा और दाहसहित गुल्म (रक्त-गुल्म) पैदा करता है इसके लक्षण प्रायः पित्तगुल्मके समानही होते हैं तथा जो विशेष होते हैं उन्हें सुनो ॥ ११ ॥ १२ ॥ गर्भकी भांति फिरे नहीं और न गर्भकी भांति पेट बढे परंतु छर्द्यादिक लक्षण बहुधा गर्भिणीकेसे हों इसे वैद्य रक्तगुल्म कहतेहैं इसकी चिकित्सा गर्भकी अवधि (दश महीने) पीछे करनी चाहिये ॥ १३ ॥

(श्लो० ११) क्षतजं च वक्ष्ये क्षतजं रुधिरं तद्भवो गुल्मः क्षतजं रक्तगुल्म इत्यर्थः ।

गुल्मकी चिकित्सा।

वातगुल्मार्दितं स्निग्धं युक्तं स्नेहविरेचनैः ॥ उपाचरेद्यथाकालं निरूहैः सानुवासनैः ॥ १४ ॥ पित्तगुल्मार्दितं स्निग्धं काकोल्यादिघृतेन तु ॥ विरिक्तं मधुरैर्योगैर्निरूहैः समुपाचरेत् ॥ १५ ॥ श्लेष्मगुल्मार्दितं स्निग्धं पिप्पल्यादिघृतेन तु ॥ तीक्ष्णैर्विरिक्तं तद्रूपैः निरूहैः समुपाचरेत् ॥१६॥ सन्निपातोत्थिते गुल्मे त्रिदोषघ्नो विधिर्हितः ॥ पित्तवद्रक्तगुल्मिन्यां नार्याः कार्यः क्रियाविधिः॥१७॥

वायुके गुल्मसे पीडित मनुष्यको स्नेहों (यथोचित चतुःस्नेहों) से स्निग्ध करके स्नेह विरेचन देना चाहिये और कालके अनुसार निरूहण और अनुवासनवस्तिका भी उपचार करे ॥ १४ ॥ पित्तगुल्मके रोगीको काकोल्यादिके घृतसे स्नेहन करे और मधुर द्रव्योंके योगसे विरेचन दे और इसी भांति निरूहण वस्तिका उपचार करे ॥ १५ ॥ कफगुल्मवालेको पिप्पल्यादिसे सिद्ध किये घृतसे स्नेहन करे और तीक्ष्ण विरेचन देवे और ऐसेही निरूहण वस्तिका उपचार करना ॥ १६ ॥ सन्निपातका गुल्म हो तो तीनों दोषोंको नाश करनेवाली विधि करनी हितकारक है तथा रक्तगुल्मवाली स्त्रीकी चिकित्सा पित्तगुल्मके समान करनी चाहिये ॥ १७ ॥

विशेषमपरं चास्याः शृणु रक्तविभेदनम् ॥ पलाशभस्मतोयेन सिद्धं सर्पिः प्रयोजयेत् ॥ १८ ॥ दद्यादुत्तरवस्तिं च पिप्पल्यादिघृतेन तु ॥ उष्णैर्वा भेदयेद्भिन्नं विधिरासृग्दरो हितः ॥ १९ ॥

रक्तगुल्म जो स्त्रियोंके होता है उसके भेदनकी विशेष विधि सुनो पलाश (ढाक) की राख (या क्षार) के जलसे सिद्ध किया घृत उपयोग करे ॥ १८ ॥ तथा पिप्पल्यादि घृतकी उत्तरवस्ति दे अथवा उष्ण पदार्थोंसे रक्तगुल्मको भेदन करके फिर असृग्दर (प्रदर) विधि करके साधन करे ॥ १९ ॥

आनूपौदकमज्जानो वसातैलं घृतं दधि ॥ विपक्वमेकतः शस्तं वातगुल्मेऽनुवासनम् ॥ २० ॥ जांगलैकशफानां तु वसा सर्पिश्च पैत्तिके ॥ तैलं जांगलमज्जान एवं गुल्मे कफोत्थिते ॥ २१ ॥

आनूप (जल किनारेके) और जलके जीवोंकी मज्जा, चरबी, तैल, घृत और दही इनको एकत्र पकाकर वायुके गुल्मवालेके अनुवासनवस्ति करे ॥ २० ॥ और पित्तगुल्मवालेके जंगली और एक शफवाले जीवोंकी चर्बी और घृतकी अनुवास-

नवस्ति करे तथा कफके गुलमवालेके जंगली जीवोंकी मज्जा और तैलकी वस्ति करना उचित है ॥ २१ ॥

वातगुलमपर घृत।

धात्रीफलानां स्वरसे षडंगं विपचेद्घृतम् ॥
शर्करासैंधवोपेतं तद्धितं वातगुल्मिने ॥ २२ ॥

आंवलोंके स्वरसमें षडंग घृत पकावे और उसमें खांड तथा सैंधव डाले यह घृत वातगुलमवालेको (पान कराना) हित है (षडंगशब्दसे पंचकोल यवक्षारका कल्क युक्त करे ऐसा पायाजाता है) ॥ २२ ॥

चित्रकादि घृत।

चित्रकव्योषसिन्धूत्थपृथ्वीकाश्चव्यदाडिमौ ॥ दीप्यकग्रंथिकाजाजिहबुषाधान्यकैः समैः ॥ २३ ॥ दध्यारनालबदरमूलकस्वरसैर्घृतम् ॥ तत्पिबेद्वातगुल्माग्निदौर्बल्याटोपशूलनुत् ॥ २४ ॥

चित्रक, त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पीपल), सेंधानमक, हिंगुपत्री, चव्य और अनारदाना, अजमोदा, पीपलामूल, जीरा, हाऊबेर और धनियां इनको समान भाग लेवे ॥ २३ ॥ तथा दही कांजी, बेर और मूलीका रस डालकर घृत पकावे इसे वातगुलममें पान करे यह घृत मंदाग्नि अफारा और शूलको भी नाश करताहै॥२४॥

गुल्मनाशक अनेक घृतोंका उपदेश।

हिंगुसौवर्चलाजाजीबिडदाडिमदीप्यकैः ॥ पुष्करव्योषधान्याम्लवेतसक्षारचित्रकैः ॥ २५ ॥ शठीवचाजगंधैलासुरसैश्च विपाचितम् ॥ शूलानाहहरं सर्पिर्दध्ना चानिलगुल्मिनाम् ॥ २६ ॥ विडदाडिमसिंधूत्थहुतभुग्व्योषजीरकैः ॥ हिंगुसौवर्चलक्षाररुग्वृक्षाम्लाम्लवेतसैः ॥ २७ ॥ बीजपूररसोपेतं सर्पिर्दधिचतुर्गुणम् ॥ साधितं दाधिकं नाम गुल्महृत्प्लीहशूलजित् ॥ २८ ॥

हिंगु, कालानोन, जीरा, बिडनोन, अनारदाना, अजमोदा, पुष्करमूल, सोंठ, मिरच, पीपल, धनियाँ, अम्लवतेस, यवक्षार और चित्रक ॥ २५ ॥ कचूर, वच, अजगंधा (ममरी), इलायची, तुलसी, चौगुना दही इनसे पकाया हुआ घृत

(श्लो० २२) षडग घृत विपचेत्। अत्र धात्रीफलाना वरसे चतुर्गुणे। षडंगमिति षट्पलकम्। तेनात्र पंचकोलयवक्षारकल्कमिति लभ्यते (इति डल्हनः

शूल और अफारेको नाश करताहै तथा वातगुल्मवालोंको हित है ॥ २६ ॥ बिड-नोन, अनारदाना, सेंधानमक, चित्रक, त्रिकटु, जीरा, हींग, सोंचरनोंन, यवक्षार, रुक् (अर्थात् कूट), वृक्षाम्ल (तिंतिडीक) और अम्लवेतस ॥ २७ ॥ इनको एकत्रकर बिजोरेका रस और दही चौगुना डालकर घृत पकावे यह दाधिक नाम घृत गुल्म, हृदयरोग, प्लीहा और शूल इनको जीतनेवाला है ॥ २८ ॥

रसोनस्वरसे सर्पिः पंचमूलरसान्वितम् ॥ सुरारनालदध्यम्लमूलकस्वरसैः सह ॥२९॥ व्योषदाडिमवृक्षाम्लयवानीचव्यसैंधवैः ॥ हिंग्वम्लवेतसाजाजीदीप्यकैश्च समांशकैः ॥ ३० ॥ सिद्धं गुल्मग्रहण्यर्शःश्वासोन्मादक्षयज्वरान् ॥ कासापस्मारमंदाग्निप्लीहशूलानिलाञ्जयेत् ॥ ३१ ॥ दधि सौवीरकं सर्पिः क्वाथौ मुद्गकुलत्थजौ ॥ पंचाढकानि विपचेदावाप्य द्विपलान्यथ ॥ ३२ ॥ सौवर्चलं स्वर्जिकां च देवदार्व्यथ सैंधवम् ॥ वातगुल्मापहं सर्पिरेतद्दीपनमेव च ॥३३॥

लहसनका रस और बृहत्पंचमूलका क्वाथ, मदिरा, कांजी, दध्यम्ल (दहीका तोड या खट्टा दही) और मूलीका रस इनको मिलावे ॥ २९ ॥ त्रिकटु, अनारदाना, तिंतिडीक, अजवायन, चव्य, सेंधानमक, हींग, अम्लवेतस, जीरा, अजमोदा इन सबको समान भाग लेवे ॥ ३० ॥ और इनसे घृत सिद्ध करले यह घृत गुल्म, ग्रहणी, बवासीर, श्वास, उन्माद, क्षय, ज्वर, खाँसी, मृगी, मंदाग्नि, प्लीहा, शूल और वायुके रोग इन सबको जीत लेताहै ॥ ३१ ॥ दही, सौवीर (एक प्रकारकी कांजी), घृत तथा मूंग और कुलथीका क्वाथ इन्हें एक एक आढक लेवे (अर्थात् पांचों पांच आढक हुई) और इनमें कालानमक, सज्जीखार, देवदारु, सेंधानमक ये दो दो पल डाल देवे और घृत पका लेवे यह घृत वातगुल्मका नाश करनेवाला है और दीपन भी है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

तृणमूलकषाये तु जीवनीयैः पचेद्घृतम् ॥
न्यग्रोधादिगणे वापि गणे वाप्युत्पलादिके ॥
रक्तपित्तोत्थितं घ्नंति घृतान्येतान्यसंशयम् ॥ ३४ ॥

तृणपंचमूलके क्वाथमें जीवनीय गणसे घृत पकावे अथवा न्यग्रोधादि गणसे पकावे अथवा उत्पलादि गणसे पकावे ये घृत रक्तज तथा पित्तज गुल्मोंको निःसंदेह नाश करतेहैं ॥ ३४ ॥

(श्लो० ३४) न्यग्रोधादिगणे उत्पलादिगणेऽपि जीवनीयप्रक्षेपपूर्वकानि साध्यानि घृतानि रक्तोत्थं पित्तोत्थं गुल्मं च घ्नतीत्यर्थः ।

आरग्वधादौ विपचेद्दीपनीययुतं घृतम् ॥ क्षारवर्गे पचेच्चान्यत्पचेन्मूत्रगणेऽपरम् ॥ घ्नंति गुल्मं कफोद्भूतं घृतान्येतान्यसंशयम् ॥३५॥

आरग्वधादिगणमें दीपनीय युक्त घृत पकावे अथवा क्षारवर्गमें पकावे अथवा मूत्रवर्गमें पकावे ये घृत कफके गुल्मको निःसंदेह नाश करतेहैं ॥ ३५ ॥

यथादोषोच्छ्रयं चापि चिकित्सेत्सान्निपातिकम् ॥ ३६ ॥
चूर्णं हिंग्वादिकं वापि घृतं वा प्लीहनाशनम् ॥
पिबेद्गुल्मापहं काले सर्पिस्तैल्वकमेव वा ॥ ३७ ॥

यदि सन्निपातका गुल्म हो तो उसमें जौनसा दोष बलवान् हो उसीके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३६ ॥ अथवा हिंग्वादिचूर्ण सेवन करे या प्लीहनाशक घृत (जो प्लीहाधिकारमें कहाहै) उसे समयपर पीवे वह भी गुल्मका नाश करनेवाला है तथा तैल्वक घृत (जो वातव्याधिमें कहा है) उसे सेवन करे ॥ ३७ ॥

क्षारविधान ।

तिलेक्षुरकपालाशसार्षपं यवनालजम् ॥ भस्म मूलकजं चापि गोजाविखरहस्तिनाम् ॥ ३८ ॥ मूत्रेण महिषीनां च पालिकैश्चावचूर्णितैः ॥ कुष्ठसैंधवयष्ट्याह्वनागरक्रिमिघातिभिः ॥ ३९ ॥ साजमोदैश्च दशभिः सामुद्राच्चैः पलैर्युतम् ॥ अयः पात्रेऽग्निनाल्पेन पक्त्वा लेह्यमथोद्धरेत् ॥ ४० ॥ तस्य मात्रां पिबेद्दध्ना सुरया सर्पिषापि वा ॥ धान्याम्लेनोष्णतोयेन कौलत्थेन रसेन वा ॥ ४१ ॥ गुल्मं वातविकारांश्च क्षारोयं हंत्यसंशयम् ॥ ४२ ॥

तिल, तालमखाना, ढाक, सरसों (इनके वृक्ष या पंचांग) और जौकी नाली तथा मूली इन सबको (सुखाकर) भस्म करे और उस भस्मको गौ, बकरी, भेड, गधा, हाथी और भैंस इनके मूत्रमें घोल दे (और चुवाले) फिर कूट, सैंधव, मुलेठी, सोंठ, विडंग और अजमोदा इनको पल पल भर लेकर चूर्ण करके डाले और समुद्रनोन दश पल मिलादे और लोहेकी कड़ाहीमें मन्दी आंचसे पकावे जब अवलेहसा होजावे तब उतार ले ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इसमेंसे मात्राके अनुसार दहीके संग या मद्यसे, घृतसे, दहीके पानीसे, गरम

श्लो० ३५) अत्रापि आरग्वधादौ क्षारवर्गे मूत्रगणेऽपि दीपनीयप्रक्षेपपूर्वकानि घृतानि साधनीयानीत्यर्थः ।

जलसे या कुलथीके काथसे पीवे (अर्थात् इनमेंसे किसीएकके साथ पीवे) यह क्षार गुल्म और वातविकारोंको अवश्य नष्ट करता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

स्वर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकजोऽपि वा ॥
तैलेन शमयेत्पीतो गुल्मं पवनसंभवम् ॥ ४३ ॥
पीतं सुखांबुना वापि स्वर्जिकाकुष्ठसैंधवम् ॥ ४४ ॥

केतक (केवडे) के क्षारको सज्जी और कूट मिलाकर तैलके संग पीना वायुके गुल्मको शांत करताहै ॥ ४३ ॥ अथवा सज्जीखार, कूट और सैंधानमक इनका चूर्ण बनाके गरम पानीके साथ लेवे ॥ ४४ ॥

गुल्मनाशक अन्य प्रयोग।

वृश्चीकमुरुबूकं च वर्षाभूर्बृहतीद्वयम् ॥ चित्रकं च जलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषितम् ॥ ४५ ॥ मागधीचित्रकक्षौद्रलिप्ते कुंभे निधापयेत् ॥ मधुनः प्रस्थमावाप्य पथ्याचूर्णार्द्धसंयुतम् ॥ ४६ ॥ तुषोषितं दशाहं तु जीर्णभक्तः पिबेन्नरः ॥ अरिष्टोऽयं जयेद्गुल्ममविपाकमरोचकम् ॥ ४७ ॥

सुपेद सांठी, एरंड, रक्त सांठी, दोनों कटेली, चित्रक इनको द्रोणभर पानीमें काथ करे और चौथाई भाग शेष रहनेपर उतार ले ॥ ४५ ॥ फिर एक घडेमें पीपल, चित्रक और शहद लेपन करके उसमें डाल दे और एक प्रस्थ शहद डाल दे और आधे प्रस्थ हरीतकीका चूर्ण भी मिला देवे ॥ ४६ ॥ और मुँह बन्द करके दश दिन तक तुष (यवके भूसे) में दबा देवे फिर इसे निकाल कर भोजन पचेपर पीवे यह अरिष्ट गुल्मको, पचावट न होनेको तथा अरुचिको नष्ट करताहै ॥ ४७ ॥

पाठानिकुंभरजनीत्रिकटुत्रिफलाग्निकम् ॥ लवणं वृक्षबीजं च तुल्यं स्यादनवं गुडम् ॥ ४८ ॥ पथ्याभिः सहितं चूर्णं गवां मूत्रयुतं पचेत् ॥ गुटिकास्तेद्घनीभूतं कृत्वा खादेदभुक्तवान् ॥ ४९ ॥ गुल्मप्लीहाग्निसादांश्च नाशयेयुरशेषतः ॥ हृद्रोगं ग्रहणीदोषं पांडुरोगं च दारुणम् ॥ ५० ॥

पाठा, दंती, हलदी, त्रिकटु, त्रिफला, चित्रक, नमक, इन्द्रजौ इन्हें पीसकर सबके समान पुराना गुड मिलावे ॥ ४८ ॥ तथा इस चूर्णमें हरडेका चूर्ण

(समान भाग) मिलाकर गोमूत्र डालकर पका लेवे जब वह गाढा होजावे तब गोली बनालेवे इन्हें भोजन विना किये (बलके अनुसार) खावे ॥ ४९ ॥ इससे गुल्म और मंदाग्नि निःशेष नष्ट होजातेहैं तथा हृद्रोग, ग्रहणीदोष और दारुण पांडुरोग भी नष्ट होजाते हैं ॥ ५० ॥

सशूले सोन्नतेऽस्पंदे दाहपाकरुगन्विते ॥
गुल्मे रक्तं जलौकोभिः शिरामोक्षेण वा हरेत् ॥ ५१ ॥

जो गुल्म शूलयुक्त हो, ऊपरको (बाहरकी तरफ) उठाहुआ हो, चलायमान नहीं हो, उसमें दाह हो, पकावपर आगया हो या पकगया हो उसमें दरदभी हो ऐसी अवस्थावाले गुल्ममें जलौका लगाकर या शिरामोक्ष (फस्त) से रुधिर निकाल देना उचित है ॥ ५१ ॥

गुल्ममें खानपान ।

सुखोष्णा जांगलरसाः सुस्निग्धा व्यक्तसैंधवाः ॥ कटुत्रिकसमायुक्ता हिताः पाने च गुल्मिनाम् ॥ ५२ ॥ पेया वातहरैः सिद्धाः कौलत्थाः संस्कृता रसाः ॥ खलाः सपंचमूलाश्च गुल्मिनां भोजने हिताः ॥ ५३ ॥

गुल्मवाले मनुष्योंको जंगली जीवोंके मांसका रस जो सैंधानमक और त्रिकटुसे युक्त हो और घृतादिसे सुंदर स्निग्ध हो वह निवाया निवाया पिलाना हितकारक होताहै ॥ ५२ ॥ तथा वायुनाशक द्रव्यों (भद्रदार्वादिसे सिद्ध की हुई पेया पिलानी तथा बृहत्पंचमूलयुक्त और यथोक्त संस्कार दियेहुए कुलथीके खल (कैथ, दाडिम, तत्र शाक आदिसे संस्कृत कवल) भोजनमें हित होतेहैं ॥ ५३ ॥

दस्त और वायु रुकनेपर यत्न ।

बद्धवर्चोनिलानां तु सार्द्रकं क्षीरमिष्यते ॥
कुंभीपिंडेष्टकास्वेदान्कारयेत्कुशलो भिषक् ॥ ५४ ॥

जिन गुल्मरोगियोंके दस्त और अधोवायु बंद हों या कम हों उन्हें अदरखको दूधके साथ पिलाना चाहिये तथा कुंभी (घड़ा बोतल आदि) से या पिंडसे या ईंटसे स्वेदन करावे (अर्थात् सेंके) ॥ ५४ ॥

(श्लो० ५१) दाहपाकरुगन्विते इत्यनेन गुल्मस्य कदाचित्पाकोपि भवेदिति बुध्यते । (श्लो०५३) खलाः कपित्थदाडिमतक्रशाकादिसंस्कृताः कवला इति प्रसिद्धाः (इति नि० सं०)

गुल्मिनः सर्व एवोक्ता दुर्विरेच्यतमा भृशम् ॥ अतश्चैतांस्तु सुस्विन्नान्स्रंसनेनोपपादयेत् ॥५५॥ विलेपनाभ्यंजनानि तथा संदहनानि च ॥ उपनाहाश्च कर्तव्याः सुखोष्णाः शाल्वणादयः ॥५६॥ उदरोक्तानि सर्पींषि चूर्णवर्तिक्रियास्तथा ॥ लवणानि च योज्यानि यान्युक्तान्युदरामये ॥ ५७ ॥ वातवर्चोनिरोधे तु सामुद्रार्द्रकसर्षपैः ॥ कृत्वा पाय्यौ विधातव्या वर्तयो मारिचोत्तराः ॥ ५८ ॥

गुल्मके रोगी प्रायः सभी अतिदुर्विरेच्य होतेहैं (अर्थात् उन्हें दस्तावर दवासे भी दस्त नहीं आया करतेहैं) इस लिये इनको ठीक स्वेद कराकर स्रंसन द्रव्यों (किरमाला आदि) से दस्त करावे ॥ ५५ ॥ तथा लेपन, अभ्यंग (मर्दन) और दहन (अग्निसे दाग देना) और उपनाह तथा निवाये २ शाल्वणादिका भी यथायोग्य उपयोग करना उचित है ॥ ५६ ॥ तथा उदररोगमें कहेहुए घृत, चूर्ण, वर्तिक्रिया (बत्ती देना) तथा लवण जो उदररोगमें कहेहैं उन सबका उपयोग गुल्ममें भी यथायोग्य किया जासकता है ॥ ५७ ॥ और जब अधोवायु और दस्त रुक ही जावें तब समुद्रलवण, अदरख और सरसों इन्हें पीसकर मिरच (स्याहमिर्च) मिलाकर बत्तीमें लपेटकर वह बत्ती गुदामें प्रविष्ट करनी उचित है ॥ ५८ ॥

दंतीचित्रकमूलेषु तथा वातहरेषु च ॥ कुर्यादरिष्टान्सर्वांश्च सूत्रस्थाने तथेरितान् ॥ ५९ ॥ खादेद्द्राप्यंकुरान्भ्रष्टान्पूतीकन्नृपवृक्षजान् ॥ ऊर्द्ध्ववातमनुष्यं च गुल्मिनं न निरूहयेत् ॥ ६० ॥ पिबेत्त्रिवृन्नागरं वा सगुडां वा हरीतकीम् ॥ गुग्गुलुं त्रिवृतां दंतीं द्रवंतीं सैंधवं वचाम् ॥ ६१ ॥ मूत्रमद्यपयोद्राक्षारसैर्वीक्ष्य बलाबलम् ॥ एवं पीलूनि पिष्टानि पिबेत्सलवणानि तु ॥ ६२ ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकसैंधवैः ॥ युक्ता हंति सुरा गुल्मं शीघ्रं काले प्रयोजिता ॥६३॥ बद्धविण्मारुतो गुल्मी भुंजीत पयसा यवान् ॥ कुल्माषान्वा बहुस्नेहान्भक्षयेल्लवणो त्तरान् ॥ ६४ ॥

(श्लो० ५६) संदहनानि अग्निना दग्धकरणानि (श्लो० ५८) मरिचोत्तराः मरिचप्रधाना इत्यर्थः । (श्लो० ६२) पीलूनि सलवणानि पिष्ट्वा पिबेत् । पीलु करीरवृक्षस्य पक्वं फलम् तं गुडफलमित्याहुः। लोके "पीचू" इति वदंति । अन्ये तु पीलु जालकवृक्षस्य पक्व फलमाहुः यं लोके "पील" इति वदति ।

दंती और चित्रककी जड तथा अन्य वायुनाशक द्रव्योंका अरिष्ट सूत्रस्थानोक्त-विधिसे बनाकर उपयोग करे ॥ ५९ ॥ अथवा करंज या किरमालेके अंकुरोंको स्नेहमें भूनकर खाया करे और जिस गुल्मवालेके ऊर्द्धवायु हो उसे निरूहणवास्ति नहीं देवे ॥ ६० ॥ तथा निशोथ और सोंठको (मद्य या गरम जल आदिसे) पीवे अथवा हरडेकी छाल गुड़में मिलाके खाया करे, अथवा गूगल, निशोथ, दंती, द्रवंती (दंतीका भेद), सैंधव और वच ॥ ६१ ॥ इनको गोमूत्र, मदिरा, दूध, डाखका रस इनमेंसे किसीके संग बलाबल देखकर पिलावे इसी प्रकार पीलू और नमक पीसकर सेवन करे ॥ ६२ ॥ अथवा पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सैंधानमक इनके संग मदिरा समयपर पीना गुल्मको नाश करदेता है ॥ ६३ ॥ तथा जिसके दस्त और अधोवायु रुककर आते हों या रुके हों वह जौके पदार्थ यवागू आदिको दूधके संग खावे अथवा जौकेही कुल्माष (उबालकर पिष्टमय पदार्थ) नमकीन बनाकर खूब घृत डालकर खावे ॥ ६४ ॥

गुल्मका उपद्रव शूल और इसके लक्षण ।

अथास्योपद्रवः शूलः कथंचिदुपजायते ॥ शूलं निखानितमिव सुखं येन तु वेत्त्यसौ ॥ ६५ ॥ तत्र विण्मूत्रसंरोधः कृच्छ्रोच्छ्वासः स्थिरांगता ॥ तृष्णा दाहो भ्रमोऽन्नस्य विदग्धे परिवृद्धता ॥ ॥ ६६ ॥ रोमहर्षोऽरुचिश्छर्दिर्भुक्तवृद्धिर्जडांगता ॥ वाय्वादिभि-र्यथासंख्यं मिश्रैर्वा वीक्ष्य योजयेत् ॥ ६७ ॥

इस गुल्ममें उपद्रवरूप शूल भी कभी कभी होजाया करता है इस शूलपीडाके होनेमें जैसे कोई कील या शूल गाडता हो ऐसा जान पड़ता है ॥ ६५ ॥ (तीनों दोषोंके शूलके पृथक् २ लक्षण) इसमें मल और मूत्र रुकजावे, कष्टसे श्वास लिया जावे, शरीर कडा होजावे (ये वायुके शूलमें होते हैं) तथा तृषा हो, दाह हो, भ्रम हो और भोजन कियाहुआ अन्न पचने लगे तब शूल बढ जावे (ये लक्षण पित्तशूलके होते हैं) ॥ ६६ ॥ तथा रोंगटे खडे हों, अरुचि हो, भोजन करतेही शूलमें वृद्धि हो, अंगोंमें जडता हो (ये कफके शूलके लक्षण हैं) वातादिके लक्षण यथाक्रम देखकर तथा मिश्र, द्वंद्वज और सन्निपातके शूलमें दो दोषोंके तथा तीनोंके मिले लक्षण होते हैं इसे विचारकर औषधका उपयोग करना चाहिये ॥ ६७ ॥

गुल्मशूलमें यत्न ।

पथ्या त्रिलवणं क्षारं हिंगु तुंबुरु पौष्करम् ॥ यवान्यथ हरिद्रा च

(श्लो० ६८) त्रिलवणं सैंधवसौवर्चलविडानि (इति डल्हनः)

विडंगान्यम्लवेतसम् ॥ ६८ ॥ विदारी त्रिफला भीरु शृंगाटी गुडशर्करा ॥ काश्मरीफलयष्ट्याह्वपरूषकहिमानि च ॥ ६९ ॥ षड्ग्रंथातिविषादारुपथ्यामारिचवृक्षकान् ॥ कृष्णामूलकचव्यं च नागरक्षारचित्रकान् ॥ ७० ॥ उष्णाम्लकांजिकक्षीरतोयैः श्लोकसमापनात् ॥ यथाक्रमं विमिश्रांश्च द्वंद्वे सर्वांश्च सर्वजे ॥ ७१ ॥

हरडेकी छाल, तीनों लवण (सैंधा, काला, विड), यवक्षार, हींग, धनियां, पुष्करमूल, अजवायन और हलदी, वायविडंग और अम्लवेतस (इन्हें वायुशूलमें) ॥ ६८ ॥ विदारी, त्रिफला, शतावर, सिंघाडें, गुड, खांड, खँभारी, मुलेठी और फालसे और, चन्दन (इन्हें पित्तशूलमें) ॥ ६९ ॥ षड्ग्रन्था (वच), अतीस, देवदारु, हरडे, मिरच, इंद्रयव, पीपलामूल और चव्य, सोंठ, यवक्षार और चित्रक (इन्हें कफशूलमें) ॥ ७० ॥ यथाक्रम एक एक श्लोकके इन योगोंको वातादिशूलोंमें वक्ष्यमाण अनुपानोंसे सेवन करे । वायुमें गरम खट्टी कांजीसे, पित्तमें गरम दूधसे और कफमें गरम जलसे उक्त औषधोंके चूर्णको खावे यदि द्विदोषका शूल हो तो दो योगोंकी औषधें और तीनों दोषोंके शूलमें तीनोंकी औषधें मिलाके उपयोग करे ॥ ७१ ॥

तथैव सेकावगाहप्रदेहाभ्यंगभोजनम् ॥ शिशिरोदकपूर्णानां भाजनानां च धारणम् ॥ ७२ ॥ वमनोन्मर्दनस्वेदलंघनक्षपणक्रियाः ॥ स्नेहादिश्च क्रमः सर्वो विशेषेणोपदिश्यते ॥ ७३ ॥

इसी भांति सेक, अवगाहन, प्रदेह (उष्णलेप), अभ्यंग (स्नेहादिमर्दन) तथा भोजन ये वायुके शूलमें करे और ठंढे पानीसे भरे हुए पात्र (शूलपर) रखना यह पित्तशूलमें करे ॥ ७२ ॥ तथा वमन, उन्मर्दन, स्वेदन (तपाना) और लंघन तथा क्षपण (शोधन) ये कफज्वरमें करे तथा द्वंद्वजमें दो और त्रिदोषजमें सब करे और स्नेहादि क्रम विशेष करके सबमें उचित कहा है ॥ ७३ ॥

गुल्ममें पथ्य ।

वल्लूरं मूलकं मत्स्याञ्छुष्कशाकानि वैदलम् ॥
न खादेदालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥ ७४ ॥

वल्लूर (सूखा मांस), मूलक (मूलशाक या मूली), मछली, सूखे शाक, वैदल (मूँग, चौले आदि तथा आलुक (आलु पिंडालू, रतालू आदि) और मीठे फल मोचाफल आदि) गुल्मका रोगी नहीं खावे ॥ ७४ ॥

अथ शूलरोग।

विना गुल्मेन यच्छूलं गुल्मस्थानेषु जायते॥
निदानं तस्य वक्ष्यामि रूपं च सचिकित्सितम्॥ ७५॥

विना गुल्मके भी गुल्मके स्थानों (पँसवाडे, हृदय, नाभि और वस्ति) में शूल होताहै उसका निदान और रूप तथा चिकित्साका वर्णन अगाडी करते हैं॥७५॥

शूलका हेतु और संप्राप्ति।

वातमूत्रपुरीषाणां विग्रहादतिभोजनात्॥ अजीर्णाध्यशनायासविरुद्धान्नोपसेवनात्॥ ७६॥ पानीयपानात्क्षुत्काले विरूढानां च सेवनात्॥ पिष्टान्नशुष्कमांसानामुपयोगात्तथैव च॥ ७७॥ एवंविधानां द्रव्याणामन्येषां चोपसेवनात्॥ वायुः प्रकुपितः कोष्ठे शूलं संजनयेद्भृशम्॥ निरुच्छ्वासो भवेत्तेन वेदनापीडितो नरः॥ ७८॥

अधोवायु, मूत्र और दस्तके रोकनेसे, अतिभोजन करनेसे, अजीर्णसे, भोजनपर भोजन करनेसे, विरुद्ध अन्न खानेसे॥ ७६॥ तथा भूँखके समय पानी पीनेसे विरूढ (जिसमें अंकुर निकल आये हों ऐसे अथवा पुराने) अन्न खानेसे, पिट्ठीके पदार्थ विशेष खानेसे और सूखा मांस खानेसे॥ ७७॥ अथवा इसी प्रकारके अन्य पदार्थोंका सेवन करनेसे, पेटमें वायु कुपित होकर दारुण शूल पैदा करता है, शूल रोग ऐसा दारुण है कि जिसकी पीडासे मनुष्य व्याकुल होकर श्वास भी नहीं ले सकता (अर्थात् यह रोग अच्छे प्रकार श्वास भी नहीं लेने देता)॥ ७८॥

शूलकी निरुक्ति।

शंकुस्फोटनवत्तस्य यस्मात्तीव्राश्च वेदनाः॥
शूलासक्तस्य लक्ष्यंते तस्माच्छूलमिहोच्यते॥ ७९॥

शंकु (कांटे या नोंक) के शरीरमें चुभकर टूट जानेकेसी या शूल नाम शस्त्रसे शरीर घायलहुआ जाता हो ऐसी तीव्र पीडा शूलरोगवालेको मालूम पडती है इससे इस रोगको शूल कहते हैं॥ ७९॥

शूलके लक्षण।

निराहारस्य यस्यैव तीव्रं शूलमुदीर्यते॥
प्रस्तब्धगात्रो भवति कृच्छ्रेणोच्छ्वसितीव च॥ ८०॥

(श्लो० ७९) शंकुस्फोटनवत्कंटकहननवत्तीव्रा वेदना।

वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण कुरुते नरः ॥
एतैर्लिंगैर्विजानीयाच्छूलं वातसमुद्भवम् ॥ ८१ ॥

जिसके आहार किये पहले शूल तीव्र हो, शरीर कडा पडजावे, कष्टसे श्वास लिया जावे ॥ ८० ॥ अधोवायु, मूत्र और दस्त कष्टसे कम कम आवें इन लक्षणोंसे वायुका शूल जानना चाहिये ॥ ८१ ॥

तृष्णा दाहो मदो मूर्च्छा तीव्रं शूलं तथैव च ॥ शीताभिकामो भवति शीतेनैव प्रशाम्यति ॥ ८२ ॥ एतैर्लिंगैर्विजानीयाच्छूलं पित्तसमुद्भवम् ॥ ८३ ॥ शूलेनोत्पीडयमानस्य हृल्लास उपजायते ॥ अतीव कोष्ठपूर्णत्वं तथैव गुरुगात्रता ॥ एतच्छ्लेष्मसमुत्थस्य शूलस्योक्तं निदर्शनम् ॥ ८४ ॥

तृषा अधिक हो, दाह हो, मद हो, मूर्च्छा हो (जी घबराया आवे), शूल तीव्र हो, शीतल आहार, विहारकी इच्छा हो तथा शीतसे शूलमें शांति मालूम दे इन लक्षणोंसे पित्तका शूल जानना ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ शूलपीडित मनुष्यको यदि हृल्लास हो (उबकाई आवें), पेटमें खूब भरासा हो, शरीरमें (और पेटमें) भारीपन हो (तथा वेदना मंद मंद हो) ये लक्षण कफज शूलके जानने ॥ ८४ ॥

सर्वाणि दृष्ट्वा रूपाणि निर्दिशेत्सान्निपातिकम् ॥
सन्निपातसमुत्थानमसाध्यं तं विनिर्दिशेत् ॥ ८५ ॥

सबके लक्षण जिसमें मालूम हों उसे सन्निपातका शूल जानों यह सन्निपातका शूल असाध्य कहा है ॥ ८५ ॥

(वक्तव्य) पहले गुल्मके उपद्रवात्मक शूलमें द्वंद्वज भी कह चुके हैं इससे यहां भी दो दोषोंके मिश्रित लक्षण होनेसे उन्हींका द्वंद्वज शूल जानना तथा कई आचार्योंने दोषभेदसे शूलके स्थान कहेहैं-देखो टिप्पणी ॥

शूलकी चिकित्सा ।

शूलानां लक्षणं प्रोक्तं चिकित्सां च निबोध मे ॥ आशुकारी हि

(श्लो० ८५) कैश्चित्पूर्वाचार्यैर्दोषभेदेन नियतं स्थानं शूलस्योक्तम् । तथाहि-"वातात्मकं वस्तिगतं वदति पित्तात्मकं चापि वदति नाभ्याम् ॥ हृत्पार्श्वकुक्षौ कफसन्निविष्टं सर्वेषु देहेषु च सन्निपातात् ॥१॥" भावप्रकाशादौ शूलोऽष्टधा लिखितः यथा-"दोषैः पृथक्समस्तामद्वन्द्वैः शूलोऽष्टधा भवेत् ॥ सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः ॥ २ ॥"

पवनस्तस्मात्तं त्वरया जयेत् ॥ ८६ ॥ तस्य शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावहः ॥ पायसैः कृसरापिंडैः स्निग्धैर्वापि शितैर्हितैः ॥८७॥

शूलोंके लक्षण तो वर्णन करदिये अब इनकी चिकित्सा श्रवण करो-सब प्रकारके शूलोंमें वायुही शीघ्र शूल करनेवाला है इससे उसे शीघ्रही (बहुत जल्दी) शांत करना चाहिये ॥ ८६ ॥ शूलपीडित मनुष्यको स्वेद कराना (सेककर पसीना दिलाना) ही सुखकारक होताहै इससे दूधके पदार्थों (मावे) आदिसे या कृसरा (खिचडी आदिके पिंडसे स्निग्ध और वायुनाशक मांसोंसे सेक सेककर स्वेद कराना हित है ॥ ८७ ॥

वायूके शूलका यत्न ।

त्रिवृच्छाकेन वा स्निग्धमुष्णं भुंजीत भोजनम् ॥ चिरबिल्वांकुरान्वापि तैलभृष्टांस्तु भक्षयेत् ॥ ८८ ॥ वैहंगांश्च रसान्स्निग्धाञ्जांगलाञ्छूलपीडितः॥यथालाभं निषेवेत मांसानि बिलशायिनाम् ८९॥

निशोथके शाकके साथ स्निग्ध और गरम भोजन करना चाहिये अथवा करंजके अंकुरोंको तैलमें भूनकर खावे ॥ ८८ ॥ तथा शूलरोगसे पीडित मनुष्य पक्षियोंके मांसका रस स्निग्ध सेवन करे तथा जंगली जीवोंके मांसका रस सेवन करे अथवा यथालाभ बिलमें रहनेवाले जीवोंके मांसका रस सेवन करे ॥ ८९ ॥

सुरा सौवीरकं शुक्तं मस्तूदश्वित्तथा दधि ॥ सकाललवणं पेयं शूले वातसमुद्भवे ॥ ९० ॥ कुलत्थयूषो युक्ताम्लो लावकीयूषसंस्कृतः ॥ ससैंधवः समरिचो वातशूलविनाशनः ॥ ९१ ॥

मद्य, सौवीर (काँजी), सिरका, दहीका तोड तथा उदश्वित् (आधे पानीयुक्त तक्र) तथा दही इनमेंसे कोई काले नमकके साथ वायुके शूलमें पीवे ॥९०॥ कुलत्थका यूष जिसमें खटाई पड़ी हो और लवेके यूषसे संस्कार किया हो तथा सेंधानमक और मिरचें मिली हो यह भी वायुके शूलको नष्ट करता है ॥ ९१ ॥

विडंगं शिग्रुकंपिल्लपथ्याश्यामाम्लवेतसान् ॥ सुरसामश्वकर्णं च सौवर्चलयुतान्पिबेत् ॥ मद्येन वातजं शूलं क्षिप्रमेव प्रशाम्यति ॥ ॥ ९२ ॥ पृथ्वीकाजाजिचविकायवानीव्योषचित्रकाः ॥ पिप्पलयः पिप्पलीमूलं सैंधवं चेति चूर्णयेत् ॥ ९३ ॥ तानि चूर्णानि पयसा पिबेत्कांचलिकेन वा ॥ ९४ ॥ मध्वासवेन चुक्रेण सुरासौवीरकेन

वा ॥ अथैवैतानि चूर्णानि मातुलुंगरसेन वा ॥ ९५ ॥ तथा बदरयूषेण भावितानि पुनः पुनः ॥ तानि हिंगुप्रगाढानि सह शर्करया पिबेत् ॥ ९६ ॥ सह दाडिमसारेण वर्तिः कार्या भिषग्जिता ॥ सा वर्तिर्वातिकं शूलं क्षिप्रमेव व्यपोहति ॥ ९७ ॥ गुडतैलेन वा लीढा पीता मद्येन वा पुनः ॥ ९८ ॥

वायविडंग, सोहँजना, कमेला, हरीतकी, निशोथ, अम्लवेतस, तुलसी, अश्वकर्ण (शालका भेद) इन सबको पीसकर कालानमक मिलाकर मदिराके संग पीनेसे वायुका शूल शीघ्रही शांत होजाताहै ॥ ९२ ॥ तथा पृथ्वीका (हिंगुपत्री, कोई काला जीरा कहते हैं), सुपेद जीरा, चव्य, अजवायन, सोंठ, मिरच, पीपल, चित्रक, पिप्पली, पीपलामूल और सैंधव इन सबका चूर्ण बनाले इस चूर्णको भेडके दूधके संग पीवे ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ अथवा इसी चूर्णको मध्वासव (महुवेकी मद्यसे) या चुक्रसे या सुरा (मदिरा) से या कांजीसे पीवे अथवा इसी चूर्णको नींबूके रसकी या बेरके जूसकी वार वार भावना देकर हींग और खांड मिलाकर पीवे ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ अथवा इस चूर्णमें अनारका सार (रस) मिलाकर गोली बनालेवे वह गोली गुड और तैलमें मिलाकर चाटना या मदिराके संग खाना वायुके शूलको शीघ्र नष्ट करदेता है ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

बुभुक्षाप्रभवे शूले लघु संतर्पणं हितम् ॥ उष्णैः क्षीरैर्यवागूभिः स्निग्धैर्मांसरसैस्तथा ॥ ९९ ॥ वातशूले समुत्पन्ने रूक्षस्निग्धेन योजयेत् ॥ सुसंस्कृताः प्रदेयाः स्युर्घृतपूरा विशेषतः ॥ १०० ॥ वारुणीं च पिबेज्जंतुस्तथा संपद्यते सुखी ॥ एतद्वातसमुत्थस्य शूलस्योक्तं चिकित्सितम् ॥ १०१ ॥

क्षुधासे होनेवाले शूलमें हलका, तृप्तिकारक, भोजन गरम दूधके संग देना या यवागूको स्निग्ध मांसरसके संग देना हितकारक होताहै ॥ ९९ ॥ यदि वायुके शूलवाला रोगी रूक्ष हो तो उसे स्निग्ध पदार्थोंकी योजना करे तथा विशेष करके वातघ्न द्रव्योंसे संस्कार कियेहुए घृतपूर (घेवर) देने चाहिये ॥ १०० ॥ अथवा वातशूलका रोगी मनुष्य वारुणी मदिरा पान करनेसे सुखी होताहै यह वातजशूलकी चिकित्सा वर्णन की गई है ॥ १०१ ॥

पित्तके शूलका यत्न ।

अथ पित्तसमुत्थस्य क्रियां वक्ष्याम्यतः परम् ॥ १०२ ॥ ससुखं छर्दयित्वा तु पीत्वा शीतोदकं नरः ॥ शीतलानि च सेवेत सर्वाण्युष्णानि वर्जयेत् ॥१०३॥ मणिराजतताम्राणि भोजनानि च सर्वशः ॥ वारिपूर्णानि तान्यस्य शूलस्योपरि निःक्षिपेत् ॥ ॥ १०४ ॥ गुडशालियवाः क्षीरं सर्पिःपानं विरेचनम् ॥ जांगलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनाम् ॥ १०५ ॥ रसान्सेवेत पित्तघ्नान्पित्तलानि विवर्जयेत् ॥ पालाशं धान्वनं वापि पिबेद्यूषं सशर्करम् ॥ १०६ ॥ परूषकाणि मृद्वीका खर्जूरोदकजान्यपि ॥ तत्पिबेच्छर्करायुक्तं पित्तशूलनिवारणम् ॥ १०७ ॥

इसके अगाडी अब हम पित्तके शूलकी चिकित्सा कहते हैं ॥ १०२ ॥ रोगीको सुखपूर्वक शीतल जलके योगसे वमन कराके शीतल पदार्थोंका सेवन करावे और सब प्रकारके गरम आहार, विहार औषधोंको त्याग दे ॥ १०३ ॥ मणि (बिल्लोर आदि) के, चांदीके, तांबेके पात्रोंको ठंढे पानीसे भरके शूलस्थानपर रक्खे ॥ १०४ ॥ गुड़, चावल और जव खावे तथा घृतपान करे और विरेचन करे तथा जंगली जीवोंका मांस भोजन करे ये पित्तशूलवालेके लिये परम औषध है ॥ १०५ ॥ तथा पित्तनाशक मांसरस सेवन करे और पित्तकारक आहार, विहार त्याग दे और पलाश तथा धान्वनका यूष खांड डालकर पीवे ("पालाशं" की जगह 'पालानां' यहभी पाठांतर है इसका ऐसा अर्थ करते हैं कि पालों (जंगलके पालों) के धान्वन अर्थात् जंगली जीवोंकी मृगयासे उत्पन्न हुए मांसरस शर्करायुक्त पीवे) ॥ १०६ ॥ फालसे, दाख, मुनक्का, खजूर, जलके फल कमलादिक लेकर उनका पन्ना बनाकर खांड मिलाकर पिलावे ये पित्तशूलके निवारण करनेवाले हैं ॥ १०७ ॥

कफशूलका यत्न ।

अशने भुक्तमात्रे तु प्रकोपः श्लैष्मिकस्य च ॥ वमनं कारयेत्तत्र पिप्पलीवारिणा भिषक् ॥ १०८॥ रूक्षः स्वेदः प्रयोज्यः स्यादन्याश्चोष्णाः क्रिया हिताः ॥ पिप्पलीशृंगबेरं च श्लेष्मशूले भिष-

(श्लो० १०९) शृंगबेरम् आर्द्रकं शुंठी च ।

गिजतम् ॥ १०९ ॥ पाठां वचां त्रिकटुकं तथा च कटुरोहिणीम् ॥ चित्रकस्य च निर्यूहे [3]पिबेद्[2]यूषं स सार्जकम् [1] ॥ ११० ॥

कफका शूल भोजन खाते ही कुपित होताहै इसमें वैद्य पिप्पलीके क्वाथसे वमन करावे ॥ १०८ ॥ तथा रूखा स्वेद करावे तथा अन्य उष्ण क्रिया करे और पीपल तथा अदरख मिलाकर खाना कफशूलकी औषध है ॥ १०९ ॥ तथा पाठा, वच, त्रिकटु और कुटकीको चित्रकके क्वाथके संग पीवे अथवा कफनाशक धान्यों-के यूषमें अर्जक (कुठेरक) मिलाकर पीवे ॥ ११० ॥

एरंडफलमूलानि मूलं गोक्षुरकस्य च ॥ शालिपर्णीं पृश्निपर्णीं बृहतीं कंटकारिकाम् ॥१११॥ दद्याच्छृगालविन्नां च सहदेवीं तथैव च ॥ महासहां क्षुद्रसहां मूलं चेक्षुरकस्य च ॥ ११२ ॥ एतत्सं-भृत्य संभारं जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ चतुर्भागावशेषं तु यवक्षार-युतं पिबेत् ॥ ११३ ॥ वातिकं पैत्तिकं वापि श्लैष्मिकं सान्निपाति-कम् ॥ प्रसह्य नाशयेच्छूलं छिन्नाभ्रमिवं मारुतः ॥ ११४ ॥

एरंडके फल और जड, गोखरूकी जड, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, बडी कटेली, छोटी कटेली ॥ १११ ॥ शृगालविन्ना (पिठवनका भेद), सहदेवी, माषपर्णी, मुद्ग-पर्णी, तालमखानेकी जड ॥ ११२ ॥ इन सबको इकट्ठा करके द्रोणभर पानीमें क्वाथ करे और चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार ले इसे यवक्षारके संग (यवक्षार मिलाके) पीवे ॥ ११३ ॥ यह वात, पित्त, कफ और सन्निपातके शूलको बल-पूर्वक इसप्रकार नाश करता है जैसे पवन बादलोंको नष्ट करता है ॥ ११४ ॥

पिप्पल्यः स्वर्जिकाक्षारो यवाश्चित्रक एव च ॥
सेव्यं चैव समानीय भस्म कुर्याद्विचक्षणः ॥
तदुष्णवारिणा पीतं श्लेष्मशूले भिषग्जितम् ॥ ११५ ॥

पीपल, सज्जीखार, जौ, चित्रक, सेव्य (खस) इन सबको मिलाकर भस्म करलेवे फिर इस भस्मको गरम जलके साथ पीवे यह कफके शूलकी औषध है ॥ ११५ ॥

(श्लो० ११०) पाठादीनां द्रव्याणि चूर्णितानि कल्कितानि वा चित्रकस्य निर्यूहे क्वाथे पिबेदित्येको योगः । यूष सार्जकमिति द्वितीयो योगः । यूषं शूलहरं शिवीधान्ययूषं सार्जकम् अर्जकेन सह सः पिबेदित्यर्थः (इति डल्लनः) (श्लो० ११२) शृगालविन्ना पृश्निपर्णीभेदः (इति डल्लनः) (श्लो० ११४) प्रसह्य बलात्कारेण (श्लो० ११५) सेव्यम् उशीरम् ।

पार्श्वशूलके लक्षण ।

रुणद्धि मारुतं श्लेष्मा कुक्षिपार्श्वव्यवस्थितः ॥ स संरुद्धः करोत्याश्वाध्मानं गुडगुडायनम् ॥११६॥ सूचीभिरिव निस्तोदः कृच्छ्रोच्छ्वासी तदा नरः ॥ नान्नं वांछति नो निद्रामुपैत्यर्तिनिपीडितः॥ ॥ ११७ ॥ पार्श्वशूलः स विज्ञेयः कफानिलसमुद्भवः ॥ ११८ ॥

जब कूख और पँसवाडोंमें स्थितहुआ कफ वायुको रोक देता है तब वह रुका हुआ वायु शीघ्रही अफारा और गुडगुडाहट पैदा करता है ॥ ११६ ॥ सुई चुभनेकीसी पीडा होतीहै और मनुष्यसे कष्टसे श्वास लिया जाता है, अन्नकी इच्छा नहीं होती और पीडित रोगीको निद्रा नहीं आती है ॥ ११७ ॥ इसे कफवायुसे उत्पन्न हुआ पार्श्वशूल (पँसलीका दर्द) कहतेहैं ॥ ११८ ॥

पार्श्वशूलका यत्न ।

तत्र पुष्करमूलानि हिंगु सौवर्चलं बिडम् ॥ सैंधवं तुंबुरुपथ्याचूर्णं कृत्वा तु पाययेत् ॥ ११९ ॥ पार्श्वहृद्बस्तिशूलेषु यवक्राथेन संयुतम् ॥ सर्पिः प्लीहोदरोक्तं वा घृतं वा हिंगुसंयुतम् ॥ ॥ १२० ॥ बीजपूरकसारं वा पयसा सह साधितम् ॥ एरंडतैलमथवा मद्यमस्तुपयोरसैः ॥ १२१ ॥ भोजयेच्चापि पयसा जांगलेन रसेन वा ॥ १२२ ॥

इस पार्श्वशूलमें पोहकरमूल, हींग, कालानोंन, बिडनोंन, सैंधानोंन, धनियां और हरडेकी छाल इनका चूर्ण करके पार्श्वशूल, हृदयशूल, वस्तिशूल इन सब रोगोमें जौके क्राथके संग पिलावे अथवा प्लीहोदरमें कहाहुआ घृत पिलावे अथवा घृतमें हींग मिलाकर चटावे ॥ ११९ ॥ १२० ॥ अथवा बिजोरेका सार (अंतर्छाल) दूधमें पकाकर देवे अथवा एरंडके तैलको मदिरा या मस्तु या दूध या मांसरस इनमेंसे किसीके संग देवे ॥ १२१ ॥ औषध पचनेपर दूध या जंगली जीवोंके मांसरसके संग भोजन करावे ॥ १२२ ॥

प्रकुप्यति यदा कुक्षौ वह्निमाक्रम्य मारुतः ॥ तदाऽस्य भोजनं भुक्तं सोपस्तंभं न पच्यते ॥ १२३ ॥ उच्छ्वसित्यामशकृता शूलेनाहन्यते मुहुः ॥ नैवासने न शयने तिष्ठन्न लभते सुखम् ॥१२४॥ कुक्षिशूल इति ख्यातो वातादामसमुद्भवः ॥ १२५ ॥

(श्लो० १२४) आमशकृता अपक्वपुरीषेणेत्यर्थः ।

यदि जठराग्निको दबाकर (मन्द करके) वायु कूखमें कुपित हो (अर्थात् जब कुक्षिमें वायु कुपित होकर अग्निको रोक ले) तब उसका भोजन किया हुआ ठिठराकर पचता नहीं अर्थात् ज्योंका त्यों विना पचा धरा रहता है) ॥ १२३ ॥ श्वाससा भरजाता है और कच्चे अन्नके दस्त आतेहैं वारवार शूलकी वेदना होती- है, न बैठे चैन पडता है, न लेटे, न खडे हुए ॥ १२४ ॥ इसे कुक्षिशूल कहतेहैं यह वायुसे और कच्चे आम (विनपचे) भोजनसे उत्पन्न होताहै ॥ १२५ ॥

कुक्षिशूलकी चिकित्सा ।

वमनं कारयेत्तत्र लंघयेद्वा यथाबलम् ॥ संसर्गपाचनं कुर्यादम्लैर्दीपनसंयुतैः ॥ १२६ ॥ नागरं दीप्यकं चव्यं हिंगु सौवर्चलं बिडम् ॥ मातुलुंग्याश्च बीजानि तथा श्यामोरुबूकयोः ॥ १२७ ॥ बृहत्याः कंटकार्याश्च क्वाथं शूलहरं पिबेत् ॥ वचा सौवर्चलं हिंगु कुष्ठं सातिविषाभया ॥ १२८ ॥ कुटजस्य च बीजानि सद्यःशूलहराणि तु ॥ विरेचनं प्रयुंजीत ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥ १२९ ॥ स्नेहवस्तीन्निरूहांश्च कुर्याद्दोषनिबर्हणम् ॥ उपनाहाः स्नेहसेका धान्याम्लपरिषेचनम् ॥ १३० ॥

इसमें वमन करावे और बलके अनुसार लंघन करावे और अम्लरस तथा दीपन द्रव्य मिलाकर संसर्ग (कच्चे आम) को पचावे ॥१२६॥ सोंठ, अजवायन, चव्य, हींग, कालानमक, विडनमक, बिजोरेके बीज, निशोथ और एरंड ॥ १२७ ॥ बडी कटेली, छोटी कटेली इनका क्वाथ पीवे यह परम शूलनाशक है अथवा बच, कालानमक, हींग, कूट, अतीस, हरडे ॥ १२८ ॥ और इन्द्रजौ ये भी तत्काल शूलनाश करते हैं (इनका चूर्ण या क्वाथ लेवे) और दोष तथा रोगीका बलाबल देखकर विरेचनका उपयोग करे ॥ १२९ ॥ तथा स्नेहवस्ति और निरूहणवास्ति भी देवे ये दोषको नष्ट करती हैं तथा उपनाह (गरम लेप या भुरता आदि बाँधना) तथा स्नेहका सेक करना अथवा धान्याम्ल (कांजी) का सेचन करना भी श्रेष्ठ है ॥१३० ॥

हृच्छूल ।

कफपित्तावरुद्धस्तु मारुतो रसमूर्च्छितः ॥ हृदिस्थः कुरुते शूलमुच्छ्वासरोधकं परम् ॥ १३१ ॥ स हृच्छूल इति ख्यातो रसमारुतसंभवः ॥ तत्रापि कर्माभिहितं यदुक्तं हृद्विकारिणाम् ॥ १३२ ॥

(श्लो० १२६) संसर्गपाचनं कुर्यात् । संसर्गस्य अपक्वस्य पाचनं संसर्गपाचनम् ।

(श्लो० १३१) हृदिस्थः हृत्समीपस्थः अत्र अजहल्लक्षणायाः सामीप्यकं बोद्धव्यम् ।

कफपित्तसे अवरुद्ध हुआ वायु रसमें मिलकर जब हृदयके समीपमें होता है तब वहां शूल पैदा करता है इस हृदयशूलमें श्वास नहीं लिया जाता और बड़ा कष्ट होता है॥ १३१ ॥ इसे हृच्छूल कहते हैं यह रस और वायुसे होता है इसमें वही यत्न करना चाहिये जो हृद्रोगमें कहा जावेगा ॥ १३२ ॥

(वक्तव्य) यह शूल आमाशयके उपरिभागमें होता है और यह स्थान हृदयके निकट है इसीसे इसे हृच्छूल कहते हैं ॥

वस्तिशूल और मूत्रशूल।

संरोधात्कुपितो वायुर्वस्तिमावृत्य तिष्ठति ॥ वस्तिवंक्षणनाभीषु ततःशूलोऽस्य जायते ॥ विण्मूत्रवातसंरोधी वस्तिशूलः स मारुतात् ॥ १३३ ॥ नाभ्यां वंक्षणपार्श्वेषु कुक्षौ मेढ्रांत्रमर्दकः ॥ मूत्रमावृत्य गृह्णाति मूत्रशूलः स मारुतात् ॥ १३४॥

मल, मूत्र, अधोवायु इनके रोकनेसे कुपित वायु वस्तिस्थानमें प्राप्त होकर आवर्तरूपसे घूमताहुआ स्थित होता है तब मनुष्यके वस्तिस्थान, वंक्षण (नलें) और नाभि इन स्थानोंमें शूल होता है इसमें दस्त, मूत्र और अधोवायु ये सब रुक जाते हैं यह वायुसे उपजा वस्तिशूल कहलाता है ॥१३३॥ और जब कुपित वायु मेढ्रांत्र (लिंगकी नलियां) को मर्दन करके (दबाकर या रोककर) और मूत्रको रोककर बंद करता है तब नाभि, वंक्षण, पँसवाड़े और कूख इन स्थानोंमें शूल होता है इसे मूत्रशूल कहते हैं यह भी वायुसे होता है ॥ १३४ ॥

विट्शूल।

वायुः प्रकुपितो यस्य रूक्षाहारस्य देहिनः ॥ मलं रुणद्धि कोष्ठेस्थं मंदीकृत्य तु पावकम् ॥ १३५ ॥ शूलं संजनयंस्तीव्रं स्रोतांस्यावृत्य तस्य हि ॥ दक्षिणं यदि वा वामं कुक्षिमादाय जायते ॥ ॥ १३६ ॥ सर्वत्र वर्धते क्षिप्रं शूलं तत्र सघोषवत् ॥ पिपासा वर्द्धते तीव्रा भ्रमो मूर्च्छा च जायते ॥ १३७ ॥ उच्चारितो मूत्रितश्च न शांतिमधिगच्छति ॥ विट्शूलमेतज्जानीयाद्विषवत्परमदारुणम् ॥ १३८ ॥

(श्लो० १३३) संरोधान्मलमूत्रादीनाम् (श्लो० १३४) मेढ्रांत्रमर्दको वायुः मेढ्रनलिका संमर्द्य वायुः आवृत्य मूत्रं गृह्णातीति। (श्लो० १३७) सघोषवत् सशब्दवदित्यर्थः।

रूक्ष आहार करनेसे मनुष्यके कोष्ठमें वायु कुपित होता है तब कोष्ठके मलको रोक देता है और अग्निको मंद करदेता है ॥ १३५ ॥ स्रोतों (द्वारों) को रोककर तीव्र शूल पैदा करता हुआ दाहिनी या बांई कूखमें प्राप्त होजाता है ॥ १३६ ॥ तथा शीघ्रही सारे पेटमें शूल फैल जाता है और शब्दसा करता हुआ बढता है और तीव्र प्यास बढ जाती है, भ्रम और मूर्च्छा भी होजाती है ॥ १३७ ॥ दस्त आने या पेशाब आनेपर भी शांति नहीं होती इसे वैद्य परम दारुण विट्शूल जाने (यह कोठेमें मल बढ जानेपर रूक्षता होनेसे होता है) ॥ १३८ ॥

क्षिप्रं दोषहरं कार्यं भिषजा साधु जानता ॥ स्वेदनं वमनं चैव निरूहाः स्नेहवस्तयः १३९ ॥ पूर्वोद्दिष्टान्पाययेत योगान्कोष्ठविशोधनान् ॥ उदावर्तहराश्चास्य क्रियाः सर्वाः सुखावहाः ॥ १४० ॥

जानकार वैद्यको शीघ्रही दोषको हरनेवाली क्रिया करनी चाहिये, स्वेदन कराना, वमन कराना, निरूहणवस्ति और स्नेहनवस्ति करना योग्य है ॥ १३९ ॥ तथा पूर्वोक्त कोठशोधनके योग्य पान कराने चाहिये तथा उदावर्त हरनेवाली सब क्रियायें यहांपर सुख देनेवाली होती हैं ॥ १४० ॥

अतिमात्रं यदा भुक्तं पावके मृदुतां गते ॥ स्थिरीभूतं तु तत्कोष्ठे वायुरावृत्य तिष्ठति ॥ १४१ ॥ अविपाकगतं ह्यन्नं शूलं तीव्रं करोति च ॥ मूर्च्छाध्मानं विदाहं च हृदुत्क्लेशं विलंबिकाम् ॥ १४२ ॥ विरिच्यते छर्दयति कंपतेऽथ विमुह्यति ॥१४३ ॥

यदि जठराग्नि मन्द होनेपर अधिक भोजन करे तो वह कोष्ठमें (पेटमें) स्थिर होता है (ज्योंका त्यों धरा रहता है) और वायु उसे रोक लेता है ॥ १४१ ॥ इस प्रकार विना पचा अन्न तीव्र शूल पैदा करता है, मूर्च्छा, अफारा और दाह पैदा करता है, जी मिचलाता है (उबकाई आती हैं), विलंबिका होजाती है, वारवार दस्त आते हैं, वमन होते हैं, कंप होजाता है तथा मोह (बेहोशी या बुद्धिभ्रंश) होजाता है ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

**क्षाराश्चूर्णानि गुटिकाः शस्यंते शूलनाशनाः ॥
गुल्मावस्थाः क्रियाः कार्या यथावत्सर्वशूलिनाम् ॥१४४॥**

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२ ॥

यहां शूलनाशक क्षार, चूर्ण, गोली इत्यादिका उपयोग करना श्रेष्ठ है तथा सब प्रकारके शूलवालोंके लिये गुल्मनाशक क्रियायें करनी भी श्रेष्ठ हैं ॥ १४४ ॥

यूनानीवाले गुल्मको " अकद " कहते हैं और साधारण आदमी "गांठ" या "गोला" कहते हैं ॥

डाक्टरीमें गुल्मको "ट्यूमर" (Tumur) कहते हैं यूनानीवाले आमाशयके शूलको " बजेउलमेदा " कहते हैं और दहिनी तरफ यकृत्में या यकृत्के पास हो तो उसे " बनेउलकबद " कहते हैं और आमाशयके ऊपर हृदयके पास हो तो उसे "बजेउलफवाद" जिसे आम आदमी "दरददिल" कहते हैं और छातीमें दरद हो उसे " जातुलरिया" और पँसलियोंके दरदको " जातुलजंब " कहते हैं और मोटी अंतड़ीके दरदको " कुलंज " कहते हैं ॥

डाक्टरीमें मेदेके मुँहपर कौड़ीके नीचे बहुत दरद हो उसे "ग्यास ट्राइटस" कहते हैं और पसलीके दरद (पार्श्वशूल) को "प्लूरिया" कहते हैं अर्थात् पार्श्वशूलमें कुछ इसके लक्षण मिलते हैं और कुलंजके दरदको "कालक" कहते हैं ॥

(वक्तव्य) यूनानी या डाक्टरीमतसे इन व्याधियोंका विस्तारपूर्वक विवेचन उस मतके बडे २ ग्रंथ देखे विना नहीं आसकता क्योंकि रोगोंके कारणों, रूपों और भेदोंमें मतांतरसे बहुत अंतर होता है ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥४२॥

त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ४३.

अथातो हृद्रोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम हृद्रोगकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

हृद्रोगका हेतु और संप्राप्ति ।

वेगाघातोष्णरूक्षान्नैरतिमात्रोपसेवितैः ॥ विरुद्धाध्यशनाजीर्णैरसात्म्यैश्चापि भोजनैः ॥ १ ॥ दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः ॥ कुर्वंति हृदये बाधां हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ २ ॥ चतुर्विधः स दोषैश्च पंचमः कृमिभिस्तथा ॥ पृथग्लिंगं प्रवक्ष्यामि चिकित्सितमनंतरम् ॥ ३ ॥

वेगोंके रोकने (या चोट आदिके आघात) से तथा गरम और रूखे अन्नोंके अधिक सेवनसे, विरुद्ध भोजनसे, भोजनपर भोजन करनेसे, अजीर्ण रहनेसे, असात्म्य (जो माफकत न हो ऐसा) भोजन करनेसे ॥ १ ॥ वातादि दोष रसको दूषित करके विगुण होकर (रसमें मिलकर) हृदयमें पहुँचते हैं तब हृदयमें बाधा करते हैं इसे हृद्रोग कहते हैं ॥ २ ॥ यह हृद्रोग चार प्रकारका तो दोषोंसे (वातसे, पित्तसे, कफसे और सांनिपातसे) होता है और पांचवां

कृमियोंसे होता है इन सबके जुदे जुदे लक्षण कहते हैं और इसके पीछे उनकी चिकित्सा भी कहेंगे ॥ ३ ॥

हृद्रोगके लक्षण ।

आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा ॥ निर्मथ्यते दीर्यते च स्फोटयते पाट्यतेपि च ॥ ४ ॥ तृष्णोपदाहचोषाः स्युः पैत्तिके हृदये क्लमः ॥ धूमायनं च मूर्च्छा च स्वेदः शोषो मुखस्य च ॥५॥ गौरवं कफसंस्रावोऽरुचिः स्तंभोऽग्निमार्दवम् ॥ माधुर्यमपि चास्यस्य बलासावतते हृदि ॥ ६ ॥ उत्क्लेशः ष्ठीवनं तोदः शूलो हृल्लासकस्तमः ॥ अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिजे भवेत् ॥ ७ ॥

वायुका हृद्रोग हो तो हृदय खींचासा जावे, व्यथा हो, हृदय मथासा जावे, चीरासा जावे, फोडासा जावे और फाड़ासा जावे ॥ ४ ॥ पित्तका हृद्रोग हो तो तृषा हो, जलन और दाह हो तथा चोष (चूषनेके समान पीडा हो), हृदयमें ग्लानि हो तथा धुवाँसा उठता मालूम पडे, मूर्च्छा (बेहोशी होजावे), पसीना आवे और मुँह सूखे ॥ ५ ॥ कफके हृद्रोगमें भारीपन हो, मुँहसे कफ आवे, अरुचि हो हृदय और शरीर कडे पडजावें, अग्नि मन्द होजावे, मुँह मीठा रहे (और सन्निपातका हृद्रोग हो तो उसमें सब दोषोंके मिले जुले लक्षण हों) ॥ ॥ ६ ॥ और कृमिके हृद्रोगमें मुँहसे पानी (लार) बहे, थूँक ज्यादे आवे, दरद हो, शूल भी हो, जी मिचलावे, उबकाई आवें और अँधेरी आजावे, अरुचि हो, नेत्रोंमें कालापन मालूम पडे और शोष भी हो ॥ ७ ॥

(वक्तव्य) कई ग्रन्थांतरोंमें ऐसा लिखाहै कि सन्निपातका कृमिरोग होनेपर भी यदि मनुष्य गुडादिक कुपथ्यके वस्तु अति भोजन करे तो उसके हृदयमें कृमि उत्पन्न होजातेहैं परन्तु कभी कभी आमाशयके उपरिभागमें कृमि होनेसे भी कृमिका हृद्रोग कहाजाता है क्योंकि यह स्थान हृदयके अत्यन्त समीप है यदि हृदय (अर्थात् कलम यानी हार्ट या मीकाडियम गशा जो इसपर छाई हुई है इन) में कृमि पैदा होजावें तो प्रायः असाध्य होतेहैं पर यदि हृदयके निकट आमाशयके उपरिभागमें हो तो साध्य हो सकतेहैं ॥

भ्रमक्लमौ सादशोषौ ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः ॥
कृमिजे कृमिजातीनां श्लैष्मिकीनां च ये मताः ॥ ८ ॥

(श्लो० ७) यदुक्तं भावप्रकाशे–"त्रिदोषहेतुहृद्रोगे यो दुरात्मा निषेवते ॥ तिलक्षीरगुडादींश्च ग्रंथिस्तस्योपजायते ॥ १ ॥ मर्मैकदेशे सक्लेदं रसश्चाप्युपगच्छति ॥ संक्लेदात्कृमयश्चास्य पतत्युपहतात्मनः ॥ ॥ २ ॥" तस्य लक्षणानि उत्क्लेशादीनि ।

भ्रम, क्लम (ग्लानि), थकान (दिलकी कमजोरी) और शोष (राजयक्ष्मा) ये वातजादि हृद्रोगोंके उपद्रव हैं और कृमिजमें वे उपद्रव होतेहैं जो कफज कृमिरोगमें होतेहैं ॥ ८ ॥

वायुके हृद्रोगका यत्न ।

वातोपसृष्टे हृदये वामयेत्स्निग्धमातुरम् ॥ द्विपंचमूलक्वाथेन सस्नेहलवणेन तु ॥ ९ ॥ पिप्पल्येलावचाहिंगुयवभस्मानि सैंधवम् ॥ सौवर्चलमथो शुंठिमजमोदां च चूर्णितम् ॥ १० ॥ फलधान्याम्लकौलत्थदधिमद्यासवादिभिः ॥ पाययेत्तु विशुद्धं च स्नेहेनान्यतमेन वा ॥ ११ ॥ भोजयेज्जीर्णशाल्यन्नं जांगलैः सघृतै रसैः ॥ वातघ्नसिद्धं तैलं च दद्याद्बस्तिं प्रमाणतः ॥ १२ ॥

वातके हृद्रोगमें रोगीको स्नेहन कराके दशमूलके क्वाथमें स्नेह और लवण मिलाके इससे वमन करावे ॥ ९ ॥ तथा पीपल, इलायची, वच, हींग, जौकी भस्म, सैंधानमक, कालानमक, सोंठ और अजमोदा इनका चूर्ण बनाले ॥ १० ॥ इसे फलाम्ल या धान्याम्ल या कुलथीके क्वाथ या दही या मदिरा या आसव इनमेंसे किसी एकके संग खिलावे या किसी स्नेहके संग इसी चूर्णको खिलावे परंच पहले वमनादि देकर शोधन करलेवे ॥ ११ ॥ और जंगली जीवोंके घृतयुक्त रसके संग पुराने चावलोंको भोजन करावे और वायुनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये तैलकी प्रमाणसे वस्ति भी देनी उचित है ॥ १२ ॥

पित्तके हृद्रोगका यत्न ।

श्रीपर्णीमधुकक्षौद्रसितोत्पलजलैर्वमेत् ॥ पित्तोपसृष्टे हृदये सेवेत मधुरैः शृतम् ॥ १३ ॥ घृतं कषायांश्चोद्दिष्टान्पित्तज्वरविनाशनान् ॥ तृप्तस्य च रसैर्मुख्यैर्जांगलैः सघृतैर्भिषक् ॥ सक्षौद्रं वितरेद्बस्तिं तैलं मधुकसाधितम् ॥ १४ ॥

पित्तके हृद्रोगमें खँभारी, मुलेठी, शहद, मिश्री, कमल इनके क्वाथसे वमन करावे और मधुर द्रव्यों काकोल्यादिसे सिद्ध किया घृत सेवन करे ॥ १३ ॥ तथा पित्तज्वरके नाश करनेवाले पूर्वोद्दिष्ट क्वाथ पीवे तथा जंगली जीवोंके घृतयुक्त मुख्य मांसरसोंसे तृप्त कियेहुए रोगीके वैद्य मुलेठीसे सिद्धकिये तैलमें शहद मिलाकर वस्तिकर्म करे ॥ १४ ॥

कफके हृद्रोगका यत्न ।

वचानिंबकषायाभ्यां वांतं हृदि कफात्मके ॥ चूर्णं तु पाययेत्तोक्तं वातजे भोजयेच्च तम् ॥ १५ ॥ फलादिमथ मुस्तादिं त्रिफलां वा पिबेन्नरः ॥ श्यामात्रिवृत्कल्कयुतं घृतं वापि विरेचनम् ॥ १६ ॥ बलातैलैर्विदध्याच्च वस्तिं वस्तिविशारदः ॥ १७ ॥

कफके हृद्रोगमें वच और नींबके क्काथसे वमन करावे और वातज हृद्रोगमें कहा हुआ चूर्ण भी उन्हीं अनुपानोंसे पिलावे और यथायोग्य भोजन करावे ॥ १५ ॥ अथवा मदनफलादिक या मुस्तादिगण या त्रिफलाका क्काथ पिलावे तथा श्यामा निशोथ और सुपेद निशोथके कल्कसे युक्त घृत पिलाकर विरेचन देवे ॥ १६ ॥ तथा वस्तिक्रियामें चतुर वैद्य बलातैलकी वस्ति देवे ॥ १७ ॥

कृमिहृद्रोगिणं स्निग्धं भोजयेत्पिशितौदनम् ॥ दध्ना वा पललोपेतं त्र्यहं पश्चाद्विरेचयेत् ॥ १८ ॥ सुगंधिभिः सलवणैर्योगैः साजाजिशर्करैः ॥ विडंगगाढैर्धान्याम्लं पाययेताप्यनंतरम् ॥१९॥ हृदयस्थाः पतंत्येवमधस्तात्कृमयो नृणाम् ॥ यवान्नं वितरेच्चास्यै सविडंगमतः परम् ॥ २० ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

कृमिके हृद्रोगवाले रोगीको स्निग्ध मांस और भात या दहीके साथ तिलकी पिट्ठीसे तीन दिन तक भोजन करावे फिर विरेचन देवे ॥ १८ ॥ सुगंधियुक्त नमकीन या जीरा और खांडके योगसे जिनमें वायविडंग मिली हों ऐसे विरेचन देवे और फिर ऊपरसे धान्याम्ल पिलावे (और कई "विडंगगाढं" पाठांतर मानकर ऐसा अर्थ करते हैं कि धान्याम्लमें विडंग मिलाकर ऊपरसे पिलावे) ॥१९॥ इससे हृदयस्थ कृमि मनुष्योंके नीचेको दस्तके राहसे निकल जातेहैं इसके पीछे विडंगयुक्त यवका भोजन करावे ॥ २० ॥

(वक्तव्य) हृदयस्थ उन्हीं कृमियोंका यह यत्न है जो आमाशयके ऊर्द्धभागमें हृदयके समीप चिमटेहुए होतेहैं और येही दस्तके राहसे निकल सकतेहैं इन बातोंको वेही वैद्य समझ सकतेहैं जो शारीरकका तत्त्व भली भांति जानतेहैं कि हृत्कमल (अर्थात् दिल यानी हार्ट) में कदाचित् जखम होकर कृमि पैदा हो भी जावें तो वे दस्तके राहसे नहीं निकल सकते, हां शायद श्वासनलका (ट्राकिया) के

मार्गद्वारा मुखसे कोई एक दो निकलकर दिखाई देसकताहै श्रीभगवान् धन्वंतरिजीने आमाशयगत हृदयके समीपके कृमियोंकाही यह पूर्वोक्त यत्न लिखा है ॥

यूनानीवाले हृद्रोगको "अमराजकलब" याने दिलकी बीमारियां कहतेहैं और डाक्टरीमें "हार्टडजीज" (Heart Disease) कहते हैं

इति प०मुरलीधरवि०सुश्रुतसं०भा०टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ४४.

अथातः पांडुरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम पांडुरोगकी चिकित्साका व्याख्यान करतेहैं ।

पांडुरोगके कारण और संप्राप्ति ।

व्यवायमम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमतीवतीक्षणम् ॥
निषेवमाणस्य विदूष्य रक्तं कुर्वंति दोषास्त्वचि पांडुभावम् ॥१॥

अति मैथुन करनेसे, खट्टा, नमकीन पदार्थ विशेष खानेसे, मिट्टी खानेसे, अत्यन्त मद्य पीनेसे, दिनके विशेष सोनेसे, अति तीक्ष्ण पदार्थ या औषधादि सेवन करनेसे कुपितहुए दोष, रुधिरको दूषित करके त्वचा आदिमें पीलापन पैदा करते हैं ॥ १ ॥

पांडुके भेद और निरुक्ति ।

पांड्वामयोष्टार्द्धविधः प्रदिष्टः पृथक्समस्तैर्युगपच्च दोषैः ॥
सर्वेषु चैतेष्विह पांडुभावो यतोधिकोऽतः खलु पांडुरोगः ॥ २ ॥

यह पांडुरोग अष्टार्द्ध अर्थात् चार प्रकारका है, सब दोषोंसे पृथक् २ (जैसे वायुका, पित्तका, कफका) और चौथा सन्निपातका इन सब प्रकारके पांडुओंमें प्रायः सब अवयवोंमें पीलापन अधिक होता है इसीसे इसे पांडु (पीलिया) रोग कहते हैं ॥ २ ॥

(वक्तव्य) कई आचार्य इस पांडुका पांचवां भेद मृद्भक्षणजनित और मानतेहैं परंतु वह केवल कारणभेद है जातिभेद नहीं होसकता इसीसे भगवान् धन्वंतरिजीने उसे जुदा नहीं लिखा ॥

पांडुका पूर्वरूप ।

त्वक्स्फोटनं ष्ठीवनगात्रसादौ मृद्भक्षणं प्रेक्षणकूटशोथः ॥
विण्मूत्रपीतत्वमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ ३ ॥

(श्लो० २) अष्टार्द्धविधः चतुर्विधः । (श्लो० ३) प्रेक्षणकूटशोथ इति—नेत्राधोभागस्थकूटे शोथ इत्यर्थः ।

त्वचामें फूटनसी होना, मुँहमें थूँक अधिक आना, अंगोंमें शिथिलता होना, मिट्टी खानेकीसी इच्छा होना और नेत्रोंके नीचले डोले सूजेसे मालूम होना, मल और मूत्रमें पीलापन होना, भोजन न पचना ये लक्षण पांडुरोगके पहले पूर्वरूपमें होते हैं ॥ ३ ॥

पांडुके और भेद कामला आदि।

सकामलापालकिपांडुरोगः कुंभाह्वयो लाघरकोऽलसाख्यः ॥
विभाष्यते लक्षणमस्य कृत्स्नं निबोध वक्ष्याम्यनुपूर्वशस्तत् ॥४॥

इस पांडुरोगके अवस्थाके अनुसार और भी कई भेद हैं जैसे कामला, पालकि या पानकी, कुंभिका लाघर और अलस इन सबके लक्षण अगाडी क्रमसे श्रवण करो हम कहते हैं ॥ ४ ॥

पांडुके लक्षण।

कृष्णेक्षणं कृष्णशिरावनद्धं तद्वर्णविण्मूत्रनखाननं च ॥
वातेन पांडुं मनुजं व्यवस्येद्युक्तं तथान्यैस्तदुपद्रवैश्च ॥ ५ ॥
पीतेक्षणं पीतशिरावनद्धं तद्वर्णविण्मूत्रनखाननं च ॥
पित्तेन पांडुं मनुजं व्यवस्येद्युक्तं तथान्यैस्तदुपद्रवैश्च ॥ ६ ॥
शुक्लेक्षणं शुक्लशिरावनद्धं तद्वर्णविण्मूत्रनखाननं च ॥
कफेन पांडुं मनुजं व्यवस्येद्युक्तं तथाऽन्यैस्तदुपद्रवैश्च ॥ ७ ॥
सर्वात्मके सर्वमिदं व्यवस्येद्वक्ष्यामि लिंगान्यथ कामलायाः॥८ ॥

वायुके पांडुमें नेत्र काले (पिलाईमें कालापन लिये) हों, नीली २ नसें चमकें और वैसेही कालापन लिये पीले दस्त, मूत्र, नख और मुख हो तथा और भी वायुके उपद्रव उसमें होवें ॥ ५ ॥ पित्तके पांडुमें नेत्र पीले हों और ऐसेही पीले मल, मूत्र नख और मुख हों तथा पीली पीली नसें चमकें और अन्य भी पित्तके उपद्रव हों ॥ ६ ॥ कफके पांडुमें नेत्र सुपेदी लिये पीले हों तथा ऐसे मल, मूत्र, नख और मुख हों तथा सुपेद नसें चमकें और अन्य भी कफके उपद्रव हों ॥७॥ तथा सन्निपातके पांडुमें ये सब लक्षण मिलेहुए मालूम पडें इसके अगाडी हम कामला आदिके लक्षण कहते हैं ॥ ८ ॥

यो ह्यामयांते सहसान्नमम्लमद्यादपथ्यानि च तस्य पित्तम् ॥
करोति पांडुं वदनं विशेषात्तंद्राबलत्वं प्रथमोदितांश्च ॥ ९ ॥
भेदस्तु तस्याः खलु कुंभसाह्वः शोको महांस्तत्र च पर्वभेदः॥

ज्वरांगमर्दभ्रमसादतंद्राक्षयान्वितो लाघरको ऽलसाख्यः ॥
तं वातपित्ताभिपरीतलिंगं हलीमकं नाम वदंति तज्ज्ञाः ॥१०॥

जो पांडु (या अन्य रोग) के अंतमें शीघ्रही अम्ल अन्न (खटाई) खावे अथवा अन्य ऐसे कुपथ्य करे जिससे पित्त अति दूषित होकर विशेष पांडु वर्ण मुखको (तथा शरीरको) कर देता है तथा तंद्रा और निर्बलता तथा पूर्वोक्त लक्षण करता है इसे कामला कहते हैं ॥ ९ ॥ इस कामलाहीका भेद कुंभिका है इसमें शोथ विशेष होता है और जोडोंमें दरद होता है और जिसमें ज्वर, अंग टटना, भ्रम, थकान, तंद्रा और क्षीणता हों उसे लाघरक अलसाख्य कहते हैं और इसमें यदि वात, पित्तके चिह्न पायेजावें तो इसे वैद्य हलीमक कहते हैं ॥ १० ॥

(वक्तव्य) पानकी या पालकिके लक्षण ग्रंथांतरसे लिखते हैं-

श्लोक-संतापो भिन्नवर्चस्त्वं बहिरंतश्च पीडता ॥
पांडुता नेत्ररोगाश्च पानकीलक्षणं वदेत् ॥ १ ॥

अर्थ-संताप हो, मल फटा हो, अंदर और बाहर वेदना हो, पीलापन हो, नेत्रोंमें विकृति हो ये पानकीके लक्षण हैं ॥ १ ॥

पांडुरोगके उपद्रव ।

उपद्रवास्तेष्वरुचिः पिपासा छर्दिर्ज्वरो मूर्धरुजाग्निसादः ॥
शोफस्तथा कंठगतोबलत्वं मूर्च्छाऽक्लमो हृद्यवपीडनं च ॥ ११ ॥

पांडु कामला आदिमें ये उपद्रव होते हैं-अरुचि, तृषा, वमन, ज्वर, शिरका दरद, अग्निकी मंदता तथा कंठमें शोथ, निर्बलता, मूर्च्छा, क्लम और हृदयमें पीडा ॥ ११ ॥

साध्यं तु पांड्वामयिनं समीक्ष्य स्निग्धं घृतेनोर्द्ध्वमधश्च शुद्धम् ॥ संपादयेत्क्षौद्रघृतप्रगाढैर्हरीतकीचूर्णयुतप्रयोगैः ॥ १२ ॥ पिबेद्घृतं वा रजनीविपक्वं यत्त्रैफलं तैल्वकमेव वापि ॥ विरेचनद्रव्यकृतं पिबेद्वि योगांश्च वैरेचनिकान्घृतेन ॥ १३ ॥ मूत्रे निकुंभार्द्धपलं विपाच्य पिबेदभीक्ष्णं कुडवार्द्धमात्रम् ॥ खादेद्गुडं वाप्यभयाविमिश्रमारग्वधादिक्वथितं पिबेद्वा ॥ १४ ॥

साध्य पांडुरोगवालेको देखकर (अर्थात् अगाडी जो असाध्यके लक्षण कहे हैं जिसमें वे न हों) रोगीको घृतसे स्निग्ध करके ऊपर नीचेसे शुद्ध करके शहद

और घृतमें मिलाके हरीतकीके चूर्ण सहित प्रयोग करे ॥ १२ ॥ अथवा हलदीसे पके घृतको पीवे या त्रिफलाघृत अथवा तिल्वक (लोध) से सिद्ध किये घृतको पान करे अथवा विरेचनद्रव्यों (त्रिवृता आदि)से सिद्ध किये घृतको पीवे तथा विरेचनके योगोंको घृतके संग पीवे ॥ १३ ॥ अथवा निकुंभ (दंती) आधे पल लेकर सोलहगुने मूत्र (गोमूत्र) में पकाकर इसमेंसे २ पल पीवे अथवा हरडेकी छालको गुड़में मिलाकर खावे अथवा आरग्वधादि गणका क्वाथ पीवे ॥ १४ ॥

अयोरजो व्योषविडंगचूर्णं लिह्याद्धरिद्रां त्रिफलान्वितां वा ॥ सर्पिर्मधुभ्यां विदधीत वापि शास्त्रप्रदर्शाभिहितांश्च योगान्॥१५॥ हरेच्च दोषान्बहुशोल्पमात्राञ्छ्वयेद्धि दोषेष्वतिनिर्हृतेषु ॥ धात्रीफलानां रसमिक्षुजं च मंथं पिबेत्क्षौद्रयुतं हिताशी ॥ १६ ॥ उभे बृहत्यौ रजनीं शुकाख्यां शुकादनीं चापि सकाकमाचीम् ॥ आदारिबिंबीं सकदंबपुष्पीं विपाच्य सर्पिर्विपचेत्कषाये ॥ १७ ॥ तत्पांडुतां हंत्युपयुज्यमानं क्षीरेण वा मागधिकां यथाग्नि ॥ हितं च यष्टीमधुकं कषायं चूर्णं समं वा मधुनाऽवलिह्यात् ॥ १८ ॥

लोहका चूर्ण (शोधित मारित लोहभस्म), त्रिकटु, विडंग इनके चूर्णको शहद और घृतके संग चाटे अथवा हलदी, त्रिफला इन्हें शहद और घृतसे चाटे तथा अन्यशास्त्रोक्त प्रयोग करे (यद्यपि लोहचूर्ण इसमें महर्षिजीने शोधित मारित कुछ नहीं लिखा केवल ऐसाका ऐसा लोहचूर्ण उपयोग करना प्रतीत होता है परंतु इस समय विना शोधन मारण किये ठीक नहीं) ॥ १५ ॥ पांडु रोगवालेके दोषोंको थोडा थोडा करके कई वार निकाले क्योंकि ज्यादे एक वार निकालनेसे शोथ होजाता है और हित भोजन करनेवाला रोगी आंवलोंका रस या ईखका रस या मंथ इनमेंसे एकको शहद मिलाके पीवे ॥ १६ ॥ अथवा दोनों कटेली, हलदी, शुकाख्य (चर्मकारवट), शुकादनी (शुकासेंबी कई अनारकी कली कहते हैं) तथा मकोय, आदारिबिंबी (आंउली) और कदम्बपुष्पी इनको पकाकर इनके क्राथमें घृत पकावे ॥ १७ ॥ ॥ यह घृत उपयोग करनेसे पांडुताको नाश करता है अथवा अग्निबलके अनुसार पीपलोंको दूधके साथ खावे अथवा मुलेठीके क्राथको शहद मिलाकर पीवे या मुलेठीके चूर्णको शहद समान भागमें मिलाके चाटे ॥ १८ ॥

(श्लो० १७) आदारिबिंबी बिंबफलानुकारिविटपा लोहितफला च (इति डल्हनः) कार्तिककुंडस्तु आँउलीरिति प्रसिद्धा इति व्याख्यानयति ।

गोमूत्रयुक्तं त्रिफलादलानां दद्यादयसं चूर्णमनल्पकालम् ॥ प्रवाल-
मुक्तांजनशंखचूर्णं लिह्यात्तथा कांचनगैरिकोत्थम् ॥ १९ ॥ आजं
शकृद्वा कुडवप्रमाणं विडं हरिद्रा लवणोत्तमं च ॥ पृथक्पलां-
शानि समग्रमेतच्चूर्णं हिताशी मधुनाऽवलिह्यात् ॥ २० ॥ मंडूर-
लोहाग्निविडंगपथ्याव्योषांशकाः सर्वसमानताप्यैः ॥ मूत्रायुतोऽयं
मधुनावलेहः पांड्वामयं हंत्यचिरेण घोरम् ॥ २१ ॥ विभीतकायो-
मलनागराणां चूर्णं तिलानां च गुडश्च मुख्यः ॥ तक्रानुपानो
वटकः प्रयुक्तः क्षिणोति घोरानपि पांडुरोगान् ॥ २२ ॥

त्रिफलाके पत्ते, गोमूत्र इनमें लोहचूर्ण (सार) मिलाकर बहुत दिन सेवन करे अथवा मूंगा, मोती, सुरमा और शंख इनको गोमूत्रके संग (या शहदके संग) चाटे अथवा सोना गेरूको चाटे ॥ १९ ॥ अथवा बकरीकी मेंगनी एक कुडव, विडनोन, हलदी, सैंधानमक ये सब एक एक पल लेकर सबका चूर्ण बनाले और शहद मिलाके चाटे और हित भोजन करे ॥ २० ॥ मंडूर (किट्ट) और लोह इनका चूर्ण (भस्म), चित्रक, विडंग, हरडे, त्रिकटु इन सबको समान भाग ले और समान भाग सोनामक्खी (शुद्ध) मिलावे फिर इसमें गोमूत्र मिलाके शहदके संग चाटे यह शीघ्र घोर पांडुरोगको नष्ट करदेता है ॥ २१ ॥ अथवा बहेडा, लोह, किट्ट, सोंठ और तिल इनका चूर्ण गुडमें मिलाके गोली बनाले और छांछके साथ खिलावे यह भी घोर पांडुरोगको नष्ट करदेता है॥२२॥

सौवर्चलं हिंगु किराततिक्तं कलायमात्राणि सुखांबुना वा ॥
मूर्वाहरिद्रामलकं च लिह्यात्स्थितं गवां सप्तदिनानि मूत्रे ॥२३॥
मूलं बलाचित्रकयोः पिबेद्वा पांड्वामयार्तोऽक्षसमं हिताशी ॥ सुखां-
बुना वा लवणेन तुल्यं शिग्रोः फलं क्षीरभुजोपयोज्यम् ॥२४॥

(श्लो० १९) प्रवालो विद्रुमः । मुक्ता मौक्तिकम् । अंजन सौवीराजनम् । अन्ये रसांजनमाहुः शंखः समुद्रभवः । तेषा चूर्णं विधिना कार्यम् । (श्लो० २३). सौवर्चलादीनामेकत्वेन निर्दिष्टानां बहुवचनातस्त्वमभिप्रेत अतः कलायमात्राणि इति विशेषणं, तत् सौवर्चलादीना प्रत्येकं कलायमात्रमिति बोधनार्थम् (इति डल्हनः) अन्ये तु त्रयाणा मिलित्वा कलायमात्रं प्रमाणं मन्यते । पांडोः पित्तस्य प्रधानत्वात् केचित् योगमेनं कफपाडुपरमिति मन्यते (श्लो० २४) लवणेन सैधवेन तुल्यं शिग्रुफलं कफजे कलायमात्रमित्यनुवर्तनीयम् (इति नि० स०)

न्यग्रोधवर्गस्य पिबेत्कषायं शीतं सिताक्षौद्रयुतं हिताशी॥ शाला-दिकं चाप्यथ सारचूर्णं धात्रीफलं वा मधुनावलिह्यात् ॥ २५ ॥

कालानमक, हींग और चिरायता इनको ले मटरके तुल्य गोली बनाकर निवाये जलके संग खावे अथवा मूर्वा, हलदी और आंवले इन्हें सात दिन गोमूत्रमें भिगोकर चाटे ॥ २३ ॥ अथवा खरेंटी और चित्रककी जडको पांडुरोगी निरंतर कर्षभर पीवे और पथ्यसे रहे अथवा सोहॅजनेके फल और नमक समान भाग ले मटरके समान गोली बनावे और इन्हें निवाये पानीसे उपयोग करे और दूध भोजन करे ॥ २४ ॥ अथवा न्यग्रोधादि गणका शीतल कषाय मिश्री और शहद मिलाकर पीवे और हितकारक भोजन करता रहे अथवा शालसारादिके चूर्णको या आंवलोंके चूर्णको शहदके संग चाटे ॥ २५ ॥

विडंगमुस्तत्रिफलाजमोदपरूषकव्योषविनिर्दहन्यः ॥ चूर्णीकृता वा गुडशर्करे च तथैव सर्पिर्मधुनी शुभे च ॥ २६ ॥ संभारमेतं द्विपचेन्निधाय सारोदके सारवतो गणस्य ॥ जातं च लेह्यं मतिमान्विदित्वा निधापयेन्मोक्षकजे समुद्गे ॥ २७ ॥ हन्त्येष लेहः खलु पांडुरोगं सशोथमुग्रामपि कामलां च ॥ २८ ॥

चूर्ण किये हुए विडंग, नागरमोथा, त्रिफला, अजमोदा, फालसे, त्रिकुटु, चित्रक इन सबके समभागोंको तथा गुड, खांड, घृत और शहद इन सबको शालसारादिक गणके क्काथमें डालकर पकाता रहे जब पककर अवलेहसा होजावे तव इसे मोक्षक (मोखा) वृक्षकी लकडीके डब्बेमें भर देवे ॥ २६ ॥ २७ ॥ यह अवलेह निश्चय शोथयुक्त पांडुरोगको नष्ट करता है तथा बढी हुई कामलाको भी नष्ट करदेता है ॥ २८ ॥

कामलाका यत्न ।

सशर्करा कामलिनां त्रिभंडी हिता गवाक्षी सगुडा च शुंठी ॥ कालेयके चापि घृतं विपक्कं हितं च तत्स्याद्रजनीविमिश्रम्॥२९॥

कामला रोगवालेको निशोथमें मिश्री मिलाकर उपयोग करना हित है तथा इन्द्रायन और सोंठको गुड मिलाके खाना भी हित है तथा कालीयक (पीतचन्दन दारुहलदीके भेद) से घृत पकावे उसमें (पकते समय) हलदी मिलावे यह भी हित है ॥ २९ ॥

(श्लो० २५) शालादिक सारचूर्ण शालसारादिचूर्णम् ।

(श्लो० २७) सारवतो गणस्य सारोदके शालसारादिगणसारक्काथे (इति नि० स०)

कुंभिकाका यत्न।

धातुं नदीजं जतु शैलजं वा कुंभाह्वये मूत्रयुतं पिबेद्वा ॥
मूत्रस्थितं सैंधवसंप्रयुक्तं मासं पिबेद्वापि हि लोहकिट्टम् ॥३०॥
दग्ध्वाक्षकाष्ठैर्मलमायसं वा गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान् ॥
विचूर्ण्य लीढं मधुनाचिरेण कुंभाह्वयं पांडुगदं निहन्यात् ॥ ३१॥

नदीज धातु (सोनामाक्षिक) या शिलाजीतको गोमूत्रके साथ पीना कुंभिकाको नष्ट करता है अथवा लोहके किट्टको सैंधानमक मिलाकर गोमूत्रमें भिगोवे और एक महीने तक पीवे (कोई ऐसाभी अर्थ करते हैं कि गोमूत्र और सैंधवमें लोहका किट्ट एक महीनेतक भिगोया रक्खे फिर पीवे) ॥३०॥ अथवा लोहके मैल (मंडूर) को बहेडेकी लकडीकी अग्निमें लाल कर करके आठवार गोमूत्रमें बुझावे फिर इसे पीसकर शहद मिलाकर चाटे यह शीघ्रही कुंभिका नामक पांडुको नष्ट करे ३१

सिंधूद्भवं वाग्निसमं च कृत्वा सिक्त्वा च मूत्रे सकृदेव तप्तम् ॥
लौहं च किट्टं बहुशश्च तप्त्वा निर्वाप्य मूत्रे बहुशस्तथैव ॥ ३२॥
एकीकृतं गोजलपिष्टमेतदेकध्यमावाप्य पचेदुखायाम् ॥
यथा न दह्येत तथा विशुष्कं चूर्णीकृतं पेयमुदश्विता तत् ॥
तक्रौदनाशी विजयेत रोगं पांडुं तथा दीपयतेऽनलं च ॥ ३३ ॥

सैंधव नमकको अग्निमें लाल करके उसे एकवार ही गोमूत्रमें बुझा लेवे और लोहके किट्ट (अर्थात् मंडूर) को अनेकवार अग्निमें लाल कर करके वारवार गोमूत्रमें बुझावे ॥ ३२ ॥ फिर इन दोनोंको मिलाकर गोमूत्रमें पीस लेवे फिर उन्हें गोमूत्रयुक्त ही हांडीमें डालकर इतना पकावे कि वह जल नहीं जावे किंतु सूख जावे फिर उसका चूर्ण बना लेवे और उदश्वित् (आधे जल मिली छाँछ) के संग पीवे और इसके पचजानेपर छाँछके संग भात खावे यह प्रयोग पांडुरोगको नष्ट करदेताहै तथा जठराग्निको दीपन करताहै ॥ ३३ ॥

लाघरकका यत्न।

द्राक्षागुडूच्यामलकीरसैश्च सिद्धं घृतं लाघरके हितं च ॥
गौडानरिष्टान्मधुशर्कराश्च मूत्रासवान्क्षारकृतांस्तथैव ॥ ३४ ॥

(श्लो० ३०) शैलजं जतु शिलाजतु। (श्लो० ३२। ३३) उखायां स्थाल्यां निक्षिप्य मुखं पिधाय पचेत् (इति नि० स०) (श्लो० ३४) गौडान् अभयारिष्टादीन्। मधुशर्कराश्चेति—मधुशब्देन मध्वासवः सच लोहारिष्टप्रभृतिकः। शर्कराशब्देन शर्करासवः मूत्रासवान्कुष्ठचिकित्सोक्तान् क्षारकृतान् आसवान् श्लीपदपाठितान्। (इति डल्हनः)

मुनक्का, गिलोय और आँवले इनके रसमें सिद्ध किया घृत लावरक संज्ञक पांडुमें हित है तथा गुडके अरिष्ट, मधुके अरिष्ट (लोहारिष्ट) तथा शर्कराके अरिष्ट और मूत्रासव तथा क्षारारिष्ट ये सब हितकारक हैं ॥ ३४ ॥

(वक्तव्य) मूत्रासव कुष्ठचिकित्साप्रोक्त और क्षारासव श्लीपदोक्त बनाना तथा गौडअरिष्टसे अभयारिष्टादि लेने और मध्वासवसे लोहारिष्टप्रभृति लेना ॥

पांडुपर पथ्य।

स्निग्धान्रसानामलकैरुपेतान्कोलान्वितान्वापि हि जांगला-नाम् ॥ सेवेत शोफाभिहितांश्च योगान्पांडामयी शालियवांश्च नित्यम् ॥ ३५ ॥

स्निग्ध जंगली जीवोंके मांसरसमें आँवले मिलाकर या बेर मिलाकर सेवन करे (भोजन करे) तथा शोथ रोगके पथ्यमें जो योग लिखे हैं उन्हें सेवन करे अथवा नित्य चावल या जौके भोजन करे ॥ ३५ ॥

पांडुकी साध्यता।

श्वासातिसारारुचिकासमूर्च्छातृट्छर्दिशूलज्वरशोफदाहान् ॥ तथाविपाकस्वरभेदसादाञ्जयेद्यथास्वं प्रसमीक्ष्य शास्त्रम् ॥ ३६ ॥

यदि पांडुरोगके उपद्रव श्वास, अतिसार, अरुचि, खाँसी, मूर्च्छा, तृषा, छर्दि, शूल, ज्वर, शोथ, दाह तथा भोजन नहीं पचना, स्वरभेद (आवाज बैठ जाना) और थकान (कम जोरी शिथिलता) ये हों (इनमेंसे जो हों) उन्हें शास्त्रको देखकर (इनकी चिकित्सा देखकर जो पांडुसे विरुद्ध हो) ऐसी रीतिसे इनको शांत करे ॥ ३६ ॥

पांडुकी असाध्यता।

अंतेषु शूनं परिहीनमध्यं म्लानं तथा तेषु च मध्यशूनम् ॥ गुदेऽथ शेफस्यथ मुष्कयोश्च शूनं प्रताम्यंतमसंज्ञकल्पम् ॥ विवर्जयेत्पांडुकिनं यशोर्थी तथाऽतिसारज्वरपीडितं च ॥ ३७ ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

जिसके हाथ, पांव, मुख सूजे हों और मध्यभाग (धड) पतला पडगया हो अथवा हाथ, पांव, मुख पतले पडगये हों और धड सूजगया हो तथा गुदा, लिंग और अंडकोश सूजे हों, जिसे अँधेरी आती हो, जिसका ज्ञान कम पडगया हो

तथा जो अतिसार और ज्वरसे पीडित हो ऐसा पांडुरोगी असाध्य होताहै यश चाहनेवाला वैद्य ऐसे रोगीको त्याग देवे ॥ ३७ ॥

यूनानी हकीम पांडुको "यरकान" कहते हैं उनके मतसे पांडु (पीलिया) जिगर और पित्तके फितूरसे होताहै और हलीमक (कालापन लिये पीलिया) प्रायः तिल्लीके फितूरसे होता है ऐसा मानते हैं ॥

डाक्टरीमें इस पांडुरोगको जोंडिस (Jaundice) कहते हैं ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ४४॥

पंचचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ४५.

अथातो रक्तपित्तप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम रक्तपित्तकी चिकित्साका व्याख्यान करतेहैं ।

क्रोधशोकभयायासविरुद्धान्नातपानलान् ॥ कट्वम्ललवणक्षारतीक्ष्णोष्णातिविदाहिनः ॥ १ ॥ नित्यमभ्यसतो दुष्टो रसः पित्तं च कोपयेत् ॥ विदग्धं स्वगुणैः पित्तं विदहत्याशु शोणितम् ॥ २ ॥ ततः प्रवर्तते रक्तमूर्द्ध्वं चाधो द्विधाऽपि वा ॥ आमाशयाद्व्रजेदूर्द्ध्वमधः पक्वाशयाद्व्रजेत् ॥ ३ ॥ विदग्धयोर्द्वयोश्चापि द्विधा भागं प्रवर्तते ॥ केचित्सयकृतः प्लीह्नः प्रवदन्त्यसृजो गतिम् ॥ ४ ॥

क्रोध, शोक, भय, परिश्रम, विरुद्ध अन्न, धूप, अग्नि, कटु (चरपरे), खट्टे, लवणके रस तथा क्षार (यवक्षारादि या तेजाब जैसे गन्धकका तेजाब, शोरेका तेजाब आदि) तथा तीक्ष्ण पदार्थ और गरम पदार्थ तथा विदाही अर्थात् दाहजनक पदार्थ ॥ १ ॥ इनका नित्य (या अत्यन्त) सेवन करनेसे रस दुष्ट होकर पित्तको कुपित करता है और अपने हेतुओंसे विदग्ध हुआ पित्त फिर शीघ्रही शोणित (रुधिर) को दग्ध करता है (दूषित करताहै) ॥ २ ॥ वह दूषित या मूर्च्छित हुआ रक्त ऊपरको (मुखनासिकादिसे) या नीचेको (गुदालिंगादिसे) या दोनों तरफ प्रवृत्त होता है, आमाशयमें प्राप्त हो तो ऊपरको आता है और पक्वाशयमें हो तो नीचेको जाताहै ॥ ३ ॥ और जो दोनों स्थानोंमें दूषित होता-

---

(श्लो० ३) ततः प्रवर्तते रक्तमिति—रक्तमित्युपलक्षणम् । तेन संसृष्टं पित्तं च । अतएव रक्तं च पित्तं च रक्तपित्तमिति द्वंद्वः । अथवा रक्तं च तत्पित्तं चेति रक्तपित्तं रागप्राप्तं पित्तमित्युच्यते (इति भा० मि०) वृद्धवाग्भटेऽपि—"कुपितं पित्तलैः पित्तं द्रवं रक्तं च मूर्च्छिते ॥ ते मिथस्तुल्यरूपत्वमागम्य व्याप्नुतस्तनुम् ॥ १ ॥ पित्तं रक्तस्य विकृतेः संसर्गाद्दूषणादपि ॥ गंधवर्णानुवृत्तेश्च रक्तेन व्यपदिश्यते ॥ २॥"

है तो दोनों तरफ निकलताहै। कोई ऐसा कहतेहैं कि यकृत् और प्लीहासे रुधिर प्रवृत्त होता है ॥ ४ ॥

(वक्तव्य) जब अपने हेतुओंसे रस और पित्त दूषित होकर रुधिरको दूषित करते हैं तब वह दूषित रुधिर रुधिरवाहिनी शिराओंमें गमन करके विरुद्धमार्ग हो यकृतस्थानसे आमाशय या पक्वाशयकी तरफ प्रवृत्त होताहै और इस दूषित रक्तमें पित्तभी मिलकर रक्तवर्ण हो जाता है। कोई ऐसा भी कहते हैं कि पित्तही रक्त हो जाता है (देखो टिप्पणी)

और कई ग्रन्थांतरोंमें ऊर्द्ध्व अधोगमन पर इसप्रकार लिखते हैं कि-"ऊर्द्ध्वगं कफसंसृष्टमधोगं मारुतानुगम् ॥ द्विमार्गं कफवाताभ्यामुभाभ्यां तत्प्रवर्तते ॥ १ ॥" अर्थात् कफसे संसृष्ट रक्त पित्त होताहै और वह आमाशयमें प्राप्त होकर ऊर्द्ध्वगामी होताहै और वायुसे अनुगत हुआ पक्वाशयमें प्राप्त होकर अधोगामी होताहै तथा कफ वायु दोनोंसे संसृष्ट दोनों मार्गोंसे प्रवृत्त होताहै ॥

ऊर्द्ध्वं साध्यमधो याप्यमसाध्यं युगपद्गतम् ॥ ५ ॥

ऊर्द्ध्वगामी मुखनासिकादिकी तरफ प्रवृत्त होनेवाला रक्तपित्त साध्य होता है और अधोगामी गुदालिंगकी तरफ प्रवृत्त होनेवाला याप्य होताहै और दोनों तरफका असाध्य होताहै ॥ ५ ॥

रक्तपित्तका पूर्वरूप।

सदनं शीतकामित्वं कंठधूमायनं वमिः ॥
लोहगंधिश्च निःश्वासो भवत्यस्मिन्भविष्यति ॥ ६ ॥

शरीरमें शिथिलता हो, शीत पदार्थोंको जी चाहे, कंठमें धुवांसा घुटे, वमन हो, श्वासमें लोहेकेसी गंध आवे ये लक्षण रक्तपित्तके पूर्वरूपमें होते हैं ॥ ६ ॥

रक्तपित्तकी संख्या।

बाह्यासृग्लक्षणैस्तस्य संख्यादोषोच्छ्रितीर्विदुः ॥ ७ ॥

इस रक्तपित्तका संख्याभेद और दोषोंकी प्रधानता शोणितवर्णनीय अध्यायमें कहे हुए लक्षणोंसे जानना (वहां इसके सात भेद लिखे हैं) ॥ ७ ॥

रक्तपित्तके उपद्रव।

दौर्बल्यश्वासकासज्वरवमथुमदाः पांडुतादाहमूर्च्छाः

(श्लो० ७) बाह्यासृग्लक्षणैरिति-शोणितवर्णनीयोक्तैः "फेनिलमरुणम्" इत्यादिभिः तस्य रक्तपित्तस्य संख्या सप्तविधा (इति नि० सं०)

भुक्ते चान्ने विदाहस्त्वधृतिरपि सदा हृद्यतुल्या च पीडा ॥
तृष्णा कंठस्य भेदः शिरसि च तपनं पूतिनिष्ठीवनं च
द्वेषो भक्तेऽविपाको विरतिरपि रते रक्तपित्तोपसर्गाः ॥ ८ ॥

दुर्बलता, श्वास, खांसी, ज्वर, वमन, मद, पाण्डुता (शरीर पीला पडना), दाह, मूर्च्छा, भोजन करनेके पीछे जलन, बेचैनी, सदा हृदयको अहितकारक पीडा, तृषा, गल बैठ जाना, शिरमें गरमी रहना, थूकमें पीवसा (या दुर्गंध युक्त पानीसा) आना, भोजनसे द्वेष (अरुचि), अन्न न पचना और विश्राम न होना ये रक्तपित्तके उपसर्ग (उपद्रव) होते हैं ॥ ८ ॥

रक्तपित्तकी असाध्यता ।

मांसप्रक्षालनाभं क्वथितमिव च यत्कर्दमांभोनिभं वा
मेदःपूयास्रकल्पं यकृदिव यदि वा पक्कजंबूफलाभम् ॥
यत्कृष्णं यच्च नीलं भृशमतिकुणपं यत्र चोक्ता विकारा-
स्तद्वर्ज्यं रक्तपित्तं सुरपतिधनुषा यच्च तुल्यं विभाति ॥ ९ ॥

मांस धोवनके समान हो या क्वाथसा हो, कीचड़के पानीसा हो, मेद (चरबी) राध मिले रुधिरसा हो, यकृत्के समान वर्णका हो या पकी जामुनके वर्णका हो, काला हो, नीला हो, मुरदेकेसी गन्धवाला हो ऐसा रुधिर निकले तथा जिसमें ऊपर कहे हुए विकार (उपद्रव) हों या जो इन्द्रधनुषके समान रंग विरंगका हो ऐसा रक्तपित्त असाध्य होता है उसे त्याग देना चाहिये ॥ ९ ॥

रक्तपित्तकी चिकित्सामें उपदेश ।

नादौ संग्राह्यमुद्रिक्तं यदसृग्बलिनो यतः ॥
तत्पांडुग्रहणीकुष्ठप्लीहगुल्मज्वरावहम् ॥ १० ॥

रक्तपित्तके प्रवृत्त हुए उल्वण रुधिरको आरंभहीमें बलवान् रोगीके रोक देना उचित नहीं क्योंकि वह रुका हुआ रुधिर (यदि सूक्ष्म शिराओंद्वारा त्वचाकी तरफ प्रवृत्त होगा तो) पांडुरोग पैदा करेगा और ग्रहणीमें प्राप्त हो तो ग्रहणीको बिगाडेगा तथा शारीरक धातुओंमें प्राप्त हो तो कुष्ठ पैदा कर देगा और जो प्लीहाकी तरफ आवे तो प्लीहवृद्धि और उदरमेंही कहीं इकट्ठा होजावे तो गुल्म पैदा करे (इस प्रकारके अपक्रम आदिसे पुरुषोंके भी रक्तगुल्म होजाता है) और जो रस और स्वेदवहा शिराओंकी तरफ प्रवृत्त हो तो ज्वर पैदा करेगा ॥ १० ॥

रक्तपित्तकी चिकित्सा।

अधःप्रवृत्तं वमनैरूर्द्ध्वमार्गं विरेचनैः ॥
जयेदन्यतरं चापि क्षीणस्य शमनैरसृक् ॥ ११ ॥

नीचेकी तरफ प्रवृत्त हुए बलवान् रोगीके रक्तपित्तका वमन कराके और ऊर्द्ध्वगामीको विरेचन देकर शांत करना (तथा अन्य क्रियाओंसे भी शांत करना) और रोगी निर्बल हो तो वमन, रेचन नहीं देना किंतु केवल शमनकारक उपायोंसे शांत करना चाहिये चाहे वह किसी मार्गसे प्रवृत्त हो ॥ ११ ॥

अतिप्रवृत्तदोषस्य पूर्वं लोहितपित्तिनः ॥ अक्षीणबलमांसाग्नेः कर्तव्यमपतर्पणम् ॥ १२ ॥ लंघितस्य ततः पेयां विदध्यात्स्वल्पतंडुलाम् ॥ तर्पणं पाचनं लेहान्सर्पींषि विविधानि च ॥ १३ ॥

रोगी यदि क्षीण नहीं हो किन्तु बलवान् पुष्ट और दीप्ताग्निवाला हो और उसके रक्तपित्त अति प्रवृत्त हो तो उसे पहले लंघन करावे ॥ १२ ॥ और उचित लंघनके पीछे थोडे चावलोंकी पेया पिलानी चाहिये तथा तर्पण करना, पाचन वस्तु देना, अवलेह देना और अनेक प्रकारसे यथायोग्य सिद्ध किये हुए घृत देने भी उचित हैं ॥ १३ ॥

द्राक्षामधुककाश्मर्यसितायुक्तं विरेचनम् ॥
यष्टीमधुकयुक्तं च सक्षौद्रं वमनं हितम् ॥ १४ ॥

यदि विरेचन देनेका काम पड़े तो मुनक्का, मुलेठी, खंभारी और मिश्री मिलाकर विरेचन देना और जो वमन करानेका काम पड़े तो मुलेठी और शहद मिलाकर वमन कराना ॥ १४ ॥

पयांसि शीतानि रसाश्च जांगलाः सतीनयूषाश्च सशालिषष्टिकाः॥
पटोलशेलूसुनिषण्णयूथिका वटातिमुक्तांकुरसिंदुवारिजम् ॥१५॥

(श्लो० ११) ननु अधोगं वातानुगं भवति, ऊर्ध्वगं च कफानुगतं, तत्कथं तयोः वमनविरेचनैर्युज्यते, सत्यं, व्याधिप्रत्यनीकत्वात् । अन्यतरम् ऊर्ध्वगमधोगं वा क्षीणस्य पुरुषस्य शमनैर्वमनविरेचनैर्जयेत् तथा च तंत्रांतरे–"ऊर्ध्वगं वाप्यधोगं वा क्षीणस्य शमनैर्जयेत् ॥" (इति नि० सं०)

(श्लो० १५) पयांसि शीतानीति–शीतलानि पयांसीति स्पष्टोऽर्थः । परंतु श्रीमता डल्हनेनेति व्याख्यातम्–शीतानि उत्पलादीनि द्रव्याणि तत्क्वथितशीतानि पयांसि शीतानि तानि तु पित्तप्राये । जांगला रसा एणादिकृताः तेच वातानुबंधे । सतीनयूषा वर्तुलकलाययूषाः ते च कफानुबद्धपित्ते । तदुक्तं भावप्रकाशेपि–"कफानुगे यूषशाकान् दद्याद्वातानुगे रसम् ॥ पथ्य सतीनयूषेण ससितैलाजसक्तुभिः ॥ १ ॥"–

हितं च शाकं घृतसंस्कृतं सदा तथैव धात्रीफलदाडिमान्वितम् ॥ रसाश्च पारावतशंखकूर्मजास्तथा यवाग्वोऽभिहिता घृतोत्तराः ॥ ॥ १६ ॥ संतानिकाश्चोत्पलवर्गसाधिते क्षीरे प्रशस्ता मधुशर्करोत्तमाः ॥ हिमाः प्रदेहा मधुशर्कराश्च ये घृतानि पथ्यानि च रक्तपित्तिनाम् ॥ १७ ॥

शीतल दूध, जंगली जीवोंके मांसका रस, मटरके यूष, शाली और षष्टिक चावल, परवल, ल्हेसुवे, निषण्णं (सिरयाई) का शाक, यूथिका (जुईका शाक), वट और अतिमुक्त (तिंदुक या तिरिच्छ) इनके कोमल पत्ते, इंदु (कपूर या अश्मंतक), वारिज (कमल) ॥ १५ ॥ तथा घृतसे संस्कार दिये हुए शाक तथा आँवले और अनारयुक्त तथा पारावत (परेवा), शंखका जीव और कछुवा इनका मांस तथा घृतयुक्त यवागू ये भी हितकारक हैं ॥ १६ ॥ और उत्पलादि वर्गसे पकाये दूधकी मलाईमें शहद और मिश्री मिलाकर देना तथा ठंढे लेप करना, शहद और मिश्री या खांड (अथवा मधुशर्करा) और घृत ये सब रक्तपित्तरोग वालेको हितकारक हैं ॥ १७ ॥

मधूकशोभांजनकोविदारजैः प्रियंगुकायाः कुसुमैश्च चूर्णितैः ॥ भिषग्विदध्याच्चतुरः समाक्षिकान्हितांश्च लेहानसृजः प्रशांतये ॥ ॥ १८ ॥ लिह्याच्च दूर्वावटजांश्च पल्लवान्मधुद्वितीयान्सितकर्णिकस्य ॥ हितं च खर्जूरफलं समाक्षिकं फलानि चान्यान्यपि तद्गुणान्यथ ॥ १९ ॥

महुवा, सोहँजना और कचनाल तथा प्रियंगु इन सबके फूल लेवे और इन्हें पीसकर शहद मिलाकर चतुर वैद्य अवलेह बनावे यह अवलेह रक्तपित्तकी शांतिके लिये हितकारक है (कई ऐसा अर्थ करते हैं कि इन चारों प्रकारके पुष्पोंसे चार अवलेह बनावे) ॥ १८ ॥ अथवा दूध और बडकी कोंपल (अंकुर) इनमें शहद मिलाके चाटे अथवा सुफेद कमलके अंकुरोंमें शहद मिलाके चाटे अथवा खजूरके

—इति । "वटातिमुक्तांकुरमिंदुवारिजम्" इत्यत्र 'वटातिमुक्तांकुरसिंधुवारजम्' इति पाठांतरम् । तत्र अतिमुक्त तिंदुकम् अंकुराः कोमलपल्लवाः । सिंदुवारः निर्गुंडी । परंतु तस्य पित्तकोपकरत्वात् "इंदुवारिजम्" इति पाठः समीचीनः प्रतीयते ।

(श्लो० १८) चतुरो लेहान् विदध्यात् । अथवा चतुरो भिषक् लेहान् विदध्यात् ।

फल (खजूरिया) को शहद सहित चाटे तथा इसी प्रकारके पित्तनाशक अन्य फलोंको भी शहदके संग चाटना योग्य है ॥ १९ ॥

रक्तातिसारप्रोक्तांश्च योगानत्रापि योजयेत् ॥ शुक्लेक्षुकांडमापोथ्य नवे कुंभे हिमांभसा ॥ २० ॥ योजयित्वा क्षिपेद्रात्रावाकाशे सोत्पलं तु तत् ॥ प्रातः स्रुतं क्षौद्रयुतं पिबेच्छोणितपित्तवान् ॥२१॥

रक्तातिसारमें कहे हुए प्रयोगोंको यहां योजना करना ठीक है अथवा सुफेद इक्षुकांड (पौंडेकी गँडेरियों) को कूटकर रस निकाल लेवे फिर उसे कोरे मिट्टीके घडेमें डाल दे और बराबरका जल मिलादे और कमल भी उसमें डालदे और रातको चौडेमें रखदे प्रभात छानकर शहद मिलाके रक्तपित्तवाला मनुष्य पीवे ॥ २० ॥ २१ ॥

पिबेच्छीतकषायं वा जंब्वाम्रार्जुनसंभवम् ॥
उदुंबरफलं पिष्ट्वा पिबेत्तद्रसमेव वा ॥ २२ ॥

अथवा जामुन, आम और कुहा इनके पत्रों (कोमल पल्लवों) के शीतकषायको (मधुयुक्त) पीवे अथवा गूलरके फलको पीसकर या उसका रस निकालकर (मधुयुक्त करके) पीवे ॥ २२ ॥

त्रपुषीमूलकल्कं वा सक्षौद्रं तंडुलांबुना ॥ पिबेदक्षसमं कल्कं यष्टीमधुकमेव वा ॥ २३ ॥ चंदनं मधुकं रोध्रमेकमेवं समं पिबेत् ॥ करंजबीजमेवं वा सिताक्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ २४ ॥ मज्जानमिंगुदस्यैवं पिबेन्मधुकसंयुतम् ॥ सुखोष्णं लवणं बीजं कारंजं दधिमस्तुना ॥२५॥ पिबेद्वापि त्र्यहं मर्त्यो रक्तपित्ताभिपीडितः ॥ रक्तपित्तहराः शस्ता षडेते योगसत्तमाः ॥ २६ ॥

त्रपुषी (ककडी) की जडका कल्क बनाके शहद मिलाके चावलोंके पानीके संग पीवे अथवा कर्षभर मुलेठीका कल्क (शहदके संग) पीवे ॥ २३ ॥ अथवा चन्दन, मुलेठी, लोध इनको समान भाग ले (इनका हिम) पीवे अथवा करंजवेके बीज, मिश्री और शहदके संग (कल्क करके) पीवे ॥ २४ ॥ अथवा हिंगोटकी गिरीको शहदके संग (कल्क करके) पीवे अथवा करंजके बीज, दधिमस्तु और नमक इन्हें जरा निवाया करके तीन दिन रक्तपित्तसे पीडित मनुष्य पीवे ये छह श्रेष्ठ योग रक्तपित्तके नाश करनेवाले हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

नाकसे रुधिर निकल आनेपर यत्न ।

पथ्याश्चैवावपीडेषु घ्राणतः प्रस्रुतेऽसृजि ॥ २७ ॥

और जो नाकसे रुधिर बहता हो तो पूर्वोक्त येही छहों प्रयोग अवपीडनमें (नस्य देनेमें) श्रेष्ठ हैं ॥ २७ ॥

अधिकरक्तनिकले पर यत्न ।

अतिप्रस्रुतरक्तो वा क्षौद्रयुक्तं पिबेदसृक् ॥

यकृद्वा भक्षयेदाजमामं पित्तसमायुतम् ॥ २८ ॥

जिसके किसी मार्गसे अधिक रक्त निकल गया हो वह शहद मिलाकर बकरेका रुधिर पान करे अथवा बकरेका यकृत् (जिगर) पित्त समेत कच्चाही खावे ॥ २८ ॥

रक्तपित्तपर अन्ययोग ।

पलाशवृक्षस्वरसे विपक्वं सर्पिः पिबेत्क्षौद्रयुतं सुशीतम् ॥

वनस्पतीनां स्वरसैः कृतं वा सशर्करं क्षीरघृतं पिबेद्वा ॥ २९ ॥

द्राक्षामुशीराण्यथ पद्मकं सितां पृथक्पलांशान्युदके समावपेत् ॥

स्थितं निशां तद्रुधिरामयं जयेत्पीतं पयो वांबुसमं हिताशिनः ॥३०॥

तुरंगवर्च्चःस्वरसं समाक्षिकं पिबेत्सिताक्षौद्रयुतं वृषस्य वा ॥

लिहेत्तथा वास्तुकबीजचूर्णं क्षौद्रान्वितं तंडुलसाह्वयं वा ॥ ३१ ॥

ढाकके स्वरसमें पकाये हुए घृतको शीतल करके शहद मिलाके पीवे अथवा वनस्पति (बट, पिप्पलादि) के स्वरसमें पका हुआ घृत इसी भांति पीवे अथवा दूध, घृत, खांड इन्हें मिलाके पीवे ॥ २९ ॥ मुनक्का, खस, पद्माख, मिश्री इन सबको पल पल भर लेकर पानीमें भिगादे और रातभर भीगने दे और प्रभात (शहद मिलाके) पीवे यह रुधिरके विकार (रक्तपित्त) को शांत करताहै अथवा दूधमें बराबरका पानी मिला (लहसी) बनाके पीवे और हितकारक भोजन करे ॥ ३० ॥ अथवा घोडेकी लीदका रस शहद मिलाके पीवे अथवा बैलके गोबरका रस शहद मिलाके पीवे अथवा बथुवेके बीजोंका चूर्ण शहद मिलाके चाटे अथवा चौलाईको शहदके संग सेवन करे ॥ ३१ ॥

लिह्याच्च लाजांजनचूर्णमेकमेवं सिताक्षौद्रयुतां तुगाख्याम् ॥

(श्लो० ३१) तंडुलसाह्वय तण्डुलीयकम् ।

द्राक्षां सितां तिक्तकरोहिणीं च हिमांबुना वा मधुकेन युक्ताम् ॥
पथ्यामहिंस्रां रजनीं घृतं च लिह्यात्तथा शोणितपित्तरोगी॥३२॥

धानकी खील और अंजन-रसौत (कई सौवीरांजन अर्थात् सुरमा कहतेहैं) इनका चूर्ण बनाकर शहदके संग चाटे अथवा वंशलोचन, मिश्री इन्हें शहदमें मिलाके चाटे अथवा दाख (मुनक्का), मिश्री और कुटकी इनको ठंढे पानीसे पीवे और मुलेठी भी मिलाले अथवा हरडे, अहिंस्रा (बालछड या हींस), हलदी और घृत इन्हें चाटे (शहद युक्त चाटे) रक्तपित्तके रोगीको ये सब योग हितकारक हैं ॥ ३२ ॥

वासाकषायोत्पलमृत्प्रियंगुनेत्रांजनांभोरुहकेशराणि ॥ पीत्वा सिताक्षौद्रयुतानि जह्यात्पित्तासृजो वेगमुदीर्णमाशु ॥३३॥ गाधात्रिजंब्वर्जुनकोविदारशिरीषरोध्राशनशाल्मलीनाम् ॥ पुष्पाणि शिग्रोश्च विचूर्ण्य लेह्यो मध्वन्वितः शोणितपित्तरोगे ॥ ३४॥

अडूसेका काथ कर उसमें कमल और मिट्टी (मुलतानी मिट्टी या वानी मिट्टी), गोंदी, रसौत और कमलकी केशर इनमें मिश्री और शहद मिलाकर पीवे तो यह शीघ्रही बढे हुए रक्तपित्तके उग्र वेगको जीतलेताहै ॥ ३३ ॥ तथा खैर, अर्जुन, जामुन, कचनाल, शिरस, लोध, विजयसार और सेमल तथा सोहँजना इन सबके फूल पीसकर शहद मिलाके रक्तपित्तके रोगमें चाटना श्रेष्ठ है ॥ ३४ ॥

सक्षौद्रमिंदीवरभस्मवारि करंजबीजं मधुसर्पिषी च ॥ जम्ब्वर्जुनाम्रकथितं च तोयं घ्नंति त्रयः पित्तमसृक् च योगाः ॥ ३५ ॥
मूलानि पुष्पाणि च मातुलुंग्याः पिष्ट्वा पिबेत्तंडुलधावनेन ॥
घ्राणप्रवृत्ते जलमाशु देयं सशर्करं नासिकया पयो वा ॥ ३६ ॥
द्राक्षारसं क्षीरघृतं पिबेद्वा सशर्करं चेक्षुरसं हिमं वा ॥ शीतोपचारं मधुरं च कुर्याद्विशेषतः शोणितपित्तरोगे ॥ ३७ ॥

नीलकमलको जलाकर उसका भस्म शहद मिलाकर चाटे अथवा करंजबीजोंको शहद और घृतसे चाटे अथवा जामुन, कुहा, आम इनका काथ पीवे ये तीन प्रयोग रक्तपित्तको नष्ट करतेहैं ॥ ३५ ॥ अथवा बिजोरेकी जड और उसके फूल पीसकर चावलोंके धोवनके संग पीवे और जो नाकसे रुधिर आता हो तो इस जलको नासिकामें धारण करे अथवा दूधमें खांड मिलाके उसकी नस्य ले ॥ ॥ ३६ ॥ अथवा मुनक्काका रस, दूधका घृत, खांड मिलाके पीवे अथवा ईखका

रस निकालकर ठंढा २ पीवे और अन्य शीतल और मधुर उपचार विशेष करके रक्तपित्तरोगमें करने चाहियें ॥ ३७ ॥

द्राक्षाघृतक्षौद्रसितायुतेन विदारिगंधादिविपाचितेन ॥
क्षीरेण चास्थापनमग्र्यमुक्तं हितं घृतं चाप्यनुवासनार्थम् ॥३८॥
प्रियंगुरोध्रांजनगैरिकोत्पलैः सुवर्णकालीयकशंखचंदनैः ॥
सिताश्वगंधाम्बुदयष्टिकाह्वयैर्मृणालसौगंधिकतुल्यपेषितैः ॥ ३९ ॥
निरूह्य चैनं पयसा समाक्षिकैर्घृतप्लुतैः शीतजलांबुसेचितम् ॥
क्षीरौदनं भुक्तमथानुवासयेद्घृतेन यष्टीमधुसाधितेन च ॥ ४० ॥

मुनक्का, घृत व मिश्री इनसे मिले हुए विदारिगंधादिगणसे पकाये हुए दूधसे आस्थापन वस्ति करना श्रेष्ठ है तथा इन्हींसे सिद्ध किया हुआ घृत अनुवासन वस्तिके अर्थ लेवे (कई यहां अनुक्त मुलेठीका घृत मानते हैं) ॥ ३८ ॥ तथा प्रियंगु, लोध, रसौत, गेरू, कमल, सुवर्ण (नागकेसर), कालीयक (दारुहलदी, अथवा सुवर्णकालीयक पीत चंदन), शंख और चंदन, मिश्री, असगंध, नागरमोथा, मुलेठी, मृणाल (कमलनाल) और सौगंधिक कमल इन सबको बराबर लेकर पीसले ॥ ३९ ॥ और दूध, शहद, घृत मिलाकर आस्थापन वस्ति करे और फिर शीतल जलसे सेचन करके दूध और चावलका भोजन देवे और मुलेठीसे सिद्ध किये हुए घृतसे अनुवासन वस्ति करे ॥ ४० ॥

अधोवहं शोणितमाशु नाशयेत्तथाऽतिसारं रुधिरस्य दुस्तरम् ॥
विरेकयोगे त्वति चैव शस्यते वाम्यश्च रक्ते विजिते बलान्वितः ॥४१॥
एवंविधा उत्तरवस्तयश्च मूत्राशयस्थे रुधिरे विधेयाः ॥
प्रवृत्तरक्तेषु च पायुजेषु कुर्याद्विधानं खलु रक्तपैत्तम् ॥ ४२ ॥

यह पूर्वोक्त वस्ति अधोगामी (गुदाद्वारा आनेवाले) रुधिरको शीघ्र शांत कर देती है तथा दुस्तर रक्तातिसारको भी बंद करती है और जो विरेचनका अतियोग होगया हो तो उसमें भी श्रेष्ठ है और जब रक्त बंद होजावे तब बलवान् रोगीको वमन करा देवे तो ठीक है ॥ ४१ ॥ और जो मूत्रमार्गसे रुधिर आता हो तो येही ऐसीही उत्तर वस्ति (अर्थात् मूत्रमार्गमें वस्ति देनी चाहिये) और मल-

(श्लो० ३८) तच्च अनुवासनार्थं घृतं यष्टीमधुकसाधितम् । अन्ये विदारिगंधादिसाधिते क्षीरे घृतपाकमिच्छंति (इति डल्हनः) (श्लो० ४२) पायुजेषु रक्तार्शोकुरेषु तथा अन्यप्रकारेण गुदशोणितनिर्गमेषु च ।

द्वारसे रक्त आनेमें (अर्थात् अर्शादि अन्य कारणोंसे मलमार्गसे रुधिर आता हो तो भी) रक्तपित्तका विधान करना अर्थात् रक्तपित्तकी ही औषधें करना उचित है ॥ ४२ ॥

विधिश्चासृग्दरेऽप्येषं स्त्रीणां कार्यो विजानता ॥ शस्त्रकर्मणि रक्तं वा यस्यातीव प्रवर्तते ॥ ४३ ॥ त्रयाणामपि दोषाणां शोणितस्य च सर्वशः॥ लिंगान्यालोक्य कर्तव्यं चिकित्सितमनंतरम् ॥४४॥

इति सुश्रुतसं०उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

जानकार वैद्यको स्त्रियोंके प्रदररोगमें तथा शस्त्रकर्म (फस्त आदि) से अधिक रुधिर निकलनेमें भी रुधिरके तीनों दोषोंमेंसे लक्षण देखकर फिर चिकित्सा करनी चाहिये (अर्थात् इनमें भी रक्तपित्तहीकी विधि करनी चाहिये ॥ ४३॥४४ ॥

परिशिष्ट ।

प्रसंगवशसे अम्लपित्त और श्लेष्मपित्तका वर्णन हम ग्रंथांतरसे करते हैं:-

अम्लपित्तका हेतु और लक्षण ।

श्लोक-विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम् ॥ पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदंति संतः ॥ १ ॥ अविपाकः क्लमोत्क्लेशस्तिक्ताम्लोद्गारगौरवैः ॥ हृत्कंठदाहारुचिभिरम्लपित्तं वदेद्भिषक् ॥ २ ॥

अर्थ-विरुद्ध भोजन करनेसे, विशेष खटाई खानेसे, विदाही (जलन करनेवाले) तथा पित्तकोप करनेवाले तीक्ष्ण पदार्थ खाने व पीनेसे अपने हेतुओंसे पूर्वका संचित पित्त विदग्ध होजावे इसे वैद्य अम्लपित्त कहते हैं (अर्थात् संचित पित्त विदग्ध होकर खट्टा होजावे इसीको अम्लपित्त कहते हैं) ॥ १ ॥ इसके लक्षण ये हैं कि-भोजन ठीक नहीं पचे, ग्लानि रहे, मुँहसे खट्टा पानीसा आवे, कड़वे खट्टे डकार आवें, भारीपन रहे, हृदय और कंठमें दाह रहे और अरुचि हो इसेही वैद्य अम्लपित्त कहते हैं ॥ २ ॥

श्लेष्मपित्तके लक्षण ।

श्लोक-तमोमूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिरालस्यं च शिरोरुजा ॥
प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम् ॥ ३ ॥

अर्थ-अंधेरी आवे, मूर्च्छा होजावे, अरुचि छर्दि, आलस्य, शिरमें दरद, मुँहसे पानी आना, मुख मीठा रहना ये लक्षण श्लेष्मपित्तके हैं (पित्तमें कफके योगसे श्लेष्मपित्त होता है) ॥ ३ ॥

अम्लपित्तका यत्न ।

श्लोक-अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टवासकैः ॥ कारयेन्मदनैः क्षौद्रैः सैंध-

वैश्च तथा भिषक् ॥ ४ ॥ विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुधात्रीफलद्रवैः ॥ ऊर्द्धगं वमनैर्विद्वानधोगं रेचनैर्हरेत् ॥ ५ ॥

अर्थ-अम्लपित्तमें परवल, नींब, वासा और मैनफल इनमें शहद मिलाकर वमन करावे अथवा लवणके योगसे वमन करावे ॥ ४ ॥ और निशोथके चूर्णमें शहद मिलाकर आंवलोंके रससे विरेचन करावे यदि ऊर्द्धगामी अम्लपित्त हो तो उसे वमन कराके शांत करे तथा अधोगामी (जिसमें हरे पीले दस्त आते हों, पक्वाशयमें अम्ल हुआ पित्त पहुँचा हो) उसमें विरेचन देवे ॥ ५ ॥

श्लोक-निस्तुषयववृषधात्रीकथितं सलिलं त्रिगंधमधुयुक्तम् ॥ द्रुततरमपहरति वमिं संजनितामम्लपित्तेन ॥६॥ यवगोधूमविकृतीस्तीक्ष्णसंस्कारवर्जिताः ॥ यथास्वं लाजसक्तून्वा सितामधुयुतान्पिबेत् ॥ ७ ॥

अर्थ-छिले या कुटे हुए जौ, वासा, आंवले इनका क्काथ त्रिसुगंध (तज, पत्रज, इलायची) युक्त पीनेसे अम्लपित्तकी खट्टी वमन या मुँहसे पानी आना बंद होजाता है ॥ ६ ॥ अथवा जौ या गेहूँके पदार्थ जिनमें तीक्ष्ण संस्कार नहीं हो, द्रव हों उन्हें लेवे अथवा धानकी खीलोंके सत्तूमें मिश्री व शहद मिलाके पीवे ॥ ७ ॥

श्लेष्मपित्तका यत्न ।

श्लोक-पटोलयवधान्याकपिप्पल्यामलकानि च ॥
एषां क्षौद्रयुतः क्काथः पित्तश्लेष्महरः परः ॥ ८ ॥

अर्थ-परवल, जौ, धनियां, पीपल और आंवले इनका क्काथ शहदके संग मिलाके पीना श्लेष्मपित्तको नष्ट करता है ॥ ८ ॥

यूनानी हकीम मुँहसे रुधिर आनेको जो छाती और फेफडेसे आवे, उसे "नफ्सुद्दम" कहते हैं और जो आमाशय (मेद) से आवे तो उसको "कैउद्दम" कहते हैं (नफ्सुद्दममें थोडा थोडा खून आता है और कैउद्दममें रक्तकी वमन जैसा होता है) ॥

डाक्टरीमें रक्तपित्तको "कौंजशचन" (Congestion) या "कोंजशचन औफ दी स्टमक" कहते हैं और जब यह रुधिर नीचेको प्रवृत्त होता है तो उसे मेलना (Meelan) कहते हैं और ऊपर मुँहकी तरफसे प्रवृत्त हो तो "हेमाटेमेसम्" (Haematemesis) कहते हैं और जो फेफड़ोंसे मुँहकी तरफ खून आताहै उसे "मापटेसिम्" (Mapatesis) कहते हैं ॥ ॥ इति परिशिष्ट ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतन्त्रे कायचिकित्सायां पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ४६.

अथातो मूर्च्छाप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

यहांसे अगाड़ी अब हम मूर्च्छाकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं।

मूर्च्छाका हेतु।

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः॥ विघातादभिघाताद्वा हीनसत्त्वस्य वा पुनः॥१॥ करणायतनेषूग्रा बाह्येष्वाभ्यंतरेषु च॥ निर्विशन्ते यदा दोषास्तदा मूर्च्छन्ति मानवाः॥ २॥

जो मनुष्य क्षीण हो, जिसके बहुत दोष (पित्त) बढ़जावे, जो विरुद्ध आहारका सेवन करे, जो मल मूत्रादिका वेग रोके, जिसके किसी प्रकारकी चोट लगजावे, जो हीनसत्त्व होजावे ऐसे मनुष्यके॥ १॥ इंद्रियोंके बाह्य और आभ्यंतर आयतन (स्थानों) में जब उग्रदोष प्राप्त होजाते हैं तब मनुष्य मूर्च्छित (बेहोश) होजाते हैं॥ २॥

(वक्तव्य) बाह्यकरणायतन कर्मेन्द्रियोंके मूल और आभ्यन्तरकरणायतन ज्ञानेंद्रियोंके मूल समझिये ज्ञानेंद्रियोंका आयतन बहुधा हृदय मानते हैं परंतु कई मूर्द्धा (अर्थात् दिमाग) को ही ज्ञानेंद्रियोंका आयतन मानते हैं॥

मूर्च्छाका पूर्वरूप।

हृत्पीडा जृंभणं ग्लानिः संज्ञानाशो बलस्य च॥
सर्वासां पूर्वरूपाणि यथास्वमुपलक्षयेत्॥ ३॥

हृदयमें पीडा (कलमलाटसा होना), जँभाई आना, ग्लानि होना, संज्ञाका नाश (होश बिगड़ना) और बलका नाश होना सब प्रकारकी मूर्च्छाके पूर्वरूपमें ये लक्षण होते हैं॥ ३॥

मूर्च्छाका स्वरूप।

संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः॥ तमोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत्॥४॥ सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत्॥ मोहो मूर्च्छेति तां प्राहुः षड्विधा सा प्रकीर्तिता॥ ५॥

(श्लो० १) बहुदोषस्य बहुपित्तप्रधानस्य। विघातात् वेगादीनाम् (श्लो० २) करणायतनेषु बाह्येषु आभ्यन्तरेषु च। तत्र बाह्येषु कर्मेन्द्रियेषु आभ्यंतरेषु ज्ञानेंद्रियेषु (इति भा० मि०)
(श्लो० ३) बलस्य च नाशः।

संज्ञाके वहनेवाली नाडियोंमें वातादि दोषोंसे जब तम (तमोगुण) प्राप्त होताहै तब वह तमोगुणही सुखदुःखका ज्ञान नष्ट करनेवाला होताहै (अर्थात् इंद्रियोंके बाह्य द्वारसे आभ्यंतर चैतन्य तक उस इंद्रियके विषयको पहुँचानेवाली जो शिरा हैं जब उनमें तमोगुण (अंधकार) व्याप्त होजाता है तब इंद्रियां अपने विषयको ग्रहण भी नहीं करतीं और न चैतन्य तक पहुँचासकती हैं तब मनुष्यको सुखदुःखादि किसी बातका ज्ञान नहीं रहता ॥ ४ ॥ और सुखदुःख आदिका ज्ञान नहीं रहनेसे मनुष्य काष्ठकी तरह गिर जाताहै इसे मोह या मूर्च्छा कहते हैं (थोडी बेहोशी या होश बिगड़ जानेको मोह और बिलकुल बेहोश होजानेको मूर्च्छा कहतेहैं) यह मूर्च्छा छः प्रकारकी होती है ॥ ५ ॥

वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च ॥

षट्स्वपि तासु पित्तं हि प्रभुत्वेनावतिष्ठते ॥ ६ ॥

वात आदि जुदे एक एक दोषसे (जैसे वातकी मूर्च्छा, पित्तकी मूर्च्छा, कफकी मूर्च्छा), चौथे रक्तसे, पांचवें मद्यसे, छठे विषसे होतीहै परंतु इन छहों प्रकारकी मूर्च्छाओंमें प्रधानतासे पित्तही रहताहै ॥ ६ ॥

(वक्तव्य) इसमें यह है कि पित्त तो सत्त्वगुणप्रधान और चैतन्यताका हेतु है फिर उससे मूर्च्छा कैसे ? इसका समाधान यह है कि यथावस्थित शुद्ध पित्त सत्त्वगुणप्रधान और चैतन्यताका हेतु होताहै दूषित और उद्रिक्त पित्त होनेपर वह भी अज्ञानकारक होजाता है ॥

सूँघनेसे मूर्च्छा ।

पृथिव्यंभस्तमोरूपं रक्तगन्धश्च तन्मयः ॥ तस्माद्रक्तस्य गन्धेन मूर्च्छन्ति भुवि मानवाः ॥ ७ ॥ द्रव्यस्वभाव इत्येके दृष्ट्वा यदभिमुह्यति ॥ गुणास्तीव्रतरत्वेन स्थितास्तु विषमद्ययोः ॥ त एव तस्माज्जायन्ते ताभ्यां मोहा यथेरिताः ॥ ८ ॥

पृथिवी और जल तमोगुणका रूप हैं और रुधिरकी गंध तन्मय है इस कारण रुधिरके गंधसे (रुधिरके सूँघने या सुँघानेसे) मनुष्य मूर्च्छित हो जातेहैं ॥ ७ ॥ और कोई ऐसा कहतेहैं कि कइयोंका ऐसा स्वभाव होताहै कि उन्हें देखकर मूर्च्छा होजाती है और विष और मद्यमें तीव्रतासे ये गुण स्थित हैं (अर्थात् विष और मद्यमें मूर्च्छाके तीव्र गुण हैं) इसीसे उनके उपयोगोंसे उनसे प्रेरित मोह (बेहोशी या बुद्धिमें विकार) उत्पन्न हो जातेहैं ॥ ८ ॥

स्तब्धाङ्गदृष्टिस्त्वसृजा गूढोच्छ्वासश्च मूर्च्छितः ॥ ९ ॥ मद्येन

विलपञ्छेते नष्टविभ्रांतमानसः ॥ गात्राणि विक्षिपन्भूमौ जरां यावन्न याति तत् ॥ १० ॥ वेपथुस्वप्नतृष्णाः स्युः स्तंभश्च विषमूर्च्छिते ॥ वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वं विषलक्षणैः ॥ ११ ॥

रुधिर सूँघनेकी मूर्च्छामें शरीर और दृष्टि स्तब्ध होजाती है (ये ज्योंके त्यों रहजातेहैं) और ऑंडे ऑंडे गँभीर श्वास आतेहैं ॥ ९ ॥ तथा मद्यजनित मूर्च्छामें पड़ा पड़ा प्रलाप किया करताहै और नष्ट तथा भ्रमितसा चित्त होजाता- है और हाथ, पावोंको पृथ्वीमें दे दे मारता है जबतक नशा तीक्ष्ण रहे यही दशा रहती है ॥ १० ॥ और विषजनित मूर्च्छामें शरीर कांपता है, नींद आतीहै, तृषा होतीहै और स्तंभ होता है और जैसा जैसा तीव्र विष होताहै वैसीही वैसी मूर्च्छाके तीव्र लक्षण होतेहैं ॥ ११ ॥

परिशिष्ट ।

मूर्च्छाका उग्रभेद संन्यास ।

श्लोक–वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबला मलाः ॥ संन्यस्यंत्यबलं जंतुं प्राणायत- नमाश्रिताः ॥ १ ॥ स ना संन्याससन्यस्तः काष्ठीभूतो मृतोपमः ॥ २ ॥

अर्थ–दोष यकायक (अचानक) अत्यंत बलवान् होकर मनुष्यकी वाणी, देह और मनकी चेष्टाको नष्ट करदेतेहैं और प्राणोंके स्थान (हृदय) को आच्छा- दित करलेतेहैं तब मनुष्य इस संन्यास नामक उग्र व्याधिसे आक्रांत हुआ काठके तुल्य और मृतके समान होजाताहै (यहां मृतोपम कहाहै इससे इसमें श्वासनाडीकी गति आदि सब बंद होजातेहैं, मूर्च्छामें श्वास और नाडी रहतीहैं इसमें ये भी बंद होजातेहैं यही अंतर है) इसमें (मृत और संन्यस्तके जाननेकी युक्ति हम पहले कल्पस्थानके पांचवें अध्यायमें बताचुकेहैं वहां देख लेना) ॥ १ ॥ २ ॥

वातादि मूर्च्छाके लक्षण ।

श्लोक–नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमथवाऽरुणम् ॥ पश्यंस्तमः प्रविशति शीघ्रं च प्रतिबुद्धयते ॥ ३ ॥ रक्तं हरितवर्णं वा वियत्पीतमथापि वा ॥ पश्यंस्तमः प्रविशति सस्वेदं प्रतिबुद्धयते ॥ ४ ॥ मेघसंकाशमाकाशं तमोभिर्वा घनैर्वृतम् ॥ पश्यंस्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुध्यते ॥ ५ ॥

अर्थ–जो मनुष्य नीला या काला अथवा ऊदा आकाश (सब कुछ) देखता हुआ मूर्च्छित होवे और शीघ्र ही चेतमें होजावे तो वायुकी मूर्च्छा जानों ॥ ३ ॥ और जो सुरख, हरा या पीला आकाश देखता हुआ मूर्च्छित हो तथा स्वेदयुक्त

चेतमें हो उसे पित्तकी मूर्च्छा जानों ॥ ४ ॥ मेघ जैसा अंधकारसा बादल सहितसा देखकर जो मूर्च्छित हो बहुत देर पीछे होशमें आवे तो कफकी मूर्च्छा जानों ॥ ५ ॥ इति परिशिष्ट ॥

यद्यपि मूर्च्छामें पित्त प्रधान होता है परन्तु फिर दूसरा दोष भी उसके साथ होता है ॥

मूर्च्छाकी चिकित्सा।

सेकावगाहा मणयः सहाराः शीताः प्रदेहा व्यजनानिलाश्च ॥
शीतानि पानानि च गन्धवन्ति सर्वासु मूर्च्छास्वनिवारितानि ॥१२॥

शीतल परिषेक (ठंढे पानीके छींटे देना), स्नान कराना, सूत्रमें पिरोकर या हारमें गूँथकर मणि धारण कराना, ठंढे (चंदनादिका) लेप करना, पंखेसे पवन करना, ठंढ और सुगंधयुक्त पान कराना (शरबत या गुलाब केंवड़ेके अर्क वगैरह पिलाने) ये सब प्रकारकी मूर्च्छामें निरंतर (जबतक चेतनता न हो) करते रहना श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥

सितापियालेक्षुरसप्लुतानि द्राक्षामधूकस्वरसान्वितानि ॥
खर्जूरकाश्मर्यरसैः शृतानि पानानि सर्पींषि सजीवनानि ॥ १३ ॥
सिद्धानि[3] वर्गे[2] मधुरे[1] पयांसि सदाडिमा जांगलजा रसाश्च ॥
तथा यवा लोहितशालयश्च मूर्च्छासु पथ्याश्च सदा सतीनाः ॥१४॥
भुजंगपुष्पं मरिचान्युशीरं कोलस्य मध्यं च पिबेत्समानि ॥
सतीनतोयेन बिसं मृणालं क्षौद्रेण कृष्णां सितया च पथ्याम् ॥१५॥

मिश्री, चिरोंजीके ऊपरका गूदा, ईखका रस, दाख (मुनक्का), महुवा इनका रस युक्त करके पिलाना या खजूर और खंभारीके रसमें जीवनीय गणयुक्त घृत पकाकर पिलाना ॥ १३ ॥ अथवा मधुर द्रव्योंसे सिद्ध किया दूध पिलाना तथा जंगली जीवोंके मांसका रस, अनारकी खटाई मिलाकर देना अथवा जौ और चावल (लाल चावल) तथा मटर इनके भोजन मूर्च्छामें पथ्य होते हैं ॥ १४ ॥

(श्लो० १२) मणयश्चंद्रकान्तादयः। सहारा हारेण मुक्तापुष्पादिहारसहिताः। अनिवारितानि संततानि (इति डल्हनः) भावमिश्रस्तु इत्याह–"सर्वासु मूर्च्छास्वनिवारितानि" अस्यायमभिप्रायः– सेकादीनि सर्वासु मूर्च्छासु हितान्येव किंतु वातश्लेष्मजासु अपि न निवारितानि। तत्रापि पित्तस्य प्राधान्यात् (श्लो० १३) पियालं चारुकस्य उपरिस्थखाद्यपदार्थः न तु चारुकः (श्लो० १५) "सतीनतोयेन" इत्यत्र 'शीतेन तोयेन' इति पाठान्तरम्। तदुक्तं भावप्रकाशे–"शीतेन तोयेन बिसं मृणालम्" इति।

नागकेशर, काली मिरच, खस, बेरोंका गूदा इनके समान भाग लेकर पान करे अथवा कमलकी जड़ और नालीको मटरके जलसे (या शीत जलसे) पीवे अथवा (हरी ताजी) पीपलोंको शहदके संग पीवे या हरडे और मिश्री मिलाके पीवे ॥ १५ ॥

कुर्याच्च नासावदनावरोधं क्षीरं पिबेद्वाप्यथ मानुषीणाम् ॥
मूर्च्छां प्रसक्तां तु शिरोविरेकैर्जयेदभीक्ष्णं वमनैश्च तीक्ष्णैः ॥ १६ ॥
हरीतकीक्वाथघृतं पिबेद्वा धात्रीफलानां स्वरसैः कृतं वा ॥
द्राक्षासितादाडिमलाजवन्ति शीतानि नीलोत्पलपद्मवन्ति ॥ १७ ॥
पिबेत्कषायाणि च गन्धवन्ति पित्तज्वरं यानि शमं नयन्ति ॥ १८ ॥

नाक और मुँहके छिद्रोंको जरा जरा थोडी देर बंद करे और स्त्रीका दूध पीवे जिन्हें मूर्च्छाका दौरा होता हो उन्हें शिरोविरेचन और तीक्ष्ण वमनोंसे शांत करना चाहिये ॥ १६ ॥ अथवा हरडेका क्वाथ घृतयुक्त पीवे (या हरीतकीके क्वाथसे सिद्ध किया घृत पीवे) अथवा आंवलोंके रससे सिद्ध किया हुआ घृत पीवे अथवा मुनक्का, मिश्री, अनार, धानकी खील, नीलोत्पल (नीलकमल नीलोफर) और कमल इनका शीतल पानक बनाकर पीवे ॥ १७ ॥ अथवा पित्तज्वरके नाश करनेवाले जो सुगंधित क्वाथ कहे गये हैं उन्हें पान करे ॥ १८ ॥

प्रभूतदोषस्तमसोऽतिरेकात्संमूर्च्छितो नैव विबुध्यते यः ॥
संन्यस्तसंज्ञो भृशदुश्चिकित्स्यो ज्ञेयस्तदा बुद्धिमता मनुष्यः ॥ १९ ॥
यथामलोष्टं सलिले निषिक्तं समुद्धरेदाश्वविलीनमेव ॥
तद्वच्चिकित्सेत्त्वरया भिषक्तमवेदनं मृत्युवशं प्रयातम् ॥ २० ॥

जिसके दोष बहुत बढ जाते हैं और तमोगुणकी बहुतही अधिकता होती है वह मूर्च्छित चैतन्य नहीं होता उसे संन्यस्तसंज्ञक (संन्यास रोगवाला) कहते हैं इसे बुद्धिमान् वैद्य दुश्चिकित्स्य जाने ॥ १९ ॥ जैसे कच्चा मिट्टीका डला पानीमें गिरे तो उसे बहुतही जलदी जबतक वह भीगे गले नहीं इतना शीघ्र निकाल लेनेसे रह सकता है इसी भांति वेदना (सुख दुःखकी वेदनासे रहित) मृत्युके वशमें हुए संन्यासके रोगीकी बहुतही शीघ्र चिकित्सा करनी चाहिये (नहीं तो शीघ्र मरही जाता है इसमें संदेह नहीं) ॥ २० ॥

तीक्ष्णाञ्जनाभ्यञ्जनधूमयोगैस्तथा नखाभ्यन्तरतोत्रपातैः ॥

(श्लो० २१) नखाभ्यन्तरतोत्रपातैरिति-तोत्राणि सूचीप्रकाराणि (इति डल्लनः) एतेन नखाभ्यन्तरे सूचीपातनम् । शब्दस्तोमे तु तोत्र गवादिताडनदण्डे "कमची" इति लोके । तेन नखादिषु तोत्रेण—

वादित्रगीतानुनयैरपूर्वैर्विघट्टनैर्गुप्तफलावघर्षणैः ॥ २१ ॥
आभिः क्रियाभिश्च न लब्धसंज्ञः सानाहलालाश्वसनश्च वर्ज्यः॥
प्रभूतसंज्ञं वमनानुलोम्यैस्तीक्ष्णैर्विशुद्धं लघुपथ्यभुक्तम् ॥ २२ ॥
फलत्रिकैश्चित्रकनागराद्यैस्तथाश्मजाताज्जतुनः प्रयोगैः ॥
सशर्करैर्मासमुपक्रमेत विशेषतो जीर्णघृतं स पाय्यः ॥ २३ ॥

तीक्ष्ण अंजन लगावे और अभ्यंग करे, धूनी देवे तथा नखूनोंमें सुई आदि चुभोवे तथा नये नये बाजे बजावे और गीत गावे तथा अंगादिको मले (या दबावे या ताडे) या केवांचकी फली आदि लगावे (जिससे चैतन्यता होवे) ॥ ॥ २१ ॥ जो इन क्रियाओंसे भी चैतन्य न हो, पेटमें अफारा हो, मुँहसे लार या पानी बहता हो, श्वास चलता हो या श्वास बंद होगया हो उसे त्याग देवे और यदि इन उपायादिसे चैतन्यता होजावे तो वमन और विरेचन तीक्ष्ण देकर शुद्ध करे और हलका तथा पथ्य भोजन करावे ॥ २२ ॥ तथा त्रिफला, चित्रक, सोंठ आदिकी भावना दी हुई शिलाजीतको मिश्रीके संग एक महीना तक उपयोग करे विशेष करके ऐसे रोगीको पुराना घृत पान कराना श्रेष्ठ होता है ॥ २३ ॥

यथास्वं च ज्वरघ्नानि कषायाण्युपयोजयेत् ॥
सर्वमूर्च्छापरीतानां विषजानां विषापहम् ॥ २४ ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

और यथासंभव ज्वरनाशक काथोंका भी यहांपर उपयोग करसकते हैं और सब प्रकारके विषोंसे उपजी मूर्च्छामें वही विषनाशक (कल्पस्थानोक्त) उपचार करे ॥ २४ ॥

यूनानी हकीम मूर्च्छाको "सकता" कहते हैं और संन्यासको "मजूद" कहते हैं ॥ डाक्टरीमें मूर्च्छाको "कैटेलपसी" (Keytelapası) कहते हैं ॥

इति प० मुरलीधरवि० सुश्रुतस० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६ ॥

–ताडनम् । अन्ये तु 'नखाभ्यंतरतोत्रपातैः' इति पाठांतरं मन्यंते तेन नखाभ्यंतरे सूच्यादिभी रुधिरपातनं कार्यमिति तात्पर्यार्थः । रक्तागमने जीवने प्रत्याशा । रक्तस्य चानागमने नैव जीवनाशा इति प्रतीयते

(श्लो० २२) सानाहलालाश्वसनः आनाहलालाश्वासयुतश्च असाध्यः । अथवा सानाहलालाऽश्वसनः श्वसनरहितश्चासाध्यः इति युज्यते (श्लो० २३) फलत्रिकैरिति–त्रिफलाचित्रकशुंठीभावितैः सशर्करैः शिलाजतुप्रयोगैः (इति डल्हनः)

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ४७.

अथातः पानात्ययप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम पानात्यय (मदात्यय) के प्रतिषेधकी व्याख्या करते हैं ।

मद्यके गुण और कर्म।

मद्यमुष्णं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्मं विशदमेव च ॥ रूक्षमाशुकरं चैव व्यवायि च विकासि च ॥ १ ॥ औष्ण्याच्छीतोपचारं तत्तैक्ष्ण्याद्धंति मनोगतिम् ॥ विशत्यवयवान्सौक्ष्म्याद्वैशद्यात्कफशुक्रनुत् ॥ ॥ २ ॥ मारुतं कोपयेद्रौक्ष्यादाशुत्वादाशुकर्मकृत् ॥ हर्षदं च व्यवायित्वाद्विकासित्वाद्विसर्पति ॥ ३ ॥

मद्य उष्ण है, तीक्ष्ण है, सूक्ष्म, विशद, रूक्ष, आशुकर तथा व्यवायी और विकासी है ॥ १ ॥ यह अपनी उष्णतासे शीतोपचारी है (ठंढे उपचार चाहता है) और तीक्ष्णतासे मनकी गतिको रोक देता है और सूक्ष्म होनेसे शरीरके अवयवोंमें प्रविष्ट होता है और विशदतासे कफ और शुक्रको नष्ट करता है ॥ ॥ २ ॥ रूक्ष होनेसे वायुको कुपित करता है और आशुकर होनेसे शीघ्र प्रभाव करनेवाला है और व्यवायी होनेसे हर्षका देनेवाला है तथा विकासी होनेसे फैलनेवाला है ॥ ३ ॥

तदम्लरसतः प्रोक्तं लघु रोचनदीपनम् ॥
केचिल्लवणवर्ज्यांस्तु रसांनेत्रादिशंति हि ॥ ४ ॥

मद्य प्रधानतासे अम्लरसवाला होता है, हलका, रोचन और दीपन होता है। कोई ऐसा मानते हैं कि नमकीन (खारेपन) के सिवाय मद्यमें सब रस होतेहैं (यह पहलेके समयके गौडी, पैष्टी, माध्वी आदि मद्योंके रस होतेथे अब इस समय यंत्रसे खींचे मद्य प्रायः तीक्ष्ण और चरके रसवाले होतेहैं) ॥ ४ ॥

युक्तिपूर्वक सेवित मद्यके गुण।

स्निग्धैस्तदन्नैर्मांसैश्च भक्ष्यैश्च सह सेवितम् ॥ भवेदायुःप्रकर्षाय बलायोपचयाय च ॥ ५ ॥ काम्यता मनसस्तुष्टिर्धैर्यं तेजोऽतिविक्रमः ॥ विधिवत्सेव्यमाने तु मद्ये सन्निहिता गुणाः ॥ ६ ॥

स्निग्ध अन्नों और मांसके भक्ष्य पदार्थोंके साथ यदि ठीक ठीक मद्यका सेवन किया जावे तो यह आयुको बढाताहै, बल करताहै, शरीरको पुष्ट करता है ॥ ॥ ५ ॥ तथा काम्यता (कामकी प्रवृत्ति या कमनीयता) करताहै, मनको तुष्ट (प्रसन्न) रखताहै, धैर्य, तेज, अति पराक्रम ये सब गुण विधिसे सेवन किये हुए मद्यमें होतेहैं ॥ ६ ॥

अयुक्तिपूर्वक मद्यसेवनसे हानि ।

तदेवानन्नमज्ञेन सेव्यमानममात्रया ॥ कायाग्निना ह्यग्निसमं समेत्य कुरुते मदम् ॥ ७ ॥ मदेन कारणानां तु भावान्यत्वे कृते सति ॥ निगूढमपि भावं स्वं प्रकाशीकुरुतेऽवशः ॥ ८ ॥

वही मद्य अज्ञानी मनुष्य अन्नके विना और अप्रमाण मात्रासे (अधिक) पीवे तो यह अग्निके समान मद्य शारीरक अग्निसे मिलकर मद (नशा) पैदा करताहै ॥ ७ ॥ और जब मद (तेज नशा होताहै उस) से मनुष्य बेवश हो जाताहै तब बुद्धि और इंद्रियोंके भाव अन्यथा होजानेसे अपने गुप्तसे गुप्त आशयोंको भी प्रकाश कर देताहै (अर्थात् न कहनेके लायक बात भी चाहे जिसके सामने कहदेताहै) ॥ ८ ॥

मदकी तीन अवस्था ।

त्र्यवस्थश्च मदो ज्ञेयः पूर्वो मध्योथ पश्चिमः ॥ पूर्वे वीर्यरतिप्रीति-हर्षभाष्यादिवर्द्धनम् ॥ ९ ॥ प्रलापो मध्यमे हर्षो युक्तायुक्त-क्रियास्तथा ॥ विसंज्ञः पश्चिमे शेते नष्टकर्मक्रियागुणः ॥ १० ॥

मदकी तीन अवस्था होतीहैं-एक पूर्व (पहली) अवस्था, दूसरी मध्य अवस्था, तीसरी पश्चिम (पिछली) अवस्था इनमें पहली अवस्थामें वीर्य, रति, प्रेम, आनंद और वार्तालाप बढ़ना ये होतेहैं ॥ ९ ॥ मध्य अवस्थामें प्रलाप (बकवाद), हर्ष और कोई युक्त, कोई अयुक्त क्रिया होवें और पिछली अवस्थामें बेहोश पड़ा रहताहै सब कर्म, क्रिया और गुण नष्ट होजाते हैं ॥ १० ॥

मद्यसात्म्यमनुष्य ।

श्लैष्मिकानल्पपित्तांश्च स्निग्धान्मात्रोपसेविनः ॥ पानं न बाधतेऽत्यर्थं विपरीतांस्तु बाधते ॥ ११ ॥

(श्लो० ११) श्लैष्मिकादीनाम् अत्यर्थं न बाधते किंतु सूक्ष्मतया तु तानपि बाधते एव ।

जो कफप्रकृतिवाले हैं, जिनके पित्त कम है, जो स्निग्ध हैं, जो प्रमाणयुक्त सेवन करते हैं उन्हें विशेष करके मद्यपान बाधा नहीं करता और जो इनसे विपरीत हैं उनको बाधा करता है ॥ ११-॥

मद्यसे विकार ।

निर्भुक्तमेकांतत एव मद्यं निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम् ॥
उत्पादयेत्कष्टतमान्विकारानापादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥ १२ ॥
क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन ॥
व्यायामभाराध्वपरिक्षतेन वेगावरोधाभिहतेन चापि ॥ १३ ॥
अत्यम्लभक्ष्यावततोदरेण साजीर्णभुक्तेन तथाऽबलेन ॥
उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं करोति मद्यं विविधान्विकारान् ॥१४॥

जो मनुष्य भोजन किये विना नित्य निरंतर मद्यपान करते हैं उन्हें मद्य अनेक कष्टकारक विकार करता है अथवा शरीरको नष्ट करदेताहै ॥ १२ ॥ क्रोधयुक्त, भयभीत, तृषायुक्त, शोकयुक्त, क्षुधित (भूँखा), परिश्रमसे थका, भारसे थका या मार्गचलनेसे थका या जिसने वेग (मल और मूत्रादिके वेग) रोंके हों ऐसा मनुष्य यदि मदिरा पीवे (तो उसके मद्य अनेक घोर विकार पैदा करता है) ॥१३ ॥ तथा जिसके बहुत खटाई खानेसे पेटमें उपाधि हो या जिसने अजीर्णमें भोजन किया हो या जो निर्बल हो या जो गरमीसे अभितप्त (घबराया) हो ऐसा मनुष्य यदि मदिरा पीवे तो उसे मद्य अनेक प्रकारके भयंकर रोग पैदा करदेता है ॥ १४ ॥

पानात्ययादिक मद्यविकार ।

पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापि वा ॥
पानविभ्रममुग्रं च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ १५ ॥

मद्यमें इतने प्रकारके विकार होते हैं जैसे-पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और उग्र पानविभ्रम इनके लक्षण अगाडी कहतेहैं ॥ १५ ॥

पानात्ययके लक्षण ।

स्तंभांगमर्दहृदयग्रहतोदकंपाः पानात्ययेऽनिलकृते शिरसो रुजश्च ॥
स्वेदप्रलापमुखशोषणदाहमूर्च्छाः पित्तात्मके वदनलोचनपीतता

(श्लो० १४) अत्यंताम्लभक्ष्येन अवततं व्याप्तम्, उदरं यस्य तेन ।

च ॥ श्लेष्मात्मके वमथुशीतकफप्रसेकाः सर्वात्मके भवति सर्वविकारसंपत् ॥ १६ ॥

वातजनित पानात्ययमें स्तंभ (शरीर कडा होना), अंगडाई आना, हृदय पकडासा होना, दरद और कंप होना और शिरमें दरद ये लक्षण होतेहैं और पित्तके मदात्ययमें पसीना आवे, बकवाद करे, मुँह सूखे, दाह और मूर्च्छा हो मुँह और नेत्र पीले हों । तथा कफके मदात्ययमें वमन होना, शीत लगना, मुँहसे पानी आना ये लक्षण होतेहैं और सब दोषोंके मदात्ययमें सबके लक्षण मिश्रित होतेहैं ॥ १६ ॥

परमद पानाजीर्ण और पानविभ्रमके लक्षण ।

ऊष्मा शरीरगुरुता विरसाननत्वं श्लेष्माधिकत्वमरुचिर्मलमूत्रसंगः ॥ लिंगं परस्य तु मदस्य वदंति तज्ज्ञास्तृष्णा रुजा शिरसि संधिषु चापि भेदः ॥ १७ ॥ आध्मानमुद्गिरणमम्लरसो विदाहोऽजीर्णस्य पानजनितस्य वदंति लिंगम् ॥ ज्ञेयानि तत्र भिषजा सुविनिश्चितानि पित्तप्रकोपजनितानि च कारणानि ॥ १८ ॥ हृद्गात्रतोदवमथुज्वरकंठधूममूर्च्छाकफस्रवणमूर्द्धरुजो विदाहः ॥ द्वेषः सुरान्नविकृतेषु च तेषु तेषु तं पानविभ्रममुशंत्यखिलेन धीराः ॥ १९ ॥

गरमी, शरीरमें भारीपन, मुँहमें विरसता, कफकी अधिकता, अरुचि, मल और मूत्र रुकना, तृषा, शिरमें दर्द, सन्धियोंमें भेद ये लक्षण "परमद"के हैं ॥ ॥ १७ ॥ अफारा हो, डकारें आवें, खट्टापन हो, विदाह हो ये लक्षण "पानाजीर्ण" (अर्थात् पिया मद्य पचा नहीं उस) के हैं इसमें वैद्यको निश्चित पित्तप्रकोप जनित कारण जानने चाहिये ॥ १८ ॥ हृदय और शरीरमें दरद हो, वमन हो, ज्वर हो, कंठमें धुँवासा उठे, मूर्च्छा हो, मुँहसे कफ बहे, शिरमें दर्द हो, विदाह हो और मदिरा तथा उसपर खाये जानेवाले अन्नोंसे द्वेष हो इसे धीर वैद्य "पानविभ्रम" कहतेहैं ॥ १९ ॥

असाध्य मदात्यय ।

हीनोत्तरौष्ठमतिशीतममंददाहं तैलप्रभास्यमतिपानहतं विजह्यात् ॥ जिह्वौष्ठदंतमसितं त्वथवापि नीलं पीते च यस्य नयने

च ॥ श्लेष्मात्मके वमथुशीतकफप्रसेकाः सर्वात्मके भवति सर्वविकारसंपत् ॥ १६ ॥

वातजनित पानात्ययमें स्तंभ (शरीर कडा होना), अंगडाई आना, हृदय पकडासा होना, दरद और कंप होना और शिरमें दरद ये लक्षण होतेहैं और पित्तके मदात्ययमें पसीना आवे, बकवाद करे, मुँह सूखे, दाह और मूर्च्छा हो मुँह और नेत्र पीले हों । तथा कफके मदात्ययमें वमन होना, शीत लगना, मुँहसे पानी आना ये लक्षण होतेहैं और सब दोषोंके मदात्ययमें सबके लक्षण मिश्रित होतेहैं ॥ १६ ॥

परमद पानाजीर्ण और पानविभ्रमके लक्षण ।

ऊष्मा शरीरगुरुता विरसाननत्वं श्लेष्माधिकत्वमरुचिर्मलमूत्रसंगः ॥ लिंगं परस्य तु मदस्य वदंति तज्ज्ञास्तृष्णा रुजा शिरसि संधिषु चापि भेदः ॥ १७ ॥ आध्मानमुद्गिरणमम्लरसो विदाहोऽजीर्णस्य पानजनितस्य वदंति लिंगम् ॥ ज्ञेयानि तत्र भिषजा सुविनिश्चितानि पित्तप्रकोपजनितानि च कारणानि ॥ १८ ॥ हृद्गात्रतोदवमथुज्वरकंठधूममूर्च्छाकफस्रवणमूर्द्धरुजो विदाहः ॥ द्वेषः सुरान्नविकृतेषु च तेषु तेषु तं पानविभ्रममुशंत्यखिलेन धीराः ॥ १९ ॥

गरमी, शरीरमें भारीपन, मुँहमें विरसता, कफकी अधिकता, अरुचि, मल और मूत्र रुकना, तृषा, शिरमें दर्द, सन्धियोंमें भेद ये लक्षण "परमद"के हैं ॥ ॥ १७ ॥ अफारा हो, डकारें आवें, खट्टापन हो, विदाह हो ये लक्षण "पानाजीर्ण" (अर्थात् पिया मद्य पचा नहीं उस) के हैं इसमें वैद्यको निश्चित पित्तप्रकोप जनित कारण जानने चाहिये ॥ १८ ॥ हृदय और शरीरमें दरद हो, वमन हो, ज्वर हो, कंठमें धुँवांसा उठे, मूर्च्छा हो, मुँहसे कफ बहे, शिरमें दर्द हो, विदाह हो और मदिरा तथा उसपर खाये जानेवाले अन्नोंसे द्वेष हो इसे धीर वैद्य "पानविभ्रम" कहतेहैं ॥ १९ ॥

असाध्य मदात्यय ।

हीनोत्तरौष्ठमतिशीतममंददाहं तैलप्रभास्यमतिपानहतं विजह्यात् ॥ जिह्वौष्ठदंतमसितं त्वथवापि नीलं पीते च यस्य नयने

रुधिरप्रभे च ॥ हिक्काज्वरौ वमथुवेपथुपार्श्वशूलाः कासभ्रमावपि च पानहतं भजन्ते ॥ २० ॥ तेषां निवारणमिदं हि मयोच्यमानं व्यक्ताभिधानमखिलेन विधिं निबोध ॥ २१ ॥

जिसके ऊपरका होंठ छोटा होजाय, अत्यन्त शीत लगे, तीक्ष्ण दाह हो, मुँह तैल जैसा चिकना हो, दांत, जीभ, होंठ ये काले या नीले हों और नेत्र पीले या रुधिरके समान सुरख होजावें वह पानहत अर्थात् अतिमद्य पीनेसे पीडित रोगी त्यागने योग्य (असाध्य) होताहै और इनके सिवाय हिचकी, ज्वर, वमन, कम्प, पसलीका दरद, खांसी, भ्रम ये भी मदात्ययसे क्षीण हुए असाध्य रोगीके हो जाया करते हैं ॥ २० ॥ इससे अगाडी इन मदात्ययके रोगियोंके लिये हम चिकित्साकी विधि कहते हैं उसे सम्पूर्णतया सुनों ॥ २१ ॥

वातज पानात्ययका यत्न ।

मद्यं तु चुक्रमरिचार्द्रकदीप्यकुष्ठसौवर्चलायुतमलं पवनस्य शांत्यै॥ पृथ्वीकदीप्यकमहौषधहिंगुभिर्वा सौवर्चलेन च युतं वितरेत्सुखाय ॥२२॥ आम्रातकाम्रफलदाडिममातुलुंगैः कुर्याच्छुभान्यपि च षाडवपानकानि ॥ सेवेत वा फलरसोपहितान्रसादीनानूपवर्गपिशितान्यपि गंधवंति ॥ २३ ॥

वातज पानात्ययमें वायुकी शांतिके लिये चुक्र (चूका), काली मिरच, अदरख, अजमोदा, कूट और काला नमक मिलाकर थोडी मदिराही पिलावें अथवा बड़ी इलायची, अजमोदा, सोंठ, हींग और काला नमकयुक्त पिलावे ॥ २२ ॥ अथवा आंवला, आंब, त्रिफला, अनार और बिजौरा नींबू इनका षाडवक पान (पन्ना) बनाके पिलावे अथवा त्रिफलारसके सहित और सुगंधयुक्त संस्कारोंसे बनाकर जलके किनारे रहनेवाले जीवोंका मांस सेवन करावे ॥ २३ ॥

पित्त कफादि मदात्ययके यत्न ।

पित्तात्मके मधुरवर्गकषायमिश्रं मद्यं हितं समधुशर्करमिष्टगंधम् ॥ पीत्वा च मद्यमपि चेक्षुरसंप्रगाढं निःशेषतः क्षणमवस्थितमुल्लिखेच्च ॥ लावैणतित्तिरिरसांश्च पिबेदनम्लान्मौद्गान्सुखाय सघृतान्ससितांश्च यूषान् ॥ २४ ॥ पानात्यये कफकृते कफमुल्लिखेच्च

(श्लो० २४) उल्लिखेच्च वामयेत् ।

मद्येन बिंबिविदुलोदकसंयुतेन ॥ सेवेत तिक्तकटुकांश्च रसानुदारान्यूषांश्च तिक्तकटुकोपहितान्हिताय ॥ २५ ॥ पथ्यं यवान्नविकृतान्यपि जांगलानि श्लेष्मघ्नमन्यदपि यच्च निरत्ययं स्यात् २६॥

पित्तके पानात्ययमें मधुर द्रव्योंके क्वाथमें मद्य मिलाके उसमें शहद, मिश्री और सुगंध पदार्थ तथा ईखका रस मिलावे और उसे पीकर थोडी देर पीछे निःशेष वमन कर देवे और फिर लवा, हिरन, तीतर इनके मांसका रस विना खटाई पीवे अथवा मूँगका यूष, घृत और मिश्री मिलाकर पीवे तो सुख होवे ॥ ॥ २४ ॥ कफके पानात्ययमें बिंबी और वेतका क्वाथ मिलेहुए मद्यसे वमन करावे और कडुवे, चरपरे, उदाररस तथा ऐसेही कडुवे चरपरे पदार्थोंसे मिलेहुए यूष पिलाने हित हैं ॥ २५ ॥ और जौके पदार्थ अथवा जंगली जीवोंके मांस तथा अन्य कफनाशक पदार्थ पथ्यमें (खानेको) देवे ॥ २६ ॥

कुर्याच्च सर्वमथ सर्वभवे विधानं द्वंद्वोद्भवे द्वयमवेक्ष्य यथाप्रधानम् ॥ सामान्यमन्यदपि यत्सुसमग्रमग्र्यं वक्ष्यामि यच्च मनसोऽमदकृत्सुखं च ॥ २७ ॥

यदि सर्वदोषज पानात्यय हो तो सब विधि करे और द्वंद्वज हो तो दोनोंमें जौनसा दोष प्रधान हो उसे देखकर विधान करे तथा इसके पीछे और भी सामान्य उत्तम विधि हम कहते हैं जो मनको मदरहित करे और सुख देवे ॥ २७ ॥

मदात्ययके अन्य यत्न ।

त्वङ्नागपुष्पमगधैलमधूकधान्यैः श्लक्ष्णैरजाजिमरिचैश्च कृतं समांशैः ॥ पानं कपित्थरसवारिपरूषकाढ्यं पानात्ययेषु विधिवत्स्रुतमम्बरांते ॥२८ ॥ ह्रीबेरपद्मपरिपेलवसंप्रयुक्तैः पुष्पैः प्रलिप्य करवीरजलोद्भवैश्च ॥ पिष्टैः सपद्मकयुतैरपि सारिवाद्यैः सेकं जलैश्च वितरेदमलैः सुशीतैः ॥ २९ ॥ त्वक्पत्रचोचमरिचैलभुजंगपुष्पश्लेष्मांतकप्रसवकल्कगुडैरुपेतम् ॥ द्राक्षायुतं हृतमलं मदिरामदार्तैस्तत्पानकं शुचि सुगंधि नरैर्निषेव्यम् ॥ ३० ॥

तज, नागकेशर, पीपल, इलायची, महुवा, धनियां, जीरा और स्याह मिरच इन सबको बराबर लेकर पीस ले और कैथके रसका पानी या फालसेका रस कपडेमें छानकर उसमें यह चूर्ण मिलाके पानात्ययमें विधिपूर्वक पीवे ॥ २८ ॥

नेत्रवाला, कमल, परिपेलव (मोथा), कनेरके फूल और कमलके फूल इन्हें पीसकर पद्माख और सारिवादि मिलाकर (हृदय और शिरपर) लेप करे और निर्मल ठंढे पानीके छींटे देवे (या तरडे देवे) ॥ २९ ॥ तथा तज, पत्रज, चोच (केला), काली मिरच, इलायची, नागकेसर और ल्हेसुवेकी कोंपल (नवीन अंकुर) इन्हें पीसकर गुड और मुनक्का मिलाके पन्ना बनाकर कपडेमें छानकर सुगंधित द्रव्य डालकर मदिरासे जो मदार्त हो उसे सेवन करावे ॥ ३० ॥

पिष्ट्वा पिबेच्च मधुकं कटुरोहिणीं च द्राक्षां च मूलमसकृत्त्रपुसीभवं यत् ॥ कार्पासमूलमथ नागबलां च तुल्यां पीत्वा सुखी भवति साधु सुवर्चलां च ॥ ३१ ॥ काश्मर्यदारुबिडदाडिमपिप्पलीषु द्राक्षान्वितासु कृतमंबुनि पानकं यत् ॥ तद्बीजपूरकरसायुतमाशु पीतं शांतिं परां मदगदेष्वचिरात्करोति ॥ ३२ ॥ द्राक्षासितामधुकजीरकधान्यकृष्णास्वेवं कृतं त्रिवृतया च पिबेत्तथापि ॥ सौवर्चलायुतमुदाररसं फलाम्लं भार्ङ्गीशृतेन च जलेन हिताय सेकः ॥ ३३ ॥

मुलेठी, कुटकी, मुनक्का और ककडी खीरेकी जड इन्हें पीस और छानकर कई वार पीवे अथवा कपासकी जड़, नागबला और सुवर्चला (हुलहुल) इन्हें समान भाग लेकर पीवे तो पानात्ययवाला सुखी होवे ॥ ३१ ॥ खंभारी, दारु (दारुहलदी या देवदारु), बिडनमक, अनार, पीपल, मुनक्का इनका जलमें पन्ना बनाकर बिजोरेका रस मिलाके पीनेसे परमदका रोग शीघ्रही शांत होजाताहै ॥ ३२ ॥ मुनक्का, मिश्री, मुलेठी, जीरा, धनियाँ और पीपल इनका पन्ना बनावे और निशोथके साथ पीवे अथवा उदाररस (जंगली जीवोंके मांसका रस), फलोंकी खटाई इन्हें पान करे तथा भारंगीके क्काथके जलके तरडे देने हितकारक हैं ॥ ३३ ॥

इक्ष्वाकुधामार्गववृक्षकानि काकाह्वयोदुंबरिकाश्च दुग्धे ॥ विपाच्य तस्यांजलिनावमेद्धि मद्यं पिबेदह्नि गते त्वजीर्णे ॥ ३४ ॥ त्वविपिप्पलीभुजगपुष्पविडैरुपेतं सेवेत हिंगुमरिचैलयुतं फलाम्लम् ॥ उष्णांबुसैंधवयुतास्त्वथवा विडत्वकूचव्यैलहिंगुमगधाफलमूलशुंठीः ॥ ३५ ॥ हृद्यैः खैडैरपि च भोजनमत्र शस्तं द्राक्षाकपित्थफलदाडिमपानकं यत् ॥ तत्पानविभ्रमहरं मधुशर्कराढ्यमाम्रातकोलरसपानकमेव वापि ॥ ३६ ॥

कड़वी तोंबी, कडवी तोरी, इंद्रजौ और काठगूलर इन्हें दूधमें पकाकर एक अंजली प्रमाण पान करके वमन कर देवे फिर अजीर्ण नष्ट होनेपर उस दिन मद्य (थोडासा) पीवे ॥ ३४ ॥ तज, पीपल, नागकेशर, बिडनमक, हींग, मिरच, इलायची और फलोंकी खटाई मिलाकर सेवन करे अथवा बिडनमक, तज, चव्य, इलायची, हींग, पीपल, पीपलामूल और सोंठ इन्हें सैंधव और गरम जलसे पीवे ॥ ३५ ॥ और इसमें हृदयको हितकारक खड़ नामक यूष (खट्टे यूष) भोजन करने श्रेष्ठ हैं तथा दाख, कैथका फल और अनार इनका पन्ना बनाके पीना यह पन्ना शहद और खांड डालाहुआ पानविभ्रमको हरताहै अथवा आँवले और बेरके रसका पन्नाभी पानविभ्रमको शांत करता है ॥ ३६ ॥

खर्जूरवेत्रककरीरपरूषकेषु द्राक्षात्रिवृत्सु च कृतं ससितं हितं वा ॥ श्रीपर्णियुक्तमथवा तु पिबेदिमानि यष्ट्याह्वयोत्पलहिमांबुविमिश्रितानि ॥ ३७ ॥ क्षीरिप्रवालबिसजीरकनागपुष्पपत्रैलवालुसितसारिवपद्मकानि ॥ आम्रातभव्यकरमर्दकपित्थकोलवृक्षाम्लवेत्रफलजीरकदाडिमानि ॥ ३८ ॥ सेवेत वा मरिचजीरकनागपुष्पत्वक्पत्रविश्वचविकैलयुतान्रसांश्च ॥ सूक्ष्मांबरस्रुतहिमांश्च सुगंधिगंधान्पानोद्भवान्नुदति सप्तगदानशेषान् ॥ ३९ ॥

खजूर, बेंतके अंकुर, फालसे, मुनक्का और निशोथ इनको मिश्री मिलाके पीना हित है अथवा इनमें खंभारी, मुलेठी, कमल और शीतल पानी मिलाकर पीना बहुत श्रेष्ठ है ॥ ३७ ॥ दूधके वृक्षों (गूलर आदि) के कोमल अंकुर, कमलकी जड, जीरा, नागकेशर, पत्रज, एलवालुक, सुफेद सारिवा और पद्माख इन्हें पीवे, आँवले, भव्य (कमरख), करोंदे, कैथ, बेर और वृक्षोंकी खटाई, बेतके फल, जीरा और अनार इनका पान करे (पन्ना बनाकर पीवे) ॥ ३८ ॥ अथवा मिरच, जीरा नागकेसर, तज, पत्रज, सोंठ, चव्य, इलायची इनसे युक्त रस ठंढे और सुगंधियुक्त महीन वस्त्रमें छानकर पीवे तो सातों प्रकारके मद्यपानजनित रोग (चार प्रकारके मदात्यय और परमद, पानाजीर्ण और पानविभ्रम इन) को निःशेष नष्ट करता है ॥ ३९ ॥

पंचेंद्रियार्थविषया मृदुपानयोगा हृद्याः सुखाश्च मनसः सततं नियोज्याः ॥ पानात्ययेषु विकटोरुनितंबवत्यः पीनोन्नतस्तनभरानतमध्यदेशाः ॥ ४० ॥ प्रौढाः स्त्रियोऽभिनवयौवनपीनगात्र्यः सेव्याश्च पंचविषयातिशयस्वभावाः ॥ ४१ ॥

पांचों इंद्रियोंके विषय (अच्छे शब्द सुनना, अच्छे शीतल स्पर्श, सुंदर रूप देखना, अच्छे पदार्थ खाना, अच्छी सुगंध सूँघना), मृदुपानका योग करना हलके थोडे मद्य पीना), हृदयको प्रिय और मनको सुख देनेवाले पदार्थ सेवन करना तथा विस्तारयुक्त जंघा और नितंबवाली मोटे ऊँचे कुचोंके बोझसे कुछ नव-गई है कमर जिनकी ऐसी तरुण और नवीन यौवनवाली, अच्छे पुष्ट शरीरवाली और पांचों विषय (रूप, रस, सुगंध, स्पर्श और शब्द) इनमें है अतिशय स्वभाव जिनका ऐसी स्त्रियोंका संगम करना पानात्ययमें सुखदायक है पंचविषयातिशय-स्वभावका प्रयोजन यह है कि स्त्री ऐसी सजी धजी, सुन्दर सुगंध लगाये, नरम शरीरवाली, मधुरभाषिणी (शौकीन) हो: जिसमें पुरुषको पांचों इंद्रियोंके आनन्द प्राप्त हों ऐसी स्त्रीका संगम पानात्ययमें (या मद्य पीके) करना सुख देता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

पिबेद्रसं पुष्पफलोद्भवं वा सितामधूकात्रिसुगंधयुक्तम् ॥
संचूर्ण्य संयोज्य च नागपुष्पैरजाजिकृष्णामरिचैश्च तुल्यैः ॥४२॥
वर्षाभुयष्ट्याह्वमधूकलाक्षात्वक्कर्बुदारांकुरजीरकाणि ॥
द्राक्षां च कृष्णामथ केशरं च क्षीरे समालोड्य पिबेत्सुखोष्णम् ४३॥

पुष्पफल (भूरे कोहले) का रस निकालके उसमें मिश्री, महुवेके फूल और त्रिसुगंध (तज, पत्रज, इलायची) डालकर पीवे अथवा नागकेसरको पीसके जीरा, पीपल, मिरच समान भाग मिलाके (उसी पेठेके रसके संग) पीवे ॥ ॥ ४२ ॥ तथा सांठी, मुलेठी, महुवा, लाख, तज, कर्बुदार (कचनाल या ल्हेसुवे) के अंकुर और जीरा, मुनक्का, पीपल और नागकेशर इन्हें दूधमें घोलके निवाया करके पीवे ॥ ४३ ॥

भवेच्च मद्येन तु येन पातितः प्रकामपीतेन सुरासवादिना ॥
तदेव तस्मै विधिवत्प्रदापयेद्विपर्यये भ्रंशमसौ च गच्छति ॥ ४४॥
यथा नरेंद्रोपहतस्य कस्यचिद्भवेत्प्रसादस्तत एव नान्यतः ॥४५॥

जो जिस भांतिके मद्यके जादे पीनेसे गिरा है (पीडित हुआ है) चाहे वह सुरा या आसवादि किसी प्रकारका हो उसे वही मद्य विधिपूर्वक (मात्रायुक्त थोडा) देना (देते रहना चाहिये) विपर्यय (उलटा पलटा करने या और अट्ट पट्ट औषध) करनेसे मनुष्यका देह नष्ट होजाता है या आराम नहीं होता इसपर

(श्लो० ४२) पुष्पफलं कूष्मांडं "पेठा" इति लोके ।

दृष्टांत है कि किसीपर राजा क्रुद्ध होकर प्रतिष्ठादि भंग करदे या क्लेश दे तो उसकी प्रसन्नता फिर राजाहीके प्रसन्न होनेसे होती है अन्यथा नहीं होसकती ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

विच्छिन्नमद्यः सहसा योऽतिमद्यं निषेवते ॥ तस्य पानात्ययोद्दिष्टाः विकाराः संभवंति हि ॥ ४६ ॥ मद्यस्याग्नेयवायव्यौ गुणावंबुवहानि च ॥ स्रोतांसि शोषयेयातां तेन तृष्णा प्रजायते ॥ ४७ ॥

विच्छिन्नमद्य मनुष्य (अर्थात् पहलेका पिया मद्य उतरा ही न हो और) फिर उसपर उस समय और अत्यन्त मद्य पीलेवे तो उसके पानात्ययके कहेहुए विकार होजाते हैं ('विच्छिन्नमद्य' का कई ऐसा भी अर्थ करते हैं कि जिसने मद्य छोड दिया हो) वह यदि फिर अतिमद्य यकायक पीले तो उसे पानात्ययके विकार होजाते हैं ॥ ४६ ॥ मद्यमें आग्नेय और वायवीय दो गुण होते हैं ये जलवाहिनी शिराओंको शोषण करलेते हैं इससे उसे तृषा उत्पन्न होजाती है ॥ ४७ ॥

पाटलोत्पलकंदेषु मुद्गपर्ण्यां च साधितम् ॥ पिबेन्मागधिकामिश्रं तत्रांभो हिमशीतलम् ॥ ४८ ॥ सर्पिस्तैलवसामज्जदधिभृंगरसैर्युतम् ॥ क्वाथेन बिल्वयवयोः सर्वगंधैश्च पेषितैः ॥ ४९ ॥ पक्वमभ्यंजनैश्चेष्टं सेके क्वाथः सुशीतलः ॥ रसवंति च भोज्यानि यथास्वमवचारयेत् ॥ ५० ॥ पानकानि सुशीतानि हृद्यानि सुरभीणि च ५१ ॥

परवल, जलके कंद, मुद्गपर्णी, इनको जलमें औटाले और पीपल मिलाकर ठंढा करके पिलावे ॥ ४८ ॥ तथा घृत, तैल, चरबी और मज्जा, दही, भँगरेका रस इनमें बिल्व और जौका क्वाथ मिलाके और एलादिगण पीसकर मिलाकर पकावे और इससे अभ्यंग करे तथा ठंढे क्वाथोंका सेचन करे और रसीले या मांसरसयुक्त यथायोग्य भोजन करावे तथा शीतल हृदयप्रिय और सुगंधित पन्ने पिलावे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥

त्वचं प्राप्तस्तु पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः ॥
दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥ ५२ ॥

जब मद्यपानकी गरमी पित्त और रक्तसे मूर्च्छित (प्रेरित) होकर त्वचामें प्राप्त होती है तब घोर दाह पैदा करती है इसमें पित्तके समान (पित्तजमदात्ययके समान) औषध लेपनादि करने चाहिये ॥ ५२ ॥

मदात्ययमें शीतविधान ।

शीतं विधानमत ऊर्ध्वमहं प्रवक्ष्ये दाहप्रशांतिकरमृद्धिमतां नराणाम् ॥ तत्रादितो मलयजेन हितप्रदेहश्चंद्रांशुहारतुहिनोदकशीतलेन ॥ ५३ ॥ शीतांबुशीतलतरैश्च शयानमेवं हारैर्मृणालवलयैरवलां स्पृशेयुः ॥ भिन्नोत्पलोज्ज्वलहिमे शयने शयीत पत्रेषु वा सजलबिंदुषु पद्मिनीनाम् ॥ ५४ ॥ आसादयन्पवनमाहृतमिष्टगंधं कह्लारपद्मदलशैवलसंचयेभ्यः ॥ शीतैर्वनांतपवनैः परिमृश्यमानः प्रीतश्चरेद्भवनकाननदीर्घिकासु ॥ ५५ ॥

इसके अगाडी हम शीतल विधानकी विधि कहते हैं जो ऋद्धिवाले मनुष्योंके दाहको शांत करने वाली है । इसमें आरंभहीसे चंदनका लेप करे और चंद्रकांत मणियोंका हार और ठंढे बरफका पानी छिड़के ॥ ५३ ॥ शीतल पानी जैसे शीतल हारोंसे और कमलनालके कंकणोंसे भूषित स्त्रियोंका स्पर्श करे । खिले हुए कमल जैसे उज्ज्वल ठंढे बिस्तरपर सोवे अथवा जलके बिंदुयुक्त कमोदनीके पत्तोंपर लेटे ॥ ५४ ॥ तथा ठंढी पवन जिसमें अच्छी सुगंध हो उसमें बैठे । नीलकमल, रक्तकमल इनके पत्ते, सिवालका संचय इनकी हवा खावे । बगीचेके पासकी ठंढी हवामें टहले या प्रसन्न होकर ठंढे मकानों या बागों या नदीके किनारों पर टहले ॥ ५५ ॥

दाहाभिभूतमथवा परिषेचयेत्तु शीतैरुशीरजलचंदनवारिभिस्तम् ॥ विस्त्रावितां हृतमलां नववारिपूर्णां पद्मोत्पलोज्ज्वलजलामधिवासितां च ॥ ५६ ॥ वापीं भजेत हरिचंदनभूषितांगः कांताकरस्पृशितकर्कशरोमकूपः ॥ तत्रैनमंबुरुहपत्रसमैः स्पृशंत्यः शीतैः करोरुवदनैः कठिनैः स्तनैश्च ॥ ५७ ॥ तोयावगाहकुशला मधुरस्वभावाः संहर्षयेयुरबला मधुरैः प्रलापैः ॥ धारागृहे प्रगलितोदकदुर्दिनाभे क्लांतः शयीत सलिलानिलशीतकुक्षौ ॥ ५८ ॥

दाहवाले (मद्यके दाहवाले) को ठंढे खसके पानीसे या चंदनके पानीसे तर करे अथवा जिस बावडीका मैला जल, मिट्टी, मल आदि निकाल दिया हो और वह कमल सरीखे उज्ज्वल सुगंधित नवीन जलसे पूर्ण हो उसमें बैठे और

(श्लो० ५५) दीर्घिकासु नदीषु ।

शरीरपर हरिचंदन लगावे तथा स्त्रियोंके हाथसे शरीरके रोमांचोंका स्पर्श करावे तथा कमलसरीखे शीतल हाथों, हृदयों, मुखों और कठोर कुचोंसे स्त्री उन्हें स्पर्श करे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ अथवा जलक्रीडामें चतुर मधुर स्वभाववाली स्त्रियां उसे जलक्रीडासे आनंदित करें तथा फुँवारेके स्थानोंमें जहां पानीके फुँवारोंसे वर्षाकालसा प्रतीत होता हो और जिसमें शीतल पानी और ठंढी वायुका आनंद हो ऐसे स्थानोंमें आराम पूर्वक सोवे ॥ ५८ ॥

गंधोदकैः सकुसुमैरुपसिक्तभूमौ पत्राम्बुचंदनरसैरुपलिप्तकुड्ये ॥
जात्युत्पलप्रियककेशरपुंडरीके पुन्नागनागकरवीरकृतोपकारे॥५९॥
तस्मिन्गृहे कमलरेणवरुणे शयीत यत्राहतानिलविकंपितपुष्पदाम्नि ॥ ६० ॥ हेमंतविंध्यहिमवन्मलयाचलानां शीतांभसा सकदलीहरितद्रुमाणाम् ॥ उद्भिन्ननीलनलिनाम्बुरुहाकराणां चंद्रोदयस्य च कथाः शृणुयान्मनोज्ञाः ॥ ६१ ॥ ग्लानं सुदीनमनसं मनसोऽनुकूलाः पीनस्तनोरुजघना घनसारदिग्धाः ॥ तां एवंमार्द्रवसनाः सह संविशेयुः श्लिष्टाबलाः शिथिलमेखलहाररयष्टयः ॥ ६२ ॥

सुगंधित (एलादिगण) के जलसे पृथ्वीको छिडककर पुष्प डालकर तथा चारों तरफ़ या एक तरफ पत्रज, कपूर और चंदन इनके जलसे लिपीहुई भीत हो (या छिड़कीहुई टट्टी लगी हो) तथा (बालछड, तमाल, नागरमोथा, केशर, कमलके पत्र), चँबेली, कमल, प्रियक (कदंब) नागकेशर और पुंडरीक ये सब पदार्थ हों ऐसे स्थानमें (शयन करावे) तथा पुन्नाग, नागकेशर, कनेर इनके हार और गुलदस्तोंसे सजा हो तथा जो कमलकी परागसे लाल हो रहाहो ऐसे स्थानमें लेटे तथा जहां तेज हवासे कंपायमान है पुष्पोंकी माला और ठंढे हिमालय, विंध्याचल और मलयाचलके शीतल जल, केले, हरे पौदे, खिले कमल, कमोदनी और जलके पुष्प जिन स्थानोंमें हों ऐसे स्थानोंमें चन्द्रोदयके समय मनको प्रसन्न करनेवाली कहानियां श्रवण करे तथा मद्यसे शिथिल,

(श्लो० ५९) बहुषु पुस्तकेषु एकपदमधिकं दृश्यते। तत्पदं मांसीतमालेत्यादि । एतत्पद पाठांतरेण पठितं भ्रात्यैव पुस्तकेषु अधिकतया निक्षिप्तम् । तदुक्तं निबंधसंग्रहे अन्ये त्वेवं पठंति—"मांसीतमालतृणकुंकुमपद्मपत्रजात्युत्पलेत्यादि" केचिदिति मन्यंते । त्रिपदात्मक पंचपदात्मकमेव पद्यम् आर्षत्वान्न दूषणीयं ते एतत्पदमपि पठंति ।

दीन चित्तवाले पुरुषको मनके लायक पुष्ट कुचों और जंघावाली सुन्दरी शरीरमें कपूर (अतर आदि) लगाके भिगोयाहुआ वस्त्र (साडी) पहने हुए और जिनकी ढीली होगई हैं मेखला (कांची) और हारयष्टि (हारोंकी लडी) ऐसी वे स्त्रियां उस मद पिये हुए पुरुषके पास निवास करके आलिंगन करें ॥ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

हर्षयेयुः पुनर्नार्यः स्वगुणै रहसि स्थिताः ॥ ताः शैत्याच्छमयेयुश्च पित्तपानात्ययं स्त्रियः ॥ ६३ ॥ रक्तपित्ततृषादाहेष्वयमेव विधिः स्मृतः ॥ सामान्यतो विशेषं तु शृणु दाहेष्वशेषतः ॥६४॥

एकांतमें मदात्ययवालेके पास प्राप्त होकर सुन्दर स्त्रियें अपने गुणों (मुखस्पर्श, आलिंगनादि) से उसे प्रसन्न करें और जो पित्तका मदात्यय हो तो वे स्त्रियें शीतल उपचारोंसे उस पानात्ययको शांत करें ॥ ६३ ॥ रक्तपित्त, तृषा और दाहमें भी सामान्यतासे यही विधि करनी चाहिये परन्तु विशेष २ विधि अन्य उनके उपचारोक्तको भी करे यहांपर दाह शांत करनेकी विधि विशेष करके सुनों ॥ ६४ ॥

दाहरोगका विवेचन ।

कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रिक्तं दहति ह्यति ॥ संचूष्यते दह्यते च ताम्राभस्ताम्रलोचनः ॥ ६५ ॥ लोहगंधांगवदनो वह्निनेवावकीर्यते ॥ तं विलंघ्य विधानेन संसृष्टाहारमाचरेत् ॥ ६६ ॥ अप्रशाम्यति दाहे च रसैस्तृप्तस्य जांगलैः ॥ शाखाश्रयां यथान्यायं रोहिणीं व्यधयेच्छिराः ॥ ६७ ॥ पित्तज्वरसमः पित्ते स चाप्यस्य विधिर्हितः ॥ ६८ ॥

जब समस्त शरीरका रुधिर उद्रेक (उफान) को प्राप्त होताहै तब वह अत्यंत दाह पैदा करताहै इसमें मनुष्य चूसासा जावे और जलासा जावे, तांबे जैसा शरीरका वर्ण होजावे और तांबे जैसे नेत्र होजावें ॥ ६५ ॥ शरीर और मुँहमें लोहेकेसी गंध आवे, शरीरपर जैसे अग्नि डाली हो ऐसा मालूम हो (इसे दाह कहतेहैं) ऐसे मनुष्यको लंघन कराकर संसृष्ट (दाहनाशक संतर्पण) आहार देवे॥ ॥ ६६ ॥ और जंगली जीवोंके मांसका रस देकर तृप्त करे यदि इस भांति उसका दाह शांत न हो तो उसे जंगली जीवोंके रससे तृप्त करके उसके शाखा (हाथ या पावों) की रोहिणी नामक नसकी फस्त खोलनी चाहिये ॥ ६७ ॥ और पित्तके दाहमें पित्तज्वरके समान विधि भी उसके लिये हितकारक होतीहै॥ ६८॥

तृष्णानिरोधज दाह ।

तृष्णानिरोधादब्धातौ क्षीणे तेजः समुत्थितम् ॥ सबाह्याभ्यंतरं देहं दहेद्वै मंदचेतसः॥ ६९ ॥ संशुष्कगलताल्वोष्ठो जिह्वां निष्कृष्य वेपते ॥ तत्रोपशमयेत्तेजस्त्वब्धातुं च विवर्द्धयेत् ॥ ७० ॥ पाययेत्कामममंभश्च शर्कराढ्यं पयोऽपि वा ॥ शीतमिक्षुरसं मंथं वितरेच्चेरितं विधिम् ॥ ७१ ॥

जब तृषाके विशेष रोकनेसे जलसम्बन्धी धातु क्षीण होजातीहैं और अग्नि (शारीरक ऊष्मा) बढजातीहै तब मन्द होगयी है चेतना (बुद्धि) जिसकी ऐसे उस मनुष्यके बाहरी और भीतरी भाग सहित समस्त शरीरको वह अग्नि दाह युक्त करदेताहै (सब शरीरमें दाह पैदा होजाता है) ॥ ६९ ॥ गला, तालु और होठ सूखतेहैं, मनुष्य जीभ बाहर निकाल देता है और कांपता है ऐसी अवस्थामें ऊष्माको शांत करना और जलसम्बन्धी धातुओंको बढाना चाहिये ॥७०॥ और इच्छापूर्वक (थोडा थोडा) पानी पिलाना चाहिये अथवा खांड मिलाहुआ दूध या ठंढा ईखका रस या मंथ पिलावे तथा पहले कही हुई विधि भी करे (शीतलस्थानादिमें शीतल उपचार करे) ॥ ७१ ॥

उदरमें रक्तभरजानेसे दाह ।

असृजा पूर्णकोष्ठस्य दाहोन्यः स्यात्सुदुस्तरः ॥
विधिः सद्योव्रणीयोक्तस्तस्य लक्षणमेवं च ॥ ७२ ॥

किसी प्रकार चोट या क्षत लगनेसे जिसका कोठा रुधिरसे भर जावे उसके भी दाह होताहै यह दाह दुस्तर (दुःसाध्य) अन्य होताहै इसके लक्षण सद्योव्रणके अनुसार हैं और यत्न भी सद्योव्रणीय अध्यायोक्त करने चाहिये ॥ ७२ ॥

धातुक्षयका दाह ।

धातुक्षयोक्तो यो दाहस्तेन मूर्च्छातृषान्वितः ॥
क्षामस्वरः क्रियाहीनः स सीदेद्भृशपीडितः ॥ ७३ ॥
रक्तपित्तविधिस्तस्य हितः स्निग्धोऽनिलापहः ॥ ७४ ॥

धातुक्षयसे भी दाह होताहै, धातुक्षयजनित जो दाह होताहै उससे मूर्च्छा होतीहै, रोगी तृषायुक्त होताहै, आवाज बैठ जातीहै, क्रियाओंसे हीन होकर

(श्लो० ६९) अब्धातौ जलमयद्रवधातौ क्षीणे सति, तेजः पित्तम्। समुत्थितं उल्वणीभूतम् ।
(श्लो० ७३) "धातुक्षयोक्तः" इत्यत्र 'धातुक्षयोत्थः' इति पाठांतरम् ।

रोगी अत्यंत पीडित होताहै इस प्रकारके रोगीको रक्तपित्तकी विधि करनी हित है जो चिकनी वायुनाशक भी हो ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

शोचआदिसे दाह ।

क्षतजेनाश्नतश्चांति शोचतो वाऽप्यनेकधा ॥ तेनांतर्दहतेऽत्यर्थं तृष्णामूर्च्छाप्रलापवान् ॥ ७५ ॥ तमिष्टविषयोपेतं सुहृद्भिरपि संवृतम् ॥ क्षीरमांसरसाहारं विधिनोक्तेन साधयेत् ॥ ७६ ॥

रुधिरसे भोजन करनेवालेको या अनेक प्रकारके शोच करनेवालेको इनसे अत्यंत अंतर्दाह होताहै, तृषा, मूर्च्छा और प्रलाप भी होताहै ॥ ७५ ॥ ऐसे रोगीको प्रिय विषयोंसे प्यारे मित्रोंके पास बिठानेसे तथा दूध, मांसरस इनके आहारसे तथा उक्त (शीतल) विधियोंसे उपचार करे ॥ ७६ ॥

मर्माभिघातज दाह ।

मर्माभिघातजोऽप्यस्ति सोऽसाध्यः सप्तमो मतः ॥ ७७ ॥ सर्व एव च वर्ज्याः स्युः शीतगात्रेषु देहिषु ॥७८॥ एवंविधो भवेद्यस्तु मदिरामयपीडितः ॥ प्रशांतोपद्रवश्चापि शोधनं प्राप्तमाचरेत् ॥७९॥

मर्मस्थानमें चोट लगने और मर्मपर घात होनेसे भी दाह होताहै यह सातवाँ दाह है और असाध्य होताहै ॥ ७७ ॥ सब प्रकारके दाह ठंढे शरीरवालोंके असाध्य और त्यागने योग्य होते हैं ॥ ७८ ॥ जो मनुष्य मद्यके विकारसे दाहयुक्त हो और उसके उपद्रव शांत होगये हों तो उसे यथाप्राप्त विरेचनादिसे शोधन करे ॥ ७९ ॥

सजीरकाण्यार्द्रकशृंगबेरसौवर्चलान्यर्द्धजलप्लुतानि ॥ मद्यानि हृद्यान्यथ गंधवंति पीतानि सद्यः शमयंति तृष्णाम् ॥८०॥

जीरा, अदरख, सोंठ और काला नमक डालकर आधा पानी मिलाकर सुगंध डालकर हृदयप्रिय मद्यको पीनेसे तृषा शांत हो जातीहै ॥ ८० ॥

जलप्लुतश्चंदनभूषितांगः स्रग्वी सभक्तां पिशितोपदंशाम् ॥ पिबेत्सुरां नैव लभेत रोगान्मनोमतिघ्नं च मदं न याति ॥ ८१ ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

जलसे भीगा, चंदनका लेपन कियेहुए, फूलोंकी माला पहनेहुए जो मनुष्य भोजनके साथ मद्य (प्रमाणका मद्य) पीवे वह मद्यजनित रोगोंको नहीं प्राप्त

होता अर्थात् उसे मद्यके रोग नहीं होते तथा मन और बुद्धिको नष्ट करनेवाला यह (नशा) भी नहीं होता (कई "जलप्लुता" ऐसा पाठ मानतेहैं और यह अर्थ करतेहैं कि पानीमें मिलाकर पूर्वोक्त ढँगसे मनुष्य सुरा अर्थात् मदिराको पीवे तो उसे मद्यके रोग नहीं होते और तेज नशा भी नहीं होता) ॥ ८१ ॥

यूनानीके मतसे यह कोई खास व्याधि नहीं केवल शराबकी ज्यादतीका फिसादही समझा जाता है ॥

और डाक्टरीमें इस पानात्ययको "डिलेरियमट्रीमेन्स" (Deliriam Tremens) कहते हैं ॥

इति पं०मुरलीधरवि०सुश्रुतस०भा०टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ४८.

अथातस्तृष्णाप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम तृष्णा (अतितृष्णा) की चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ।

तृष्णाका स्वरूप ।

संततं यः पिबेद्वारि न तृप्तिमधिगच्छति ॥
पुनः कांक्षति तोयं च तं तृष्णार्दितमादिशेत् ॥ १ ॥

जो वार वार पानी पीवे और तृप्ति न हो (प्यास नहीं शांत हो) फिर फिर पानीही पानी मांगता रहे तो उसे तृष्णासे पीडित कहते हैं ॥ १ ॥

तृष्णाके हेतु और संप्राप्ति ।

संक्षोभशोकश्रममद्यपानाद्रूक्षाम्लशुष्कोष्णकटूपयोगात् ॥
धातुक्षयाल्लंघनसूर्यतापात्पित्तं च वातश्च भृशं प्रवृद्धौ ॥ २ ॥
स्रोतांसि संदूषयतः समेतौ यान्यंबुवाहीनि शरीरिणां हि ॥
स्रोतःस्वपां वाहिषु दूषितेषु जायेत तृष्णा प्रबला ततस्तु ॥ ३ ॥

क्रोधसे, शोकसे, परिश्रमसे, मद्यपानसे और रूखे, खट्टे, सूखे, गरम, चरपरे ऐसे पदार्थोंके खानेसे, धातु क्षीण होनेसे, लंघन करनेसे, सूर्यकी धूपसे (या ताप अर्थात् अग्निके तापसे) पित्त और वायु अत्यन्त बढकर ॥ २ ॥ जलके बहनेवाले स्रोतोंको दूषित करदेते हैं और जब मनुष्योंके जलवाही स्रोत दूषित होते हैं तब उसे प्रबल तृषा उत्पन्न होती है ॥ ३ ॥

तृष्णाकी संख्या।

तिस्रः स्मृतास्ताः क्षतजा चतुर्थी क्षयात्तथान्याऽऽमसमुद्भवा च ॥
स्यात्सप्तमी भक्तनिमित्तजा तु लिंगानि तासां शृणु चौषधानि ॥४॥

तृषा सात प्रकारकी होती है-तीनों दोषोंसे पृथक् २ तीन (वातज, पित्तज और कफज तृष्णा), चौथी क्षत (घाव या चोट लगने) से, पांचवीं धातुक्षयसे छठी आमसे और सातवीं तृष्णा भोजनके निमित्तसे होती है इनके लक्षण और औषध सुनो ॥ ४ ॥

तृष्णाका पूर्वरूप।

ताल्वोष्ठकण्ठास्यविशोषदाहाः संतापमोहभ्रमविप्रलापाः ॥
पूर्वाणि रूपाणि भवन्ति तासामुत्पत्तिकालेषु विशेषतो हि ॥५॥

तालु, होंठ, कंठ, मुँह ये स्थान सूखें, दाह, संताप, मोह, भ्रम, प्रलाप ये तृषाके पूर्वरूप हैं परंतु ये उत्पत्तिके समयमें विशेषतासे होते हैं अर्थात् उपरोक्त लक्षण तृष्णाके पूर्वरूपमें भी होते हैं और तृष्णाके समय भी होते हैं बल्कि तृषा उत्पन्न होनेपर ये विशेषतासे होते हैं) ॥ ५ ॥

वातादिकी तृषाके लक्षण।

शुष्कास्यता मारुतसंभवायां तोदस्तथा शंखशिरोगलेषु ॥
स्रोतोनिरोधो विरसं च वक्त्रं शीताभिरद्भिश्च विवृद्धिमेति ॥६॥
मूर्च्छाप्रलापारुचिवक्त्रशोषाः पीतेक्षणत्वं प्रततश्च दाहः ॥
शीताभिकांक्षा मुखतिक्तता च पित्तात्मिकायां परिधूमनं च ॥७॥

वायुकी तृषामें मुख सूखे, शंख (कनपटी), शिर और गलेमें दरद हो, स्रोत रुकेसे हों, मुखमें विरसता हो और ठंढा पानी पीनेसे यह बढे ॥ ६ ॥ पित्तकी तृषामें मूर्च्छा, प्रलाप, अरुचि, मुँह सूखना, नेत्र पीले होना, निरन्तर दाह रहना, शीतल पदार्थोंकी वांछा होना, मुँह चरपरासा होना और कंठमें धुँवांसा उठना ये लक्षण होते हैं ॥ ७ ॥

कफकी तृषाके लक्षण।

बाष्पावरोधात्कफसंवृतेऽग्नौ तृष्णा बलासेन भवेत्तु तत्र ॥
निद्रा गुरुत्वं मधुरास्यता च तृष्णार्दितः शुष्यति चातिमात्रम् ॥८॥

(श्लो० ४) यद्यपि कफहेतुभिस्तृष्णाजनकत्वं न संभवति तथापि वृद्धश्लेष्मा यदा वातपित्तेन सह आवृणोति तदा ताभ्यां संशोष्यमाणस्तृष्णां जनयति (इति डल्हनः)

शीतज्वरश्छर्दिररोचकश्च कफात्मिकायां त्वविपाक एव ॥
एतानि रूपाणि भवंति यस्यां तयार्दितः कांक्षति नाति चांभः ॥९॥

बाष्प (पसीने) के अवरोधसे अथवा आंतर्य बाष्पके रुकनेसे और जठराग्निके कफावृत होजानेसे कफसे भी तृषा होती है इसमें निद्रा, शरीरका भारीपन, मुँहमें मिठास ये लक्षण होते हैं और तृषासे पीडित रोगी अत्यन्त शुष्कसा होजाता है ॥ ७ ॥ शीतज्वर, वमन, अरुचि और अन्नका अविपाक (न पचना) ये लक्षण कफकी तृष्णामें होते हैं और इस कफतृष्णाका रोगी अत्यन्त जलकी वांछा भी नहीं करता (अर्थात् प्यास बहुत हो और जल नहीं भावे) ॥ ९ ॥

क्षतस्य रुक्छोणितनिर्गमाभ्यां तृष्णा चतुर्थी क्षतजा मता तु ॥
तयाभिभूतस्य निशादिनानि गच्छंति दुःखं पिबतोऽपि तोयम् ॥१०॥
रसक्षयाद्या क्षयसंभवा सा तयाभिभूतस्तु निशादिनेषु ॥
पेपीयतेऽभः स सुखं न याति तां सन्निपातादिति केचिदाहुः ॥११॥

क्षत (घाव या चोट लगे हुए मनुष्य) के पीडा और रुधिर निकलनेसे क्षतजा नामक चौथे प्रकारकी तृष्णा होती है इससे पीडित मनुष्यको रातदिन पानी पीते भी दुःखसे कटते हैं ॥ १० ॥ पांचवीं क्षयज तृषा होती है यह रसादिक धातुओंके क्षय हो जानेसे उत्पन्न होती है इससे पीडित मनुष्य रातदिन पानी पीते पीते भी सुखी नहीं होता (प्यास नहीं बुझती) कोई इसे सन्निपातज तृषा कहतेहैं ॥ ११ ॥

आमज और भुक्तज तृषा ।

रसक्षयोक्तानि च लक्षणानि तस्यामशेषेण भिषक् व्यवस्येत् ॥
त्रिदोषलिंगामसमुद्भवा च हृच्छूलनिष्ठीवनसादयुक्ता ॥ १२ ॥
स्निग्धं तथाऽम्लं लवणं च भुक्तं गुर्वन्नमेवाशु तृषां करोति ॥
क्षीणं विचित्तं बधिरं तृषार्तं विवर्जयेन्निर्गतजिह्वमाशु ॥ १३ ॥

आम शेष रहेकी तृषामें रसक्षय तृषाके सब लक्षण होतेहैं ऐसा वैद्य जाने यह आमज तृषा त्रिदोषके लक्षणोंसे युक्त होतीहै और इसमें हृदयमें शूल, मुँहसे पानीसा आना तथा ग्लानि भी होती है (यह तृषा आमके शेष रहेसे होतीहै) ॥ १२ ॥ चिकना, खट्टा, लवणका तथा भारी (गरिष्ठ) भोजन

(श्लो० ११) रसक्षयाद्या इति–रसक्षयजा रक्तक्षयजा इत्याद्या ।

खानेके पीछे शीघ्र ही तृषा पैदा कर देताहै और जो तृषाका रोगी क्षीण हो, जिसकी बुद्धि नष्ट हो, बहरा होजावे, जिसकी जीभ बाहर निकल आई हो उसे असाध्य जानकर त्याग देवे ॥ १३ ॥

तृष्णाकी चिकित्साका आरंभ ।

तृष्णाभिवृद्धावुदरे च पूर्णे तं वामयेन्मागधिकोदकेन ॥
विलेपनं चात्र हितं वदन्ति स्याद्दाडिमाम्रातकमातुलुंगैः ॥ १४ ॥
तृष्णाप्रयोगैरिह सा निवार्या शीतैश्च सम्यग्रसवीर्यजातैः ॥
गंडूषमम्लैर्विरसे च वक्त्रे कुर्याच्छुभैरामलकस्य चूर्णैः ॥ १५ ॥

तृषाके बढनेपर यदि पेट फूल जावे तो उसे पीपलके जलसे (पीपलोंके क्राथ या पीपल और जलसे) वमन करावे और अनार, आँवले और विजोरे इन्हें पीसकर (जिह्वापर) लेप करे (जिससे लार बहे) ॥ १४॥ और रस वीर्यमें शीतल तृषाशांतिकारक प्रयोगोंसे उसे रोके और मुँह विरस हो तो अम्लपदार्थों और आंवलोंके चूर्णसे कुल्ले करे ॥ १५ ॥

सुवर्णरूप्यादिभिरग्नितप्तैर्लोष्टैः कृतं वा सिकतोपलैश्च ॥
जलं सुखोष्णं शमयेत्तु तृष्णां सशर्करं क्षौद्रयुतं हिमं वा ॥ १६ ॥
पञ्चाह्विकाः पञ्चगणा य उक्तास्तेष्वंबु ।सद्ध प्रथमे गणे वा ॥
पिबेत्सुखोष्णं मनुजोऽल्पशस्तु तृषो विमुच्यते हि वातजायाः १७॥

सुवर्ण, चांदी आदिको अग्निमें तपाकर या लोहेको गरम करके या बालू रेत या ईंट या पत्थर लाल करके पानीमें बुझाले फिर उसे निवाया (थोडा थोडा) पीवे तो तृषाको शांत करताहै अथवा ठंढे पानीमें खांड और शहद मिलाके पिलानेसे भी तृषा शांत होजातीहै ॥ १६ ॥ अब वातज तृषाका यत्न कहतेहैं– पांच पांच औषधोंके जो पांच गण (सूत्रस्थानके ३८ वें अध्यायके अन्तमें कहेहैं) उनमें सिद्ध किया जल अथवा प्रथम गण विदारिगंधादिमें सिद्ध कियाहुआ जल निवाया थोडा २ पीवे तो वातजनित तृषासे आराम होजाताहै (कई ऐसा भी अर्थ करतेहैं कि पांच पंचमूल जो कहे उनमेसे आदिके गण अर्थात् लघुपंचमूलका जल पिलावे) ॥ १७ ॥

(श्लो० १४) मागधिकोदकेन पिप्पलीमिश्रितजलेन वामयेत् छर्दयेत् । परतु क्षयजा विहाय तत्र हि क्षीणधातुत्वाद्वमनमनुचितम् । तदुक्तं तंत्रांतरे–"उल्लेखनं तु तृष्णासु क्षयादन्यत्र युज्यते" (इति नि० सं०) विलेपनं हितं स्यादिति वदतीत्यन्वयः । (श्लो० १७) तृषः इति तृष् हलंतस्य पंचम्यंत वातजायाः विशेषणम् ।

पित्तजतृषाका यत्न ।

पित्तघ्नवर्गेण कृतः कषायः सशर्करः क्षौद्रयुतः सुशीतः ॥
पीतस्तृषां पित्तकृतां निहन्ति क्षीरं श्रृतं वाप्यथ जीवनीयैः ॥१८॥

पित्तनाशक (कमल सारिवादि) औषधोंका क्वाथ ठंढा करके खांड और शहद मिलाके पीनेसे पित्तकी तृषा शांत होतीहै अथवा जीवनीयगणसे सिद्ध कियाहुआ दूध पिलावे ॥ १८ ॥

कफकी तृषाका यत्न ।

बिल्वाढकीकण्टकपञ्चमूलीदर्भेषु सिद्धं कफजां निहन्ति ॥
हितं भवेच्छर्दनमेव चात्र तप्तेन निम्बप्रसवोदकेन ॥ १९ ॥

बिल्व, अरहर, कंटक. पंचमूल (सूत्रस्थानके ३८ वें अध्यायमें कहाहुआ) और डाभ इनमें सिद्ध कियाहुआ जल (क्वाथ) कफकी तृषाको शांत करताहै तथा नींबके पत्तोंके क्वाथसे वमन करना भी हित है ॥ १९ ॥

तृषाकी साधारण विधि ।

सर्वासु तृष्णास्वथ वाऽपि पैत्तं कुर्याद्विधिं तेन विना न शान्तिः ॥
पर्यागतोदुम्बरजो रसस्तु सशर्करस्तत्क्वथितोदकं वा ॥ २० ॥
वर्गस्य सिद्धस्य च सारिवादेः पातव्यमम्भः शिशिरं तृषार्तैः ॥२१॥

अथवा सब प्रकारकी तृष्णामें पित्तनाशक विधि करे क्योंकि पित्तकी शांतिके विना तृषा शांत नहीं होती तथा पकेहुए गूलरका रस पिलावे अथवा उसका क्वाथ करके खांड मिलाके पिलावे ॥ २० ॥ अथवा सारिवादि गणसे सिद्ध किया हुआ जल (अर्थात् क्वाथ) ठंढा करके तृषा पीडितोंको पिलावे ॥ २१ ॥

कशेरुश्रृंगाटकपद्ममोचबिसेषु सिद्धं क्षतजां निहन्ति ॥
नीलोत्पलोशीरकुचंदनानि दत्त्वा प्रवाते निशि वासयेत्तु ॥ २२॥
तदुत्तमं तोयमुदारगंधि सितायुतं क्षौद्रयुतं तथैव ॥
द्राक्षाप्रगाढं च हिताय वैद्यस्तृष्णार्दितेभ्यो वितरेन्नरेभ्यः ॥ २३ ॥
ससारिवादौ तृणपंचमूले तथोत्पलादौ मधुरे गणे च ॥
कुर्यात्कषायं च तथैव युक्तं मधूकपुष्पादिषु वा परेषु ॥ २४ ॥

(श्लो० २०) पर्यागतं पक्वं पक्वस्योदुम्बरस्य रसः सशर्करः । "सशर्करः" इत्यत्र केचित् 'सशर्करं' इति पठित्वा क्वथितोदकस्य विशेषणं मन्यंते ।

राजादनक्षीरकपीतनेषु षट् पानकान्यत्र हितानि च स्युः ॥ २५ ॥

कसेरु, सिंघाड़े, कमल, मोचवृक्ष और कमलमूल इनका क्काथ क्षतज तृषाको नष्ट करता है अथवा नीलकमल, खस, पीतचंदन इन्हें भिगोकर रातको मैदानमें रख दे इस उत्तम उदार सुगंधवाले जलमें मिश्री और शहद मिलाके दाख मलकर वैद्य तृष्णापीडितको पिलावे ॥ २२ ॥ २३ ॥ सारिवादिगण और तृणपंचमूल तथा उत्पलादिगण और मधुर (काकोल्यादि) गण इनका क्काथ करके देवे तथा मधूकपुष्पादिकका क्काथ दे तथा खिरनी, दूधके वृक्ष (गूलर आदि) और कपीतन (सुपारी) इनका पानक पिलावे ये छहों पानक यहां हित हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

क्षतकी तृष्णाके यत्न ।

सतुंडिकेरीण्यथवा पिबेत्तु पिष्टानि कार्पाससमुद्भवानि ॥
क्षतोद्भवां रुग्विनिवारणेन जयेद्रसानामसृजश्च पानैः ॥ २६ ॥

तुंडिकेरी (बिंबी) को या कपासके फलोंको पीसकर पीवे तथा घावसे हुई तृषामें घाव (जखम) को अच्छा करनेकी क्रिया करे तथा रसों (मांसरसों) का पान करावे अथवा हिरन आदिका रक्त पिलावे ॥ २६ ॥

क्षयादिकी तृष्णाके यत्न ।

क्षयोत्थितां क्षीरघृतं निहन्यान्मांसोदकं वा मधुकोदकं वा ॥
आमोद्भवां बिल्ववचायुतानां जयेत्कषायैरथ दीपनानाम् ॥ २७ ॥
आम्रातभल्लातबलायुतानि पिबेत्कषायाण्यथ दीपनानि ॥
गुर्वन्नजातां वमनैर्जयेच्च क्षयादृते सर्वकृताश्च तृष्णाः ॥ २८ ॥

क्षयसे उपजी हुई तृषाको दूध व घृतका पान करना या मांसका रस या मुलेठीका रस दूर करताहै और आमज तृषाको बिल्व, वच इनसे मिलेहुए दीपन औषधोंके क्काथ शांत करतेहैं ॥ २७ ॥ अथवा आँवला, भिलावां और खरेंटी मिलाकर दीपन क्काथ पीनेसे आमज तृषा शांत होतीहै और भारी गरिष्ठ अन्नके खानेसे उपजी हुई तृषाको भी दीपन कषाय शांत करतेहैं तथा क्षयके सिवाय सब प्रकारकी तृषाको वमन कराकर शांत करे (और ऐसा भी अर्थ करतेहैं कि गरिष्ठ अन्नसे उपजी हुई तृषाको वमन कराकर शांत करे तथा क्षयजके सिवाय सब दोषोंकी तृषामें वमन करावे) ॥ २८ ॥

श्रमोद्भवां मांसरसो निहन्ति गुडोदकं वाप्यथवापि मंथः ॥
भक्तोपरोधात्तृषितो यवागूमुष्णां पिबेन्मंथमथो हिमं च ॥ २९ ॥

(श्लो० २५) कपीतन आम्रातकम् (इति अ० स्तो०) अन्ये पूगमाहुः ।

या स्नेहपीतस्य भवेच्च तृष्णा तत्रोष्णमम्भः प्रपिबेन्मनुष्यः ॥
मद्योद्भवामर्द्धजलं निहन्ति मद्यं तृषां याऽपि हि मद्यपस्य ॥ ३० ॥
उष्णोद्भवां हन्ति जलं सुशीतं सशर्करं चेक्षुरसं तथाऽम्भः ॥
स्वैः स्वैः कषायैर्वमनानि तासां तथा ज्वरोक्तानि च पाचनानि ॥ ३१ ॥

श्रमसे उपजी हुई तृषामें मांसका रस देवे या गुडका पानी या मन्थ पिलावे इससे वह शांत होती है और भक्तके उपरोध (भोजनके अवरोध) से तृषित मनुष्य गरम यवागू पान करे अथवा ठंढा मन्थ पान करे ॥ २९ ॥ और जो स्नेह पीने (या चिकनाई ज्यादे खाने) से तृषा हो उसमें मनुष्यको गरम पानी पीना चाहिये और मदिरा पीनेवालेको यदि मद्य पीनेपर तत्कालही तृषा हो तो आधा पानी मिलाकर पीनेसे वह शांत होजाती है ॥ ३० ॥ गरमीसे पैदा हुई तृषा हो तो शीतल जल खाँड मिलाकर (शरबत बनाकर) पीवे अथवा ईखके रसमें पानी मिलाकर पीवे और जिस जिस प्रकारकी तृषा हो उसमें उसी प्रकारके क्वाथसे वमन करावे तथा ज्वरोक्त पाचन भी देवे ॥ ३१ ॥

लेपावगाहौ परिषेचनानि कुर्यात्तथा शीतगृहाणि चापि ॥
संशोधनं क्षीररसौ घृतानि सर्वासु लेहान्मधुरान्हिमांश्च ॥ ३२ ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतन्त्रे कायचिकित्सायामष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

सब प्रकारकी तृषामें साधारणतासे ये यत्न करने हितकारक होतेहैं-शीतल लेप, स्नान, छिडके देना तथा ठंढे मकानमें रहना, शोधन (वमन, विरेचन), दूध, मांसके रस, घृत और मधुर शीतल अवलेह इनका सेवन करना ॥ ३२ ॥

यूनानी हकीम तृष्णाको "अतशमुफरत" कहते हैं ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतस० भा० टी० उत्तरतत्रे कायचिकित्सायामष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ४९.

अथातश्छर्दिप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम छर्दि (वमन अर्थात् कै) के प्रतिषेधके अध्यायका व्याख्यान करते हैं ।

छर्दिका हेतु और संप्राप्ति।

अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरपि ॥ अकाले चातिमात्रैश्च तथा

(श्लो० ३०) मद्यपस्य या तृषा मद्योद्भवा तामर्द्धजलयुक्तं मद्यं हि निहन्ति इत्यर्थः ।

सात्म्यैश्च भोजनैः ॥१॥ श्रमात्क्षयात्तथोद्वेगादजीर्णात्क्रिमिदोषतः ॥ नार्याश्चापन्नसत्त्वायास्तथाऽतिद्रुतमश्नतः ॥ २ ॥ बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्द्रुतमुत्क्लेशितो बलात् ॥ छादयन्नाननं वेगैरर्दयन्नंगभंजनैः॥ निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावितः ॥ ३ ॥ दोषानुदीरयन्वृद्धानुदानो व्यानसंगतः ॥ ऊर्द्ध्वमागच्छति भृशं विरुद्धाहारसेविनाम् ॥ ४ ॥

अत्यन्त पतला, अति चिकना, हृदयको अप्रिय ऐसे भोजन करनेसे, लवण खाने (खाकर पानी पीने या लवणके पानी) से, बेसमय (बे क्षुधा) भोजन करने, अति भोजन करने तथा असात्म्य (जो माफ़कत न हो ऐसा) भोजन करनेसे ॥ १ ॥ श्रमसे, क्षयसे, उद्वेगसे, अजीर्णसे तथा कृमियोंके दोषसे, स्त्रियोंके गर्भ होनेसे, जलदी २ भोजन करनेसे, बीभत्स (ग्लानिकारक) पदार्थोंके देखने आदि हेतुओंसे जब बलपूर्वक जी मचलाता है तब वेगसे मुँहको रोकताहुआ और अंगोंको पीडित करता हुआ जो दोष मुखमार्गसे निकलता है उसे छर्दि (वमन) कहते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ विरुद्ध भोजन करनेवाले मनुष्योंके बढेहुए दोषोंको व्यानसे मिलाहुआ उदान वायु ऊपरको ऊर्द्ध्वगामी करता है इससे वमन होता है (कई व्यानकी जगह "प्राणसंगतः" ऐसा पाठ मानते हैं) ॥ ४ ॥

छर्दिका पूर्वरूप।

हृल्लासोद्गाररोधौ च प्रसेको लवणस्य तु ॥
द्वेषोन्नपाने च भृशं वमीनां पूर्वलक्षणम् ॥ ५ ॥

हृल्लास (जी मिचलावे, उबकाई आवे), डकार रुक जावे, मुँहमें पानीसा भर भर आवे, मुखमें खारापन हो, अन्न और पानसे अत्यंत द्वेष हो (अर्थात् ये बुरे लगें) ये लक्षण वमन होनेसे पहले होतेहैं ॥ ५ ॥

प्रच्छर्दयेत्फेनिलमल्पमल्पं शूलार्दितोभ्यर्दितपार्श्वपृष्ठः ॥ श्रांतः सघोषं बहुशः कषायं जीर्णेऽधिकं साऽनिलजा वमिस्तु ॥ ६ ॥ योऽम्लं भृशं वा कटुतिक्तवक्त्रः पीतं सरक्तं हरितं वमेद्वा ॥

(श्लो० २) आपन्नसत्त्वाया गृहीतगर्भाया नार्याः ।

(श्लो० ५) प्रसेको लवणस्य तु इति—लवणस्य प्रसेकः स लवणवत् प्रसेक इत्यर्थः । केचित्तु "प्रसेको लवणस्य तु" इत्यत्र 'प्रसेको लवणास्यता' इति पाठांतर मन्यन्ते (श्लो० ६) "अभ्यर्दितपार्श्वपृष्ठः" इत्यत्र 'अभ्यर्दितवामपार्श्वः' इति वा पाठांतरम् । जीर्णे रिक्तकोष्ठे अधिकम् ।

सदाहचोषज्वरवक्त्रशोषमूर्च्छान्विता पित्तनिमित्तजा सा ॥ ७ ॥
यो हृष्टरोमा मधुरं प्रभूतं शुक्लं हिमं सांद्रकफानुविद्धम् ॥
अभक्तरुग्गौरवसादयुक्तो वमेद्वमी सा कफकोपजा स्यात् ॥ ८ ॥

थोडा थोडा झागों सहित वमन हो, शूल हो, पसली और पीठमें दरद हो, थकान हो, बहुत शब्दयुक्त कसेली वमन हो और भोजनपचेपर (खाली कोठेमें) व्याधि अधिक हो ये लक्षण वायुकी छर्दिके हैं ॥ ६ ॥ जो बहुत खट्टा, पीला, कुछ रक्तता मिला या हरा वमन करे, मुँह चरपरा या कडवा हो, दाह, चोष, ज्वर, मुँहमें खुश्की और मूर्च्छा ये भी हों उसे पित्तकी छर्दि जानो ॥ ७ ॥ जिसके रोमांच हों, मीठा बहुतसा सुपेद ठंढा गाढा कफ मिला वमन करे, अरुचि, भारीपन और थकान भी हों ये लक्षण कफकी छर्दिके हैं ॥ ८ ॥

सर्वाणि[2] रूपाणि[3] भवंति[4] यस्यां[1] सा[1] सर्वदोषप्रभवा[5] मता[6] तु[3] ॥
बीभत्सजा दौर्हृदजाऽऽमजा च याऽसात्म्यतो वा कृमिजा च या हि९
सा पंचमी ताश्च विभावयेत्तु दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्तमादौ ॥
आमाशयोत्क्लेशभवाश्च सर्वास्तस्माद्धितं लंघनमेव तासु ॥ १० ॥

जिसमें सब दोषोंके मिलेहुए लक्षण पायेजावें वह सब दोषों (सन्निपात) की छर्दि जाननी चाहिये और ग्लानिकारक पदार्थोंसे उपजी तथा गर्भधारणोंसे उपजी स्त्रियोंकी छर्दि तथा आमज (भोजनादिके न पचनेसे उपजी) तथा असानुकूल भोजन खाये जानेसे उपजी तथा कृमिदोषकी छर्दि पांचवीं ये सब पहले कहेहुए लक्षणोंसे देखनी चाहिये कि इनमें कौनसा दोष उल्वण है और जहां जिस दोषका उत्कर्ष हो उसका यथोक्त प्रतिकार करना चाहिये जोकि सब प्रकारकी छर्दि आमाशयके उत्क्लेशसे पैदा होतीहै इसलिये सबमें प्रथम लंघन कराना हितकारक होता है ॥ ९ ॥ १० ॥

कृमिदोषकी छर्दि ।

शूलहृल्लासबहुला कृमिजा च विशेषतः ॥
कृमिहृद्रोगतुल्येन लक्षणेन च लक्षिता ॥ ११ ॥

आमाशयमें दरद और बहुत जी मिचलाना विशेषकरके कृमिदोषकी छर्दिमें होता है तथा उसमें कृमिके हृद्रोगके समान लक्षण होते हैं ॥ ११ ॥

(श्लो० ८) कफानुविद्धं कफमिश्रम् । अभक्तरुक् अन्नारुचिः (इति डल्हनः)

असाध्य छर्दिके लक्षण ।

क्षीणस्योपद्रवैर्युक्तां सासृक्पूयां सचंद्रिकाम् ॥
छर्दिं प्रसक्तां कुशलो नारभेत चिकित्सितुम् ॥ १२ ॥

क्षीण मनुष्यके यदि उपद्रवोंसहित छर्दि हो और उसमें रुधिरसहित पीव तथा मोरपंखकेसी चमक हो तथा निरंतर होती हो तो चतुर वैद्य ऐसी छर्दिकी चिकित्साका आरंभ न करे (यह असाध्य है) ॥ १२ ॥

छर्दिकी चिकित्सा ।

वमीषु बहुदोषासु छर्दनं हितमुच्यते ॥ विरेचनं वा कुर्वीत यथादोषोच्छ्रयं भिषक् ॥ १३ ॥ संसर्गांश्चानुपूर्व्येण यथास्वं भेषजाय तान् ॥ लघूनि परिशुष्काणि सात्म्यान्यन्यानि वाचरेत् ॥ १४ ॥ यथास्वं च कषायाणि ज्वरघ्नानि प्रयोजयेत् ॥ १५ ॥

बहुत दोषवाली छर्दिमें वमन होना या कराना हितकारक होता है (अर्थात् उसे रोके नहीं) अथवा विरेचन करावे, जैसा दोष हो वैद्य वैसाही करे (कफकी उल्वणता हो तो वमनही करावे और यदि पित्तकी प्रधानता हो तो रेचन देवे) ॥ ॥ १३ ॥ और जो संसर्गज छर्दि हों उन्हें क्रमसे यथायोग्य औषधोंसे शांत करे और फिर हलके, शुष्क, सानुकूल भोजन देवे (पतले द्रव भोजन नहीं देवे ये फिर वमनकारक होते हैं) और यथा अवसर ज्वरनाशक काथोंका उपयोग भी करना उचित होता है. ॥ १४ ॥ १५ ॥

वायुकी छर्दिका यत्न ।

हन्यात्क्षीरघृतं पीतं छर्दिं पवनसंभवाम् ॥ मुद्गामलकयूषो वा ससर्पिष्कः ससैंधवः ॥ १६ ॥ यवागूं मधुमिश्रां वा पंचमूलीकृतां पिबेत् ॥ पिबेद्वा व्यक्तसिंधूत्थं फलाम्लं वैष्किरं रसम् ॥ १७ ॥ सुखोष्णलवणं वाऽत्र हितं स्नेहविरेचनम् ॥ १८ ॥

दूध और घृत मिलाकर पीना वायुकी छर्दिको नष्ट करता है अथवा मूँग और आंवलोंका यूष घृतयुक्त लवणमिश्रित पीना ॥ १६ ॥ अथवा पंचमूली (बृहत्पंचमूल) से सिद्ध की हुई यवागूमें शहद डालकर पीना अथवा सैंधानमक और फलोंकी खटाई मिलाकर विष्किरपक्षियोंके मांसका रस पीवे अथवा निवाया लवणयुक्त स्नेहका विरेचन भी यहां हित होता है ॥ १७ ॥ १८ ॥

(श्लो० १२) प्रसक्ता नैरंतर्येण स्थित्वा स्थित्वा भवतीति भावः ।

(श्लो० १४) संसर्गान् छर्देः संसर्गान् तान् आनुपूर्व्येण यथास्वं भेषजाय कुर्यादित्यन्वयः ।

पित्तकी छर्दिका यत्न ।

पित्तोपशमनीयानि पानानि शिशिराणि च ॥ कषायाण्युपयुक्तानि घ्नंति पित्तकृतां वमिम् ॥ १९ ॥ शोधनं मधुरैश्चात्र द्राक्षारससमायुतैः ॥ बलवत्यां प्रशंसंति सर्पिस्तैल्वकमेव च ॥ २० ॥

पित्तके नाशक शीतल पन्ने या कषाय जो योग्य होवें वे पित्तकी वमनको नष्ट करते हैं ॥ १९ ॥ अथवा यहां मधुर द्रव्योंमें द्राक्षाके रसके योगवाले विरेचन देने उचित हैं और जो प्रबल छर्दि हो तो तैल्वक (लोधका) पका घृत देवे ॥ २० ॥

कफकी छर्दिका यत्न ।

आरग्वधादिभिर्यूषं दशांगयोगमेव च ॥
पाययेतार्थं सक्षौद्रं कफजायां चिकित्सकः ॥ २१ ॥

आरग्वधादिका क्काथ अथवा दशांगयोग शहद सहित मिलाके वैद्य कफकी छर्दिमें पिलावे ॥ २१ ॥

(वक्तव्य) यूषसे प्रयोजन यहां क्काथ है और दशांगयोगको कई दशमूल मानते हैं, कई दशांग क्काथ मानते हैं (देखो टिप्पणी) ॥

तीनों दोषोंकी छर्दिका यत्न ।

कृतं गुडूच्या विधिवत्कषायं हिमसंज्ञितम् ॥
तिसृष्वपि भवेत्पथ्यं माक्षिकेण समन्वितम् ॥ २२ ॥

गिलोयका हिम (शीत) कषाय विधिपूर्वक बनावे और शहद मिलाकर पिलावे यह तीनों दोषोंकी छर्दिमें श्रेष्ठ है (त्रिदोषकी या पृथक् तीनों दोषोंकी छर्दिमें पथ्य है) ॥ २२ ॥

बीभत्सजनितादि छर्दिकी चिकित्सा ।

बीभत्सजां हृद्यतमैर्दौर्हृदां कांक्षितैः फलैः ॥ लंघनैर्वमनैश्चासां सात्म्यैश्चासात्म्यकोपजाम् ॥ २३ ॥ कृमिहृद्रोगवच्चापि कृमिजां साधयेद्वमिम् ॥ वितरेच्च यथादोषं शस्तं विधिमनंतरम् ॥ २४ ॥

ग्लानिसे उपजीहुई छर्दिको हृदयप्रिय पदार्थोंसे और गर्भवती स्त्रीकी छर्दिको उसके मन चाहे फलोंसे और असानुकूल भोजनजनित छर्दिको लंघन, वमन और

(श्लो० २१) यूषं कषायम् (इति डल्हनः) दशागयोग इति-केचित् दशागयोगेन दशमूलं मन्यते, केचित् दशांगक्काथमेव मन्यते । तदुक्तम्-"वासामृतापर्पटकं निंबभूनिंबमार्दवैः ॥ त्रिफलाकुलत्थकैः क्काथः सक्षौद्रः" इति दशागक्काथः ।

सानुकूल भोजनोंसे जीते ॥ २३ ॥ और कृमिदोषजनित छर्दिको कृमिके हृद्रोगके अनुसार यत्नसे साधन करे और इसके सिवाय दोषोंके अनुकूल यथायोग्य श्रेष्ठ विधि करे ॥ २४ ॥

दधित्थरससंयुक्तां पिप्पलीं माक्षिकान्विताम् ॥ मुहुर्मुहुर्नरो लीढ्वा छर्दिभ्यः प्रतिमुच्यते ॥ २५ ॥ समाक्षिका मधुरसा पीता वा तंडुलांबुना ॥ तर्पणं वा मधुयुतं तिसृणामपि भेषजम् ॥२६॥ स्वयंगुप्तां सयष्ट्याह्वां तंडुलांबुमधुद्रवाम् ॥ पिबेद्यवागूमथवा सिद्धां पत्रैः करंजजैः ॥ २७ ॥ युक्ताम्ललवणाः पिष्टाः कुस्तुंबुर्योऽथवा हिताः ॥ तंडुलांबुयुतं खादेत्कपित्थं त्र्यूषणेन वा ॥२८॥

कैथके रसमें पीपल और शहद मिलाके वारवार चाटनेसे छर्दिमें आराम होजाताहै ॥ २५ ॥ अथवा मूर्वाको शहदमें मिलाकर उसे चाटे और ऊपरसे चावलोंका पानी पीवे अथवा तर्पणपदार्थोंमें शहद मिलाके पीवे यह तीनों दोषोंकी छर्दिमें श्रेष्ठ औषध है ॥ २६ ॥ अथवा केवॉचके बीजोंको मुलेठीमें मिलाकर चावलोंके पानी और शहदमें घोलकर पीवे अथवा करंजके पत्तोंके क्काथमें पकाई यवागू पान करे ॥ २७ ॥ अथवा खटाई और नमक मिलाकर धनियाँको पीसे और इस चटनीको चाटे अथवा कैथमें त्रिकटु और चावलोंका पानी मिलाके खावे ॥ २८ ॥

सिताचंदनमध्वाक्तं लिह्याद्वा मक्षिकाशकृत् ॥ पिबेत्पयोग्नितप्तं च निर्वाप्य गृहगोधिकाम् ॥ २९ ॥ सर्पिःक्षौद्रयुतान्वापि लाजसक्तून्पिबेत्तथा ॥ सर्पिःक्षौद्रसितोपेतां मागधीं वा लिहेत्तथा ॥ ३० ॥ धात्रीरसे चंदनं वा श्रृतं मुद्गदलांबु वा ॥ कोलामलकमज्जानं लिह्याद्वा त्रिसुगंधिकम् ॥ ३१ ॥ सक्षौद्रां शालिलाजानां यवागूं वा पिबेन्नरः ॥ ग्रेयाण्युपहरेच्चापि मनोघ्राणसुखानि च ॥ ३२ ॥ जांगलानि च मांसानि स्वादुवत्पानकानि च ॥ भोजनानि विचित्राणि कुर्यात्सर्वास्वतंद्रितः ॥३३॥

इति सुश्रुतसं०उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायामेकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः॥४९॥

अथवा मिश्री, चंदन, शहद इनमें मक्खीकी बीट मिलाकर चाटे अथवा दूधको अग्निपर गरम करके उसमें गृहगोधिका (छपकली) डालकर पीवे ॥ २९ ॥

(श्लो० २६) मधुरसा मूर्वा । अन्ये द्राक्षामाहुः ।

धानकी खीलोंके सत्तू बनाके घृत और शहद मिलाके खावे अथवा घृत, शहद अथवा मिश्री इनमें पीपल मिलाकर चाटे ॥ ३० ॥ अथवा आँवलोंके रसमें चंदन मिलाके चाटे अथवा मूंगकी दालके औटाये पानीको पीवे अथवा बेर और आंवलोंके गूदेमें त्रिसुगंध मिलाके चाटे ॥ ३१ ॥ अथवा चावलोंकी खीलको यवागूमें शहद मिलाके पीवे तथा मन और नासिका इंद्रियको सुख देनेवाले सुगंधित पदार्थोंको सूंघे ॥ ३२ ॥ और जंगली जीवोंके मांस तथा स्वादु (मजेदार) पानक (पीनेके पदार्थ) तथा विचित्र अच्छे भोजन ये सब प्रकारकी छर्दिमें सावधान वैद्यको उपयोग करने उचित हैं ॥ ३३ ॥

यूनानी वाले छर्दिको "कै" या कैआना कहते हैं और डाक्टरीमें वामेटिंग (Wametiug) कहते हैं ॥

इति प०मुरलीधरवि०सुश्रुतस०भा०टी० उत्तरतन्त्रे कायचिकित्सायामेकोनपचाशत्तमोऽध्यायः ४९

पंचाशत्तमोऽध्यायः ५०.

अथातो हिक्काप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

यहांसे अगाडी अब हम हिक्का (हिचकी या हुचकी) के प्रतिषेधका व्याख्यान करते हैं।

हिक्काके हेतु।

विदाहिगुरुविष्टंभिरूक्षाभिष्यंदिभोजनैः ॥ शीतपानासनस्थान-रजोधूमानिलानलैः ॥१॥ व्यायामकर्मभाराध्ववेगाघातापतर्पणैः ॥ आमदोषाभिघातस्त्रीक्षयरोगप्रपीडनैः ॥ २ ॥ विषमाशनाध्यशनै-स्तथा संशमनैरपि ॥ हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ॥३॥

विदाही (जलन करनेवाले तीक्ष्ण) वस्तु खानेसे, गरिष्ठ, विष्टंभी (कब्जियत करनेवाले), रूखे अभिष्यंदी भोजन करनेसे, शीतस्थान, शीतल पीनेके पदार्थ, रज (धूलि), धुवां, वायु और अग्नि इनका अधिक संपर्क होनेसे ॥ १ ॥ परिश्रमके काम करनेसे, बोझा उठानेसे, मार्ग अधिक चलनेसे, मलमूत्रादिके वेग रोकनेसे, तृप्ति न करनेवाले पदार्थ खानेसे, आमके दोषसे, चोट आदि लगनेसे, अति स्त्रीसंग करनेसे, क्षयरोगकी पीडासे ॥ २ ॥ विषम भोजन करने और भोजनपर भोजन करनेसे तथा संशमन कर्म करनेसे मनुष्योंके हिक्का, श्वास तथा खांसी पैदा होते हैं ॥ ३ ॥

(श्लो० २) अपतर्पणैः अतृप्तिकरैर्लंघनैश्च आमदोषेण "उष्मणाल्पबलत्वेन धातुमांद्यादपाचितम् ॥ दुष्टमामाशयगतं रसमामं प्रचक्षते" (इति नि० स०)

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सस्वनो यकृत्प्लीहांत्राणि मुखादिवाक्षिपन् ॥ स घोषवानाशु हिनस्त्यसून्यतस्ततस्तु हिक्केति भिषग्भिरुच्यते४

जब पूर्वोक्त कारणोंसे वायु (समान और उदान) शब्द सहित यकृत, प्लीहा और आंतोंको मुखद्वारोंसे क्षेपण करके (उछालके या निकालता या हिलाता हुआसा) घोषणयुक्त (अव्यक्तध्वनियुक्त) उर्द्धगामी हो, मुखकी तरफ प्रवृत्त हो और (बढ जाय तो) शीघ्र प्राणको नष्ट करदेता है इससे इसे वैद्य हिक्का कहते हैं ॥ ४ ॥

(वक्तव्य) इसमें ' सस्वन ' और 'घोषवान्, दो शब्द एक अर्थके क्यों कहे इसका समाधान यह है कि स्वन साधारण अल्पशब्द होता है और घोष ऊँचा जोरका और गंभीर शब्द होता है सो घोषवान् शीघ्र प्राणनाशक हिक्का होती है यह शब्द गंभीरा और महतीमें बहुत भयंकरसा होता है बल्कि कई "सघोषवान्" की जगह "सदोषवान्" ऐसा पाठांतर मानते हैं ॥

वायुसे कई समान और उदान मानते हैं कई उदान और प्राण मानते हैं ॥

हिक्काकी संख्या ।

अन्नजां यमलां क्षुद्रां गंभीरां महतीं तथा ॥
कफेनानुगतो वायुः पंच हिक्काः करोति हि ॥ ५ ॥

कफके अनुगत हुआ वायु पांच प्रकारकी हिक्कायें पैदा करता है वे पांच प्रकारकी हिक्का ये हैं–अन्नजा, यमला, क्षुद्रा, गंभीरा और महती ॥ ५ ॥

हिक्काका पूर्वरूप ।

मुखं कषायमरतिर्गौरवं कंठवक्षसोः ॥
पूर्वरूपाणि हिक्कानामाटोपो जठरस्य च ॥ ६ ॥

मुँह कसेला हो, बेचैनी हो, कंठ और छातीमें भारीपन हो तथा पेटका फुलावसा हो ये लक्षण हिचकीके पूर्वरूपके हैं ॥ ६ ॥

पांचों हिक्काओंके लक्षण ।

पानान्नैरतिसंयुक्तैः सहसा पीडितोनिलः ॥ हिक्कयत्यूर्द्धगो भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक् ॥ ७ ॥ चिरेण यमलैर्वेगै र्या हिक्का संप्रवर्तते ॥ कंपयंती शिरो ग्रीवां यमलां तां विनि-

---

(श्लो० ४) मुहुर्मुहुरिति–वायुरत्र सोदानः प्राणो बोद्धव्यः आक्षिपन् निःसारयन् इवेत्यर्थ. यकृत्प्ली-हांत्राणि मुखमानीय निःसारयन्निव वायुरुदेतीति । उदेति ऊर्ध्वं याति (इति भा० मि०) "सघोषवान्" इत्यत्र 'सदोषवान्' इति पाठः (इति भा० प्र०)

दिशेत् ॥ ८ ॥ विकृष्टकालैर्या वेगैर्मन्दैः समभिवर्तते ॥ क्षुद्रिका नाम सा हिक्का जत्रुमूलात्प्रधाविता ॥ ९ ॥ नाभिप्रवृत्ता या हिक्का घोरा गंभीरनादिनी ॥ शुष्कौष्ठकंठजिह्वास्यश्वासपार्श्वरुजाकरी ॥ अनेकोपद्रवयुता गंभीरा नाम सा स्मृता ॥ १० ॥ मर्माण्यापीडयंतीव सततं या प्रवर्तते ॥ देहमायम्य वेगेन घोषयत्यतितृष्यतः ॥ महाहिक्केति सा ज्ञेया सर्वगात्रप्रकंपिनी ॥ ११ ॥

जलदी जलदी अत्यन्त भोजन करने या पान करनेसे पीडित हुआ वायु (आमाशय वायु) उर्द्धगामी होकर हिक्का पैदा करता है उसे वैद्य "अन्नजा" कहते हैं (अर्थात् जलदी अन्न खायेजानेसे जो वायु उसके संग जाकर भीतर रुक जाताहै और वातुल या तीक्ष्ण पदार्थ खायेजानेसे वहांका वायु ऊपरको गमन करनेके लिये हिचकी पैदा करताहै वह "अन्नजा" हिक्का होती है यह प्रायः सब लोगोंके बहुधा हुआ करतीहै और साधारण होती है) ॥ ७ ॥ जो हुचकी देर देरसे दो वेगोंसे आवे, शिर और ग्रीवाको कंपित करे उसे "यमला" कहतेहैं ॥ ८ ॥ जो हुचकी बहुत समयके अनन्तर मन्द वेगोंसे आवे और जत्रुके मूलसे आरम्भ हो उसे "क्षुद्रा" कहतेहैं (जत्रुमूल जैज्जटाचार्य कांख और हृदयकी संधिको बतातेहैं) ॥ ९ ॥ जो हुचकी नाभिसे उठें, घोर और गम्भीर शब्द हो, होंठ, कंठ, जीभ, मुँह ये सूखें, श्वास और पँसलीका दर्द भी हो और अन्य उपद्रव भी हों उसे "गंभीरा" कहतेहैं ॥ १० ॥ जो मर्मोंको पीडा करती हुई निरंतर चले और अपने वेगसे देहको फैला दे (देह ढीला पडजाय) और भयानक शब्द हो ,तृषा बहुत रहे, सारा शरीर जिसके वेगसे कांपे उसे "महती" या "महाहिक्का" कहतेहैं (ये दो पिछली असाध्य रोगोंके अन्तमें उपद्रवरूपसे प्रायः होतीहैं और असाध्य होतीहैं) ॥ ११ ॥

हिक्काकी असाध्यता ।

आयम्यंते हिक्कतोऽगानि यस्य दृष्टिश्चोर्द्ध ताम्यते यस्य गाढम् ॥ क्षीणोऽन्नद्विट् कासते यश्च हिक्की तौ द्वावंत्यौ वर्जयेद्धिक्कमानौ १२

जिसका शरीर हुचकीके समय फैलजावे तथा दृष्टि ऊपर विशेष रहे, अँधेरी आजाय, नेत्र गड जावे, रोगी क्षीण हो, खांसीभी हो ऐसा हुचकीका रोग असा-

(श्लो० ९) जत्रु कक्षोरसोः संधिः (इति जैज्जटः) जत्रुमूलग्रहणेन हृदयक्लोमकंठास्यग्रहणम् (इति गयदासः)

ध्य होताहै और अंतकी दो हुचकी गंभीरा और महतीवाले रोगी असाध्य त्यागने योग्य होतेहैं ॥ १२ ॥

(वक्तव्य) वास्तवमें अन्नजा हुचकीकी औषध नहीं करनी पडती यह आपही आप दो चार मिनटमें शांत होजातीहै और क्षुद्रा सुखसाध्य होतीहै, यमला कष्टसाध्य होतीहै और कभी असाध्य भी होजातीहै और गंभीरा और महती ये असाध्य होतीहैं और प्रायः मनुष्यके अन्तसमयमें होतीहैं ।

हिक्काकी चिकित्साका आरंभ ।

प्राणायामोद्वेजनत्रासनानि सूचीतोदैः संभ्रमश्चात्र शस्तः ॥
यष्ट्याह्वं वा माक्षिकेणावपीडः पिप्पल्यो वा शर्कराचूर्णयुक्ताः ॥१३॥
सर्पिः कोष्णं क्षीरमिक्षो रसो वा नातिक्षीणे स्त्रंसनं छर्दनं च ॥१४॥

प्राणायाम कराना, उद्वेग कराना, डराना, सूई चुभोना, भ्रम दिलाना ये(साधारण हिचकियोंके लिये) श्रेष्ठ हैं अथवा मुलेठीका चूर्ण शहदमें मिलाके अवपीडन करे या पीपल और खांड इन्हें मिलाकर खावे ॥ १३ ॥ अथवा निवाया घृत या ईखका रस भी हितकारक है और जो हुचकीका रोगी अति क्षीण नहीं हो तो उसे विरेचन देवे तथा वमन करावे (अर्थात् बलवान् हो तो वमन करावे और विरेचन देवे) ॥ १४ ॥

नारीपयःपिष्टमशुक्लचंदनं घृतं सुखोष्णं च ससैंधवं तथा ॥ चूर्णीकृतं सैंधवमंभसा तथा निहंति हिक्कां च हितं च नस्यतः ॥१५॥

स्त्रीके दूधमें घिसाहुआ लाल चन्दन तथा सैंधव और गरम घृत तथा जलके साथ पिसाहुआ सैंधा नमक इन योगोंकी नस्य लेनेसे हुचकीकी पीडा नष्ट होजातीहै ॥ १५ ॥

युंज्याद्धूपं शालिनिर्यासजातं नैपालं वा गोविषाणोद्भवं वा ॥
सर्पिःस्निग्धैश्चर्मबालैःकृतं वा हिक्कास्थाने स्वेदनं वापि कार्यम् ॥१६॥
क्षौद्रोपेतं गैरिकं कांचनाह्वं लिह्याद्भस्म ग्राम्यसत्त्वास्थिजं वा ॥
तद्वच्छ्वाविन्मेषगोशल्यकानां रोमाण्यंतर्धूमदग्धानि चात्र ॥ १७ ॥
मध्वाज्याक्तं बर्हिपत्रप्रसूतमेवं भस्मौदुंबरं तैल्वकं वा ॥
स्वर्जिक्षारं बीजपूराद्रसेन क्षौद्रोपेतं हंति लीढाशु हिक्काम् ॥१८॥

(श्लो० १५) नारीपयः इत्यादि नस्यत्रयम् । (श्लो० १८) बर्हिपत्रप्रसूतं मयूरपत्राज्जातम् (इति नि० सं०)

शालका निर्यास (सालका गोंद) या मैनसिल या गौके सींगका टुकडा इनमेंसे किसीकी धूनी देवे अथवा चर्म या बाल इनमें घृत मिलाके धूनी देवे अथवा हुचकीके स्थान (पेट, कुक्षि आदि) का स्वेदन करे (चिकनाई लगाके सेक दे) ॥ १६ ॥ अथवा सुवर्णगेरू (सोनियागेरू) शहदमें मिलाके चाटे अथवा ग्राम्य पशुओंके हड्डीकी भस्म शहदसे चाटे अथवा सेह, मेंढ़ा, गौ और शल्यक (सेहका भेद) इनके रोंगटोंको अंतरधूमसे दग्ध करके शहदसे चाटे ॥ १७ ॥ अथवा मोरके पंखके चंदे जलाके शहद और घृतसे चाटे या गूलरकी भस्म और लोधकी भस्मको शहद, घृतसे चाटे अथवा सज्जीखार और नींबूके रसको शहद मिलाके चाटे तो शीघ्रही हुचकी बंद होजाती है ॥ १८ ॥

सर्पिःस्निग्धा घ्नंति हिक्कां यवाग्वः कोष्णा ग्रासाः पायसो वा सुखोष्णः ॥ शुंठीतोये साधितं क्षीरमाजं तद्वत्पीतं शर्करासंयुतं वा ॥ १९ ॥ आतृप्तेर्वा सेव्यमानं निहन्याद्घ्रातवा हिक्कामाशु मूत्रं त्वजाव्योः ॥ २० ॥

घृतसे स्निग्ध यवागू खाना, निवाये २ ग्रास लेने तथा निवायी २ खीर खाना अथवा बकरीका दूध सोंठ सहित औटायाहुआ मिश्री डालकर तृप्तिपर्यंत पीना अथवा बकरी और भेडका मूत्र सूँघना इनसे शीघ्र हुचकी रुकजाती है ॥१९॥२०॥

सपूतिकीटं लशुनोग्रगंधाहिंग्वब्जमाचूर्ण्य सुभावितं तत् ॥
क्षौद्रं सितावारणकेशरं च पिबेद्रसेनेक्षुमधूकजेन ॥ २१ ॥
पिबेत्पलं वा लवणोत्तमस्य द्वाभ्यां पलाभ्यां हविषः समग्रम् ॥
हरीतकीं कोष्णजलानुपानां पिबेद्घृतं क्षारमधुप्रपन्नम् ॥ २२ ॥
रसं कपित्थान्मधुपिप्पलीभ्यां पिचुप्रमाणं प्रपिबेत्सुखाय ॥
कृष्णां सितां चामलकं च लीढं सशृंगबेरं मधुनाऽथवापि ॥ २३ ॥
कोलास्थिमज्जांजनलाजचूर्णं हिक्कां निहन्यान्मधुना च लीढम् ॥२४॥

पूतिकीट (एक प्रकारका वर्षाऋतुका कीट होता है अथवा कई ' पूतिकाष्ठ ' पाठान्तर मानते हैं पूतिकाष्ठ देवदारुका नाम) है लहसन, वच, हींग, कमलगट्टे इन्हें पीसकर इनमें शहद, मिश्री और नागकेशर मिलालेवे इसको ईखके रस तथा महुवेके रससे पीवे ॥ २१ ॥ अथवा एक पल सैंधवको दो पल घृतसे पीवे अथवा

(श्लो० २१) भावितम् अत्र मिश्रीकृतामिति ज्ञेयम् । अन्ये तु "हिंग्वब्जमाचूर्ण्य सुभावितम्" इत्यत्र 'हिंग्वबुना चूर्ण्य सुभावितम्' इति पाठांतरमाहुः । तत्र हिंग्वंबुना भावितमित्यर्थः ।

हरडेको गरम जलसे पीवे अथवा घृतमें जवाखार और शहद मिलाके पीवे॥ २२॥ अथवा कैथके रसको शहद और पीपल मिलाके कर्षभर पीवे अथवा पीपल, मिश्री, आंवले, सोंठ इन्हें शहदसे चाटे ॥ २३ ॥ अथवा बेरकी गुठलीकी मींगी, रसोत, धानकी खील इन्हें पीसके शहद मिलाके चाटे तो हुचकी बंद होजावे ॥ २४॥

पाटलायाः फलं पुष्पं गैरिकं कटुरोहिणी ॥ खर्जूरमध्यं मागध्यः कासीसं मधुनाम च ॥ २५ ॥ चत्वारो यूषयोगाः स्युः प्रतिपाद-प्रदर्शिताः ॥ मधुद्वितीयाः कर्तव्यास्ते हिक्कासु विजानता ॥ २६ ॥

१ पाटलाके फल और पुष्प । तथा २ गेरू और कुटकी । तथा ३ खजूरकी मींगी और पीपल । तथा ४ कसीस और मुलेठी ॥ २५ ॥ ये चार प्रयोग एक एक पदमें कहे हैं ये शहदमें मिलाकर जानकार वैद्यको हिक्कारोगमें करने (उपयोग करना) चाहिये ॥ २६ ॥

कपोतपारावतलावशल्यकश्वदंष्ट्रगोधावृषदंशजान्रसान् ॥ पिबेत्फलाम्लानहिमान्ससैंधवान्स्निग्धांस्तथैवार्ष्यमृगद्विजोद्भवान् ॥२७॥

कपोत, पारावत (कबूतर), लवा, शल्यक, पक्षी और श्वदंष्ट्र (गोखरू या सेह नामक जंतु), गोधा (गोह), वृषदंश (वनमार्जार) इनके मांसके रसोंको फलोंकी खटाईसे युक्त, सैंधवसहित, स्निग्ध और गरमागरम पीवे तथा ऋष्य (मृगभेद) मृग और पक्षीके मांसका रस भी इसी भांति पीवे ॥ २७ ॥

विरेचनं पथ्यतमं ससैंधवं घृतं सुखोष्णं च सितोपलायुतम् ॥ सदागतावूर्द्ध्वगतेऽनुवासनं वदंति केचिच्च हिताय हिक्किनाम् ॥२८॥

इति सुश्रुतसं०उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

हिक्का रोगमें विरेचन देना बहुत ही पथ्य है जो सैंधव युक्त हो तथा निवाया घृत मिश्री मिलाकर पीना भी हित होता है और कोई ऐसा भी कहते हैं वायु ऊर्द्ध्वगामी होजाताहै तब हिक्कामें अनुवासन वस्ति करना हितकारक होताहै॥ २८॥

यूनानीवाले हिक्का अर्थात् हुचकीको "फवाक" कहते हैं और डाक्टरीमें इसे "हेकप" (Hecup) कहते हैं ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतस० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्साया पचाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

(श्लो० २५ । २६) मधुनाम यष्टीमधुकम् । केचिदत्र "कासीसं दधिनाम च" इति पाठांतरं मन्यंते । तत्र दधिनाम कपित्थम् । चत्वारो यूषयोगा इति–यूषशब्देनात्र लेहो गृह्यते । केचित्तु "चत्वारो येषु योगाः स्युः" इति पाठांतरं मन्यते तत्र चत्वारो योगाः स्युः येषु प्रतिपादप्रदर्शितास्ते मधुद्वितीयाः कर्तव्या इत्यन्वयः । केचित्तु यूषशब्देनात्र क्वाथं मन्यते । (श्लो० २७) वृषदंशः वनमार्जारः । (श्लो० २८) सदागतौ ऊर्ध्वगते वायौ ऊर्ध्वगते ।

एकपंचाशत्तमोऽध्यायः ५१.

अथातः श्वासप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

यहांसे अगाडी अब हम श्वासरोगके प्रतिषेधका व्याख्यान करतेहैं।

यैरेव कारणैर्हिक्का बहुभिः संप्रवर्तते ॥ तैरेव कारणैः श्वासो घोरो भवति देहिनाम् ॥ १ ॥ विहाय प्रकृतिं वायुः प्राणोऽथ कफ-संयुतः ॥ श्वासयत्यूर्द्धगो भूत्वा तं श्वासं परिचक्षते ॥ २ ॥

जिन अनेक कारणोंसे हिक्का उत्पन्न होतीहै प्रायः उन्हीं कारणोंसे मनुष्योंके घोर श्वासरोग होजाताहै (जो विदाही, गुरु, रूक्ष भोजनादि हुचकीके कारण पहले कहेहैं उन्हींसे श्वास पैदा होताहै) ॥ १ ॥ जब अपनी प्रकृतिके विरुद्ध होकर प्राणवायु कफसे मिलके ऊर्ध्वगामी होकर श्वास उत्पन्न करता है (श्वासकी गति प्राकृतिक श्वाससे विरुद्ध होजातीहै) तब इसे श्वास रोग कहते हैं ॥ २ ॥

(वक्तव्य) हिक्कामें प्राण और उदान वायु दोनों कारण होतेहैं और श्वासमें केवल प्राणवायु ही विकृत होताहै क्योंकि हुचकीमें आमाशयमें दूषण होताहै इससे उसमें आमाशयका उदान वायु जो कंठनलका और आमाशयतक रहता है वह भी शामिल होताहै और श्वासमें हृदय अर्थात् छाती, फेफडे और श्वासनल-कामें विकार होताहै आमाशयमें विकार नहीं होता इससे इसमें केवल प्राणवायु ही प्रधान है यही इन हुचकी और श्वासमें अंतर है यदि श्वास बहनेवाली नाडियाँ कफसे भरजावें या वायुसे रूक्ष खुश्क होकर उनमें खुरदराहट होजावे या वे नाडियां सुकड जावें या अधिक फैल जावें तो उनमें प्रतिलोम वायुके गमन करनेसे श्वासरोग होताहै ॥

श्वासरोगकी संख्या और पूर्वरूप।

क्षुद्रकस्तमकश्छिन्नो महानूर्द्धश्च पंचधा ॥ भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः॥ ३ ॥ प्राग्रूपं तस्य हृत्पीडा भक्तद्वेषोऽरतिः परा ॥ आनाहः पार्श्वयोः शूलं वैरस्यं वदनस्य च ॥ ४ ॥

श्वासरोग पांच प्रकारका होता है। १ क्षुद्रश्वास, २ तमकश्वास, ३ छिन्नश्वास, ४ महाश्वास और ५ ऊर्ध्वश्वास। महाव्याधि श्वासरोग एक ही है उसीके ये पांच भेद हैं ॥ ३ ॥ इस श्वासरोगका पूर्वरूप यह है कि हृदयमें पीडा हो, भोजन नहीं भावे, अत्यंत बेचैनी रहे, पेट अफरजाया करे, पँसलियोंमें दरद रहे और मुँहका स्वाद बिगड़ जावे ॥ ४ ॥

क्षुद्रश्वास ।

किंचिदारभमाणस्य यस्य श्वासः प्रवर्तते ॥
निषण्णस्यैति शांतिं च स क्षुद्र इति संज्ञितः ॥ ५ ॥

जब कोई बलका काम करने लगे तब शीघ्र ही श्वास चलने लगजावे और आरामसे बैठ जानेपर शांत होजावे उसे क्षुद्रश्वास कहते हैं ॥ ५ ॥

तमकश्वास ।

तृट्स्वेदवमथुप्रायः कण्ठो घुर्घुरिकान्वितः ॥
विशेषाद्दुर्दिने ताम्येच्छ्वासः स्यात्तमको मतः ॥ ६ ॥

जिसमें तृषा हो, पसीना आवे, वमन हो, कंठमें घुरघुर शब्द करे, विशेष करके अभ्रके दिनोंमें (सरदीसे) बढे इसे तमक श्वास कहते हैं ॥ ६ ॥

तमकश्वासकी कष्टता ।

घोषेण महताविष्टः सकासः सकफो नरः ॥
यः श्वसित्यबलोऽन्नद्विट् सुप्तस्तमकपीडितः ॥ ७ ॥

श्वासके साथ खर्राटेकासा शब्द हो, खाँसी और कफ भी हो और बल घट जावे, अन्न नहीं भावे, और सोतेमें भी पीडा रहे ऐसा तमक श्वास कष्टकारक होता है ॥ ७ ॥

प्रतमकश्वास ।

स ताम्यति कफे हीने स्वपतश्च विवर्द्धते ॥
मूर्च्छाज्वराभिभूतस्य ज्ञेयः प्रतमकस्तु सः ॥ ८ ॥

जो कफके निकल जानेपर या शांत होनेपर कुछ शांत होजावे और सोने (लेटने) पर बढे तथा मूर्च्छा, ज्वर ये भी हों तो उसे प्रतमकश्वास कहतेहैं ॥ ८ ॥

छिन्नश्वास ।

आध्मातो दह्यमानेन वस्तिना सरुजं नरः ॥
सर्वप्राणेन विच्छिन्नं श्वस्याच्छिन्नं तमादिशेत् ॥ ९ ॥

जिसके वस्तिस्थानमें जलन होनेसे पेट फूल जावे और वेदना भी हो, सब प्राणवायु रुक रुककर चले (अर्थात् टूट टूटकर श्वास) लेवे उसे छिन्नश्वास कहते हैं ॥ ९ ॥

महाश्वास और ऊर्द्ध्वश्वास ।

निःसंज्ञः पार्श्वशूलार्तः शुष्ककंठोऽतिघोषवान् ॥ संरब्धनेत्रस्त्वा-

---

(श्लो० १०) सरब्धनेत्रः संरंभः रागः शोफश्च ।

यस्य यः श्वस्यात्स महान्स्मृतः ॥ १० ॥ मर्मस्वायम्यमानेषु श्वसन्मूढो मुहुश्च यः॥ऊर्द्ध्वप्रेक्षी हतस्वरस्तमूर्द्ध्वश्वासमादिशेत्॥११॥

जिसमें मनुष्य बेहोश हो जावे, पसलीमें शूल हो, कंठ सूख जावे, श्वासमें खरांटेका शब्द विशेष हो, नेत्रोंमें शोथ (या सुरखी) हो और श्वास लेते समय मनुष्य ढीला होजावे (या फैल जावे सुकड जावे) उसे महाश्वास कहते हैं ॥ १० ॥ श्वास लेनेमें मर्म स्थान खिचने लगे, मूर्च्छा वार वार होकर श्वास लेवे, ऊपरको देखे और श्वासका शब्द (या बोल) झीना (मन्दा) पडजावे उसे ऊर्द्ध्वश्वास कहतेहैं ॥ ११ ॥

परिशिष्ट ।

यह श्वासरोग प्रायः वृद्धावस्थामें बहुधा मनुष्योंके हुआ करताहै इससे क्षुद्रतमकादि श्वासके विषयमें कुछ विशेष लक्षण ग्रन्थांतरसे लिखते हैं–

क्षुद्रश्वासके लक्षण ।

श्लोक–रूक्षायासोद्भवं कोष्ठे क्षुद्रवातमुदीरयन् ॥
क्षुद्रश्वासो न सोत्यर्थं दुःखेनांगप्रबाधकः ॥ १ ॥

अर्थ–रूक्षता या परिश्रमसे कोठेमें क्षुद्रवायु कुछ उदीर्ण होजाताहै जिससे क्षुद्रश्वास पैदा होताहै यह अत्यन्त दुःखसे शरीरको बाधा नहीं करताहै और सुखसाध्य है॥ १ ॥

तमक और प्रतमकके विशेष लक्षण ।

श्लोक–प्रतिलोमो यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते ॥ ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥ २॥ न चापि निद्रां लभते शयानः श्वासपीडितः ॥ आसीनो लभते सौख्यमुष्णं चैवाभिनंदति ॥ ३ ॥ मेघांबुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्द्धते ॥ स याप्यस्तमकः श्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ॥ ४ ॥ ज्वरमूर्च्छापरीतं च विद्यात्प्रतमकं भिषक् ॥ उदावर्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः ॥ ५ ॥ तमसा वर्द्धतेऽत्यर्थं शीतलैश्च प्रशाम्यति ॥ मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्प्रतमकं तु तम् ॥ ६ ॥

अर्थ–जब वायु प्रतिलोम होकर कफको उदीर्ण करके स्रोतों (श्वासवाही नालियों- में प्राप्त होताहै तब ग्रीवा और शिरको पकडताहै ॥२॥ रोगी सो.कर निद्रा नहीं लेता, सोनेमें श्वासकी पीडा रहतीहै, बैठाहुआ (बैठा रहनेमें) कुछ सुखको प्राप्त होता है और गरम वस्तुओंसे सुख प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ मेह, पानी, शीत ऋतु या शीतलवस्तु, पूर्वकी पवन, कफकारक आहार, विहार इनसे यह बढताहै इसे तमकश्वास कहतेहैं यह याप्य (या कष्टसाध्य) होताहै अथवा नया हो तो

साध्य भी होसकताहै ॥ ४ ॥ इसका भेद प्रतमकश्वास वह होताहै जिसमें मूर्च्छा और ज्वर आदि हों यह श्वास उदावर्तसे, धूलिकी धांससे, अजीर्णसे, क्लेद (थकान) से और वेगोंके रोकने आदिसे उठ आताहै और तमोगुणी (या उष्ण) पदार्थोंसे अत्यन्त बढजाताहै तथा शीतल आहार, विहारोंसे शांत होजाता है इसमें रोगी अँधेरेमें डूबाहुआसा होजाताहै इसे प्रतमकश्वास कहतेहैं (प्रयोजन यह है कि तमक कफयुक्त वायुसे होताहै और प्रतमक रूक्ष उष्ण वायुसे होताहै इसीसे तमककी औषध गरम कफनाशक और इस प्रतमककी तर और शीतल होतीहैं यही इनमें बडा अंतर है) ॥ ५ ॥ ६ ॥ ॥ इति परिशिष्ट ॥

क्षुद्रः साध्यतमस्तेषां तमकः कृच्छ्र उच्यते ॥
त्रयः श्वासा न सिध्यंति तमको दुर्बलस्य च ॥ १२ ॥

इन पांच प्रकारके श्वासोंमें क्षुद्रश्वास बहुत सुखसाध्य होताहै और तमकश्वास कृच्छ्रसाध्य है तथा छिन्नश्वास, महाश्वास और ऊर्ध्वश्वास ये तीन श्वास सिद्ध नहीं होते अर्थात् असाध्य हैं और यदि रोगी दुर्बल हो तो उसका तमकश्वास भी असाध्य ही समझिये (परंतु यह तमकश्वास बहुत समयतक (वर्षोंतक) कई मनुष्योंके रहताहै कभी दब जाताहै, कभी उठ आताहै प्रायः बुड्ढे और निर्बल आदमियोंके यही तमक या प्रतमक श्वास ही हुआ करताहै पर महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास ये प्रायः मृत्युके समय अंत्य अवस्थामें किसी रोगके उपद्रवमें होते हैं जिनसे बचना परम दुर्लभ होताहै) ॥ १२ ॥

श्वासरोगकी चिकित्साका आरंभ।

स्नेहवस्तिं विना केचिदूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् ॥
मृदु प्राणवतां श्रेष्ठं श्वासिनामादिशंति हि ॥ १३ ॥

कोई ऐसा कहतेहैं कि यदि श्वासरोगवाला बलवान् हो तो उसे मृदु (हलका) वमन और विरेचन देना श्रेष्ठ होताहै परंतु स्नेहवस्ति देना उचित नहीं ॥ १३ ॥

कासे श्वासे च हिक्कायां हृद्रोगे चापि पूजितम् ॥ घृतं पुराणं संसिद्धमभयाबिडरामठैः ॥ १४ ॥ सौवर्चलाभयाबिल्वैः संस्कृतं वा नवं घृतम् ॥ पिप्पल्यादिप्रतीवापं सिद्धं वा प्रथमे गणे ॥ १५ ॥ सपंचलवणं सर्पिः श्वासकासौ व्यपोहति ॥ १६ ॥

(श्लो० १२) दुर्बलस्य तमकोपि असाध्य इत्यर्थः ।

खाँसीमें, श्वासमें और हुचकी इन रोगोंमें पुराना घृत पीना श्रेष्ठ है जो हरडे विडनमक और हींग इनसे सिद्ध कियाहुआ होवे ॥ १४ ॥ अथवा नया घृत सौंचरनमक, हरड़े, बिल्व इनसे सिद्ध किया हो वह भी श्रेष्ठ है अथवा पिप्पल्यादिगणका प्रतीवाप देकर प्रथमगण (विदारिगन्धादि) से सिद्ध किया होवे ॥ ॥ १५ ॥ अथवा पांचों लवणयुक्त घृत सेवन करना श्वास और खाँसी दोनोंमें श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥

हिंस्राविडंगपूतीकत्रिफलाव्योषचित्रकैः ॥ द्विक्षीरं साधितं सर्पिश्चतुर्गुणजलान्वितम् ॥ १७ ॥ कोलमात्रंः पिवेत्तद्धि श्वासकासौ व्यपोहति ॥ अर्शांस्यरोचकं गुल्मं शकृद्भेदं क्षयं तथा ॥ १८ ॥

हिंस्रा (वालछड, कोई हींसवृक्षको बताते हैं), विडंग, पूतिकरंज, त्रिफला, त्रिकटु, चित्रक इनमें दुगुना दूध चौगुना पानी डालकर घृत साधन करे ॥ १७ ॥ इसमेंसे कोलप्रमाण पान करनेसे श्वास, खाँसी, बवासीर, अरुचि, गुल्म, विडभेद तथा क्षय इतने रोग नष्ट होते हैं ॥ १८ ॥

कृत्स्ने[२] वृषकषाये[३] वा[४] पचेत्सर्पिश्चतुर्गुणे ॥ तन्मूलकुसुमावापं शीतं क्षौद्रेण योजयेत् ॥ १९ ॥ शृंगीमधुरिकाभार्ङ्गीशुंठीतार्क्ष्यसितांबुदैः ॥ सहरिद्रैः सयष्ट्याह्वैः समैरावाप्य योगतः ॥ २० ॥ घृतप्रस्थं पचेच्छीमाञ्छीततोये चतुर्गुणे ॥ श्वासं कासं तथा हिक्कां सर्पिरेतन्नियच्छति ॥ २१ ॥

समस्त अडूसेका काथ चौगुना डालकर उसमें घृत पकावे और उसमें अडूसेके फूल और जड भी डाल दे फिर ठंढा करके शहदके संग पीवे ॥ १९ ॥ अथवा काकड़ासींगी, मधुरिका (एक प्रकारकी) घास भारंगी, सोंठ, रसोत, मिश्री, नागरमोथा, हलदी और मुलेठी सब समान भाग लेकर कूटकर डाले और चौगुना पानी ठंढा डाले इसमें एक प्रस्थ घृत पकाले यह घृत श्वास, खांसी और हुचकी इनको दूर करता है ॥ २० ॥ २१ ॥

सुवहा कालिका भार्ङ्गी शुकाख्या नैचुलं फलम् ॥ काकादनीं शृंगबेरं वर्षाभूं बृहतीद्वयम् ॥ २२ ॥ कोलमात्रैर्घृतप्रस्थं पचेदेभिर्जलार्द्धकम् ॥ कदुष्णं पीतमेतद्धि श्वासामयविनाशनम् ॥ २३ ॥

(श्लो० २२) सुवहा निर्गुडीभेदः । कालिका कृष्णागुरुः मासी वा (इति श० स्ता०)
(श्लो० २३) जलार्द्धकं द्विगुणजलमित्यर्थः (इति नि० सं०)

सौवर्चलयवक्षारकटुकव्योषचित्रकाः ॥ वचाभयाविडंगैश्च साधितं श्वासशांतये ॥ २४ ॥

सुवहा (निर्गुंडीका भेद सेफालिका), कालिका (कृष्णअगर), भारंगी, शुकशिंबी, वेतका फल, काकादनी, अदरख, सांठी, दोनों कटेली ॥ २२ ॥ इन सबको दो दो टंक प्रमाण लेकर प्रस्थभर घृतमें पकावे और दूना जल डाल दे यह निवाया निवाया घृत पीना श्वासरोगको नष्ट करता है ॥ २३ ॥ अथवा काला नमक, जवाखार, कुटकी, त्रिकटु, चित्रक, वच, हरडे और वायविडंग इनसे सिद्ध कियाहुआ घृत भी श्वासरोगको शांत करता है ॥ २४ ॥

गोपवल्ल्युदके सिद्धं स्यादन्यद्द्विगुणे घृतम् ॥ तालीसतामलक्यु-ग्राजीवंतीकुष्टसैंधवैः ॥ २५ ॥ बिल्वपुष्करपूतीकसौवर्चलकणा-ग्निभिः ॥ पथ्यातेजोवतीयुक्तैः सर्पिर्जलचतुर्गुणम् ॥ २६ ॥ हिंगु-पादयुतं सिद्धं सर्वश्वासहरं परम् ॥ पंचैतानि हवींष्याहुर्भिषजः श्वासकासयोः ॥ २७ ॥

गोपवल्ली (सारिवा) के दुगुने क्राथमें सिद्ध किया घृत श्रेष्ठ है अथवा तालीसपत्र, तामलकी (भूम्यामलकी), वच, जीवंती, कूट, सैंधानमक ॥ २५ ॥ बिल्व, पुष्करमूल, पूतिकरंज, कालानमक, पीपल, चित्रक, हरडे, तेजवती ये सब लेकर चौगुने पानीमें घृत पकावे और एक औषधसे चौथाई हींग डाल दे यह घृत ॥ २६ ॥ सब प्रकारके श्वासरोगको नष्ट करता है ये पूर्व कहेहुए पांचों घृत वैद्योंने श्वास और खांसीपर श्रेष्ठ कहे हैं ॥ २७ ॥

वासाघृतं कट्फलं च घृतं चात्र हितं भवेत् ॥ २८ ॥
तैलं दशगुणे सिद्धं भृंगराजरसे शुभे ॥
सेव्यमानं यथान्यायं श्वासकासौ व्यपोहति ॥ २९ ॥

तथा वासा (अडूसा) का सिद्ध किया घृत अथवा कायफलसे सिद्ध किया घृत भी श्वासरोगमें हित होता है ॥२८॥ अथवा दशगुने भंगरेके रसमें सिद्ध किया तैल भी यथोचित रीतिसे सेवन किया हुआ श्वास और खांसीको दूर करता है ॥२९॥

फलाम्ला विष्किररसाः स्निग्धाः प्रव्यक्तसैंधवाः ॥
एणादीनां शिरोभिर्वा कौलत्था वा सुसंस्कृताः ॥
हन्युः श्वासं च कासं च संस्कृतानि पयांसि च ॥ ३० ॥

फलोंकी खटाईसे युक्त स्निग्ध और सैंधवसे नमकीन बनायेहुए विष्किर (जीवों लवादि) के मांसके रस देने श्रेष्ठ हैं अथवा हिरन इत्यादिके शिरके रस अथवा कुलथीके रस संस्कार किये (बघार दिये हुए) श्वास और कासको नष्ट करते हैं तथा वायुनाशक द्रव्योंसे संस्कार कियेहुए दूध भी श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥

तिनिशस्य च बीजानि कर्कटाख्या सुवर्चिका दुरालभाऽथ पिप्पल्यः कटुकाख्या हरीतकी ॥ ३१ ॥ श्वाविन्मयूररोमाणि कोला मागधिका कणा ॥ भार्ङ्गीत्वक्छृंगबेरं च शर्करा शल्लकांगजम् ॥ ॥ ३२ ॥ त्रिकंटकस्य बीजानि चूर्णितानि तु केवलम् ॥ पंच श्लोकार्द्धिकास्त्वेते लेह्या ये सम्यगीरिताः ॥ सर्पिर्मधुभ्यां ते लेह्याः कासश्वासार्दितैर्नरैः ॥ ३३ ॥

१ योग-तिनिश वृक्षके बीज, काकडासिंगी और सज्जीखार । तथा २ जवासा, पीपल, कुटकी और हरडेकी छाल ॥ ३१ ॥ तथा ३ सेहके कांटे और मोरके पंख (ये भस्म किये), कोल (बेर, डल्लनमिश्रजी चव्य कहते हैं), मागधिका कणा (छोटी पीपल) । तथा ४ भारंगी, तज, अदरख, खांड, शल्लका (शालवृक्ष) और गज (नागकेशर) (कई शल्लकांगज शालका निर्यास मानते हैं) ॥ ॥ ३२ ॥ तथा ५ केवल देशी गोखरूके बीज कूट लेवे ये पांच प्रयोग आधे २ श्लोकसे कहे गये हैं ये शहद और घृत मिलाकर श्वा खांसीके रोगियोंको चाटने चाहिये ॥ ३३ ॥

श्वासके अन्य प्रयोग ।

सप्तच्छदस्य पुष्पाणि पिप्पलीश्चापि मस्तुना ॥ पिबेत्संचूर्ण्य मधुना धानाश्चाप्यथ भक्षयेत् ॥ ३४ ॥ अर्कांकुरैर्भावितानां यवानां साध्वनेकशः ॥ तर्पणं वा पिबेदेषां सक्षौद्रं श्वासपीडितः ॥३५॥ शिरीषकदलीकुंदपुष्पं मागधिकायुतम् ॥ तंडुलांबुयुतं पीत्वा जयेच्छ्वासानशेषतः ॥ ३६ ॥

(श्लो० ३२) श्वाविन्मयूररोमाणि इति-सर्जारुजीवस्य । सेह इति ख्यातस्य । कटकानि तथा मयूरपिच्छानि तानि भस्मीकृतानि ग्राह्याणि । कोला बदराणि । डल्लनमते तु कोला चव्यम् । मागधिका कणा । मगधोद्भवा पिप्पली । शल्लकागजं शल्लकावृक्षनिर्यासम् । केचित् शल्लकागजम् इति पठित्वा शल्ला शल्लकी । गजं नागकेशरम् (इति नि० सं०) (श्लो० ३४) धानाः भर्जितयवाः । तदुक्तं भावमिश्रेण-"यवास्तु निस्तुषा भृष्टाः स्मृता धाना इति स्त्रियाम् ॥"

सप्तच्छद (छतौना) के फूल और पीपल इन्हें चूर्ण कर दहीके जलसे पीवे अथवा शहदसे मिलाकर जौकी धानी चावे ॥ ३४ ॥ अथवा आकके कोमल पत्तोंके रसकी जवोंमें भावना देकर उनके सत्तू आदि अनेक पदार्थ शहद मिलाके श्वास रोगवाला पीवे ॥ ३५ ॥ अथवा शिरस, केला और कुंद इनके फूल, पीपल मिलाकर चावलोंके पानीसे पीवे यह सब प्रकारके श्वास रोगोंको जीत लेताहै ॥ ३६ ॥

कोलमज्जस्तालमूलमृष्यचर्ममसीमपि ॥ लिह्यात्क्षौद्रेण भार्ङ्गीं वा सर्पिर्मधुसमायुताम् ॥ ३७ ॥ निंबैः कदंबबीजं वा सक्षौद्रं तंडुलांबुना ॥ द्राक्षां हरीतकीं कृष्णां कर्कटाख्यां दुरालभाम् ॥ सर्पिर्मधुभ्यां विलिहन्हंति श्वासान्सुदारुणान् ॥ ३८ ॥

बेरका गूदा (या बेरकी मींगी), तालमूली (मुशली), ऋष्य (एक भांतिके मृग) के चर्मकी स्याही इन्हें शहदसे चाटे अथवा भारंगीको शहद और घृत मिलाके चाटे ॥ ३७ ॥ नींब और कदंबके बीज शहद मिलाके चावलोंके पानीसे पीवे (कई "नीपं" पाठांतर मानते हैं–नीप पके कदंबबीजको कहते हैं) तथा मुनक्का, हरडे, पीपल, काकड़ासींगी और जवासा इन्हें घृत और शहदके साथ चाटे यह दारुण श्वासरोगोंको नष्ट करताहै ॥ ३८ ॥

हरिद्रां मरिचं द्राक्षां गुडं रास्नां कणां शठीम् ॥ लिह्यात्तैलेन तुल्यानि श्वासार्तो हितभोजनः ॥ ३९ ॥ गवां पुरीषस्वरसं मधुमागधिकायुतम् ॥ लेहः श्वासेषु कासेषु वाजिनां वा शकृद्रसः ॥४०॥ पांडुरोगेषु शोथेषु ये योगाः संप्रकीर्तिताः ॥ श्वासकासापहास्तेपि कासघ्ना ये च कीर्तिताः ॥ ४१ ॥ भार्ङ्गीत्वक्त्र्यूषणं तैलं हरिद्रां कटुरोहिणीम् ॥ पिप्पलीं मरिचं चंडां गोशकृद्रसमेव च ॥ ॥४२॥ तलकोटस्थं बीजेषु पचेदुत्कारिकां शुभाम् ॥ सेव्यमानानि हंत्येषां श्वासानाशु सुदुस्तरान् ॥ ४३ ॥

हलदी, मिरच, दाख, गुड, रास्ना, पीपल, कचूर इनको समान भाग लेकर पाँसे और तैलमें मिलाकर चाटे और हित भोजन करे ॥ ३९ ॥ गौके गोबरका

(श्लो० ३८) निंबैः कदंबबीजं वा इति–निंबैर्निंबबीज कदंबबीजं च क्षौद्रयुत तंडुलांबुना पीतम् । अथवा 'निंबैः' इत्यत्र 'नीप' इति पाठांतरम् । तत्र नीपं पक कदंबबीजम् ।

रस शहद और पीपल मिलाके श्वास और खांसीमें चाटे अथवा घोडेकी लीदका रस शहद और पीपल मिलाके चाटे ॥ ४० ॥ जो प्रयोग पांडुरोगमें तथा शोथमें कहे हैं वे श्वास और खांसीमें भी हित होतेहैं तथा खांसीके प्रयोग भी श्वासमें हित होतेहैं ॥ ४१ ॥ तथा भारंगी, तज, त्रिकटु, तैल, हलदी, कुटकी, पीपल, मिरच, चंडा (चोरक गन्धद्रव्य) और गोबरका रस इनका लेह चाटे ॥ ४२ ॥ तलकोट (कोई ताड बतातेहैं पर ठीक पता नहीं) के बीजोंकी लप्सी बनाकर सेवन करनेसे दुस्तर श्वास शीघ्र नष्ट होजातेहैं (तलकोटके विषयमें डल्लनमिश्र-जीने कुछ भी नहीं लिखा परन्तु कई चिलगोजे बतातेहैं और यह ठीक भी जचता-है, कोई खसखसको ही तलकोट बीज मानतेहैं और इसका हलवा फायदा भी करताहै ॥ ४३ ॥

श्वासमें पथ्य और स्नेहस्वेदादि ।

पुराणसर्पिः पिप्पल्यः कौलत्था जांगला रसाः ॥ सुरा सौवीरकं हिंगु मातुलुंगरसो मधु ॥ ४४ ॥ द्राक्षामलकबिल्वानि शस्तानि श्वासहिक्किनाम् ॥ श्वासहिक्कापरिगतं स्निग्धैः स्वेदैरुपाचरेत् ॥ ॥ ४५ ॥ युक्तैर्लवणतैलाभ्यां तैरस्य ग्रथितः कफः ॥ स्वस्थो विल-यनं याति मारुतश्चास्य शाम्यति ॥ ४६ ॥

पुराना घृत, पीपल, कुलथीके रस, जंगली जीवोंके मांसरस, सुरा नामक मद्य, सौवीर (एक प्रकारकी कांजी), हींग, नींबूका रस और शहद ॥ ४४ ॥ मुनक्का (या किसमिस या अंगूर), आंवले, बिल्व ये श्वास और हुचकीवालोंको हितकारक होते हैं और जिसे श्वास और हिक्काका रोग हो उसे स्नेहन कराके स्वेद करावे ॥ ४५ ॥ और तैलमें सेंधानमक मिलाकर इसका उपयोग स्नेहनार्थ करे इससे उनका जमाहुआ नालियोंमें स्थित हुआ कफ विलायमान (अर्थात पतला) होजाताहै और निकलजाताहै तथा वायु भी शांत होजाताहै ॥ ४६ ॥

स्निग्धं ज्ञात्वा ततश्चैवं भोजयित्वा रसौदनम् ॥ वातश्लेष्म-विबंधो वा भिषग्धूमं प्रयोजयेत् ॥ ४७ ॥ मनःशिलादेवदारु-हरिद्राच्छदनामिषैः ॥ लाक्षोरुबूकमूलैश्च कृत्वा वर्तीर्विधानतः ॥ ॥ ४८ ॥ सर्पिर्नवमधूच्छिष्टं शालनिर्यासजं तथा ॥ श्रृंगबालखु-

(श्लो० ४८) मनःशिलादिभ्यः विधानतः पूर्वोद्दिष्टविधानात् वर्तीः कृत्वा भिषक् धूमं प्रयोजये-दित्यन्वयः । उरुबूकः रक्तैरंडस्तस्य मूलैः ।

रस्नायुत्वक्समस्तं गवामपि ॥४९॥ तुरुष्कशल्लकीनां च गुग्गुलोः पद्मकस्य च॥ एते सर्वे ससर्पिष्का धूमाः कार्या विजानता ॥५०॥

जब जाने कि रोगी स्नेहनसे स्निग्ध होगया तब मांसरस और भातसहित भोजन करावे और वायु, कफ तथा विबंध हो तो वैद्य धूम (धूमपान) का उपयोग करावे ॥ ४७ ॥ मैनसिल, देवदारु, हलदी, पत्रज, गूगल, लाख और रक्तएरंडकी जड़ इनकी विधिपूर्वक बत्ती बनावे ॥ ४८ ॥ अथवा नवीन घृत, मोम, शालका गोंद इनकी बत्ती बनाके धूमपान करे तथा गौके सींग, बाल, खुर, स्नायु और त्वचा इनको उपयुक्त करे ॥ ४९ ॥ तथा तुरुष्क (श्रीवास) और शल्लकीवृक्ष, गूगल और पद्माख ये सब लेकर घृत मिलाकर जानकार वैद्य धूमपान करावे ॥ ५० ॥

बलीयसि कफग्रस्ते वमनं सविरेचनम् ॥
दुर्बलं चैव रूक्षे च तर्पणं हितमुच्यते ॥
जांगलैरेभ्रजैर्मांसैरानूपैर्वा सुसंस्कृतैः ॥ ५१ ॥

यदि बलवान् रोगीको कफ ग्रस्त करले (कफ बढजावे, श्वास हो) तो उसे वमन करावे और विरेचन देवे और जो रोगी दुर्बल और रूक्ष हो तो उसे जंगली जीवों या दुंबेके मांसके रसोंसे या जलकिनारेके जीवोंके मांसरससे जिनमें संस्कार दियाहुआ हो उनसे तर्पण करना हित होताहै ॥ ५१ ॥

निदिग्धिकां चामलकप्रमाणां हिंग्वर्द्धयुक्तां मधुना सुयुक्ताम् ॥
लिहन्नरः श्वासनिपीडितो हि श्वासं जयत्येव बलात्र्यहेण ॥५२॥
यथाग्निरिद्धः खलुकाष्ठसंघैर्वज्रं यथा वा सुरराजमुक्तम् ॥
रोगास्तथैते खलु दुर्निवाराः श्वासश्च कासश्च विलंबिका च ॥५३ ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायामेकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

आँवलेके बराबर छोटी कटेली पीसले और उसमें आधी हींग मिलावे इसे शहदके संग चाटे तो श्वाससे पीडित रोगी तीन दिनमें बलपूर्वक श्वासरोगको जीतलेवे॥५२॥ जैसे लकडीके ढेरमें प्रविष्ट हुआ अग्नि और इंद्रका छोड़ा हुआ वज्र दुर्निवार होते हैं उसी भांति ये श्वास, कास और विलंबिका रोग भी निश्चय ही दुर्निवार होतेहैं ॥५३॥

यूनानीवाले श्वासरोगको "रबू" कहते हैं और साधारण लोग इसे "दमा" कहते हैं ॥ डाक्टरीमें इसे "अस्थमा" (Asthma) कहते हैं और एक प्रकारके श्वास रोगको "इमपाइजिमा" (Impiejima) भी कहते हैं ॥

इति प० मुरलीधरवि० सुश्रुतस० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायामेकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ५२.

अथातः कासप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम कासप्रतिषेध नामक अध्यायका व्याख्यान करते हैं ।

उक्ता ये हेतवो नृणां रोगयोः श्वासहिक्कयोः ॥
कासस्यापि हि तु ज्ञेयास्त एवोत्पत्तिहेतवः ॥ १ ॥

जो हेतु मनुष्योंके श्वास रोग और हुचकीके पहले हमने वर्णन किये हैं प्रायः वेही कास (खांसी) रोगके भी हेतु होते हैं (अर्थात जिन विदाहभोजनादिसे श्वास और हुचकी पैदा होती है उन्हींसे प्रायः खांसी पैदा होजाया करतीहै ॥१॥

खाँसीके तात्कालिक कारण और संप्राप्ति ।

धूमोपघाताद्रजसस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च ॥
विमार्गगत्वादपि भोजनस्य वेगावरोधात्क्षवथोस्तथैव ॥ २ ॥
प्राणो ह्युदानानुगतः प्रदुष्टः संभिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः ॥
निरेति वक्त्रात्सहसा सदोषः कासः स विद्भिर्व्दिरुदाहृतस्तु ॥ ३॥

धुवां लगनेसे, धूलिसे (धुवां और धूलि श्वासके साथ कंठकी श्वासनलकामें घुसजानेसे), परिश्रम करनेसे, रूखा अन्न विशेष खानेसे तथा भोजन (पानादि) विपरीत मार्गमें (श्वासकी नालीमें) चलेजानेसे, वेग (मल, मूत्रके) तथा छींकके वेग रोकनेसे ॥ २ ॥ प्राणवायु उदानके अनुगत होकर दूषित होजाता है तब फूटे कांसेकेसा (धों धों या खां खां) शब्द दोष सहित (कफवायुसहित) मुँहसे निकलता है इसे वैद्य कास (खांसी) कहते हैं ॥ ३ ॥

(वक्तव्य) तत्कालमें धुवां, धूलि आदि या भोजन, पानी, आदि श्वास-नलकामें चले जाने आदिसे जो खांसी आजाती है उसे धांस कहते हैं और यह शीघ्र अच्छी होजाती है परंतु जो आरम्भके हेतुओं (श्वास और हिक्काके कारणों विदाहिभोजनादि) से कासरोग (खांसी) होता है वह तत्काल ही शांत नहीं होता-है इस पूर्वोक्त श्लोकसे श्वास और आहारके मार्ग जुदे जुदे स्पष्ट मालूम होते हैं– देखो हमारे शारीरक स्थानके आरम्भके चित्र ॥

कास रोगकी संख्या ।

स वातपित्तप्रभवः कफाच्च क्षतात्तथाऽन्यः क्षयजोऽपरश्च ॥
पंचप्रकारः कथितो भिषग्भिर्विवर्द्धितो यक्ष्मविकारकृत्स्यात् ॥ ४ ॥

वह कास पांच प्रकारका होता है-वातज, पित्तज और कफज तथा क्षतज (घावसे या चोट लगनेसे) और क्षयसे इसे वैद्योंने ऐसे पांच भांतिका कहा है यह खांसी रोग बढजानेपर राजयक्ष्मा और उरःक्षत जैसे बडे २ भयंकर विकार पैदा कर देता है ॥ ४ ॥

कासका पूर्वरूप।

भविष्यतस्तस्य तु कंठकंडूर्भोज्यावरोधो गलताल्लुलेपः ॥
स्वशब्दवैषम्यमरोचकोऽग्निसादश्च लिंगानि भवंत्यमूनि ॥ ५ ॥

जब यह कास रोग होनेवाला होता है तब पूर्वरूपमें ये लक्षण होते हैं-कंठमें खाजसी होना, भोजन कुछ २ रुकना, गल और तालुमें लेपसा रहना, अपनी आवाज विगड़ जाना (भारी या खखराईसी होना), अरुचि और अग्निमंदता ॥ ५ ॥

वातकी खाँसीके लक्षण।

हृच्छंखमूर्द्धोदरपार्श्वशूली क्षामाननः क्षीणबलस्वरौजाः ॥
प्रसक्तवेगश्च समीरणेन कासेत्तु शुष्कं स्वरभेदयुक्तः ॥ ६ ॥

हृदय, कनपटी, शिर और पँसवाडोंमें दरद हुआ करे, मुखकी कांति बिगड-जावे, बल, ओज और स्वर ये क्षीण होजावें और ठहर ठहरके खांसीका वेग उठे और सूखी खांसी हो, अवाज बैठजावे ये लक्षण वायुकी खांसीके होतेहैं ॥ ६ ॥

पित्तकी खाँसीके लक्षण।

उरोविदाहज्वरवक्त्रशोषैरभ्यर्दितस्तिक्तमुखस्तृषार्तः ॥
पित्तेन पीतानि वमेत्कटूनि कासेत्सपांडुः परिदह्यमानः ॥ ७ ॥

पेट और छातीमें जलन रहे, ज्वर होआवे, मुँह सूखा रहे और चरपरापन मालूम दे, तृषा ज्यादा हो तथा खांसीमें कभी पीला पीला चरपरासा पित्त गिरे, चेहरा पीला मालूम पडे और गरमी रहे ये लक्षण पित्तकी खांसीके होते हैं ॥ ७ ॥

कफकी खाँसीके लक्षण।

विलिप्यमानेन मुखेन सीदञ्छिरोरुगार्तः कफपूर्णदेहः ॥
अभक्तरुग्गौरवसादयुक्तः कासेद्भृशं सांद्रकफः कफेन ॥ ८ ॥

मुख लिपासा रहे, थकान (शिथिलता) हो, शिरमें दरद हो, शरीर कफसे भरासा मालूम हो, अरुचि हो, भारीपन और ग्लानि हो, गाढा कफ खांसनेसे आवे ये लक्षण कफकी खांसीके हैं ॥ ८ ॥

(श्लो० ५) भोज्योपरोध इति–भोज्यस्य ग्रासस्य कठे रोध इत्यर्थः। अथवा भोज्यस्य उपरोधः आकांक्षाराहित्यम् अरुचिः इत्यर्थश्च।

क्षतज कास ।

वक्षोऽतिमात्रं विहतं च यस्य व्यायामभाराध्ययनाभिघातैः ॥ विश्लिष्टवक्षाः स नरः सरक्तं ष्ठीवत्यभीक्ष्णं क्षतजः स उक्तः ॥ ९॥

परिश्रम करनेसे, ज्यादे बोझा उठानेसे, बहुत चिल्लाकर पढनेसे, चोट आदिके लगनेसे, जिसके वक्षःस्थल (छाती फेफडों) को पीडा (सदमा) पहुँचे और उनमें क्षत (जखम) होजावे तब मनुष्यके खांसनेमें रुधिर मिला कफ विशेष आवे यह क्षतज कास (खांसी) कहलाता है ॥ ९ ॥

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजविग्रहैः ॥ रूक्षस्योरःक्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमावहेत् ॥ १० ॥ स पूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्ठीवेत्सशोणितम् ॥ कंठेन रुजताऽत्यर्थं विभिन्नेनेव चोरसा ॥११॥ सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना ॥ दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीडाभितापिना ॥१२॥ पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्यपीडितः ॥ पारावत इवाकूजन्कासवेगात्क्षतोद्भवात् ॥ १३ ॥

अत्यन्त मैथुन करनेसे, बोझा उठानेसे, मार्ग अधिक चलनेसे, घोडे, हाथी आदिके संग बल करनेसे, रूखे मनुष्यके उर (छाती फेफडों) को वायु कडा करके उसमें जखम डाल देताहै जिससे खाँसी आतीहै ॥ १० ॥ पहले (जबतक जखम न पडे किंतु छातीके फेफडोंमें कडापन या सूजन हो) मनुष्यको सूखी खाँसी रहतीहै और फिर छाती फेफडोंमें जखम होजावे तब मनुष्यके खखारके संग रुधिर आने लगताहै, कंठमें वेदना (खुरदराहटसी) होतीहै और छातीमें चीरनेकेसी पीडा मालूम पडती है ॥ ११ ॥ तथा सूई चुभनेकेसी तीक्ष्ण पीडा और शूल होताहै और इतनी वेदना हो कि हाथ नहीं लगाया जावे (या शूल सही न जावे), भेदन, पीडा और अभिताप (घबराहट) ये भी हों ॥ १२ ॥ संधि (जोड जोड) दूखें, ज्वर हो, श्वास होजावे, तृषा अधिक हो, स्वर विगड-जावे जिससे मनुष्य कबूतरकी तरह कुडकुडावे ये सब क्षतज कासमें होतेहैं ॥१३॥

(वक्तव्य) इसीप्रकार डाक्टरलोग खांसीसे "न्यूमोनिया" होजाना कहतेहैं उसमें (न्यूमोनियामें) प्रायः सब ये ही लक्षण होतेहैं ॥

क्षयज खाँसी ।

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात् ॥

(श्लो० ९) विश्लिष्टवक्षाः विदीर्णवक्षःस्थल इति ।

घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयो मलाः ॥
कुपिताः क्षयजं कासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम् ॥ १४ ॥

विषम भोजनसे, असात्म्य (वेमाफकतके) भोजनसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे, वेगोंके रोकनेसे, अत्यन्त घृणा करनेसे और शोच करनेसे मनुष्योंकी जठराग्निमें विकार होजाता है जिससे फिर वायु, पित्त, कफ ये तीनों दोष कुपित होके क्षयज कास पैदा करते हैं यह क्षयज कास देहका क्षय करनेवाला होताहै (अर्थात् विषम भोजनादिसे जब जठराग्नि बिगडजातीहै तब रस ठीक नहीं बनता और जब रस नहीं बनता तब रुधिर आदि सब शुक्र पर्यन्त धातुओंमें क्षय पैदा होजाताहै जिससे क्षयज खाँसी पैदा होती है यह खाँसी विशेष करके वीर्यक्षयमें होतीहै) ॥ १४ ॥

क्षयजकासके लक्षण ।

स गात्रशूलज्वरदाहमोहान्प्राणक्षयं चोपलभेत कासी ॥
शुष्कं विनिष्ठीवति दुर्बलस्तु प्रक्षीणमांसो रुधिरं सपूयम् ॥ १५ ॥

इस क्षयज खाँसीसे रोगीके शरीरमें शूल, ज्वर, दाह, मोह ये होतेहैं और इस खाँसीवालेका बल क्षीण होजाताहै, दुर्बल होकर सूखे झागसे थूँकताहै और जब मांस क्षीण होने लगे तब पीब मिला रुधिर खखारमें आताहै ॥ १५ ॥

तं सर्वलिंगं भृशदुश्चिकित्स्यं चिकित्सितज्ञाः क्षयजं वदंति ॥
वृद्धत्वमासाद्य भवत्यथो वै याप्यं तमाहुर्भिषजस्तु कासम् ॥ १६ ॥

यह क्षयज खाँसी सब दोषोंसे होतीहै इसमें सब दोषोंके लक्षण होतेहैं इससे इसे वैद्य दुश्चिकित्स्य कहतेहैं और जब यह वृद्धत्वको प्राप्त होकर होतीहै तब इसे वैद्य याप्य कहतेहैं ॥ १६ ॥

खाँसीके सामान्य प्रयोग ।

शृंगीवचाकट्फलकत्तृणाब्दधान्याभयाभार्ङ्र्यमराह्वविश्वम् ॥
उष्णांबुना हिंगुयुतं तु पीत्वा बद्धास्यमप्याशु जहाति कासम् ॥ १७ ॥

फलत्रिकव्योषविडंगशृंगीरास्नावचापद्मकदेवकाष्ठैः ॥
लेहः समैः क्षौद्रसिताघृताक्तः कासं निहन्यादचिरादुदीर्णम् ॥ १८ ॥

पथ्यां सितामामलकानि लाजां समागधीं चापि विचूर्ण्य शुंठीम् ॥
सर्पिर्मधुभ्यां विलिहीत कासी ससैंधवां कोष्णजलेन कृष्णाम् ॥ १९ ॥

(श्लो० १४) यद्यपि सामान्यक्षयशब्देन रसादिक्षयः प्राप्तस्तथाऽप्यत्र शुक्रक्षयो ग्राह्यः (इति नि० सं०)

काकड़ासींगी, वच, कायफल, कत्तृण (एक प्रकारकी घास, कई रोहिष तृण बताते हैं), नागरमोथा, धनियां, हरडे, भारंगी, देवदारु और सोंठ इनमें हींग मिलाके गरम पानीके संग पीवे इससे बहुत दिनकी खांसी भी शीघ्र जाती रहे ॥ ॥ १७ ॥ अथवा त्रिफला, त्रिकटु, विडंग, काकड़ासींगी, रास्ना, वच, पद्माख और देवदारु इन सबको समान भाग लेकर शहद, मिश्री और घृत मिलाकर अव-लेह बनावे यह बढी हुई खांसीको भी शीघ्र नष्ट करता है ॥ १८ ॥ तथा हरडे, मिश्री, आंवले और धानकी खील इन्हें घृत और शहद मिलाके चाटे अथवा पीपल और सोंठ मिलाके घृत, शहदसे चाटे अथवा पीपल, सैंधानमक इन्हें गरम पानीसे लेवे ॥ १९ ॥

खादेद्गुडं नागरपिप्पलीभ्यां द्राक्षां च सर्पिर्मधुनावलिह्यात् ॥
द्राक्षां सितां मागधिकां च तुल्यां सशृंगवेरं मधुकं तुगां च॥२०॥
लिह्याद्घृतक्षौद्रयुतां समांशां सितोपलां वा मरिचांशयुक्ताम् ॥
धात्रीकणाविश्वसितोपलाश्च संचूर्ण्य मंडेन पिबेच्च दध्नः ॥ २१ ॥

अथवा सोंठ और पीपल, गुड (पुराने गुड) में मिलाके खावे अथवा मुनक्काको घृत और शहदके संग पीसके चाटे अथवा मुनक्का, मिश्री, पीपल इन्हें समान भाग लेकर या अदरख, मुलेठी, वंशलोचन इन्हें लेके शहद और घृतसे चाटे ॥ २० ॥ अथवा शहद, घृत, मिश्री इनमें चौथाई मिरच मिलाके चाटे अथवा आंवले, पीपल, सोंठ, मिश्री इन्हें पीस चूर्ण बना दहीके मांडसे पीवे ॥ २१ ॥

हरेणुकां मागधिकां च तुल्यां दध्नां पिबेत्कासगदाभिभूतः ॥
उभे हरिद्रे सुरदारु शुंठीं गायत्रिसारं च पिबेत्समांशम् ॥ २२ ॥
वस्तस्य मूत्रेण सुखांबुना वा दंतीं द्रवंतीं च सतिलवकांशाम् ॥
भृष्टानि सर्पिष्यथ बादराणि खादेत्पलाशानि ससैंधवानि ॥ २३ ॥
कोलप्रमाणं प्रपिबेद्धि हिंगु सौवीरकेणाम्लरसेन वापि ॥
क्षौद्रेण लिह्यान्मरिचानि वाऽपि भार्ङ्गीवचाहिंगुकृता च वर्तिः२४॥

हरेणुका, पीपल इन्हें बराबर लेकर खांसीका रोगी दहीके संग पीवे अथवा दोनों हलदी, देवदारु, सोंठ, खैरसार इन्हें बराबर लेकर ॥ २२ ॥ बकरेके मूत्रसे

(श्लो० २४) अस्य श्लोकस्य चतुर्थपादस्यान्वयोऽग्रिमेण श्लोकेन सह कार्यः । यथा "भार्ङ्गीवचा-हिंगुकृता च वर्तिः घृतसंप्रयुक्ता धूमे प्रशस्ता" इत्यन्वयः । अथवा केचिदेवमाहुः—भार्ङ्गीवचाहिंगुकृतां च वर्तिं गुटिकामपि क्षौद्रेण लिह्यात् ।

पीवे अथवा दंती और द्रवंतीको चौथाई लोध मिलाकर गरम पानीसे पीवे अथवा बेरीके पत्तोंको घृतमें भूनकर सैंधानमक मिलाके खावे ॥ २३ ॥ अथवा कोल प्रमाण हींगको सौवीर (कांजी) से या अम्लरससे पीवे (इस समय इसकी मात्रा कम लेनी चाहिये—चने बराबर ही बहुत है) अथवा काली मिरचोंको शहदके संग चाटे अथवा भारंगी, वच और हींग इनकी बत्ती बनाकर धूमपान करे, कई ऐसा अर्थ करते हैं कि इनकी गोली बनाकर खावे) ॥ २४ ॥

खाँसीमें धूमपान ।

धूमे प्रशस्ता घृतसंप्रयुक्ता वेणुत्वगेलालवणैः कृता च ॥ २५ ॥
मुस्तेंगुदीत्वङ्मधुकाह्वमांसीमनःशिलालैश्छेगलांबुपिष्टैः ॥
विधाय वर्तीः स पयोनुपानं धूमं पिबेद्वातबलासकासी ॥ २६ ॥

बाँसकी छाल, इलायची, नमक इनकी बत्ती बना घृत मिलाके अथवा नागरमोथा, हिंगोट, तज, मुलेठी, जटामांसी, मैनसिल और हरताल इन्हें बकरेके मूत्रमें पीसकर बत्ती बनाके (घृत चुपडकर) धूमपान करे और ऊपरसे दूध पीवे यह धूमपान वायु और कफकी खांसीमें श्रेष्ठ है ॥ २५ ॥ २६ ॥

पिबेच्च सीधुं मरिचान्वितं वा तेनाशु कासं शममभ्युपैति ॥
द्राक्षांबुमंजिष्ठसुराह्वयाभिः क्षीरं शृतं माक्षिकसंप्रयुक्तम् ॥ २७॥
निदिग्धिकानागरपिप्पलीभिः खादेच्च मुद्गान्मधुना सुसिद्धान् ॥
उत्कारिकां सर्पिषि नागराढ्यां पक्त्वा समूलैस्त्रुटिकोलपत्रैः ॥
एभिर्निषेवेत कृतां च पेयां तन्वीं सुशीतां मधुना विमिश्राम्॥२८॥

अथवा सीधु (मद्य) को काली मिरच मिलाके पीवे इससे शीघ्रही खांसी (कफकी खांसी) शांत होजाती है अथवा मुनक्का, नेत्रवाला, मँजीठ और देवदारु इनसे दूध पकाकर उसमें शहद मिलाके पीवे ॥ २७ ॥ अथवा छोटी कटेली, सोंठ, पीपल इनके काथसे मूँग पकाकर शहदके संग खावे अथवा सोंठ और पीपलामूल, इलायची और कोलपत्र (पत्रज) (कई बेरीके पत्ते कहते हैं) इनके योगसे हलवा बनाकर खावे अथवा ये ही डालकर पतली पेया बनावे उसे ठंढी करके शहद मिलाके पीजावे (लप्सी या पेया गोधूमादि धान्यों या तंडुलादिकी यथायोग्य बनावे उसमें पूर्वोक्त औषधोंका योग कर दे) ॥ २८ ॥

वायुकी खाँसीका यत्न ।

यत्प्लीह्नि सर्पिर्विहितं षडंगं तद्वातकासं जयति प्रसह्य ॥
विदारिगंधादिकृतं घृतं वा रसेन वा वासकजेन पक्वम् ॥ २९ ॥
विरेचनं स्नैहिकमत्र चोक्तमास्थापनं चाप्यनुवासनं च ॥
धूमं पिबेत्स्नैहिकमप्रमत्तः पिबेत्सुखोष्णं घृतमेव चात्र ॥ ३० ॥
हिता यवाग्वश्च रसेषु सिद्धाः पयांसि लेहाः सघृतास्तथैव ॥ ३१ ॥

जो प्लीह रोगमें षडंग घृत कहाहै वह वायुकी खांसीको बलपूर्वक नष्ट करता-है अथवा विदारिगन्धादिक गणसे सिद्ध किया या अडूसेके रससे सिद्ध किया घृत भी श्रेष्ठ है ॥ २९ ॥ विरेचन यहां स्नेहसहित देना उचित है और आस्थापन तथा अनुवासनवस्ति करना ठीक है तथा सावधान होकर स्नेहोंके धूमपान करना तथा गरम घृत पीना भी श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥ तथा मांसके रसोंमें पकाईहुई यवागू पिलाना या घृतयुक्त दूध या अवलेह भी श्रेष्ठ होते हैं ॥ ३१ ॥

कफज खाँसीका यत्न ।

प्रच्छर्दनं कायशिरोविरेकास्तथैव धूमाः कवलग्रहाश्च ॥
उष्णाश्च लेहाः कटुका निहन्युः कफं विशेषेण विशोषणं वा ॥३२॥
कटुत्रिकं चापि वदंति पथ्यं घृतं कृमिघ्नस्वरसे विपक्वम् ॥
निर्गुंडिपत्रस्वरसे विपक्वं सर्पिः कफोत्थं विनिहंति कासम् ॥ ३३ ॥
पाठाबिडव्योषविडंगसिंधुत्रिकंटरास्नाहुतभुग्बलाभिः ॥
शृंगीवचांभोधरदेवदारुदुरालभाभार्ङ्ग्यभयाशटीभिः ॥ ३४ ॥
सम्यग्विपक्वं द्विगुणेन सर्पिर्निदिग्धिकायाः स्वरसेन चैतत् ॥
श्वासाग्निसादस्वरभेदभिन्नान्निहंत्युदीर्णानपि पंच कासान् ॥३५॥

वमन कराना, देहका और शिरका विरेचन करना, धूमपान और उष्ण कवल धारण करना तथा ऐसे ही अवलेह चाटना तथा कटुक (चरपरे) द्रव्य सेवन करना और विशेष करके शोषण द्रव्योंका उपयोग करना ये सब यत्न कफको (कफज कासको) हरनेवाले हैं ॥ ३२ ॥ त्रिकटु भी इसमें पथ्य कहते हैं तथा वाय-विडंगके स्वरसमें पकायाहुआ घृत अथवा सिम्हालूके पत्तोंके रसमें पकाया घृत कफकासको नष्ट करदेताहै ॥ ३३ ॥ अथवा पाठा, बिडनमक, त्रिकटु, बिडंग

(श्लो० २९) प्रसह्य बलेन इत्यर्थः ।

सेंधानमक, गोखरू, रास्ना, चित्रक, खरेंटी, काकड़ासींगी, वच, मोथा, देवदारु, दुरालभा (जवासा), भारंगी, हरडे और कचूर इन सबको लेकर सबसे दूना छोटी कटेलीका रस डालकर घृत पकावे यह घृत श्वासरोगों, मंदाग्नि, स्वरभेद तथा भिन्नहुए (क्षतजों) (अथवा स्वरभंगके भेदों) को तथा पांचों प्रकारके उग्र कासों (खांसी) को नष्ट करदेताहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

पित्तज खाँसीके यत्न ।

विदारिगंधोत्पलसारिवादीन्निः क्वाथ्य वर्गान्मधुकं च कृत्स्नम् ॥
घृतं पचेदिक्षुरसांबुदुग्धैः काकोलिवर्गे च सशर्करं तत् ॥
प्रातः पिवेत्पित्तकृते च कासे रतिप्रसूते क्षयजे च कासे ॥३६॥
खर्जूरभार्ङ्गीमगधापियालमधूलिकैलामलकैः समांशैः ॥
चूर्णं सिताक्षौद्रघृतप्रगाढं त्रीन्हंति कासानुपयुज्यमानम् ॥ ३७॥

विदारिगन्धादिगण, उत्पलादि और सारिवादिगण, मधुरगण सब इनका क्वाथ बनाके तथा ईखका रस, जल और दूध भी डाले तथा काकोल्यादि गणका कल्क डालकर घृत पकालेवे इसे नित्य प्रभात मिश्री मिलाकर पान करे यह घृत पित्तकी खांसीको तथा अति मैथुनसे उपजी क्षयज खांसीको दूर करताहै ॥ ॥ ३६ ॥ तथा खर्जूर (खजूरिये), भारंगी पीपल, चिरोंजीके ऊपरका खाद्य पदार्थ, मधूलि (मूर्वा कोई गोधूम और कोई मर्कटक कहते हैं), इलायची, आंवले इनको समान भाग लेकर चूर्ण बनावे इसे मिश्री, शहद और घृतमें सानकर खावे यह तीनों प्रकारकी खांसीको दूर करता है ॥ ३७ ॥

क्षतज और क्षयज खाँसीके यत्न ।

रक्ताहारिद्रांजनवह्निपाठासूर्वोपकुल्या विलिहेत्समांशाः ॥
क्षौद्रेण कासे क्षतजे क्षयोत्थे पिबेद्घृतं चेक्षुरसे विपक्वम् ॥३८॥
चूर्णं पिबेच्चामलकस्य वापि क्षीरेण पक्वं सघृतं हिताशी ॥
चूर्णानि गोधूमयवोद्भवानि काकोलिवर्गेश्च कृतः सुसूक्ष्मः ॥३९॥
कासेषु पेयास्त्रिषु कासवद्भिः क्षीरेण सक्षौद्रघृतेन वापि ॥
गुडोदकं वा क्वथितं पिबेद्धि क्षौद्रेण शीतं मरिचोपदंशम् ॥ ४०॥

मंजीठ, हलदी, अंजन (रसांजन, कोई सौवीरांजन कहतेहैं), चित्रक, पाठा, मूर्वा, पीपल इन्हें समान भाग लेके शहद मिलाकर क्षतज और क्षयज खांसीमें

(श्लो० ३६) रतिप्रसूते अतिमैथुनजन्ये ।

चाटे अथवा ईखके रसमें पकाये हुए घृतको पीवे ॥ ३८॥ तथा आंवलोंके चूर्णको दूधमें पकावे फिर उसे घृतयुक्त करके पान करे और हित भोजन करे अथवा गेहूँ और जौका चूर्ण (रवा) और काकोल्यादिगणका महीन चूर्ण इन्हें दूधसे (दूधमें पकाके) शहद और घृत मिलाके तीनों प्रकारके (पित्तज, क्षतज और क्षयज) खाँसीके रोगमें पीना उचित है अथवा गुडोदक (गुडका काथ) ठंढा करके शहद डालकर काली मिरच मिलाके पीवे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

कल्याण गुड़ ।

प्रस्थत्रयेणामलकीरसस्य शुद्धस्य दत्त्वार्द्धतुलां गुडस्य ॥
चूर्णीकृतैर्ग्रंथिकचव्यजीरव्योषेभकृष्णाहबुषाजमोदैः ॥ ४१ ॥
विडंगसिंधुत्रिफलायवानीपाठाग्निधान्यैश्च पिचुप्रमाणैः ॥
दत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि चाष्टावष्टौ च तैलस्य पचेद्यथावत् ॥४२॥
तं भक्षयेदक्षफलप्रमाणं यथेष्टचेष्टं त्रिसुगंधियुक्तम् ॥
अनेन सर्वे ग्रहणीविकाराः सश्वासकासस्वरभेदशोषाः ॥ ४३ ॥
शाम्यंति चायं चिरमंतरग्नेर्हतस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतुः ॥
स्त्रीणां च वंध्यामयनाशनः स्यात्कल्याणको नाम गुडः प्रतीतः ४४

आँवलोंका रस तीन प्रस्थ और स्वच्छगुड आधा तुला लेवे और पीपलामूल, चव्य, जीरा, त्रिकटु, गजपीपल, हाऊबेर, अजमोदा ॥ ४१ ॥ विडंग, सैंधानमक, त्रिफला, अजवायन, पाठा, चित्रक, धानिया ये सब पिचु (कर्ष कर्ष) प्रमाण लेकर चूर्ण करले और आठ पल निशोथ लेके पीसले और आठ पलही तैल लेवे और विधिसे पकालेवे ॥ ४२॥ और दालचीनी, इलायची, तेजपात ये यथारुचि डाले और इसमेंसे एक कर्ष भरके अनुमान नित्य खावे इससे ग्रहणीके सब विकार श्वास, खांसी, स्वरभेद और क्षय ये रोग सब दूर होजाते हैं ॥ ४३ ॥ और जठराग्निको तथा नष्ट हुए पुरुषसत्त्वको भी यह बढाताहै तथा स्त्रियोंके वन्ध्यापनको नष्ट करताहै यह कल्याण नामक गुड कहाहै ॥ ४४ ॥

अगस्त्यावलेह ।

द्विपंचमूलेभकणात्मगुप्ताभार्ङ्गीशठीपुष्करमूलविश्वान् ॥
पाठामृताग्रंथिकशंखपुष्पीरास्नाग्न्यपामार्गबलायवासान् ॥ ४५॥
द्विपालिकान्नस्य यवाढकं च हरीतकीनां च शतं गुरूणाम् ॥

द्रोणे जलस्याढकसंयुते च क्वाथे कृते पूतचतुर्थभागे ॥ ४६ ॥
पचेत्तुलां शुद्धगुडस्य दत्त्वा पृथक्च तैलात्कुडवं घृताच्च ॥
चूर्णं च तावन्मगधोद्भवाया देयं च तस्मिन्मधु सिद्धशीते॥४७॥
रसायनात्कल्कमतो विलिह्याद्द्वे चाभये नित्यमथांशु हन्यात् ॥
तद्राजयक्ष्मग्रहणीप्रदोषशोफाग्निमांद्यस्वरभेदकासान् ॥ ४८ ॥
पांड्वामयश्वासशिरोविकारान्हृद्रोगहिक्काविषमज्वरांश्च ॥
मेधाबलोत्साहमतिप्रदं च चकार चैतद्भगवानगस्त्यः ॥ ४९ ॥

दशमूल, गजपीपल, केवांच, भारंगी, कचूर, पुष्करमूल, सोंठ, पाठा, गिलोय, पीपलामूल, शंखपुष्पी, रास्ना, चित्रक, ओंगा, खरेंटी और जवासा ॥ ४५ ॥ ये सब दो २ पल लेकर चूर्ण करे और जौ एक आढक ले और हरड बडीबडी १०० लेवे इन (यव और हरीतकी) को द्रोणभर पानीमें सिजावे, चतुर्थांश शेष रहे पर छान ले ॥ ४६ ॥ फिर शुद्ध गुड एक तुला लेकर इसमें पकावे और ४ पल तेल (तिलका) और ४ पल घृत और ४ पल ही पीपलका चूर्ण डाले वे हरडे भी डालदे और जब सिद्ध होके ठंढा हो तब इतनाही शहद डाल दे ॥ ४७ ॥ इस रसायनमेंसे दो हरडे नित्य खावे और उस लेहमेंसे भी चाट लिया करे यह राजयक्ष्मा, ग्रहणीके दोष, शोथ, मंदाग्नि, स्वरभंग और खांसी इन सबको नष्ट करे ॥ ४८ ॥ तथा पांडुरोग, श्वास, शिरके विकार, हृद्रोग, हुचकी और विषमज्वर इन्हें भी नष्ट करे तथा बुद्धि, बल, उत्साह और धारणाशक्ति इन्हें बढावे यह रसायन प्रयोग भगवान् अगस्त्य ऋषिने निर्माण किया है ॥ ४९ ॥

कुलीरशुक्तीचटकैणलावान्निःक्वाथ्य वर्गैर्मधुरैस्तथान्यैः ॥
पचेद्घृतं तत्तु निषेव्यमाणं हन्यात्क्षतोत्थं क्षयजं च कासम्॥५०॥
शतावरीनागबलाबलादिभिर्घृतं विधेयं च हिताय कासिनाम् ॥५१॥

इति सुश्रुतसं०उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

केकडा, जलकी सीप, चिड़ा, हिरन, लवा इन्हें तथा अन्य मधुरवर्ग, काकोल्यादिगण इन सबका क्वाथ करके घृत पकावे इस घृतका सेवन करनेसे क्षतज और क्षयज खांसी नष्ट होजाती है ॥ ५० ॥ तथा शतावरी, नागबला (गुलशकरी), बला (खरेंटी) (और 'आदि' शब्दसे अतिबला, महाबला भी लेनी इनसे सिद्धकिया हुआ घृत खांसीके रोगवालोंके लिये हितकारक है ॥ ५१ ॥

यूनानी हकीम खांसीको "सुआल" या "सुरफा" कहते हैं । और डाक्टरीमें खांसीको "काफ" (Calf) और सूखी खांसीको "होपिंग-काफ" कहते हैं ।

इति प०मुरलीधरवि०सुश्रुतसं०भा०टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ५३.

अथातः स्वरभेदप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम स्वरभेद (अवाज बैठजाने) के प्रतिषेधके अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

स्वरभेदके हेतु और संख्या ।

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघातशीतादिभिः प्रकुपिताः पवनादयस्तु ॥ ते शब्दवाहिधमनीषु गताः प्रतिष्ठां हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः सः ॥ १ ॥

अत्यन्त ऊँचे स्वरसे बोलने (पुकारने अथवा गाने) से, विषसे, चिल्लाकर पढनेसे, चोट आदिसे और शीतल पदार्थोंके सेवन करनेसे वातादिक दोष कुपित होकर शब्दवाहिनी धमनियोंमें स्थित होकर स्वर (अवाज) को बिगाड़ देते हैं इसे स्वरभेद या स्वरभंग कहते हैं यह छः प्रकारका होता है (जैसे वायुका, पित्तका, कफका, सन्निपातका, क्षयका और मेदोदोषका) ॥ १ ॥

वातादि स्वरभेदके लक्षण ।

वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा भिन्नं शनैर्वदति गर्दभवत्स्वरं च॥ पित्तेन पीतवदनाक्षिपुरीषमूत्रो ब्रूयाद्गलेन च विदाहसमन्वितेन॥ ॥ २ ॥ कृच्छ्रात्कफेन सततं कफरुद्धकंठो मंदं शनैर्वदति वापि दिवा विशेषात् ॥ सर्वात्मके भवति सर्वविकारसंपदव्यक्तता च वचसस्तमसाध्यमाहुः ॥ ३ ॥ धूप्येत वाक्क्षयकृते क्षयमाप्नुयाच्च वागेष वापि हतवाक्परिवर्जनीयः ॥ अंतर्गतस्वरमलक्ष्यपदं चिरेण मेदोन्वयाद्वदति दिग्धगलौष्ठतालुः ॥ ४ ॥

वायुके स्वरभेदमें नेत्र, मुँह, मूत्र और मल इन सबमें कालापन मालूम देताहै, टूटे शब्द धीरे धीरे बोले, गधेकासा स्वर हो और पित्तके स्वरभेदमें मुँह, नेत्र, मल, मूत्र ये सब पीले पडजावें तथा बोलते समय गलेमें जलनसा होवे ॥ २ ॥

कफके स्वरभंगमें सदा कंठ कफसे भरासा रहे और मंद मंद स्वरसे धीरे धीरे बोले, दिनमें कुछ ज्यादे होजावे और सब दोषोंके सान्निपातिक स्वरभेदमें सबके लक्षण और विकार होते हैं और जो वचनमें अव्यक्तता हो (बिलकुल समझा नहीं जावे) तो वह असाध्य होता है ॥ ३ ॥ क्षयज स्वरभेदमें वाणी बोलते समय धुवांसा भरजाताहै और वाणी क्षीण होती चलीजाती है और इसमें भी यदि बिलकुल आवाज नहीं निकले तो असाध्य होता है और मेदके स्वरभेदमें भीतर ही भीतर शब्द बेमालूमसा होता है और देरसे शब्द निकलता है और होंठ, गला और तालु ये लिपेसे (चिकने) रहते हैं ॥ ४ ॥

स्वरभेदकी असाध्यता ।

क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्य चापि चिरोत्थितो यश्च सहोपजातः ॥
मेदस्विनः सर्वसमुद्भवश्च स्वरामयो यो न स सिद्धिमेति ॥५॥

क्षीण मनुष्यके, वृद्धके, दुबले आदमीके जो स्वरभंग होजावे, जो बहुत दिनका पुराना होजावे तथा जो जन्महीसे स्वर बिगडा हुआ होवे, मेदवाले मनुष्यके तथा जो सन्निपातसे उपजा हुआ हो इतने प्रकारके स्वरभेद सिद्ध नहीं होते ॥ ५ ॥

स्वरभेदकी चिकित्साका आरंभ ।

स्निग्धान्स्वरातुरनरानपकृष्टदोषान्संयोजयेद्वमनरेचनवस्तिभिश्च ॥
नस्यावपीडमुखधावनधूमलेहैः संपादयेच्च विविधैः कवलग्रहैश्च ॥६॥
यः श्वासकासविधिराहित एव चोक्तस्तं चाप्यशेषमवतारयितुं यतेत॥
वैशेषिकं च विधिमूर्द्धमतो वदामि तद्वैस्वरातुरहितं निखिलं निबोध७

स्वरभेदके रोगियोंको स्नेहन कराके वमन, विरेचन और वस्तिकर्म विधिपूर्वक करके दोषोंको दूर करे और फिर नस्य, अवपीडन, मुखधावन (मुखको भीतरसे धोना अर्थात् कुल्ले करना),धूमपान और अवलेह तथा अनेक प्रकारके कवलग्रहोंका उपयोग करना श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥ तथा जो विधि श्वास और खाँसीके विषयमें कह आये हैं उन सबके करनेका यहांपर यत्न करे (अर्थात् श्वासकासोक्त सब विधि यहां भी कर सकते हैं) और इससे अगाडी अब हम विशेष करके स्वरभेदके रोगियोंको हितकारक विधि कहते हैं उसे पूर्णतया सुनो ॥ ७ ॥

वायुके स्वरभंगका यत्न ।

स्वरोपघातेऽनिलजे भुक्तोपरि घृतं पिबेत् ॥ कासमर्दकवार्ताकुमार्क-

वस्वरसैर्युतम् ॥ ८ ॥ पीतं घृतं हन्त्यनिलं सिद्धमार्तगले रसे ॥ यवक्षाराजमोदाभ्यां चित्रकामलकेषु वा ॥९॥ देवदार्वग्निकाभ्यां वा सिद्धमाज्यं समाक्षिकम् ॥ सुखोदकानुपानो वा ससर्पिष्को गुडौदनः ॥ १० ॥

वायुके स्वरभंगमें भोजनके ऊपरसे कसोंधी, बडी कटेली, भंगरा इनके रससे युक्त (रससे सिद्ध किये) घृतको पीवे ॥ ८ ॥ अथवा आर्तगल (नीले फूलके कुरंट) के रससे सिद्ध किया घृत पीवे अथवा जवाखार, अजमोदा तथा चित्रक और आंवले इनसे सिद्ध किया घृत पीवे ॥९॥ अथवा देवदारु चित्रक इनसे सिद्ध किया बकरीका घृत शहद मिलाकर पान करे और गुडके मीठे चावल घृतयुक्त बनाकर उन्हे भोजन करे ऊपरसे निवाया पानी पीलिया करे ॥ १० ॥

क्षीरानुपानं पित्ते तु पिबेत्सर्पिरतंद्रितः ॥ अश्नीयाच्च ससर्पिष्कं यष्टीमधुकपायसम् ॥ ११ ॥ लिह्यान्मधुरकाणां वा चूर्णं मधुघृताप्लुतम् ॥ शतावरीचूर्णयोगं बलाचूर्णमथापि वा ॥ १२ ॥ पिबेत्कटूनि मूत्रेण कफजे स्वरसंक्षये ॥ लिह्याद्वा मधुतैलाभ्यां भुक्त्वा खादेत्कटूनि च ॥ १३ ॥

पित्तके स्वरभेदमें घृत पीकर ऊपरसे दूध पियाकरे अथवा सावधान होकर मुलेठीकी खीर बनाके घृत मिलाकर खावे ॥ ११ ॥ अथवा मधुर द्रव्यों (काकोल्यादि) का चूर्ण शहद और घृत मिलाके चाटे अथवा शतावरीके चूर्णको या खरेंटीके चूर्णको शहद और घृतके संग चाटे ॥ १२ ॥ कफके स्वरभंगमें कटुक द्रव्यों (त्रिकटु आदि) को गोमूत्रके संग पीवे अथवा शहद और तैल मिलाके इसके संग त्रिकटुको चाटे तथा भोजन करके ऊपरसे चरपरे पदार्थ (मिरच, पीपल आदि) खाया करे ॥ १३ ॥

स्वरोपघाते मेदोजे कफवद्विधिरिष्यते ॥ सर्वजे चापि क्षयजे प्रत्याख्यायाचरेत्क्रियाम् ॥ १४ ॥ शर्करामधुमिश्राणि शृतानि मधुरैः सह ॥ पिबेत्पयांसि यस्योच्चैर्वदतोऽभिहतः स्वरः ॥ १५ ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

(श्लो० ९) आर्तगलः नीलपुष्पकुरंटः । डल्हनस्तु आर्तगलः ककुभ इत्याह ।

मेदके स्वरभेदमें कफस्वरभेदकेसी विधि करना श्रेष्ठ है और सन्निपातके स्वरभेदमें तथा क्षयके स्वरभेदमें (आराम हो या न भी हो ऐसा) कहकर चिकित्सा करे ॥ १४ ॥ और जिसके ऊँचे स्वरसे बोलने, गाने, पढने आदिसे स्वरभंग होगया हो उसे मधुरद्रव्योंसे औटाया हुआ दूध मिश्री और शहद मिलाकर पीना चाहिये ॥ १५ ॥

यूनानी हकीम स्वरभंगको "फसादुस्सौत" कहतेहैं डाक्टरीमें इसे "होर्सन्यस" (Hoorsness) कहतेहैं ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

चतुःपंचाशत्तमोध्यायः ५४.

अथातः कृमिरोगमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम कृमिरोगके अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ।

कृमिरोगके लक्षण ।

अजीर्णाध्यशनासात्म्यैर्विरुद्धमलिनाशनैः॥ अव्यायामदिवास्वप्नगुर्वतिस्निग्धशीतलैः ॥१॥ माषपिष्टान्नविदलबिसशालूकसेरुकैः ॥ पर्णशाकसुराशुक्तदधिक्षीरगुडेक्षुभिः ॥ २ ॥ पलालानूपपिशितपिण्याकपृथुकादिभिः ॥ स्वाद्वम्लद्रवपानैश्च श्लेष्मा पित्तं च कुप्यति ॥ ३ ॥ कृमीन्बहुविधाकारान्करोति विविधाश्रयान् ॥ आमपक्वाशयस्तेषां प्रसवः प्रायशः स्मृतः ॥ ४ ॥

अजीर्णके रहनेसे, भोजनपर भोजन करनेसे, बेमाफकतके भोजनसे, विरुद्ध और मलिन भोजनसे, परिश्रम न करने (पडे या बैठे रहने) से, दिनके सोनेसे, गरिष्ठ अति चिकना, ठंढा खानेसे ॥ १ ॥ उडद पिट्ठीके पदार्थ, विदल (जिनके दो भाग हों ऐसे अन्न) विशेष खानेसे, बिस (कमलकी जड), कमलकंद और कसेरु इत्यादि और पत्तोंके शाक, मदिरा, सिरका, दही, दूध, गुड, ईखके पदार्थ ॥ ॥ २ ॥ तिलका चूरा (या मांस), जलकिनारेके जीवोंका मांस, खल और पृथुक (दोबार उबाला या पकाया हुआ अन्न) इनके विशेष खानेसे, मिठाई, खटाई, पतले पन्ने अधिक खाने पीनेसे, कफ और पित्त कुपित हो जातेहैं ॥ ३ ॥ और अनेक प्रकारके कृमियोंको जिनके अनेक स्थान हैं पैदा करतेहैं परन्तु विशेष करके इनकी उत्पत्तिका स्थान आमाशय और पक्वाशयही होताहै (अर्थात् कृमि उक्त कारणोंसे विशेष करके आमाशय और पक्वाशयमें ही पैदा होतेहैं) ॥ ४ ॥

(श्लो० ३) पृथुकादिभिरिति–पृथुकम्–"द्विःस्विन्नमन्नं पृथुकम्" (इति श० स्तो०)

कृमियोंके भेद।

विंशतेः कृमिजातीनां त्रिविधः संभवः स्मृतः ॥
पुरीषकफरक्तानि तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ५ ॥

कृमि बीस प्रकारके होतेहैं और इनकी उत्पत्ति तीन भांतिसे होतीहै पुरीषसे या कफसे या रुधिरसे इनके लक्षण अगाडी कहतेहैं ॥ ५ ॥

पुरीषज कृमि।

अयवा वियवाः किय्याश्चिय्या गंडूपदास्तथा ॥ चुरवो द्विमुखाश्चैव सप्तैवैते पुरीषजाः ॥ ६ ॥ श्वेताः सूक्ष्मास्तुदंत्येते गुदं प्रति सरंति च ॥ तेषामेवापरे पुच्छैः पृथवश्च भवंति हि ॥ ७ ॥ शूलाग्निमांद्यपांडुत्वविष्टंभबलसंक्षयाः ॥ प्रसेकारुचिहृद्रोगविड्भेदास्तु पुरीषजैः ॥ ८ ॥ रक्ता गंडूपदा दीर्घा गुदकंडूनिपातिनः ॥ शूलाटोपं शकृद्भेदपक्तिनाशकराश्च ते ॥ ९ ॥

अयव, वियव, किय्य, चिय्य, गंडूपद और चुरव तथा द्विमुख ये सात प्रकारके कृमि पुरीष (विष्ठा) में (या विष्ठासे) पैदा होतेहैं ॥ ६ ॥ ये पुरीषज कृमि सुपेद पतले होतेहैं और गुदामें चुभनसी पैदा करतेहैं और गुदाकी तरफ गमन भी करतेहैं इनमेंसे दूसरी भांतिके कृमि पूँछवाले और अन्य मोटे (कद्दूदानेसे) भी होतेहैं ॥ ७ ॥ ये शूल, मन्दाग्नि, पांडुरोग, विष्टंभ (कब्जियत) और बलका नाश करतेहैं तथा मुँहसे पानी आना, अरुचि, हृद्रोग और विड्भेद ये उपद्रव भी इन पुरीषज कृमियोंहीसे होतेहैं ॥ ८ ॥ और इनहीमें जब लंबे लंबे लाल गिडोवे होते हैं तब गुदामें खाज, शूल, पेट अफराना, मल फटना और पाचनशक्ति नष्ट होना इत्यादि उपद्रव करतेहैं ॥ ९ ॥

(वक्तव्य) पुरीषज कृमि कहनेसे आहारनलका (आमाशय, पक्वाशय, मेदा और आँतडे तथा मलाशय) मात्रके कृमि जानने ॥

कफज कृमि।

दर्भपुष्पा महापुष्पाः प्रलूनाश्चिपिटास्तथा ॥ पिपीलिका दारुणाश्च कफकोपसमुद्भवाः ॥ १० ॥ रोमशा रोममूर्द्धानः सपुच्छाः श्यावमंडलाः ॥ मूढधान्यांकुराकाराः शुक्लास्ते तनवस्तथा ॥ ११ ॥

(श्लो० ५) रक्तजत्वेन स्वेदजा अपि ग्राह्याः।

मज्जादा नेत्रलेढारस्तालुश्रोत्रभुजस्तथा ॥ शिरोहृद्रोगवमथुप्रतिश्यायकराश्च ते ॥ १२ ॥

दर्भपुष्प, महापुष्प, प्रलून, चिपिट, पिपीलिका और दारुण ये छः प्रकारके कफकोपसे उत्पन्न होनेवाले कृमि होते हैं ॥ १० ॥ ये रोमवाले होते हैं, इनके शिरपर भी रोम होते हैं, पूँछभी होती है, काले मंडलवाले और बोयेहुए धान्यके अंकुर जैसे सुपेद और पतले होते हैं ॥ ११ ॥ ये कृमि मज्जाको खाते हैं, नेत्रोंकोभी चाटजाते हैं, तालु और कानोंको भी खाते हैं, शिरके रोम तथा हृदयके रोग, वमन, जुखाम इन व्याधियोंको करते हैं ॥ १२ ॥

रक्तज कृमि ।

केशरोमनखादाश्च दंतादाः किक्किशास्तथा ॥ कुष्ठजाश्च परीसर्पी ज्ञेयाः शोणितसंभवाः ॥ १३ ॥ ते सरक्ताश्च कृष्णाश्च स्निग्धाश्च पृथवस्तथा ॥ रक्ताधिष्टानजान्प्रायो विकाराञ्जनयंति ते ॥ १४ ॥

केशोंमें होनेवाले कृमि, रोमोंमें होनेवाले, नखूनोंमें होनेवाले और इन्हेंही खानेवाले तथा दांतोंके कीडे और किक्किश, कुष्ठज और परिसर्पि या सात प्रकारके कृमि रक्तसे (रक्तके मैल, पसीने आदिसे) पैदा होनेवाले हैं ॥ १३ ॥ ये कुछ सुरखी लिये कालेसे प्रायः होते हैं, चिकने और मोटे भी इनमें होते हैं ये प्रायः रक्तस्थानमें होनेवाले विकार (कुष्ठ, फुन्सी, खाज आदि) उत्पन्न करते हैं ॥ १४ ॥

(वक्तव्य) केशादकृमि बालोंकी जड़में होते हैं जिनसे बाल गिरजाते हैं बाहर पसीने, मैल आदिसे होनेवाले जूँ और लीख आदि इनसे पृथक् होते हैं ॥

माषपिष्टान्नलवणगुडशाकैः पुरीषजाः ॥ मांसमाषगुडक्षीरदधिशुक्तैः कफोद्भवाः ॥ विरुद्धाजीर्णशाकाद्यैः शोणितोत्था भवंति हि ॥ १५ ॥ ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः ॥ भक्तद्वेषोऽतिसारश्च संजातकृमिलक्षणम् ॥ १६ ॥ दृश्यास्त्रयोदशाद्यास्तु कृमीणां परिकीर्तिताः ॥ केशादाद्यास्त्वदृश्यास्ते द्वावाद्यौ परिवर्जयेत् ॥ १७ ॥

उडद पिट्ठीके अन्न, लवण, गुड और शाक इनसे (इनके विशेष सेवनसे) पुरीषके कृमि होते हैं और मांस, उड़द, गुड़, दूध, दही, सिरका इनसे कफके कृमि होते हैं तथा विरुद्ध भोजन, अजीर्ण और शाकादिसे रुधिरके कृमि उत्पन्न

होते हैं ॥ १५ ॥ यदि ज्वर होआवे, वर्ण बिगड जावे, शूल हो, हृदय दूखे, शिथिलता रहे, भ्रम हो, अरुचि और अतिसार ये भी हों तो जानो कि इसके कृमिरोग उत्पन्न हुआ ॥ १६ ॥ इन बीस प्रकारके कृमियोंमेंसे आदिके १३ प्रकारके कृमि तो दिखलाई देते हैं और केशादको आदि लेके तीन दिखलाई नहीं दे सकते और आरम्भमें कहेहुए दो असाध्य होते हैं ॥ १७ ॥

एषामन्यतमं ज्ञात्वा जिघांसुः स्निग्धमातुरम् ॥ सुरसादिविपक्केन सर्पिषा वांतमादितः ॥ १८ ॥ विरेचयेत्तीक्ष्णतरैर्योगैरास्थापयेच्च तम् ॥ यवकोलकुलत्थानां सुरसादेर्गणस्य च ॥ १९ ॥ विडंगस्नेहयुक्तेन काथेन लवणेन च ॥ २० ॥

इनमेंसे कोईसे कृमि मालूम पडें तभी उनके नष्ट करनेकी इच्छावाला वैद्य रोगीको स्नेहन करावे और फिर सुरसादिगणसे पकायेहुए घृतसे वमन करावे ॥ १८ ॥ और फिर तीक्ष्ण योगोंसे विरेचन करावे फिर जव, बेर, कुलथी और सुरसादिगणके काथ और वायविडंगसे सिद्ध किये स्नेह और लवण इनसे आस्थापनवस्ति करे ॥ १९ ॥ २० ॥

प्रत्यागते निरूहे तु नरं स्नातं सुखांबुना ॥ युंज्यात्कृमिघ्नैरशनैस्ततः शीघ्रं भिषग्वरः ॥ २१ ॥ स्नेहेनोक्तेन चैनं तु योजयेत्स्नेहवस्तिना ॥ ततः शिरीषकिणिहीरसं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ २२ ॥ केबूकस्वरसं वापि पूर्ववत्तीक्ष्णभोजनः ॥ पलाशबीजस्वरसं कल्कं वा तंडुलांबुना ॥ २३ ॥

जब निरूहण वस्ति उलटी निकल चुके (साफ होजावे) तब रोगीको निवाये पानीसे स्नान करावे और फिर कृमिनाशक भोजन शीघ्रही वैद्य खिलावे (अर्थात् कृमिनाशक द्रव्योंके संस्कारसे बना भोजन देवे) ॥ २१ ॥ और फिर उक्त स्नेह (विडंगादिसे सिद्ध किये हुए) से अनुवासनवस्ति भी करे फिर शिरस और किणिही (कटभी) इनके रसमें शहद मिलाकर कुछ दिन पिलावे ॥ २२ ॥ अथवा केबूक वृक्षके स्वरसको शहद मिलाके पिलावे और पूर्वोक्त रीतिसे तीक्ष्ण भोजन करे तथा ढाकके बीजों (पलाशपापडे) के स्वरसको या कल्कको चावलोंके पानीके संग पिलावे ॥ २३ ॥

पारिभद्रकपत्राणां क्षौद्रेण स्वरसं पिबेत् ॥ पत्तूरस्वरसं वापि पिबेद्वा सुरसादिजम् ॥ २४ ॥ लिह्यादश्वशकृच्चूर्णं विडंगं वा समा-

क्षिकम् ॥ पत्रैर्मूषिकपर्ण्या वा सुपिष्टैः पिष्टमिश्रितैः ॥ २५ ॥ खादेत्पूपालिकान्पक्वान्धान्याम्लं च पिबेदनु ॥ सुरसादिगणे तैलं पक्वं वा पानमिष्यते ॥ २६ ॥ विडंगचूर्णपिष्टाभ्यां तस्मिन्भक्ष्यन्तु कारयेत ॥ तत्कषायप्रपीतानां तिलानां स्नेहमेव वा ॥ २७ ॥

नींबके पतोंका रस शहद मिलाके पीवे अथवा सिरयाईका रस या सुरसादिगणका क्काथ (शहद डालके) पीवे ॥ २४ ॥ अथवा घोडेकी लीदका चूर्ण या वायविडंगका चूर्ण शहदके संग चाटे अथवा मूसापर्णीके पत्तोंको पीस ले और उसमें जौकी पिट्ठी मिलाकर पकोडी पूरी आदि बनावे उन्हें खाकर ऊपरसे धान्याम्ल (कांजी) पीवे अथवा सुरसादिगणसे पकायाहुआ तैल पान करे ॥ ॥ २५ ॥ २६ ॥ अथवा वायविडंगके चूर्णको पिट्ठीमें (या आटेमें) मिलाकर उसके पाक (खानेकी वस्तु) बनावे अथवा विडंगके क्काथमें तिलोंको खूब भिगोकर उनका तैल निकलवाकर उपयोग करे ॥ २७ ॥

ईवाविधः शकृतश्चूर्णं सप्तकृत्वः सुभावितम् ॥ विडंगानां कषायेण त्रैफलेन तथैव च ॥ २८ ॥ क्षौद्रेण लीढ्वानुपिबेद्रसमामलकोद्भवम् ॥ अक्षाभयारसं चापि विधिरेषोऽयसामपि ॥ २९ ॥ पूतिकस्वरसं वापि पिबेद्वा मधुना सह ॥ पिबेद्वा पिप्पलीमूलमजामूत्रेण संयुतम् ॥ ३० ॥ सप्तरात्रं पिबेद्घृष्टं त्रपु वा दधिमस्तुना ॥ पुरीषजान्कफोत्थांश्च हन्यादेवं कृमीन्भिषक् ॥ ३१ ॥

सेहकी मेंगनी (विष्ठा) के चूर्णको सातवार विडंगके क्काथकी भावना देवे और फिर सात भावना त्रिफलाके क्काथकी देवे ॥ २८ ॥ फिर इसे शहदमें मिलाकर चाटे और ऊपरसे आंवलोंका रस पीवे तथा हरडे और बहेडेका रस भी पीवे (अर्थात् त्रिफलाका रस ऊपरसे पीवे) यही विधि सब लोहों (धातुओंके चूर्ण) खानेकी है (कि पहले लोहादिके चूर्णमें विडंगके क्काथकी और त्रिफलाके क्काथकी भावना देकर शहदसे चाटे ऊपरसे त्रिफलाका रस पीवे) ॥ २९ ॥ अथवा करंजका रस शहदयुक्त पीवे अथवा बकरीके मूत्रसे पिप्पलीमूल पीवे ॥ ॥ ३० ॥ अथवा रांगको घिसकर सात दिन तक दहीके पानीसे पीवे इन विधियोंसे वैद्य पुरीषज और कफज कृमियोंको नष्ट करे ॥ ३१ ॥

(श्लो० २५) पिष्टमिश्रितैरिति–यवपिष्टमिश्रितैः । पिष्टकथनेन यवपिष्ट ज्ञेयम् ।

शिरोहृद्घ्राणवक्त्राक्षिसंसृतांश्च पृथग्विधान् ॥ विशेषेणाञ्जनैर्नस्यै-रवपीडैश्च साधयेत् ॥ ३२ ॥ शकृद्रसं तुरंगस्य सुशुष्कं भावये-द्दति ॥ निःक्राथेन विडंगानां चूर्णं प्रधमनं तु तत् ॥ ३३ ॥ अय-श्चूर्णान्ययनेनैव विधिना योजयेद्भिषक् ॥ सकांस्यनीलं तैलं च नस्यं स्यात्सुरसादिके ॥ ३४ ॥

शिर, हृदय, नासिका, मुख और नेत्रोंमें होजानेवाले कई प्रकारके कृमियोंको विशेषकर अंजनों, नस्यों और अवपीडों आदिसे साधन करे ॥ ३२ ॥ घोडेकी लीदका रस सुखाकर उसमें विडंगके क्राथकी भावना देवे और फिर सुखाकर पीसकर उसका प्रधमन नस्य देवे ॥ ३३ ॥ और इसी विधिसे लोहेके चूर्णकी भी उपयोजना करे अथवा वैद्य सुरसादिगणसे सिद्ध किये तैलमें कांसीकी स्याही मिलाकर नस्य देवे ॥ ३४ ॥

इंद्रलुप्तविधिश्चापि विधेयो रोमभोजिषु ॥ दंतादानां समुद्दिष्टं विधानं मुखरोगिकम् ॥ ३५ ॥ रक्तजानां समुद्दिष्टं कुर्यात्कुष्ठचि-कित्सिते ॥ सुरसादिं तु सर्वेषु सर्वथैवोपयोजयेत् ॥ ३६ ॥

रोमपंक्तियोंमें होनेवाले कृमियोंके लिये इंद्रलुप्तकी विधि करना श्रेष्ठ है और दांतोंके खानेवालों (दांतोंके कृमियों) के लिये मुखरोगमें कहीहुई कृमिदंतकी विधि करना उचित है ॥ ३५ ॥ और रक्तज कृमियोंके लिये कुष्ठमें कहे हुए विधान करे परन्तु सुरसादिगणका उपयोग तो सब प्रकारके कृमियोंमें सब तरहसे जहां जैसा उचित हो सर्वत्र ही करना उचित होताहै ॥ ३६ ॥

कृमिरोगमें पथ्य ।

प्रव्यक्ततिक्तकटुकं भोजनं च हितं भवेत् ॥
कुलत्थक्राथसंसृष्टं क्षीरपानं च पूजितम् ॥ ३७ ॥

जिनमें चरपरापन और कडुवापन प्रगट हो ऐसे भोजन करने प्रायः हितकारक होतेहैं और कुलथीके क्राथसे संस्कार किया हुआ दूध पीना ठीक है ॥ ३७ ॥

क्षीराणि मांसानि घृतानि चैव दधीनि शाकानि च पर्णवंति ॥
समासतोऽम्लान्मधुरान्हिमांश्च कृमीञ्जिघांसुः परिवर्जयेत्तु ॥ ३८ ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

सब प्रकारके दूध, घृत और दही तथा पत्तोंके शाक, खटाई मिठाई और ठंढे पदार्थ कृमिरोग नष्ट करनेकी वांछावाले रोगियोंको सामान्यतासे ही नहीं खाने चाहिये किंतु त्याग देने चाहिये ॥ ३८ ॥

(वक्तव्य) शार्ङ्गधराचार्य बाईस प्रकारके कृमि लिखते हैं जिनमें बाहर शरीरपर बालोंमें होनेवाले जूँ, लीख जुदे लिखते हैं और स्नायुक (न्हारवे) रोगको भी कफरक्तज कृमि लिखतेहैं ॥

यूनानीवाले पेटके केचुवोंको "दीदानां" कहतेहैं और कद्दूदानोंको "हुब्बुल्किरा" कहतेहैं और न्हारूको "अरकेमुदनी" या "रिशता" कहते हैं सब भांतिके कृमियोंको साधारणतासे इनके यहां भी किरमही कहतेहैं ॥

और डाक्टरीमें ऊपर बालोंमें होनेवाले जूँ, लीख आदि कृमियोंको "अपीजुवा" कहते हैं और पेटमें होनेवालोंको "एंटजुवाँ" तथा "वर्मस्" कहतेहैं ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ५५.

अथात उदावर्तप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम उदावर्तके प्रतिषेधके अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ।

उदावर्तका हेतु ।

अधश्चोर्द्ध्वं च भावानां प्रवृत्तानां स्वभावतः ॥ न वेगान्धारयेत्प्राज्ञो वातादीनां जिजीविषुः ॥ १ ॥ वातविण्मूत्रजृंभाश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः ॥ व्याहन्यमानैरुदितैरुदावर्तो निरुच्यते ॥ २ ॥ क्षुत्तृष्णाश्वासनिद्राणामुदावर्तो विधारणात् ॥ तस्याभिधास्ये व्यासेन लक्षणं च चिकित्सितम् ॥ ३ ॥

जीवनकी वांछा रखनेवाले बुद्धिमान्को चाहिये कि नीचेको और ऊपरको स्वभावसे प्रवृत्त होनेवाले वातादिक वेगोंको कभी नहीं रोंके ॥ १ ॥ वे वेग ये हैं कि अधोवायु, मल (दस्त), मूत्र, जँभाई, आंसू, क्षव (छींक) (या हिक्का), डकार, वमन और वीर्य इनके उद्गत होनेपर रोंक लेनेसे उदावर्त रोग होजाताहै ॥

(श्लो० २) उदावर्त इति-ऊर्ध्वं वातविण्मूत्रादीनाम् आवर्तो भ्रमणं यस्मिन् स उदावर्तः। वातोऽत्र अधःप्राप्तोऽपानवायुः । क्षवः क्षवथुः । डल्हनस्तु हिक्का इत्याह । इंद्रियशब्देन शुक्रं बोद्धव्यम् ।

(श्लो० ३) ननु अधोवेगावरोधादपानप्रकोपे उदावर्तसंभवो युक्तः । परंतु अश्रुजृंभादिकानामूर्ध्ववेगानामवरोधे कथमुदावर्तस्य संभवः । ऊर्ध्ववेगावरोधेपि वायोः प्रकोपोपहतेनापानेन उदावर्तस्य संभवः ।

॥ २ ॥ तथा क्षुधा, तृषा, श्वास, निद्रा इनके (विशेष या अयोग्य) रोंकनेसे भी उदावर्त होजाताहै अब अगाड़ी विस्तारसे इसके जुदे २ लक्षण और चिकित्सा वर्णन करतेहैं ॥ ३ ॥

उदावर्तकी संख्या ।

त्रयोदशाविधश्चासौ भिन्न एतैस्तु कारणैः ॥
अपथ्यभोजनाच्चापि वक्ष्यते च यथाऽपरः ॥ ४ ॥

पूर्वोक्त वातविण्मूत्रादिके कारणोंसे यह उदावर्त रोग तेरह प्रकारका होताहै तथा एक भांतिका उदावर्त अपथ्य भोजनसे भी होजाताहै ॥ ४ ॥

अपानवायुके रोंकनेका उदावर्त ।

आध्मानशूलौ हृदयोपरोधं शिरोरुजं श्वासमतीव हिक्काम् ॥
कासप्रतिश्यायगलग्रहांश्च बलासपित्तप्रसरं च घोरम् ॥
कुर्यादपानोऽभिहतः स्वमार्गे हन्यात्पुरीषं मुखतः क्षिपेद्वा ॥ ५ ॥

अधोवायुके रोकनेसे इतने उपद्रव होते हैं-पेट अफरना, शूल, हृदयका रुकजाना, शिरमें दर्द, श्वास, अत्यन्त हुचकी, खांसी, जुखाम, गल रुकना, कफ और पित्तका उद्रेक घोर होना तथा अपने मार्गसे रुकाहुआ अपानवायु विष्ठाको रोक देता है अथवा मुखमार्गसे विष्ठाका वमन होता है ॥ ५ ॥

मलके रोंकनेका उदावर्त ।

आटोपशूलौ परिकर्तनं च संगः पुरीषस्य तथोर्द्ध्ववातः ॥
पुरीषमास्यादपि वा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥ ६ ॥

पेट अफरना, शूल होना, कतरनेकेसी पीडा होना, मलकी किटीसी बँधकर बंद होजाना तथा वायुका ऊर्द्ध्वगमन होना, मुखसे विष्ठाका वमन होना दस्तके वेग रोकेजानेसे मनुष्यके इतने उपद्रववाला उदावर्त होता है ॥ ६ ॥

मूत्रके रोंकनेका उदावर्त ।

मूत्रस्य वेगेऽभिहते नरस्तु कृच्छ्रेण मूत्रं कुरुतेऽल्पमल्पम् ॥
मेढ्रे गुदे वंक्षणमुष्कयोश्च नाभिप्रदेशेष्वथ वापि मूर्ध्नि ॥ ७ ॥
आनद्धवस्तिश्च भवंति तीव्राः शूलाश्च शूलैरिव भिन्नमूर्तेः ॥ ८ ॥

मूत्रका वेग रोंकनेसे मनुष्यके कष्टसे थोडा थोडा मूत्र आता है तथा लिंग, गुदा, वंक्षण (नलों), अंडकोश, नाभि और शिरमें तीव्र शूल चलने लगते हैं और वास्तिस्थान फलजाता है और ऐसी पीडा होती है जैसे कोई शूलोंसे धवलता हो ॥७॥८॥

जृंभाके रोंकनेका उदावर्त ।

मन्यागलस्तंभशिरोविकारा जृंभोपघातात्पवनात्मकाः स्युः ॥
श्रोत्राननघ्राणविलोचनोत्थाः भवंति तीव्राश्च तथा विकाराः ॥ ९ ॥

जृंभा (जंभाई) के रोंकनेसे मन्यास्थान और गलमें स्तंभ, शिरमें विकार और वातके रोग तथा कानके, मुँहके, नाकके और नेत्रोंके तीव्र रोग होजाते हैं ॥ ९ ॥

अश्रुनिरोधज और क्षवथुनिरोधज उदावर्त ।

आनंदजं शोकसमुद्भवं वा नेत्रोदकं प्राप्तममुंचतो हि ॥
शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च भवंति तीव्राः सह पीनसेन ॥ १० ॥
भवंति गाढं क्षवथोर्विघाताच्छिरोक्षिनासाश्रवणेषु रोगाः ॥
कंठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः कूजश्च वायोरथवा प्रवृत्तिः ॥ ११ ॥

आनन्दसे अथवा शोकसे आये हुए नेत्रोंके जल (आंसुओं) को जो नहीं निकलने देवे (रोंक ले) उसके शिरमें भारीपन और तीव्र नेत्रोंके रोग और पीनसरोग होजाते हैं ॥ १० ॥ क्षवथु (छींक) के रोंकनेसे शिरमें, नेत्रोंमें, नासिकामें और कानोंमें भारी रोग होजाते हैं, कंठ और मुँह भरेसे होजाते हैं पीडा भी होती है, वायुका शब्द या प्रवृत्ति ये भी होते हैं ॥ ११ ॥

उद्गार-छर्दि-शुक्रज-उदावर्त्तोंके लक्षण ।

उद्गारवेगे विहते भवंति जंतोर्विकाराः पवनप्रसूताः ॥
छर्देर्विघातेन भवेच्च कुष्टं येनैव दोषेण विदग्धमन्नम् ॥ १२ ॥
मूत्राशये वा गुदमुष्कयोश्च शोफो रुजा मूत्रविनिग्रहश्च ॥
शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेद्वा ते ते विकारा विहते तु शुक्रे ॥१३॥

डकारके रोंकनेसे मनुष्यके वायुके विकार होते हैं (और कई "कण्ठास्यपूर्णत्वं" इस उक्त श्लोकार्द्धको इसीके संग लगाकर यह अर्थ करते हैं कि कंठ और मुखकी पूर्णता, अतिपीडा, वायुका शब्द और अप्रवृत्ति ये डकार रोंकनेके उदावर्तमें होते हैं), वमनके रोंकनेमें कुष्ठ होजाता है और इससे अन्न विदग्ध होजाता है ॥ १२ ॥ और स्खलित होतेहुए वीर्यके रोंकनेसे मूत्राशय (मसाने) में, गुदामें, वृषणोंमें

(श्लो० ११) अस्योत्तरार्ध "कंठास्यपूर्णत्वम्" इत्यादिक केचित् अग्रिमे उद्गारोदावर्ते कथयंति एवमेव भावमिश्रेणापि पठितम् । परंतु डल्हनमिश्रेण क्षवथुविनिग्रहोदावर्तेपि व्याख्यातम् । डल्हनमिश्रमते क्षवथुः हिक्का इत्यपि विचित्रम् ।

शोथ और पीडा होती है, मूत्र रुकता है, शुक्रकी पथरी होजाती है और शुक्र झिरने लगजाता है, तत्संबंधी अनेक विकार (कृच्छ्रादि) होजाते हैं ॥ १३ ॥

(वक्तव्य) हमने पहले कंठास्यपूर्णत्वादि लक्षण क्षवथुनिरोधज उदावर्तमें डल्हन मिश्रकी व्याख्याके अनुसार लिखाहै परन्तु वास्तवमें यह अग्रिम उद्गारावरोधके साथ ही उचित है (देखो टिप्पणी) ॥

क्षुधा-तृषा-श्वास-और निद्रा रोकनेके उदावर्तोंके लक्षण ।

तंद्रांगमर्दावरुचिः श्रमश्च क्षुधोभिघातात्कृशता च दृष्टेः ॥
कंठास्यशोषः श्रवणावरोधस्तृष्णाभिघाताद्धृदये व्यथा च ॥ १४ ॥
श्रांतस्य निःश्वासविनिग्रहेण हृद्रोगमोहावथवापि गुल्मः ॥
जृंभांगमर्दोङ्गशिरोक्षिजाढ्यं निद्राभिघातादथवापि तंद्रा ॥ १५ ॥

क्षुधा रोकनेसे तन्द्रा, अंगोंका टूटना (अंगडाई), अरुचि और श्रम होतेहैं तथा दृष्टिमें दुर्बलता ये उपद्रव होतेहैं और तृषाके रोकनेसे कंठ और मुखका सूखना, कानोंका रुक जाना और हृदयमें व्यथा ये उपद्रव होतेहैं ॥ १४ ॥ परिश्रम करके थके मनुष्यके श्वास रोकनेसे हृद्रोग, मोह (मूर्च्छा) अथवा गुल्म होजाताहै और निद्राके अयोग्य रोकनेसे जँभाई आना, अंग टूटना, शिर और आँखोंमें जडता (भारीपन) होना तथा तन्द्रा (ऊंघसी आना) ये उपद्रव होतेहैं ॥ १५ ॥

उदावर्तकी असाध्यता ।

तृष्णार्दितं परिक्लिष्टं क्षीणं शूलैरभिद्रुतम् ॥
शकृद्वमंतं मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् ॥ १६ ॥

तृष्णासे पीडित, क्लेशयुक्त, क्षीण, शूलयुक्त और विष्ठाका वमन करता हुआ ऐसा उदावर्तका रोगी असाध्य (त्यागने योग्य) होताहै ॥ १६ ॥

उदावर्तकी चिकित्सा ।

सर्वेष्वेतेषु विधिवदुदावर्तेषु कृत्स्नशः ॥
वायोः क्रिया विधातव्या स्वमार्गप्रतिपत्तये ॥
सामान्यतः पृथक्त्वेन क्रियां भूयो निबोध मे ॥ १७ ॥

इन सब प्रकारके उदावर्तोंमें समग्रतया ऐसी क्रिया करनी चाहिये जिससे अपने २ मार्गोंमें ठीक २ वायुका संचार होवे (क्योंकि इसमें प्रधान कारण वायुही हुआ करताहै) सामान्यतासे तो मुख्य चिकित्सा सबकी यही है और विशेषतासे सबकी जुदी २ चिकित्सा सुनो (उसे हम अगाडी कहतेहैं ॥ १७ ॥

अधोवायु और पुरीषके उदावर्तकी चिकित्सा।

आस्थापनं मारुतजे स्निग्धे स्विन्ने विशिष्यते ॥
पुरीषजे तु कर्तव्यो विधिरानाहिको भवेत् ॥ १८ ॥

अधोवायु रुकनेके उदावर्तमें स्नेहन, स्वेदन कराकर आस्थापनवास्ति करना श्रेष्ठ है और दस्त रुकनेके उदावर्तमें आनाह (अफारे) की विधि करनी उचित होतीहै ॥ १८ ॥

मूत्रोदावर्तकी चिकित्सा।

सौवर्चलाढ्यां मदिरां मूत्रे त्वभिहते पिबेत् ॥ एलामप्यथ मद्येन क्षीरं वापि पिबेन्नरः ॥ १९ ॥ धात्रीफलानां स्वरसं सजलं वा पिबेत्र्यहम् ॥ रसमश्वपुरीषस्य गर्दभस्याथ वा पिबेत् ॥ २० ॥ मांसोपदंशं मधुं वा पिबेद्वा सीधु गौडिकम् ॥ भद्रदारु घनं मूर्वा हरिद्रां मधुकं तथा ॥ २१ ॥ कोलप्रमाणानि पिबेदांतरिक्षेण वारिणा ॥ दुस्पर्शास्वरसं वापि कषायं कुंकुमस्य च ॥ २२ ॥ एर्वारुबीजं तोयेन पिबेद्वा लवणीकृतम् ॥ पंचमूलीशृतं क्षीरद्राक्षारसमथापि वा ॥ २३ ॥ योगांश्च वितरेत्तत्र पूर्वोक्तानश्मरीभिदः ॥ मूत्रकृच्छ्रक्रमं वापि कर्यान्निरवशेषतः ॥ भूयो वक्ष्यामि योगांश्च मूत्राघातोपशांतये ॥ २४ ॥

मूत्र रुकनेके उदावर्तमें मदिरामें काला नमक मिलाके पीवे अथवा मद्यको इलायची मिलाकर या दूध मिलाके पीवे ॥ १९ ॥ अथवा आंवलोंके स्वरसमें पानी मिलाके तीन दिन पीवे अथवा घोडेकी लीदका रस या गधेकी लीदका रस (पानी मिलाके) पीवे ॥ २० ॥ मद्य पीकर (सीधु या गौडी मद्य पीकर) मांस खावे अथवा भद्रदारु, नागरमोथा, मूर्वा, हलदी और मुलेठी इनको दो दो टंक लेकर वर्षाके पानीसे पीवे अथवा जवासेका स्वरस तथा केसरका काथ पीवे ॥ ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ अथवा ककडीके बीज पानीके संग जरासा नमक मिलाकर पीवे अथवा पंचमूल (लघुपंचमूल) के संग पकाया दूध या दाखका रस पीवे ॥ २३ ॥ अथवा पूर्वोक्त पथरीके भेदन करनेवाले योगोंका उपयोग करे अथवा आद्योपांत मूत्रकृच्छ्रका क्रम करे और मूत्राघात (मूत्र बंद होने) की शांतिके लिये हम अगाडी योग वर्णन करेंगे (वे भी यहां यथायुक्त उपयोगमें आसकते हैं) ॥ २४ ॥

जृंभाके उदावर्तादिकी चिकित्सा ।

स्नेहस्वेदैरुदावर्तं जृंभाजं समुपाचरेत् ॥ अश्रुमोक्षोऽश्रुजे कार्यः स्निग्धस्विन्नस्य देहिनः ॥२५॥ तीक्ष्णांजनावपीडाभ्यां तीक्ष्णगंधोपहिंसनैः ॥ वर्तिप्रयोगैरथवा क्षवशक्तिं प्रवर्तयेत् ॥ २६ ॥ तीक्ष्णौषधप्रधमनैरथवाऽऽदित्यरश्मिभिः ॥ २७ ॥

जंभाईके रुकनेवाले उदावर्तमें स्नेहन, स्वेदन करना और अश्रु रुकनेके उदावर्तमें स्निग्ध स्वेदन कराके अश्रु निकालदेने उचित हैं ॥ २५ ॥ और छींक रुकनेके उदावर्तमें तीक्ष्ण अंजन करने, अवपीडन नस्य देने, तीक्ष्ण वस्तु सुँघानी अथवा नाकमें बत्ती डालकर छींक लेनी ठीक है तथा तीक्ष्ण औषधोंकी प्रधमन नस्य लेना या सूर्यकी तरफ देखकर सूर्यकी किरणोंका प्रकाश नाकमें पहुँचाके छींक लेना हित है ॥ २६ ॥ २७ ॥

उद्गारजे क्रमोपेतं स्नैहिकं धूममाचरेत् ॥ सुरां सौवर्चलवतीं बीजपूर्णरसान्विताम् ॥ २८ ॥ छर्द्याघातं यथादोषं सम्यक्स्नेहादिभिर्जयेत् ॥ सक्षारलवणोपेतमभ्यंगं चात्र दापयेत् ॥ २९ ॥

डकार रुकनेके उदावर्तमें क्रमयुक्त स्निग्ध धूमपान करे और सुरा (मदिरा) में कालानमक तथा बिजोरे नींबूका रस मिलाकर पीवे ॥ २८ ॥ और वमन रुकनेके उदावर्तमें दोषके अनुसार स्नेहनोंसे उसे जीते और जवाखार नमक मिले (तैलादिकी) मालिश करे ॥ २९ ॥

शुक्रज उदावर्तका यत्न ।

बस्तिशुद्धिकरावापं चतुर्गुणजलं पयः ॥
आवारिनाशात्क्वथितं पीतवंतं प्रकामतः ॥
रमयेयुः प्रिया नार्यः शुक्रोदावर्तिनं नरम् ॥ ३० ॥

शुक्रावरोधज उदावर्तमें वस्ति शुद्ध करनेवाले द्रव्य (गोक्षुरादि) डालकर चौगुना पानी डालकर दूधको उबाले और पानी जलनेतक उबलने दे फिर उसे भरपेट पिलाकर प्यारी स्त्रियोंसे रमण करावे ॥ ३० ॥

(वक्तव्य) इस समयका सुजाक रोग प्रायः इस शुक्रज उदावर्तसे मिलता है ॥

(श्लो० ३०) शुक्रोदावर्ते रमणाय नार्योऽत्र श्यामाऽभिप्रेताः । गौराणां तु अतिरमणं कृच्छ्रकरम् । तदुक्तं हारीते मूत्रकृच्छ्रे "गौरस्त्रीसेवनेनापि रक्तं वापि प्रवर्तते" इति ।

क्षुधा रोंकने आदिके उदावर्तोंकी चिकित्सा ।

क्षुद्विघाते हितं स्निग्धमुष्णमल्पं च भोजनम् ॥ तृष्णाघाते पिबेन्मंथं यवागूं वापि शीतलाम् ॥ ३१ ॥ भोज्यो रसेन विश्रांतः श्रमश्वासातुरो नरः॥निद्राघाते पिबेत्क्षीरं स्वप्याच्चेष्टकथारतः॥३२॥

क्षुधा रोंकनेके उदावर्तमें चिकना गरम गरम थोड़ा भोजन देना उचित है और तृषा रोंकनेके उदावर्तमें मंथ पीना या ठंढी यवागू पीना चाहिये ॥ ३१ ॥ श्रमसे बढेहुए श्वासको रोंकनेके उदावर्तमें मांसरसके संग भोजन करावे और निद्रा रोंकनेके उदावर्तमें दूध पीकर अच्छी २ बातें (कहानियें) सुनता हुआ इच्छापूर्वक सोवे ॥ ३२ ॥

आध्मानोत्थेषु रोगेषु यथास्वं प्रयतेत हि ॥
यच्च यस्मिन्भवेत्प्रोक्तं तच्च तस्मिन्प्रयोजयेत् ॥ ३३ ॥

उदावर्तमें जो प्रायः अफारा होता है और उससे जो जो शूल आदि रोग होते हैं उनका यथायोग्य प्रयत्न करे जो जो जिस जिस रोगमें यत्न कहे हैं उन रोगोंके यहां होनेमें वही यत्न करने चाहिये ॥ ३३ ॥

अपथ्यभोजनका उदावर्त ।

वायुः कोष्ठानुगो रूक्षैः कषायकटुतिक्तकैः ॥ भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्तं करोति हि ॥ ३४ ॥ वातमूत्रपुरीषासृक्कफमेदोवहानि वै ॥ स्रोतांस्युदावर्तयति पुरीषं चातिवर्तयेत् ॥ ३५ ॥ ततो हृद्बस्तिशूलार्तो गौरवारुचिपीडितः ॥ वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण कुरुते नरः ॥ ३६ ॥ श्वासकासप्रतिश्यायदाहमोहवमिज्वरान् ॥ तृष्णाहिक्काशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान् ॥ लभते च बहूनन्यान्विकारान्वातकोपजान् ॥ ३७ ॥

रूखे भोजन करनेसे, कसेले, चरपरे और कडुवे पदार्थ विशेष खानेसे कोठेका वायु (अपानवायु) कुपित होकर सद्यः ही उदावर्त पैदा करताहै ॥ ३४ ॥ वायु, मूत्र, विष्ठा, रुधिर, कफ, मेद इनके बहनेवाले स्रोतोंमें उदावर्त (ऊर्द्ध विपरीत गति और भ्रमण) करदेताहै और वायु ऊर्द्धगामी होजाताहै और बहुतसे दस्त आकर ॥ ३५ ॥ फिर हृदय और वस्तिमें शूल होताहै, भारीपन और अरुचिकी पीडा होतीहै तथा अधोवायु, मूत्र और दस्त कष्टसे आतेहैं ॥ ३६ ॥ और श्वास,

खांसी, प्रतिश्याय, दाह, मोह, वमन, ज्वर, तृषा, हुचकी, शिरमें पीडा, मन और श्रवण (शब्द सुनने) का भ्रम ये उपद्रव होतेहैं तथा अन्य वायुके बहुतसे विकार भी होजातेहैं जैसे कंप आदि ॥ ३७ ॥

(वक्तव्य) कभी तो यह व्याधि दस्त बहुतसे आ आ कर बढतीहै और कभी दस्त, पेशाब, अधोवायु ये बंद होकर बढतीहै ॥

उदावर्तकी चिकित्सा ।

तत्तैलं लवणाभ्यक्तं स्निग्धं स्विन्नं निरूहयेत् ॥ दोषतो भिन्न-वर्चस्कं भुक्तं चाप्यनुवासयेत् ॥ ३८ ॥ न चेच्छांतिं प्रयात्येव-मुदावर्तः सुदारुणः ॥ अथैनं बहुशः स्विन्नं युंज्यात्स्नेहविरेचनैः॥ ॥ ३९ ॥ पाययेत त्रिवृत्पीलुयवानीरम्लपानकैः ॥ हिंगुकुष्ठवचा-स्वर्जिविडंगं वा द्विरुत्तरम् ॥ ४० ॥ योगावेतावुदावर्तं शूलं चापि नियच्छतः ॥ ४१ ॥

इस उदावर्तवाले रोगीको लवण मिले तेलका मर्दन कराके स्निग्ध कियेहुएको स्वेदन करावे और निरूहण वस्ति करे और दोषके कारणसे पुरीष भिन्न होगया हो तो उसे उचित भोजन कराकर अनुवासनवस्ति करे ॥ ३८ ॥ और यदि दारुण बढाहुआ उदावर्त हो और इस विधिसे शांत न हो तो रोगीको बहुतसा स्वेदित करके स्नेहका (एरंडतैलादिका) विरेचन देवे ॥ ३९ ॥ और निशोथ, पीलु, अजवायन इन्हें खट्टे पन्नोंके संग पीलेवे अथवा हींग, हींगसे दूनी कूट, कूटसे दूनी वच, वचसे दूनी सज्जीखार और इससे दूनी विडंग इन्हें लेवे ॥ ४० ॥ ये दोनों योग उदावर्त और शूलको नष्ट करदेतेहैं ॥ ४१ ॥

देवदार्वग्निकं कुष्ठं वचां पथ्यां पलंकषाम् ॥ पौष्कराणि च मूलानि तोयस्यार्द्धाढकं पचेत् ॥ ४२ ॥ पादावशिष्टं तत्पीतमुदावर्तं व्यपोहति ॥ मूलकं शुष्कमार्द्रं च वर्षाभूः पंचमूलकम् ॥ ४३ ॥ आरेवतफलं चाप्सु पक्त्वा तेन घृतं पचेत् ॥ तत्पीयमानं शमये-दुदावर्तमशेषतः ॥४४॥ वचामतिविषां कुष्ठं यवक्षारं हरीतकीम् ॥ कृष्णां निर्दहनीं चापि पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ४५ ॥ इक्ष्वाकुमूलं मदनं विशल्यातिविषे वचाम् ॥ कुष्ठं किण्वाग्निकौ चापि पिबे-त्तुल्यानि पूर्ववत् ॥ ४६ ॥

देवदारु, चित्रक, कूट, वच, हरडे, गूगल और पुष्करमूल इन्हें आधे आढक (दो प्रस्थ) पानीमें पकावे ॥ ४२ ॥ चौथाई शेष रहनेपर उतार ले और इसे पीवे यह उदावर्तको नष्ट करताहै और मूलक (कोई मूली कहतेहैं कोई पीपलामूल मानतेहैं) मूली माननेवाले सूखी मूली और गीली मूली ऐसा अर्थ करतेहैं और पिप्पलीमूल माननेवाले पीपलामूल और अदरख ऐसा अर्थ करतेहैं और सौंठी, बृहत्पंचमूल और किरमालेकी फली इन्हे पानीमें क्वाथ करके उसमें घृत पकावे यह घृत पीना सब उदावर्तोंको नष्ट करताहै ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ तथा वच, अतीस, कूट, जौखार, हरडे, पीपल और निर्दहनी (अरणी) इनको गरम जलसे पीवे ॥ ४५ ॥ अथवा इक्ष्वाकु (कडुतुंबी) की जड, मैनफल, इंद्रायन, अतीस, वच, कूट, किण्व (मद्यका बीज) और चित्रक इनको पहलेके भांति गरम पानीसे पीवे ॥ ४६ ॥

मूत्रेण देवदार्वग्निं त्रिफलाबृहतीः पिबेत् ॥ ४७॥ यवप्रस्थं फलैः सार्द्धं कंटकार्या जलाढके ॥ पक्त्वार्द्धं प्रस्थशेषं तु पिबेद्धिंगुसमन्वितम् ॥ ४८ ॥ मदनालाबुबीजानि पिप्पलीं सनिदिग्धिकाम्॥ संचूर्ण्य प्रधमेन्नाड्यो विशत्येतद्यथा गुदम् ॥ ४९ ॥

अथवा देवदारु, चित्रक, त्रिफला और बडी कटेली इन्हें गोमूत्रके संग पीवे ॥ ॥ ४७ ॥ अथवा एक प्रस्थ जौ और कटेलीके फल मिलाके एक आढक जलमें पकावे और आधा प्रस्थ शेष रहनेपर हींग मिलाके इसमेंसे पीवे ॥ ४८ ॥ अथवा मैनफल, कडवी तोंबीके बीज, पीपल और कटेली इन्हें पीस चूर्ण बनाकर नालीसे गुदामें फूँके (अर्थात् नालीमें भरके नाली गुदामें देकर ऐसे फूँक मारे जिससे वह चूर्ण गुदामें चला जावे । यह भी उदावर्तनाशक है) ॥ ४९ ॥

चूर्णं निकुंभकंपिल्लश्यामेक्ष्वाकग्निकोद्भवम् ॥ कृतवेधनमागध्यो लवणानां च साधयेत् ॥ ५० ॥ गवां मूत्रेण ता वर्तीः कारयेत्तु गुदानुगाः ॥ सद्यः शर्मकरावेतौ योगावमृतसंभवौ ॥ ५१ ॥

इति सुश्रुतसं०उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

अथवा दंती, कमेला, निशोथ, कडवी तुंबी, चित्रक, कडवी तोरी और पीपल तथा पांचों नमक इनको गोमूत्रमें पीसकर बत्ती बनावे और गुदामें प्रवेश करदे ये दोनों योग (एक ऊपरवाली नालीसे गुदामें औषध पहुँचना और दूसरे यह बत्ती) उदावर्त रोगवालेके लिये अमृतके समान हैं और तत्काल आराम करनेवाले हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥

इति प० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतंत्र कायचिकित्सायां पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ५६.

अथातो विसूचिकाप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम विसूचिका (हैजे) के प्रतिषेधका व्याख्यान करतेहैं ।

विसूचीका हेतु और निरुक्ति ।

अजीर्णमामं विष्टब्धं विदग्धं च यदीरितम् ॥ विसूच्यलसकौ तस्माद्भवेच्चापि विलंबिका ॥ १ ॥ सूचीभिरिव गात्राणि तुदन्संतिष्ठतेऽनिलः ॥ यस्याजीर्णेन सा वैद्यैरुच्यते तु विसूचिका ॥ २ ॥

पहले जो आम विष्टब्ध और विदग्ध अजीर्ण कहा जा चुका है उसीसे विसूची, अलस और विलंबिका रोग होतेहैं ॥ १ ॥ जिसके अजीर्णमें सूईके चुभनेकेसी पीडा देता हुआ वायु स्थित होजावे (न नीचेको अधोवायुसे निकले न ऊपरको डकारसे) तब उसे वैद्य विसूचिका कहतेहैं ॥ २ ॥

न तां परिमिताहारा लभंते विदितागमाः ॥
मूढास्तामजितात्मानो लभंतेऽशनलोलुपाः ॥ ३ ॥

जो विचारपूर्वक प्रमाणका यथायोग्य भोजन करनेवाले बुद्धिमान् होतेहैं उन्हें यह व्याधि नहीं होती और जो मूर्ख अजितेंद्रिय और खानेके लालची विशेष होतेहैं उनको हुआ करतीहै ॥ ३ ॥

विसूचिकाके उपद्रवसहित लक्षण ।

मूर्च्छातिसारौ वमथुः पिपासा शूलं भ्रमोद्वेष्टनजृंभदाहाः ॥
वैवर्ण्यकंपौ हृदये रुजश्च भवंति तस्यां शिरसश्च भेदः ॥ ४ ॥

इस विसूचीरोगमें मूर्च्छा, अतिसार, वमन, प्यास, शूल, भ्रम, उद्वेष्टन, जंभाई, दाह, वर्ण बिगडजाना, कंप होना, हृदयमें पीडा और शिरमें वेदना ये लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥

अलसके लक्षण ।

कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं ताम्यत्यथ च कूजति ॥ निरुद्धो मारुतश्चापि कुक्षावुपरि धावति ॥ ५ ॥ वातवर्चोनिरोधश्च कुक्षौ यस्य भृशं भवेत् ॥ तस्यालसकमाचष्टे हिक्कोद्गारौ तु यस्य तु ॥ ६ ॥

(श्लो० ३) विदितागमाः आयुर्वेदज्ञाः । अजितात्मानः क्षुद्रमनसः अजितेंद्रियाश्च । (श्लो० ५) कुक्षौ उपरि धावतीति कुक्षौ उदरे च उपरि उपरि धावतीत्यर्थः ।

कूख अत्यन्त फूलजावे, अँधेरीसी आवे, आंतें बोलें, अधोवायु रुकजावे और कूखोंमें ऊपर ऊपरको चढे ॥ ५ ॥ वायु और दस्त रुकजावें और कूखमें दरद हो, हुचकी और डकारें आवें ये लक्षण जिसके हों उसके अलस रोग (विसूचिकाका भेद) जानना ॥ ६ ॥

विलंबिकाके लक्षण ।

दुष्टं तु भुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्त्तते नोर्ध्वमधश्च यस्य ॥
विलंबिकां तस्य विवर्जनीयामाचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः ॥ ७ ॥

जिसके कियाहुआ भोजन कफ और वायुसे दुष्ट होकर न ऊपरको वमनसे निकलताहै और न नीचेको दस्तसे निकलताहै उसके शास्त्रज्ञ पुराने वैद्य असाध्य (त्यागने योग्य) विलंबिका (बंध हैजा) कहतेहैं ॥ ७ ॥

यत्रस्थमामं विरुजेत्तमेव देशं विशेषेण विकारजातैः ॥
दोषेण येनावततं स्वलिंगैस्तं लक्षयेदामसमुद्भवैश्च ॥ ८ ॥

जिस जगह आम (विना पका भोजन) होताहै उसी स्थानमें विकारसे विशेष पीडा होतीहै (वहां ही दरद होतीहै) और जिस दोषसे वह व्याप्त होवे उसीके लक्षणोंसे उसे जानना चाहिये जो जो आमके दोषसे उपद्रव होतेहैं उन्हें इसी भांति जानना चाहिये ॥ ८ ॥

विसूचीकी असाध्यता ।

यः श्यावदंतौष्ठनखोऽल्पसंज्ञश्छर्द्यर्दितोऽभ्यंतरयातनेत्रः ॥
क्षामस्वरः सर्वविमुक्तसंधिर्यायान्नरोऽसौ पुनरागमाय ॥ ९ ॥

जिसके दांत, होंठ, नख ये काले पडजावे, संज्ञा घटजावे, वमनकी पीडासे नेत्र भीतरको घुसजावें, आवाज बैठजावे, सब संधियां ढीली पडजावें ऐसा विसूचीका रोगी मृत्युको प्राप्त होवे ॥ ९ ॥

विसूचीकी चिकित्साका निर्देश ।

साध्यासु पार्ष्ण्योर्दहनं प्रशस्तमग्निप्रतापो वमनं च तीक्ष्णम् ॥
पक्वे ततोऽन्ने तु विलंघनं स्यात्संपाचनं चापि विरेचनं वा ॥ १० ॥

साध्यविसूची और अलसादिमें पार्ष्णिस्थान (टकने) में दाग देना श्रेष्ठ होता है और अग्निसे तपाना, तीक्ष्ण वमन कराना और भोजन पकनेपर लंघन कराना और पकता न हो तो पाचन औषध देना अथवा विरेचन देके निकाल देना उचित है ॥ १० ॥

विशुद्धदेहस्य हि सद्य एव मूर्च्छातिसारादिरुपैति शांतिम् ॥
आस्थापनं चापि वदंति पथ्यं सर्वासु योगानपरान्निबोध ॥ ११ ॥

जब वमन, रेचनादिसे शरीर शुद्ध होजाताहै तब मूर्च्छा, अतिसारादिक उपद्रव शांत होजातेहैं और इस अवस्थामें आस्थापनवस्तिको भी पथ्य कहतेहैं इनके सिवाय सबके लिये और योग सुनों ॥ ११ ॥

पथ्यावचाहिंगुकलिंगगृंजसौवर्चलैः सातिविषैश्च चूर्णम् ॥
सुखांबुपीतं विनिहंत्यजीर्णं शूलं विसूचीमरुचिं च सद्यः ॥ १२ ॥

हरडे, वच, हींग, इन्द्रजौ, लहसन, कालानमक और अतीस इनका चूर्णकर गरम पानीसे पीवे यह अजीर्ण, शूल, विसूची और अरुचि इनको तत्काल नष्ट करताहै ॥ १२ ॥

क्षारागदं वा लवणं विडं वा गुडप्रगाढानथ सर्षपान्वा ॥
अम्लेन वा सैंधवहिंगुयुक्तौ सबीजपूर्णौ सघृतौ त्रिवर्गौ ॥ १३ ॥
कटुत्रिकं वा लवणैरुपेतं पिबेत्स्नुहीक्षीरविमिश्रितं तु ॥
कल्याणकं वा लवणं पिबेत्तु यदुक्तमादावनिलामयेषु ॥ १४ ॥

कल्पस्थानके दुंदुभिस्वनीयाध्यायोक्त क्षारागदका उपयोग करे अथवा विडनमक खावे अथवा गुडमें सरसों मिलाके अम्लरससे पीवे अथवा सैंधव, हींग, बिजोरा, घृत और त्रिवर्ग (कई त्रिफला, कई त्रिगन्ध कहतेहैं, कोई त्रिफला, त्रिकटु दोनों कहतेहैं) को मिलाकर सेवन करे ॥ १३ ॥ अथवा त्रिकटुमें नमक और थोहरका दूध मिलाके पीवे अथवा कल्याणलवण जो वातव्याधिमें कहाहै उसे पीवे ॥ १४ ॥

कृष्णाजमोदक्षवकाणि वापि तुल्यौ पिबेद्वा मगधानिकुंभौ ॥
दंतीयुतं वा मगधोद्भवानां कल्कं पिबेत्कोषवतीरसेन ॥
उष्णाभिरद्भिर्मगधोद्भवानां कल्कं पिबेन्नागरकल्कयुक्तम् ॥ १५ ॥
व्योषं करंजस्य फलं हरिद्रे मूलं समं वाप्यथ मातुलुंग्याः ॥
छायाविशुष्का गुटिकाः कृतास्ता हन्युर्विसूचीं नयनांजनेन ॥ १६ ॥

(श्लो० १२) गृंज लशुनम् । केचित्पलाण्डुमाहुः । (श्लो० १३) त्रिवर्गौ द्विवचनवशेन त्रिफलात्रिकटुकौ एव ज्ञेयौ ।

पीपल, अजमोद, और क्षवक (राई) इनको अथवा पीपल और दंतीकी बरावर पीवे अथवा दंती और पीपलके कल्कको कडवी तोरीके रससे पीवे अथवा पीपल और सोंठके कल्कको गरम पानीसे पीवे ॥ १५ ॥ और त्रिकटु, करंजके फल, दोनों हलदी और विजोरेकी जड इनको समान भाग लेकर गोली बनाके छायामें सुखाले इनका नेत्रोंमें अंजन लगानेसे विसूची नष्ट होवे ॥ १६ ॥

भोजनका उपदेश ।

सुवामितं साधु विरेचितं वा सुलंघितं वा मनुजं विदित्वा ॥
पेयादिभिर्दीपनपाचनीयैः सम्यक् क्षुधार्तं समुपक्रमेत ॥ १७ ॥

अच्छी तरह वमन हुआ या विरेचन दिया या लंघन किया इत्यादि प्रकारसे शुद्ध हुए मनुष्यको सव तरह ठीक क्षुधा लगी ऐसा जानकर उसे दीपन, पाचन और पेयादि भोजन देने चाहिये ॥ १७ ॥

आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानिलेन ॥
प्रवर्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरंति ॥ १८ ॥
तस्मिन्भवंत्यामसमुद्भवे तु तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः ॥
आमाशये शूलमथो गुरुत्वं हृल्लासउद्गारविघातनं च ॥ १९ ॥
स्तंभः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रे शूलोऽथ मूर्च्छा च शकृद्वमिश्च ॥
श्वासश्च पक्वाशयजे भवंति लिंगानि चात्रालसकोद्भवानि ॥ २० ॥

यदि क्रमसे संचित हुए आम या मल विगुण वायुसे रुककर यथायोग्य प्रवृत्त नहीं होते तो इसे आनाहका विकार कहते हैं ॥ १८ आमके दोषसे हुए आनाहमें तृषा, प्रतिश्याय, शिरमें गरमी, आमाशयमें शूल और भारीपन, जी मिचलाना और डकारें बंद होना ये लक्षण होते हैं ॥ १९ ॥ कमर, पीठ, दस्त और मूत्र ये बंद होजावें, शूल और मूर्च्छा हो और विष्ठाकैसी वमन हो, श्वास हो ये लक्षण पक्वाशयज (पुरीषज) आनाहके हैं तथा येही लक्षण अलसके भी होते हैं (अथवा इसीसे अलसके लक्षण पैदा होजाते हैं अर्थात इसीसे अलस होजाता है) ॥ २० ॥

आनाहकी चिकित्सा ।

आमोद्भवे वामुपक्रमेत संसर्गभक्तक्रमदीपनीयैः ॥
अथेतरं यो न शकृद्भमेत्तमामं जयेत्स्वेदनपाचनैश्च ॥ २१ ॥

(श्लो० २१) संसर्गभक्तक्रमः पेयादिक्रमः (इति नि० सं०) इतर पक्वाशयानाहम् ।

आम्लज आनाहमें पेयादिक्रमसे जो दीपन हो वायुको शांत करे और दूसरेमें जो विष्ठाकी वमन न करता हो उसके आमको स्वेदन और पाचनोंसे पकावे ॥ २१ ॥

विसूचिकायां परिकीर्तितानि द्रव्याणि वैरेचनिकानि यानि ॥
तान्येव वर्तीर्वितरेद्विचूर्ण्य माहिष्यजावीभगवां तु मूत्रैः॥ २२॥
स्विन्नस्य पायौ विनिवेश्य ताश्च चूर्णानि चैषां प्रधमेत्तु नाड्या ॥२३॥

विसूचिकामें जो विरेचन द्रव्य (दंती आदि) कहे हैं उन्हें ही पीसकर भैंस, बकरी, भेड, हथिनी और गौ इनके मूत्रसे बत्ती बनावे और रोगीको स्वेदन कराकर उसकी गुदामें वह बत्ती प्रविष्टकरे अथवा इस चूर्णको नाली द्वारा गुदामें प्रधमन करे ॥ २२ ॥ २३ ॥

मूत्रेण संसाध्य यथाविधानं द्रव्याणि यान्यूर्द्ध्वमधश्च यांति ॥
क्वाथेन तेनाशु निरूहयेच्च मूत्रार्द्धयुक्तेन समाक्षिकेन ॥ २४ ॥
त्रिभंडियुक्तं लवणप्रकुंचं दत्त्वा विरिक्तक्रममाचरेच्च ॥
एष्वेव तैलेन च साधितेन प्राप्तं यदि स्यादनुवासयेच्च ॥ २५ ॥

इति सुश्रुतसं०उत्तरतन्त्रे कायचिकित्सायां षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

जो द्रव्य ऊर्द्ध्वगामी तथा अधोगामी हैं अर्थात् वमन और विरेचनको प्रवृत्त करनेवाली हैं उनको यथायोग्य गोमूत्रमें सिद्धकर और उन्हींका क्वाथकर उनमें आधा गोमूत्र और शहद मिलाकर निरूहणवस्ति करना श्रेष्ठ है ॥२४॥ तथा निशोथ और एक प्रकुंच (पल) लवण देवे और विरेचनकासा क्रम (पथ्यादि) करावे और इन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए तैलसे यदि उचित हो तो अनुवासन वस्ति करे ॥ २५ ॥

यूनानीवाले इसे " हैजा " कहते हैं और डाक्टरीमें " कालरा " (Cholera) कहते हैं, यह महाभयंकर व्याधि है इसके समान शीघ्र मारक अन्य कोई व्याधि प्रायः नहीं है ।

इति पं०मुरलीधरवि०सुश्रुतस०भा०टी०उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ५७.

अथातोऽरोचकप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम अरुचिके प्रतिषेधके अध्यायका व्याख्यान करते हैं ।

(श्लो० २२) इभकथनेन हस्तिनी ग्राह्या ।

दोषैः पृथक्सह च चित्तविपर्ययाच्च भक्तायनेषु हृदि चावतते प्रगाढम् ॥ नान्ने रुचिर्भवति तं भिषजो विकारं भक्तोपघात- मिह पंचविधं वदंति ॥ १ ॥

तीन दोषों वायु, पित्त और कफ इनसे पृथक् पृथक्, चौथे सन्निपातसे, पांचवें चित्तके विगड जानेसे (शोक, भयादिसे), भोजनके मार्गों (जिह्वा, जिह्वामूल और आहारनलका आदि) तथा हृदय इनमें प्रगाढता प्राप्त होजाती है जिससे अन्नपर रुचि नहीं होती और भोजन नहीं खाया जाता इस अरुचि विकारको वैद्य उक्त क्रमसे पांच प्रकारका कहते हैं ॥ १ ॥

(वक्तव्य) भक्तोपघात शब्दसे अरुचि, भक्तद्वेष और अभक्तच्छंद इत्यादि भोजन नहीं खाया जानेके सभी पर्यायोंका ग्रहण होता है कई वैद्य इनके लक्षण पृथक् २ मानते हैं परन्तु चरक, सुश्रुत आर्ष ग्रंथोंमें इसके पृथक् भेद नहीं किये हां भोजसंहितामें इनके जुदे लक्षण लिखे हैं पर उन्हें कई वैद्य ठीक नहीं मानते क्योंकि भोजने लिखा है कि–"प्रक्षिप्तं तु मुखे चान्नं यत्र नास्वादते नरः ॥ अरोचकः स विज्ञेयो भक्तद्वेषमतः शृणु ॥ १ ॥ चिंतयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा तु भोजनम् ॥ द्वेषमायाति यो जंतुर्भक्तद्वेषः स उच्यते ॥ २ ॥" अर्थात् मुखमें डाला-हुआ अन्न नहीं भावे उसे वे अरुचि कहते हैं परंतु वास्तवमें अरुचि वह होती है जिसमें अन्नकी तरफ रुचिही न हो इसी प्रकार वे भक्तद्वेष चिन्तवनादिसे द्वेष होनेको मानते हैं और वास्तवमें भोजन खाये जाने या मुखमें लेनेसे द्वेष जब हो तब भक्तद्वेष कहाजाता है इसीसे उन भोजोक्त लक्षणोंको कई वैद्य विरुद्ध मानकर अंगीकार नहीं करते।

वास्तवमें जिसमें अन्नपर रुचिही न हो उसे अरुचि समझिये और जिसमें रुचि तो भोजनपर हो परंतु मुँहमें लेतेही बुरा लगे या उकलाई आजावे उसे भक्तद्वेष जानना चाहिये।

अरुचिके लक्षण।

हृच्छूलपीडनयुतं विरसाननत्वं वातात्मके भवति लिंगमरोचके तु ॥ हृद्दाहचोषबहुता मुखतिक्तता च मूर्च्छा सतृड् भवति पित्तकृते तथैव ॥२॥ कंडूगुरुत्वकफसंस्रवसादतंद्राश्लेष्मात्मके मधुरमास्यमरोचके तु ॥ सर्वात्मके पवनपित्तकफा बहूनि रूपाण्यथास्य हृदये

समुदीरयंति ॥ ३ ॥ संरागशोकभयविप्लुतचेतसस्तु चिंताकृतो भवति सोऽशुचिदर्शनाच्च ॥ ४ ॥

वायुकी अरुचिमें ये लक्षण होते हैं—हृदयमें शूल और पीडा हो, मुँह विरस हो और पित्तकी अरुचिमें हृदयमें दाह, चोष, मुँहमें बहुत कड़वापन, मूर्च्छा, तृषा ये लक्षण होते हैं ॥ २ ॥ और कफकी अरुचिमें ये लक्षण होते हैं कि खाज हो, भारीपन रहे, मुँहसे कफ या पानी झिरे, शिथिलता हो, तंद्रा और मुँह मीठा रहे और सन्निपातके अरोचकमें वायु, पित्त, कफ सबके लक्षण हों और मुख तथा हृदयमें भी अनेक रूप मालूम पडें ॥ ३ ॥ और रागसे या शोकसे या भयसे या अशुद्ध खराब वस्तुके देखनेसे जो चित्त बिगड़ जाता है उसको प्रायः उसी भांतिकी विशेष चिंता रहती है ॥ ४ ॥

अरुचिकी चिकित्सा ।

वाते वचांबुवमनं कृतवान्पिबेच्च स्नेहैः सुराभिरथवोष्णजलेन चूर्णम् ॥ कृष्णाविडंगयवभस्महरेणुभार्ङ्गीरास्नैलहिंगुलवणो-त्तमनागराणाम् ॥ ५ ॥

वायुकी अरुचि हो तो वचके जलसे वमन कराकर पीपल, विडंग, जौकी राख, हरेणु, भारंगी, रास्ना, इलायची, हींग, सैंधानमक और सोंठ इनके चूर्णको स्नेहसे या मदिरासे या गरम पानीसे पीवे ॥ ५ ॥

पित्ते गुडांबुमधुरैर्वमनं प्रशस्तं स्नेहैः ससैंधवसितामधुसर्पिरिष्टैः ॥ निंबांबुवामितवतः कफजेऽनुपानं राजद्रुमांबुमधुना तु सदीप्यकं स्यात् ॥ चूर्णं यदुक्तमथवाऽनिलजं तदेव सर्वैश्च सर्वकृतमेव-मुपक्रमेत ॥ ६ ॥

पित्तकी अरुचिमें गुडके जल, और मधुर द्रव्योंसे वमन करावे और सैंधा नमक, मिश्री, शहद, घृत इनसे युक्त स्नेह देवे (अर्थात् मक्खन, मिश्री या शहद आदि डालकर चटावे) कफकी अरुचिमें नींबके क्वाथसे वमन कराके किर-मालेके क्वाथमें अजमोदा युक्त करके शहद मिलाके ऊपरसे पिलावे अथवा वायु-

---

(श्लो० ४) संरागः कामः अथवा उत्साहः संरागादिभिर्विप्लुतचेतसः विप्लुतचित्तात् उत्सादेपि कदाचित्तल्लग्नचित्तत्वादरुचिः सजायते तथा अपवित्रदर्शनादेश्च स अरोचकः चिंताकृतो भवतीति भावः । उल्लनस्तु इत्याह—विप्लुतचित्तस्य अशुचिदर्शनात् चिंताकृतस्य च अरोचकस्य वातादिभेदेन लक्षणानि वदति इति ।

की अरुचिमें जो चूर्ण कहाहै वही देवे और संनिपातकी अरुचिमें सब यत्न करे (जो दोष उल्वण हो उसीके प्रधानयत्नपूर्वक मिश्रित यत्न करे) ॥ ६ ॥

द्राक्षापटोलविडवेत्रकरीरनिंबमूर्वाभयाक्षबदरामलकैंद्रवृक्षैः ॥ बीजैः करंजनृपवृक्षभवैश्च पिष्टैर्लेहं पचेत्सुरभिमूत्रयुतं यथावत् ॥७॥ मुस्तां वचां त्रिकटुकं रजनीद्वयं च भार्ङ्गीं च कुष्ठमथ निर्दहनीं च पिष्ट्वा ॥ मूत्रेविजे द्विरदमूत्रयुते पचेद्वा पाठां तु गामतिविषां रजनीं च मुख्याम् ॥८॥ मांडूकिमर्कममृतां च सलांगलाख्यां मूत्रे पचेत्तु महिषस्य विधानविद्वा ॥ एतान्नि संति चतुरो लिहतस्तु लेहान्गुल्मारुचिश्वसनकंठहृदामयाश्च ॥ ९ ॥

दाख, परवल, बिडलवण, वेत, करीर, नींब, मूर्वा, हरडे, बहेडा, आंवले, बेर-इन्द्रजौ, करंज और अमलतासके बीज इन्हे पीसकर गोमूत्रसे पकाकर लेह (चटनी) बनावे ॥ ७ ॥ अथवा नागरमोथा, वच, त्रिकटु, दोनों हलदी, भारंगी, कूट और निर्दहनी (चित्रक या अरनी) इनको पीसकर भेडके मूत्रमें पकाके अवलेह बनावे अथवा पाठा, वंशलोचन (तवाशीर), अतीस और हलदी इनको पीसके हाथीके मूत्रमें पकाके चटनी बनावे ॥ ८ ॥ अथवा मांडूकी (ब्राह्मीभेद) आक (आकके फूलका जीरा), गिलोय और लांगलाख्या (पृश्निपर्णी) इनको पीस भैंसके मूत्रमें पकाके विधि जाननेवाला वैद्य चटनी बनावे इन चारों अवा, लेहोंके चाटनेसे गुल्म, अरुचि, श्वास तथा कंठ और हृदयके रोग नष्ट होजातेहैं॥९॥

अरुचिमें पथ्य ।

सात्म्यान्स्वदेशरचितान्विविधांश्च भक्ष्यान् पानानि मूलफलषाडवरागयोगान् ॥ अद्याद्रसांश्च विविधान् विविधैः प्रकारैर्भुजीत वापि लघुरूक्षमनःसुखानि ॥ १० ॥

जो सानुकूल हों (माफकत हों) अपने देशके अनेक प्रकारसे बने हुए भक्ष्य पदार्थ तथा पीनेके पदार्थ और मूल, फल तथा षाडव (खाटे कढी आदिके) पदार्थ और जो अच्छे लगें ऐसे पदार्थ खावे और अनेक प्रकारके रसों और (शोरवों) को अनेक प्रकारसे खावे तथा हलके, रूखे और मनको सुख देनेवाले पदार्थ खाने पीने उचित होते हैं ॥ १० ॥

(श्लो० ९) सलागलाख्यामिति—लागला पृश्निपर्णी (इति शा० नि०) (श्लो० १०) अरोचके मुख्यत्वेन कफः । तस्माद्रूक्षस्योपयोगोऽहितः तथा शीघ्रपाकित्वाल्लघुपदार्थस्योपयोगः तथा चारोचकास्य: मनोपि अधिष्ठ नं तस्मान्मनसुखानि पदार्थानि उपयोज्यानीति ।

आस्थापनं विधिवदत्र विरेचनं च कुर्यान्मृदूनि शिरसश्च विरेचनानि ॥ त्रीण्यूषणानि रजनीत्रिफलायुतानि चूर्णीकृतानि यवशूकविमिश्रितानि ॥ ११ ॥ क्षौद्रायुतानि वितरेन्मुखधावनार्थमन्यानि तिक्तकटुकानि च भेषजानि ॥ मुस्तादिराजतरुवर्गदशाङ्गसिद्धैः क्वाथैर्जयेन्मधुयुतैर्विविधैश्च लेहैः ॥ १२ ॥ मूत्रासवैर्गुडकृतैश्च तथारिष्टैः क्षारासवैश्च मधुमाधवतुल्यगंधैः ॥ स्यादेष एवं कफवातहते विधिश्च शांतिं गते हुतभुजि प्रशमाय तस्य॥१३॥

यहाँ विधिपूर्वक आस्थापनवस्ति भी करे और विरेचन भी देवे और हलका शिरोविरेचन भी करे और त्रिकटु, हलदी, त्रिफला, जवाखार इनका चूर्ण बनाकर उपयोग करे ॥ ११ ॥ और इस चूर्णमें शहद मिलाकर (जलसे पतला करके) कुल्ले करे तथा और कडुवे चरपरे औषध करे (जैसे अदरख और नमक मिलाके खाना इत्यादि) अथवा मुस्तादि और आरग्वधादि गण और दशमूल इनके क्वाथमें शहद मिलाके अनेक प्रकारके अवलेह बनावे और उन्हें अरुचिमें उपयोग करे ॥ १२ ॥ मूत्रासवोंसे, गुडके अरिष्टोंसे तथा क्षारासवोंसे तथा शहदवाले अथवा शहदके पदार्थोंकेसी गंधवाले आसवोंसे अरुचिका उपचार करे और जब कफ, वायुसे जठराग्नि मंद होजातीहै तब भी उसके शमन करनेको यही विधि करनी श्रेष्ठ होती है ॥ १३ ॥

इच्छाभिघातभयशोकहतेऽतरग्नौ भावान्भवाय वितरेत्खलु शक्यरूपान् ॥ अर्थेषु चाप्युपचितेषु पुनर्भवाय पौराणिकैः श्रुतिपथैरनुभावयेत्तम् ॥ १४ ॥ दैन्यंगते मनसि बोधनमत्र शस्तं यद्यत्प्रियं तदुपसेव्यमरोचके तु ॥ १५ ॥

इति सुश्रुतसं०उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

(श्लो०११)यद्यपि तेजोन्मादभयशोकेत्यादिना अरोचके आस्थापननिषेधः तथापि वमनादिक्रमोत्तरकाले वातनिबद्धे सति देय न च आदौ (इति नि० सं०)। (श्लो० १२) मुखधावनार्थं मुखशुद्ध्यर्थं कवलगण्डूषादिभिर्मुखशोधनार्थमिति भावः। दशांगं दशमूलम्। (श्लो० १३) मूत्रासवैर्गुडकृतैः कुष्ठचिकित्सितोक्तविधिना गुडमध्वादिकृतैरित्यर्थः। अरिष्टैः अभयारिष्टादिभिः। क्षारासवैः मध्वादिभिः पलाशक्षारपानीयेन सह निष्पादितैर्महाकुष्ठाभिहितैः। मधुमाधवतुल्यगंधैरिति–मधु क्षौद्रं माधवं मधुकृतं तयोस्तुल्यगंधैः (इति नि० सं०)

इच्छाके भंग होनेसे, भयसे और शोकसे अंतराग्निके नष्ट होने (अरुचि होने) में यथाशक्ति उन्हीं उन भावोंके होनेका यत्न करे (भयशोकमें उन्हें दूर करनेका यत्न करे) और धनसंतानादिके नष्ट होनेके कारणसे हो तो उनके फिर होजाने आदि कथनोंसे संतोष दिलावे तथा पुराणोंकी कथा आदि सुनाकर मनको संतोष करावे ॥ १४ ॥ और जो मनमें दीनता (गरीबी सुस्ती या वैराग्य) आजानेसे हो तो उसे ज्ञान देना (शिक्षा करना) ही श्रेष्ठ होताहै और जो उसे अच्छा लगे वही इस अरुचिमें सेवन करावे ॥ १५ ॥

यूनानी हकीम अरुचिको "जूउलवकर" कहतेहैं तथा एकप्रकारकी अरुचिको "नुकसान" और "बतलान शहवततुआम" कहतेहैं अर्थात् भक्तद्वेषको जूउलवकर और अरुचि (क्षुधानाश) को नुकसान और बतलान शहवततुआम कहतेहैं ॥

इति प०मुरलीधरवि०सुश्रुतस०भा०टी० उत्तरतन्त्रे कायचिकित्सायां सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५७॥

अष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ५८.

अथातो मूत्राघातप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम मूत्राघात (मूत्र बंद हो जाने) के प्रतिषेधके अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ।

वातकुंडलिकाष्ठीला वातवस्तिस्तथैव च ॥ मूत्रातीतः सजठरो मूत्रोत्संगः क्षयस्तथा ॥ १ ॥ मूत्रग्रंथिर्मूत्रशुक्रमुष्णवातस्तथैव च ॥ मूत्रौकसादौ द्वौ चापि रोगा द्वादश कीर्तिताः ॥ २ ॥

वातकुंडलिका, वाताष्ठीला, वातवस्ति, मूत्रातीत, मूत्रजठर, मूत्रोत्संग, मूत्रक्षय॥ ॥ १ ॥ मूत्रग्रंथि, मूत्रशुक्र और उष्णवात और दो प्रकारके मूत्रौकसाद (एक पित्तका मूत्रौकसाद, दूसरा कफका) इस भांतिसे मूत्राघात १२ प्रकारका होताहै (अर्थात् मूत्रावरोधसंबंधी ये बारह प्रकारके रोग होते हैं) ॥ २ ॥

वातकुंडलिकाके लक्षण ।

रौक्ष्याद्वेगविघाताद्वा वायुर्बस्तौ सवेदनम् ॥ मूत्रं संगृह्य चरति विगुणः कुंडलीकृतः ॥ ३ ॥ सृजेदल्पाल्पमथवा सरुजस्कं शनैः शनैः ॥ वातकुंडलिकां तां तु व्याधिं विद्यात्सुदारुणम् ॥ ४ ॥

रूक्ष पदार्थोंके सेवनसे रूक्षता होनेपर अथवा मूत्र और मलके वेग रोकनेसे विगुण हुआ वायु वस्तिस्थानमें प्राप्त होकर वेदनासहित मूत्रको रोककर कुंडलाकार

होजाताहै (अर्थात् वस्तिस्थानमें चक्कर खाने लगताहै) और मूत्रको बंद करदेताहै ॥ ३ ॥ अथवा थोड़ा थोडा पीडासहित धीरे धीरे मूत्र आताहै इस दारुण व्याधिको "वातकुंडलिका" कहते हैं ॥ ४ ॥

वाताष्ठीलाके लक्षण।

शकृन्मार्गस्य वस्तेश्च वायुरंतरमाश्रितः ॥ अष्ठीलावद्धनं ग्रंथिं करोत्यचलमुन्नतम् ॥ ५ ॥ विण्मूत्रानिलसंगश्च तत्राध्मानं च जायते ॥ वेदना जायते वस्तौ वाताष्ठीलेति तां विदुः ॥ ६ ॥

मलमार्ग और वस्ति (मसाना) इनके मध्यमें प्राप्त हुआ वायु जब पत्थर जैसी स्थिर और कडी गांठसी बांध देता है ॥ ५ ॥ तब दस्त, पेशाब और अधोवायु सब रुकजाते हैं और उस स्थानपर अफाराभी होजाता है और वस्तिस्थानमें दर्दभी होता है इस व्याधिको "वाताष्ठीला" कहते हैं ॥ ६ ॥

वातवस्तिके लक्षण।

वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः ॥ निरुणद्धि मुखं तस्य वस्तेर्वस्तिगतोऽनिलः ॥ ७ ॥ मूत्रसंगो भवेत्तेन वस्तिकुक्षिनिपीडितः ॥ वातवस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसादनः ॥ ८ ॥

यदि कोई मूर्ख पुरुष मूत्रके वेगको रोंक लेवे तो उसके वस्तिस्थानमें वायु प्राप्त होकर उसके मुखको रोंक देताहै ॥ ७ ॥ जिससे मूत्र बंद होजाता है और वस्ति और कूखमें पीडा होती है उसे "वातवस्ति" कहते हैं यह व्याधि कष्टसाध्य है ॥ ८ ॥

मूत्रातीतके लक्षण।

संधार्य वेगं मूत्रस्य यो भूयः स्रष्टुमिच्छति ॥ तस्य नाभ्येति यदि वा कथंचित्संप्रवर्तते ॥ ९ ॥ प्रवाहतो मंदरुजमल्पमल्पं पुनः पुनः ॥ मूत्रातीतं तु तं विद्यान्मूत्रवेगविघातजम् ॥ १० ॥

जो मनुष्य मूत्रके वेगको (पेशाब करते करते) रोंक लेवे और फिर त्यागनेकी इच्छा करे तो या तो मूत्र उतरताही नहीं और यदि कदाचित् उतरता भी है तो उतरते समय पीडा होती है और थोडा २ वारवारमें उतरता है यह मूत्रवेगके रोंकनेसे होनेवाली "मूत्रातीत" नामक व्याधि कहलाती है ॥ ९ ॥ १० ॥

(श्लो० ५) अष्ठीलावत् पाषाणवद्घनीभूतम् । उन्नतम् उग्रम् ।

(श्लो० ७) मूत्रस्य वेगं मूत्रितः सन् संधार्य भूयः मूत्रं स्रष्टुं इच्छतीत्यर्थः ।

मूत्रजठर और मूत्रोत्संगके लक्षण ।

मूत्रस्य विहते वेगे तदुदावर्तहेतुना ॥ अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद्भृशम् ॥ ११ ॥ नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनम् ॥ तं मूत्रजठरं विद्यादधोवस्तिनिरोधजम् ॥ १२ ॥ वस्तौ वाप्यथवा नाले मणौ वा यस्य देहिनः ॥ मूत्रं प्रवृत्तं सज्जेत सरक्तं वा प्रवाहतः ॥ १३ ॥ स्रवेच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वाऽथ नीरुजम् ॥ विगुणानिलजो व्याधिर्मूत्रसंगः स संज्ञितः ॥ १४ ॥

मूत्रके वेग रोकनेसे उदावर्तके कारणसे अपान वायु कुपित होकर पेटको अत्यंत पूरण करदे (फुलादे) ॥ ११ ॥ और नाभिके नीचे तीव्रवेदनावाला आध्मान (अफारा) पैदा करदेवे तो इसे "मूत्रजठर" रोग कहते हैं यह वस्तिके अधोभागके निरोधसे होताहै ॥ १२ ॥ जिस मनुष्यके वस्तिमें या नालीमें मणि (लिंगके अग्रभाग) में प्रवृत्त हुआ मूत्र रुकजावे और प्रवाहण करनेसे थोडा धीरे धीरे निकले अथवा रक्तसहित निकले, पीडा होवे या न होवे विगुणवायुसे पैदा हुई यह व्याधि " मूत्रोत्संग" संज्ञक होतीहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

मूत्रक्षय और मूत्रग्रंथिके लक्षण ।

रूक्षस्य क्लांतदेहस्य वस्तिस्थौ पित्तमारुतौ ॥ सदाहवेदनं कृच्छ्रं कुर्यातां मूत्रसंक्षयम् ॥ १५ ॥ अभ्यंतरे वस्तिमुखे वृत्तोऽल्पः स्थिर एव च ॥ वेदनावाननिस्यंदी मूत्रमार्गनिरोधनः ॥ १६ ॥ जायते सहसा यस्य ग्रंथिरश्मरिलक्षणः ॥ स मूत्रग्रंथिरित्येवमुच्यते वेदनादिभिः ॥ १७ ॥

रूक्ष और क्लांत देहवालेके वस्तिस्थानमें पित्त और वायु प्राप्त होकर दाह, वेदना और कृच्छ्रसहित मूत्रका क्षय करतेहैं इसे "मूत्रक्षय" कहतेहैं (यह मूत्रके शोषण होनेसे होताहै) ॥ १५ ॥ वस्ति (मसाने) के मुँहपर भीतरको छोटी, गोल, स्थिर वेदनावाली और न झिरनेवाली मूत्रके मार्गको रोकनेवाली ॥ ॥ १६ ॥ अकस्मात् जिसके मूत्रकी गांठसी बँधजावे और पथरीकेसे सब लक्षण हों उसे "मूत्रग्रंथि" कहतेहैं ॥ १७ ॥

(वक्तव्य) 'क्लांतदेह' का प्रयोजन यह है कि इस रोगवालेका देह सदा क्लांत अर्थात् गीला गलगलायासा रहता है (पसीना ज्यादे आताहै)

(श्लो० १३) मणौ लिंगाग्रे । मणिः लिंगस्याग्रभागः (इति ग०)

मूत्रशुक्र और उष्णवायुके लक्षण ।

प्रत्युपस्थितमूत्रस्तु मैथुनं योऽभिनंदति ॥ तस्य मूत्रयुतं रेतः सहसा संप्रवर्त्तते ॥ १८ ॥ पुरस्ताद्वाऽपि मूत्रस्य पश्चाद्वाऽपि कदाचन ॥ भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥ १९ ॥ व्यायामाध्वातपैः पित्तं वस्तिं प्राप्यानिलावृतम् ॥ वस्तिमेढ्रगुदं चैवं प्रदहन्स्रावयेदधः ॥ २० ॥ मूत्रं हारिद्रमथवा सरक्तं रक्तमेव वा ॥ कृच्छ्रात्प्रवर्तते जंतोरुष्णवातं वदंति तम् ॥ २१ ॥

मूत्रकी हाजत होनेपर जो पुरुष मैथुन करे उसके मूत्रयुक्त वीर्य तभी प्रवृत्त होताहै ॥ १८ ॥ अथवा मूत्रसे पहले और कभी मूत्रसे पीछे वीर्यपात होताहै वह भस्ममिले जलके समान होताहै इसे "मूत्रशुक्र" कहतेहैं ॥ १९ ॥ परिश्रम करने, मार्ग चलने, धूपमें रहने (या गरम पदार्थ विशेष खाने) से जब पित्त वस्तिस्थानमें प्राप्त होजाताहै और वायुसे मिलजाताहै तब वस्ति, लिंग, गुदा इन स्थानोंमें जलन पैदा करता हुआ पीला या रक्त सहित मूत्र उतरताहै और कभी रुधिर ही आनेलगताहै और कष्टसे मूत्र उतरताहै इस रोगको "उष्णवात" कहतेहैं ॥ २० ॥ २१ ॥

पित्तज और कफज मूत्रौकसादके लक्षण ।

विशदं पीतकं मूत्रं सदाहं बहुलं तथा ॥ शुष्कं भवति यच्चापि रोचनाचूर्णसन्निभम् ॥ मूत्रौकसादं तं विद्याद्रोगं पित्तकृतं बुधः ॥२२॥ शुष्कं भवति यच्चापि शंखचूर्णप्रपांडुरम् ॥ पिच्छिलं संहतं श्वेतं तथा कृच्छ्रं प्रवर्त्तते ॥ २३ ॥ मूत्रौकसादं तं विद्यादामयं चापरं कफात् ॥ २४ ॥

"मूत्रौकसाद" रोग दो प्रकारका होताहै एक पित्तका, दूसरा कफका इनमेंसे जिसमें पतला, पीला, दाहयुक्त, बहुतसा पेशाब आवे और सूखने पर (या धरे रहने पर) गोरोचनका चूरासा मालूम देवे उसे पित्तका मूत्रौकसाद रोग कहते हैं ॥ २२ ॥ और गाढा जमाहुआसा सफेद कुछ कष्टसे पेशाब आवे तथा सूखने पर या धरा रहनेपर उसमें शंखके चूर्ण जैसा सुपेदी लिये पीला भाग मालूम दे उसे कफका मूत्रौकसाद रोग जानना चाहिये ॥ २३ ॥ २४ ॥

(वक्तव्य) मूत्रौकसाद रोग मूत्रके स्थानों और आश्रयों मूत्रवहा शिराओं आदिमें विकृति होनेसे होताहै इसका शब्दार्थ भी यही है ॥

मूत्राघातमें चिकित्साका निर्देश।

कषायकल्कसर्पींषि भक्ष्यांल्लेहान्पयांसि च ॥ क्षारमध्वासवस्वेदान्वस्तींश्चोत्तरसंज्ञितान् ॥ २५ ॥ विदध्यान्मतिमांस्तत्र विधिं चाश्मरिनाशनम्॥ मूत्रोदावर्तयोगांश्च कार्त्स्न्येनात्र प्रयोजयेत्॥२६॥

(यहांपर मूत्रके) कषाय, कल्क, घृत, भक्ष्य, लेह और दुग्ध इन सबका उपयोग करे तथा क्षार, मध्वासव और स्वेद तथा उत्तरवस्ति (मूत्रनलीमें पिचकारी देना) इत्यादिको यथायोग्य बुद्धिमान् वैद्य उपयोग करे तथा पथरीनाशक विधियोंको और मूत्रोदावर्तमें कहेहुए प्रयोगोंको भी यहांपर पूर्णतया उपयोग करे ॥ २५ ॥ २६ ॥

कल्कमेर्वारुबीजानामक्षमात्रं ससैंधवम् ॥ धान्याम्लयुक्तं पीत्वैव मूत्रकृच्छ्रात्प्रमुच्यते ॥ २७ ॥ सुरां सौवर्चलवतीं मूत्रकृच्छ्री पिबेन्नरः ॥ मधु मांसोपदंशं वा पिबेद्वाप्यथ गौडिकम् ॥ २८ ॥ पिबेत्कुंकुमकर्षं वा मधूदकसमायुतम् ॥ रात्रिपर्युषितं प्रातस्तथा सुखमवाप्नुयात् ॥ २९ ॥

ककडी खीरेके बीजोंको कर्षभर पीसकर उनमें सैंधानमक मिलाके धान्याम्ल (एक प्रकारकी कांजी) से युक्तकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्र जाता रहता है ॥ २७ ॥ अथवा सुरा (मदिरा) में कालानमक मिलाकर मूत्रकृच्छ्रवाला पीवे अथवा मद्य या गौडी मद्य पीके ऊपरसे मांस खावे ॥ २८ ॥ अथवा कर्षभर केशर और शहद पानीमें मिलाकर रातभर रहने दे प्रभात उसे पीवे तो मूत्रकृच्छ्रमें आराम होजावे ॥ २९ ॥

दाडिमाम्लयुतां मुख्यामेलाजीरकनागरैः ॥ पीत्वा सुरां सुलवणां मूत्रकृच्छ्रात्प्रमुच्यते ॥ ३० ॥ पृथक्पर्ण्यादिवर्गस्य मूलं गोक्षुरकस्य च ॥ अर्द्धप्रस्थेन तोयस्य पचेत्क्षीरं चतुर्गुणम् ॥३१॥ क्षीरावशिष्टं तच्छीतं सिताक्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ नरो मारुतपित्तोत्थं मूत्राघातनिवारणम् ॥ ३२ ॥ निष्पीड्य वाससा सम्यक् वर्चो रासभवाजिनाम् ॥ रसस्य कुडवं तस्य पिबेन्मूत्ररुजापहम् ॥३३॥

(श्लो० ३०) मुख्या सुराम् उत्तमा सुरामित्यर्थः। (श्लो० ३२) मारुतपित्तोत्थम् उष्णवाताख्यम्। अथवा अग्निमाध्यायोक्तं मारुतपित्तोत्थम्।

अनारकी खटाई मिलाके इलायची, जीरा सोंठ, और नमक डालकर सुरा (मदिरा) को पीनेसे मूत्रकृच्छ्र दूर होजाता है ॥ ३० ॥ अथवा पृथक्पर्णी आदि वर्ग और गोखरूकी जड़ आधा प्रस्थ पानी डालकर- चौगुना दूध पकावे ॥ ३१ ॥ दूधमात्र शेष रहनेपर ठंढा करके मिश्री और शहद मिलाके पीवे यह वायु और पित्तके मूत्राघातको निवारण करदेता है ॥ ३२ ॥ अथवा गधे या घोडेकी लीदको कपडेमें निचोडके उसका रस १ कुडव पीजानेसे मूत्रकृच्छ्रका रोग जातारहताहै॥ ३३ ॥

मुस्ताभयादेवदारुमूर्वाणां मधुकस्य च ॥ पिबेदक्षसमं कल्कं द्राक्षाया जलसंयुतम् ॥३४॥ पिबेत्पर्युषितं वारि शीतं मूत्ररुजापहम् ॥ निदग्धिकायाः स्वरसं पिबेत्कुडवसंमितम् ॥ ३५ ॥ मूत्रदोषहरं कल्कमथवा क्षौद्रसंयुतम् ॥ प्रपीड्यामलकानां तु रसं कुडवसंमितम् ॥३६॥ पीत्वाऽगदी भवेज्जंतुर्मूत्रदोषरुजातुरः॥ धात्रीफलरसेनैव सूक्ष्मैलां वा पिबेन्नरः ॥ ३७ ॥

नागरमोथा, हरडे, देवदारु, मूर्वा, मुलेठी इन्हें अक्षभर (एक कर्ष) लेकर कल्क बनावे और उसे दाखके पानीमें घोलकर पीजावे ॥ ३४ ॥ अथवा रातको कोरे मिट्टीके पात्रमें पानी भरके मैदानमें रखदे प्रभात उस ठंढे पानीके पीनेसे मूत्ररोग जाते रहते हैं अथवा छोटी कटेलीका स्वरस एक कुडव (चार पल) अथवा इसीका कल्क बना शहद मिलाके पीवे तो मूत्रदोष नष्ट होजावे अथवा हरे आंवलोंको कुचलकर निचोड़कर इनका रस निकाले यह रस चार पल लेकर शहद मिलाके पीवे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इसके पीनेसे मूत्रदोषका रोगी अच्छा होजाता है अथवा आंवलोंके रसमें छोटी इलायची मिलाकर पीवे ॥ ३७ ॥

पिष्ट्वाऽथवा सुशीतेन शालितंडुलवारिणा ॥ तालस्य तरुणं मूलं त्रपुसस्वरसं तथा ॥ ३८ ॥ श्वेतकर्कटकं चैवं प्रातस्तं पयसा पिबेत् ॥ शृतं वा मधुरैः क्षीरं सर्पिर्मिश्रं पिबेन्नरः ॥ ३९॥ मूत्रदोषविशुद्ध्यर्थं शुक्रदोषहरं परम् ॥ ४० ॥

तालवृक्षकी ताजी जड़ पीसकर चावलोंके धोवनके ठंढे पानीसे पीवे अथवा ककड़ीका स्वरस पीवे ॥ ३८ ॥ अथवा सुपेद ककड़ी (वालनकांकडी) को दूधके साथ प्रातःकाल पीवे अथवा मधुर द्रव्योंमें पकाया हुआ दूध घृत डालकर पीवे यह मूत्रके और वीर्यके भी दोषोंको दूर करता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

(श्लो० ३६) कल्कं केचिन्निदिग्धिकाया मन्यते । केचित् आमलकानां च । (श्लो० ३७) पिबेदिति शेषेणान्वयः ।

बलाश्वदंष्ट्राक्रौंचास्थिकोकिलाक्षकतंडुलान् ॥ शतपर्वकमूलं च देवदारु सचित्रकम् ॥ ४१ ॥ अक्षबीजं च सुरया कल्कीकृत्य पिबेन्नरः ॥ मूत्रदोषविशुद्ध्यर्थं तथैवाश्मरिशोधनम् ॥ ४२ ॥ पाटलाक्षारमाहृत्य सप्तकृत्वः परिस्रुतम् ॥ पिबेन्मूत्रविकारघ्नं संसृष्टं तैलमात्रया ॥४३॥ नलेक्षुदर्भाश्मभेदत्रपुसैर्वारुबीजकम् ॥ क्षीरे परिस्रुतं तत्र पिबेत्सर्पिःसमायुतम् ॥ ४४ ॥ पाटल्या यावशूकाच्च पारिभद्रात्तिलादपि ॥ क्षारोदकेन मतिमान्त्वगेलोषणचूर्णकम् ॥४५॥ पिबेद्गुडेन मिश्रं वा लिह्याल्लिहान्पृथक् पृथक् ॥ ४६ ॥

खरेंटी, गोखरू, क्रौंच पक्षीकी हड्डी, तालमखाने और शतारु नामक पौंडेकी जड़ (कई शतपर्वक बांस कहतेहैं उसकी जड़), देवदारु, चित्रक ॥ ४१ ॥ बहेडेकी मींगी इन सबको मदिरामें पीसकर पीवे इससे मूत्रदोष शुद्ध होतेहैं और पथरीका भी शोधन होजाता है ॥ ४२ ॥ अथवा पाटलकी राख लेकर उसे पानीमें घोलकर सातवार चुवाले फिर इसमें थोडा तैल मिलाकर पिया करे यह भी मूत्रविकारनाशक है ॥ ४३ ॥ अथवा नरसल, ईख, डाभ, पाषाणभेद, खीरे और ककड़ीके बीज इनको दूधमें (घोटकर) छान ले और घृत मिलाकर पीवें (इसमें मिश्री अनुक्त भी मिलाईजासकती है) ॥ ४४ ॥ अथवा पाटलाका क्षार, यवक्षार, निंबक्षार, तिलक्षार इनके पानीके संग तज (दालचीनी), इलायची और त्रिकटु इनका चूर्ण करके पीवे अथवा गुड मिलाकर या जुदे जुदे अवलेह बनाकर चाटे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

मूत्रदोषमें चिकित्साका क्रम ।

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि मूत्रदोषे क्रमं हितम् ॥
स्नेहस्वेदोपपन्नानां हितं तेषु विरेचनम् ॥ ४७ ॥
ततः संशुद्धदेहानां हिताश्चोत्तरबस्तयः ॥ ४८ ॥

यहांसे अगाडी अब हम मूत्रदोषमें हितकारक क्रमको बताते हैं वह यह है कि स्नेहन, स्वेदन कराकर रोगीको विरेचन देवे और जब शरीर शुद्ध होजावे तब उत्तरबस्ति (मूत्रद्वारमें पिचकारी) देना हित होताहै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

(श्लो० ४३) 'तैलमात्रया संसृष्ट' अत्र मात्राशब्दोऽल्पवाची (इति नि० सं०)

मूत्रदोषघ्न अन्य प्रयोग।

स्त्रीणामतिप्रसंगेन शोणितं यस्य सिच्यते ॥ मैथुनोपरमस्तस्य बृंहणश्च विधिः स्मृतः ॥ ४९ ॥ ताम्रचूडवसातैलं हितं चोत्तरवस्तिषु ॥ विधानं तस्य पूर्वं हि व्यासतः परिकीर्त्तितम् ॥ ५० ॥

स्त्रियोंके संग अति मैथुनसे जो पुरुषके रुधिर निकलने लगे तो उसे मैथुन छोडदेना चाहिये और बृंहणविधि करनी श्रेष्ठ होती है ॥ ४९ ॥ मुरगेकी चरबीका तैल उत्तरवस्तिमें देना हितकारक होता है इसका विधान हम विस्तारपूर्वक पहले कहचुके हैं ॥ ५० ॥

क्षौद्रार्द्धपात्रं दत्त्वा तु पात्रं तु क्षीरसर्पिषोः ॥ स्वयंगुप्ताफलं चैव तथैवेक्षुरकस्य च ॥५१॥ पिप्पलीचूर्णसंयुक्तमर्द्धभागं प्रदापयेत् ॥ एतदैकध्यमानीय खजेनाभिप्रमन्थयेत् ॥ ५२ ॥ तस्य पाणितलं चूर्णं लीढ्वा क्षीरं ततः पिबेत् ॥ एतत्सर्पिः प्रयुंजानः शुद्धदेही नरः सदा ॥ ५३ ॥ मूत्रदोषाञ्जयेत्सर्वानन्ययोगैः सुदुर्जयान् ॥ जयेच्छोणितदोषांश्च वंध्या गर्भं लभेत च ॥ नारी चैतत्प्रयुंजाना योनिदोषात्प्रमुच्यते ॥ ५४ ॥

शहद आधा पात्र तथा दूध और घृत एक पात्र (एक पात्र ६४ पलका होता है) लेवे, केवाँचके बीज और तालमखाने और पीपल ये उनसे आधे लेकर चूर्ण करके मिलादे और इकट्ठा करके रईसे मथकर खूब मिलावे ॥ ५१ ॥ ॥ ५२ ॥ इसमेंसे एक कर्षभर चाटले ऊपरसे दूध पीलिया करे इस घृत (लेह) को जो मनुष्य विरेचनादिसे शुद्ध देह होकर प्रयोग करे ॥ ५३ ॥ तो सब प्रकारके मूत्रदोषोंको जो और योगोंसे आराम नहीं हुए उन सबको इस प्रयोगसे आराम होताहै तथा रुधिरके भी सब दोष मिट जाते हैं (अर्थात् स्त्रियोंके आर्तव रक्तके दोष दूर होजाते हैं) और वंध्या स्त्रीको गर्भ प्राप्त होजाताहै और जो स्त्री इसका सेवन करे उसके सब प्रकारके योनिदोष दूर होजातेहैं ॥ ५४ ॥

बला कोलास्थि मधुकं श्वदंष्ट्राऽथ शतावरी ॥ मृणालं च कसेरुश्च

(श्लो० ४९) तस्य मैथुनोपरमः । मैथुनादुपरमः मैथुननिषेध इति प्रयोजनम् ।

वीजानि क्षुरकस्य च ॥ ५५ ॥ सहस्रवीर्यांशुमती पयस्या सह कालया ॥ शृगालविन्नाऽतिबला बृंहणीयो गणस्तथा ॥ ५६ ॥ एतानि समभागानि मतिमान्सह साधयेत् ॥ चतुर्गुणेन पयसा गुडस्य तुलया सह ॥ ५७ ॥ द्रोणावशिष्टं सत्पूतं पचेत्तेन घृताढकम् ॥ तत्सिद्धं कलशे स्थाप्यं क्षौद्रप्रस्थेन संयुतम् ॥ ५८ ॥ सर्पिरेतत्प्रयुंजानो मूत्रदोषात्प्रमुच्यते ॥ ५९ ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायामष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

खेरंटी, बेरकी गुठली (मींगी), मुलेठी, गोखरू, शतावरी, कमलनाल, कसेरू, तालमखाने ॥ ५५ ॥ सहस्रवीर्या (महाशतावरी), अंशुमती (शालिपर्णी), पयस्या (काकोली या अर्कपुष्पी) और काला (श्यामा निशोथ), शृगालविन्ना, (पृश्निपर्णी), अतिबला और बृंहणीयगण (काकोल्यादि गण) ॥ ५६ ॥ इन सबको समान भाग ले चौगुना दूध और एक तुला गुड डालकर सिद्ध करे (कई यहां "पयसा" का अर्थ जलसे करतेहैं) ॥ ५७ ॥ जब द्रोण भर शेष रहे तब छानकर इसमें एक आढकभर घृत पकावे जब घृत सिद्ध होजावे तब उसे एक चिकने पात्रमें डालदे और उसीमें एक प्रस्थ शहद डाल दे ॥ ५८ ॥ इस घृतके उपयोग करनेसे मूत्रदोष दूर होजातेहैं ॥ ५९ ॥

(वक्तव्य) इस घृतके साधनमें कई तो ऐसा मानते हैं कि बलादिक सब द्रव्य समान भाग लेकर एक तुला गुड और ४ तुला दूध डालकर पकावे और कई 'सह' पदके होनेसे ऐसा अर्थ करतेहैं कि दुग्ध गुडयुक्त करके जलमें साधन करे ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतस० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायामष्टपचाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

ऊनषष्टितमोऽध्यायः ५९.

अथातो मूत्रदोषप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम मूत्रदोषप्रतिषेधके अध्यायका व्याख्यान करते हैं (कोई इस अध्यायको जुदा नहीं मानते किन्तु पिछले अध्यायमेंही इसके पाठको मानतेहैं और कइ ऐसा मानतेहैं कि यद्यपि अश्मरी और मूत्रघातादि रोग पहले कहे गयेहैं तथापि चिकित्सा, लक्षण और कार्यके भेदसे जुदा अध्याय मानना चाहिये । मूत्रदोषसे यहां मूत्रकृच्छ्रादि रोग समझना चाहिये) ॥

(श्लो० ५६) सहस्रवीर्या महाशतावरी दूर्वा च (इति श० स्तो०) अंशुमती शालिपर्णी । पयस्या क्षीरकाकोली अर्कपुष्पी च । शृगालविन्ना पृश्निपर्णी । बृंहणीयो गणः काकोल्यादिः ।

वातेन पित्तेन कफेन सर्वैस्तथाभिघातैः शकृदश्मरीभ्याम् ॥
तथाऽपरः शर्करया सुकष्टो मूत्रोपघातः कथितोऽष्टमस्तु ॥ १ ॥

मूत्रोपघात (मत्रदोष अर्थात् मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्रविकार) आठ प्रकारका होता है वायुसे, पित्तसे, कफसे, सन्निपातसे, चोट आदिके लगनेसे, मल (विष्ठा) के विकारसे, पथरीसे और आठवां शर्करा (रेत या छिनों) से यह मूत्रोपघात रोग कष्टसाध्य (और कष्ट देनेवाला) होताहै ॥ १ ॥

वातज और पित्तज मूत्रदोषके लक्षण ।

अल्पमल्पं समुत्पीड्य मुष्कमेहनबस्तिभिः॥ फलद्भिरिव कृच्छ्रेण वाताघातेन मेहति ॥२॥हारिद्रमुष्णं रक्तं वा मुष्कमेहनबस्तिभिः॥ अग्निना दह्यमानाभैः पित्ताघातेन मेहति ॥ ३ ॥

अंडकोश, लिंग और वस्ति इनमें पीडा होकर कष्टके साथ थोडा थोडा मूत्र आवे, फटे जानेकेसी वेदना हो ये लक्षण वायुके मूत्रकृच्छ्रके हैं ॥ २ ॥ पित्तके मूत्रकृच्छ्रमें पीला, गरम, सुर्ख मूत्र आवे और वृषण, लिंग तथा वस्ति इनमें जलन बहुत होवे ॥ ३ ॥

कफज और संनिपातज मूत्रदोषके लक्षण ।

स्निग्धं शुक्लमनुष्णं च मुष्कमेहनबस्तिभिः॥ संहृष्टरोमा गुरुभिः श्लेष्माघातेन मेहति ॥ ४ ॥ दाहशीतरुजाविष्टो नानावर्णं मुहुर्मुहुः ॥ ताम्यमानः सुकृच्छ्रेण सन्निपातेन मेहति ॥ ५ ॥

कफके मूत्रोपघातमें चिकना, सुपेद, (गाढा), ठंढा मूत्र आवे, अंडकोश, लिंग और वस्तिस्थान ये भारी रहें, रोमांच होजावें ॥ ४ ॥ सन्निपातके मूत्रदोषमें कभी जलन, कभी ठंढापन और कभी पीडा हो, मूत्रका रंग भी बार बार अनेक प्रकारका हो तथा वारंवार पेशाब करते समय अँधेरीसी आजावे ॥ ५ ॥

चोट आदिसे तथा शकृत् और पथरीसे उत्पन्न मूत्रदोष ।

मूत्रवाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु च ॥ स्रोतःसु मूत्राघातस्तु जायते भृशवेदनः ॥ वातबस्तेस्तु तुल्यानि तस्य लिंगानि लक्ष-

(श्लो० १) अत्र 'मूत्रदोषप्रतिषेधम्' इत्यत्र मूत्रकृच्छ्रप्रतिषेधमिति केचित् पठति । ननु अश्मरी-मूत्राघातोदावर्तादिषु मूत्रकृच्छ्रस्य उक्तत्वात् किमर्थं पुनरत्र तदभिधानम् । सत्यम्, चिकित्सालक्षणकार्यभेदात्, तथाच समानतन्त्रेऽपि पृथक् निर्दिष्टत्वात्पुनस्तेषामुपादानम् । केचिच्च पुनरुक्तिभयादेव पुनरिमम-ध्याय न पठति, केचिदत्र पठति (इति नि० स०)

येत् ॥ ६ ॥ शकृतस्तु प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः ॥ आध्मानं च सशूलं च मूत्रसंगं करोति हि ॥ ७ ॥ अश्मरीहेतुकः पूर्वं मूत्राघात उदाहृतः ॥ ८ ॥

मूत्रके वहनेवाले (मूत्र प्राप्त करनेवाले) स्रोतोंपर किसी शस्त्रादिसे घाव होजानेसे अथवा ताडनादिकी चोट पहुँचनेसे बहुत वेदनावाला मूत्राघात होजाता है (अर्थात् पेशाब बंद होजाता है और पीडा भी होती है) इसके लक्षण वातवस्तिके लक्षणोंके समान होते हैं ॥ ६ ॥ दस्तके वेग रोंकनेसे वायु दूषित और प्रतिलोम होकर अफारा, शूल पैदा करता है तथा मूत्रको भी रोंक देता है ॥ ॥ ७ ॥ पथरीके विकारसे जो (मूत्रकृच्छ्र) मूत्राघात होता है वह हम पहले अश्मरीरोगमें कहचुके हैं (वहां देख लेवें) ॥ ८ ॥

शर्कराजनित मूत्रकृच्छ्र ।

अश्मरी शर्करा चैव तुल्ये संभवलक्षणैः ॥ शर्करायां विशेषं तु शृणु कीर्तयतो मम ॥ ९ ॥ पच्यमानस्य पित्तेन भिद्यमानस्य वायुना ॥ श्लेष्मणोवयवा भिन्ना शर्करा इति संज्ञिताः ॥ १० ॥ हृत्पीडा वेपथुः शूलं कुक्षौ वह्निः सुदुर्बलः ॥ ताभिर्भवति मूर्च्छा च मूत्राघातश्च दारुणः ॥ ११ ॥ मूत्रवेगनिरस्तासु तासु शाम्यति वेदना ॥ यावदन्या पुनर्नैति गुटिका स्रोतसो मुखम् ॥ १२ ॥ शर्करासंभवस्यैतन्मूत्राघातस्य लक्षणम् ॥ चिकित्सितमतस्तूर्द्धमष्टानामपि वक्ष्यते ॥ १३ ॥

उत्पत्ति और लक्षणोंसे पथरी और शर्करा (पेशाबमें रेता या दानेसे आना) एकहीसे मालूम पडते हैं अर्थात् इन दोनोंका कारण वास्तवमें एकही होता है, मसानेमें इकट्ठी होकर बडा एक या कई ढेपसे हों तो पथरी कहलाती है और यदि विखरे रेत या छोटे दानेसे रहें तो शर्करा कहलाती है अब शर्कराके विषयमें कुछ हम विशेष कहते हैं सो सुनों ॥ ९ ॥ पित्तसे पकेहुए और वायुसे पृथक् २ किये हुए कफके जुदे जुदे टुकडोंको शर्करा कहते हैं ॥ १० ॥ इनके होनेसे हृदयमें पीडा, कंप, कुक्षिमें शूल और मंदाग्नि ये होते हैं और फिर इनसे मूर्च्छा और दारुण मूत्राघात होता है ॥ ११ ॥ और जब ये मूत्रके संग निकलजाते हैं तब

(श्लो० १२) मूत्रवेगनिरस्तासु तासु मूत्रस्य वेगेन सह निर्गतासु तासु शर्करागुटिकासु वेदना शाम्यति यावदन्या स्रोतसो मुखं नायाति तावत् ।

कुछ वेदना शांत होजाती है जबतक फिर भीतरी मूत्रद्वारके अगाडी कोई उसकी गांठसी न आवे (जब फिर शर्कराकी गांठ अगाड़ी आकर मूत्रको रोक देती है तब फिर वही वेदना होती है ॥ १२ ॥ ये शर्कराजनित मूत्राघातके लक्षण कहे हैं अब आगे आठों प्रकारके मूत्रोपघातकी चिकित्सा कहते हैं ॥ १३ ॥

चिकित्साका निर्देश ।

अश्मरीं च समाश्रित्य यदुक्तं प्रसमीक्ष्य तत् ॥
यथादोषं प्रयुंजीत स्नेहादिकमपि क्रमम् ॥ १४ ॥

हमने पहले अश्मरीकी चिकित्सामें जो कहा है उसे देखकर दोषोंके अनुसार यहां उपयोग करे और स्नेहादिक्रम भी यथायोग्य करे ॥ १४ ॥

वातके मूत्रकृच्छ्रका यत्न ।

श्वदंष्ट्राश्मभिदौ कुंभी हबुषां कंटकारिकाम् ॥ बलां शतावरीं रास्नां वरुणं गिरिकर्णिकाम् ॥ १५ ॥ तथा विदारिगंधादिं संहृत्य त्रैवृतं पचेत् ॥ तैलं घृतं वा तत्पेयं तेन वाऽप्यनुवासयेत् ॥१६॥ दद्यादुत्तरवस्तिं च वातकृच्छ्रोपशांतये ॥ १७ ॥ श्वदंष्ट्रास्वरसे तैलं सगुडक्षीरनागरम् ॥ पक्त्वा तत्पूर्ववद्योज्यं तत्रानिलरुजापहम् ॥ १८ ॥

गोखरू, पाखानभेद, कुंभी (वारिपर्णी), हाऊबेर, कटेली, खरेंटी, शतावरी, रास्ना, वरणा, गिरिकर्णिका (अपराजिताका भेद) ॥ १५॥ और विदारीगंधादिक गण इन सबको इकट्ठा करके विधिपूर्वक त्रैवृत घृत या तैल पकावे (त्रैवृतको पहले कई वार लिख चुकेह कि जिसमें तीन स्नेह-घृत, तैल, वसा और मज्जामेंसे कोईसे मिले हों उसे त्रैवृत कहतेहैं) उसका पान करे और उसीसे अनुवासनवस्ति करे ॥ ॥ १६ ॥ वायुके मूत्रकृच्छ्रकी शांतिके लिये उत्तरवस्ति (मूत्रद्वारमें पिचकारी) भी देवे ॥ १७ ॥ अथवा गोखरूके स्वरसमें तैल पकावे उसमें गुड, दूध और सोंठ भी डाल दे इसे पहलेके अनुसार उपयोग करे यह भी वायुके रोग (कृच्छ्र) को नष्ट करनेवाला है ॥ १८ ॥

पित्तके मूत्रकृच्छ्रका यत्न ।

तृणोत्पलादिकाकोलीन्यग्रोधादिगणे कृतम् ॥ पीतं घृतं पित्तकृच्छ्रं नाशयेत्क्षिप्रमेव च ॥ १९ ॥ दद्यादुत्तरवस्तिं च पित्त-

(श्लो० १९) तृणशब्देनात्र तृणपंचमूलं ग्राह्यम् ।

कृच्छ्रोपशांतये ॥ एभिरेव कृतः स्नेहस्त्रिविधेष्वेव वस्तिषु ॥ हितं विरेचनं चेक्षुक्षीरद्राक्षारसैर्युतम् ॥ २० ॥

तृण (तृणपंचमूल), उत्पलादिगण, काकोली और न्यग्रोधादिगण इनसे सिद्ध किया घृत पीनेसे शीघ्रही पित्तके मूत्रकृच्छ्रको नाश करदेताहै ॥ १९ ॥ और पित्तकृच्छ्रकी शांतिक लिये उत्तरवस्ति भी देवे और इन्हीं पूर्वोक्त द्रव्योंसे सिद्ध किये स्नेह तीनों प्रकारके कृच्छ्रोंम वस्तिकर्ममें ले सकतेहैं और इस पित्तकृच्छ्रमें ईखके रस, दूध और दाखके रससे मिलाकर विरेचन देना भी हितकारक होता है ॥२०॥

कफकृच्छ्रादिकी चिकित्सा ।

सुरसोषकमुस्तादिवरुणादौ च संस्कृतम् ॥ तैलं तथा यवाग्वश्च कफकृच्छ्रे प्रशस्यते ॥ २१ ॥ यथादोषोच्छ्रयं कुर्यादेतानेव च सर्वजे ॥ फल्गुवृश्चीकदर्भाश्मसारचूर्णं च वारिणा ॥ सुरेक्षुरस-दर्भाम्बु पीतं कृच्छ्ररुजापहम् ॥ २२ ॥ तथाऽभिघातजे कुर्या-त्सद्योव्रणचिकित्सितम् ॥ २३ ॥

सुरसादिगण, ऊपकादिगण, मुस्तादिगण और वरुणादिगण इनसे सिद्ध किया हुआ तैल अथवा इनके क्वाथमें यवागू बनाके पिलाना कफके मूत्रकृच्छ्रमें श्रेष्ठ है ॥ ॥ २१ ॥ सन्निपातके मूत्रकृच्छ्रमें इन्हीं तीनोंकी औषधोंमेंसे जो दोष उल्वण हो उसीकी औषध प्रधानतापूर्वक मिश्रित चिकित्सा करना तथा कठगूलर, सुपेद साँठी, डाभ और अश्मसार (लोह) इन सबके चूर्णको पानीके संग पीना और मदिरा, ईखका रस, डाभका क्वाथ इन्हें मिलाकर पीना कृच्छ्ररोगको नाश करता-है ॥ २२ ॥ और शस्त्रके अभिघातसे उपजे हुए कृच्छ्रमें सद्योव्रणकी विधि करनी श्रेष्ठ होती है (और जिसमें घाव न हो ऐसी चोटके कृच्छ्रमें वातनाशक विधि करनी) ॥ २३ ॥

मूत्रकृच्छ्रे सदा चास्य कार्या वातहरी क्रिया ॥
स्वेदावगाहावभ्यंगवस्तिचूर्णक्रियास्तथा ॥
शकृज्जे द्वौ तथाऽन्त्यौ यौ तयोः प्रोक्तः क्रियाविधिः ॥२४॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायामेकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

विष्ठावरोधसे उपजेहुए मूत्रकृच्छ्रमें मनुष्यको वातनाशक क्रिया करनी चाहिये स्वेद कराना, अभ्यंग (तैलादिका मर्दन) कराना, स्नान कराना, वस्तिकर्म और चर्णादिका उपयोग इत्यादि क्रिया करनी उचित हैं और अंतके दो मूत्रकृच्छ्रों

(अश्मरी और शर्कराके मूत्रकृच्छ्रों) की क्रियाविधि पहले कह ही चुके हैं अश्मरीकी चिकित्सामें वर्णन कर चुके हैं) ॥ २४ ॥

यूनानी हकीम मूत्राघातको "एहतवासुलबोल" कहते हैं और थोडा टपके टपके मूत्र आनेको "तकतीरूलबोल" कहते हैं और मूत्रमें रुधिर (रुधिरके पेशाब) आनेको "बोलुद्दम" कहते हैं.

डाक्टरीमें मूत्र रुक जानेको "रिटैनशन आफयुराइन" (Retention of urine) कहते हैं और मूत्रकृच्छ्रको "डिज्यूरिया" (Dysnria) और मूत्रमें रुधिर आनेको "हिमिटोरिया" (Himitoria) कहते हैं ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतन्त्रे कायचिकित्सायामेकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

॥ इति कायचिकित्सा समाप्ता ॥

अथ भूतविद्या।



षष्टितमोऽध्यायः ६०.

अथातोऽमानुषप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम अमानुष (देवग्रहादिके उपद्रव) के प्रतिषेधके अध्यायका व्याख्यान करते हैं ।

निशाचरेभ्यो रक्ष्यस्तु नित्यमेव क्षतातुरः ॥
इति यत्प्रागभिहितं विस्तरस्तस्य वक्ष्यते ॥ १ ॥

यह हम पहले कहचुके हैं कि नित्य रोगीकी रक्षा निशाचरों (राक्षसादि) से करनी चाहिये अब उसका विस्तारसे वर्णन करते हैं (क्षतातुर यह उपलक्षणमात्र है किन्तु क्षतवाले तथा विना क्षतवाले सभी रोगियोंकी रक्षा करनी चाहिये) ॥१॥

गुह्यानागतविज्ञानमनवस्थासहिष्णुता ॥ क्रिया वाऽमानुषी यस्मिन्स ग्रहः परिकीर्तितः ॥२॥ अशुचिं भिन्नमर्यादं क्षतं वा यदि वाऽक्षतम् ॥ हिंस्युर्हिंसाविहारार्थं सत्कारार्थमथापि वा ॥ ३ ॥ असंख्येया ग्रहगणा ग्रहाधिपतयस्तु ये ॥ व्यज्यंते विविधाकारा भिद्यंते ते तथाऽष्टधा ॥ ४ ॥

(श्लो० २) गुह्यानागतविज्ञ न गुह्यं गुप्तम् अनागतं भावि तयोर्विज्ञानं यस्मिन् । अनवस्था अनवस्थितिः । असहिष्णुता [illegible] । अन्ये असहिष्णुता सहनशीलता इत्याहुः

जिनको गुप्त और भावी बातोंका ज्ञान हो और अनवस्था (क्षणमें रुष्टता क्षणमें ही तुष्टता) तथा सहनशीलता दोनों हों और मनुष्योंसे विचित्र कर्म कर-सकते हों (जैसे शाप, वरदान, असंभव बात इत्यादि कर सकें) उनको ग्रह कहते हैं ॥ २ ॥ अपवित्र, मर्यादरहित जो घाववाला या विना घावका रोगी होता है उसे ये ग्रह हिंसा अथवा विहार (क्रीडा) करनेको या अपने सत्कारके लिये मारते हैं या पीडा देते हैं ॥ ३ ॥ यद्यपि ग्रहोंके गण असंख्य हैं और उनके अधिपति भी अनेक प्रकारसे प्रगट होते हैं तथापि मुख्यतासे उनके आठ भेद होते हैं ॥ ४ ॥

देवास्तथा शत्रुगणाश्च तेषां गंधर्वयक्षा पितरो भुजंगाः ॥
रक्षांसि या चापि पिशाचजातिरेषोऽष्टधा देवगणो ग्रहाख्यः ॥५॥

देवता तथा इनके शत्रु–दैत्य, गंधर्व, यक्ष, पितर, भुजंग, राक्षस और पिशाच यह आठ प्रकारका देवगण ग्रह कहलाता है ॥ ५ ॥

देवताजुष्ट और दैत्यजुष्टके लक्षण।

संतुष्टः शुचिरपि चेष्टगंधमाल्यो निस्तंद्रो ह्यवितथसंस्कृतप्रभाषी॥ तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता ब्रह्मण्यो भवति च यः स देव-जुष्टः ॥ ६ ॥ संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता जिह्माक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः ॥ संतुष्टो भवति न चान्नपानजातैर्दुष्टात्मा भवति च देवशत्रुजुष्टः ॥ ७ ॥

जो संतोषी होजाय, पवित्र रहे और सुहावनी सुगंध तथा पुष्पमाला धारण करे, तंद्रासे रहित हो, निरंतर संस्कृत वाणी बोले, तेजस्वी हो, स्थिर नेत्रवाला हो, वरदान देवे और ब्रह्मण्य हो ये लक्षण देवतासे ग्रहण किये (अर्थात् देवपी-डावाले) मनुष्यके होते हैं ॥ ६ ॥ और जो मनुष्य दैत्यसे पीडित हो (जिसपर दैत्यग्रहकी छाया हो) उसके ये लक्षण होते हैं कि पसीना आवे, ब्राह्मण, गुरु, देवता इनके दोष वर्णन करे, निगाह टेढी हो, भय न हो, कुमार्गदृष्टि हो और खाने पीनेसे संतोष नहीं हो और दुष्टात्मा होजावे ॥ ७ ॥

गन्धर्व और यक्षसे पीडितके लक्षण।

हृष्टात्मा पुलिनवनांतरोपसेवी स्वाचारः प्रियपरिगीतगंधमाल्यः॥

(श्लो० ६) अवितथसस्कृतप्रभाषी। निरंतरसंस्कृतवक्ता।

नृत्यन्वा प्रहसति चारु चाल्पशब्दं गंधर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ ८ ॥ ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी गंभीरो द्रुतमतिरल्पवाक्सहिष्णुः ॥ तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै यो यक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ ९ ॥

गंधर्व (अप्सरा जिन्हें परी कहते हैं) से पीडित मनुष्यके ये लक्षण होतेहैं प्रसन्न रहे, जलाशयों और वनोंका विहार पसंद करे, अपने आचारमें रहे, प्यारे मीठे गीत गावे, अच्छी सुगंध और पुष्प धारण करे, कभी नाचने लगे, कभी हँसे, सुहावने थोडे शब्द बोले ॥ ८ ॥ यक्षग्रहसे पीडित मनुष्यके ये लक्षण हैं कि आँखें तांबे जैसी लाल हों, अच्छे हलके (महीन) सुरख वस्त्र पहरे, गंभीर हो, चंचलबुद्धि हो, थोडा बोले, सहनशीलता (बरदाश्त) रक्खे, तेजस्वी हो और ऐसा कहे कि किसको क्या देदूं ? ॥ ९ ॥

पितृ और भुजंग पीडितके लक्षण ।

प्रेतेभ्यो विसृजति संस्तरेषु पिंडाञ्छांतात्मा जलमपि चापसव्यवस्त्रः ॥ मांसेप्सुस्तिलगुडपायसाभिकामस्तद्भक्तो भवति पितृग्रहाभिभूतः ॥ १० ॥ भूमौ यः प्रसरति सर्पवत्कदाचित्सृक्किण्यौ विलिहति जिह्वया प्रसक्तम् ॥ निद्रालुर्गुडमधुदुग्धपायसेप्सुर्विज्ञेयो भवति भुजंगमेन जुष्टः ॥ ११ ॥

पितरोंके दोषसे पीडित मनुष्य कुश या तृण बिछाकर प्रेतोंको पिंड देनेकी भांति आचरण करे, शांतात्मा हो और जल भी अपसव्य होकर देवे, मांस, तिल, गुड, खीर इनकी इच्छा करे और इन्हींको खाना चाहे ॥ १० ॥ जो भुजंग (सर्पराजों) से पीडित मनुष्य हो वह पृथ्वीमें कभी सर्पकी तरह गिरे, होठोंके जोडोंको जीभसे चाटे, अतिनिद्रा रहे और गुड, शहद, दूध, खीर इनके खानेकी इच्छा करे ॥ ११ ॥

राक्षस और पिशाचसे पीडितके लक्षण ।

मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सुर्निर्लज्जो भृशमतिनिष्ठुरोऽतिशूरः ॥ क्रोधालुर्विपुलबलो निशाविहारी शौचद्विड् भवति च रक्षसा गृहीतः ॥ १२ ॥ उद्धस्तः कृशपरुषश्चिरप्रलापी दुर्गंधो

(श्लो० ८) अल्पशब्दं यथा स्यात्तथा चारु प्रहसति । (श्लो० १०) संस्तरेषु तृणकुशादिषु । (श्लो० ११) सृक्किण्यौ ओष्ठप्रांतौ । भुजंगमेन सर्पसत्त्वग्रहेण सर्पराजेन वा ।

भृशमशुचिस्तथाऽतिलोलः ॥ बह्वाशी विजनहिमांबुरात्रिसेवी व्याचेष्टं भ्रमति रुदन्पिशाचजुष्टः ॥ १३ ॥

राक्षसके आवेशवाले मनुष्यके ये लक्षण होतेहैं कि मांस, रुधिर और अनेक भांतिके मद्योंकी वांछा करे, निर्लज्ज हो, और बहुत कठोर और शूरवीर हो, क्रोधी हो, बहुत बलवान् होजावे, रातमें घूमे, शुद्धताका विरोधी हो (अशुद्ध रहे) ॥ ॥ १२ ॥ पिशाचपीडित मनुष्यके ये लक्षण हैं कि ऊपरको हाथ विशेष रक्खे, दुबला हो, कठोर वचन बहुत कहे, बहुत दुर्गंध आवे, अपवित्र रहे और अति चपल होजावे, बहुत खावे, शून्यस्थानोंमें ठंढे पानी और रात्रि - इनका सेवन करे (ये प्रिय लगें), विरुद्ध चेष्टा करे, रोता हुआ फिरे ॥ १३ ॥

स्थूलाक्षस्त्वरितगतिः स्वफेनलेही निद्रालुः पतति च कंपते च यो‌ऽति ॥ यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतः सन्संसृष्टो न भवति वार्द्धकेन जुष्टः ॥ १४ ॥

जिसकी आँखें मोटी होजावें (आगेको निकल आवें), जल्दी चले, अपने झाग चाटे, अति निद्रा आवे और जो कांपे और गिर २ पडे ऐसा ग्रहपीडित रोगी तथा जो पहाड, हाथी, वृक्ष इत्यादिसे गिरकर ग्रहसे पीडित होजावे वह अतिक्रूर ग्रहसे पीडित असाध्य जानना वह अच्छा नहीं होता ॥ १४ ॥

देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः संध्ययोरपि ॥ गंधर्वाः प्रायशो षष्ठ्यां यक्षाश्च प्रतिपद्यथ ॥ १५ ॥ कृष्णपक्षे च पितरः पंचम्यामपि चोरगाः ॥ रक्षांसि निशि पैशाचाश्चतुर्दश्यां विशंति च ॥ १६ ॥

देवग्रह पूर्णमासीके आसपास और असुर सन्ध्यामें गंधर्व प्रायः छठको और यक्ष प्रतिपदाको ॥ १५ ॥ पितर कृष्णपक्षमें (अमावास्याके समीप), उरग पंचमीको, राक्षस रात्रिको और पिशाच चतुर्दशीको देहमें प्रवेश करतेहैं ॥ १६ ॥

दर्पणादीन्यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा ॥
स्वमणिं भास्करार्चिश्च यथा देहं च देहभृत् ॥
विशंति च न दृश्यंते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणम् ॥१७॥

(श्लो० १४) वार्द्धकेन जुष्टः वृद्धभावेन गृहीत इत्यर्थः । अन्ये वर्द्धकेनेति पठति । वर्द्धकेन हिंसार्थिना केनचित् ग्रहेण जुष्ट इति व्याख्यानयति (इति नि० सं०) संसृष्टो न भवति इति विनश्यतीत्यर्थः (इति डल्हनः)

जैसे दर्पणादिकोंमें प्रतिबिंब और जीवोंमें शरदी, गरमी और सूर्य्यकान्त मणिमें सूर्यकी किरन और शरीरमें जीवात्मा प्रवेश होता दीखता नहीं उसी प्रकार मनुष्योंमें ग्रह प्रवेश करते मालूम नहीं पडते ॥ १७ ॥

तपांसि तीव्राणि तथैव दानं व्रतानि धर्मो नियमश्च सत्यम् ॥ गुणस्तथाष्टावपि तेषु नित्या व्यस्ताः समस्ताश्च यथाप्रभावम् ॥ ॥ १८ ॥ न ते मनुष्यैः सह संविशंति न वा मनुष्यान्कचिदाविशंति ॥ ये वा विशंतीति वदंति मोहात्ते भूतविद्याविषयादपोह्याः ॥ १९ ॥ तेषां ग्रहाणां परिचारका ये कोटीसहस्रायुतपद्मसंख्याः ॥ असृग्वसामांसभुजः सुभीमा निशाविहाराश्च तमाविशंति ॥ २० ॥

इन देवादि ग्रहोंमें तीव्र तप तथा दान, व्रत, धर्म, नियम, सत्य और प्रभाव ये आठ गुण सब या थोडे रहते हैं ॥ १८ ॥ वे देवग्रह मनुष्योंके पास कभी नहीं रहते और मनुष्योंके देहमें कभी प्रवेश भी नहीं करते और जो मोहसे (मूढतासे) ऐसा कहते हैं कि देवता मनुष्योंके देहमें आवेश करते हैं वे कहनेवाले भूतविद्याके विषयसे अनभिज्ञ हैं ॥ १९ ॥ उन महाऐश्वर्यवाले देवादिके परिचारक क्रोडों, हजारों, लाखों, पद्मों हैं वे रुधिर, वसा, मांस इनके खानेवाले और भयंकर रात्रिमें विचरनेवाले होते हैं वे मनुष्योंके देहमें आवेश करतेहैं (स्वयं देवादिक आवेश नहीं करते)॥ २० ॥

निशाचराणां तेषां हि ये देवगणसंसृताः ॥ ते तु तत्सत्त्वसंसर्गाद्विज्ञेयास्तु तदंजनाः ॥ २१ ॥ देवग्रहा इति पुनः प्रोच्यंते शुचयश्च ये ॥ देववच्च नमस्यंते प्रार्थ्यंते च देववत् ॥ २२ ॥ स्वामिशीलक्रियाचाराः क्रम एव सुरादिषु ॥ २३ ॥

उन निशाचरों (ग्रहों) मेंसे जो देवगणोंसे संसर्ग रखनेवाले हैं वे अपने स्वामीके सत्त्वके संसर्गसे उन्हीं जैसे लक्षणोंवाले होतेहैं ॥ २१ ॥ और ये देवग्रह कहलातेहैं और पवित्र होतेहैं ये देवताओंकी भांति नमस्कार करने योग्य हैं और वैसेही प्रार्थना करनेयोग्य हैं इनमें स्वामी (अपने अधिष्ठाता देवता) कैसा स्वभाव, क्रिया और आचार होताहै देवग्रहादिकका तो यह क्रम है ॥ २२ ॥ २३ ॥

(श्लो० १८) तेषु ग्रहेषु अष्टौ गुणा यथाप्रभावं समस्ता व्यस्ताश्च नित्यं निवसंति तत्र महाप्रभावेषु समस्ता अल्पप्रभावेषु व्यस्ता ऊनां इति भावार्थः ।

नैर्ऋतेया दुहितरस्तासां सः प्रसवः स्मृतः ॥ सत्त्वत्वादपवृत्तेषु वृत्तिस्तेषां गणैः कृता ॥ २४ ॥ हिंसाविहारा ये केचिद्दिव्यं भावमुपाश्रिताः ॥ भूतानीति कृता संज्ञा तेषां संज्ञाप्रवक्तृभिः ॥२५॥

और निर्ऋतिकी पुत्रीसे जिन (दैत्य ग्रहादि) की उत्पत्ति है वे दैवी सत्त्वसे विपरीत हैं इससे उनके गणाधिपोंने उनकी यही वृत्ति कल्पना की है (और कोई "सत्यत्वादपवृत्तेषु" ऐसा पाठ मानकर यह अर्थ करतेहैं कि जो सत्याचारसे भ्रष्ट मनुष्य हैं उनमें ग्रहोंकी वृत्ति नियत की है) ॥ २४ ॥ और जो ये हिंसामें विहार करनेवाले दिव्यभावको प्राप्तहुए ग्रह हैं संज्ञा करनेवालोंने इनका भूत नाम रक्खाहै २५॥

भूतविद्याकी निरुक्ति ।

ग्रहसंज्ञाभिभूतानि यस्माद्वेत्त्यनया भिषक् ॥
विद्यया भूतविद्यात्वमत एव निरुच्यते ॥ २६ ॥

जिस विद्यासे वैद्य यह जानजावे कि यह रोगी इन देवग्रहादि भूतोंसे अभिभूत अर्थात् पीडित है उस विद्याको भूतविद्या कहतेहैं ॥ २६ ॥

देवादिपीडितकी चिकित्सा ।

तेषां शांत्यर्थमन्विच्छन्वैद्यस्तु सुसमाहितः ॥ जप्यैः सनियमैर्होमैरारभेत चिकित्सितम् ॥ २७ ॥ रक्तानि गंधमाल्यानि बीजानि मधुसर्पिषाम् ॥ भक्ष्याश्च सर्वे सर्वेषां सामान्यो विधिरुच्यते॥२८॥ वस्त्राणि मद्यमांसानि क्षीराणि रुधिराणि च ॥ यानि येषां यथेष्टानि तानि तेभ्यः प्रदापयेत् ॥२९॥ हिनस्ति मनुजान्येषु प्रायशो दिवसेषु तु ॥ दिनेषु तेषु देयानि तद्भूतविनिवृत्तये ॥ ३० ॥

इनकी शांतिकी इच्छा करनेवाले वैद्यको उचित है कि सावधान होकर जप, नियम, होम इत्यादि करके चिकित्सा आरंभ करे ॥ २७ ॥ सुरख चन्दन, कुंकुमादि गंध और रक्तही पुष्प तथा वैसेही बीज (सरसों, राई), शहद और घृत और सब प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे पूजा करनी यह सब ग्रहोंकी सामान्य विधि है ॥ २८ ॥ और जैसे वस्त्र, मद्य, मांस, दूध रुधिर जो जिसे प्रिय हों उन ग्रहोंको वही समर्पण करने चाहिये ॥ २९ ॥ जिस २ दिनमें (या समयमें) जो

(श्लो० ३०) तेषु दिवसेषु । यथा—गंधर्वः षष्ठ्याम् । यक्षः प्रतिपदि इत्यादि । तत्तद्भूतविनिवृत्तये तेषु तेषु तत्तद्दिवसेषु तत्तत्समये एव बलिर्देय इत्यर्थः ।

जो ग्रह मनुष्योंपर प्रायः घात करते हैं (जैसे पहले कहचुके हैं) उन्ही उन दिनोंमें उनकी शांतिके लिये बलि भेंट आदि देनी चाहिये ॥ ३० ॥

देवग्रहे देवगृहे हुत्वाग्निं प्रापयेद्बलिम् ॥ कुशस्वस्तिकपूपाज्यच्छत्रपायससंभृतम् ॥ ३१ ॥ असुराय यथाकालं विदध्याच्चत्वरादिषु ॥ चतुष्पथे राक्षसस्य भीमेषु गहनेषु वा ॥ ३२ ॥ शून्यागारे पिशाचस्य तीव्रं बलिमुपाहरेत् ॥ पूर्वमाचरितैर्मंत्रैर्भूतविद्यादिदर्शितैः ॥ ३३ ॥ न शक्या बलिभिर्जेतुं योगांस्तान्समुपाचरेत् ॥ अजर्क्षचर्मरोमाणि शल्यकोलूकयोस्तथा ॥ ३४ ॥ हिंगु मूत्रं च वस्तस्य धूममस्य प्रयोजयेत् ॥ एतेन शाम्यति क्षिप्रं बलवानपि यो ग्रहः ॥ ३५ ॥

देवग्रह हो तो देवमंदिरमें अग्निहोत्र करे, बलि निवेदन करे और कुशा स्वस्तिक (एकभांतिका भक्ष्य), पूवे, घृतच्छत्र और खीर ये निवेदन करे ॥ ३१ ॥ और असुर ग्रह हो तो उसके समयमें चत्वर (मैदान या चौक) में बलिदान करे और राक्षसकी पीडा हो तो चतुष्पथ (चौराहे) या भयंकर गहन वनमें बलि देवे ॥ ३२ ॥ पिशाचकी पीडा हो तो शून्य मकानमें तीव्र (रुधिरादि) बलिदान करे और पहले कहेहुए भूतविद्याके मंत्र पढे (इस कथनसे पाया जाताहै कि पहले कोई भूतविद्याका पृथक् तंत्र महर्षि धन्वंतरिजीने रचा होगा) ॥ ॥ ३३ ॥ और जो ग्रह बलिप्रदान आदिसे शांत न हों तो उनके लिये ये प्रयोग करे कि बकरे और रीछके बाल, सेहके कांटे, उल्लूके पर ॥ ३४ ॥ हींग, बकरेका मूत्र इनको मिलाकर धूनी देवे इस धूनीसे बलवान् ग्रह भी शीघ्र शांत होजाते हैं ॥ ३५ ॥

गजाह्वपिप्पलीमूलव्योषामलकसर्षपान् ॥ गोधानकुलमार्जारऋक्षपित्तप्रभावितान् ॥ ३६ ॥ नस्याभ्यंजनसेकेषु विदध्याद्योगतत्त्ववित् ॥ खराश्वाश्वतरोलूककरभश्वशृगालजम् ॥३७॥ पुरीषं गृध्रकाकानां वराहस्य च पेषयेत् ॥ वस्तमूत्रेण तत्सिद्धं तैलं स्यात्पूर्ववर्द्धितम् ॥ ३८ ॥ शिरीषबीजं लशुनं शुंठीं सिद्धार्थकं

(श्लो० ३१) स्वस्तिकमत्र भक्ष्यपदार्थः । यवादिचूर्णैरूर्द्धभागेन क्षाममध्यवलित्रयमुद्राकितः (इति डल्हनः) (श्लो० ३३) तीव्रं बलिम् आमपक्वं मासम् । अन्ये रुधिरादिनिर्मितमाहुः ।

वचाम् ॥ मंजिष्ठां रजनीं कृष्णां बस्तमूत्रेण पेषयेत् ॥ ३९ ॥ वर्तीश्छायाविशुष्कास्ताः सपित्ता नयनांजनम् ॥ नक्तमालफलं व्योषं मूलं श्योनाकबिल्वयोः ॥ ४० ॥ हरिद्रे च कृता वर्तिः पूर्ववन्नयनाञ्जनम् ॥ ये ये ग्रहा न सिध्यंति सर्वेषां नयनांजनम्॥४१॥ सैंधवं कटुकं हिंगु वयस्थां च वचामपि ॥ बस्तमूत्रेण तत्पिष्टं मत्स्यपित्तेन पूर्ववत् ॥ ४२ ॥

गजपीपल, पीपलामूल, त्रिकटु, आंवले, सरसों इनको गोह, नौला और बिलाव तथा रीछ इनके पित्तेकी भावना देवे ॥ ३६ ॥ इसे नस्य, मर्द्दन, अंजन और सेचन (छिडके देना) इन सब कामोंमें लावे अथवा गधा, घोडा, खच्चर, उल्लू, ऊँट, कुत्ता और गीदड इनकी बीट ॥ ३७ ॥ तथा गीध काग और सूकरकी विष्ठा इनको बकरेके मूत्रमें पीसकर उससे तैल सिद्ध करे यह तैलभी पहलेकी भांति सब कार्योंमें हित है ॥ ३८ ॥ अथवा शिरसके बीज, लहसन, सोंठ, सुपेद सरसों, वच, मँजीठ, हलदी, पीपल इनको बकरेके मूत्रमें पीसले ॥ ३९ ॥ और बत्ती बनाकर छायामें सुखाले और इसे पित्तेमें घिसकर नेत्रोंमें अंजन करे अथवा करंजके बीज, त्रिकटु, अरलू और बिल्वकी जड़ ॥ ४० ॥ दोनों हलदी इनकी बत्तीसी बनाकर पहलेकी तरह अंजन करे और जो ग्रह इनसे शांत न हों उन सबके-लिये यह वक्ष्यमाण अंजन लगावे ॥ ४१ ॥ सैंधानमक, त्रिकटु, हींग, गिलोय और वच इनको बकरेके मूत्रसे पीसकर मछलीके पित्तेकी भावना देकर पूर्वोक्त प्रकारसे अंजन करे ॥ ४२ ॥

अपराजितवर्ग ।

पुराणसर्पिर्लशुनं हिंगु सिद्धार्थकं वचा ॥ गोलोमी चाजलोमी च भूतकेशी जटा तथा ॥ ४३ ॥ कुक्कुटी सर्पगंधा च तथा काणविषाणिके ॥ ऋष्यप्रोक्ता वयस्था च शृंगी मोहनवल्लिका ॥ ४४ ॥ अर्कमूलं त्रिकटुकं लता स्रोतोंजनांजनम् ॥ नेपाली हरितालं च

(श्लो० ४०) सपित्ता नयनांजनम् अत्र सपित्ताः पित्तेन घृष्टाः । (श्लो० ४३ से ४५ तक) सिद्धार्थकं श्वेतसर्षपम् । गोलोमी श्वेतदूर्वा । अजलोमी दूर्वा । जटा गधमांसी । कुक्कुटी कुक्कुटसदृशकंदा । सर्पगधा नाकुली डल्हनमते तु वर्षासु छत्राकारा । काणविषाणिके—अत्र काणा क्षीरकाकोली । ऋष्यप्रोक्ता शतावरी शूकशिंबी वा (इति श० स्तो०) वयस्था गुडूची । मोहनवल्लिका वटपत्री । लता प्रियगुः (इति नि० सं०)

रक्षोघ्ना ये च कीर्तिताः ॥४५॥ सिंहव्याघ्रर्क्षमार्जारद्वीपिवाजिगवां तथा ॥ श्वाविच्छल्यकगोधानामुष्ट्रस्य नकुलस्य च ॥ ४६ ॥ विट्त्वग्रोमवसामूत्ररक्तपित्तनखादयः ॥ अस्मिन्वर्गे भिषक्कुर्या-त्तैलानि च घृतानि च ॥ ४७ ॥

पुराना घृत, लहसन, हींग, सुपेद सरसों, वच, गोलोमी (सुपेद दूब), अज-लोमी (दूब) भूतकेशी (जटामांसी) और जटा (गंधमांसी) ॥ ४३ ॥ कुक्कुटी (कुडड़ी वर्षामें सुपेद कुकडीसी होतीहै) और सर्पगंधा (नाकुली), काण (क्षीर-काकोली), काकडासींगी, शतावर, गिलोय, मेढासींगी, मोहनवल्ली (वटपत्री) ॥ ॥ ४४ ॥ आककी जड, त्रिकटु, लता (प्रियंगु या स्पृक्का), सुरमा, रसोत, मैन-सिल, हरिताल तथा रक्षोघ्न अन्य द्रव्य ॥ ४५ ॥ सिंह, भँगेरा, रीछ, बिलाव, गेंडा, घोडा और गौ तथा सेह, शल्यकी (सेहका भेद जिसे फोकरी कहतेहैं), गोह, ऊँट और न्यौला ॥ ४६ ॥ इनके विष्ठा, त्वचा (चर्म), रोम, चरबी, मूत्र, रुधिर, पित्त और नख इत्यादि यथासंभव इकट्ठे करके इनमें वैद्य तैल तथा घृत सिद्ध करे ॥ ४७ ॥

अपराजितका उपयोग और गुण ।

पानाभ्यंजननस्येषु तानि योज्यानि जानता ॥ अवपीडेऽञ्जने चैवं विदध्याद्गुटिकीकृताम् ॥ ४८ ॥ विदधीत परीषेके कथितं चूर्णितं तथा ॥ उद्धूलने श्लक्ष्णपिष्टं प्रदेहे चावचारयेत् ॥ ४९ ॥ एष सर्वविकारांस्तु मानसानपराजितः ॥ हन्यादल्पेन कालेन स्नेहा-दिरपि च क्रमात् ॥ ५० ॥

यह पूर्व जो औषधोंका वर्ग कहा उसमें पकाये घृतको पान करावे और तैला-दिको अभ्यंग तथा नस्यादिमें जानकार वैद्य उपयोग करे और उसी वर्गकी गोली बनाले उनका अवपीड (नस्य) देव तथा अंजन करे ॥ ४८ ॥ और इन्हींका क्वाथ करके परिषेक करे तथा चूर्ण बनाकर उद्धूलन करे (शरीरपर सूखा मले) और इन्हीं सबको गीला पीसकर प्रदेह (लेप या उबटन) करे ॥ ४९ ॥ यह ऊपर जो औषधोंका वर्ग कहाहै इसका नाम अपराजित है यह सब प्रकारके मनोसंबन्धी विकारोंको थोडे ही समयमें शांत करदेताहै इसमें पहले स्नेहन, स्वेदन, वमन, रेचनादि क्रम भी करना उचित है ॥ ५० ॥

न चायुक्तं प्रयुञ्जीत प्रयोगान्देवताग्रहे ॥ ऋते पिशाचादन्येषु प्रतिकूलं न चाचरेत् ॥ वैद्यातुरौ निहन्युस्ते ध्रुवं क्रुद्धा महौजसः ॥५१॥
हिताहितविधानं च नित्यमेवं समाचरेत् ॥
ततः प्राप्स्यति सिद्धिं च यशश्च विपुलं भिषक् ॥ ५२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे भूतविद्यायां षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

देवताग्रहके उपचारमें कोई अयुक्त उपयोग नहीं करना चाहिये तथा पिशाचके सिवाय अन्य ग्रहोंमें प्रतिकूल आचरण नहीं करने चाहिये क्योंकि वे महा पराक्रमी ग्रह हैं क्रोध युक्त होजावें तो वैद्य और रोगी दोनोंको अवश्य मार डालें ॥ ५१ ॥ इस लिये वैद्यको चाहिये कि नित्य हित और अहित विधानका विचार करके सब आचरण करे ऐसा करनेसेही सिद्धि और पूरा यश प्राप्त होताहै ॥ ५२ ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतन्त्रे भूतविद्यायां षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमोऽध्यायः ६१.

अथातोऽपस्मारप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम अपस्मार (मृगी रोगके प्रतिषेधके अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ।

अपस्मारकी निरुक्ति ।

स्मृतिर्भूतार्थविज्ञानमपश्च परिवर्जने ॥
अपस्मार इति प्रोक्तस्ततोऽयं व्याधिरन्तकृत् ॥ १ ॥

भूतार्थके विज्ञानको स्मृति या स्मार कहतेहैं और अपका अर्थ परिवर्जन है इस कारणसे इस व्याधिको अपस्मार कहतेहैं (अर्थात इससे स्मृति ज्ञान नष्ट होताहै इसीसे इसे अपस्मार कहतेहैं) ॥ १ ॥

अपस्माररोगके कारण ।

मिथ्यादियोगेन्द्रियार्थकर्मणामभिसेवनात् ॥ विरुद्धमलिनाहारविहारकुपितैर्मलैः ॥ २ ॥ वेगनिग्रहशीलानामहिताशुचिभोजिनाम् ॥ रजस्तमोभिभूतानां गच्छतां च रजस्वलाम् ॥ ३ ॥ तथा

(श्लो० १ स्मारः स्मरणम् अपगतः स्मारो यस्मिन् सोऽपस्मारः (श्लो० २) मिथ्यादियोगेनेति— अत्र आदिशब्देन केचित् अतियोगमयोगं च गृह्णन्ति शब्दादीनां मिथ्यायोगादयः कथ्यन्ते तत्र । पटहेष्ट विनाशादिश्रवणं मिथ्यायोगः पटहाद्यतिशब्दश्रवणम् अतियोगः । सर्वथा अश्रवणम् अयोगः (इति नि० सं०) एवमेव सर्वेषामिन्द्रियाणां ज्ञेयम् । (श्लो० ३) रजस्तमोभिभूतानां रजस्तमोनाहुल्यानाम् ।

कामभयोद्वेगक्रोधशोकादिभिर्भृशम् ॥ चेतस्यभिहते पुंसामपस्मारोऽभिजायते ॥ ४ ॥

इंद्रियार्थोंके मिथ्यादियोगसे (श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना और घ्राण इनके अर्थ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इनके अयोग अतियोग और मिथ्यायोगसे जैसे शब्द को कभी बिलकुल सुने ही नहीं यह अयोग और अल्प शब्दको भी तोपके शब्दके समान बहुत भारी शब्द सुनना अतियोग और बेसुहावना शब्द सुनना मिथ्यायोग श्रोत्रका हुआ इसी भांति सबका जानना) तथा कर्मोंके मिथ्यायोग, अतियोग और अयोगसे जैसे चलना फिरना ही नहीं अयोग, बहुत फिरना अतियोग और अयोग्य फिरना मिथ्यायोग इसी प्रकार अनेक कर्मोंके समझना इन मिथ्यादियोगोंके सेवनसे तथा विरुद्ध और मलिन आहार, विहारों आदिसे मल कुपित होजातेहैं जिससे ॥ २ ॥ वेग रोकनेवालोंके, अहित और अपवित्र भोजन करनेवालोंके, रजोगुण और तमोगुण प्रकृतिवालोंके, रजस्वला स्त्रीका संगम करनेवालोंके ॥ ३ ॥ काम, भय, उद्वेग, क्रोध शोकादिसे कुपित हुए दोषोंसे मनुष्योंके चित्तमें जब आघात पहुँचाताहै तब यह अपस्मार रोग होताहै ॥ ४ ॥

अपस्मारकी संप्राप्ति रूप और भेद ।

संज्ञावहेषु स्रोतःसु दोषव्याप्तेषु मानवः ॥ रजस्तमःपरीतेषु मूढो भ्रांतेन चेतसा ॥ ५॥ विक्षिपन्हस्तपादौ च विजिह्मभ्रूविलोचनः ॥ दंतान्खादन्वमन्फेनं विवृताक्षः पतेत्क्षितौ ॥ ६ ॥ अल्पकालांतरं चापि पुनः संज्ञां लभेत सः ॥ सोऽपस्मार इति प्रोक्तः स च दृष्टश्चतुर्विधः ॥ ७ ॥ वातपित्तकफैर्नृणां चतुर्थः संनिपाततः ॥ ८ ॥

संज्ञाके बहनेवाले (इंद्रियादि विषयोंके ज्ञान प्राप्त करनेवाले) स्रोतों (द्वारों धमनियों अर्थात् रगों) में जब रज और तम युक्त वातादि दोष व्याप्त होजाते हैं तब चित्त भ्रांत होकर मूढ (मोह या मूर्च्छामें प्राप्त हुआ) मनुष्य ॥ ५ ॥ हाथ और पावोंको फैलाता या पटकताहुआ पृथ्वीमें गिरजाता है, जिह्वा, भ्रू और नेत्र विकृत होजातेहैं, दांत कटकटाते हैं, मुंहसे झाग आतेहैं और आँखें फटीसी होजाती हैं ॥ ६ ॥ थोडी देरके पीछे फिर चैतन्य होजाता है (होशमें होजाता है) (इसी प्रकार इस रोगका दौरा होने लगता है) इसे अपस्मार कहते हैं यह चार प्रकारका होताहै वायुका, पित्तका, कफका और सन्निपातका ॥ ७ ॥ ८ ॥

(श्लो० ४) एतैर्हेतुभिश्चित्ते अभिहते सति दूषित अपस्मारोऽभिजायते । एतैर्हेतुभिश्चित्ताभिघातहेतुभिः ।

(वक्तव्य) वैद्यकमें संज्ञा और बुद्धिका मूल विशेष करके हृदय माना है परंतु कई आचार्य मूर्द्धाको भी मानतेहैं जो हृदयको बुद्धिका स्थान मानते हैं उनके मतसे यह हृदयमें होनेवाली व्याधि समझी जाती है और जो मूर्द्धाको मानते-हैं उनके मतसे मूर्द्धामें विकार होनेसे यह व्याधि होती है ऐसा माना जाता है ॥

अपस्मारका पूर्वरूप ।

हृत्कंपः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्च्छा प्रमूढता ॥
निद्रानाशश्च तस्मिंस्तु भविष्यति भवंत्यथ ॥ ९ ॥

हृदयमें कंप हो, शून्यता हो, पसीना आवे, ध्यानमें स्थितसा होजावे, मूर्च्छा हो, मूढता (बुद्धि बिगडना), निद्राका नाश ये लक्षण इसके पूर्वरूपके हैं (अर्थात जब ये लक्षण हों तो जानना कि इसके मृगीका रोग होनेवाला है) ॥ ९ ॥

वातादि अपस्मारके लक्षण।

वेपमानो दशेद्दंतान्श्वसन्फेनं वमन्नपि ॥ यो ब्रूयाद्विकृतं सत्त्वं कृष्णं मामनुधावति ॥ १० ॥ ततो मे चित्तनाशः स्यात्सोऽपस्मारोऽनिलात्मकः ॥ तृट्तापस्वेदमूर्च्छार्तो धुन्वन्नंगानि विह्वलः ॥ ११ ॥ यो ब्रूयाद्विकृतं सत्त्वं पीतं मामनुधावति ॥ ततो मे चित्तनाशः स्यात्स पित्तभव उच्यते ॥ १२ ॥

जो कांपताहुआ दांतोंके मींचे, श्वास जल्दी जल्दी लेवे, मुँहसे झाग आवें और जो ऐसा कहे कि काला काला भयंकर कोई मेरे पीछे दौडा आता है (या सामने काला ही काला दीखता है) ॥ १० ॥ तब मुझे बेहोशी होती है ये वायुके अपस्मारके लक्षण हैं और जो ताप, तृषा, पसीना और मूर्च्छा इनसे पीडित हो और अंगोंको धुनता हुआ बेहोश होजावे ॥ ११ ॥ और ऐसा कहे कि पीले रंगका कोई भयंकर रूपसा मेरे पीछेसे (या आगेसे) दौडा आताहै तब मुझे बेहोशी होजातीहै ये लक्षण पित्तके अपस्मारके होतेहैं ॥ १२ ॥

शीतहृल्लासनिद्रार्तः पतन्भूमौ वमन्कफम् ॥ यो ब्रूयाद्विकृतं सत्त्वं शुक्लं मामनुधावति ॥ १३ ॥ ततो मे चित्तनाशः स्यात्सोऽपस्मारः कफात्मकः ॥ हृदि तोदस्तृडुत्क्लेदस्त्रिष्वप्येतेषु संख्यया ॥ १४ ॥ प्रलापः कूजनं क्लेशः प्रत्येकं तु भवेदिह ॥ सर्वलिंगसमावायः सर्वदोषप्रकोपजे ॥ १५ ॥

जो शीत हृल्लास (मुँहमें पानी भर आना) और निद्रासे पीडित हो पृथ्वीमें गिरताहुआ मुँहसे झाग डाले और ऐसा कहे कि सुपेद रंगका कोई भयंकरसा रूप मेरे पीछेसे (या आगेसे) दौडा आताहै ॥ १३ ॥ तब मैं बेहोश होजाताहूं ये लक्षण कफके अपस्मारके होतेहैं और सन्निपातके अपस्मारमें हृदयमें पीडा, तृषा, उत्क्लेद ये तीनों दोषोंके चिह्न होवें और प्रलाप, कूजन (अव्यक्त शब्द) और क्लेश ये भी प्रत्येक होतेहैं तथा सब दोषोंके मिले अन्य लक्षण (जैसे सब रंगका विकृत रूप दीखे या कभी कैसा कभी कैसा दीखे) ॥ १४ ॥ १५ ॥

अपस्मारोत्पत्तिमें मतान्तर ।

अनिमित्तागमाद्व्याधेर्गमनादकृतेऽपि च ॥
आगमाच्चाप्यपस्मारं वदंत्यन्ये न दोषजम् ॥ १६ ॥

कोई ऐसा भी कहते हैं कि विना कारणही इसके उत्पन्न होनेसे और विना प्रतिकार किये ही इस व्याधिके दूर होजानेसे तथा आगमसे (किसी शास्त्रके प्रमाणसे) यह व्याधि दोषज (वातादि दोषोंसे उपजनेवाली) नहीं किंतु अमानुष भूतादिजन्य या मानस विकारसे होनेवाली है ॥ १६ ॥

मतान्तरका खण्डन ।

क्रमोपयोगाद्दोषाणां क्षणिकत्वात्तथैव च ॥ आगमाद्वैश्वरूपाच्च स तु निर्वर्ण्यते बुधैः ॥ १७ ॥ वर्षत्यपि यदा देवे भूमौ बीजानि कानिचित् ॥ शरदि प्रतिरोहंति तथा व्याधिसमुद्भवः॥ ॥ १८ ॥ स्थायिनः केचिदल्पेन कालेनाभिप्रवर्द्धिताः ॥ दर्शयन्ति विकारांस्तु विश्वरूपान्निसर्गतः १९ ॥ अपस्मारो महाव्याधिस्तस्माद्दोषज एव तु ॥ तस्य कार्यो विधिः सर्वो य उन्मादेषु वक्ष्यते२०॥

श्रीधन्वंतरिजी कहतेहैं कि प्रथम तो यह वातादिदोषोंके क्रमके उपयोगसे उत्पन्न होती है (अर्थात् वातादि-वायु, जल, शीत, उष्णादिके उपयोग होनेसे पैदा होती है) इससे अनिमित्तागम नहीं रही, दूसरे यह क्षणिक स्वभावहीसे होतीहै अर्थात् जब दोषोंका वेग हटजाताहै तब स्वयं शांत होजातीहै इससे विना

(श्लो० १६) अनिमित्तागमात् आकस्मिकोद्भवात् । प्रतीकारे अकृते च गमनात् नाय दोषजो व्याधिरिति वदंति । किंतु भूतादिजन्यः मनोभवश्च इति वदंति । आगमाच्च मंत्रशास्त्रादौ अस्य प्रतीकारबाहुल्याच्च । (श्लो० १७) दोषाणां क्रमोपयोगात् संचयादिक्रमेण विकारजननयोगात् तथा दोषाणामेव क्षणिकत्वात् । आगमात् आयुर्वेदात् । वैश्वरूपाच्च वातपित्तश्लेष्मणा सर्वत्र सद्भावात् ।

यत्नके चलीजानाही चाहिये, तीसरे आगमसे अर्थात् शास्त्रकारोंने इसे दोषज चार भांतिका लिखाहीहै, चौथे यह कि ये वातादि दोष विश्वरूप सर्वत्र सब जगह रहनेवाले हैं इससे इनके विना कुछ होही नहीं सकता इसलिये वैद्योंने इसे दोषजही माना है और यही ठीक भी है ॥ १७ ॥ इसमें फिर यह शंका होसकतीहै कि भला जी आराम रहनेके दिनोंमें वे दोष कहाँ चलेजातेहैं ? इसका समाधान यह है कि जैसे पृथ्वीमें पडेहुए कोई बीज मेह वर्षनेपर भी शरदऋतुमें ही उगते हैं (नहीं तो पृथ्वीमें दबेपडे रहतेहैं) इसी भांति वे वातादि दोषभी कारण और समयपाकर कुपित होतेहैं तब व्याधिका दर्शन होताहै ॥ १८ ॥ और जैसे कोई बीज स्थायी (देरसे उगते) हैं और कोई थोडेही समयमें उगकर बढजातेहैं इस प्रकार इन वातादि दोषोंमेंसे भी अपने स्वभावसे कोई शीघ्र और कोई देरसे विकार दिखातेहैं ॥ १९ ॥ इन्हीं कारणोंसे यह अपस्मार महाव्याधि दोषोंहीसे उत्पन्न होनेवाली है अन्यथा नहीं और इसकी चिकित्सा भी (दोषोंकेही अनुसार) जैसे उन्मादमें कही जावेगी वैसे करनी उचित है ॥ २० ॥

मृगीकी सामान्य चिकित्सा ।

पुराणसर्पिषः पानमभ्यंगश्चैव पूजितः ॥ उपयोगो ग्रहोक्तानां योगानां तु विशेषतः ॥२१॥ शिग्रुकट्वंगकिण्वं हि निंबत्वग्रससाधितम् ॥ चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलमभ्यंजने हितम् ॥२२॥ गोधानकुलनागानां पृषतर्क्षगवामपि ॥ पित्तेषु सिद्धं तैलं च पानाभ्यंगेषु पूजितम् ॥ २३ ॥ तीक्ष्णैरुभयतो भागैः शिरश्चापि विशोधयेत् ॥ पूजां रुद्रस्य कुर्वीत तद्गणानां च नित्यशः ॥ २४ ॥

पुराना घृत पिलाना और मर्दन करना श्रेष्ठ है तथा जो उपयोग ग्रहोंके लिये कहेहैं उनका भी यहां विशेषकर उपयोग करे ॥ २१ ॥ तथा सोहँजना, अरलू, सुराबीज, नींबकी छाल और रस (या नींबकी छालका रस) इनमें चौगुना गोमूत्र डालकर तैल पकावे और उसका मर्दन करे ॥ २२ ॥ अथवा गोह, नौला, सर्प और साबर, रीछ, गौ इनके पित्तोंमें सिद्ध किया तैल पान और अभ्यंगमें श्रेष्ठ है॥ ॥ २३ ॥ तथा तीक्ष्ण योगोंसे वमन और विरेचन देकर नीचे ऊपरसे शोधन करे और शिरका भी शोधन (नस्य देकर) करे तथा नित्य शिवजीकी और उनके गणोंकी पूजा किया करे ॥ २४ ॥

(श्लो० २२) किण्वं श्वेतस्यंद (इति डल्हनः)

वातादिके अपस्मारकी चिकित्सा।

कुलत्थयवकोलानि शणबीजं पलंकषाम्॥ जटिलां पंचमूल्यौ द्वे पथ्यां चोत्काथ्य यत्नतः॥ वस्तमूत्रयुतं सर्पिः पिबेत्तद्वातिके हितम्॥ २५॥ काकोल्यादिप्रतीवापं सिद्धं वा प्रथमे गणे॥ पयोमधुसितायुक्तं घृतं तत्पैत्तिके हितम्॥ २६॥ कृष्णावचामुस्तकाद्यैर्युक्तमारग्वधादिकैः॥ पक्कं तन्मूत्रवर्गेषु श्लेष्मापस्मारिणे हितम्॥ २७॥

कुलथी, जौ, बेर, शणके बीज, लाख, जटामांसी, दशमूल और हरडे इनका क्वाथ कर बकरेका मूत्र मिला घृत सिद्ध कर ले इसे वायुके अपस्मार रोगमें पीना हितकारक होता है॥ २५॥ प्रथम विदारिगंधादिगणमें काकोल्यादिका प्रतिवाप देकर घृत पकालेवे फिर इस घृतमें दूध, शहद, मिश्री मिलाकर पीना पित्तके अपस्मारमें हित है॥ २६॥ और आरग्वधादि गणमें पीपल, वचा और मोथा आदि डालकर और मूत्रवर्ग मिलाकर घृत पकावे यह कफके अपस्मारमें हितकारक है॥ २७॥

सिद्धार्थक घृत।

सुरद्रुमवचाकुष्ठसिद्धार्थव्योषहिंगुभिः॥ मंजिष्ठारजनीयुग्मसमंगात्रिफलांबुदैः॥ २८॥ करंजबीजशैरीषगिरिकर्णीहुताशनैः॥ सिद्धं सिद्धार्थकं नाम सर्पिर्मूत्रचतुर्गुणम्॥ २९॥ कृमिकुष्ठगरश्वासबलासविषमज्वरान्॥ सर्वभूतग्रहोन्मादानपस्मारांश्च नाशयेत्॥ ३०॥

देवदारु, वच, कूट, सुपेद सरसों, त्रिकटु, हींग, मँजीठ, दोनों हलदी, लज्जालू, त्रिफला, नागरमोथा॥ २८॥ करंजबीज, शिरसके बीज, गिरिकर्ण (श्वेतस्पंद) और चित्रक इनमें चौगुना गोमूत्र मिलाकर घृत पकाले॥ २९॥ यह घृत कृमि, कुष्ठ, विष, श्वास, कफ, विषमज्वर, सब भूतग्रह, उन्माद और अपस्मार इतने रोगोंको नष्ट करता है इसका नाम सिद्धार्थ घृत है॥ ३०॥

पंचगव्य घृत।

दशमूलेंद्रवृक्षत्वङ्मूर्वाभार्ङ्गीफलत्रयैः॥ संपाकश्रेयसीसप्तपर्ण्यपामार्गपीलुभिः॥३१॥ एतैः कल्कैश्च भूनिंबपूतीकव्योषचित्रकैः॥

त्रिवृत्पाठानिशायुग्मं सारिवाद्वयपौष्करैः ॥ ३२ ॥ कटुकामदयं-त्युग्रानीलिनीक्रिमिशत्रुभिः ॥ सर्पिरेभिश्च गोक्षीरदधिमूत्रशकृ-द्रसैः ॥ ३३ ॥ साधितं पंचगव्याख्यं सर्वापस्मारभूतनुत् ॥ चा-तुर्थिकक्षयश्वासानुन्मादांश्च नियच्छति ॥ ३४ ॥

दशमूल, कुड़ाकी छाल, मूर्वा, भारंगी, त्रिफला, किरमाला, हरडे, सातला, औंगा और पीलू ॥ ३१ ॥ इनका कल्क करे और चिरायता, करंज, त्रिकटु, चित्रक, निशोथ, पाठा, दोनों हलदी, दोनों सारिवा, पुष्करमूल ॥ ३२ ॥ कुटकी, मदयंती, वच, नीलिनी, विडंग ये भी मिलादे इनमें गौका दूध, गौका दही, गौका मूत्र और गौके गोबरका रस डालकर गौकाही घृत सिद्ध करे ॥ ३३ ॥ यह पंचगव्य नामक घृत सब अपस्मार, भूत, चौथिया ज्वर, क्षय, श्वास और उन्मादको नष्ट करता है ॥ ३४ ॥

वातिकं वस्तिभिश्चापि पैत्तिकं तु विरेचनैः ॥
कफजं वमनैर्धीमानपस्मारमुपाचरेत् ॥ ३५ ॥

वायुके अपस्मारको वस्तिकर्मसे और पित्तके अपस्मारको, विरेचनसे कफके अपस्मारको वमनसे वैद्य उपचार करे ॥ ३५ ॥

भार्ङ्गीशृते पचेत्क्षीरे शालितंडुलपायसम् ॥ त्र्यहं शुद्धाय तद्भो-ज्यं वराहायोपकल्पयेत् ॥ ३६ ॥ ज्ञात्वा च मधुरीभूतं तं विषस्थं तदुद्धरेत् ॥ त्रीन्भागांतस्य चूर्णस्य किण्वभागेन संसृजेत् ॥ ३७ ॥ मंडोदकार्थं देयश्च भार्ङ्गीकाथः सुशीतलः ॥ शुद्धकुंभे निदध्याच्च संभारं तं सुरां ततः ॥ ३८ ॥ जातगंधां जातरसां पाययेदातुरं भिषक् ॥ शिरां विध्येदथ प्राशा मांगल्यानि च धारयेत् ॥ ३९ ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

(श्लो० ३६ से ३९ तक) भार्ङ्गीशृत इत्यादि–भार्ङ्गीशृते क्षारे शालितंडुलपायसं पचेदिति संबंधः। तत्र चतुर्थांशं भार्ङ्गीकल्कं दत्त्वा चतुर्गुणेन जलेन क्षीरं साधयेत् । शुद्धाय त्रिदिनमुपोषिताय वराहाय तत्पायसं भोक्तुं प्रकल्पयेत् । मधुरीभूतं श्लेष्मसंसृष्टं विदाहावस्थानप्राप्तम् । अन्ये तु मधुरीभूतं विषीभूतं व्याख्यानयंति । यतो मधुररसे विषविशेषो वर्तते अथ पायस कथं विषविशेष भवतीति चेत् आधारप्रभा-वात्–विषीभूत च वराहस्यैवं लालास्रावमूर्च्छादिलिंगैर्ज्ञातव्यम् । तं वराहं विषस्याजीर्णविषीभूतमुद्धरेत् । तस्य उद्धृतस्य अन्नस्य शोधितचूर्णीभूतस्य त्रीन्भागान् किण्वभागेन संसृजेत् । मंडोदकार्थं संधानार्थं भार्ङ्गीकाथो देयः शुद्धे संस्कृते कुंभे संधाय यावत् सम्यक्सुराभावं प्राप्नोति–जातरसा तामपस्मारातुरं पाययेत् (इति नि० सं०)

भारंगीमें औटाये हुए दूधसे (भारंगीका चूर्ण चतुर्थांश डालकर दूधमें चौगुना पानी डालके पकावे जब दूधमात्र शेष रहे तब) उसमें शाली चावलोंकी खीर पकावे और एक सूकरको जो तीन दिनका भूँखा हो उसे वह खीर खिलावे और जब वह पेटमें मधुरभावको प्राप्त हो तब उस विषभागको प्राप्त हुई खीरको निकाल ले फिर तीन भाग इस चूर्णमें एकभाग सुराका बीज मिलादे ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥ और मण्डोदक (मद्यके जल) के जगह उसमें भारंगीका क्राथही ठण्ढा करके डालदे और एक शुद्ध पूर्वोक्त संस्कार किये घडेमें उसे भर दे और जबतक वह मद्य बने तबतक भरारहने दे ॥ ३८ ॥ और जब उसमें मद्यकी गंध और रस आजावे (मद्य बनजावे) तब इसमेंसे वैद्य मृगीके रोगीको पिलाया करे और यथार्थ हो तो यथायोग्य शिराविधन भी करे और पूर्वोक्त मंगल धारण करे (अर्थात् मांगलिक पदार्थों सिद्धार्थकपुष्पादिको धारण करे) ॥ ३९ ॥

यूनानीवाले मृगीको "सुरआ" कहते हैं और डाक्टरीमें इसे एपेलेपसी कहते हैं ॥

इति प० मुरलीधरवि० सुश्रुतस० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायामेकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः ६२.

अथात उन्मादप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम उन्मादप्रतिषेधके अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ।

मदयंत्युद्गता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः ॥
मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः ॥ १ ॥

इस व्याधिमें जोकि प्रतिलोम मार्गोंमें समाश्रित हुए दोष ऊर्द्धगामी होकर मद उत्पन्न करते हैं इससे यह मानस व्याधि उन्माद कहलातीहै (इसे भाषामें बावलापन या दीवानगी और खफगांन वगैरह कहतेहैं) ॥ १ ॥

(वक्तव्य) ये उन्माद और अपस्मारादि व्याधि मन और बुद्धिकी विकृतिसे होतीहैं इन्हें वैद्यकमें प्रायः हृदयके विकारसे मानतेहैं परन्तु यदि विचार कर देखें तो हमारे वैद्यकके सिद्धांतसे यह मूर्द्धाजन्य (दिमागसे होनेवाली) भी प्रतीत होतीहै क्योंकि महर्षि धन्वंतरिजीने पहलेही लिखा है कि-"उन्मार्गमाश्रिता उद्गता दोषा मदयंति" अर्थात् प्रतिलोम मार्गमें ऊपरको प्राप्त हुए दोषः जब ऊर्द्धगामी होतेहैं तब मद करतेहैं अर्थात् मूर्द्धामें पहुँचतेहैं तब मद करतेहैं(उन्माद पैदा करते हैं) और यदि ऐसा कहो कि उन्मार्गाश्रित और ऊर्द्धगामी होकर दोषोंका हृदयमें ही प्राप्त होना समझिये तो हृद्रोगमें जहां अवश्यमेव दोष हृद-

यको दूषित करतेहैं वहां उन्मार्गमाश्रित और उद्धत होकर दोषोंका हृदयमें प्राप्त होना महर्षिजीने नहीं लिखा जैसा कि इन व्याधियोंमें लिखा, दूसरे यह कि इन व्याधियोंमें शिरका शोधन प्रथमहीसे लिखाहै और हृदय रोगमें शिरके शोधनकी विशेष आवश्यकता नहीं इससे यह सिद्ध होताहै कि उन्माद दोनों तरहसे होताहै हृदयसे भी होसकताहै और मूर्द्धासे भी ॥

उन्मादके भेद ।

एकैकशः समस्तैश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः ॥ मानसेन च दुःखेन स पंचविध उच्यते ॥ २ ॥ विषाद्भवति षष्ठश्च यथास्वं तत्र भेषजम् ॥ स चाप्रवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां बिभर्ति च ॥ ३ ॥

एक एक वातादि दोषसे ऐसे तीन तो ये और चौथा सन्निपातसे ये वातादि दोष जब अत्यन्त मूर्च्छित होतेहैं तब यह होताहै और पांचवां मनके दुःखसे, इस भांति यह उन्माद पांच प्रकारका हुआ ॥२॥ और छठा विष (अथवा तीक्ष्ण नशे) से होजाताहै इसमें यथायोग्य दोषोंके अनुसार चिकित्सा होतीहै और यह जबतक ताजा होताहै या बढाहुआ नही होता (अर्थात् ज्यादे नहीं बढता) तब तक इसकी मदसंज्ञा होतीहै ॥ ३ ॥

उन्मादका पूर्वरूप ।

मोहोद्वेगौ स्वनः श्रोत्रे[1] गात्राणामपतर्पणम् ॥ अत्युत्साहोऽरुचि[2]श्चान्ने[1] स्वप्ने कलुषभोजनम् ॥ ४ ॥ वायुनोन्मथनं चापि भ्रमश्चं[2]क्रमतस्तथा ॥ यस्य[1] स्याद[2]चिरेणैवमुन्मादं सो[3]ऽधिगच्छति ॥ ५ ॥

कभी मोह और कभी उद्वेग हो, कानोंमें शब्द हो और शरीर दुबला होजावे, अत्यंत उत्साहसे रहे, अन्नमें रुचि न हो और स्वप्नमें कलुषित (खराब) भोजन खावे ॥ ४ ॥ और वायुसे (हृदयका) मथनसा होना मालूमदे और कुम्हारके चाककी तरह घूमनासा हुआ करे जिसके ये लक्षण हों उसे थोडेही दिनमें उन्माद होजावेगा (ऐसा जानना चाहिये ये उन्मादके पूर्वरूप हैं) ॥ ५ ॥

वातोन्मादके लक्षण ।

रूक्षच्छविः परुषवाग्धमनीततो वा श्वासातुरः कृशतनुः स्फुरि-

(श्लो० ३) स च अप्रवृद्धः तरुणः मदसंज्ञां बिभर्ति । डल्लनमते तु मदसंज्ञा विषजस्योन्मादस्यैव अप्रवृद्धत्वे भवति । भावमिश्रमते उन्मादमात्रस्य अप्रवृद्धस्य तरुणस्य नवीनस्य मदसंज्ञा भवतीति

(श्लो० ५) चंक्रमतः कुलालचक्रस्थितस्येव भ्रमः (इति डल्लनः) अन्ये च क्रमतः क्रमात् भ्रमः क्रमेण भ्रमवृद्धिरित्याहुः । (श्लो० ६) धमनीततः धमनीभिः स्फुटत्वेन व्याप्तः ।

तांगसंधिः ॥ आस्फोटयन्पठति गायति नृत्यशीलो विक्रोशति भ्रमति चाप्यनिलप्रकोपात् ॥ ६ ॥

शरीरकी कांति रूखी हो, कठोर शब्द बोले और नसें कडी होजावें, श्वाससे पीडित हो, शरीर दुबला पडजावे, शरीरकी संधियोंमें फरकन हो, तोड तोड कर पढे और गान तथा नृत्य भी करने लगे, गाली देवे और भ्रमता फिरे ये लक्षग वायुके उन्मादमें होते हैं ॥ ६ ॥

पित्तोन्मादके लक्षण ।

तृट्स्वेददाहबहुलो बहुभुग्विनिद्रश्छायाहिमानिलजलांतविहारसेवी ॥ तीक्ष्णो हिमांबुनिचयेऽपि सवह्निशंकी पित्ताद्दिवा नभसि पश्यति तारकाश्च ॥ ७ ॥

तृषा, पसीना, दाह ये बहुत रहें, बहुत खावे, निद्रा नहीं आवे, छाया, ठंढक, पवन, पानी इनमें विहार करना चाहे, तीक्ष्णता हो, बरफ और पानी इनके समूहमें भी अग्निकी शंका करे और दिनमें भी आकाशमें तारेसे देखे ये पित्तज उन्मादके लक्षण हैं ॥ ७ ॥

कफोन्माद और सन्निपातोन्मादके लक्षण ।

छर्द्यग्निसादसदनारुचिकासयुक्तो योषिद्विविक्तरतिरल्पमतिप्रकारः ॥ निद्रापरोल्पकथनोल्पभुगुष्णसेवी रात्रौ भृशं भवति चापि कफप्रकोपात् ॥८॥ सर्वात्मके त्रिभिरपि व्यतिमिश्रितानि रूपाणि वातकफपित्तकृतानि विद्यात् ॥ संपूर्णलक्षणमसाध्यमुदाहरंति सर्वात्मकं क्वचिदपि प्रवदंति साध्यम् ॥ ९ ॥

वमन हो, अग्नि मंद होजाय, शिथिलता, अरुचि और खांसी ये भी हों स्त्रियोंसे रहस्यमें रमण करना चाहे, बुद्धि मंद होजावे, निद्रा बहुत आवे, कम बोले, थोडा खावे, गरम पदार्थोंका सेवन करे, रात्रिमें अधिक होजावे ये कफोन्मादके लक्षण हैं ॥ ८ ॥ सन्निपातके उन्मादमें वायु, पित्त, कफ तीनों दोषोंके लक्षण और रूप मिले हुए होते हैं यह संपूर्ण लक्षणों (उपद्रवों) से युक्त हो तो असाध्य होताहै और कभी यह सन्निपातका उन्माद साध्य भी होताहै ॥ ९ ॥

(श्लो० ८) योषिद्विविक्तरतिः. योषिति सुविविक्ते एकांते रती रमणं यस्य सः । (श्लो० ९) त्रिभिः वातादिभिः व्यतिमिश्रितानि मिश्रितानि रूपाणि सर्वात्मके भवंतीति ।

शोकोन्माद और विषोन्मादके लक्षण ।

चौरैर्नरेंद्रपुरुषैरारिभिस्तथान्यैर्वित्रासितस्य धनबांधवसंक्षयाद्वा ॥ गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिरंसोर्जायेत चोत्कटतरो मनसो विकारः ॥ १० ॥ चित्रं स जल्पति मनोनुगतं विसंज्ञो गायत्यथो हसति रोदिति चापि मूढः ॥ रक्तेक्षणो हतबलेंद्रियभः सुदीनः श्यावाननो विषकृतेन भवेद्विसंज्ञः ॥ ११ ॥

चोरोंने और राजा या राजपुरुषोंने, शत्रुओंने जिसे बहुत त्रास दिया हो या जिसके धनपुत्रादिक नष्ट होगये हों या जिसके मनपर तीक्ष्ण आघात पहुँचा हो या प्यारी स्त्रीसे रमणकी अत्यंत वांछा हो इन बातोंसे मनमें उत्कट विकार होजाता है जिससे मनुष्य उन्मत्त होकर चित्रविचित्र बातें कहता है अथवा मनके अनुकूल मिथ्या प्रलाप करता है, कभी गाने लगता है, कभी हँसता है, कभी मूढ होकर रोने लगता है ये लक्षण मनके दुःखसे हुए उन्मादमें होते हैं और विषके उन्मादमें नेत्र लाल होजाते हैं, बल, इंद्रिय और कांति ये नष्ट होजाते हैं, मनुष्य दीन होजाता है, चेहरा काला पडजाता है और बेहोश होजाता है ॥ १० ॥ ११ ॥

उन्मादकी चिकित्सा ।

स्निग्धं स्विन्नं तु मनुजमुन्मादार्तं विशोधयेत् ॥ तीक्ष्णैरुभयतो भागैः शिरसश्च विरेचनैः ॥ १२ ॥ विविधैरवपीडैश्च सर्षपस्नेहसंयुतैः ॥ योजयित्वा च तच्चूर्णं घ्राणे नस्यं तु योजयेत् ॥ १३ ॥ सततं धूपयेच्चैनं श्वगोमांसैः सुपूतिभिः ॥ सर्षपाणां च तैलेन नस्याभ्यंगौ हितौ सदा ॥ १४ ॥

उन्मादके रोगीको स्नेहन, स्वेदन करके तीक्ष्ण वमन, विरेचन देकर ऊपर नीचे दोनों तरफसे खूब शोधन करे और शिरोविरेचनसे शिरका भी खूब शोधन करे ॥ १२ ॥ अनेक प्रकारका अवपीडन सरसोंके तैलमें मिलाकर देवे और सरसोंहीका चूर्ण मिलाकर नासिकामें नस्य दे ॥ १३॥ और कुत्ते तथा गौके मांसको सडाकर उसकी निरंतर धूनी देवे तथा सरसोंके तेलका नस्य देना और उसीका मर्दन करना सदा उन्मादवालेको हितकारक है ॥ १४ ॥

(श्लो० १३) तच्चूर्णं सर्षपचूर्णम् (इति नि० सं०)

अन्य यत्न ।

दर्शयेदद्भुतान्यस्य वदेन्नाशं प्रियस्य च ॥ भीमाकारैर्नरैर्नागैर्दान्तैर्व्यालैश्च निर्विषैः ॥ १५ ॥ भीषयेत्सततं पाशैः कशाभिर्वाथ ताडयेत् ॥ यंत्रयित्वा सुतप्तं वा त्रासयेत्तं तृणाग्निना ॥ १६ ॥ प्रतुदैर्दारयेच्चैनं मर्माघातं विवर्जयेत् ॥ सापिधाने जरत्कूपे सततं वा निवासयेत् ॥ १७ ॥

इसे अद्भुत वस्तु दिखलावे तथा प्यारे मनुष्य या प्यारी चीजका नाश होगया ऐसा झूठ मूठ ही उससे कहदे अथवा भयानक मनुष्योंसे, हाथियोंसे, दांतसे काटनेवालोंसे और निर्विष सर्पोंसे डरावे ॥ १५ ॥ अथवा रस्सोंसे बांध कर डरावे अथवा चाबुक मारे या मारनेका भय देवे अथवा बांधकर उसको तृणकी अग्नि लेजाकर डरावे ॥१६॥ अथवा बाज, सिकरे आदिसे नोचावे परन्तु मर्मपर आघात न पहुँचे इस बातका ध्यान रक्खे अथवा मुँह ढके हुए अँधेरे कुएमें कुछ दिन पडा रक्खे (प्रायः ऐसा करनेसे दिल ठिकाने आजाया करताहै)॥१७॥

त्र्यहात्त्र्यहाद्यवागूं च दद्यात्सक्तुं जलेन वा ॥
केवलानंबुयुक्तान्वा कुल्माषान्वा बहुश्रुतः ॥
हृद्यं यद्दीपनीयं च तत्पथ्यं तस्य योजयेत् ॥ १८ ॥

तीन तीन दिनमें इसे यवागू खानेको देवे अथवा जलके संग घुले हुए सत्तू देवे अथवा केवल या जलके साथ कुल्माष (बांकली) देवे और बहुश्रुत वैद्यको चाहिये कि हृदयप्रिय और दीपन जो हों, उन्हे अग्निबलके अनुसार भोजनार्थ पथ्य देवे ॥ १८ ॥

महाकल्याण घृत ।

विडंगत्रिफलामुस्तमंजिष्ठादाडिमोत्पलैः ॥ श्यामैलवालुकैलाभिश्चंदनामरदारुभिः॥ १९ ॥ बर्हिष्ठरजनीकुष्ठपर्णिनीसारिवाह्वयैः॥ हरेणुकात्रिवृद्दंतीवचातालीशकेशरैः ॥ २० ॥ द्विक्षीरं साधितं सर्पिर्मालतीकुसुमैः सह ॥ गुल्मकासज्वरश्वासक्षयोन्मादनि-

---

(श्लो० १६) कशाभिः चर्मयष्टिभिः । कशा चर्मयष्टिः "कोडा" इति लोके । (श्लो० १७) सापिधाने जरत्कूपे छायायुक्ते निर्जले कूपे । (श्लो० १९ से २३ तक) एषां श्लोकानां पदच्छेदान्वयादिकं पूर्वे ज्वराध्याये कृतमेव । अत्र बहुषु पुस्तकेषु लिखितत्वान्मयापि लिखिताः परंतु वास्तवेनैषां लिखितेन पुनरुक्तिरेव ।

वारणम् ॥ २१ ॥ एतदेव हि संपक्कं जीवनीयोपसंभृतम् ॥ चतुर्गुणेन दुग्धेन महाकल्याणमुच्यते ॥ २२ ॥ अपस्मारं ग्रहं शोषं क्लैब्यं कार्श्यमबीजताम् ॥ घृतमेतन्निहंत्याशु ये चादौ गदिता गदाः ॥२३॥

विडंग, त्रिफला, मोथा, मँजीठ, अनार, कमल, प्रियंगु, एलवालुक, इलायची, चन्दन, देवदारु ॥ १९ ॥ नेत्रबाला, हलदी, कट, पृश्निपर्णी, सारिवा, हरेणु, निशोथ, दंती, वच, तालीशपत्र और नागकेशर ॥ २० ॥ इनमें दोनों दूध (गौ और बकरीका (और कई दुगना दूध ऐसा मानते हैं) डाले और मालतीके पुष्प डालकर घृत पकाले यह (कल्याण घृत पहले ज्वरमें कहाभी जा चुका है), गुल्म, खांसी, ज्वर, श्वास, क्षय और उन्माद इन्हें दूर करता है ॥ २१ ॥ और इसी घृतको जीवनीयगणकी औषधोंके साथ चौगुने दूधसे पकावे तो यह महाकल्याण घृत होजाता है ॥ २२ ॥ यह मृगी, ग्रहदोष, शोष, नपुंसकता, कृशता और निर्वीर्यता इन रोगोंको तथा जो पहले कहे (कल्याणघृतोक्त) रोगोंको भी दूर करता है ॥ २३ ॥

फलघृत ।

बर्हिष्ठकुष्ठमंजिष्ठाकटुकैलानिशाह्वयैः ॥ तेनेदं त्रिफलाहिंगुवाजिगंधामरद्रुमैः ॥ २४ ॥ वचाजमोदाकाकोलीमेदामधुकपद्मकैः ॥ सशर्करं हितं सर्पिः पक्कं क्षीरचतुर्गुणम् ॥ २५ ॥ बालानां ग्रहजुष्टानां पुंसां दुष्टाल्पमेधसाम् ॥ ख्यातं फलघृतं स्त्रीणां वंध्यानां चाशु गर्भदम् ॥ २६ ॥

नेत्रबाला, कूट, मँजीठ, कुटकी, इलायची, हलदी, त्रिफला, हींग, असगंध, देवदारु ॥ २४ ॥ वच, अजमोदा, काकोली, मेदा, मुलेठी और पद्माख इनमें घृत पकावे और चौगुना दूध डाले तथा खांड भी डाले यह फलघृत ग्रहपीडित बालकोंको तथ दुष्टबुद्धिवाले और अल्पबुद्धिवाले पुरुषोंको श्रेष्ठ है तथा वंध्या स्त्रियोंको शीघ्रही गर्भ देनेवाला है ॥ २५ ॥ २६ ॥

अन्यप्रयोग ।

ब्राह्मीमैंद्रीं विडंगानि व्योषं हिंगु सुरां जटाम् ॥ विषघ्नीं लशुनं रास्नां विशल्यां सुरसां वचाम् ॥ २७ ॥ ज्योतिष्मतीं नागविन्ना-

(श्लो० २४ से २६ तक) एतत्फलघृतपाठोपि समाश्रितः प्रतीयते । तत्र तेनेदमिति अन्यम् अशुद्धं वा प्रतीयते ।

मनंतामभयां तथा ॥ सौराष्ट्रीं च समांशानि गजमूत्रेण पेषयेत् ॥ ॥ २८ ॥ छायाविशुष्कास्तद्वर्तीर्योजयेद्विधिकोविदः ॥ अवपीडेञ्ज-नेऽभ्यंगे नस्ये धूमे प्रलेपने ॥ २९ ॥

ब्राह्मी, इंद्रायण, विडंग, त्रिकटु, हींग, सुरा (सुराह्व देवदारु), जटामांसी, (बालछड़), हलदी, लहसन, रास्ना, विशल्या (गिलोय), तुलसी, वच ॥२७॥ मालकांगनी, नागविन्ना (इंद्रायनका भेद नागदमनी), उत्पलसारिवा, हरडे, फटकडी इनको समान भाग लेकर हाथीके मूत्रमें पीसे ॥ २८ ॥ और गोली बनाके छायामें सुखाले इन्हें विधि जाननेवाला वैद्य इस उन्माद रोगमें अवपीडनमें, अंजनमें, मर्दनमें, नस्यमें, धूनी देनेमें और लेपमें सब जगह उपयोग करे ॥२९ ॥

उन्मादचिकित्सामें विषेश उपदेश ।

उरोपांगललाटेषु शिराश्चास्य विमोक्षयेत् ॥ अपस्मारक्रियां चापि ग्रहोद्दिष्टां च कारयेत् ॥ ३० ॥ शांतदोषं विशुद्धं च स्नेहवस्ति-भिराचरेत् ॥ शोकशल्यं व्यपनयेदुन्मादे पंचमे भिषक् ॥ ३१ ॥ उन्मादेषु च सर्वेषु कुर्याच्चित्तप्रसादनम् ॥ मृदुपूर्वां मदेष्वेवं क्रियां विद्वान्प्रयोजयेत् ॥ ३२ ॥ विषजे मृदुपूर्वां च विषघ्नीं कार-येत्क्रियाम् ॥ ३३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे भूतविद्यायां द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

हृदय, अपांग तथा ललाट इन स्थानोंमें उन्मादवालेका शिरामोक्षण करे तथा अपस्मारोक्त और ग्रहोक्त क्रिया भी करे ॥ ३० ॥ जब दोष शांत होजावे और शोधनादिसे शुद्ध होजावें तब स्नेहवस्ति करे और पांचवें शोकके उन्मादमें शोक-रूपी शल्यको ज्ञानादिसे दूर करे ॥ ३१ ॥ सब भांतिके उन्मादोंमें चित्तका प्रसन्न करना मुख्य है और जो मद हो उसमें विद्वान वैद्य पहले मृदु (हलकी) क्रिया करे ॥ ३२ ॥ और विषजन्य उन्मादमें मृदुतापूर्वक विष दूर करनेवाली क्रिया करनी चाहिये ॥ ३३ ॥

यूनानी हकीम मूर्द्धा (दिमागसे होनेवाले उन्मादको "जनूं" कहते हैं और दिलके फितूर (धड़कने या बे ठिकाने जरा टहलजानेसे) होनेवालेको "खफगान" कहते हैं और उन्मादके सूक्ष्मांगमदको " मिराक " कहते हैं ॥

डाक्टरीमें दिमागसे होनवाले उन्मादको "इनसानिटी" (Insanity) कहतेहैं और दिल धड़कनेसे होनेवालेको "पलपेटीशन" (Palpetition) कहतेहैं और एकप्रका-

रके सूक्ष्म उन्मादको "मेलनकोलिया" (Melancholia) कहतेहैं जिसे यूनानी "माली खोलिया" कहतेहैं ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतंत्रे भूतविद्यायां द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

॥ इति भूतविद्या समाप्ता ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः ६३.

अथातो रसभेदविकल्पमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम रसके भेदकल्पनाके अध्यायका व्याख्यान करते हैं (अर्थात् पहले जो छः रस वर्णन कियेगये हैं उनके मिलनेसे कितने भेद होतेहैं इसका वर्णन करतेहैं)

दोषाणां पञ्चदशधा प्रसरोऽभिहितस्तु यः ॥ त्रिषष्ट्या रसभेदानां तत्प्रयोजनमुच्यते ॥ १ ॥ अविदग्धा विदग्धाश्च भिद्यन्ते ते त्रिषष्टिधा ॥ रसभेदान्त्रिषष्टिं तु वीक्ष्य वीक्ष्यावचारयेत् ॥ २ ॥ एकैकेनानुगमनं भागशो यदुदीरितम् ॥ दोषाणां तत्र मतिमान्त्रिषष्टिं तु प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥

दोषोंका जो पंद्रह प्रकारका प्रसर (कोप या उफान) पहले वर्णन किया (उसके अगाड़ी त्रेसठ भेद कहेंगे अर्थात् उल्वणता और हीनतादिसे दोषोंके त्रेसठ भेद होतेहैं) उनमें रसोंके त्रेसठ भेदोंका प्रयोग करना रसभेद कहनेका प्रयोजन है ॥ १ ॥ अविदग्ध और विदग्ध (एक वस्तुमें समवाय संबन्धसे कई रसोंका योग हो और संयोगसे रसोंका योग हो इसप्रकारसे) रसोंके त्रेसठ भेद होतेहैं इन त्रेसठ प्रकारके रसभेदोंको (दोषोंके अनुसार) देख देख कर प्रयोग करे ॥ २ ॥ एक एकके अनुगत होकर जो विभागपूर्वक भेद कहे जातेहैं उनसे त्रेसठ प्रकारके दोषभेदोंकी योजना करे ॥ ३ ॥

दोदो रसोंके योगसे भेद ।

यथाक्रमं प्रवृत्तानां द्विकेषु मधुरो रसः ॥ पंचानुक्रमते योगानम्लश्चतुर एव च ॥ ४ ॥ त्रींश्चानुगच्छति रसो लवणः कटुको द्वयम् ॥ तिक्तः कषायमन्वेति त द्विका दश पंच च ॥ ५ ॥

(श्लो० १) रसभेदकथने प्रयोजनमाह—त्रिषष्टिप्रकाराणामपि रसभेदानामुपयोगार्थं दोपभेदा उक्ताः। तेन दोपभेदानां त्रिषष्टिरपि गृह्यते (श्लो० २) अविदग्धा असंयुक्ता समवायतो भिद्यंत इत्यर्थः। विदग्धा संयुक्ता रसांतरसंयोगात् भिद्यंते तत्र यथासंभवं केचित् संयोगतः केचित्समवायतः इत्यादिभेदेन द्रव्यांतरद्वारेण कथ्यंते (इति नि० स०)

मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय इन छह रसोंके यथाक्रम प्रवृत्त होनेमें दो २ रसोंके योग करनेमें मधुररस पांचोंसे मिलता है और पांच भेद होतेहैं तथा अम्ल चारोंसे मिलता है, लवण तीनोंसे मिलता है, कटुक दोसे मिलता है और तिक्त केवल एकहीसे मिलता है ऐसं दो दो रसके मेलसे १५ भेद होजाते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

तद्यथा-मधुराम्लः । मधुरलवणः । मधुरतिक्तः । मधुरकटुकः । मधुरकषायः । एते पंचानुक्रांता मधुरेण ॥ ६ ॥ अम्ललवणः । अम्लकटुकः । अम्लतिक्तः । अम्लकषायः । एते चत्वारोऽनुक्रांता अम्लेन ॥ ७ ॥ लवणकटुकः । लवणतिक्तः । लवणकषायः । एते त्रयोनुक्रांता लवणेन ॥ ८ ॥ कटुतिक्तः । कटुकषायः । द्वावेतावनुक्रांतौ कटुकेन ॥ ९ ॥ तिक्तकषायः । एक एवानुक्रांतस्तिक्तेन ॥ १० ॥ एते पंचदश द्विकसंयोगा व्याख्याताः ॥ ११ ॥

दो दो रसोंके मेलसे पंद्रह भेद इस भांति होतेहैं जैसे १ मीठा खट्टा । २ मीठा नमकीन । ३ मीठा कडुवा । ४ मीठा चरपरा । ५ मीठा कसेला । इस भांति मधुरसे पांच रस मिलकर ये पांच भेद होतेहैं ॥ ६ ॥ फिर १ खट्टा नमकीन । २ खट्टा चरपरा । ३ खट्टा कडुवा । ४ खट्टा कसेला । इसभांति खट्टेमें मिलकर चार भेद हुए ॥ ७ ॥ फिर १ नमकीन चरपरा । २ नमकीन कडुवा । ३ नमकीन कसेला इस भांति नमकीनमें मिलके ये तीन भेद हुए ॥ ८ ॥ फिर १ कटु अर्थात् चरपरेमें कडुवा । २ चरपरेमें कसेला । इसभांति चरपरेसे मिलाके ये दो भेद हुए ॥ ॥ ९ ॥ फिर १ तिक्त अर्थात् कडुवा, कसेला दो मिलकर एकही भेद हुआ ॥ ॥ १० ॥ इस प्रकार दो दो रसोंके परस्पर सबमें सबके मेलसे पंद्रह भेद कहेहैं ॥ ११ ॥

तीन तीन रसोंके योगसे २० भेद ।

त्रिकं वक्ष्यामः । आदौ प्रयुज्यमानस्तु मधुरो दश गच्छति ॥
षडम्लो लवणस्तस्मादर्द्धं त्वेकं रसः कटु ॥ १२ ॥

अब तीन तीन रसोंके मिलनेसे जिस प्रकार भेद होतेहैं उन्हें कहतेहैं । प्रथम प्रयुज्यमान हुए मधुर रसके दश भेद होतेहैं और खट्टेसे मिलकर छः भेद होतेहैं और लवणसे मिलके तीन भेद होतेहैं और कटुकसे मिलकर एक ही होताहै ॥ १२ ॥

मधुराम्ललवणः। मधुराम्लकटुकः। मधुराम्लतिक्तः। मधुराम्लकषायः। मधुरलवणकटुकः। मधुरलवणतिक्तः। मधुरलवणकषायः। मधुरकटुकतिक्तः। मधुरकटुककषायः मधुरतिक्तकषायः। एवमेषां त्रिकसंयोगानां दशानामादौ मधुरः प्रयुज्यते ॥ १३ ॥ अम्ललवणकटुकः। अम्ललवणतिक्तः। अम्ललवणकषायः। अम्लकटुकषायः। अम्लकटुतिक्तः। अम्लतिक्तकषायः। एवमेषामादावम्लः प्रयुज्यते ॥ १४ ॥ लवणकटुतिक्तः। लवणकटुकषायः। लवणतिक्तकषायः। एवमेषां त्रयाणामादौ लवणः प्रयुज्यते ॥ १५ ॥ कटुतिक्तकषायः। एवमेकस्यादौ कटुकः प्रयुज्यते ॥ १६ ॥ एवमेते त्रिकसंयोगा विंशतिर्व्याख्याताः ॥ १७ ॥

तीन तीन रसोंके मेलसे २० भेद इस भांति होतेहैं जैसे—१ मीठा खट्टा खारा।२ मीठा खट्टा चरका। ३ मीठा खट्टा कडुवा। ४ मीठा खट्टा कसेला। ५ मीठा खारा चरपरा। ६ मीठा खारा कडुवा। ७ मीठा खारा कसेला। ८ मीठा चरका कडुवा। ९ मीठा चरका कसेला। १० मीठा कडुवा कसेला। इस भांति तीन रसोंके योगोंमें दश भेद ये ऐसे हैं जिनके आदिमें मधुर रस मिलताहै ॥ १३ ॥ फिर १ खट्टा खारा चरका। २ खट्टा खारा कडुवा। ३ खट्टा खारा कसेला। ४ खट्टा चरका कसेला। ५ खट्टा चरका कडुवा। ६ खट्टा कडुवा कसेला। इस भांति तीन रसोंके योगमें छः भेद ये ऐसेहैं जिनके आदिमें अम्ल रस मिलताहै ॥ १४ ॥ फिर १ खारा चरका कडुवा। २ खारा चरका कसेला। ३ खारा कडुवा कसेला। इस प्रकार ये तीन भेद ऐसेहैं जिनके आदिमें लवण रस मिलाहै ॥ १५ ॥ फिर १ चरपरा कडुवा कसेला। यह एक ऐसाहै जिसके आदिमें कटुक रस मिलाहै ॥ १६ ॥ इस प्रकारसे तीन रसोंके संयोगके ये बीस भेद कहेहैं ॥ १७ ॥

चार चार रसोंके योगके १५ भेद।

चतुष्कान् वक्ष्यामः। चतुष्करससंयोगान्मधुरो दश गच्छति ॥
चतुरोऽम्लस्तु गच्छेच्च लवणस्त्वेकमेव तु ॥ १८ ॥

अब चार चार रसोंके मिलनेसे जिस प्रकार भेद होतेहैं उन्हें कहतेहैं इन चार रसोंके संयोगोंमें मधुर रस दशोंके आदिमें आताहै और अम्लरस

चारोंके आदिमें आताहै और लवण एक भेदके आदिमें आताहै ऐसे ये १५ भेद होतेहैं ॥ १८ ॥

(वक्तव्य) रसके योगोंमें मधुर जैसे यहां दशके आदिमें आया इत्यादि इनमें आदिमें आनेकी कोई वात नहीं यह केवल गणनाके क्रमके लियेहै नहीं तो आदि, अंत, मध्य कुछ नहीं रसमें रसोंके मेलसे ही भेद होतेहैं ॥

मधुराम्ललवणकटुकः । मधुराम्ललवणतिक्तः । मधुराम्ललवणकषायः । मधुराम्लकटुकतिक्तः । मधुराम्लकटुकषायः । मधुरलवणतिक्तकटुकः । मधुराम्लतिक्तकषायः । मधुरलवणकटुकषायः । मधुरकटुतिक्तकषायः । मधुरलवणतिक्तकषायः । एवमेषां दशानामादौ मधुरः प्रयुज्यते ॥ १९ ॥ अम्ललवणकटुतिक्तः । अम्ललवणकटुकषायः । अम्ललवणतिक्तकषायः । अम्लकटुतिक्तकषायः । एवमेषां चतुर्णामम्लः ॥ २० ॥ लवणकटुतिक्तकषायः । एवमेकस्यादौ लवणः ॥ २१ ॥ एवमेते चतुष्करससंयोगा पंचदश कीर्तिताः ॥ २२ ॥

१ मीठा खट्टा खारा कटुक । २ मीठा खट्टा खारा तिक्त । ३ मीठा खट्टा खारा कसेला । ४ मीठा खट्टा कटु तिक्त । ५ मीठा खट्टा कटु कषाय । ६ मीठा खारा तिक्त कटु । ७ मीठा खट्टा तिक्त कषाय । ८ मीठा खारा चरका कसेला । ९ मीठा चरपरा कडुवा कसेला । १० मीठा नमकीन कडुवा कसेला । इसभांति दशोंके आदिमें मधुररस मिलाहै ॥ १९ ॥ फिर १ खट्टा खारा चरका कडुवा । २ खट्टा खारा चरका कसेला । ३ खट्टा खारा कडुवा कसेला । ४ खट्टा चरका कडुवा कसेला । इसभांति चारोंके आदिमें अम्ल रस है ॥ २० ॥ और १ खारा चरका कडुवा कसेला । इस भांति आदिमें लवण एकहीमें है ॥ २१ ॥ इस प्रकारसे चार रसोंके संयोगसे पंद्रह १५ भेद हुए ॥ २२ ॥

पांच पांच रसोंके योगके ६ भेद ।

पंचकान्वक्ष्यामः । पंचकान्पंच मधुरः एकमम्लस्तु गच्छति ॥ २३ ॥

अब पांच पांच रसोंके मिलनेसे जिस प्रकार भेद होतेहैं उन्हें कहतेहैं ॥ इन पांच रसोंके संयोगमें मधुररस पांचोंके आदिमें आताहै और अम्ल एकहीके आदिमें (इस भांति ६ भेद हैं) ॥ २३ ॥

मधुराम्ललवणकटुतिक्तः । मधुराम्ललवणकटुकषायः । मधुराम्ललवणतिक्तकषायः । मधुराम्लकटुतिक्तकषायः । मधुरलवणकटुतिक्तकषायः । एवमेषां पंचानां पंचरससंयोगानामादौ मधुरः प्रयुज्यते ॥ २४ ॥ अम्ललवणकटुतिक्तकषायः । एवमेकस्यादावम्लः प्रयुज्यते॥२५॥एवमेते षट् पंचसंयोगा व्याख्याताः ॥२६॥

१ मीठा खट्टा खारा चरका कडुवा । २ मीठा खट्टा खारा चरका कसेला । ३ मीठा खट्टा खारा कडुवा कसेला । ४ मीठा खट्टा चरका कडुवा कसेला । ५ मीठा खारा चरका कडुवा कसेला । इस भांति पांच रसोंके योगोमेंसे पांचोंके आदिमें मधुर रस मिला है ॥ २४ ॥ फिर १ खट्टा खारा चरका कडुवा कसेला । इसप्रकार एकके आदिमें अम्लरस मिलाहै ॥ २५ ॥ इस प्रकार पांच पांच रसोंके योगके छः भेद हुए ॥ २६ ॥

षट्कमेकं वक्ष्यामः । एकस्तु षट्कसंयोगो मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषायः । एवमयमेकः षट्कसंयोगः ॥ २७ ॥

छहों रसोंके मेलको भी कहतेहैं-छहोंरसोंके मिलनेसे एक ही भेद होताहै जैसे-मीठा खट्टा खारा चरका कडुवा और कसेला । इसप्रकार यह एकही छः रसोंके संयोगका भेद है ॥ २७ ॥

एकैकश्च षड्रसा भवंति । मधुरोऽम्लो लवणः कटुकस्तिक्तः कषाय इति ॥ २८ ॥ भवति चात्र-

और जुदे जुदे एक एक रस छह ही हैं जैसे-मीठा खट्टा खारा चरपरा कडुवा और कसेला ॥ २८ ॥ इस विषयमें श्लोक है-

एषा त्रिषष्टिर्व्याख्याता रसानां रसचिंतकैः ॥
दोषभेदे त्रिषष्टिस्तु प्रयोक्तव्या विचक्षणैः ॥ २९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतंत्रे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

रसभेदके जाननेवाले वैद्योंने रसोंके ये त्रेसठ भेद वर्णन किये हैं इन्हें बुद्धिमान् दोषभेदोंमें त्रेसठ ही यथायोग्य बरतें (ये ६३ भेद इस भांति होतेहैं १५ दो दो रसके । २० तीन तीन रसके । १५ चार चार रसके । ६ पांच पांच रसके और १ छहों रसका । तथा ६ जुदे जुदे रस । ऐसे ये सब ६३ हुए) ॥ २९ ॥

(वक्तव्य १) रसोंके संयोगमें प्रधानता अप्रधानता न्यूनाधिकता और अंशांशोंको विचार किया जावे तो अनन्त भेद होसकतेहैं जिनकी कदापि गणना नहीं होसकती ।

(वक्तव्य २) इन रसोंके संयोगके साथ डल्लनमिश्रजीने कुछ उदाहरण भी लिखे हैं जैसे कपित्थ मधुराम्ल है । कुत्ते और शृगालका मांस मधुर कटुक है इत्यादि तथा कीरके मांससे युक्त सुरा अम्ल तिक्तकषाय है इत्यादि परंतु मिलेहुए इन स्वादोंके पदार्थ रसोंकी न्यूनाधिकतासे असंख्य हैं उन्हें वैद्य स्वयं जानसकते हैं अथवा किसी अन्यको खिलाकर या आप ही चाखकर जानसकतेहैं और संयोगज वस्तुओंमें संयोग और संस्कारसे जानसकते हैं इनके लिखनेकी विशेष आवश्यकता नहीं इसीसे हमने वे उदाहरण नहीं लिखे क्योंकि वैद्य उन्हें स्वयं जानसकते हैं ॥

इति प० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतन्त्रे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः ६४.

अथातः स्वस्थवृत्तमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम स्वस्थवृत्त (अर्थात् तंदुरस्त मनुष्योंके वर्त्ताव) के अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

स्वस्थके लक्षण ।

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः ॥
प्रसन्नात्मेंद्रियमनाः सुस्थ इत्यभिधीयते ॥ १ ॥

जिसके वातादि दोष समान हों (कोई उल्वण और क्षीण न हो) तथा जठराग्नि भी सम हो (मंदाग्नि, तीक्ष्णाग्नि, विषमाग्नि न हों) जिसके सातों धातु और मल सम हों (कोई धातु अतिबढी या घटी न हो, मल भी बढा या क्षीण न हो) और क्रिया भी समान हो (अर्थात् जागना, सोना, बोलना, चलना, फिरना ये कम या बहुत बढे न हों) और आत्मा (जीवात्मा) मन और इंद्रिय ये प्रसन्न हों (अर्थात् इंद्रियोंकी शक्ति भी यथायोग्य हो) ऐसे मनुष्यको सुस्थ (स्वस्थ अर्थात् निरोगी या तन्दुरुस्त कहते हैं ॥ १ ॥

सूत्रस्थाने[१] समद्दिष्टः[२] सुस्थो[४] भवति[५] यादृशः[३] ॥ तस्य यद्रक्षणं तद्धि चिकित्सायाः प्रयोजनम् ॥ २ ॥ तस्य यद्वृत्तमुक्तं हि रक्षणं हि समासतः ॥ तस्मिन्नर्थाः समासोक्ता विस्तरस्तस्य वक्ष्यते ॥ ३ ॥

सूत्रस्थानके दोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञानीयाध्यायमें जैसा स्वस्थ बताया है उसकी रक्षा रख रोग नहीं होने देना यही चिकित्साशास्त्रका (मुख्यतासे)

श्लो० १) सुखेन नैरोग्येण तिष्ठति इति सुस्थः रोगरहितः । 'सुस्थ' इत्यत्र स्वस्थ इति वा पाठः । तत्र स्वेन स्वभावेन सुखेन वा तिष्ठतीति स्वस्थः नैरोग्यः (इति श्रा० स्तो०)

प्रयोजन है ॥ २ ॥ स्वस्थ मनुष्योंके वर्त्ताव (विहार, आहार आदि) वहां चिकित्सास्थानके अनागतव्याधिप्रतिषेधनीयाध्यायमें) तथा और कई जगह संक्षेपसे कहेगये अब उनको यहांपर और विस्तारसे वर्णन करते हैं ॥ ३ ॥

स्वास्थ्यरक्षाका निर्देश ।

यस्मिन्यस्मिन्नृतौ ये ये दोषाः कुप्यंति देहिनाम् ॥
तेषु तेषु प्रदातव्या रसास्ते ते विजानता ॥ ४ ॥

जिन जिन ऋतुओंमें जो जो दोष मनुष्योंके देहमें कुपित होते हैं (यह बात भी हम पहले सूत्रस्थानके ऋतुचर्याध्यायमें कहचुके हैं) जानकर वैद्यको चाहिये कि उन्हीं उनकी शांति करनेवाले जो रस हैं व उन ऋतुओंमें मनुष्योंके लिये देने चाहिये ॥ ४ ॥

ऋतुभेदसे आहारविहारादिका विस्तारसे वर्णन ।

वर्षाऋतुका वर्त्ताव ।

प्रक्लिन्नत्वाच्छरीराणां वर्षासु खलु देहिनाम् ॥
मंदेऽग्नौ कोपमायांति संहर्षान्मारुतादयः ॥ ५ ॥

वर्षाकी ऋतुमें मनुष्योंके शरीर गीले (नम) रहतेहैं जिससे अग्नि मन्द हो जाती है और संहर्ष (रोमहर्ष हो होकर अथवा नमवायुके कारण वातादिक दोष कोपको प्राप्त होतेहैं) ॥ ५ ॥

तस्मात्क्लेदविशुद्ध्यर्थं दोषसंहरणाय च ॥ कषायतिक्तकटुकै रसैर्युक्तमथाद्रवम् ॥ ६ ॥ नातिस्निग्धं नातिरूक्षमुष्णं दीपनमेव च ॥ देयमन्नं नृपतये यज्जलं चोक्तमादितः ॥ ७ ॥ तप्तावरतमंभो वा पिबेन्मधु समायुतम् ॥ अह्नि मेघानिलाविष्टेऽत्यर्थशीतांबुसं-

---

(श्लो० ४) ते रसास्तेषु तेषु दोषेषु शांतिकराः । (श्लो० ५) प्रक्लिन्नत्वात् अत्यतार्द्रत्वात् । संहर्षात् रोमाचत्वात् । अथवा वायोः । संहृष्यत्यनेन इति संहर्षो वायुः(इति शब्दस्तोमः) मारुतादय वातपित्तकफाः कोपमायाति । ननु वर्षासु संचयरूप पित्तं कुपितमस्ति नेतरौ तत्कथ 'कुप्यति मारुतादय' इत्युक्तम् । प्रावृट्प्रकुपितो वायुर्वर्षास्वपि कुपित एव वर्तते । कफश्च मेघनिःस्यंदादिहेतुभिः असंचितोपि कुप्यति अतो युक्त एषः दोषत्रयकोपः । अथवा अग्निमांद्याद्दोषत्रयकोपः (इति नि० म०) (श्लो० ७) देयमन्न नृपतये इत्यत्र नृपतये इत्युपलक्षणं किंतु मनुष्येभ्यो इत्यर्थः । यज्जलमादितश्चोक्तम् आंतरिक्षं तद्वर्षाया अंते आश्वयुजि पेय वर्षारंभे तु तस्य दूषणयुक्तत्वात्कदापि न पेयमिति भावः। (श्लो० ८) तप्तावरतं क्वथितशीतीकृतम् ।

कुले ॥ ८ ॥ तरुणत्वाद्विदाहं च गच्छंत्योषधयस्तदा ॥ मतिमां-स्तन्निमित्तं च नैव व्यायाममाचरेत् ॥ ९ ॥

तिस लिये क्लेदनताकी शुद्धिके लिये और दोषोंके शांत रखनेके लिये कसेले-कडुवे और चरपरे रसोंसे युक्त अद्रव जो (विशेष पतले नहीं हो ऐसे) पदार्थ (खाने चाहिये) ॥ ६ ॥ जो न बहुत चिकने (तरवतर) और न बहुत रूखे हों ऐसे गरमागरम और अग्नि दीपन करनेवाले भोजनादि राजाको (बडे आदमि-योंको) खानेको दिलावे और जल जैसा पहले उत्तम कहाहै वैसा दिलावे ॥ ॥ ७ ॥ अथवा पानीको औटाकर उसे ठंढाकरके दिलावे या शहद मिलाकर पीवे मेघ (बादल), हवा इनसे व्याप्त और ठंढे पानीसे संयुक्त ऐसे दिनोमें नवीन होनेसे औषधें (शाक, फलादि) विदाहको प्राप्त होतीं (अर्थात् सब पित्त और जलन पैदा करनेवाली होतीहैं इस लिये बुद्धिमान् अत्यन्त परिश्रम इन दिनोंमें नहीं करे) क्योंकि अति व्यायामसे विदाह अधिक बढताहै परन्तु निर्व्यायाम भी नहीं रहे जिससे अग्नि और भी मंद होजातीहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

अत्यंबुपानावश्यायग्राम्यधर्मातपांस्तथा ॥ १० ॥ भूबाष्पपरिहा-रार्थं शयीत च विहायसि ॥ शीते साग्नौ निर्वाते च गुरुप्रावरणे गृहे ॥ ११ ॥ यायान्नागवधूभिश्च प्रशस्तागुरुभूषितः ॥ दिवास्व-प्नमजीर्णं च वर्जयेत्तत्र यत्नतः ॥ १२ ॥

ज्यादे पानी पीना, ओसमें रहना, सोना, मैथुन करना (अतिमैथुन) और धूप इन्हें त्याग देवे ॥ १० ॥ और पृथ्वीकी भाफ (सीलके अवखरे या मेलेरिया) से बचे रहनेके किये अधर सोवे (अर्थात् पृथ्वीपर न सोवे ऊपरकी मंजिलके चौवारेमें पलँगोंपर सोवे और ऐसे स्थानोंमें रहे जो ठंढे हों परन्तु उनमें अग्नि जरूर रहती हो तथा तेज हवा नहीं आतीहो और वहां भी भारी कपडा ओढ-कर सोया करे ॥ ११ ॥ और श्रेष्ठ अगुरु शरीरपर लगाके हस्तिनी स्त्रियोंसे संगम करे और दिनका सोना तथा अजीर्णकारक भोजन इन दिनोंमें अवश्य त्याग दे ॥ १२ ॥

(श्लो० ९) "नैव व्यायाममाचरेत्" इत्यत्र 'नातिव्यायाममाचरेत्' इति पाठातरम् । (श्लो० १०) अवश्यायाः रात्रिनिपातिनः सूक्ष्मजलकणाः (श्लो० ११) विहायसीति—विहायः-शब्देनात्र गृहोपरिभूः अभिप्रेता । अन्ये मचादिकं मन्यंते । शीते साग्नौ अग्नियुते शीतगृहे । गुरुप्रावरणो गुरुवस्त्रावृतः सन् । केचित् गुरुप्रावरणे गृहे दृष्टाच्छादितगृहे इति मन्यते (श्लो० १२) नागवधूभिः हस्तिनीस्त्रीभिः (इति नि० सं०)

शरदृतुका बरताव।

सेव्याः शरदि यत्नेन कषायस्वादुतिक्तकाः ॥ क्षीरेक्षुविकृतक्षौद्रशालिमुद्गादिजांगलाः ॥ १३ ॥ सलिलं च प्रसन्नत्वात्सर्वमेव तदा हितम् ॥ सरःस्वाप्लवनं चत्र कमलोत्पलशालिषु ॥ प्रदोषे शशिनः पादाश्चंदनं चानुवासनम् ॥ १४ ॥ तिक्तस्य सर्पिषः पानैरसृक्स्रावैश्च युक्तितः॥ वर्षासूपचितं पित्तं हरेच्चापि विरेचनैः १५

शरद् ऋतुमें यत्नसे कसेले, मीठे और कडुवे रसोंका सेवन करना चाहिये तथा दूध (खीर), ईखके विकार (खांड, मिश्री), शहद, चावल, मूंग आदि धान्य और जंगली जीवोंका मांस सेवन करे ॥ १३ ॥ और शरद्में सब जल निर्मल होजातेहैं इससे उस समय उन सबका पान करना हित है और जिनमें कमल खिले हों ऐसे तडागोंमें तैरना अच्छा होताहै और सामको चन्द्रमाकी किरण (चांदनी) सेवन करना और चन्दन लगाना श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥ और वर्षाके संचित हुए पित्तको तिक्त घृत पीकर अथवा फस्त खुलाकर (शिरामोक्षसे) और विरेचनसे (जुलाब लेकर) निकाल देना चाहिये ॥ १५ ॥

नो पेयं तीक्ष्णमम्लोष्णं क्षारं स्वप्नं दिवातपम् ॥ रात्रिजागरणं चैव मैथुनं चापि वर्जयेत् ॥ १६ ॥ स्वादुशीतजलं मद्यं शुचि स्फटिकनिर्मलम् ॥ शरच्चंद्रांशुनिर्धौतमगस्त्योदयनिर्विषम्॥१७॥ प्रसन्नत्वाच्च सलिलं सर्वमेव तदा हितम् ॥ सचंदनं वा कर्पूरं वासश्चामलिनं लघु ॥ १८ ॥ भजेच्च शारदं माल्यं सीधोः पानं च युक्तितः ॥ पित्तप्रशमनं यच्च तच्च सर्वं समाचरेत् ॥ १९ ॥

तीक्ष्ण, खट्टा, गरम क्षार ये नहीं पीने चाहिये, दिनमें सोना और रातको जागना और मैथुन इन्हें भी त्याग देना चाहिये ॥ १६ ॥ मीठा, ठंढा पानी और निर्मल मद्य पीना उचित है तथा शरद्के चन्द्रमाकी किरणोंसे धोया हुआ और अगस्त्य मुनि (तारे) के उदयसे निर्विष हुआ सुन्दर स्फटिक जैसा निर्मल जल सभी होजाताहै ॥ १७ ॥ जब सभी जलमात्र स्वच्छ होजाताहै तो सभी पीनेमें इन दिनोंमें अच्छा है और चन्दन कपूरसे सुगंधित निर्मल और हलके वस्त्र पहरने योग्य हैं ॥ १८ ॥ और शरद्ऋतुके पुष्प रखना तथा युक्तिसे सीधु नामक

(श्लो० १४) आप्लवनं तरणम् । शशिनः पादा चंद्रस्य किरणाः प्रदोषे सेव्याः न तु सर्वरात्रौ

(श्लो० १८) "सचदनं वा कर्पूरम्" इत्यत्र 'सचंदनं सकर्पूरम्' इति वा पाठः ।

मद्य पीना तथा और और जो पित्तशामक आहार विहार, हैं वे सब इस ऋतुमें करने उचित हैं ॥ १९ ॥

हेमंत ऋतुका बरताव ।

हेमंतः शीतलो रूक्षो मंदसूर्योनिलाकुलः ॥ ततस्तु शीतमासाद्य वायुस्तत्र प्रकुप्यति ॥ २० ॥ कोष्ठस्थः शीतसंस्पर्शादंतः पिंडीकृतो ऽनिलः ॥ रसमुच्छोषयत्याशु तस्मात्स्निग्धं तदा हितम् ॥ २१ ॥ हेमंते लवणक्षारतिक्ताम्लकटुकोत्कटम् ॥ ससर्पिस्तैलमहिमम- शनं हितमुच्यते ॥ २२ ॥ तीक्ष्णान्यपि च पानानि पिबेदगुरु- भूषितः ॥ तैलाभ्यक्तः सुखोष्णे च वारिकोष्ठेऽवगाहयेत् ॥ २३ ॥ सांगारयामे महति कौशेयास्तरणास्तृते ॥ शयीत शयने वापि वृतो गर्भगृहोदरे ॥ २४ ॥

हेमंत (जाडेकी) ऋतु शीतल और रूक्ष होताहै इसमें सूर्यकी ताप कम होतीहै और वायु अधिक चलाकरताहै इस लिये शीतको प्राप्त होकर इस ऋतुमें वायु कुपित होजाया करताहै ॥ २० ॥ और कोष्ठस्थ होकर शीतके स्पर्शसे भीतर वायु पिंडीसा बँध जाताहै और शीघ्रही रसको शोषण कर लेताहै इससे इस ऋतुमें स्निग्ध भोजन करना हित है (कई "अनिल" के स्थानमें "अनल" पाठ मानतेहैं और उसका यह अर्थ करतेहैं कि कोष्ठस्थ अग्नि शीतस्पर्शसे पिंडीभूत होकर रसको शीघ्र शोषताहै । हेमंतमें लवण, क्षार, कडुवा, खट्टा, चरपरा, तेज रस खाना और घृत तैलसे खूब स्निग्ध करके गरमागरम भोजन करना चाहिये ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ और तीक्ष्णपान (मद्यादि) पीवे और शरीरपर अगर (या अगरका अतर) लगावे, तैलका मर्दन करे और निवाये पानीसे भरे हुए होजों या बाल- टियोंमें बैठ २ कर स्नान करे ॥ २३ ॥ और ऐसे मकानमें सोवे जहां अंगारोंसे भरी अंगीठी (पहियोंदार अँगीठी हो) और स्थान भी विशाल हो जिसके बाहर बरामदे दालान इत्यादि और भी स्थान हों (अर्थात् भीतरके कोठोंमें) पलँगपर रेशमी (या सूती रुई भरे) गदेले बिछाकर रजाई ओढके सोवे ॥ २४ ॥

स्त्रीः श्लिष्टाऽगुरुधूपाढ्याः पीनोरुजघनस्तनीः ॥ प्रकामं च निषे- वेत मैथुनं तर्पितो नृपः ॥ २५ ॥ मधुरं तिक्तकटुकमम्लं लवण-

---

(श्लो० २४) सांगारयाने अगारपूर्णशकटिकासहिते । वृतः इति आच्छादितांगः (इति नि० सं०)

(श्लो० २५) प्रकाम यथेच्छ मैथुनं निषेवेत । तर्पित इति—वाजीकरणादिभोज्यैस्तर्पितः ।

मेव च ॥ अन्नपानं तिलान्माषाञ्छाकानि च दधीनि च ॥ २६ ॥ तथेक्षुविकृतीः शालीन्सुगंधांश्च नवानपि ॥ प्रसह्यानूपमांसानि क्रव्यादबिलशायिनाम् ॥ २७ ॥ औदकानां प्लवानां च पादिनां चोपजायते ॥ मद्यानि च प्रसन्नानि यच्च किंचिद्बलप्रदम् ॥ २८ ॥ कामतस्तं निषेवेत पुष्टिमिच्छन्हिमागमे ॥ एष एव विधिः कार्यः शिशिरे समुदाहृतः ॥ २९ ॥

पुष्ट साथल, नितंब और स्तनोंवाली सुन्दर स्त्रियोंको अगुरुधूप आदिसे सुगंधित करके राजा उनका आलिंगन करे और इच्छापूर्वक वाजीकरणसे तृप्त होके खूब मैथुन करे ॥ २५ ॥ और इस हेमन्तमें मनुष्य मीठे, कडुवे, चरपरे, खट्टे और सलोने अन्न (भोजन) खावे और पान करे तथा तिल, उडद, शाक और दही इन्हे भी खावे ॥ २६ ॥ तथा ईखके विकार (गुड), शाली, चावल जो सुगंधित हों और नये भी हों तथा 'प्रसह्य' अर्थात् हठसे अथवा 'प्रसह' पाठ मानकर प्रसहसंज्ञक कुरर, श्येन आदि पक्षियोंका मांस और जलकिनारेके जीवोंका मांस और मांसाशी तथा बिलवासियोंका मांस भोजन करे ॥ २७ ॥ तथा जलके पक्षियोंका और पैरोंवाले पक्षियोंका मांस भी खावे और निर्मल मद्य पीवे और जो जो बलदायक वस्तु हैं उनका सेवन इच्छापूर्वक करे । पुष्टि चाहनेवाले मनुष्य हेमंत ऋतु (सरदी) में पूर्वोक्त सब विधि करें और यही विधि शिशिर ऋतुमें भी करनी श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥ २९ ॥

वसंत ऋतुका बरताव ।

हेमंते निचितः श्लेष्मा शैत्याच्छीतशरीरिणाम् ॥ औष्ण्याद्वसंते कुपितः कुरुते च गदान्बहून् ॥ ३० ॥ ततोम्लमधुरस्निग्धलवणानि गुरूणि च ॥ वर्जयेद्गमनादीनि कर्माण्यपि च कारयेत् ॥ ३१ ॥ षष्टिकान्नं यवाञ्छीतान्मुद्गान्नीवारकोद्रवान् ॥ लावादिविष्किररसैर्दध्याद्यूषैश्च युक्तितः ॥ ३२ ॥ पटोलनिंबवार्ताकुतिक्तकैश्च हिमात्यये ॥ सेवेन्मध्वासवारिष्टान्सीधुमाध्वीकमासवान् ॥ ३३ ॥ व्यायाममंजनं धूमं तीक्ष्णं च कवलग्रहम् ॥ सुखांबुना च सर्वार्थान्सेवेत कुसुमागमे ॥ ३४ ॥

(श्लो० २७) प्रसह्य हठादेव अथवा "प्रसह्य" इत्यत्र 'प्रसह' इति पाठान्तरत्वात्प्रसहसंज्ञकाना श्येनकुररादिपक्षिणां मांसं ग्राह्यम् ।

हेमन्तमें शीत शरीरवालोंके शीतके कारण संचित हुआ कफ वसंतमें गरमीसे (गरमी पाकर) कुपित होता है और बहुत रोग पैदा करता है ॥ ३० ॥ इस लिये खट्टे, मीठे, चिकने, नमकीन, भारी पदार्थ त्याग देने चाहिये और वमनादिक (वमन, विरेचनादि) कर्म भी करने उचित हैं ॥ ३१ ॥ और सांठी, चावल, जौ, शीतल अन्न, मूँग, नीवार, कोदों इत्यादिको लवा आदि विष्किर जीवोंके मांसरससे या यूषोंसे युक्तिपूर्वक देवे ॥ ३२ ॥ परवल, नींब, वृंताक और तिक्त पदार्थोंको वसंतमें सेवन करे और मधुके आसव अरिष्टों (मद्यों) को तथा सीधु और माध्वीक मदिराओंको सेवन करे ॥ ३३ ॥ और व्यायाम (डंड कसरत तथा परिश्रम), अंजन, धूमपान और तीक्ष्ण कवलग्रह और निवाये जलसे सब कार्य करे ये सब वसंतऋतुमें सेवन करने योग्य हैं ॥ ३४ ॥

तीक्ष्णरूक्षकटुक्षारकषायं कोष्णमद्रवम् ॥ यवमुद्गमधुप्रायं वसंते भोजनं हितम् ॥ ३५ ॥ व्यायामोत्र नियुद्धाध्वशिलानिर्वातजो हितः ॥ उत्सादनं तथा स्नानं वनिताः काननानि च ॥ ३६ ॥ सेवेत निर्हरेच्चापि हेमंतोपचितं कफम् ॥ शिरोविरेकवमननिरूहकवलादिभिः ॥ वर्जयेन्मधुरस्निग्धदिवास्वप्नगुरुद्रवान् ॥ ३७ ॥

वसंतमें तीक्ष्ण (चरपरे), रूखे, कटुक, खारे, कसेले और निवाये जो विशेष पतले न हों, जिनमें जौ, मूँग, शहद इत्यादि प्रायः मिले हों या इनसे बने हों ऐसे भोजन करने हितकारक होते हैं ॥ ३५ ॥ और इस ऋतुमें व्यायाम, नियुद्ध (कुस्ती), मार्ग चलना, पत्थर (या गोले) फेंकना इत्यादिकी कसरत करे और उबटन लगाना, स्नान करना, स्त्रियोंका संग और वनविहार इन सबका सेवन करे ॥ ३६ ॥ और हेमंतमें संचित हुआ कफ शिरोविरेचन (नस्यों) से, वमन, (विरेचन), निरूहण और कवलधारण आदिसे दूर करे और मीठे, चिकने पदार्थोंको, भारी (गरिष्ठ) और पतले भोजनोंको तथा दिनके सोनेको त्याग देवे ॥ ३७॥

ग्रीष्म ऋतुका बरताव।

व्यायाममुष्ण ायासं मैथुनं चातिशोषि च ॥ रसांश्चाग्निगुणोद्रिक्तान्निदाघे परिवर्जयेत् ॥ ३८॥ सरांसि सरितो वापीर्वनानि रुचिराणि च ॥ चंदनानि परार्ध्यानि स्रजः सकमलोत्पलाः ॥ ३९ ॥

(श्लो० ३६) उत्सादनादीनि सेवेत इत्यन्वयः (श्लो० ३९) परार्ध्यानि श्रेष्ठानि परार्ध्यं श्रेष्ठम् (इति श० स्तो०) अन्ये परार्ध्यानि सुगंधियुतानि चाऽऽहुः।

तालवृंतानिलाहारांस्तथा शीतगृहाणि च ॥ घर्मकाले निषेवेत वासांसि सुलघूनि च ॥ ४० ॥

निदाघ अर्थात् ग्रीष्मऋतु (गरमी) में व्यायाम (डंड कसरत), उष्ण पदार्थ (या गरम स्थान), परिश्रम (मेहनत), मैथुन और अति शोषण पदार्थ (जो खुश्की करे) तथा अग्नि गुणवाले अर्थात् उष्ण प्रकृतिवाले रस (चरपरे, खारे. खट्टे) त्यागने चाहिये ॥ ३८ ॥ और तालाब, नदी, बावडी अथवा रुचिर वन सेवन करने, उत्तमोत्तम चन्दन लगाना, कमल, कमोदनी आदिकी माला पहरना॥ ॥ ३९ ॥ ताडके पंखोंकी हवा, हार और ठंढे मकान और उजले, हलके, बारीक कपडे ये सब गरमीमें सेवन करने चाहिये ॥ ४० ॥

शर्कराखंडदिग्धानि सुगंधीनि हिमानि च ॥ पानकानि च सेवेत मंथांश्चापि सशर्करान् ॥ ४१ ॥ भोजनं च हितं शीतं सघृतं मधुरद्रवम् ॥ शृतेन पयसा रात्रौ शर्करामधुरेण च ॥ ४२ ॥ प्रत्यग्रकुसुमाकीर्णे शयने हर्म्यसंस्थिते ॥ शयीत चंदनार्द्रांगः स्पृश्यमानोऽनिलैः सुखैः ॥ ४३ ॥

खांड (या ओले) डालकर और केनक, केवडा, इलायची आदि सुगंधित मिलाके पानक (पीनेका सरबत बनाकर पिया करे या मन्थोंमें खांड मिलाके पीवे) ॥ ४१ ॥ और घृत सहित मीठे, पतले, ठंढे भोजन और रातको औटाया हुआ दूध ठंढाकर खांड मिलाके पीवे ॥ ४२ ॥ और नये २ पुष्पोंसहित शय्या (पलंग) मकानोंके ऊपर बिछाकर शरीरपर चन्दन लगाकर और सुहाती हुई पवनका स्पर्श करते हुए शयन करे ॥ ४३ ॥

प्रावृट् ऋतुका बरताव ।

तापात्यये हिता नित्यं रसा ये गुरवस्त्रयः ॥ पयोमांसरसाः कोष्णास्तैलानि च घृतानि च ॥ बृंहणं चापि यत्किंचिदभिष्यंदि तथैव च ॥ ४४ ॥ निदाघोपचितं चैवं प्रकुप्यंतं समीरणम् ॥ निहन्यादनिलघ्नेन विधिना विधिकोविदः ॥ ४५ ॥ नदीजलं रूक्षमुष्णमुदमंथं तथाऽतपम् ॥ व्यायामं च दिवास्वप्नं व्यवायं चात्र वर्जयेत् ॥ ४६ ॥

(श्लो० ४०) तालवृंतानिलाहारान् । तालपत्रव्यजनपवनं हाराश्च ।

ग्रीष्मके पीछे (प्रावृट् ऋतुमें) तीन जो भारी रस हैं (मधुर, अम्ल और लवण) वे नित्य सेवन करने हित हैं तथा निवाया दूध और मांसरस तथा तेल और घृत ये भी हित हैं इनके सिवाय जो वस्तु बृंहण और अभिष्यंदी हैं वे भी श्रेष्ठ हैं ॥ ४४ ॥ तथा ग्रीष्मके संचित हुए और प्रकुपित होनेवाले वायुको वायु नाशक द्रव्योंसे विधिमें चतुर वैद्य शांत करे ॥ ४५ ॥ और नदीका पानी, रूक्ष-तथा गरम वस्तु, उदमंथ (छांछ), धूप, परिश्रम, दिनका सोना और मैथुन करना ये सब इस ऋतुमें त्याग देवे ॥ ४६ ॥

यवषष्टिकगोधूमाञ्छालींश्चाप्यनवांस्तथा ॥ हर्म्यमध्ये निवाते च भजेच्छय्यां मृदूत्तराम् ॥ ४७ ॥ सविषप्राणिविण्मूत्रलालानिष्ठीवनादिभिः ॥ समाप्लुतं तदा तोयमांतरिक्षं विषोपमम् ॥ ४८ ॥ वायुना विषदुष्टेन प्रावृष्येण विदूषितम् ॥ तद्धि सर्वोपयोगेषु तस्मिन्काले विवर्जयेत् ॥ ४९ ॥ निरूहैर्वस्तिभिश्चान्यैस्तथाऽन्यैर्मारुतापहैः ॥ कुपितं शमयेद्वायुं वार्षिकं वाऽचरेद्विधिम् ॥ ५० ॥

इस प्रावृट् ऋतुमें जौ, साठी, चावल, गेहूँ और पुराने शाली चावल खाने चाहिये और जिसमें तीव्र वायु न हो ऐसे स्थानमें कोमल शय्यापर मुलायम बिछोना बिछाकर सोवे ॥ ४७ ॥ और इस ऋतुमें वर्षाका जल अथवा वर्षणानन्तर नदी आदिमें प्राप्तहुआ पानी कदापि नहीं पीना चाहिये क्योंकि वह विषयुक्त जीवोंके विष्ठा, मूत्र, लार, थूँक आदिसे मिश्रित होताहै इस लिये उसे विषके समान समझिये ॥ ४८ ॥ और विषदूषित प्रावृट्की वायुसे भी वह जल दूषित होताहै इस लिये इस समयमें उसे सब कामसे त्यागना चाहिये (उस जलको पीना भी उचित नहीं, उसमें न्हाना भी योग्य नहीं इत्यादि) ॥ ४९ ॥ और निरूहण वस्तियोंसे अथवा अन्य वस्तियोंसे तथा और वायुनाशक यत्नोंसे इस समय कुपित हुए वायुको शांत करना चाहिये अथवा वर्षामें जो विधि कहीहैं वे भी जो उचित हों सो करनी चाहिये ॥ ५० ॥

ऋतावृतौ य एतेन विधिना वर्तते नरः ॥
घोरानृतुकृतान्रोगान्नाप्नोति स कदाचन ॥ ५१ ॥

(श्लो० ४८) आंतरिक्ष वर्षाभवं तत्त मेघो वर्षति । अथवा वर्षणानंतरं नद्यादिषु समायातं सर्वमेव त्याज्यम् ।

जो मनुष्य ऋतु ऋतुमें पूर्व कही हुई विधिके अनुसार आहार, विहारादि करते हैं उनके ऋतुसम्बन्धी भयंकर रोग कदापि नहीं होते हैं ॥ ५१ ॥

भोजनके बारह भेद ।

अत ऊर्द्ध्वं द्वादशाशनप्रविभागान्वक्ष्यामः । तत्र शीतोष्णस्निग्धरूक्षद्रवशुष्कैककालिकद्विकालिकौषधयुक्तमात्राहीनदोषप्रशमनवृत्त्यर्थाः ॥ ५२ ॥

यहांसे अगाडी अब हम भोजनके बारह भेदोंका वर्णन करतेहैं । यहांपर वे बारह भेद ये हैं कि शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, द्रव, शुष्क, एककाल, द्विकाल, औषधयुक्त, मात्राहीन, दोषशमन और वृत्त्यर्थ (देहधारणार्थ) ॥ ५२ ॥

शीत और उष्ण अन्नका उपयोग ।

तृष्णोष्णमद्दाहार्तान्रक्तपित्तविषातुरान् ॥ मूर्च्छार्त्तान्स्त्रीषु च क्षीणाञ्छीतैरन्नैरुपाचरेत् ॥ ५३ ॥ कफवातामयाविष्टान्विरिक्तान्स्नेहपायिनः ॥ प्रक्लिन्नदेहांश्च नरानुष्णैरन्नैरुपाचरेत् ॥ ५४ ॥

जो मनुष्य तृषा, गरमी, मद, दाह इनसे पीडित हों, रक्तपित्तके रोगी अथवा विषसे पीडित हों, जिन्हे मूर्च्छा आया करती हो, जो स्त्रीसंगसे क्षीण होगये हों उन मनुष्योंको शीतल भोजन (खान पान) देना उचित होताहै ॥ ५३ ॥ और जो कफवायुके रोगी हों या विरेचन लिये हों, स्नेहपान किये हों, जिनके देह क्लेदित (गीलीसे) रहते हों उन मनुष्योंको गरम खान पान देना चाहिये ॥ ५४ ॥

स्निग्ध और रूक्षका उपयोग ।

वातिकान्रूक्षदेहांश्च व्यायामोपहतांस्तथा ॥ व्यायामिनश्चापि नरान्स्निग्धैरन्नैरुपाचरेत् ॥ ५५ ॥ मेदसाभिपरीतांस्तु स्थूलान्मेहातुरानपि ॥ कफाभिपन्नदेहांश्च रूक्षैरन्नैरुपाचरेत् ॥ ५६ ॥

वातप्रधान (वातप्रकृति) तथा वायुके रोगी और रूक्ष देहवाले तथा जो परिश्रमसे थके हों या परिश्रम करते हों उन्हें स्निग्ध खान पान देवे ("व्यायामोपहत" के स्थानमें कई 'व्यवायोपहत' ऐसा पाठ मानतेहैं और मैथुनसे क्षीण ऐसा अर्थ करते हैं) ॥ ५५ ॥ और जो मेदसे व्याप्त हों (स्थूल हों), प्रमेहसे पीडित हों, कफसे व्याप्त देहवाले हों उन्हें रूक्ष भोजन देवे ॥ ५६ ॥

(श्लो० ५५) "व्यायामोपहतान्" इत्यत्र "व्यवायोपहतान्' इति पाठान्तरम् ।

शुष्कदेहान्पिपासार्तान्दुर्बलानपि च द्रवैः ॥ प्रक्लिन्नकायान्व्रणिनः शुष्कैर्मेहितमेव च ॥ ५७ ॥ एककालं भवेद्देयो दुर्बलाग्निविवृद्धये ॥ समाग्नये समाहारो देयः कालमथोभयम् ॥ ५८ ॥ औषधद्वेषिणे देयस्तथौषधसमायुतः ॥ मंदाग्नये रोगिणे च मात्राहीनः प्रशस्यते ॥ ५९ ॥ यथार्थदत्तश्चाहारो दोषप्रशमनः स्मृतः ॥६०॥ अतः परं तु स्वस्थानां वृत्त्यर्थं सर्वमेव च ॥ द्वादशान्नप्रविचारानेतानेव प्रचक्षते ॥ ६१ ॥

सूखी देहवाले, तृषार्त्त और दुर्बलोंको द्रव (पतले) (अन्न भोजन) देवे और जिनकी देह गीली रहती हो, जिनके व्रण हों या प्रमेह हो उन्हें शुष्क भोजन प्रायः देने चाहिये ॥ ५७ ॥ और दुर्बलको अग्नि बढानेके लिये एकवार भोजन देवे ॥ और जिनकी जठराग्नि समान (ठीक) हो उन्हें दोनों वार सम आहार (न बहुत पतला न सूखा, न बहुत गरम न शीत) देवे ॥ ५८ ॥ जो औषधके द्वेषी हों उन्हें भोजनमें औषध मिलाकर देवे और जो मन्दाग्निवाले तथा रोगी हों उन्हें मात्राहीन (थोडा) भोजन देवे ॥ ५९॥ और जो दोष उत्कर्ष हो उसकी शांतिकारक यथार्थ दिया भोजन दोषशमन कहलाताहै ॥ ६० ॥ और इसके अनन्तर स्वस्थोंके लिये वृत्तिके तौरपर (क्षुधानिवृत्तिके लिये) इन्हीं बारह प्रकारके ही भोजनोंमेंसे उपयुक्त करे ॥ ६१ ॥

औषध देनेके दश समय ।

अत ऊर्द्ध्वं दशौषधकालान्वक्ष्यामः ।

तत्र निर्भक्तं प्राग्भक्तमधोभक्तं मध्येभक्तमंतराभक्तं सभक्तं सामुद्गं मुहुर्मुहुर्ग्रासं ग्रासांतरं चेति दशौषधकालाः ॥ ६२ ॥

यहांसे अगाडी अब हम औषधके दश कालोंका वर्णन करते हैं जैसे निर्भक्त, प्राग्भक्त, अधोभक्त, मध्येभक्त, अन्तराभक्त, सभक्त, सामुद्ग, मुहुर्मुहु, ग्रास, ग्रासान्तर ॥ ६२ ॥

निर्भक्त।

तत्र निर्भक्तं केवलमेवौषधमुपयुज्यते ॥ ६३ ॥ वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं हन्यात्तथाऽऽमयमसंशयमाशु चैव ॥ तद्बालवृद्धयुवतीमृदवोऽथ पीत्वा ग्लानिं परां समुपयांति बलक्षयं च ॥ ६४ ॥

(श्लो० ५७) अत्र उपाचरेदिति पूर्वोक्तेनान्वयः ।

इनमेंसे निर्भक्त उसे कहते हैं जो विना अन्नके केवल औषधकाही उपयोग किया जावे ॥ ६३ ॥ यह विना अन्नके साथके केवल औषध अधिक पराक्रम-वाली होती है और रोगको शीघ्रही निःसंदेह नाश करती है परंतु इसे पीनेसे बालक, बूढे, स्त्री, कोमल स्वभावके पुरुष (अमीर) ये ग्लानिको प्राप्त होते हैं (नफरत आजाती है) और बलका भी इससे क्षय होता है (इसका समय प्रभातहीका होता है) ॥ ६४ ॥

प्राग्भक्त ।

प्राग्भक्तं नाम यत्तु प्राग्भक्तस्योपयुज्यते ॥ ६५ ॥ शीघ्रं विपाक-मुपयाति बलं न हिंस्यादन्नावृतं न च मुहुर्वदनान्निरेति ॥ प्राग्भ-क्तसेवितमथो बलमादधाति देयाच्च वृद्धशिशुभीरुवरांगनाभ्यः ॥ ६६ ॥

प्राग्भक्त उसे कहते हैं जो भोजनके पहले दीजावे ॥ ६५ ॥ यह भोजनके पहले दीहुई औषध शीघ्रही पचजाती है और बलको नाश नहीं करती और भोजनसे दबजानेके कारण वारवार मुँहसे नहीं निकलती और यह भोजनसे पहलेकी औषध बल देती है यह बालक, बूढे, डरपोक और स्त्रियोंको देनी चाहिये ॥ ६६ ॥

अधोभक्त ।

अधोभक्तं नाम यद्भक्तांते पीयते ॥ ६७ ॥ पीतं यदन्नमुपयुज्य तदूर्ध्वकाये हन्याद्गदान्बहुविधांश्च बलं दधाति ॥ ६८ ॥

अधोभक्त उसे कहते हैं जो भोजन खाये पीछे पिई या खाई जावे ॥ ६७ ॥ जो भोजन करके पीछे औषध पिई या खाई जाती है वह देहके ऊर्द्धभागके अनेक प्रकारके रोग दूर करती है और बल देती है ॥ ६८ ॥

मध्येभक्त ।

मध्येभक्तं नाम यन्मध्ये भक्तस्य पीयते ॥ ६९ ॥ मध्ये तु पीत-मुपहंत्यविसारिभावाद्ये मध्यदेहमभिभूय भवंति रोगाः ॥ ७० ॥

मध्येभक्त उसे कहते हैं जो भोजनके बीचमें पिई या खाई जावे ॥ ६९ ॥ भोजनके बीचमें उपयोग की हुई औषध अति प्रसरण होनेसे रसमें मिलकर शरीरमें फैलनेसे मध्यदेह (धड) में होनेवाले रोगोंको दूर करती है ॥ ७० ॥

(श्लो० ६७ । ६८) अत्र पीयते पीतं च निदर्शनमात्रम् । तेन पीतम् अशितं लीढम् इत्यादि सर्वप्रकारेणोपयुक्तं गृह्यते । यद्भोजनांते उपयुज्यते तदधोभक्तम् । अधो भक्तं यस्मादित्यर्थः ।

अंतराभक्त।

अंतराभक्तं नाम यदंतरा पीयते पूर्वापरयोर्भक्तयोः ॥ ७१ ॥ हृद्यं मनोबलकरं त्वतिदीपनीयं पथ्यं च संभवति चांतरभक्तमेतत् ॥७२॥

अंतराभक्त उसे कहते हैं जो दोनों समयके भोजनोंके बीचमें पिई या खाई जावे ॥ ७१ ॥ यह अंतराभक्त हृदयको हित है, मन (दिल) को ताकत देतीहै और अत्यंत दीपन होतीहै और पथ्य है ॥ ७२ ॥

सभक्त।

सभक्तं नामौषधेषु यत्साध्यते भक्तम् ॥ ७३ ॥ पथ्यं सभक्तमबलाबलयोर्हि नित्यं तद्द्वेषिणामपि तथा शिशुवृद्धयोश्च ॥ ७४ ॥

सभक्त उसे कहते हैं जिससे भोजन बनाया जावे (भोजनके संग पकाई जावे या उसके काथादिमें भोजन बनावे ॥ ७३ ॥ यह सभक्त पथ्य है और स्त्रियोंको, निर्बलोंको, औषधके द्वेषियोंको, बालकोंको, वृद्धोंको सदा देनी चाहिये ॥ ७४ ॥

सामुद्ग।

सामुद्गं नाम यद्भक्तस्यादावंते च पीयते ॥ ७५ ॥ दोषे द्विधा प्रविसृते तु समुद्गसंज्ञमाद्यंतयोर्दशनस्य निषेव्यते तु ॥ ७६ ॥

सामुद्ग उसे कहते हैं जो भोजनके पहले और पीछे पिई खाई जावे ॥ ७५ ॥ यह भोजनके आदि अंतमें उपयोग की हुई सामुद्गसंज्ञक औषध दोनों तरफ (ऊपर नीचेको) प्रवृत्त हुए दोषोंको शांत करनेमें श्रेष्ठ है ॥ ७६ ॥

मुहुर्मुहु।

मुहुर्मुहुर्नाम सभक्तमभक्तं वा यदौषधं मुहुर्मुहुरुपयुज्यते ॥७७॥ श्वासे मुहुर्मुहुरति प्रसृते च कासे हिक्कावमीषु च वदंत्युपयोज्यमेतत् ॥ ७८ ॥

मुहुर्मुहु उसे कहते हैं जो भोजन खाये विना या खाकर वारवार उपयोग की जावे ॥ ७७ ॥ यह श्वास रोगमें, बढी हुई खांसीमें हुचकीमें, वमनमें उपयोग करना चाहिये ॥ ७८ ॥

ग्रास और ग्रासान्तर।

ग्रासं ग्रासांतरं नाम यत्पिंडं व्यामिश्रम् ॥ ७९ ॥ ग्रासांतरेषु

(वाक्य) ७९ ग्रासमाह—यत्पिंडं ग्रासं व्यामिश्रमिति—कवलं व्यामिश्रमित्यर्थः । ग्रासांतरमाह—ग्रासांतरं तु यत् ग्रासांतरेषु कवलांतरेषु इत्यर्थः (इति डल्हनः)

वितरेद्वमनीयधूमांश्चश्वासादिषु प्रथितदृष्टगुणांश्च लेहान् ॥ ८० ॥
एवमेते दशौषधकालाः ॥ ८१ ॥

ग्रास और ग्रासांतर उन्हें कहते हैं जो ग्रासकी भांति मुँहमें रक्खें तथा ग्रासमें मिलाकर खावे (इन्हें मुखमें कवलसा रखना ग्रास समझिये और ग्रासमें मिला मिलाकर या ग्रासके संग उपयोग करनेको ग्रासांतर समझिये) ॥ ॥ ७९ ॥ यह वमनीय धूम अथवा श्वासादिकोंमें परीक्षा किये लेह इस भांति उपयोग किये जाते हैं (या जैसे तृषामें मुँहमें द्रव्य रक्खे जाते हैं) ॥ ८० ॥ इस प्रकारसे ये दश औषधके समय वर्णन किये गये हैं ॥ ८१ ॥

(वक्तव्य) ग्रास ग्रासांतरको एक मानों तो ऊपर लिखे ९ भेद होते हैं इसीसे यह दशवां भेद ग्रास और ग्रासांतरके जुदा जुदा करनेसे होताहै और ठीक भी है कवल धारण करना ग्रासही है और ग्रास ग्रासमें औषध लेना ग्रासांतर है सो भेद प्रत्यक्ष ही है डल्हनमिश्रजीने भी यही भेद करके दश पूरे कियेहैं ॥

विसृष्टे विण्मूत्रे विशदकरणे देहे च सुलघौ विशुद्धे चोद्गारे हृदि सुविमले वाते च सरति ॥ तथाऽन्नश्रद्धायां क्षुदुपगमने कुक्षौ च शिथिले प्रदेयस्त्वाहारो भवति भिषजां कालः स तु मतः ॥८२॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

जब दस्त और पेशाब खुलकर साफ आचुकें, इंद्रियें निर्मल हों, शरीर हलका हो, शुद्ध डकारें आवें, हृदय भी हलका और शुद्ध हो, अधोवायु ठीक सरता हो (बन्द न हो), भूँख लगी हुई हो, अन्नमें श्रद्धा (रुचि हो, कुक्षि ढीली पड़गई हो वैद्योंने ऐसे समयमें आहार (भोजन) देना ठीक कहाहै और इसे ही भोजनका समय समझिये ॥ ८२ ॥

(वक्तव्य) कई इस आहारके समयको दशवां काल मानतेहैं वे कहतेहैं कि प्राग्भक्त, मध्येभक्त, सभक्त, सामुद्गादि सब भोजनकेही आश्रय हैं इससे मुख्य भोजनका समय भी तो विचारना और ग्रहण करना चाहिये ।

इति प०मुरलीधरवि० सुश्रुतस० भा०टी० उत्तरतन्त्रे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पंचषष्टितमोऽध्यायः ६५.

अथातस्तंत्रयुक्तिनामाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम तन्त्रयुक्ति (चिकित्साशास्त्रकी प्रयोजनीय युक्तियोंके विषय) के अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ।

द्वात्रिंशत्तंत्रयुक्तयो भवंति । तद्यथा अधिकरणं योगः पदार्थो हेत्वर्थं उद्देशो निर्देश उपदेशोऽपदेशः प्रदेशोऽतिदेशोऽपवर्गो वाक्यशेषोऽर्थापत्तिर्विपर्ययः प्रसंग एकांतोऽनेकांतः पूर्वपक्षो निर्णयोऽनुमतं विधानमनागतावेक्षणमतिक्रांतावेक्षणं संशयो व्याख्यानं स्वसंज्ञा निर्वचनं निदर्शनं नियोगो विकल्पः समुच्चय ऊह्यमिति ॥ १ ॥

तंत्रकी युक्तियां बत्तीस हैं जैसे–१ अधिकरण, २ योग, ३ पदार्थ, ४ हेत्वर्थ, ५ उद्देश, ६ निर्देश, ७ उपदेश, ८ अपदेश, ९ प्रदेश, १० अतिदेश, ११ अपवर्ग, १२ वाक्यशेष, १३ अर्थापत्ति, १४ विपर्यय, १५ प्रसंग, १६ एकांत, १७ अनेकांत, १८ पूर्वपक्ष, १९ निर्णय, २० अनुमत, २१ विधान, २२ अनागतावेक्षण, २३ अतिक्रांतावेक्षण, २४ संशय, २५ व्याख्यान, २६ स्वसंज्ञा, २७ निर्वचन, २८ निदर्शन, २९ नियोग, ३० विकल्प, ३१ समुच्चय, ३२ ऊह्य ॥ १ ॥

तंत्रयुक्तियोंका प्रयोजन ।

अत्रासां तंत्रयुक्तीनां किं प्रयोजनमित्युच्यते ॥

वाक्ययोजनमर्थयोजनं च ॥ २ ॥ भवन्ति चात्र श्लोकाः

यहांपर इन तंत्रयुक्तियोंका क्या प्रयोजन है इसपर कहते हैं कि एक तो वाक्ययोजन, दूसरा अर्थयोजन ये दो प्रयोजन इन तंत्रयुक्तियोंसे हैं (प्रयोजन यह है कि वाक्यके ठीक जोडनेमें और अर्थके जोडनेमें ये काम आती हैं) ॥२॥ इस विषयमें श्लोक हैं–

असद्वादिप्रयुक्तानां वाक्यानां प्रतिषेधनम् ॥ स्ववाक्यसिद्धिरपि च क्रियते तंत्रयुक्तितः ॥ ३ ॥ व्यक्ता नोक्ताश्च ये ह्यर्था लीना ये चाप्यनिर्मलाः ॥ लेशोक्ता ये क्वचित्तन्त्रे तेषां चापि प्रसा-

(वा० १) तंत्रयुक्तय इति–त्रायते शरीरमनेनेति तंत्रं चिकित्साशास्त्रं तस्य युक्तयः योजनाः तंत्रयुक्तयः (इति डल्हनः) वाचस्पत्ये तु तनोति अर्थान् इति तंत्रं शास्त्रं चिकित्साशास्त्रम् "तनु–विस्तारे" एतस्माद्धातोष्ट्रन्प्रत्यये कृते तंत्रमिति सिद्धं तस्य युक्तयः तंत्रयुक्तयः । युक्तिः अर्थावधारणे तत्साधकलिंगज्ञानादौ न्याये व्यवहारे अनुमाने च (इति शब्दस्तोमः) (वा० २) वाक्ययोजनमर्थयोजनं चेति–वाक्यस्य असंबद्धस्य योजनं संबधनं वाक्ययोजनम् । लीनस्य असंगतस्य चार्थस्य योजनं संगतीकरणं अर्थयोजनम् । तत्र कासांचित्तंत्रयुक्तीनां योगोद्देशनिर्देशादीनां वाक्ययोजनम् । कासांचिदधिकरणहेत्वर्थादीनां अर्थयोजनम् (इति नि० सं०) (श्लो० ३) असद्वादिप्रयुक्तानामिति–असद्वादिनो हि प्रतिपक्षवादिनः एकाश्रयवादिनो वा । प्रतिषेधनम् अपदेशादिभिस्तंत्रयुक्तिभिः परपक्षदूषणम् । स्ववाक्यसिद्धिः स्ववाक्यसाधनं निर्णयाख्यया तंत्रयुक्त्या (श्लो० ४) व्यक्ताः नोक्ताः स्पष्टाः तथा न उक्ता ये अर्थाः लीना असम्यग्दर्शिताः अनिर्मला गूढाः । लेशेन उक्ता अतिसूक्ष्मतया बीजरूपेण उक्ताः ।

धनम् ॥ ४ ॥ यथाम्बुजवनस्यार्कः प्रदीपो वेश्मनो यथा ॥ प्रबोध्यस्य प्रकाशार्थास्तथा तंत्रस्य युक्तयः ॥ ५ ॥

असद्वादी (मिथ्यावादी प्रतिपक्षी) के कहे हुए वाक्योंका खंडन और अपने (सत्य) वाक्योंका मंडन तंत्रयुक्तियोंसेही किया जाता है ॥ ३ ॥ और जो अर्थ प्रगट रूपसे नहीं कहे तथा गूढ शब्दोंमें लीन हैं या निर्मल नहीं जाने जाते या कहीं ग्रंथमें लेशमात्र (बीजमात्र बहुत ही सूक्ष्मतासे) वर्णन करादिये हैं ॥ उन सबकी सिद्धि इन तंत्रयुक्तियोंसे ही होती है ॥ ४ ॥ जैसे कमलोंके समूहको सूर्य और घरको (अंधेरे घरको) दीपक प्रकाशमान करताहै उसी प्रकार प्रबोध्य (जानने योग्य) वाक्योंके अर्थका प्रकाश करनेवाली ये तंत्रयुक्तियां हैं (शास्त्रार्थ करनेमें ये बहुत ही काम आतीहैं) ॥ ५ ॥

अधिकरणका लक्षण।

यमर्थमधिकृत्योच्यते तदधिकरणम्। यथा रसं दोषं वा ॥ ६ ॥

जिस अर्थका अधिकार करके और अर्थोंका वर्णन कियाजावे उसे अधिकरण कहतेहैं जैसे रस अथवा दोष अर्थात् रस या दोषको अधिकार करके और बातें कहीं गईं या यों कहो कि रसके ग्रहणार्थ रस शब्द कहागया (कई जगह विना कहे भी उसका ग्रहण किया जाता है ये सब अधिकरणही होते हैं) ॥ ६ ॥

योगका लक्षण।

येन वाक्यं युज्यते स योगः। यथा तैलं पिबेच्चामृतवल्लिनिंबहिंस्राभयावृक्षकपिप्पलीभिः ॥ सिद्धं बलाभ्यां च सदेवदारु हिताय नित्यं गलगंडरोगे ॥ सिद्धं पिबेदिति प्रथमं वक्तव्ये तृतीयपादे सिद्धं प्रयुक्तमेवं दूरस्थानामपि पदानामेकीकरणं योगः ॥ ७ ॥

योग उसे कहते हैं जिससे वाक्य जोडे जावें (अर्थात् जिससे निकट या दूरके पदोंको जोडकर वाक्यकी योजना की जावे) जैसे चिकित्सास्थानके अठारहवें अध्यायके ४९ वें श्लोकमें (ऐसा कहाहै कि गलगंडरोगमें गिलोय, नींब, हिंस्रा, हरडे, कुडा, पिप्पली, दोनों खरेंटी इनसे देवदारु सहित सिद्ध किया तेल पीवे (इस श्लोकमें) "तैलं सिद्धं पिबेत्" ऐसा प्रथम ही कहना था परंतु "तैलं

(वा० ६) यमर्थमधिकृत्य अपरे अर्था अभिधीयंते तदधिकरणसंज्ञं भवतीति। रसं दोषं वा इति। एतेनैतदुक्तं भवति रसं दोषं वा अधिकृत्योच्यते। उद्देशाभावेपि अर्थजातमभिहितं तत्सर्वं तदधिकारे प्रतीयते (इति नि० स) (वा० ७) येन वाक्यं युज्यते इति–तत्र व्यासोक्तानां सन्निकृष्टविप्रकृष्टानां पदानाम् एकीकरण योगः (इति डल्हनः)

पिबेत्" तो पहले पदमें और "सिद्धं" तीसरे पदमें कहागया इन दूरके पदोंका जो एकत्र मिलाकर अर्थ करना है उसे "योग" कहते हैं ॥ ७ ॥

पदार्थ।

योऽर्थोऽभिहितः सूत्रे पदे वा स पदार्थः। अपरिमिताश्च पदार्थाः। यथा स्नेहस्वेदांजनेषु निर्दिष्टेषु द्वयोस्त्रयाणामर्थानामुपपत्तिर्दृश्यते तत्र योऽर्थः पूर्वापरयोगसिद्धो भवति स ग्रहीतव्यो यथा वेदोत्पत्तिं व्याख्यास्याम इत्युक्ते संदिह्यते बुद्धिः। कतमस्य वेदस्यायमुत्पत्तिं विवक्षुरिति। ऋग्वेदादयस्तु वेदास्तत्र पूर्वापरयोगमुपलभ्य विद विचारणे विद विंदेत्येतयोश्च धात्वोरनेकार्थयोः प्रयोगः। पश्चात्प्रतिपत्तिर्भवति आयुर्वेदोत्पत्तिमयं विवक्षुरित्येवं पदार्थः ॥ ८ ॥

सूत्रमें या पदमें जिस अर्थका प्रतिपादन किया जावे उसे पदार्थ कहतेहैं परं च पदार्थ (पदोंके अर्थ) बहुत होते हैं जैसे स्नेह, स्वेद, अंजन इन्हीं पदोंमें देखिये दो दो तीन तीन अर्थोंकी उपपत्ति दीखतीहै (अर्थात् दो दो तीन तीन अर्थ दिखाई देते हैं) (स्नेहसे घृत, तैल, वसा आदि बहुतोंका बोध होता है। स्वेदसे कैसा स्वेद, अंजन स्रोतोंजन या रसांजन इत्यादि) इनमेंसे जो अर्थ पूर्वापर योगके विचारसे सिद्ध हो वही ग्रहण करना चाहिये जैसे एक दृष्टांत है कि सूत्रस्थानमें पहले ही कहा है कि " वेदोत्पत्तिं व्याख्यास्यामः " इस वाक्यमें बुद्धिमें संदेह होता है कि ग्रंथकार कौनसे वेदकी उत्पत्ति कहना चाहते हैं वेद तो ऋग्वेदादिक हैं इसमें अब पूर्वापर योगके विचारनेसे जाना जाता है कि विद् विचारणे या विद विंदति इन अनेकार्थक धातुओंका प्रयोग है (अर्थात् जिससे जाना जावे या ज्ञान हो वही वेद) फिर निश्चय हुआ कि ग्रंथकार आयुर्वेद (आयुके ज्ञानके वेदकी) उत्पत्तिका वर्णन किया चाहते हैं बस यही " पदार्थ" (निश्चितपदार्थ) हुआ ॥ ८ ॥

हेत्वर्थ और उद्देश।

यदन्यदुक्तमन्यार्थसाधकं भवति स हेत्वर्थः। यथा मृत्पिंडोऽद्भिः प्रक्लिद्यते तथा माषदुग्धप्रभृतिभिर्व्रणः प्रक्लिद्यते इति ॥ ९ ॥

समासकथनमुद्देशः। यथा शल्यमिति ॥ १० ॥

जो कहा हुआ वाक्य अन्य अर्थका साधक हो वह " हेत्वर्थ" कहलाताहै जैसे मिट्टीका कच्चा ढेला पानीसे गीला होजाताहै (घुलने लग जाताहै) इसी प्रकार

उडद दूध आदिसे व्रण भी गीला होताहै ॥ ९ ॥ संक्षेपसे जो वर्णन किया जावे उसे "उद्देश" कहतेहैं जैसे शल्य (अर्थात् शल्यके कहनेसे शल्यचिकित्सामात्रका बोध होताहै) (इसमें शारीरक या आगंतुकका प्रपंच नहीं है) ॥ १० ॥

निर्देश उपदेश और अपदेश।

विस्तरवचनं निर्देशः। यथा शारीरमागंतु चेति ॥११॥ एवमित्युपदेशः। यथा। तथा न जागृयाद्रात्रौ दिवास्वप्नं च वर्जयेत् ॥ ॥ १२ ॥ अनेन कारणेनेत्यपदेशः । यथोपदिश्यते मधुरेण श्लेष्माभिवर्द्धत इति ॥ १३ ॥

विस्तार पूर्वक जो वर्णन किया जावे उसे "निर्देश" कहतेहैं जैसे शारीरक और आगंतुक (अर्थात् शल्य दो प्रकारका होताहै १ शारीरक, २ आगंतुक) यह शल्यका भेद विस्तारसे कहागया ॥ ११ ॥ यह इसी प्रकारसे है या होताहै या होना चाहिये इसे "उपदेश" कहतेहैं जैसे रातको जागना नहीं चाहिये और दिनमें नहीं सोवे ॥ १२ ॥ इस कारणसे यह होताहै इसे "अपदेश" कहतेहैं जैसे कहतेहैं कि मीठा खानेसे कफ बढताहै (अर्थात् कफवृद्धिका कारण मधुर रस है) ॥ १३ ॥

प्रदेश और अतिदेश।

प्रकृतस्यातिक्रांतेन साधनं प्रदेशः । यथा देवदत्तस्यानेन शल्यमुद्धृतं तस्माद्यज्ञदत्तस्याप्ययमेवोद्धरिष्यतीति ॥ १४ ॥ प्रकृतस्यानागतेन साधनमतिदेशः । यथानेनास्यवायुरूर्द्धमुपलिप्तते तेनोदावर्तः स्यादिति ॥ १५ ॥

जहां प्रकृतका अतिक्रमण करके साधन किया जावे उसे "प्रदेश" कहतेहैं जैसे इसने देवदत्तका शल्य निकाला (या रोग दूर किया) इससे यह यज्ञदत्तकाभी शल्य निकाल देगा (रोग दूर कर देगा) (यहां यज्ञदत्तका रोग दूर करना रूप जो प्रस्तुत है वह देवदत्तके रोगरूपी करणको अतिक्रमण करके साधन कियागया) ॥ १४ ॥ और जहां प्रकृतका अनागत (भविष्यत्) से साधन किया जावे उसको "अतिदेश" कहतेहैं जैसे अमुक कारणसे इसका वायु ऊर्द्धगामी होताहै इससे इसे उदावर्त होगा यहां वायुका ऊर्द्धगमन प्रकृत है इसका साधन अगाडी होनेवाले उदावर्तसे होताहै ॥ १५ ॥

अपवर्ग और वाक्यशेष।

अभिव्याप्यापकर्षणमपवर्गः । यथाऽस्वेद्या विषोपसृष्टा अन्यत्र

कीटविषादिति ॥ १६ ॥ येन पदेनानुक्तेन वाक्यं समाप्यते स वाक्यशेषः। यथा शिरःपाणिपादपार्श्वपृष्ठोदरोरसामित्युक्ते पुरुषग्रहणमपि गम्यते पुरुष एवोक्त इति ॥ १७ ॥

अभिव्याप्यमेंसे अपकर्षण करनेको "अपवर्ग" कहतेहैं जैसे विषोपसृष्ट स्वेदयुक्त नहीं होते सिवाय कीड़ोंके विषवालोंके। यहां विषोपसृष्ट अस्वेद्य यह व्यापक था इसमेंसे कीटविषवाले पृथक् किये गये ॥ १६ ॥ जहां विना कहे पदसे वाक्य समाप्त किया जावे उसे "वाक्यशेष" कहतेहैं जैसे शिर, हाथ, पांव, पँसवाड़े, पीठ, पेट कहे गये इससे मनुष्यका ग्रहण होगया, अर्थात् मनुष्य (पुरुषशरीर) कहागया (ऐसेही "तत्राव्यापन्नानामोपधीनामपां चोपयोगः" यहां "कार्यः" इस अनुक्त पदसे वाक्य समाप्त हुआ) ॥ १७ ॥

अर्थापत्ति और विपर्यय।

यदकीर्तितमर्थादापद्यते सार्थापत्तिः। यथौदनं भक्ष्ये इत्युक्तेऽर्थापन्नं भवति नायं पिपासुर्यवागूमिति ॥१८॥ यद्यत्राभिहितं तस्य प्रातिलोम्यं विपर्ययः। यथा कृशाल्पप्राणभीरवो दुश्चिकित्स्या इत्युक्ते विपरीतं गृह्यते दृढादयः सुचिकित्स्या इति ॥ १९ ॥

जो विनाही कहा हुआ अर्थसे जानाजावे उसे "अर्थापत्ति" कहतेहैं जैसे किसीने कहा मैं भात खाऊँगा तो इस कथनसे जानागया कि यह यवागू पीनेका इच्छुक नहीं है ॥ १८ ॥ जो जहां कहा गया उसके विपरीतको "विपर्यय" कहतेहैं जैसे किसीने कहा कि दुबले, निर्बल, डरपोंक ये दुश्चिकित्स्य होते हैं तो इसके विपरीत ग्रहणसे दृढ, बलिष्ठ और निडर ये सुचिकित्स्य हैं ऐसा समझना ॥ १९॥

प्रसंग।

प्रकारांतरेण समापनं प्रसंगः। यथा प्रकारांतरितो योऽर्थोऽसकृदुक्तः समाप्यते स प्रसंगः। यथा पंचमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुषस्तस्मिन्क्रिया तदधिष्ठानमिति वेदोत्पत्तावभिधाय पुनरुक्तं यतोऽभिहितं पंचमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इति। स खल्वेवं कर्मपुरुषश्चिकित्सायामधिकृतः ॥ २० ॥

प्रकारांतरसे जो समाप्त किया जावे तथा प्रकारांतरमें जो अर्थ बारबार कहा हुआ समाप्त किया जावे (एक जगह कहकर दूसरी जगह फिर कहा जावे या

(वा० २०) "यथा प्रकारातरितो योर्थः" इत्यत्र 'तथा प्रकारातरितो योर्थः' इति पाठांतरम्।

कहकर वाक्य समाप्त किया जावे तो) उसे "प्रसंग" कहते हैं जैसे पहले वेदोत्पत्ति अध्यायमें कहा कि पंचमहाभूतशरीरी (जीव) का समवाय पुरुष होता-है और उसीमें क्रियाओंका अधिष्ठान होता है और अगाडी फिर ऐसा ही कहा कि पंचमहाभूत शरीरिका समवाय पुरुष होता है वही कर्मपुरुष चिकित्सामें अधिकार किया गया है (यहां यह फिर प्रसंगसे कहागया इसे ही प्रसंग कहते हैं ॥ २० ॥

एकांत और अनेकांत ।

सर्वत्र यदवधारणेनोच्यते स एकांतः । यथा त्रिवृद्विरेचयति मदनफलं वामयतीति ॥ २१ ॥ क्वचित्तथा क्वचिदन्यथेति यः सोऽनेकार्थः । यथा केचिदाचार्या ब्रुवते द्रव्यं प्रधानं केचिद्रसं केचिद्वीर्यं केचिद्विपाकमिति ॥ २२ ॥

जो सर्वत्र निश्चयरूपसे कहा जावे वह "एकांत" कहलाता है जैसे निशोथ विरेचनकारक है और मैनफल वमनकारक है ॥ २१ ॥ कोई ऐसा कहें और कोई अन्यथा (और तरह) वह "अनेकार्थ" कहलाता है जैसे कोई आचार्य द्रव्यको प्रधान मानतेहैं, कोई रसको प्रधान कहते हैं, कोई वीर्यको और कोई विपाकको प्रधान कहते हैं ॥ २२ ॥

पूर्वपक्ष और निर्णय ।

आक्षेपपूर्वकः प्रश्नः पूर्वपक्षः । यथा कथं वातनिमित्ताश्चत्वारः प्रमेहा असाध्या भवंतीति ॥ २३॥ तस्योत्तरं निर्णयः यथा शरीरं प्रपीड्य पश्चादधो गत्वा वसामेदोमज्जानुविद्धं मूत्रं प्रसृजति वात एवमसाध्या वातजा इति । तथा चोक्तम्-कृत्स्नं शरीरं निःपीड्य मेदोमज्जावसायुतः ॥ अधः प्रकुप्यते वायुस्तेनासाध्यास्तु वातजाः ॥ २४ ॥

आक्षेपपूर्वक जो प्रश्न किया जावे उसे "पूर्वपक्ष" कहतेहैं जैसे, क्यों वायुके चारों प्रमेह असाध्य होतेहैं ? ॥ २३ ॥ इसका उत्तर (यथार्थ) देना "निर्णय" कहाताहै जैसे वायु सब शरीरको निचोडकर नीचे जाकर वसा, चरबी और मज्जासे मिला मूत्र निकालताहै इससे वातज प्रमेह असाध्य होतेहैं कहा भी है

(वा० २१) अवधारणेन अनन्यविकल्पेन उच्यते स एकांतः । 'अवधारेण' इति वा पाठांतरम् । अवधारः निर्धारः । निर्धारेण निश्चितत्वेन उच्यते स एकांतः ।

कि समस्त देहको पीडन करके मेद, वसा, मज्जासे मिलकर नीचे वायु कुपित होताहै इसीसे वायुके प्रमेह असाध्य होते हैं (वायुके प्रमेह यों असाध्य होतेहैं कि प्रमेहकी चिकित्सा मुख्य शोषण है और शोषण क्रिया वायुको बढाती हैं यही विरुद्धता पडती है) ॥ २४ ॥

अनुमत और विधान ।

परमतमप्रतिषिद्धमनुमतम् । यथान्यो ब्रूयात्सप्त रसा इति ॥ २५ ॥ प्रकरणानुपूर्वाभिहितं विधानम् । यथा सक्थिमर्माण्येकादश प्रकरणानुपूर्वाभिहितानि ॥ २६ ॥

जहां पराये मतका निषेध नहीं किया जावे (स्वीकार किया जावे) उसे "अनुमत" कहते हैं जैसे किसीने कहा कि सात रस होतेहैं और दूसरेने इसे मान लिया (यही अनुमत हुआ) ॥ २५ ॥ जो बात प्रकरणपूर्वक कही जावे उसे "विधान" कहतेहैं जैसे सक्थिमर्म ग्यारह हैं उनका प्रकरणानुपूर्व वर्णन किया गया ॥ २६ ॥

अनागतावेक्षण और अतिक्रांतावेक्षण ।

एवं वक्ष्यतीत्यनागतावेक्षणम् । यथा श्लोकस्थाने ब्रूयाच्चिकित्सितेषु वक्ष्यामीति ॥ २७ ॥ यत्पूर्वमुक्तं तदतिक्रांतावेक्षणम् । यथा चिकित्सितेषु ब्रूयाच्छ्लोकस्थाने यदीरितमिति ॥ २८ ॥

अगाडी इसे कहेंगे (या ऐसा कहेंगे) इसे "अनागतावेक्षण" कहते हैं जैसे श्लोकस्थानमें (सूत्रस्थान या अन्यत्र) कहा कि इस बातको चिकित्सास्थानमें कहेंगे ॥ २७ ॥ और जो बात पहले कहीगई उसे "अतिक्रांतावेक्षण" कहते हैं जैसे चिकित्सास्थानमें कहा कि श्लोकस्थानमें यह बात हम कह चुके हैं ॥ २८ ॥

संशय और व्याख्यान ।

उभयहेतुदर्शनं संशयः । यथा तलहृदयाभिघातः प्राणहरः । पाणिपादच्छेदनमप्राणहरमिति ॥ २९ ॥ तत्रातिशयोपवर्णनं व्याख्यानम् । यथेह पंचविंशतिकः पुरुषोऽत्र व्याख्यायते अन्ये-ष्वायुर्वेदेषु भूतादिप्रभृत्यारभ्यचिंता ॥ ३० ॥

जहां दो हेतु दीखें वह "संशय" कहाताहै जैसे तलहृदयमें अभिघात प्राणहर होताहै और हाथ, पाँवोंमें अभिघात प्राणहर नहीं होता (यहाँ अभिघातमें

(वा० २५) अप्रतिषिद्धं स्वीकरणम् । (वा० २८) श्लोकस्थानं सूत्रस्थानम् ।

स्थानादिभेदसे प्राणहरत्वका संशय होताहै) ॥ २९ ॥ शास्त्रमें अतिशयसे वर्णन करना "व्याख्यान" कहलाता है जैसे इस ग्रंथमें पच्चीस तत्त्वोंवाला पुरुष कहाहै और अन्य आयुर्वेद ग्रंथोंमें भूतादि और प्रकृतिकेही आरंभसे चिंता कीगई है॥ ३०॥

स्वसंज्ञा उदाहरण निर्वचन और निदर्शन ।

अन्यशास्त्रासामान्या स्वसंज्ञा । यथा मिथुनमिति मधुसर्पिषोर्ग्रहणम् ॥ ३१ ॥ लोके प्रथितमुदाहरणम् । यथोष्णभयाच्छीतमनुधावति ॥ ३२ ॥ निश्चितं वचनं निर्वचनम् । यथायुर्विद्यतेऽस्मिन्ननेन वाऽऽयुर्विन्दतीति आयुर्वेदः ॥ ३३ ॥ दृष्टांतेनार्थः प्रसाध्यते यत्र तन्निदर्शनम् । यथाग्निर्वायुना सहितः कोष्ठे वृद्धिं गच्छति । तथा वातपित्तकफदुष्टो व्रण इति ॥ ३४ ॥

अन्यशास्त्र (व्याकरणादि) से जो असामान्य (अपनेही शास्त्रमें मान्य) हो उसे "स्वसंज्ञा" कहतेहैं जैसे मिथुन कहनेसे (वैद्यकमें) शहद और घृतका ग्रहण होताहै । और जो लोकमें अतिप्रसिद्ध होता है वह "उदाहरण" कहाताहै जैसे गरमीके भयसे शीतकी तरफ दौडताहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ निश्चित वचनको "निर्वचन" कहतेहैं जैसे आयु विद्यमान हो या जानीजावे जिसमें अथवा जिससे उसे आयुर्वेद कहतेहैं ॥ ३३ ॥ जहां दृष्टांतसे अर्थ साधन किया जावे उसे "निदर्शन" कहतेहैं जैसे जिस भांति वायु सहित अग्नि कोठेमें वृद्धिको प्राप्त होती है उसी तरह वात, पित्त और कफसे दूषित व्रण वृद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥

नियोग समुच्चय और विकल्प ।

इदमेव कर्तव्यमिति नियोगः । यथा पथ्यमेव भोक्तव्यमिति ॥ ॥ ३५ ॥ इदं चेदं चेति समुच्चयः । यथा मांसवर्गे एणहरिणलावतित्तिरिसारंगाः प्रधानमिति ॥ ३६ ॥ इदं वेति विकल्पः । यथा रसौदनः सघृता यवागूर्वा ॥ ३७ ॥

यह ऐसेही करना चाहिये इसे "नियोग" कहतेहैं जैसे पथ्य ही भोजन करना चाहिये ॥ ३५ ॥ यह भी और यह भी इत्यादिको "समुच्चय" कहतेहैं (बहुत पदार्थ एकत्र होनेको समुच्चय कहतेहैं) जैसे मांसवर्गमें कालामृग, हिरन, लवा, तीतर और सारंग ये प्रधान हैं ॥ ३६ ॥ यह अथवा यह (दोनोंमेंसे कोईसा) इसे "विकल्प" कहतेहैं जैसे मांसरस सहित भात अथवा घृतयुक्त यवागू (खावे) ॥ ३७ ॥

ऊह्य ।

यदनिर्दिष्टं बुद्धिमता तदूह्यम् । यथाभिहितमन्नपानविधौ चतुर्विधं चान्नमुपदिश्यते । भक्ष्यं भोज्यं लेह्यं पेयमेवं चतुर्विधे वक्तव्ये द्विविधमभिहितमत्रोह्यमिति । अन्नपाने विशिष्टे द्वयोर्ग्रहणे कृते चतुर्णामपि ग्रहणं भवति । किंचान्यत् । अन्नेन भक्ष्यमवरुद्धं त्वन्नसाधर्म्यात् । पेयेन लेह्यं द्रवसाधर्म्यात् । चतुर्विधश्चाहारः प्रायेण द्विविधः प्रसिद्ध इति ॥ ३८ ॥

जो अनिर्दिष्ट बुद्धिमानोंकरके जानाजावे उसे ऊह्य कहतेहैं (अथवा जो बुद्धिमानोंकरके अनिर्दिष्ट है (प्रगट नहीं कहा) उसे ऊह्य कहिये जैसे अन्नपानविधि यहां अन्नपान कहनेसे चारों प्रकारके भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेयको समझना चाहिये यहां चार प्रकारका कहना योग्य था इसमें दो प्रकारका कहा और दो प्रकारका ऊह्य युक्तिसे जानना इसेही ऊह्य कहते हैं वस्तुतः अन्नपान दोनोंका ग्रहण करनेसे चारोंका ग्रहण होताहै क्योंकि अन्न कहनेसे भोज्य तो है ही पर भक्ष्यकाभी ग्रहण होताहै, अन्नके साधर्म्य होनेसे । और पेय कहनेसे लेह्यका ग्रहण भी होजाताहै, द्रव पतले पानके साधर्म्यसे । अस्तु चार प्रकारका आहार प्रायः दोही भांतिका प्रसिद्ध है ॥ ३८ ॥

द्वात्रिंशद्युक्तयो ह्येतास्तंत्रसारगवेषणे ॥ मया सम्यग्विनिहिताः शब्दन्यायार्थसंयुताः ॥ ३९ ॥ यो ह्येता विधिवद्वेत्ति दीपीभूतास्तु बुद्धिमान् ॥ स पूजार्हो भिषक्छ्रेष्ठ इति धन्वंतरेर्मतम् ॥ ४० ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतंत्रे पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

ग्रन्थका सारार्थ जाननेके निमित्त ये बत्तीस युक्तियां शब्द और न्यायार्थसे युक्त हमने यथायोग्य वर्णन कर दी हैं ॥ ३९ ॥ ग्रन्थकार महर्षि सुश्रुतजी महाराज कहतेहैं कि जो इन दीपकके तुल्य बत्तीस युक्तियोंको विधिपूर्वक समझ जाता है वह वैद्योंमें श्रेष्ठ होकर पूजाके योग्य हो जाताहै ऐसा श्रीधन्वंतरिजीका मत है ॥ ४० ॥

इति प० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतंत्रे पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

(श्लो० ३९) तंत्रसारगवेषणे । ग्रंथस्य सारार्थ ज्ञाननिमित्तं मया युक्तयो विनिहिताः ।
(श्लो० ४०) दीपीभूतास्ता यो भिषक् विधिवद्वेत्ति स पूजार्हो भवतीति धन्वंतरेर्मतमित्याह सुश्रुतः ।

षट्षष्टितमोऽध्यायः ६६.

अथातो दोषभेदविकल्पनामाध्यायं व्याख्यास्यामः।

यहांसे अगाडी अब हम दोषभेदविकल्पनामक अध्यायका व्याख्यान करतेहैं (अर्थात् वात, पित्त, कफ इन दोषोंके सान्निपातिक वृद्धक्षीणादि भेदोंकी विकल्पनाका वर्णन करते हैं)।

सुश्रुतऋषिका प्रश्न।

अष्टांगायुर्वेदविदं दिवोदासं महामतिम् ॥ छिन्नशास्त्रार्थसंदेहं सूक्ष्मागाधमिवोदधिम् ॥ १ ॥ विश्वामित्रसुतः श्रीमान्सुश्रुतः परिपृच्छति ॥ द्विषष्टिर्दोषभेदा ये पुरस्तात्परिकीर्तिताः ॥ २ ॥ कति तत्रैकशो ज्ञेया द्विशो वाप्यथवा त्रिशः॥ ३ ॥

अष्टांग आयुर्वेदके ज्ञाता, शास्त्रार्थके संदेह दूर करनेवाले, परम बुद्धिमान्, सूक्ष्म अर्थज्ञतामें समुद्रके समान अगाध ऐसे दिवोदास श्रीधन्वंतरिजी महाराजसे विश्वामित्रके पुत्र श्रीमान् सुश्रुतऋषिने पूछा कि हे भगवन् ! जो पहले दोषोंके बासठ भेद उद्देशमात्रसे वर्णन किये उनमेंसे एक एकसे कितने और दोदोसे मिलकर कितने और तीनोंसे मिलकर (वृद्धिक्षयभेदसे) कितने भेद क्योंकर होते हैं ? ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

धन्वंतरिजीका उत्तर।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा संशयच्छिन्महातपाः ॥ प्रीतात्मा नृपशार्दूलः सुश्रुतायाह तत्त्वतः ॥ ४ ॥ त्रयो दोषा धातवश्च पुरीषं मूत्रमेव च ॥ देहं संधारयन्त्येते ह्यव्यापन्ना रसैर्हितैः ॥ ५ ॥

सुश्रुत ऋषिके इस वचनको सुनकर संशयके छेदन करनेवाले महातपस्वी राजाओंमें शार्दूल श्रीधन्वंतरिजीने सुश्रुतके प्रति सबका सारांश कथन किया ॥४॥ कि हे सुश्रुत ! तीन दोष, सात धातु, मल और मूत्र ये निर्विकार शुद्ध और यथोचित हितकारक रसोंसे युक्त (पोषित होकर शरीरको धारण कर रहे हैं ॥ ५ ॥

पुरुषः षोडशकलः प्राणाश्चैकादशैव ये ॥ रोगाणां तु सहस्रं यच्छतं

(श्लो० ६) पुरुषः षोडशकल इति–कलाशब्दः पञ्चमहाभूतानि एकादशेंद्रियाणीति । षोडशविकारवाचक इत्येके व्याचक्षते । अन्ये तु कलाशब्दमगप्रत्यंगेषु आमनंति । तद्यथा शिरोग्रीवापाणिपादपार्श्वपृष्ठोदरांसेत्यष्टांगानि चिबुकनासौष्ठश्रवणांगुष्ठांगुलिपार्ष्णिगुल्फाः प्रत्यगानीति। अन्यैश्च कलाशब्दो गुणवाचकः पठितः । तेन पुरुषः षोडशगुणः (इति नि० सं०) एकादश प्राणा इति । अग्निः सोमो वायुः सत्त्वं–रजस्तमः पंचेन्द्रियाणि भूतात्मेति ।

विंशतिरेव च ॥ ६ ॥ शतं च पंच द्रव्याणां त्रिसप्तत्यधिकोत्तरम् ॥ व्यासतः कीर्तितं तद्धि भिन्नदोषास्त्रयो गुणाः ॥ द्विषष्टिधा-वदंत्येते भूयिष्ठमिति निश्चयः ॥ ७ ॥

पुरुष सोलह कलावाला है और इसमें ग्यारह प्राण हैं तथा एक हजार एकसौ बीस (११२०) रोग हैं ॥ ६ ॥ और द्रव्य पांचसौ तिहत्तर (५७३) हैं ये सब अपने अपने मौकेपर विस्तारसे कह दियेहैं और तीन दोष और तीन गुण हैं तथा ये दोष बासठ भेदवाले होतेहैं इन्हें अगाडी कहेंगे ॥ ७ ॥

(वक्तव्य) सोलह कला कोई पंचमहाभूत और ग्यारह इंद्रिय इन्हें मानते हैं और कोई अंगप्रत्यंगोंको मानते हैं। एकादश प्राण ये हैं–अग्नि, सोम, वायु, सत्त्व, रज, तम और पांच इंद्रियें । रोगोंकी सब संख्या जो सब स्थानोंमें कहे गये हैं ११२० हैं । और द्रव्यसंग्रहणीय आदि सूत्रस्थानके अध्यायोंमें कहे हुए द्रव्य ५७३ है। और दोषोंके भेद ६२ तथा एक भेद दोषोंकी समता (स्वस्थता) का त्रेसठवॉं है (वृद्धवाग्भटने भी लिखा है कि–"द्विषष्टिभेदा निर्दिष्टास्त्रिषष्टिः स्वास्थ्य-कारणम्" अर्थात् ६२ भेद दोषोंके कहे और सबकी समानताका ६३ त्रेसठवाँ भेद स्वास्थ्यका कारण है)

त्रिदोषोंके बासठ भेद ।

त्रय एव पृथक्दोषा द्विशो नव समाधिकैः ॥ त्रयोदशाधिकैक-द्विसमध्योल्वणैस्त्रिशः॥पंचाशदेवं तु सह भवंति क्षयमार्गतैः॥८॥ क्षीणमध्याधिकक्षीणक्षीणवृद्धैस्तथापरैः ॥ द्वादशैवं समाख्याता-स्त्रयो दोषा द्विषष्टिधा ॥ ९ ॥

तीन दोष तो पृथक् पृथक् और नौ दोषोंकी समता, अधिकतासे ऐसे १२ ये हुए और एक दोष दो दोष तथा तीन दोषोंके समता, मध्यता और उल्वण-तासे १३ भेद ये हुए, ये सब मिलकर २५ भेद वृद्ध (अर्थात् उल्वणताके) ही हैं और इसी क्रमसे दोषोंकी क्षीणता (क्षयता) के भी २५ भेद होते हैं तब ये दोनों मिलकर ५० भेद हुए ॥ ८ ॥ और क्षीण मध्य, अधिक क्षीण तथा क्षीण वृद्ध, अधिक वृद्ध, १२ भेद इनके हुए ऐसे ये पूर्वोक्त ५० से मिलकर सब ६२ भेद होगये (उन सबका उदाहरण विस्तार सहित हम परिशिष्टमें लिखेंगे और सब दोषोंकी समताको त्रेसठवां भेद समझना चाहिये) ॥ ९ ॥

मिश्रधातुमलैर्दोषा यांत्यसंख्येयतां पुनः ॥
तस्मात्प्रसंगं संयम्य दोषभेदविकल्पनैः ॥ १० ॥
रोगं विदित्वोपचरेद्रसभेदैर्यथेरितैः ॥ ११ ॥

धातुओं और मल आदिसे मिलकर इन दोषोंके असंख्य भेद होजातेहैं इस लिये प्रसंग (मौका) देखकर विचारकर दोषभेदोंकी विकल्पनासे रोगोंको निश्चय करके और पूर्वोक्त यथायोग्य रसभेदोंसे चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १० ॥ ११

भिषक्कर्ताऽथ करणं रसा दोषास्तु कारणम् ॥
कार्यमारोग्यमेवैकमनारोग्यमतोऽन्यथा ॥ १२ ॥

चिकित्साविषयमें वैद्य कर्ता है और रस करण है दोष कारण और आरोग्य कार्य है और इसके विरुद्ध अनारोग्य (बीमारी) है (अर्थात् वैद्य रसोंके द्वारा दोषोंको ठीक करके आरोग्यता करे) ॥ १२ ॥

अध्यायानां तु षट्षष्ट्या ग्रथितार्थपदक्रमम् ॥ एवमेतदशेषेण तंत्रमुत्तरमृद्धिमत् ॥१३॥ स्पष्टगूढार्थविज्ञानमगाढं मंदचेतसाम् ॥ यथाविधि यथाप्रश्नं भवतां परिकीर्तितम् ॥ १४ ॥

श्रीधन्वंतरिजी कहते हैं कि हे ऋषियो ! यह छासठ अध्यायात्मक जिसमें अर्थ और पदक्रम सब ग्रथित हैं ऐसा सम्पूर्ण ऋद्धिवाला उत्तरतन्त्र जिससे गूढार्थोंका स्पष्ट विज्ञान होताहै और मन्दबुद्धिवालोंको अगाढ है (अर्थात् मन्द बुद्धिवालोंके भी समझमें आसकता है) यथाविधि और जिस जिस भांति आपने प्रश्न किये उनके अनुसार हमने वर्णन कियाहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

सहोत्तरं त्वेतदधीत्य सर्वं ब्राह्मं विधानेन यथोदितेन ॥
न हीयतेऽर्थान्मनसोऽभ्युपेताद्वचो ब्राह्ममतीव सत्यम् ॥ १५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतंत्रे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

॥ समाप्तमिदमुत्तरतन्त्रम् ॥

इस ब्राह्म (ब्राह्मसंहिताके अनुसार) संहिताको उत्तरतंत्र सहित समस्त यथोपदिष्ट विधानपूर्वक जो पढता है उसके मनोवांछित अर्थोंकी कभी कमी नहीं रहती यह ब्रह्माजीका अत्यन्त सत्य वचन है ॥ १५ ॥

परिशिष्ट ।

दोषोंके सन्निपात (संसंग) से जो ६२ भेद ग्रंथमें कहे हैं उनका हम विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं-इनमें २५ भेद दोषोंकी वृद्धिसे और २५ क्षीणतासे तथा १२ वृद्धिक्षयसे ये सब मिलकर ६२ भेद होतेहैं ।

दोषोंकी वृद्धिके २५ भेद.

१ वातवृद्ध, २ पित्तवृद्ध, ३ कफवृद्ध, ४ वातपित्तवृद्ध, ५ वातकफवृद्ध, ६ पित्तकफवृद्ध, ७ वातपित्तकफवृद्ध, ८ वातहीनवृद्ध पित्तमध्य कफअधिक वृद्ध, ९ वातहीन कफमध्य पित्तअधिकवृद्ध, १० पित्तहीन वातमध्य कफअधिक वृद्ध, ११ पित्तहीन कफमध्य वात अधिकवृद्ध, १२ कफहीन पित्तमध्य वात अधिकवृद्ध, १३ कफहीन वातमध्य पित्त अधिकवृद्ध, १४ वातातिवृद्ध, १५ पित्तातिवृद्ध, १६ कफातिवृद्ध, १७ वातपित्तातिवृद्ध, १८ वातकफातिवृद्ध, १९ कफपित्तातिवृद्ध, २० वातवृद्ध पित्तातिवृद्ध, २१ पित्तवृद्ध वातातिवृद्ध, २२ कफवृद्ध पित्तातिवृद्ध, २३ पित्तवृद्ध कफातिवृद्ध, २४ कफवृद्ध वातातिवृद्ध और २५ वातवृद्ध कफातिवृद्ध ऐसे ये वृद्धदोषोंके एक दो तीनकी सम मध्य और अधिक वृद्धिसे २५ भेद हुए ॥

ऐसेही दोषोंकी क्षीणताके २५ भेद।

१ वातक्षीण, २ पित्तक्षीण, ३ कफक्षीण, ४ वातपित्तक्षीण, ५ वातकफक्षीण, ६ कफपित्तक्षीण, ७ वातपित्तकफक्षीण, ८ वात स्वल्पक्षीण पित्तमध्यक्षीण कफ अधिकक्षीण, ९ वातस्वल्प कफमध्य पित्त अधिकक्षीण, १० पित्तस्वल्प वातमध्य कफ अधिकक्षणि, ११ पित्तस्वल्प कफमध्य वात अधिकक्षीण, १२ कफस्वल्प पित्त मध्य वात अधिकक्षीण, १३ कफस्वल्प वातमध्य पित्त अधिकक्षीण, १४ वातातिक्षीण, १५ पित्तातिक्षीण, १६ कफातिक्षीण, १७ वातपित्तातिक्षीण, १८ वातकफातिक्षीण, १९ कफपित्तातिक्षीण, २० वातक्षीण पित्तातिक्षीण, २१ पित्तक्षीण वातातिक्षीण, २२ कफक्षीण पित्तातिक्षीण, २३ पित्तक्षीण कफातिक्षीण, २४ कफक्षीण वातातिक्षीण और २५ वातक्षीण कफातिक्षीण इसप्रकार २५ भेद ये क्षीणतासे हुए ये और पूर्वोक्त वृद्धिके २५ मिलकर ५० भेद हुए ॥

वृद्धिक्षयके १२ भेद।

१ वातवृद्ध पित्तमध्य (सम) कफक्षीण, २ पित्तवृद्ध वातसम कफक्षीण, ३ कफवृद्ध पित्तसम वातक्षीण, ४ कफवृद्ध वातमध्य पित्तक्षीण, ५ वातवृद्ध कफमध्य पित्तक्षीण, ६ पित्तवृद्ध कफसम वातक्षीण, ७ वातक्षीण पित्तकफवृद्ध, ८ पित्तक्षीण वातकफवृद्ध, ९ कफक्षीण वातपित्तवृद्ध १० वातपित्तक्षीण कफवृद्ध, ११ वातकफक्षीण पित्तवृद्ध, १२ कफपित्तक्षणि वातवृद्ध इसप्रकार १२ भेद ये वृद्धिक्षय मिलकर हुए ये और पूर्वोक्त ५० मिलकर ६२ भेद सब दोषोंके वृद्धि और क्षय तथा वृद्धि क्षय भेदसे होगये और जिसमें वायु, पित्त, कफ तीनों सम हों न कोई वृद्ध हो न क्षीण वह त्रेसठवाँ भेद स्वस्थ (तंदुरुस्त) मनुष्योंका समझे अर्थात् उक्त ६२ भेदोंमेंसे कोईसा होगा उसीके अनुसार व्याधि होगी और जिसकेसब दोष समान होंगे उसके कोई व्याधि नहीं ऐसा जानना चाहिये ॥

दोषोंकी वृद्धिक्षय।

श्लोक-एको वृद्धः समश्चैकः क्षीणस्त्वेको यदा भवेत् ॥ क्षीण एकः प्रवृद्धौ द्वौ क्षीणौ द्वौ वृद्धिमाँस्तथा ॥ एक एव स्थितस्तत्र व्यक्तरूपेण देहिनः ॥ १ ॥

अर्थ-कभी एक दोष वृद्ध तथा एक सम और एक क्षीण होताहै. कभी एक दोष क्षीण होताहै और दो वृद्ध होतेहें और कभी दो दोष क्षीण होतेंहैं और एक वृद्ध होताहै और कभी ऐसा होताहै कि एकही दोष प्रगट (उल्वण) रूपसे स्थित हो और दो सम हों ॥ १ ॥

दोषोंकी वृद्धिक्षयादिके संक्षिप्त लक्षण।

श्लोक-प्रवृद्धो मारुतः पित्तं प्रकृतिस्थं कफक्षये ॥ गृहीत्वा स्थानतो यत्र यत्रांगेषु विसर्पति ॥ २ ॥ तत्र तत्र स्थिरो दाहः श्रमभेदौ बलक्षयः ॥ क्षीणे पित्ते यदा वायुर्वृद्धावस्थः समः कफः ॥ विदधाति तदा शूलं शैत्यमत्यंतगौरवम् ॥ ३ ॥ वृद्धं कफक्षये पित्तं प्रकृतिस्थं प्रभंजनम् ॥ निरस्य च यथावद्धि दाहः शूलः प्रजायते॥४॥

अर्थ-जब वायु बढा हुआ हो, पित्त सम हो और कफ क्षीण हो तब उसे अपने स्थानसे ग्रहण करके जिस स्थानमें वह प्राप्त हो वहांही दाह, शिथिलता, भेद (दर्द) और बलक्षय होताहै ॥ २ ॥ और पित्त क्षीण, वायु वृद्ध और कफ सम हो तब शूल पैदा हो और शीत हो तथा अत्यंत भारीपन होवे ॥ ३ ॥ और यदि कफ क्षीण हो, पित्त वृद्ध हो और वायु सम हो तो उससे बाहरकी तरफ प्रवृत्त होवे और दाह तथा शूल होवे ॥ ४ ॥

श्लोक-वृद्धं वातक्षये पित्तं प्रकृतिस्थं यदा कफम् ॥ निरुणद्धि तदा तस्य स्युस्तंद्रागौरवज्वराः ॥ ५ ॥ श्लेष्मा वृद्धो यदा वायुः समः पित्तपरिक्षये ॥ निरुद्धः स्यात्तदा तस्य गौरवं शीतकज्वरे ॥ ६ कफानिलक्षये पित्तं प्रकृतिस्थं यदा बलि ॥ निरुणद्धि तदा तस्य मृद्वग्नित्वं शिरोऽन्यथा ॥ ७ ॥ प्रलापो गुरुता तंद्रा निद्रा स्यात्तु मरुत्क्षये ॥ ष्ठीवनं पित्तकफयोर्नखादीनां च पातनम् ॥ ८ ॥ कफपित्तेन संयुक्तो बलहानिं भृशं क्षयम् ॥ करोत्यपाकमरुचिं गौरवं गात्रसादताम् ॥ ९ ॥

अर्थ-वायुके क्षीण होनेमें पित्त बढे और कफ समान रहे तो शरीरको रोंक दे तंद्रा, भारीपन और ज्वर हो ॥ ५ ॥ कफ वृद्ध हो, वायु सम हो और पित्त क्षीण हो तो शरीरको रोंक दे, भारीपन हो और शीतज्वर हो ॥ ६ ॥ और यदि कफ वायु क्षीण हों और पित्त सम होकर बली हो तो अग्नि मृदु हो और शिरमें दर्द हो ॥ ७ ॥ और जो वायु क्षीण होजावे तो प्रलाप, भारीपन, तंद्रा, निद्रा और थूँकमें कफपित्तका आना और नखून गिरना ये लक्षण होतेहें ॥ ८ ॥ और जो वह कफ पित्तसे संयुक्त हो तो बलकी हानि अतिक्षीणता, परिपाक न होना, अरुचि, भारीपन और शरीरमें शिथिलता करताहै ॥ ९ ॥

श्लोक-मारुतेन युतः श्लेष्मा हीनपित्तो यदा भवेत् ॥ करोति मृदुतां वह्नेर्भुक्ते नान्नाभिलाषितः ॥ १० ॥ वेपनं गौरवं स्तंभशैत्यतोदास्तथा चिरात् ॥ शुक्लत्वं च नखादीनां पारुष्यं वपुषोऽपि च ॥ ११ ॥ कुपितौ पित्तपवनौ परिक्षीणः कफो यदा ॥ उद्वेष्टनं श्रमं तोदं कुरुते स्फोटनं तथा ॥ १२ ॥

अर्थ-यदि कफ वायुसे युक्त हो और पित्त हीन होजावे तो अग्निमें मृदुता करे और भोजनकी रुचि न हो ॥ १० ॥ तथा कंप, भारीपन, स्तंभ, शीतता, दरद, नखून आदिमें सपेदी और शरीरमें खरदरापन होजावे ॥ ११ ॥ यदि पित्त और वायु कुपित हों और कफ क्षीण हो तो उद्वेष्टन, श्रम, तोद और स्फोटन (हडफूटन) ये व्याधियां होजावें ॥ १२ ॥

श्लोक-श्लेष्मा भिद्यते स्रोतांसि यदा पित्तानिलक्षये ॥ चेष्टानाशं तदा कुर्यान्मूर्च्छावाग्भंगमेव च ॥ १३ ॥ देहौजः स्रंसयेत्पित्तं वातश्लेष्मक्षये तृषाम् ॥ कुर्यादिंद्रियदौर्बल्यं मूर्च्छां ग्लानिं क्रियाक्षमम् ॥ १४ ॥ मर्माणि पीडयन्वायुः श्लेष्मपित्तपरिक्षये ॥ संज्ञाप्रणाशं कुरुते प्रकंपं विदधाति च ॥ १५ ॥

अर्थ-यदि पित्त और वायु ये क्षय होनेपर कफ स्रोतोंमें प्राप्त हो तो चेष्टाका नाश कर देवे और मूर्च्छा तथा वाणीको भंग करदेवे ॥ १३ ॥ और वायु कफके क्षीण होनेपर पित्त देह और ओजमें समाश्रित हो तो तृषा और इंद्रियोंमें दुर्बलता, मूर्च्छा, ग्लानि तथा क्रियाओंमें अक्षमता (कोई काम नहीं किया जाना, इंद्रिय शिथिल होना) ये लक्षण होते हैं ॥ १४ ॥ और यदि कफ पित्त क्षीण हो जानेपर वायु मर्मस्थानोंको पीडित करे (मर्मस्थानोंमें प्राप्त हो) तो संज्ञानाश (मूर्च्छा बेहोशी) कर देवे तथा कंप करदे (शरीर काँपने लगे) ॥ १५ ॥

(वक्तव्य १) वायु, पित्त और कफकी वृद्धिक्षयके लक्षण पहले सूत्रस्थानके पंद्रहवें (१५) अध्यायमें लिखे जाचुके हैं और मिश्रितके लक्षण संक्षेपसे यहाँ लिखे हैं इन्हें विचार कर चिकित्सा करनी चाहिये यही मुख्य प्रयोजन है ॥

(वक्तव्य २) इस अध्यायमें जो श्रीधन्वंतरिजीने कहा है कि इस संहितामें ११२० रोग कहे हैं और ५७३ द्रव्य औषधादि हैं जिस पर रोगोंकी गणनाके कुछ श्लोक निबंधसंग्रहटीकामें लिखे हैं, परंतु न जाने क्या कारण है कि बहुत जगह उनकी रोगसंख्या मूलसंहिताकी रोगसंख्यासे नहीं मिलती. जैसे संहितामें क्लैब्य ६ प्रकारका लिखा है और इस गणनामें ४ प्रकारका, इस प्रकारकी कई जगह गड़बड है इससे हमनें उन्हें यहाँ नहीं लिखा और उनका लिखना कुछ

(श्लो० ११) मारुतेन युतः श्लेष्मा तथा हीनपित्तः श्लेष्मा चेत् । अत्र मारुतेन युतश्चेत्तदा वह्नेर्मृदुतां करोति भुंक्ते अनभिलाषितश्च । तथा हीनपित्तः श्लेष्मा हीनं पित्तं यस्मिन् एवंभूतः श्लेष्मा गौरवं वेपनं स्तंभादींश्च करोतीत्यर्थः ।

विशेष आवश्यक भी नहीं था क्योंकि संहितामें सब रोगोंकी गणना अपने अपने स्थानपर मौजूद ही है ॥

यद्यपि श्रीधन्वंतरिजीने स्थूलतासे जितने रोग इस संहितामें लिखे हैं तथा जितने द्रव्यासे इसमें काम लिया है उनकी गणनाकी संख्या मात्र बतादी है, नहीं तो वास्तवमें विचार करदेखें तो रोगभी देश समय और प्रकृति, तथा दोषोंके अंशांश आदिके कारण असंख्य हैं तथा देश, देशकी प्रकृति जल, पवन तथा समय समयके उद्भिज्ज और जांतविक पदार्थोंकी न्यूनाधिकता तथा सूर्य, चंद्र, तारा, पृथिवी, पर्वत, समुद्र इत्यादिके हेर फेरसे अनेकानेक व्याधियाँ नवीन तथा रूपान्तरप्राप्त भी हुआही करती हैं. जिनकी गणना और संख्या कदापि नहीं कही जा सकती और इसीप्रकार द्रव्य (वस्तु औषधादि) भी असंख्य हैं उनकीभी संख्या और गणना नहीं होसकती ॥

(वक्तव्य ३) हमारा विचार था कि टीकामें हरेक रोगके साथ डाक्टरी और यूनानीसे उसका पूरा विवेचन और यत्न लिखें. परंतु यह बात नहीं होसकी क्योंकि विवेचन उनका उनके मतसे प्रायः और ही और ढंगसे है और उनके विवेचन और यत्नका बहुधा मार्ग ही दूसरा है जो यहां लिखा जानेमें पूरा संबंधित नहीं होता इसीसे कुछ कहीं २ नाम मात्र डाक्टरी यूनानीसे लिख दियेहैं विशेष भेद और उनकी चिकित्सा विना उनकी विद्याके ग्रंथ पढे ठीक समझमें नहीं आसकती. इसीसे हमने उनका विस्तार बहुत नहीं लिखा और औषधें भी डाक्टरी यूनानीकी नहीं लिखीं इस कारणसे कि विना उस क्रमसे रोगका और औषधका पूर्ण तत्त्व पाये उपयोग करना ठीक नहीं होताहै हां जितना कुछ हमने टीकामें डाक्टरी यूनानीका मत लिखाहै और शारीरककी टीकाके साथमें डाक्टरी और यूनानी मतके शारीरकका संक्षेप वर्णन किया है वह इस समयके वैद्योंको बहुतही आवश्यक और उपयोगी है और इसी प्रकार गूढ पदों और आशयों पर संस्कृतटिप्पणी तथा वक्तव्य और ग्रंथांतरकी आवश्यकीय बातें जाननेके लिये परिशिष्ट ये भी इसके पाठकोंके लिये अति उपयोगी और आनंदवर्द्धक होंगे ॥

इति सुश्रुतसंहितायां राजवैद्यपंडितमुरलीधरशर्मविरचितसान्वयसटिप्पणीकसपरिशिष्ट-भाषाटीकायामुत्तरतंत्रे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

पूर्ति श्लोक ।

श्लोक–दिल्लीप्रांते पवित्रे स्फुरकनगरके वासमाकुर्वतैव
शैलानाराजधान्यां नरपतिसदसि प्राश्रितो राजवैद्यः ॥
तेनेदं सुश्रुतस्य स्वजनपदगिरा टीकयालंकृतस्य
पूर्तिं चागाच्छुभाय प्रभवतु भिषजामुत्तरं तंत्रमुख्यम् ॥ १ ॥

(श्लो० १) स्वजनपदगिरा स्वदेशभाषया ।

अर्थ-दिल्लीप्रांत पवित्रदेशमें स्फुरक नगर (फरुखनगर) नामक ग्रामके निवासी जो सैलाना राजधानीके महाराजाधिराजकी सभाके समाश्रित राजवैद्य पं० मुरलीधरशर्मा हैं उनने यह सुश्रुतसंहिताकी उत्तम भाषाटीका बनाकर उसका श्रेष्ठ "उत्तरतन्त्र" समाप्त किया जो वैद्यजनोंको तथा सबको शुभदायक हो ॥ १ ॥

श्लोक-रसेषुनंदचन्द्रेऽब्दे चैत्रशुक्लेऽष्टमे तिथौ ॥
टीकापूर्तिमगाच्चेयं मुरलीधरशर्मणः ॥ २ ॥
श्रेष्ठिना क्षेमराजेन स्वकीये मुद्रणालये ॥
श्रीवेङ्कटेश्वराभिख्ये मुद्रयित्वा प्रकाशितः ॥ ३ ॥

अर्थ-संवत् १९५६ की चैत्रशुक्ला अष्टमीको पण्डितमुरलीधरशर्मकृत सुश्रुतसंहिताकी भाषाटीका समाप्त हुई ॥ २ ॥ जिसको श्रीयुत सेठ क्षेमराज श्रीकृष्णदासजीने निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्प्रेसमें छापकर प्रकाशित किया ।

॥ समाप्तमिदमुत्तरतन्त्रम् ॥

॥ समाप्तोयं ग्रन्थः ॥

सूचना ।

सुश्रुत संहिताके सान्वय टीकाकार—आयुर्वेदविद्यालय दिल्लीके परीक्षक—अनेक बडे बडे राजों महाराजोंकी चिकित्सासे सुयशप्राप्त भारतके प्रसिद्ध राजवैद्य पं० मुरलीधर-शर्माके आरोग्यसुधाकर कार्यालय फर्रुख-नगरकी सिद्ध औषधोंका—

निदर्शनपत्र.

"तुलसी बटी"—तुलसीमें अनन्त गुणोंके होनेहीसे विद्वानोंमें इसका महान् आदर और परम पवित्र पूज्य पदवी प्राप्त है इसीके चमत्कारिक योगसे ये तुलसी-बटी बनती है यह "तुलसी बटी" सब प्रकारके ज्वर तथा वातरोग (कमर और घुटने आदिके दर्द, गठिया आदि), कफरोग, शीतांगसान्निपात, प्रमेह, निर्बलता सुस्ती, आलस्य, सरदी, मन्दबुद्धिता, उन्माद, मेदोरोग, रक्तदोष और कुष्ठ आदिको दूरकर पाचनशक्तिको बढा शरीरको पुष्ट करतीहै और सुखपूर्वक आयुको बढाती है—दाम २०० गोलीके १।) मात्र हैं।

विधि—तुलसीबटी सरदीसे चढनेवाले ज्वरोंमें तप चढनेसे एक घंटा पहिले १ या २ गोली एक या दो घूँट गरम पानीके साथ देना और विना सरदीसे चढने-वाले तपमें बुझे पानीसे देना बे समय चढनेवाले तथा जीर्णज्वरमें सबेरे १ गोली चिरायतेके अर्कसे देना। वातरोगोंमें सबेरे व रातको गरम गोदुग्धसे या रास्नादि-क्वाथसे। देना आलस्य, सुस्ती व सरदी मिटाने (चाहके फायदे) को गरम दूधसे देना। उन्माद, मृगी, योषापस्मार (स्त्रियोंका हिस्टरया) इत्यादि दूर करनेको और बुद्धि तीव्र होनेको ब्राह्मीके अर्कसे देना। प्रमेह, मेदोरोग, रक्तविकार, कुष्ठ इनमें चिरायतेके अर्कसे या त्रिफलाके शीतकषायके संग सेवन करना। शीतांग सन्नि-पातमें अदरक या पानके ३ मासे रसमें देना। पुष्टाईके लिये मलाई और मिसरीके साथ देना। यदि नीरोग मनुष्य भी इस तुलसीबटीकी एक गोलीको नित्य जलके साथ सेवन करे और पथ्यसे रहे तो कोई तरहकी बीमारी तप व महामारी वगैरह नहीं होती और बुद्धिमें निर्मलता, शरीरमें फुरतीपना तथा दीर्घ आयु होतीहै॥

नयनामृत अंजन—धुन्ध आदि नेत्रोंके अनेक रोगोंका नाशक है तन्दुर-स्तीमें लगानेसे बुढापेतक दृष्टि तेज बनी रहती है। पानी उतरना, मोतियाबिन्दु आदि कोई बीमारी नहीं होती इसका अनुपम गुण २२ वर्षसे प्रसिद्ध है यह हजारों, लाखों मनुष्योंको फायदा पहुँचारहा है दाम १) तोला॥

विधि—ताजे ठंढे पानीसे, मुह आखें धोकर साफ करके सबेरे साम सलाईसे दोनों नेत्रोंमें लगाना (सरदीमें मुह भी न धोवे तो कुछ हानि नहीं)

बृंहणचूर्ण–सब प्रकारके प्रमेह, क्षय, क्षीणता, निर्बलता, क्षयज खांसी, सूखी खांसी, श्वास और स्वरभंगको दूर करता है। धातु और शरीरको परम पुष्ट करता है। बल पुरुषार्थ बढानेमें जैसा उत्तम है लिख नहीं सकते, दाम १० तोलेके १॥) रु० महसूल अलग देना होगा ॥

विधि–प्रमेह और क्षीणता दूर करनेको तथा धातुपुष्टिको ४ माशेसे ६ माशे तक और खांसी, श्वास, स्वरभंग आदिमें ३ माशे चूर्ण सवेरे साम गोदुग्धसे (लेना चूर्ण मुहमें डालके दूधकी घूँटसे घोलके पीजाना बाकी दूध ऊपरसे पीलेना) दूध सवेरे १० तोले और रातको पावभर तक लेना। दूध सरदीमें गरम और गरमीमें गरम करके ठंढा किया हो और दूधमें मीठा भी थोडा यथारुचि डाल सकते हैं ॥

मूत्रशोधनी सिद्धशिलाजीत बटी–मूत्रमें पीब, रुधिर, शुक्र, शर्करा, टीस, जलन, कुछी हो, सुजाक, प्रमेह, पथरी, स्त्रियोंके प्रदर सबको अवश्यही आराम करती है। पुरुषोंके वीर्यदोष मूत्रदोष, और स्त्रियोंके दोष मिटा रक्त शुद्धकर पाचन शक्ति बढा शरीरको पुष्ट और सुंदर बनादेती है–मूल्य ४० गुटीका २) रु०

विधि–साधारण यह है कि १ या २ गुटी ताजे गोदुग्धसे दोनों वक्त निगलो दूधमें थोडा मीठा भी डालसकते हैं.

आरोग्यसुधा द्राव–यह औषध क्या है चमत्कार है विच्छू, भिड, भमरी, व मक्खी आदिके काटेपर मलतेही आराम होताहै। शिर, पसली, छाती, कमर, घुटने आदि किन्हीं स्थानोंमें कैसाही दर्द क्यों न हो सबको दूर करता है। अकड, बादी, शीत, प्रेगग्रंथि इन सबपर लगानेसे जादूकासा प्रभाव दिखाता है तथा अजीर्ण, मंदाग्नि आफरा, पेटका दर्द, जी मिचलाना, विसूची (हैजा), गुल्म, उदररोग, हिचकी, कफ, खांसी, वातरोग इन सबको रामबाणकी तरह आराम करता है मूल्य ॥) शीशी पर अकेली ४ शीशीसे कम नहीं देते.

विधि–बिच्छू आदिके काटेपर फोयेसे लगाकर मलना और अजीर्ण आदिमें १ । २ बूंद बताशेमें खाना ॥

महापाचन बटी–अजीर्ण, मंदाग्नि, अरुचि, अफरा, पेटका दर्द, जी मिचलाना, विसूची इन सबको शीघ्र आराम करती है मूल्य ।) तो० ।

विधि–अरुचि हो, भूख न लगे तो भोजनसे पहले १ गोली खाना, भोजन पचता न हो तो भोजनके पीछे खाना। पेटके दर्द, अफरा आदिमें व्याधिके समय १ । २ । ३ तक खासकते हैं, यूंही जी खुस करनेको भी १ गोली खाना ऊपरसे एक दो चुल्लू पानी भी पीना। यह परम रोचक पाचक और स्वादिष्ठ है।

पता–पं० मुरलीधर शर्मा राजवैद्य,
आरोग्यसुधाकर कार्य्यालय फर्रुखनगर पञ्जाब.

पुस्तक मिलनेका पता–खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस–बम्बई.

ॐ

सुश्रुतसंहिता।

श्रीधन्वन्तरिभगवता समुपदिष्टा तच्छि-
ष्येण सुश्रुतेन विरचिता।

सा च

आरोग्यसुधाकरसंपादकेन फर्रुखनगरनिवा-
सिना पण्डितमुरलीधरशर्मणा राजवैद्येन
सान्वय-सटिप्पणीक-सपरिशिष्टया
भाषाटीकया सम्भूषिता।

तत्र

४-चिकित्सितस्थानं ५-कल्पस्थानं च,

टीकाकारेण पुनः संशोधितं

तदिदं स्थानद्वयं

क्षेमराज-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

मुम्बय्यां
(खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लैन)
स्वकीये 'श्रीवेङ्कटेश्वर' (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालये
द्वितीयावृत्तौ-मुद्रयित्वा प्रकाशितम्।

संवत् १९६८, शके १८३३, सन् १९११.

प्रवृत्त होनेमें समयका क्रम होताहै जिससे सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थिक होतेहैं । इनमेंसे क्षीणके विपर्यय विषमज्वर बहुतही कष्टसाध्य होतेहैं ॥

ज्वरके वेगपर दृष्टांत ।

वातेनोद्धूयमानस्तु यथा पूर्येत सागरः ॥ वातेनोदीरितास्तद्वद्दोषाः कुर्वंति वै ज्वरान् ॥ ६७ ॥ यथा वेगागमे वेलां छादयित्वा महोदधेः ॥ वेगहानौ तदेवांभस्तत्रैवांतर्निधीयते ॥ ६८ ॥ दोषवेगोदये तद्वदुदीर्येत ज्वरोऽस्य वा ॥ वेगहानौ प्रशाम्येत यथांतः सागरे तथा ॥ ६९ ॥

जैसे वायुके वेगसे संचालित हुआ समुद्र पूरित होताहै (झालें उठती और फैल जातीहैं) उसी तरह वायुसे उदीरित किये हुए (उठाये और प्रेरित किये हुए) दोष ज्वरको करतेहैं ॥ ६७ ॥ जैसे समुद्रके उभार आनेपर जल किनारोंके ऊपरतक छाजाताहै और उभारके उतर जानेपर वह जल उसीमें पीछेको फिर लीन होजाताहै ॥ ६८ ॥ इसी प्रकार दोषोंके वेग होनेके समय ज्वर प्रचंड होता है और वेगके शांत होने पर ज्वरभी शांत होजाता है जैसे समुद्रका जल उभारके घटनेसे उसीमें लय होजाता है ॥ ६९ ॥

आगंतुक ज्वरका वर्णन ।

विविधेनाभिघातेन ज्वरो यः संप्रवर्तते ॥ यथा दोषप्रकोपं तु तथा मन्येत तं ज्वरम् ॥ ७० ॥ श्यावास्यता विषकृते दाहातीसारहृद्ग्रहाः ॥ अभक्तारुक् पिपासा च तोदो मूर्च्छा बलक्षयः ॥ ७१ ॥ ओषधीगंधजे मूर्च्छा शिरोरुक् क्षवथुस्तथा ॥ ७२ ॥ कामजे चित्तविभ्रंशस्तंद्रालस्यमभक्तरुक् ॥ हृदये वेदना चाशु गात्रं च परिशुष्यति ॥ ७३ ॥ भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः ॥ अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णाभिजायते ॥ ७४ ॥ भूताभिषंगादुद्वेगहास्यकंपनरोदनम् ॥ ७५ ॥ श्रमक्षयाभिघातेभ्यो देहिनां कुपितोऽनिलः ॥ पूरयित्वाखिलं देहं ज्वरमापादयेद्भृशम् ॥ ७६ ॥

नाना प्रकारके अभिघातोंसे (चोट आदि लगनेसे) जो ज्वर होताहै वह जिस जिसके कोपसे होताहै उसको उसी प्रकारके लक्षणवाला समझना चाहिये ॥ ७० ॥

और विषके प्रभावसे जो ज्वर होताहै उसमें मुँह काला पडजाता है, दाह होताहै, अतिसार होताहै, हृदय पकडा हुआसा होताहै और भोजन किया नहीं जाता जिससे वेदना होतीहै और तृषा तथा तोद (पीडा दरद) होताहै, मूर्च्छा (बेहोशी) होतीहै और बलका क्षय होजाताहै ॥ ७१ ॥ तीक्ष्ण औषधीके गंधसे होनेवाले ज्वरमें मूर्च्छा, शिरमें दरद और छींक आना ये लक्षण होतेहैं ('क्षव' का अर्थ डल्लन मिश्रजीने हिक्का लिखा है और "क्षवथुस्तथा" की जगह "वमथुः क्षवः" ऐसा पाठ माना है अर्थात् वमन हो और क्षव अर्थात् हिक्का हो ऐसा लिखा है) ॥ ७२ ॥ कामजनित ज्वरमें चित्तभ्रंश, तंद्रा, आलस्य, अरुचि, हृदयमें वेदना, शरीर सूख जाना ये लक्षण होतेहैं ॥ ७३ ॥ भयज्वर और शोकज्वरमें प्रलाप होताहै और कोपजनित ज्वरमें कंप होताहै, अभिचारज्वर और शापजनित ज्वरमें मोह (मूर्च्छा) और तृषा अधिक होतीहै, भूतबाधा और देवादिबाधाजनित ज्वरमें उद्वेग, हास्य, कंप और रुदन करना ये लक्षण होतेहैं (कोई मारणादि तंत्र मंत्र करे वह अभिचार और साधु महात्मादि दुःखी होकर शाप देवें वह अभिशाप कहाता है) ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ श्रमसे, क्षयसे और अभिघातसे मनुष्योंके शरीरमें वायु कुपित होताहै वह कुपित वायु (ऊष्मायुक्त होकर) जब सब देहमें व्याप्त होताहै तब तीव्र ज्वर उत्पन्न करताहै ॥ ७६ ॥

रोगाणां तु समुत्थानाद्विदाहागंतुतस्तथा ॥
ज्वरोऽपरः संभवति तैस्तैरन्यैश्च हेतुभिः ॥
दोषाणां स तु लिंगानि कदाचिन्नातिवर्तते ॥ ७७ ॥

रोगोंके उठनेसे जैसे विद्रध्यादिके उठावपर ज्वर होआता है तथा विदाहसे उनके पकावके समय तथा आगंतु कारण उनपर अभिघात होनेसे इत्यादि कारणोंसे भी ज्वर हो जाताहै परन्तु वह भी दोषोंके चिह्नोंसे पृथक् नहीं होता (उसमें भी उसके कारणरूप वातादि दोषोंके लक्षण होते हैं) तथा अन्य हेतुओं (अजीर्ण आदि) से भी ज्वर होताहै उसमें भी दोषोंके लक्षण होते हैं ॥ ७७ ॥

धातुगत ज्वरके लक्षण ।

रसस्थे तु ज्वरे वत्स लक्षणानि निबोध मे ॥ गुरुत्वं दैन्यमुत्क्लेशः

(श्लो० ७७) अत्र तैस्तैरन्यैश्च हेतुभिरिति–अजीर्णादिभिः तत्र अजीर्णज्वरलक्षणं ग्रंथातरात्— "अजीर्णज्वरो लक्षणैरष्टभिर्वा भिषक्छ्रेष्ठैर्ज्ञायते सप्तभिर्वा ॥ अतीसार उद्गार तृष्णानिद्रा शिरोर्तिः प्रलापो हि जृंभोदरे रुक् ॥ १ ॥" (इति भि० च०)

स्यंदनं छर्द्यरोचकौ ॥ ७८ ॥ रागः कूपिटिका तृष्णा सरक्तष्ठीवनं भ्रमः॥ दाहो मूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिः प्रलापो रक्तसंस्थिते ॥७९॥ पिंडिकोद्वेष्टनं तृष्णा सृष्टमूत्रपुरीषता ॥ उष्मांतर्मोहविक्षेपौ ग्लानिः स्यान्मांसगे ज्वरे ॥ ८० ॥ बर्च्चस्तीव्रः पिपासा च मूर्च्छा छर्दिः प्रलापता ॥ गंधस्य वाऽसहत्वं च मेदस्थे ग्लान्यरोचकौ ॥ ८१ ॥ विरेकवमने चोभौ त्वस्थिभेदः प्रपीडनम् ॥ विक्षेपणं च गात्राणां श्वासश्चास्थिगते ज्वरे ॥ ८२ ॥ हिक्का कासो महाश्वासस्तमस्य हि प्रवेशनम् ॥ मर्मभेदो बहिः शैत्यं दाहोंतश्चैव मज्जगे ॥ ८३ ॥ तस्मान्मरणमाप्नोति शुक्रस्याप्युपसर्पणे ॥ शेफसस्तूच्चता मोक्षः शुक्रस्य तु विशेषतः ॥ ८४ ॥

श्रीधन्वंतरिजी कहते हैं हे वत्स सुश्रुत ! रसमें प्राप्त हुए ज्वरके लक्षण मुझसे सुनो, इसमें गुरुता, दीनता, उबकाई, अभिष्यंद, छर्दि, अरुचि ये लक्षण होतेहैं ॥ ॥ ७८ ॥ शरीर और चेहरेपर अरुणता मालूम पडे छोटी २ फुन्सियां हों, तृषा हो, मुँहसे रुधिर थूके, भ्रम हो, दाह, मूर्च्छा, अरुचि, छर्दि और प्रलाप हो ये रक्तगत ज्वरके लक्षण हैं ॥ ७९ ॥ पिंडली भड़के, तृषा हो, मल पतला हो और मूत्रभी अधिक उतरे, भीतर गरमी रहेऔर मोह हो, उठकर चलने या खडे होनेमें गिर गिर पडे और ग्लानि रहे ये लक्षण मांसगत ज्वरके हैं ॥ ८० ॥ तीव्र बंधता होनी, तृषा, मूर्च्छा, छर्दि, प्रलाप, गंधका असहत्व (उसमें असहन योग्य दुर्गंध आवे अथवा उसकी कोई गंध सहे नहीं), ग्लानि और अरुचि हो ये लक्षण मेदोगत ज्वरके हैं ॥ ८१ ॥ अतिसार और वमन दोनों हों, अस्थियोंमें भेदन और पीडा हो, शरीरमें विक्षेप हो (हाथ, पांव आदि देदे मारे), श्वास भी हो ये लक्षण अस्थिगत (हड्डियोंमें प्रविष्ट हुए) ज्वरके हैं ॥ ८२ ॥ हिचकी, खाँसी, महाश्वास ये हों, अँधेरी आवे, मर्मोंका भेदन हो, बाहर शीत और अन्तर्दाह हो ये लक्षण मज्जागत ज्वरके होतेहैं ॥ ८३ ॥ मेढ्रकी उच्चता और अत्यन्त शुक्रका

(श्लो० ७८ से ८४ तक) केषुचित्पुस्तकेषु एष पाठो न पठितः परंतु श्रीमता डल्लनाचार्येणेति लिखितम्-केचिदत्र रसादिधातुगतस्य लक्षण पठति-"रसस्थे तु ज्वरे वत्स लक्षणानि निबोध मे" इत्यादि। अनेनैव हेतुना मयापि लिखितः। अत्र जेज्जटाचार्यस्याभिमतमेतत्-इति पाठो न पठनीयः। यतः सर्वशरीर सन्ततेन व्याप्तं सततादिभिश्च रसादिगतेन कालक्रम एव। अत एव रसादिस्थज्वराणां पाठो न तु पठनीयः। परं च गयदासाचार्येण पुनः पठनीयः इत्युक्तः यत्र कुत्रचित्पाठांतर कृत्वा पठित एव तस्मादेव मयापि पठितः पठनीय एव च ज्ञायते (श्लो० ७९) कूपिटिका राजिकाकृतिसूक्ष्मपिडिकापरिदर्शनम् ॥

निकलना और शुक्रका उपसर्पण होनेपर मृत्यु होजातीहै अर्थात् ये लक्षण शुक्रगत ज्वरके हैं (और मज्जागत तथा शुक्रगत ज्वर असाध्य होतेहैं) (यद्यपि ७८ वें श्लोकसे लेकर ८४ वें श्लोक पर्य्यन्त जो पाठ है वह बहुतसी पुस्तकोंमें नहीं है परन्तु निबंधसंग्रहमें स्वीकार किया है इससे आर्ष मानकर मैंने भी इसे मूलमें लिखा है) ॥ ८४ ॥

(वक्तव्य) पहले विषमज्वरोंमें "सततो रसरक्तस्थः सोन्येद्युः पिशिताश्रितः ॥ मेदोगतस्तृतीयेह्नि त्वस्थिमज्जागतः पुनः" इत्यादि लिख चुके हैं फिर यहां धातुगत कैसे ? इसका समाधान यह है कि वहां तो दोष (ऊष्मा) के परमाणु तिर्य्यग्गामी होकर उन धातुओंमें ठहरजाते हैं किसी धातुको दूषित इतना नहीं करते, अनुलोम होनेसे इतने कष्टसाध्य भी नहीं होते हैं और यह रसगत रसको दूषित करके रक्तमें पहुँचता है फिर रक्तको दूषित कर मांसगत होता है फिर उसे भी दूषितकर मेदोगत होता है फिर वहांसे अस्थि और मज्जा आदिमें पहुँचजाता है यह ऊपर ऊपरकी धातुओंको बिगाड़कर भीतरको प्रतिलोम गमन करताहै इससे जितना जितना भीतरी धातुओंमें पहुँचता है उतनाही उतना कष्टसाध्य और असाध्य होता जाता है॥

गंभीर और असाध्य ज्वर।

गंभीरस्तु ज्वरो ज्ञेयो ह्यंतर्दाहेन तृष्णया ॥ आनद्धत्वेन चात्यर्थं श्वासकासोद्गमेन च ॥ ८५ ॥ हतप्रभेंद्रियं क्षामं दुरात्मानमुपद्रुतम् ॥ गंभीरं तीक्ष्णवेगार्तं ज्वरितं परिवर्जयेत् ॥ ८६ ॥

ऐसे ज्वरको गम्भीर जानना चाहिये जिसमें अंतर्दाह हो, तृषा अधिक हो, आनद्धता हो (दोष और मल जहांके तहां रुकेसे हों) और श्वास और खांसीका अत्यन्त वेग हो ॥ ८५ ॥ जिसकी कांति और इन्द्रियां भ्रष्ट होगई हों, दुर्बल हो, जिसका चित्त दुष्ट हो, उपद्रव (हिचकी आदि) विशेष हों और ज्वरका वेग भी गम्भीर और तीक्ष्ण हो ऐसे ज्वरवालेको त्याग देना चाहिये (अर्थात् असाध्य होता है) ॥ ८६ ॥

हीनमध्याधिकैर्दोषैस्त्रिसप्तद्वादशाहिकः ॥
ज्वरवेगो भवेत्तीव्रो यथापूर्वं सुखप्रियः ॥ ८७ ॥

हीन और मध्य तथा अधिक दोषोंसे तीन दिन, सात दिन और बारह दिन ज्वरका वेग होता है जो यथापूर्व सुखसाध्य होता है अर्थात् बारह दिन वालेसे तीव्र वेग सात दिनवाला सुखसाध्य है और सात दिनवालेसे तीव्र वेग तीन दिनवाला सुखसाध्य होता है ॥ ८७ ॥

परिशिष्ट ।

जीर्णज्वरके लक्षण ।

श्लोक-यो द्वादशेभ्यो दिवसेभ्य ऊर्द्ध्व दोषत्रयेभ्यो द्विगुणेभ्य ऊर्द्ध्वम् ॥
नृणां तनौ तिष्ठति मंदवेगो भिषग्भिरुक्तो ज्वर एव जीर्णः॥ १॥ (भा० प्र०)

अर्थ-जो मंद वेगवाला ज्वर बारह दिनसे ऊपर तथा तीनों दोषोंके दिनोंसे दुगुने दिनसे ऊपर मनुष्योंके शरीरमें स्थिर होजाय उसे वैद्य जीर्णज्वर कहते हैं (कई वातबलासकको, कई प्रलेपकको, कई हतावशेषको जीर्णज्वर मानते हैं)॥ १॥

ज्वरकी चिकित्साका आरंभ ।

इति ज्वराः समाख्याताः कर्मेदानीं प्रवक्ष्यते ॥ ८८ ॥

ज्वरके हेतु, संप्राप्ति और लक्षणादि (निदान) का वर्णन समाप्त हुआ अब यहांसे अगाडी इसकी चिकित्साका विधान कहेंगे ॥ ८८ ॥

ज्वरके पूर्वरूपमें कर्तव्य ।

ज्वरस्य पूर्वरूपेषु वर्तमानेषु बुद्धिमान् ॥ पाययेत घृतं स्वच्छं ततः स लभते सुखम् ॥ ८९ ॥ विधिर्मारुतजेष्वेष पैत्तिकेषु विरेचनम् ॥ मृदु प्रच्छर्दनं तद्वत्कफजेषु विधीयते ॥ सर्वं त्रिदोषजेषूक्तं यथादोषं विकल्पयेत् ॥ ९० ॥

ज्वरका पूर्वरूप होतेही (अर्थात् निरामवातज्वरके पूर्वरूपमें) बुद्धिमान् वैद्य स्वच्छ (केवल पुराना) घृत पान करावे ऐसा करनेसे सुख प्राप्त होता है ॥ ८९ ॥ यह घृत पिलानेकी विधि केवल वातज्वरहीके पूर्वरूपमें उचित है और पित्तज्वरके पूर्वरूपमें मृदु विरेचन देना चाहिये और कफज्वरके पूर्वरूपमें इसी भांति मृदु वमन कराना योग्य है और त्रिदोषज (और द्वंद्वज) ज्वरोंके पूर्वरूपमें उक्त विधियोंमेंसे दोषोंके अनुसार विधि करनी चाहिये ॥ ९० ॥

(साम, निराम, पित्त और कफके लक्षण सूत्रस्थानके २१ वें अध्यायमें तथा टिप्पणीमें लिख चुकेहैं वायुके साम, निराम भेद अब टिप्पणीमें लिखते हैं-देखो टिप्पणी)

अस्नेहनीयोऽशोध्यश्च संयोज्यो लंघनादिना ॥
रूपप्राग्रूपयोर्विद्यान्नानात्वं वह्निधूमवत् ॥ ९१ ॥

(श्लो० ९०) विधिर्मारुतजे इति-निरामे मारुतजे तत्र सामस्य निरामस्य च वायोर्लक्षणं यथा-"वायुः सामो विबंधाग्निसादतंद्रान्त्रकूजनैः ॥ वेदनाशोथनिस्तोदैः क्रमशोऽङ्गानि पीडयेत् ॥ १ ॥ विचरेद्युगपच्चापि गृह्णाति कुपितो भृशम् ॥ स्नेहाद्यैर्वृद्धिमायाति मेघसूर्योदये निशि ॥ २ ॥" निरामस्य लक्षणम्-"निरामो विशदो रूक्षो निर्गंधोऽल्पवेदनः ॥ विपरीतगुणैः स्निग्धैः शांति याति विशेषतः ॥ १॥" (इति भा० प्र०)

जिनको स्नेहपान नहीं कराना हो तथा जिसे विरेचन अथवा वमन भी नहीं कराना हो उसे लंघन आदि कराना चाहिये यहां 'आदि' शब्दसे उष्ण जल पान कराने इत्यादिका ग्रहण करना चाहिये (नवीन ज्वरमें जब शोधनका निषेध है तो पूर्वरूपमें उसकी आज्ञा कैसे दीगई इसी लिये लिखा है कि) रूप और पूर्वरूपमें अग्नि और धूमकी भांति पृथक्त्व है ऐसा जानना इसीसे आज्ञा है ॥ ९१ ॥

(वक्तव्य) यह है कि पूर्वरूपमें प्रायः दोष आमाशयहीमें होताहै इससे शोधनसे शुद्ध होजाताहै और प्रगटरूपमें रसस्वेद वहां शिराओं द्वारा त्वचाकी तरफ प्रवृत्त होजाताहै उस अवस्थामें शोधनसे प्रतिलोम होकर धात्वंतरमें गमन करके विषम और धातुगत कष्टसाध्य होजाता है ॥

ज्वरके प्राकट्यमें चिकित्सा ।

प्रव्यक्तरूपेषु हितमेकांतेनोपतर्पणम् ॥ आमाशयस्थे दोषे तु सोत्क्लेशे वमनं परम् ॥ ९२ ॥ आनद्धस्तिमितैर्दोषैर्यावंतं कालमातुरः ॥ कुर्यादनशनं तावत्ततः संसर्गमाचरेत् ॥ ९३ ॥

ज्वरका रूप प्रगट होनेपर तो निःसंशयतासे अपतर्पण (लंघन) करना ही हित है और यदि उत्क्लेश सहित दोष आमाशयमें हो तो वमन करना ही परम हित है ॥ ९२ ॥ जबतक रोगी ठहरे हुए दूषित दोषोंसे आनद्ध हो (अर्थात् रुकाहुआ या व्याप्त हो) उतने दिन या समय तक उसे लंघन करना चाहिये इसके पीछे अन्नका संसर्ग करे (लघु भोजन करे) ॥ ९३ ॥

लंघनका निषेध ।

न लंघयेन्मारुतजे क्षयजे मानसे तथा ॥
अलंघ्याश्चापि ये पूर्वं द्विव्रणीये प्रकीर्तिताः ॥ ९४ ॥

वातज्वरमें, क्षयज्वरमें तथा मानसिक (कामज्वर, शोकज्वर आदि) ज्वरमें लंघन कराना उचित नहीं तथा जो द्विव्रणीय अध्यायमें लंघनसे वर्जित कहे हैं उन्हेंभी लंघन नहीं करावे ॥ ९४ ॥

लंघनके गुण ।

अनवस्थितदोषाग्नेर्लंघनं दोषपाचनम् ॥
ज्वरघ्नं दीपनं कांक्षारुचिलाघवकारकम् ॥ ९५ ॥

जिस मनुष्यके दोष और अग्नि यथार्थ न हों उसके लंघनसे दोषोंका परिपाक

(श्लो० ९३) ततः संसर्गमाचरेत् इति–लंघनानन्तरं लघुभोजनस्य संसर्गं कुर्यात् ॥

होजाताहै, लंघन ज्वरका नाश करनेवाला, दीपन कांक्षा, रुचि और हलकापन करता है ॥ ९५ ॥

सम्यक् लंघन और अतिलंघनके लक्षण ।

सृष्टमारुतविण्मूत्रं क्षुत्पिपासाऽसहं लघुम् ॥ प्रसन्नात्मेंद्रियं क्षामं नरं विद्यात्सुलंघितम् ॥ ९६ ॥ बलक्षयस्तृषाशोषस्तंद्रानिद्राभ्रमक्लमाः ॥ उपद्रवाश्च श्वासाद्याः संभवंत्यतिलंघनात् ॥ ९७ ॥

अधोवायु, मल और मूत्रका त्याग ठीक हो, क्षुधा, तृषा सही नहीं जावे, हलकापन होजावे, आत्मा और इंद्रिय सब प्रसन्न हों, क्षामता (कुछ दुर्बलता) होजावे तो जानना कि इसे ठीक लंघन हुए (अर्थात् योग्य लंघनके ये लक्षण हैं) ॥९६॥ बलका नाश होजावे, तृषा अधिक हो, शोष (खुश्की) होजावे, तंद्रा और निद्रा तथा भ्रम और क्लम तथा श्वासादि उपद्रव अति लंघनसे हो जातेहैं (कई इसमें "निद्रा' की जगह 'अनिद्रा' मानते हैं) ॥ ९७ ॥

उष्ण जल और शृतका उपयोग ।

दीपनं कफविच्छेदि पित्तवातानुलोमनम् ॥ कफवातज्वरार्तेभ्यो हितमुष्णांबु तृट्छिदम् ॥ ९८ ॥ तद्धि मार्दवकृद्दोषस्रोतसां शीतमन्यथा ॥ सेव्यमानेन तोयेन ज्वरः शीतेन वर्द्धते ॥ ९९ ॥ पित्तमद्यविषोत्थेषु शीतलं तिक्तकैः शृतम् ॥ गांगेयनागरोशीरपर्पटोदीच्यचंदनैः ॥ १०० ॥

उष्ण जल दीपन है, कफका छेदन करनेवाला और पित्त तथा वायुको अनुलोमन करता है यह कफज्वर और वातज्वरके रोगियोंको हितकारक है और तृषाको शांत करता है ॥ ९८ ॥ और यह उष्णोदक दोषोंको तथा स्रोतोंको मुलायम करता है और शीतल जल इनके विपरीत होता है, शीतल जलके सेवन करनेसे ज्वरकी वृद्धि होतीहै ॥ ९९ ॥ परन्तु हां पित्तज्वर, मद्यजनितज्वर, विषजनितज्वर इनमें तिक्त (कड़वे) द्रव्योंसे उबालाहुआ शीतल जल हित होता है वे तिक्तद्रव्य ये हैं–नागरमोथा, सोंठ, खस, पित्तपापडा, नेत्रबाला और चंदन (इनका प्रमाण कई इस प्रकार मानते हैं कि गांगेयादि सब द्रव्य कर्षप्रमाण और जल एक प्रस्थ उबालकर आधा शेष रहनेपर शीतल करके उपयोग करना) ॥१०० ॥

(श्लो० १००) गांगेयो मुस्ता । कल्पनामाह–गांगेयादि सर्वं द्रव्यं कर्षमात्रमुदकप्रस्थे अर्द्धशृतशीतत्वात्प्रयोक्तव्यम् ।

परिशिष्ट ।

ग्रंथांतरसे कुछ काथोंके भेद और उनकी विधिका वर्णन ।

पंचविध कषाय ।

श्लोक–स्वरसश्च तथा कल्कः काथश्च हिमफांटकौ ॥
ज्ञेयाः कषायाः पंचैते लघवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ १ ॥

अर्थ–कषाय (अर्थात् काढे) के ५ भेद हैं १ स्वरस, २ कल्क, ३ काथ, ४ हिम, ५ फांट इसप्रकार पांच प्रकारके कषाय होते हैं इनमेंसे उत्तरोत्तर लघु होते हैं (जैसे स्वरससे कल्क हलका होताहै और कल्कसे काथ और काथसे हिम, हिमसे फांट हलका होताहै) ॥ १ ॥

स्वरस ।

श्लोक–आहतात्तत्क्षणाकृष्टाद्द्रव्यात्क्षुण्णात्समुद्भवेत् ॥ वस्त्रनिष्पीडितो यश्च स्वरसो रस उच्यते ॥ स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्द्धं प्रयोजयेत् ॥ २ ॥

अर्थ–गीली तत्कालकी लाई हुई औषधको कूटकर वस्त्रसे निचोड़नेसे जो रस निकले उसे स्वरस कहते हैं यह स्वरस गरिष्ठ और भारी होता है इससे इसकी सामान्य मात्रा आधे पलकी है ॥ २ ॥

कल्क ।

श्लोक–द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलं भवेत् ॥ प्रक्षिप्य गालयेद्वस्त्रे तन्मानं कर्षसंमितम् ॥ ३ ॥ कल्के मधुघृतं तैलं देयं द्विगुणमात्रया ॥ सितागुडसमं दद्याद्द्रवो देयश्चतुर्गुणः ॥ ४ ॥

अर्थ–गीली औषध शिलवट्टेसे पीसकर या सूखीको जल डालके पीस लेवे फिर पानी चौगुना मिलाकर घोलकर वस्त्रमेंसे छानले इसमें औषधकी मात्रा १ कर्ष लेनी ॥ ३ ॥ कल्कमें शहद, घृत, तैल मिलाना हो तो दुगुना (दो कर्ष) मिलावे और जो गुड़, मिश्री ये मिलाने हों तो बराबर मिलावे और द्रव जल, दुग्धादि चौगुने मिलावे ॥ ४ ॥

काथ ।

श्लोक–पानीयं षोडशगुणं क्षुण्णे द्रव्यपले क्षिपेत् ॥ मृत्पात्रे काथयेद्ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम् ॥ ५ ॥ कर्षादौ तु पलं यावद्दद्यात्षोडशकं जलम् ॥ ततस्तु कुडवं यावत्तोयमष्टगुणं भवेत् ॥ ६ ॥ चतुर्गुणमतश्चोर्द्ध्वं यावत्प्रस्थादिकं जलम् ॥ तज्जलं पाययेद्धीमान्कोष्णं मृद्वग्निसाधितम् ॥ ७ ॥ काथद्रव्यपले वारि द्विरष्टगुणमिष्यते ॥ चतुर्भागावशिष्टं तु पेयं पलचतुष्टयम् ॥ ८ ॥ काथे क्षिपेत्सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः ॥ वातपित्तकफातंके विपरीतं मधु स्मृतम् ॥ ९ ॥ जीरकं गुग्गुलं क्षारं लवणं च शिलाजतु ॥ हिंगुत्रिकटुकं चैव काथे शाणोन्मितं क्षिपेत् ॥ १० ॥

अर्थ-सूखे हुए पलभर द्रव्यको कुचलकर उससे सोलहगुना पानी डालके मिट्टीके या (चीनी आदिके) पात्रमें डालकर उबाले और अष्टमांश जल शेष रहनेपर काममें लावे ॥ ५ ॥ कर्षसे पलतक द्रव्यमें सोलहगुना पानी डालना और पलसे ऊपर कुडवतकमें अठगुना जल डाले ॥ ६ ॥ इससे ऊपर प्रस्थतकमें चौगुना पानी डाले और मन्दी आंचसे पकाकर छान कर निवाया पिलावे ॥ ७ ॥ और व्यावहारिक सामान्य यह है कि एक पल द्रव्यमें सोलहगुना पानी डालकर चौथाई शेष रहनेपर चार पलकी मात्रा पीनी चाहिये ॥ ८ ॥ क्राथमें मिश्री वायु-पित्त और कफके रोगमें चौथा, आठवां और सोलहवां भाग (कथितसे) डालना और शहद इसके विपरीत क्रमसे डालना ॥ ९ ॥ जीरा, गूगल, क्षार (यवक्षारादि), नमक, शिलाजीत, हींग और त्रिकटु यदि इनमेंसे कोई डालना हो तो १ शाण (टंक) भर डालना ॥ १० ॥

(वक्तव्य) इससमय शिलाजीत और हींग इस मात्रासे वहुतही कम डालना योग्य है ।

हिम ।

श्लोक-क्षुण्णद्रव्यपलं सम्यक्षड्भिर्नीरपलैः प्लुतम् ॥ निःशोषितं हिमः स स्यात्तथा शीतकषायकः ॥ तस्य मानं मतं पाने पलद्वयमितं बुधैः ॥ ११ ॥

अर्थ-पलभर द्रव्यको खूब कुचलकर छः पल शीतलपानीमें भिगोदेवे (रातभर या वहुत देर भिगोवे) जब जलसे खूब भीगकर औषध मृदु होजाय और पानी उसमें प्रविष्ट होजाय तब मलकर उस औषधको छानले इसे हिम तथा शीतकषाय कहते हैं इसकी मात्रा दो पल पीनी चाहिये (इसमें सिता आदि क्राथके अनुसार प्रमाणसे डाले) ॥ ११ ॥

फांट ।

श्लोक-क्षुण्णं द्रव्यपले सम्यग्जलमुष्णं विनिक्षिपेत् ॥ मृत्पात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत्पटात् ॥ १२ ॥ स स्याच्चूर्णद्रवः फांटस्तन्मानं द्विपलोन्मितम् ॥ क्षौद्रं सितागुडादींस्तु क्राथवत्तत्र निक्षिपेत् ॥ १३ ॥

अर्थ-पल भर द्रव्यको कुचलकर एक कुडव गरम पानी डालकर मिट्टीके पात्रमें रखदे जब पानी ठीक ठंढा होजावे तब उसे कपडेमें छानले ॥ १२ ॥ यह कुटे द्रव्यका फांट होता है इसके पीनेकी मात्रा दो पल होती है इसमें शहद, मिश्री, गुड आदि क्राथके प्रमाणसे डालने चाहिये ॥ १३ ॥

यह शार्ङ्गधरके मतानुसार भावप्रकाशमें लिखेहुए स्वरसादि पांच प्रकारके कषायोंका वर्णन कियागया अब अगाडी हारीतके मतसे क्राथभेदोंका वर्णन करते हैं ॥

हारीतके मतसे सात प्रकारके काथ।

श्लोक–पाचनो दीपनीयश्च शोधनः शमनस्तथा ॥ तर्पणः क्लेदनः शोषी काथः सप्तविधः स्मृतः ॥ १ ॥ पाचनोर्द्धावशेषी स्याच्छोधनो द्वादशांशकः ॥ क्लेदनश्चतुरंशश्च शमनोष्टावशेषितः ॥ २ ॥ दीपनीयो दशांशस्तु तर्पणश्च समांशकः ॥ विशोषी षोडशांशश्च काथभेदाः प्रकीर्तिताः ॥ ३ ॥

अर्थ–पाचन, दीपन, शोधन, शमन, तर्पण, क्लेदन और शोषण इसप्रकारसे काथके सात भेद हैं ॥ १ ॥ इनमें पाचनकाथ अर्द्धावशेष करना चाहिये (अर्थात् जितना जल हो उससे आधा रहने दे) और शोधन द्वादशांश होता है (जितना जल हो उबालते २ बारह भाग रहने दे), क्लेदन काथ चतुर्थांश और शमन काथ अष्टमांश शेष रक्खा जाता है ॥ २ ॥ दीपन काथ दशवां भाग रखना और तर्पण काथमें केवल जोश देकर उतनाका उतना जल रखना और शोषण काथको सोलहवां भाग शेष रहनेपर काममें लाना इस प्रकारसे काथभेद कहे हैं ॥ ३ ॥

श्लोक–पाचनं तु नरे देयं निशासु प्रविजानता ॥ पूर्वाह्णे शमनो देयोऽपराह्णे दीपनः स्मृतः ॥ ४ ॥ तर्पणो भेदनः कल्ये मध्याह्ने क्लेदनस्तथा ॥ शोषणोपि प्रभाते च काथः पाने प्रकीर्तितः ॥ ५ ॥

अर्थ–वैद्यको चाहिये कि पाचन काथ देना हो तो उसे रातको सोते समय दे और शमन पूर्वाह्णमें देवे और दीपन अपराह्णमें देना ॥ ४ ॥ तर्पण और भेदन प्रभातमें देवे, क्लेदन मध्याह्नके आसपास देवे और शोषण भी सवेरे ही देवे, काथ पीनेके समय इस प्रकारसे समझने ॥ ५ ॥

(वक्तव्य) क्लेदन काथ वमन करानेको दियाजाताहै सो यवागूआदि पिलाकर मध्याह्नके आसपास देना ॥

श्लोक–पाचनः पचते दोषान्दीपनो दीप्यतेऽनलम् ॥ शोधनो मलशोधी स्याच्छमनः शमते गदान् ॥ ६ ॥ तर्पणस्तर्पते धातून्क्लेदी ह्युत्क्लेदकारकः ॥ विशोषी शोषमाधत्ते तस्मात्कार्थं परीक्षयेत ॥ ७ ॥

अर्थ–पाचन काथ दोषोंको पकाता है और दीपन अग्नि दीपन करताहै, शोधन मलको निकालता है, शमन दोनों (दोषों) को शमनकारक है ॥ ६ ॥ तर्पण धातुओंको तृप्त करता है और क्लेदी उत्क्लेद करता है और विशोषी शोषण करताहै इस लिये काथकी परीक्षा करके जहां जैसा योग्य हो वैसाही बनाकर देना चाहिये॥७॥

श्लोक–तस्मादादौ प्रदेयं तु पाचनं च दिनत्रयम् ॥
शमनीयं प्रदेयं तु पंचरात्रं ततः परम् ॥ ८ ॥

अर्थ–इस कारण आदिमें तीन दिन पाचन काथ देना चाहिये और फिर इसके पीछे पांच दिन तक शमनीय काथ देवे ॥ ८ ॥

श्लोक-काथपाने क्लमो मूर्च्छा वैक्लव्यं च प्रदृश्यते ॥
वमनं च तदा प्रोक्तं शमनं पथ्यकेऽपि वा ॥ ९ ॥

अर्थ-क्वाथ पीनेपर यदि क्लम (ग्लानि) हो, मूर्च्छा होजावे या विकलता हो तो वमन कराके उसे निकालदेना चाहिये अथवा शमन करनेवाले पथ्यादि देके क्लमादि शांत करदेने चाहिये ॥ ९ ॥ इति परिशिष्ट ।

भोजनके समय पेयाका निर्देश ।

दीपनी पाचनी लघ्वी ज्वरार्तानां ज्वरापहा ॥
अन्नकाले हिता पेया यथास्वं पाचनैः कृता ॥ १०१ ॥

जब लंघनके पीछे भोजनका समय हो तब यथायोग्य पाचन द्रव्योंसे बनाई हुई पेया देनी चाहिये क्योंकि यह दीपनी, पाचनी और हलकी होतीहै तथा ज्वरवालोंके ज्वरको नाश करनेवाली होतीहै ॥ १०१ ॥

पाचनकी आवश्यकता ।

बहुदोषस्य मंदाग्नेः सप्तरात्रात्परं ज्वरे ॥ लंघनांते यवागूभिर्यदा दोषो न पच्यते ॥ १०२ ॥ तदा तं मुखवैरस्यतृष्णारोचकनाशनैः ॥ कषायैः पाचनैर्हृद्यैर्ज्वरघ्नैः समुपाचरेत् ॥ १०३ ॥

जिसके दोष बहुत बढेहुए हों और अग्नि मंद हो उसको सात दिन पीछे लंघनके अंतमें यवागू पिलानेसे यदि दोष पके नहीं तो उसको मुखकी विरसता, तृषा और अरुचिनाशक पाचन तथा हृदयको हित, ज्वरनाशक ऐसे कषायोंसे उपचार करे ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

पंचमूलीकषायं तु पाचनं पवनज्वरे ॥ सक्षौद्रं पैत्तिके मुस्तकटुकेंद्रयवैः कृतम् ॥ १०४ ॥ पिप्पल्यादिकषायं तु कफजे परिपाचनम् ॥ द्वंद्वजेषु च संसृष्टं दद्यादथ विवर्जयेत् ॥ १०५ ॥ पीतांबुर्लंघितो भुक्तोऽजीर्णी क्षीणः पिपासितः ॥ १०६ ॥

(श्लो० १०१) पेयाविधिः-"चतुर्दशगुणे नीरे रक्तशाल्यादिभिः कृता ॥ द्रवाधिका स्वल्पसिक्था पेया प्रोक्ता भिषग्वरैः ॥ १ ॥" अस्या गुणाः-"साऽतिलघ्वी ग्राहिणी च धातुपुष्टिविधायिनी ॥ तृड्ज्वरानिलदौर्बल्यकुक्षिरोगविनाशिनी ॥ स्वेदाग्निजननी ज्ञेया वातवर्चोऽनुलोमनी ॥ २ ॥" (इति भा०मि०)

(श्लो० १०२) यवागूलक्षणम्-"यवागूः षड्गुणे तोये संसिद्धा घनसिक्थका ॥ पृथग्द्रवैस्तु विरलैः सयुक्ता ज्वरिणे हिता ॥१॥" (इति भा० प्र०) (श्लो० १०४) पंचमूली महती । अन्ये तु कफानुगवातज्वरे महती पित्तानुगे कनीयसी (इति नि०सं०) (श्लो० १०५।१०६) पीतोदकः लंघितः भुक्तः अजीर्णी क्षीणः पिपासितः पाचनं विवर्जयेदित्यन्वयः ।

वातज्वरमें पंचमूली (बृहत्पंचमूल) का काथ पाचनार्थ देना चाहिये और नागरमोथा, कुटकी, इंद्रजव इनका काथकर शहद मिलाकर पित्तज्वरमें पाचन देना ॥ १०४ ॥ और पिप्पल्यादिका काथ कफज्वरमें पाचन देना और द्वंद्वजमें दो दोषोंकी औषधोंका काथकर पाचनार्थ देना परंतु सद्य जल पिये हुए, लंघन किये, तत्काल भोजन किये, अजीर्णवाले तथा क्षीण और तृषायुक्तको पाचन नहीं देना ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

दोषपक्कके लक्षण ।

मृदौ ज्वरे लघौ देहे प्रचलेषु मलेषु च ॥
पक्वं दोषं विजानीयाज्ज्वरे देयं तदौषधम् ॥
दोषप्रकृतिवैकृत्यादेतेषां पक्वलक्षणम् ॥ १०७ ॥

जब ज्वरका वेग हलका पडजावे, देह भी हलकी होजावे और मल चलायमान हो तब जानना कि दोष पक्कगया और तभी औषध देना उचित है । और कोई ऐसा कहतेहैं कि दोषकी प्रकृति पलट जानेसे पके दोषके लक्षण जानलेना चाहिये ॥ १०७ ॥

आमज्वर अर्थात अपक्कज्वरके लक्षण ।

हृदयोद्वेष्टनं तंद्रा लालास्रुतिररोचकः ॥ दोषाप्रवृत्तिरालस्यं विबंधो बहुमूत्रता ॥ १०८ ॥ गुरूदरत्वमस्वेदो न पंक्तिः शकृतोऽरतिः ॥ स्वापः स्तंभो गुरुत्वं च गात्राणां वह्निमार्दवम् ॥ १०९ ॥ मुखस्याशुद्धिरग्लानिः प्रसंगी बलवाञ्ज्वरः ॥ लिंगैरेभिर्विजानीयाज्ज्वरमामं विचक्षणैः ॥ ११० ॥

हृदयमें उचेडसी हो, तंद्रा हो, मुँहसे लार बहे, अरुचि हो, दोषोंकी स्थिरता, आलस्य, विबंध (कब्जियत) ये सब हों और मूत्र ज्यादा आवे ॥ १०८ ॥ पेट भारी हो, पसीना नहीं आवे, विष्ठा ठीक पककर न आवे, बेचैनी रहे, निद्रा हो,

---

(श्लो० १०८।१०९।११०) शकृतः न पक्तिः विष्ठाया अपरिपाकः । अग्लानिः ईषदग्लानिः नञ् ईषदर्थे । प्रसंगी संसक्तः । अत्र "हृदयोद्वेष्टनम्" इत्यादिस्थाने पंजिकाकारः पाठांतरमाह यथा—"लालाप्रसेकहृल्लासहृदयाशुद्ध्यरोचकाः ॥ तंद्रालस्याविपाकास्यवैरस्य गुरुगात्रता ॥ १ ॥ विबंधो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवाञ्ज्वरः ॥ आमज्वरस्य लिंगानि न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ २ ॥" इति तरुणज्वरे भेषजं नैव देयं विशेषतया कषायो न देयः । तदुक्तं भावप्रकाशे—"न कषायं प्रशंसति नराणां तरुणज्वरे ॥ कषायैराकुलीभूताः दोषा जेतुं सुदुस्तराः ॥ १ ॥" इति ॥

(चमक निद्रा आयाकरे), शरीर जकडासा रहे और भारी रहे, जठराग्नि मंद हो ॥ १०९ ॥ मुख शुद्ध न हो, थोडी ग्लानिभी हो, ज्वरका वेग निश्चल और बलवान् हो इन लक्षणोंसे बुद्धिमान् वैद्य जानलेवे कि आमज्वर है अर्थात् अभी ज्वर पका नहीं (यह अवस्था प्रायः सात दिन रहती है और इस अवस्थामें औषध देना उचित नहीं) ॥ ११० ॥

औषधका समय ।

सप्तरात्रात्परं केचिन्मन्यंते देयमौषधम् ॥ दशरात्रात्परं केचिद्दातव्यमिति निश्चिताः ॥ १११ ॥ पैत्तिके वा ज्वरे देयमल्पकालसमुत्थिते ॥ अचिरज्वरितस्यापि देयं स्याद्दोषपाकतः ॥११२॥

कोई आचार्य ऐसा मानते हैं कि ज्वरमें सात दिन पीछे औषध देना चाहिये और कई ऐसा निश्चय करते हैं कि दश दिन पीछे औषध देना उचित है ॥ १११ ॥ अथवा पित्तज्वरमें थोडे दिनके ज्वरमेंभी जिसे अधिक दिन न हुए हों औषध देदेवे क्योंकि पित्तज्वरका दोष शीघ्र पकजाता है (इसमें 'वा' शब्दसे वातकफज्वर भी यदि पहले पक जावें तो उनमें भी पकाव देखकर उक्त समयसे पहले औषध देसकते हैं) ॥ ११२ ॥

विना पके ज्वरमें औषधके अवगुण ।

भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो ज्वलयति ज्वरम् ॥
शोधनं शमनीयं तु करोति विषमज्वरम् ॥ ११३ ॥

विना पके दोषवाले ज्वरितको औषध दिये जानेसे ज्वर फिरकर प्रचंड होजाताहै और शोधन तथा शमन यत्न करनेसे विषमज्वर पैदा करते हैं ॥ ११३ ॥

ज्वरसे प्रेरित मलका यत्न ।

च्यवमानं ज्वरोत्क्लिष्टमुपेक्षेत मलं सदा ॥
अतिप्रवर्तमानं च साधयेदतिसारवत् ॥ ११४ ॥

यदि ज्वरके उद्वेगसे मल चलायमान हो तो उसे कुछ समय योंही छोड़ देना चाहिये अर्थात् बंद नहीं करना चाहिये और जो बहुतही (बहुत दिन तक) जारी रहे तो उसको अतिसारकी भांति साधन करना चाहिये ॥ ११४ ॥

(श्लो० ११२) अत्र 'वा'-शब्दाद्वातश्लेष्मादिज्वरे दोषपाके सत्यपि औषधं देयमिति प्रतीयते (इति नि० सं०)

ज्वरमें वमन विरेचनादिकी व्यवस्था ।

यदा कोष्ठानुगाः पक्वा विबद्धाः स्रोतसां मलाः ॥ अचिरज्ज्वरितस्यापि तदा दद्याद्विरेचनम् ॥ ११५ ॥ पक्वो ह्यनिर्हृतो दोषो देहे तिष्ठन्महात्ययम् ॥ विषमं वा ज्वरं कुर्याद्बलव्यापदमेव च ॥ ११६ ॥ तस्मान्निर्हरणं कार्यं दोषाणां वमनादिभिः ॥ प्राक्कर्म वमनं चास्य कार्यमास्थापनं तथा ॥ विरेचनं तथा कुर्याच्छिरसश्च विरेचनम् ॥ ११७ ॥

यदि स्रोतोंका मल पककर कोष्ठमें स्थित हुआ हो तो थोडे दिनके ज्वरवालेकोभी विरेचन देदेना उचित है ॥ ११५ ॥ क्योंकि जो पकाहुआ दोष नहीं निकालाजावे तो वह देहमें रहकर बडे २ भयंकर रोग पैदा करदेता है तथा विषमज्वर पैदा करदेता है और बलका नाश करता है ॥ ११६ ॥ इस कारणसे पकेहुए दोषको तो वमनादिसे निकालही देना चाहिये इस जगह शोधनका पूर्व कर्म वमन है (स्नेहन और स्वेदन यहां नहीं चाहिये) तथा आस्थापनवस्ति करना योग्य है और विरेचन भी कराना चाहिये और नस्यादिसे शिरका भी विरेचन कराना योग्य है ॥ ११७ ॥

वमन और विरेचनमें उपदेश ।

क्रमेण बलिने देयं वमनं श्लैष्मिके ज्वरे ॥ पित्तप्राये विरेकस्तु कार्यः प्रशिथिलाशये ॥ ११८ ॥ सरुजेनिलजे कार्यं सोदावर्ते निरूहणम् ॥ कटीपृष्ठग्रहार्तस्य दीप्ताग्नेरनुवासनम् ॥ ११९ ॥ शिरोगौरवशूलघ्नमिंद्रियप्रतिबोधनम् ॥ कफाभिपन्ने शिरसि कार्यं मूर्द्धविरेचनम् ॥ १२० ॥

यदि बलवान्के कफज्वर हो तो उसे क्रमसे वमन करावे और पित्तप्रधान ज्वर हो और आशय (पक्वाशय) शिथिल हो तो विरेचन देवे ॥ ११८ ॥ और वेदना सहित उदावर्तयुक्त वातज्वर हो तो निरूहण बस्ति करे और जिसकी जठराग्नि दीप्त हो और कमर, पीठ ये अकडे हुएसे हों तो अनुवासन वस्ति करना उचित है ॥ ११९ ॥ और यदि शिर कफसे व्याप्त हो तो शिरके भारीपन और दरदको दूर करनेवाली तथा इंद्रियोंको बोध करनेवाली नस्यसे शिरका विरेचन करना योग्य है ॥ १२० ॥

(श्लो० ११७) अत्र ज्वरे शोधनस्य प्राक्कर्म वमनमेव नतु स्नेहनं स्वेदनं च ॥

लेप और वत्तीका उपयोग ।

दुर्बलस्य समाध्मातमुदरं सरुजं दिहेत् ॥ दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वा-हिंगुसैन्धवैः ॥ १२१ ॥ अम्लपिष्टैः सुखोष्णैश्च पवने तूर्द्ध्वमागते ॥ रुद्धमूत्रपुरीषाय गुदे वर्तिं निधापयेत् ॥ १२२ ॥

यदि रोगी दुर्बल हो और उसके पेटमें अफारा हो तथा दरद भी हो तो पेटपर दारुहलदी, वच, कूट, सौंफ, हींग और सैंधव इनका लेप करना (और कई 'दारु' का अर्थ दारुहलदीका भेद रेवंदचीनी और हैमवती (चोक), शताह्वा (सोवेके बीज) लेना ठीक जानते हैं) ॥ १२१ ॥ इन छहों औषधोंको कांजीमें पीसकर गरम करके लेप करना योग्य है और यदि अपानवायु ऊर्द्धगामी हो (वायु नहीं सरे) और मल, मूत्र भी रुक गये हों तो इन्हीं औषधोंसे वस्त्रकी मोटी अंगुली जैसी वत्तीको लेपन करके गुदामें प्रवेश करना चाहिये (परंतु वत्ती लगा-नेकी अवस्थामें कुछ चिकनाईका भी योग कियाजाना उचित है) ॥ १२२ ॥

अनुलोमनी यवागू ।

पिप्पली पिप्पलीमूलयवानीचव्यसाधिताम् ॥
पाययेत यवागूं वा मारुतस्यानुलोमनीम् ॥ १२३ ॥

अथवा पिप्पली, पिप्पलीमूल, अजवायन, चव्य इनसे साधन की हुई यवागू पिलावे यह भी वायु आदिको अनुलोमन करनेवाली है ॥ १२३ ॥

शुद्धस्योभयतो यस्य ज्वरः शांतिं न गच्छति ।
सशेषदोषरूक्षस्य तस्य तं सर्पिषा जयेत् ॥ १२४ ॥

यदि वमन, विरेचन द्वारा दोनों तरफसे शोधन कियेजानेपर भी ज्वर शांत न हो, दोष शेष रहजावे और रोगी रूक्ष (खुश्क) हो तो उसके ज्वरको (ज्वर-नाशक) घृतपानसे जीतना चाहिये ॥ १२४ ॥

ज्वरमें अन्य उपदेश और पथ्यादि ।

कृशं चैवाल्पदोषं च शमनीयैरुपाचरेत् ॥ उपवासैर्बलस्थं तु ज्वरे संतर्पणोत्थिते ॥ १२५ ॥ क्लिन्नां यवागूं मंदाग्निंतृषार्तं पाययेन्नरम् ॥ तृट्छर्दिदाहघर्मार्तं मद्यपं लाजतर्पणम् ॥ १२६ ॥ सक्षौद्रमंभसा पश्चाज्जीर्णे यूषरसौदनम् ॥ उपवासश्रमकृते क्षीणे वाताधिके

(श्लो० १२४) सर्पिषा जयेदिति—ज्वरघ्नद्रव्यसाधितेन घृतेन जयेदित्यर्थः ।

ज्वरे ॥ १२७ ॥ दीप्ताग्निं भोजयेत्प्राज्ञो नरं मांसरसौदनम् ॥ मुद्गयूषौदनं चापि हितं कफसमुत्थिते ॥ १२८ ॥ स एव सितया युक्तः शीतः पित्तज्वरे हितः ॥ दाडिमामलमुद्गानां यूषश्चानिल-पैत्तिके ॥ १२९ ॥ ह्रस्वमूलकयूषेण भोजयेत्कफवातिके ॥ पटोल-निंबयूषस्तु पथ्यः पित्तकफात्मके ॥ १३० ॥

जो ज्वरका रोगी कृश हो और उसके दोष भी अल्प हों तो उसे शमनीय यत्नोंसे ही उपचार करे और यदि रोगी बलवान् हो अथवा अतितर्पणसे ज्वर हुआ हो तो उसे लंघनोंहीसे शांत करे ॥ १२५ ॥ यदि रोगी मंदाग्नि और तृषासे पीडित हो तो ऐसे मनुष्यको पतली यवागू पिलानी चाहिये और जो तृषा, छर्दि, दाह और गरमी इनकी विशेष बाधा हो तथा रोगी मद्यपी हो तो उसे धानकी खीलका द्रवपदार्थ पिलाकर तृप्ति करनी चाहिये ॥ १२६ ॥ लाजा (धानकी खीलों) को जलमें भिगोकर (मलके, छानके), शहद मिलाके पिलाना चाहिये (इसीको लाजातर्पण कहते हैं) और जब यह पचजावे तब यूषरस और भात खानेको देवे और जो लंघन, व्रत, श्रमसे ज्वर हो या क्षीणता हो अथवा वातादिक ज्वर हो ॥ ॥ १२७ ॥ और रोगीकी अग्नि दीप्त हो तो चतुर वैद्य ऐसे मनुष्यको मांसरस (शोरवे) के संग भात खिलावे और जो कफज्वर हो तो मूंगका यूष और भात दे ॥ १२८ ॥ वही मूंगका यूष, भात, मिश्री मिला ठंढाकर पित्तज्वरमें देना हित है और वातपित्तज्वरमें अनार आंवले, और मूंग इनका यूष देवे ॥ १२९ ॥ और वातकफज्वरमें ह्रस्वमूलकके यूषसे भोजन करावे तथा पित्तकफज्वरमें परवल और नींबका यूष पथ्य है ॥ १३० ॥

(वक्तव्य) वातकफज्वरमें जो 'ह्रस्वमूलक' लिखा है कई इसे छोटी मूली कहते हैं परंतु हमने ज्वरमें मूली सर्वथा कुपथ्य देखी है शायद वह ह्रस्वमूलक कुछ और हो ॥

दाहच्छर्दियुतं क्षामं निरन्नं तृष्णयार्दितम् ॥
सिताक्षौद्रयुतं लाजतर्पणं पाययेत च ॥ १३१ ॥

जिसे दाह और छर्दि हो, रोगी दुर्बल हो, अन्न नहीं खाया हो, तृषासे पीडित हो ऐसी अवस्थामें मिश्री और शहद युक्त लाजा (खीलों) का तर्पण पिलावे ॥ १३१ ॥

कफपित्तपरीतस्य ग्रीष्मेऽसृक्पित्तिनस्तथा ॥
मद्यनित्यस्य न हिता यवागूस्तमुपाचरेत् ॥

यूषैरम्लैरनम्लैर्वा जांगलैर्वा रसै हितैः ॥ १३२ ॥

जो कफपित्तसे व्याप्त हो, गरमीकी ऋतु हो, रक्तपित्तका रोगी हो तथा नित्य मद्य पीता हो ऐसे रोगीको यवागू हित नहीं इनको खट्टे या विना खट्टे यूषोंसे अथवा जांगल मांसरससे या अन्य हितकारक पथ्योंसे उपचार करना चाहिये॥ १३२॥

मद्यं पुराणं मंदाग्नेर्यवान्नोपेहितं हितम् ॥

सव्योषं वितरेत्तक्रं कफारोचकपीडिते ॥ १३३ ॥

जिसकी जठराग्नि मंद पड़गई हो उसे यवके अन्नके साथ पुरानी मदिरा देना हितकारक होती है और जो कफ अरुचिसे पीडित हो उसको त्रिकटु मिलाकर तक्र (गौकी छाँछ) देना भी ठीक होताहै ॥ १३३ ॥

ज्वरमें दूधके पीनेकी विधि और निषेध ।

कृशोऽल्पदोषो दीनश्च नरो जीर्णज्वरार्दितः ॥ विबद्धः सृष्टदोषश्च रूक्षः पित्तानिलज्वरी ॥ १३४ ॥ पिपासार्तः सदाहो वा पयसा स सुखी भवेत् ॥ तदेव तु पयः पीतं तरुणे हंति मानवम् ॥ १३५ ॥

जो रोगी दुर्बल हो, जिसके अल्प दोष हों, जो दीन हो, जो मनुष्य जीर्णज्वरसे पीडित हो, जिसे विबंध हो और दोष कुछ २ निकलते हों, रोगी रूक्ष हो, पित्तवातका ज्वर हो ॥ १३४ ॥ तृषासे पीडित हो, दाह युक्त भी हो ऐसी अवस्थामें मनुष्य दुग्धसे सुखी होताहै परंतु तरुणज्वरमें पियाहुआ दूध मनुष्यको मारदेताहै (इसमें तरुणसे तरुण अवस्थावाले ज्वरितको दुग्ध अयोग्य है ऐसा कई अर्थ करते हैं) ॥ १३५ ॥

ज्वरमें भोजनका समय और व्यवस्था ।

सर्वज्वरेषु सप्ताहं मात्रावद्भोजनं हितम् ॥ वेगापायेऽन्यथा तद्धि ज्वरवेगाभिवर्द्धनम् ॥ १३६ ॥ ज्वरितो हितमश्नीयाद्यद्यप्यस्यारुचिर्भवेत् ॥ अन्नकाले ह्यभुंजानः क्षीयते म्रियतेऽथवा ॥ १३७ ॥ गुर्वभिष्यंद्यकाले च ज्वरी नाद्यात्कथंचन ॥ न तु तस्य हितं भुक्तमायुषे वा सुखाय च ॥ १३८ ॥ सततं विषमं वापि क्षीणस्य सुचिरोत्थितम् ॥ ज्वरं संभोजनैः पथ्यैर्लघुभिः समुपाचरेत् ॥१३९॥

(श्लो० १३६) वेगापाये वेगहानौ । अन्यथा तद्धि अमात्रावत्कुपथ्यभोजनम् ।

मुद्गान्मसूरांश्चणकान्कुलत्थान्समकुष्ठकान् ॥ आहारकाले यूषार्थं ज्वरिताय प्रदापयेत् ॥ १४० ॥

सब ज्वरोंमें प्रायः सात दिन मात्रासे (थोडा) भोजन करना (और हितकारक भोजन करना) चाहिये (और ज्वर छोड देनेपर भी कुछ दिन हलकाही भोजन करना) क्योंकि ज्वरका वेग छूटे पीछे भी अन्यथा आहार, विहारसे फिर ज्वरका वेग बढजाया करता है ॥ १३६ ॥ परंतु ज्वरवाला मनुष्य यदि अरुचि भी हो तो भी कुछ थोडासा हलका भोजन तो किया ही करे क्योंकि अन्नके समय भोजन नहीं करनेसे मनुष्य क्षीण होजाताहै अथवा मर जाताहै (यह लंघनसे पीछेकी व्यवस्था जीर्णज्वर या विषमज्वरोंमें करनेकी है) ॥ १३७ ॥ ज्वरका रोगी गरिष्ठ, अभिष्यंदी भोजन तथा बेसमय कभी भोजन नहीं करे क्योंकि गरिष्ठ और बेसमयका भोजन न तो आयुके लिये हित होता है और न सुखके लिये ॥ ॥ १३८ ॥ क्षीण मनुष्यके बहुत दिनका पुराना सततज्वर (निरंतर रहनेवाला) या विषम (अन्येद्युष्क तृतीयकादि) हो तो उसे पथ्य और हलके अच्छे भोजनोंसे उपचार करना चाहिये ॥ १३९ ॥ ज्वरवालेको भोजनके समय मूँग, मसूर, चने, कुलथी और मोठ इनमेंसे यथोक्त यूषके लिये देवे (अर्थात् इनमेंसे जो उचित हो उसका यूष भोजनके वास्ते देना उचित है) ॥ १४० ॥

ज्वरमें मांसकी व्यवस्था ।

लावान्कपिंजलानेणान्पृषताञ्छरभाञ्छशान् ॥ कालपुच्छान्कुरंगांश्च तथैव मृगमातृकान् ॥ मांसार्थं मांससात्म्यानां ज्वरितानां प्रदापयेत् ॥ १४१ ॥ सारसक्रौंचशिखिनः कुक्कुटांस्तित्तिरींस्तथा ॥ गुरूष्णत्वान्न शंसंति ज्वरे केचिच्चिकित्सकाः ॥ १४२ ॥ ज्वरितानां प्रकोपं तु यदा याति समीरणः ॥ तदैतेऽपि हि शस्यंते मात्राकालोपपादिताः ॥ १४३ ॥

लवा, कपिंजल (सुफेद तीतर), एण (काला मृग), पृषत (सावर), शरभ (एक प्रकारका मृग जिसके ४ पांव नीचे और ४ ऊँचे होते हैं) और शशा, काली पुच्छका मृग और कुरंग (बदामी रंगका मृग) और मृगमातृका इनका मांस मांसभोजी ज्वरवालोंको देना चाहिये ॥ १४१ ॥ सारस, क्रौंचनाम पक्षी, मोर, मुरगा और तीतर ये गरम और भारी (गरिष्ठ) हैं इससे

(श्लो० १४१) कपिंजलान् गौरतित्तिरान् । एणः कृष्णमृगः । पृषतः श्वेतबिंदुलमृगः । "शरभः अष्टपादूर्ध्वनयन ऊर्ध्वपादचतुष्टयः" इत्युक्तलक्षणो मृगभेदः । (इति अ० स्तो०)

कई वैद्य इनका मांस ज्वरमें देना श्रेष्ठ नहीं समझते ॥ १४२ ॥ परन्तु हां यदि ज्वरवालोंके वायुका कोप हो तो इनका मांस भी समयोपयोगी बनाकर मात्राके अनुसार देना श्रेष्ठ है ॥ १४३ ॥

ज्वरवाले और ज्वरमुक्तके पथ्य ।

परिषेकावगाहांश्च स्नेहान्संशोधनानि च ॥ स्नानाभ्यंगदिवास्वप्नशीतव्यायामयोषितः ॥ १४४ ॥ न भजेत ज्वरोत्सृष्टो यावन्नो बलवान्भवेत् ॥ १४५ ॥ त्यक्तस्यापि ज्वरेणाशु दुर्बलस्याहितैर्ज्वरः ॥ प्रत्यापन्नो दहेद्देहं शुष्कवृक्षमिवानलः ॥ १४६ ॥ तस्मात्कार्यः परीहारो ज्वरमुक्तेन जंतुना ॥ यावन्न प्रकृतिस्थः स्याद्दोषतः प्राणतस्तथा ॥ १४७ ॥

परिषेक करना, जलमें डुबकी लेना, स्नेहपान करना, वमन और विरेचन करना, स्नान करना, स्नेहाभ्यंग (तैलादि शरीरमे मलना), दिनमें सोना, शरदी पाना, परिश्रम करना और स्त्रीसंग करना इत्यादि बातोंको ज्वर छूटे पीछे भी नहीं करे, जबतक पूरा बल शरीरमें न आजावे ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ क्योंकि ज्वरसे छूटेहुए दुर्बल मनुष्यको थोडासा भी अनुचित करनेसे फिर ज्वर पलट आता है और देहको ऐसे दग्ध कर देता है जैसे सूखे वृक्षको अग्नि भस्म कर देता है ॥ १४६ ॥ इस कारणसे ज्वर छूटे पीछे भी जबतक दोष पूरे प्रकृतिपर न आजावे और बल भी पहलेकासा पूर्ण न होजावे तबतक परिहार (परहेज) रखना चाहिये ॥ १४७ ॥

(वक्तव्य) जो ये पूर्व परिहार लिखे वे ज्वर छूटेपर भी रखने और ज्वरमें भी अवश्य रखने उचित हैं ॥

ज्वरमें परिश्रमका निषेध ।

ज्वरे प्रमोहो भवति स्वल्पैरपि विचेष्टितैः ॥
निषण्णं भोजयेत्तस्मान्मूत्रोच्चारौ च कारयेत् ॥ १४८ ॥

ज्वरमें थोडीसी भी चेष्टा (परिश्रमादि) करनेसे मोह (मूर्च्छा या जी घबराना, थकान) होजाता है इस कारण विना परिश्रम बैठा रखकर ही उसे भोजन कराते रहना चाहिये (अर्थात् कुछ परिश्रम न करावे वैसेही बैठे २ खानेको दिया

(श्लो० ४४) "परिषेकावगाहांश्च" इत्यत्र 'बहिःसेकावगाहाश्च' इति वा पाठांतरम् । अवगाहो प्रभूतजले निमज्य स्नानम् । स्नानं स्नानमात्रम् (श्लो० ४७) प्राणतो बलतः (श्लो० ४८) निषण्णं श्रमरहितम् ।

करे कुछ भी काम न करावे) बलिक मल, मूत्र करनेपर भी दूसरा आदमी सहारा लगाके उठाया करे ॥ १४८ ॥

ज्वर शांतपर शोधन ।

अरोचके गात्रसादे वैवर्ण्यंगमलादिषु ॥
शांतज्वरोपि शोध्यः स्यादनुबंधभयान्नरः ॥ १४९ ॥

यदि ज्वर शांत हुए पीछे भी अरुचि रहे, अंगोंमें थकान हो, वर्ण बिगड़ा हो, शरीर मलीन हो तो ज्वरके शांत होनेपर भी शोधन करना (विरेचन) देना चाहिये क्योंकि ऐसा न हो कि दोष शेष रहगया हो जिससे फिर आनेलगे ॥ १४९ ॥

न जातु तर्पयेत्प्राज्ञः सहसा ज्वरकर्शितम् ॥
तेन संदूषितो ह्येष पुनरेव भवेज्ज्वरः ॥ १५० ॥

ज्वरसे निर्बल हुए मनुष्यको शीघ्रही अतितृप्त न करे (अर्थात् बल बढानेवाले पदार्थ शीघ्रही नहीं देने लगे) क्योंकि इससे दूषित होकर फिर ज्वर आने लगजाता है ॥ १५० ॥

चिकित्सेत्तु ज्वरान्सर्वान्निमित्तानां विपर्ययैः ॥ श्रमक्षयाभिघा- तोत्थे मूलव्याधिमुपाचरेत् ॥ १५१ ॥ स्त्रीणामपप्रजातानां स्या- त्स्तन्यावरणे च यः ॥ तत्र संशमनं कुर्याद्यथादोषं विधानवित् ॥ १५२ ॥

सब प्रकारके ज्वरोंकी उनके हेतुके विपर्ययरूप औषध, अन्न और विहारसे चिकित्सा करनी चाहिये (जैसे वातजनित ज्वरकी वातविपर्यय अर्थात् वातनाशक विधिसे चिकित्सा करे इसी भांति सब समझना) और श्रम, क्षय तथा अभिघा- तसे पैदा हुए ज्वरमें उनकी मूलरूप व्याधिका यत्न करना उचित है (जैसे श्रमज- नितमें श्रमनिवारक यत्न और क्षयजमें क्षयनाशक इसी तरह अभिघातजनितमें उस व्रण या चोटका यत्न करना मुख्य है) ॥ १५१ ॥ और जो अयोग्य या अकाल प्रसूति होनेवाली स्त्रियोंको ज्वर होजाता है तथा दूधके जोरसे भी स्त्रियोंको ज्वर होजाता है उनमें वैद्य दोषोंके अनुसार शमन यत्न करे ॥ १५२ ॥

ज्वरनाशक क्वाथोंका निर्देश ।

अतः संशमनीयानि कषायाणि निबोध मे ॥
सर्वज्वरेषु देयानि तानि वैद्येन जानता ॥ १५३ ॥

श्रीधन्वंतरिजी कहते हैं हे सुश्रुत ! यहांसे अगाडी हमसे अनेक क्वाथ श्रवण करो जिनको जाननेवाला वैद्य सब ज्वरोंमें यथायोग्य देवे ॥ १५३ ॥

वातज्वरके क्वाथ ।

पिप्पलीसारिवाद्राक्षाशतपुष्पाहरेणुभिः ॥ कृतः कषायः सगुडो हन्याच्छ्वसनजं ज्वरम् ॥ १५४ ॥ शृतशीतकषायं वा गुडूच्याः पेयमेव तु ॥ बलादर्भश्वदंष्ट्राणां कषायं पादशेषितम् ॥ १५५ ॥ शर्कराघृतसंयुक्तं पिबेद्वातज्वरापहम् ॥ शतपुष्पा वचा कुष्टं देवदारु हरेणुका ॥ १५६ ॥ कुस्तुंबुरूणि नलदं मुस्तं चैवाशु साधयेत् ॥ क्षौद्रेण सितया चापि युक्तः क्वाथोऽनिलात्मके ॥ १५७ ॥

पिप्पली, सारिवा, मुनक्का, सौंफ, हरेणु इनका क्वाथ करके गुड मिलाके पीना वातज्वरको नष्ट करता है ॥ १५४ ॥ अथवा गिलोयका क्वाथ शीतल करके पीवे अथवा खरेंटी, डाभ, गोखरू इनका क्वाथकर चतुर्थांश शेष रहनेपर खांड, घृत मिलाकर पीवे यह वातज्वरको नष्ट करताहै अथवा सौंफ, वच, कूट, देवदारु, हरेणु, धनियां, नलद (खसका भेद), नागरमोथा इनका क्वाथकर शहद और खांड मिलाके वातज्वरमें पीना चाहिये ॥ १५५ ॥ १५६ ॥ १५७ ॥

द्राक्षागुडूचीकाश्मर्यत्रायमाणाः ससारिवाः ॥ निःक्वाथ्य सगुडं क्वाथं पिबेद्वातकृते ज्वरे ॥ १५८ ॥ गुडूच्याः स्वरसो ग्राह्यः शतावर्याश्च तत्समः ॥ निहन्यात्सगुडः पीतः सद्योऽनिलकृतं ज्वरम् ॥ ॥ १५९ ॥ घृताभ्यंगस्वेदलेपानवस्थासु च योजयेत् ॥ १६० ॥

अथवा मुनक्का, गिलोय, काश्मरी, त्रायमाणा और सारिवा इनका क्वाथकर गुड डालकर वातकृत ज्वरमें पीना चाहिये ॥ १५८ ॥ अथवा गिलोयका स्वरस निकाले और उसके बराबर शतावरीका स्वरस लेवे इनमें गुड मिलाकर पीनेसे शीघ्र वातज्वर नष्ट होजाताहै ॥ १५९ ॥ तथा घृतका अभ्यंग करना, स्वेद कराना, लेप करना इन यत्नोंको भी अवस्था (मौको) पर करे (अर्थात् जीर्ण अवस्थामें ये भी करे) ॥ १६० ॥

पित्तज्वरके क्वाथ ।

श्रीपर्णीचंदनोशीरपरूषकमधूकजः ॥ शर्करामधुरो हंति कषायः पैत्तिकं ज्वरम् ॥ १६१ ॥ पीतं पित्तज्वरं हन्यात्सारिवाद्यं सशर्करम् ॥ सयष्टिमधुकं हन्यात्तथैवोत्पलपूर्वकम् ॥ १६२ ॥ शृत-

(श्लो० १६२) उत्पलपूर्वकम् उत्पलादिकम् ।

शीतकषायं वा सोत्पलं शर्करायुतम् ॥ गुडूचीपद्मरोध्राणां सारिवोत्पलयोस्तथा ॥ १६३ ॥ शर्करामधुरः क्काथः शीतः पित्तज्वरापहः ॥ द्राक्षारग्वधयोश्चापि काश्मर्याश्चाथवा पुनः ॥ १६४ ॥

काश्मरी, चंदन, खस, फालसे और महुवाके फूल इनका क्काथ बना मिश्री मिलाके पीवे तो पित्तज्वर नष्ट होवे ॥ १६१ ॥ अथवा सारिवादि गणका क्काथ मिश्रीयुक्त पीनेसे पित्तज्वर दूर होवे अथवा उत्पलादि और मुलेठीका क्काथ पित्तज्वरको नष्ट करता है ॥ १६२ ॥ अथवा कमलका शृतशीतकषाय मिश्री युक्त पीवे अथवा गिलोय, पद्माख, लोध, सारिवा और कमल इनका क्काथ मिश्री मिलाके पीवे तो पित्तज्वर नष्ट हो अथवा मुनक्का और किरमालाका क्काथ अथवा खंभारीका क्काथ पित्तज्वरको नष्ट करताहै ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

पित्तके उपद्रवोंके यत्न।

स्वादुतिक्तकषायाणां कषायः शर्करायुतैः ॥ सुशीतैः शमयेत्तृष्णां प्रवृद्धां दाहमेव च ॥ १६५ ॥ शीतं मधुयुतं तोयमाकंठाद्वा पिपासितम् ॥ वामयेत्पाययित्वा तु तेन तृष्णा प्रशाम्यति ॥ १६६ ॥ क्षीरैः क्षीरकषायैश्च सुशीतैश्चंदनायुतैः ॥ अंतर्दाहे विधातव्यमेतैश्चान्यैश्च शीतलैः ॥ १६७ ॥ निदध्यादप्सु चालोड्य निशापर्युषितं ततः ॥ क्षौद्रेण युक्तं पिबतो ज्वरदाहो प्रशाम्यतः ॥ १६८॥ पद्मकं मधुकं द्राक्षा पुंडरीकमथोत्पलम् ॥ यवान्भृष्टानुशीराणि समंगा काश्मरीफलम् ॥ १६९ ॥ जिह्वातालुगलक्लोमशोषे मूर्ध्नि च दापयेत् ॥ केशरं मातुलुंगस्य मधुसैंधवसंयुतम् ॥ १७० ॥ शर्करादाडिमाभ्यां वा द्राक्षाखर्जूरयोस्तथा ॥ वैरस्ये धारयेत्कल्कं गंडूषं च यथाहितम् ॥ १७१ ॥

मीठे, कडुवे और कसैले द्रव्योंके क्काथमें मिश्री डाल ठंढे करके पीनेसे बढीहुई तृषा और दाह शांत होते हैं ॥ १६५ ॥ तृषापीडितको ठंढे पानीमें शहद मिलाकर कंठतक (पेटभरके पिलादे फिर वमन करादे इससे तृषा शांत होती है) ॥ ॥ १६६ ॥ दूधके वृक्ष (वटादि) का क्काथ चन्दनयुक्त करके बनावे फिर उसे ठंढाकर दूध मिलाकर अंतर्दाहवालेको पिलावे तथा अन्य शीतल द्रव्योंको रातको जलमें भिगोदे और रातभर भीगनेदे फिर सबेरे मथकर छान ले और शहद मिला

कर पीवे तो ज्वर और दाह शांत होते हैं ॥ १६७ ॥ १६८ ॥ पद्माख, मुलैठी, मुनक्का, कमल, दूसरा कमल (नीलोफर), भूने जौ, खस, लज्जालू और काश्मरीफल ॥ १६९ ॥ इन सबको पीसकर जीभ, तालू, गल और क्लोम सूखता हो तो इनकी लुगदी शिरपर रखनी चाहिये तथा नींबूके केसरोंमें शहद और सैंधानमक मिलाकर ॥ १७० ॥ अथवा अनार और मिश्री मिलाकर अथवा मुनक्का और खजूरफल मिलाकर कल्क बनावे और मुखकी विरसतामें इनका कवल धारण करे या गंडूष (कुल्ले) करे ॥ १७१ ॥

कफज्वरका यत्न ।

सप्तच्छदं गुडूचीं च निंबस्फूर्जकमेव च ॥ क्वाथयित्वा पिबेत्क्वाथं सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ॥ १७२ ॥ कटुत्रिकं नागपुष्पं हरिद्रा कटुरोहिणी ॥ कौटजं च फलं हन्यात्सेव्यमानं कफज्वरम् ॥ १७३ ॥ हरिद्रां चित्रकं निंबमुशीरातिविषे वचाम् ॥ कुष्ठमिंद्रयवां मूर्वां पटोलं चापि साधितम् ॥ पिबेन्मरिचसंयुक्तं सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ॥ ॥१७४॥ सारिवातिविषाकुष्ठपुराख्यैः सदुरालभैः ॥ मुस्तेन च कृतः क्वाथः पीतो हन्यात्कफज्वरम् ॥१७५॥ मुस्तं वृक्षकबीजानि त्रिफला कटुरोहिणी ॥ परूषकानि च क्वाथः कफज्वरविनाशनः॥ १७६ ॥

सातला, गिलोय, नींबकी छाल स्फूर्जक (तिन्दुकवृक्ष) इनका क्वाथ करके शहद मिलाके कफज्वरमें पीना श्रेष्ठ है ॥ १७२ ॥ सोंठ, मिरच, पीपल, नागकेशर, हलदी, कुटकी, इन्द्रजव इनका क्वाथ सेवन करनेसे कफज्वरको दूर करता है ॥ १७३ ॥ हलदी, चित्रक, नींबकी छाल, खस, अतीस, वच, कूट, इंद्रजव, मूर्वा, पटोल इनका क्वाथ बनावे और उसमें शहद मिलाकर मिरच युक्तकर (मिरचोंका प्रतिवास देकर) कफज्वरमें पीना चाहिये ॥ १७४ ॥ सारिवा, अतीस, कूट, गूगल, जवासा और नागरमोथा इनका क्वाथ करके पीना कफज्वरको नष्ट करता है ॥ १७५ ॥ मोथा, इंद्रयव, त्रिफला, कुटकी और फालसा इनका क्वाथ पीना भी कफज्वरका नाश करनेवाला है ॥ १७६ ॥

वातकफज्वरका यत्न ।

राजवृक्षादिवर्गस्य कषायं मधुसंयुतम् ॥ कफवातज्वरं हन्यात्क्षिप्रं कालेऽवचारितम् ॥ १७७ ॥ नागरं धान्यकं भार्ङ्गीमभयां

(श्लो० १७७) ननु वातपित्तद्वंद्वजक्रमं विहाय वातश्लेष्मद्वंद्वजचिकित्सितं प्रथम यदत्र कृतं तत्केवलकफज्वरेऽपि विधेयम् (इति डल्हनः)

सुरदारु च ॥ वचां पर्पटकं मुस्तं भूतीकमथ कट्फलम् ॥ १७८ ॥ निःक्वाथ्य कफवातोत्थे क्षौद्रहिंगुसमन्वितम् ॥ पातव्यं श्वासकासघ्नं श्लेष्मोत्सेके गलग्रहे ॥ १७९ ॥ हिक्कासु कण्ठश्वयथौ शूले हृदयपार्श्वजे ॥ १८० ॥

आरग्वधादि गणका क्वाथकर शहद मिलाकर कुछ दिन पीनेसे वातकफज्वर शीघ्र नष्ट होजाता है ॥ १७७ ॥ सोंठ, धनियां, भारंगी, हरीतकी, देवदारु, वच, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, भूतीक (डल्हन मिश्र रोहिषतृण कहते हैं और कई चिरायता कहते हैं) और कायफल ॥ १७८ ॥ इनका क्वाथ करके शहद और हींग मिलाके वातकफज्वरमें पिलावे यह श्वास और खांसीको भी दूर करता है तथा कफकी उत्कृष्टता और गलग्रहमें भी देना श्रेष्ठ है ॥ १७९ ॥ और हिचकी, कंठकी सूजन तथा हृदय और पसलीके दरदमें भी पिलाना उचित है (इसमें शहद एक कर्ष और हींग एक माष प्रमाण (मासेभर) डालना चाहिये) ॥ १८० ॥

कफपित्तज्वरका यत्न ।

एलापटोलत्रिफलायष्ट्याह्वानां वृषस्य च ॥ क्वाथो मधुयुतः पीतो हंति पित्तकफज्वरम् ॥ १८१ ॥ कटुकाविजयाद्राक्षा मुस्तापर्पटकैः कृतः ॥ कषायो नाशयेत्पीतः श्लेष्मपित्तभवं ज्वरम् ॥ ८२ ॥ भार्ङ्गीवचापर्पटकधान्यहिंग्वभयाघनैः ॥ काश्मर्यनागरैः क्वाथः सक्षौद्रः श्लेष्मपित्तजे ॥ १८३ ॥ सशर्करामक्षमात्रां कटुकामुष्णवारिणा ॥ पीत्वा ज्वरं जयेज्जंतुः कफपित्तसमुद्भवम् ॥ १८४ ॥

इलायची, पटोल, त्रिफला, मुलेठी और वासा इनका क्वाथकर शहद मिलाकर पीनेसे कफपित्तका ज्वर नष्ट होजाताहै ॥ १८१ ॥ अथवा कुटकी, हरड, मुनक्का, नागरमोथा, पित्तपापडा इनका क्वाथ करके पीना कफपित्तज्वरको दूर करताहै ॥१८२॥ भारंगी, वच, पित्तपापडा, धनियां, हींग, हरीतकी, नागरमोथा, खंभारी, सोंठ इनका क्वाथ शहद मिलाकर पीना कफपित्तज्वरमें श्रेष्ठ है ॥ १८३ ॥ अथवा एक कर्षभर कुटकीको खांड मिलाकर गरम जलके संग पीवे तो मनुष्य कफपित्तजनितज्वरको जीत लेताहै (अर्थात् आराम होजाता है ॥ १८४ ॥

(श्लो० १७९) अत्र मधु कर्षप्रमाणं हिंगु माषप्रमाणम् (इति नि० सं०)

वातपित्तज्वरका यत्न ।

किराततिक्तममृतां द्राक्षामामलकं शठीम् ॥ निःकाथ्य वातपित्तोत्थे तं काथं सगुडं पिवेत् ॥ १८५ ॥ रास्नावृषोत्थत्रिफलाराजवृक्षफलैः सह ॥ कषायः साधितः पीतो वातपित्तज्वरं जयेत् ॥ १८६ ॥

चिरायता, गिलोय, मुनक्का, आंवले, कचूर इनका काथ करके गुड मिलाके वातपित्तजनितज्वरमें पीवे ॥ १८५ ॥ अथवा रास्ना, अडूसा, त्रिफला, किरमालाकी फली इनका काथ बनाकर पीनेसे वातपित्तका ज्वर नष्ट होजाताहै ॥१८६॥

(वक्तव्य) इन द्वंद्वज ज्वर चिकित्साके श्लोकोंको जैज्जटाचार्य सन्निपातकी चिकित्साके पीछे पढते हैं क्योंकि पहले वही क्रम लिखाहै ॥

त्रिदोषज्वरकी चिकित्सा ।

सर्वदोषसमुत्थे तु संसृष्टानवचारयेत् ॥ यथादोषोच्छ्रयं चापि ज्वरान्सर्वानुपाचरेत् ॥ १८७ ॥ वृश्चीरबिल्ववर्षाभूः पयश्चोदकमेव च ॥ पचेत्क्षीरावशिष्टं च तद्धि सर्वज्वरापहम् ॥१८८॥ उदकांशास्त्रयः क्षीरं शिंशपासारसंयुतम्॥तत्क्षीरशेषं कथितं पेयं सर्वज्वरापहम् ॥१८९॥ नलवेतसयोर्मूले मूर्वायां देवदारुणि ॥ कषायं विधिवत्कृत्वा पेयमेतज्ज्वरापहम् ॥ १९० ॥ त्रैफले वा ससर्पिष्कः काथः पेयस्त्रिदोषजे ॥ अनंतां वालकं मुस्तां नागरं कटुरोहिणीम् ॥ १९१ ॥ सुखांबुना प्रागुदयात्पाययेताक्षसंमितम् ॥ एष सर्वज्वरान्हंति दीपयत्याशु चानलम् ॥१९२ ॥ द्रव्याणि दीपनीयानि तथा वैरेचनानि च ॥ एकशो वा द्विशो वापि ज्वरघ्नानि प्रयोजयेत् ॥ १९३ ॥ सर्पिर्मध्वभयातैललेहोयं सर्वजं ज्वरम् ॥ शांतिं नयेत्त्रिवृच्चापि सक्षौद्रा प्रबलं ज्वरम् ॥ १९४ ॥

सब दोषों (सन्निपात) के ज्वरमें मिलीहुई औषध करनी तथा जौनसा दोष उल्वण हो उसकी शांतिकी प्रधानतासे सब ज्वरोंकी चिकित्सा करनी चाहिये॥ १८७॥

(श्लो० १८९) क्षीरस्याष्टौ पलानि शिंशपासारः पलप्रमितः (इति डल्हनः) (श्लो० १९२) सुखांबुना उष्णोदकेन पलप्रमितेन । उदयात्प्राक् सूर्योदयात्प्राक् (इति नि० सं०) उदयात्प्राक् इति केचिदत्र ज्वरोदयात्प्राक् पाययेदिति वदति अस्य श्लोकस्यान्वयो गतश्लोकस्योत्तरार्द्धेन सह करणीयः ।

वृश्चिक (श्वेत पुनर्नवा), बिल्व, सोंठी, दूध और पानी मिलाकर पकावे और दूध शेष रहे पिलावे यह सब ज्वरोंको (या सब दोषके ज्वरको) नष्ट करता है ॥ १८८ ॥ अथवा जल तीन भाग, दूध एक भाग (आठ पल) लेकर शीशमका सार (१ पल) डालकर उबाले दुग्ध शेष रहे पीवे यह भी सब दोषोंके ज्वरको नष्ट करता है ॥ १८९ ॥ नरसल और वेतकी जड, मूर्वा, देवदारु इनका क्वाथ पीना इस ज्वरको नष्ट करता है ॥ १९० ॥ अथवा त्रिफलाका क्वाथ कर घृत युक्तकर पीनेसे त्रिदोषका ज्वर नष्ट होता है अथवा अनंता (जवासा), नेत्रबाला, मोथा, सोंठ और कुटकी ॥ १९१ ॥ इन्हें गरम जलके संग सूर्योदयसे पहले एक कर्षभर पिलावे यह सब ज्वरोंको नाश करता है और शीघ्रही जठराग्नि दीपन करता है ॥ १९२ ॥ तथा दीपन द्रव्यों (पिप्पल्यादि) मेंसे तथा विरेचनी (त्रिवृता आदि) औषधोंमेंसे एक या दो मिलाकर उपयोग करे ये भी ज्वरनाशक हैं ॥ १९३ ॥ तथा घृत, शहद, हरड और तैल इनका अवलेह सर्वदोषजनित ज्वरको नष्ट करता है तथा निशोथमें शहद, मिलाकर उपयोग करना भी प्रबल ज्वरको शांत करता है ॥ १९४ ॥

विषमज्वरकी चिकित्सा ।

ज्वरे तु विषमे कार्यमूर्द्धं चाधश्च शोधनम् ॥ घृतं प्लीहोदरोक्तं वा निहन्याद्विषमज्वरम् ॥ १९५ ॥ गुडप्रगाढां त्रिफलां पिबेद्वा विषमार्दितः ॥ गुडूचीनिम्बधातृणां कषायं वा समाक्षिकम् ॥ १९६ ॥ प्रातःप्रातः ससर्पिष्कं रसोनमुपयोजयेत् ॥ त्रिचतुर्भिः पचेत्काथं पंचभिर्वा समन्वितैः ॥ १९७ ॥ मधुकस्य पटोलस्य रोहिण्या मुस्तकस्य च ॥ हरीतक्याश्च सर्वोयं त्रिविधो योग इष्यते ॥ १९८ ॥ सर्पिःक्षीरसिताक्षौद्रमागधीर्वा यथाबलम् ॥ दशमूलीकषायेण मागधीर्वा प्रयोजयेत् ॥ १९९ ॥ पिप्पलीवर्द्धमानं वा पिबेत्क्षीररसाशनः ॥ ताम्रचूडस्य मांसेन पिबेद्वा मद्यमुत्तमम् ॥ २०० ॥

विषमज्वरोंमें वमन, विरेचन द्वारा ऊपर नीचेसे शोधन करे और प्लीहोदरकी चिकित्सामें कहाहुआ घृत भी विषमज्वरको नष्ट करता है ॥ १९५ ॥ अथवा

(श्लो० १९७) अस्य श्लोकस्योत्तरार्द्धमग्रिमेण सह मेलयित्वान्वेतव्यः (श्लो० १९८) त्रिविधो योग इति मधुकपटोलरोहिणीभिरेको योगः । मधुकपटोलरोहिणीमुस्तकैश्चतुर्भिर्द्वितीयो योगः । मधुकपटोलरोहिणीमुस्तकहरीतकीभिः पंचभिस्तृतीयो योगः (इति नि० सं०)

विषमज्वरसे पीडित मनुष्य त्रिफलाको गुड़में घोलकर पीवे अथवा गिलोय, नींबकी छाल, आंवले इनका क्वाथ शहद मिलाकर पीवे ॥१९६॥ अथवा सवेरे २ घृत और लहसनका सेवन करे अथवा तीन तीन, चार चार, पांच पांच नीचे लिखे औषधोंमेंसे मिला मिलाकर क्वाथ करे ॥ १९७ ॥ वे औषध ये हैं–मुलेठी, पटोल (परवल), रोहिणी (कुटकी), नागरमोथा और हरीतकी इन सबके तीन प्रकारके योग होते हैं एक तीन तीन औषधोंके, दूसरे चार चारके, तीसरा पांचोंका॥ ॥ १९८ ॥ अथवा घृत, दूध, मिश्री, शहद इनके संग पीपल यथाबल सेवन करे या पीपलोंका दशमूलके क्वाथके साथ उपयोग करे ॥ १९९ ॥ अथवा दूध और मांसरस भोजन करताहुआ वर्द्धमानपिप्पलीका उपयोग करे अथवा मुरगेके मांसके संग उत्तम मदिराका पान किया करे इससे भी विषमज्वर शांत होता है ॥ २०० ॥

विषम और जीर्णज्वर नाशक घृत ।

कोलाग्निमंथत्रिफलाक्वाथे दध्ना घृतं पचेत् ॥ तिल्वकावापमेतद्धि विषमज्वरनाशनम् ॥ २०१॥ पिप्पल्यतिविषाद्राक्षासारिवाबिल्वचंदनैः ॥ कटुकेन्द्रयवोशीरसिंहीतामलकीघनैः ॥२०२॥ त्रायमाणास्थिराधात्रीविश्वभेषजचित्रकैः ॥ पक्वमेतैर्घृतं पीतं विजित्य विषमाग्निताम् ॥२०३ ॥ जीर्णज्वरशिरःशूलगुल्मोदरहलीमकम्॥ क्षयं कासं ससंतापं पार्श्वशूलानपास्यति ॥ २०४ ॥

कोल (पंचकोल), अरणी, त्रिफला इनके क्वाथमें दही मिलाकर इससे घृत सिद्ध करे और लोध सिद्ध होतेमें डालदे यह विषमज्वरका नाशक है ॥ २०१ ॥ तथा पीपल, अतीस, मुनक्का, सारिवा, बिल्व, चंदन, कुटकी, इंद्रजव, खस, बडी कटेली, तामलकी (भूम्यामलकी) और नागरमोथा ॥ २०२ ॥ त्रायमाणा, शालपर्णी, आँवले, सोंठ और चित्रक इनमें साधन किया हुआ घृत पियाहुआ विषमाग्निको जीतकर ॥ २०३ ॥ जीर्णज्वर, शिरका दर्द, गुल्म, उदररोग, हलीमक, क्षय, खाँसी, संताप और पसलीका दर्द इतने रोगोंको नष्ट करताहै ॥२०४॥

जीर्णज्वरपर घृतसाधन ।

गुडूचीत्रिफलावासात्रायमाणायवासकैः ॥ क्वथितैर्विधिवत्पक्वमे-

(श्लो० २०१) कोलं पंचकोलम् । घृतकल्पनामाह–पचकोलादिद्रव्याणा पलशते पानीयपलानि द्वादशाधिकपचशतानि एकीकृत्य विपचेत् यावचतुर्विंशत्यधिकशतं निष्पद्यते तेन क्वाथेन तथा चतुर्गुणेन च दध्ना द्वात्रिंशत्पलप्रमितं घृतम् अष्टपलप्रमाणतिल्वकेन पचेत् । अनेन विधिना उक्तप्रमाणानि घृततैलानि पाचनीयानि (इति डल्हनः) (श्लो० २०२) तामलकी भूम्यामलकी (इति नि० सं०)

तैः कल्कीकृतैः समैः ॥ २०५ ॥ द्राक्षामागधिकांभोदनागरोत्पलचंदनैः ॥ पीतं सर्पिः क्षयश्वासकासाजीर्णज्वराञ्जयेत् ॥ २०६ ॥

गिलोय, त्रिफला, अडूसा, त्रायमाणा, जवासा इनके क्काथमें विधिपूर्वक घृत पकावे और मुनक्का, पीपल, नागरमोथा, सोंठ, कमल और चंदन इन सबको समान भाग लेकर कल्क बनाके उक्त घृतमें पकते समय डालदे यह घृत पीनेसे क्षय, श्वास, खांसी और जीर्णज्वर इन सब रोगोंको जीतलेताहै ॥ २०५॥२०६॥

अन्यघृत ।

कलशीबृहतीद्राक्षात्रायंतीनिंबगोक्षुरैः॥ बलापर्पटकांभोदशालपर्णीयवासकैः॥२०७॥ पक्वमुत्क्वथितैः सर्पिः कल्कैरेभिः समन्वितैः॥ शठीतामलकीभार्ङ्गीमेदाकतकपौष्करैः ॥ २०८ ॥ क्षीरद्विगुणसंयुक्तंजीर्णज्वरमपोहति॥शिरःपार्श्वरुजाकासक्षयप्रशमनं परम्॥२०९॥

पृश्निपर्णी, बडी कटेली, मुलेठी, त्रायमाणा, नींब, गोखरू, खरेंटी, पित्तपापडा नागरमोथा, शालपर्णी, जवासा ॥ २०७ ॥ इनका क्काथ करके इसमें घृत पकावे और यह आगे लिखी औषधोंका कल्क भी पकते समय डाले—कचूर, भूम्यामलकी, भारंगी, मेदा, कैथबीज और पुष्करमूल (इनका कल्क करके डाले) ॥ ॥ २०८ ॥ और दुगुना दूध डालकर घृतको सिद्ध करले यह घृत जीर्णज्वरको दूर करता है, शिर और पसलीके दरदको, खांसीको और क्षयीको शांत करनेमें परम उत्कृष्ट है ॥ २०९ ॥

अन्यघृत ।

पटोलीपर्पटारिष्टगुडूचीत्रिफलावृषैः ॥ कटुकांबुदभूनिंबयासयष्ट्याह्वचंदनैः॥ २१० ॥दार्वीशक्रयवोशीरत्रायमाणाकणोत्पलैः ॥ धात्रीभृंगरजोभीरुकाकमाचीरसैर्घृतम् ॥ २११॥ सिद्धमाश्वपचीकुष्ठज्वरशुक्रार्जुनव्रणान् ॥ हन्यान्नयनवदनकर्णजान्घ्राणजान्गदान् ॥ २१२ ॥

पटोली (परवल), पित्तपापडा, नींब, गिलोय, त्रिफला, अडूसा, कुटकी, नागरमोथा, चिरायता, जवासा, मुलेठी और चंदन ॥ २१० ॥ दारुहलदी. इंद्रजव, खस, त्रायमाणा, पीपल, कमल, आंवले, भृंगराज (भांगरा), शतावर, मकोय इनके रसमें घृतको पकावे ॥ २११ ॥ यह सिद्ध किया घृत शीघ्रही

अपची, कुष्ठ, ज्वर, शुक्र (नेत्रकी फुल्ली), अर्जुनरोग, व्रण तथा नेत्र, मुख, कान और नाकके रोगोंको नष्ट करता है ॥ २१२ ॥

कल्याणघृत।

विडंगत्रिफलामुस्तमंजिष्ठादाडिमोत्पलैः ॥ प्रियंग्वेलैलवालुकचंदनामरदारुभिः ॥२१३॥ बर्हिष्ठकुष्ठरजनीपर्णिनीसारिवाद्वयैः हरेणुकात्रिवृद्दंतीवचातालीशकेशरैः ॥२१४॥ द्विक्षीरं विपचेत्सर्पिर्मालतीकुसुमैः सह ॥ विषमज्वरकश्वासगुल्मोन्मादगरापहम् ॥ २१५ ॥ एतत्कल्याणकं नाम सर्पिर्मांगल्यमुत्तमम् ॥ अलक्ष्मीग्रहरक्षोग्निमांद्यापस्मारपापनुत् ॥ २१६ ॥ शस्यते नष्टशुक्राणां वंध्यानां गर्भदं परम् ॥ मेध्यं चक्षुष्यमायुष्यं रेतोमार्गरुजापहम् ॥ २१७ ॥

विडंग, त्रिफला, नागरमोथा, मँजीठ, अनार, कमल, प्रियंगु, इलायची, एलवालुक, चंदन, देवदारु ॥ २१३ ॥ नेत्रवाला, कूट, हलदी, दोनों पर्णी (शालपर्णी और पृश्निपर्णी), दोनों सारिवा (सारिवा और उत्पलसारिवा), हरेणु, निशोथ, दंती, वच, तालीशपत्र और नागकेशर ॥ २१४ ॥ इनका क्वाथ करे (आठ पल विडंगादि द्रव्य ले) (एक प्रस्थ घृत और एक एक प्रस्थ दूध ले) और मालतीके पुष्प भी डाले और घृतको सिद्ध कर ले यह घृत विषमज्वर, श्वास, गुल्म, उन्माद और विष इनको नष्ट करता है ॥ २१५ ॥ यह कल्याण नामक घृत उत्तम और मंगलकारी है, अलक्ष्मी (अकांति), ग्रह (बालग्रह), राक्षसदोष, अग्निकी मन्दता और अपस्मारदोष इन सबको दूर करता है ॥ २१६ ॥ जिनका वीर्य नष्ट होगया हो उन्हें श्रेष्ठ है तथा वंध्या स्त्रियोंको गर्भका देनेवाला है, बुद्धि बढानेवाला, नेत्रोंको हित, आयु देनेवाला, और शुक्रमार्गके रोगोंको हरनेवाला है ॥ २१७ ॥

एतैरेव यथाद्रव्यैः सर्वगंधैश्च साधितम् ॥ कपिलाया घृतप्रस्थं सुवर्णमणिसंयुतम् ॥ २१८ ॥ तत्क्षीरेण सहैकध्यं प्रसाध्य कुसुमैरिमैः ॥ सुमनश्चंपकाशोकशिरीषकुसुमैर्घृतम् ॥ २१९ ॥ तथा

(श्लो० २१३ से २१७ तक) चंदन रक्तचंदनम् । एला सूक्ष्मैला । एलवालुकं कुष्ठगंधिकम् । बर्हिष्ठ वालकम् । रजनीद्वयम् हरिद्रा दारुहरिद्रा च । विडंगादिद्रव्यकल्कमष्टपलप्रमाणं गव्यघृतं प्रस्थम् उदकस्य चतुर्भिः प्रस्थैः साधयेत् (इति नि० सं०) द्विक्षीर द्विगुणं क्षीरमित्यर्थः । अथवा आजं गव्यमिति द्विक्षीरम् ।

नलदपद्मानां केसरैर्दाडिमस्य च ॥ तिथौ प्रशस्ते नक्षत्रे साधकस्यातुरस्य च ॥ २२० ॥ कृतं मनुष्यदेवाय ब्राह्मणैरभिमंत्रितम् ॥ दत्तं सर्वज्वरान्हंति महाकल्याणकं घृतम् ॥ २२१ ॥ दर्शनस्पर्शनाभ्यां तु सर्वरोगहरं शिवम् ॥ अधृष्यः सर्वभूतानां वलीपलितवर्जितः॥ २२२ ॥ अस्याभ्यासाद्घृतस्येह जीवेद्वर्षशतत्रयम् ॥२२३॥

और इन्हीं कल्याणघृतोक्त द्रव्योंसे तथा सर्वगंध (एलादिगण) से कपिला गौका प्रस्थभर घृत सिद्ध करे और सुवर्ण और मणि (माणिक्यादि) यथायोग्य शोधन करके युक्त करे ॥ २१८ ॥ फिर उस कपिलाहीके दूधमें मिलाकर इन पुष्पोंसे युक्त करे चँबेली, चम्पा, अशोक, शिरस तथा खस और कमलकेशर और अनारके पुष्प डाले और घृतको पुनः साधन करे ॥ २१९ ॥ फिर जब प्रशस्त नक्षत्र और तिथि आदि हों तब ब्राह्मणोंसे अभिमंत्रित कराकर इस घृतको वैद्य, रोगी और मनुष्यदेव (राजा)को देवे यह महाकल्याण नामक घृत सब ज्वरोंको नष्ट करता है ॥ २२० ॥ २२१ ॥ दर्शनसे, स्पर्शसे यह सब रोगोंको दूर करताहै, कल्याणकारी है इसके सेवनसे मनुष्य सब प्राणियोंमें अधृष्य (अजेय) होताहै, बुढापेकी झुरियोंसे रहित होजाता है ॥ २२२ ॥ इस घृतके अभ्याससे तीनसौ वर्षकी आयु प्राप्त होतीहै अर्थात् यह परम रसायन भी है ॥ २२३ ॥

पंचगव्य घृत ।

गव्यं दधि च मूत्रं च क्षीरं सर्पिः शकृद्रसः ॥ समभागानि पाच्यानि कल्कांश्चैतान्समावपेत् ॥ २२४ ॥ त्रिफलां चित्रकं मुस्तं हरिद्रे द्वे विषां वचाम् ॥ विडंगं त्र्यूषणं चव्यं सुरदारु तथैव च ॥२२५॥ पंचगव्यमिदं पानाद्विषमज्वरनाशनम् ॥ पंचगव्यमृते गर्भात्पाच्यमन्यद्वृषेण च ॥ २२६ ॥ बलयाथ परं पाच्यं गुडूच्या तद्वदेव तु ॥ जीर्णज्वरे च शोफे च पांडुरोगे च पूजितम् ॥ २२७ ॥ एतेनैव तु कल्पेन घृतं पंचाविकं पचेत् ॥ पंचाजं पंचमहिषं चतुरुष्ट्रमथापि वा ॥ २२८ ॥

गौका दही, गोमूत्र, गोदुग्ध, गोघृत और गौके गोबरका रस इनको समान भाग लेकर पकावे और उसमें आगेलिखी औषधोंका कल्क डालदे ॥

(श्लो० २२८) चतुरुष्ट्रम् उष्ट्र्याः शकृद्रसवर्ज्यम् ।

॥ २२४ ॥ त्रिफला, चित्रक, नागरमोथा, दोनों हलदी, अतीस, वच, वायविडंग, त्रिकटु, चव्य और देवदारु ॥ २२५ ॥ (इनका कल्क करके पकते समय डाले) यह पंचगव्यघृत पान करनेसे विषमज्वर नष्ट होजाता है और विना कल्क डाले भी पंचगव्यघृत बनाते हैं तथा वासा ॥ २२६ ॥ खरेंटी और गिलोय इन्हींमेंसे किसी एकके कल्कसे (या तीनोंसे) भी पंचगव्यघृत बनाते हैं यह जीर्णज्वर, शोथ और पांडुरोगमें श्रेष्ठ होता है ॥ २२७ ॥ इन्हीं औषधों और इसी रीतिसे पंचाविक (भेडकी पांचों वस्तुओंका) घृत भी पकाते हैं तथा पंचाज (बकरीकी पांचों वस्तुओंसे) तथा पंचमाहिष (भैंसकी पांचों वस्तुओंसे) भी घृत पकाते हैं और ऊँटनीकी चार वस्तुओंसे (दूध, दही, घृत और मूत्र) इससे चतुरुष्ट्र नामक घृत बनता है ॥ २२८ ॥

अन्यघृत ।

त्रिफलोशीरसंपाककटुकातिविषान्वितैः ॥ शतावरीसप्तपर्णगुडूचीरजनीद्वयैः ॥ २२९ ॥ चित्रकत्रिवृतामूर्वापटोलारिष्टवालकैः ॥ किराततिक्तकवचाविशालापद्मकोत्पलैः ॥ २३० ॥ सारिवाद्वययष्ट्याह्वचविकारक्तचंदनैः ॥ दुरालभापर्पटकत्रायमाणाटरूषकैः ॥ ॥२३१ ॥ रास्नाकुंकुममंजिष्ठामागधीनागरैस्तथा ॥ धात्रीफलरसैः सम्यग्द्विगुणैः साधितं हविः ॥२३२॥ परिसर्पज्वरश्वासगुल्मकुष्ठनिवारणम् ॥ पांडुप्लीहाग्निमांद्येभ्य एतदेवं परं हितम् ॥ २३३॥

त्रिफला, खस, किरमाला, कुटकी, अतीस, शतावरी, सातला, गिलोय, दोनों हलदी ॥ २२९ ॥ चित्रक, निशोथ, मूर्वा, परवल, नींब, नेत्रवाला, चिरायता, वच, इन्द्रायन, पद्माख, कमल ॥ २३० ॥ दोनों सारिवा, मुलेठी, चव्य, रक्तचंदन, जवासा, पित्तपापडा, त्रायमाणा, अडूसा ॥२३१ ॥ रास्ना, केशर, मँजीठ, पीपल, सोंठ इनका क्काथ और आंवलोंका रस (इनका दुगुना लेकर आधा घृत) डालकर घृत साधन करे ॥ २३२ ॥ यह घृत विसर्प, ज्वर, श्वास, गुल्म, कुष्ठ इनको नष्ट करता है तथा पांडु, प्लीहा, मन्दाग्नि इनमें भी परम हित है ॥ २३३ ॥

अन्यघृत ।

पटोलकटुकादार्वीनिंबवासफलत्रिकम् ॥ दुरालभापर्पटकत्रायमाणाः पलोन्मिताः ॥२३४॥ प्रस्थमामलकानां च क्काथयेत्सलिलार्मणे ॥ तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २३५ ॥ रक्तः

(श्लो० २३५) सलिलार्मणे जलद्रोणे । अर्मणः द्रोणपरिमाणः (इति मा० नि०)

पित्तकफस्वेदक्लेदपूयांगशोषणम् ॥ कामलाज्वरवीसर्पगंडमाला-हरं परम् ॥ २३६ ॥

पटोल, कुटकी, दारुहलदी, नींब, वासा, त्रिफला, जवासा, पित्तपापडा, त्रायमाणा इन्हें पल २ लेवे ॥ २३४ ॥ आंवले १ प्रस्थ लेकर अठगुने जलमें क्राथ कर चौथाई शेष रहेपर प्रस्थभर घृत डालकर पकाले ॥ २३५ ॥ यह घृत रक्त-पित्त, कफ, स्वेद, क्लेद, पूय, अंगशोष, कामला, ज्वर, विसर्प और गण्डमाला इन सबको दूर करता है ॥ २३६ ॥

श्रृतं पयः शर्करा च पिप्पल्यो मधुसर्पिषी ॥
पंचसारमिदं पेयं मथितं ज्वरशांतये ॥
क्षतक्षीणे क्षये श्वासे हृद्रोगे चैतदिष्यते ॥ २३७ ॥

औटाया हुआ दूध, मिश्री, पीपल, शहद और घृत इन पांचोंको मथकर (खूब मिलाकर) ज्वरकी शांतिके लिये पीवे इसे पंचसार कहते हैं यह क्षतक्षीणको, क्षयको, श्वासको, हृदयके रोगको श्रेष्ठ है ॥ २३७ ॥

अभ्यंगार्थ तैलसाधन ।

लाक्षाविश्वनिशामूर्वामंजिष्ठास्वर्जिकामयैः ॥ षड्गुणेन च तक्रेण सिद्धं तैलं ज्वरांतकृत् ॥ २३८ ॥ क्षीरवृक्षासनारिष्टजंबूसप्तच्छदार्जुनैः ॥ शिरीषखदिरास्फोतामृतवल्याटरूषकैः ॥ २३९ ॥ कटुकापर्पटोशीरवचातेजोवतीघनैः ॥ साधितं तैलमभ्यंगादाशु जीर्णज्वरापहम् ॥ २४० ॥

लाख, सोंठ, हलदी, मूर्वा, मँजीठ, सज्जी, आमय (कूट) (ये सब आठ पल लेवे) और (बत्तीस पल तेल), तैलसे छःगुनी छाँछ डालकर पकावे यह तैल मर्दन करनेसे ज्वर नष्ट होताहै ॥ २३८ ॥ दूधके वृक्ष (गूलर आदि), विजयसार, नींब, जामुन, सातला, अर्जुन, शिरस, खैर, आस्फोत, गिलोय (या अमरवेल), अडूसा ॥ २३९ ॥ कुटकी, पित्तपापडा, खस, वच, तेजोवती (तेजबल), नागरमोथा इनसे सिद्ध किया हुआ तैल मर्दन करनेसे ज्वरका शीघ्र नाश होताहै॥ २४०॥

ज्वरमें अन्य उपदेश ।

निर्विषैर्भुजगैर्नागैर्विनीतैः कृततस्करैः ॥
त्रासयेदागमे चैनं तदहर्भोजयेन्न च ॥ २४१ ॥

जिस समय ज्वर चढनेवाला हो उस समय उसे विषरहित सर्पोंसे या पालतू हाथियों आदिसे या बनावटी तस्करोंसे डरावे और उस दिन भोजन न करावे ॥२४१॥

अत्यभिष्यंदिगुरुभिर्वामयेद्वा पुनः पुनः ॥ मद्यं तीक्ष्णं पाययेत घृतं वा ज्वरनाशनम् ॥ २४२ ॥ पुराणं वा घृतं काममुदारं वा विरेचनम् ॥ निरूहयेद्वा मतिमान्सुस्विन्नं तदहर्नरम् ॥ २४३ ॥

अत्यंत अभिष्यंदी और भारी यवागू आदिमें वामक द्रव्यके योगसे वारवार वमन करावे अथवा तेज मद्य पिलावे अथवा ज्वरनाशक घृत पिलावे ॥ २४२ ॥ अथवा पुराना घृतही यथेच्छ पिलावे अथवा (बलके अनुसार) तीक्ष्ण विरेचन दे अथवा स्वेदितकरके बुद्धिमान् वैद्य निरूहण वस्ति करे ॥ २४३ ॥

ज्वरघ्नधूपन ।

अजाव्योश्चर्म रोमाणि वचा कुष्ठं पलंकषा ॥
निंबपत्रं मधुयुतं धूपनं तस्य दापयेत् ॥
बैडालं वा शकृद्योज्यं वेपमानस्य धूपनम् ॥ २४४ ॥

बकरी और भेडीका चर्म और रोम, वच, कूट, पलंकषा (लाख या गूगल), नींबके पत्ते इनमें शहद मिलाकर रोगीको धूनी देना (विषमज्वर और जीर्णज्वरको नष्ट करता है) और जो कंप भी हो तो बिलावके बीटकी धूनी देना ॥ २४४ ॥

अंजन ।

पिप्पली सैंधवं तैलं नेपाली चेक्षणाञ्जनम् ॥ २४५ ॥

पीपल, सैंधानमक, तैल और मैनसिल इनको घिसकर नेत्रोंमें अंजन करनेसे विषमज्वर दूर होवे ॥ २४५ ॥

उदरोक्तानि सर्पींषि यान्युक्तानि पुरा मया ॥
कल्पोक्तं चाजितं सर्पिः सेव्यमानं ज्वरं जयेत् ॥ २४६ ॥

उदररोगमें जो घृत पहले कहेगये हैं उनका सेवन कराना अथवा कल्पस्थानमें कहाहुआ अजित नामक घृतका सेवन करना विषमज्वरको नष्ट करता है ॥२४६ ॥

भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बंधावेशनताडनैः ॥ जयेद्भूताभिषंगोत्थं विज्ञानाद्यैश्च मानसम् ॥ २४७ ॥ श्रमक्षये च भुंजीत घृताभ्यक्तो रसौदनम् ॥ अभिशापाभिचारोत्थौ ज्वरौ होमादिना जयेत्॥२४८॥ दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातग्रहपीडजौ ॥ अभिघातज्वरे कुर्या-

रिक्रयामुष्णविवर्जिताम् ॥ २४९ ॥ कषायमधुरां स्निग्धां यथादोषमथापि वा ॥ औषधीगन्धविषजौ विषपित्तप्रसाधनैः ॥२५०॥

भूतके अभिषंग (आक्रोश) से उपजे हुए ज्वरको भूतविद्यामें कहेहुए बंधों, आवेशों और ताडनादिसे शांत करे (अगाडी भूतविद्याका वर्णन होगा) और मानस ज्वरको विज्ञानों (नसीहतों) से शांत करे ॥ २४७ ॥ श्रम और क्षयजज्वरमें घृतका मर्दन करे और रसौदन (मांसरस, भात) खावे । अभिशाप और अभिचारके ज्वरोंको हवनादिकरके शांत करे ॥ २४८ ॥ उत्पात और ग्रहपीडाके ज्वरको दान, स्वस्तिवाचन, आतिथ्य (ब्राह्मणभोजन) आदिसे जीते और अभिघात (चोट) से ज्वर हुआ हो उसमें उष्णसे रहित विधि करे (परंतु यह घावकी विधि है वैसी चोट लगी हो तो वहां अग्नि आदिसे सेकना भी हित होता है) ॥ २४९ ॥ और दोषके अनुसार कसेली, मधुर, स्निग्ध क्रिया करे और विषैली औषधके गन्धसे या विषसे ज्वर हुआ हो तो विषशामक तथा पित्तशामक यत्न करे ॥ २५० ॥

जयेत्कषायं च हितं सर्वगंधकृतं तथा ॥ निंबदारुकषायं वा हितं सौमनसं तथा ॥ २५१ ॥ यवान्नविकृतिः सर्पिर्मद्यं च विषमे हितम् ॥ संपूजयेद्द्विजान्गांश्च देवमीशानमंबिकाम् ॥ २५२ ॥

और सर्वगन्ध (एलादिगण) का क्काथ तथा नींब और देवदारुका क्काथ तथा चँवेलीका क्काथ ये भी हित हैं ॥ २५१ ॥ यवके पदार्थ, घृत और मद्य ये भी विषमज्वरमें हित हैं तथा ब्राह्मण, गौ, शिव और दुर्गाजीका पूजन करना भी इसमें श्रेष्ठ है ॥ २५२ ॥

शीतज्वरका यत्न ।

कफवातोत्थयोश्चापि ज्वरयोः शीतपीडितम् ॥ दिह्यादुष्णेन वर्गेण परश्चोष्णो विधिर्हितः ॥ २५३ ॥ सिंचेत्कोष्णैरारनालशुक्तगोमूत्रमस्तुभिः ॥ दिह्यात्पलाशैरथवा सुरसार्जकशिग्रुजैः ॥२५४॥ क्षारतैलेन चाभ्यज्य सशुक्तेन विधीयते ॥ पानमारग्वधादेश्च क्कथितस्य विशेषतः ॥ २५५ ॥ अवगाहः सुखोष्णश्च वातघ्नक्काथसंयुतः ॥ जित्वा शीतं क्रमैरेभिः सुखोष्णजलसेचितम्॥२५६॥

(श्लो० २५०) 'अस्मिन् श्लोके 'जयेत्' इति पदमग्रिमश्लोकपरिपठितं योज्यम् ।

प्रवेणीयौर्णिककार्पासकौशेयांबरसंवृतम् ॥ शाययेद् ग्लानदेहं च कालागुरुविभूषितम् ॥ २५७ ॥

कफवातजनित ज्वरमें शीतपीडित मनुष्यको उष्णवर्गोंकी औषधों (कट्फलादि) से लेपन करे तथा अन्य भी उष्णविधि करे ॥ २५३ ॥ और जरा निवाये कांजी, सिरका, गोमूत्र, दहीका जल इनसे सेचन करे अथवा ढाकके फूल, तुलसीके फूल, कुठेरक और सोहँजनेके फूल इनको गरम करके लेप करे (या सेंक पहुँचावे) ॥ २५४ ॥ क्षारसे सिद्ध किये हुए तैलमें सिरका मिलाकर शरीरपर मले और आरग्वधादि गणका क्वाथकरके पान करावे ॥ २५५ ॥ अथवा वायुनाशक द्रव्योंका क्वाथकरके निवाये २ से स्नान करावे इन विधियोंसे शीतको शमन करके निवाया जल सेचन करे ॥ २५६ ॥ फिर झट शरीर पोंछकर गीले शरीरहीसे ऊनके या रुईके या रेशमके भारी कपडोंमें दबकाके सुलादेवे और काले अगरसे भूषित करे (अर्थात् लेप करदे) ॥ २५७ ॥

स्तनाढ्या रूपसंपन्नाः कुशला नवयौवनाः ॥ भजेयुः प्रमदा गात्रैः शीतदैन्यापहारिभिः ॥२५८॥ शरच्छशांकवदना नीलोत्पलदलेक्षणाः ॥ स्फुरितभ्रूलताभंगललाटतटकंपनाः ॥ २५९ ॥ प्रलंबिविलसत्कांच्यो बिंबीफलनिभाधराः ॥ कृशोदर्योतिविस्तीर्णजघनोद्वहनालसाः ॥ २६० ॥ कुंकुमागुरुदिग्धांग्यो घनतुंगपयोधराः॥ सुगंधिधूपितश्लक्ष्णस्रस्तांशुकविभूषणाः ॥ २६१ ॥ गाढमालिंगयेयुस्तं नरं वन्लता इव ॥ प्रह्लादं चास्य विज्ञाय ताः स्त्रीरपनयेत्पुनः ॥ २६२ ॥ तासामंगवराश्लेषनिवारितहिमज्वरम् ॥ भोजयेद्धितमन्नं च तथा सुखमवाप्नुयात् ॥ २६३ ॥

विशाल स्तनवाली, रूपवती, चतुर, नवीनयौवना ऐसी स्त्रियें अपने शीत और दैन्य नाशक शरीरसे शीतज्वरवालेको आलिंगन करें ॥ २५८ ॥ शरदके चन्द्रमा जैसे मुखवाली, नीले कमलपत्रसरीखे नेत्रोंवाली और भ्रुकुटीरूप लताको फरकानेसे कंपित होतेहैं कपोलके उपरिभाग जिनके ॥ २५९ ॥ लंबी विलासयुक्त (लटकती हुई) तगड़ी जिनके और कंदूरीफल जैसे अधर जिनके ऐसी पतले शरीरवाली और फैलीहुई जंघाके भारसे आलस भरीहुईसी कामिनी ॥ २६० ॥ अपने शरीरमें केसर अगर लगाकर भारी और ऊँचे कुचोंवाली, सुगंध धूपयुक्त सुंदरवस्त्र उपडे जातेहैं शरीरसे जिनके और अनेक अलंकारोंसे सजी धजी सुंदर स्त्रियें॥२६१॥

उस मनुष्यको खूब खपच्चीभरके दबावें जैसे वनकी लता वृक्षको लिपट जातीहैं और जब मनुष्यको हर्ष (कामादि)का वेग मालूम हो (अथवा जब शीत छूटकर आनंद हो जावे) तब उन स्त्रियोंको अलग कर देवे ॥ २६२ ॥ इन स्त्रियोंके श्रेष्ठ अंगोंके आलिंगनसे दूर हुआ है शीतज्वर जिसका ऐसे रोगीको हितकारक अन्न भोजन करावे ऐसा करनेसे उसे सुख प्राप्त होताहै (आराम होजाताहै) ॥ २६३ ॥

(वक्तव्य) यहां स्त्रीजनोंके आलिंगनसे कोई ज्वरमें स्त्रीसंग करना नहीं समझ लेवे यह केवल शीतनिवृत्तिका यत्न है किंतु इसी लिये "प्रह्लादं चास्य विज्ञाय ताः स्त्रीरपनयेत्पुनः" ऐसा लिखा है कि जरा भी हर्ष (कामका आतंक) मालूम हो तभी स्त्रियोंको हटा लेना चाहिये ॥

ज्वरके दाहका यत्न ।

दाहाभिभूते तु विधिं कुर्याद्दाहविनाशनम् ॥ मधुफाणितयुक्तेन निम्बपत्राम्भसापि वा ॥ २६४ ॥ दाहज्वरार्त्तं मतिमान्वामयेत्क्षिप्रमेव तु ॥ शतधौतघृताभ्यंक्तं दिह्याद्वा यवसक्तुभिः ॥ २६५ ॥ कोलामलकसंयुक्तैः शूकधान्याम्लसंयुतैः ॥ अम्लपिष्टैः सुशीतैश्च फेनिलापल्लवैस्तथा ॥ २६६ ॥ अम्लपिष्टैस्तु शीतैर्वा पलाशतरुजैर्दिहेत् ॥ बदरीपल्लवोत्थेन फेनेनारिष्टकस्य च ॥२६७॥ लिप्तेऽङ्गे दाहस्तृण्मूर्च्छा सर्वथैव प्रशाम्यति ॥ २६८ ॥

यदि मनुष्यको दाह अधिक हो तो दाहशांतकारक विधि करनी चाहिये, शहदके फाणितसे युक्त नींबके पत्तोंके जलसे बुद्धिमान् वैद्य दाह और ज्वरवालेको शीघ्र ही वमन करावे और सौवारके धोयेहुए घृतका देहपर मर्दन करे अथवा जवका सत्तू बनाकर लेप करे ॥ २६४ ॥ २६५ ॥ अथवा बेर, आंवले मिलाकर, शूकधान्य और खटाई मिलाकर (कई "शूकधान्याम्ल" से शूकधान्योंकी कांजी अर्थ करते- हैं) इन्हें अम्लसे (खटाई) से पीसकर लेप करे तथा फेनिला (रीठा या नींब या बदरी) के पत्तोंको खटाईमें पीसके लेप करे ॥ २६६ ॥ अथवा ढाकके कोमल पत्तोंको खटाईमें पीसकर शीतल लेप करे अथवा बेरीके पत्तोंके झाग या नींबके पत्तोंके झागका लेप करे इससे दाह, तृषा और मूर्च्छा ये सर्वथा शांत होजाते हैं ॥ २६७ ॥ २६८ ॥

यवार्द्धकुडवं पिष्ट्वा मंजिष्ठार्द्धपलं तथा ॥
अम्लप्रस्थशतोन्मिश्रं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥

एतत्प्रह्लादनं तैलं ज्वरदाहविनाशनम् ॥ २६९ ॥

जौ आधे कुडव, मँजीठ आधे पल ले इन्हें सौ प्रस्थ खटाई मिलाकर एक प्रस्थ तैलमें पकावे यह प्रह्लादन तैल ज्वरदाहनाशक है ॥ २६९ ॥

न्यग्रोधादिगणो यस्तु काकोल्यादिश्च यो गणः ॥ उत्पलादिगणो यस्तु पिष्टैर्वा तैः प्रलेपयेत् ॥ २७० ॥ तत्कषायाम्लसंसिद्धाः स्नेहाश्चाभ्यंजने हिताः ॥ तेषां शीतकषाये वा दाहार्तमवगाहयेत् ॥ ॥२७१॥ दाहवेगे व्यतिक्रांते तस्मादुद्धृत्य मानवम् ॥ परिषिंच्यांबुभिः शीतैः प्रलिंपेच्चंदनादिभिः ॥ २७२ ॥

न्यग्रोधादिक गण जो है अथवा काकोल्यादि गण अथवा उत्पलादिक गण जो है उन्हें पीसकर लेप करे ॥ २७० ॥ तथा इन्हींके क्काथ और अम्लरससे सिद्ध कियेहुए स्नेहोंका अभ्यंग करे अथवा इन्हीं उक्तगणोंके शीतकषायमें दाहार्तको अवगाहन (स्नान) करावे ॥ २७१ ॥ और जब दाहका वेग दूर होजावे तब उससे पृथक् करके ठंढे पानीसे सेचन करके चंदनादिसे लेप करे ॥ २७२ ॥

(वक्तव्य) शीत कषायमें अवगाहन इसप्रकार करे कि उन्हीं गणोक्तद्रव्योंका शीत कषाय बनाकर उससे हौज या द्रोणी (बालटी) भर दे उसमें रोगीको बिठावे परंतु यह क्रिया सन्निपातज्वरके दाहमें कदापि नहीं करे, भावमिश्रजी लिखते हैं कि "सन्निपाते तु दाहार्तं यः सिंचेच्छीतवारिणा ॥ आतुरः स कथं जीवेद्भिषग्वा स कथं भवेत् ॥ १ ॥" अर्थात् सन्निपातज्वरके दाहमें पीडित रोगीको जो ठंढे पानीसे सेचन करदेवे तो वह रोगी कैसे जीसके किंतु मर जावे और ऐसा करनेवाला वैद्य कैसे होसकता है ॥

सानंदा दीनमनसमाश्लिषेयुर्वरांगनाः ॥ पेलवक्षौमसंवीताश्चंदनार्द्रपयोधराः ॥२७३॥ बिभ्रत्योब्जस्रजश्चित्रा मणिहारविभूषिताः॥ भंजेयुस्ताः स्तनैः शीतैः स्पृशंत्योंऽबुरुहैर्मुखैः ॥ २७४ ॥ प्रह्लादं चास्य विज्ञाय ताः स्त्रीरपनयेत्पुनः ॥ हितं च भोजयेदन्नं तथाप्नोति सुखं महत् ॥ २७५ ॥

दाहज्वरयुक्त दीनचित्तवाले रोगीको आनंददायिनी श्रेष्ठ स्त्रियोंका इस प्रकारसे आलिंगन करावे कि सुंदर स्त्रियें कोमल कृष्ण (नीले) रेशमी वस्त्र पहनेहुए अपने कुचोंपर खूब चंदन लगाये हों ॥ २७३ ॥ कमलके फूलोंकी माला

पहने हों, मणि (मुक्तादि) के हारोंसे भूषित हों ऐसी स्त्रियें धीरे धीरे उससे अपने ठंढे कुचोंका स्पर्श करावें और कमलसदृश मुखका भी स्पर्श करावें ॥२७४॥ परंतु जब उसे हर्ष उत्पन्न हो तब उन स्त्रियोंको हटालेना चाहिये और हितकारक अन्न भोजन करावे ऐसा करनेसे रोगीको बहुत सुख प्राप्त होता है ॥ २७५ ॥

पित्तज्वरोक्तं शमनं विरेकोन्यद्धितं च यत् ॥ २७६ ॥
निर्हरेत्पित्तमेवादौ ज्वरेषु समवायिषु ॥
दुर्निवारतरं तद्धि ज्वरार्तेषु विशेषतः ॥ २७७ ॥

तथा विरेचन देकर दाह शमन करे तथा और जो हितकारक पित्तज्वरमें कहे शमनादि यत्न हैं उन्हें करे ॥२७६॥ और संसर्गी ज्वरमें पहले पित्तशामक यत्न करे क्योंकि ज्वरार्त्त मनुष्योंमें विशेष करके यह पित्तही अति दुर्निवार होताहै ॥२७७॥

ज्वरके उपद्रवोंका यत्न ।

छर्दिमूर्च्छापिपासादीनविरोधाज्ज्वरस्य तु ॥
उपद्रवाञ्जयेच्चापि प्रत्यनीकेन हेतुना ॥ २७८ ॥

छर्दि, मूर्च्छा, तृषाको आदि लेकर जो ज्वरके उपद्रव होते हैं उनको उनके हेतुके विपर्ययसे जो ज्वरमें या दूसरे उपद्रवके या देशकालादिके विरुद्ध न हों जीतना चाहिये ॥ २७८ ॥

(वक्तव्य) जो मूलरूप एक व्याधिके अनन्तर उपक्रमको नष्ट करनेवाली दूसरी, तीसरी अन्य व्याधि हों उन्हें उपद्रव कहते हैं । ज्वरमें दश उपद्रव होते हैं ऐसा ग्रंथांतरमें लिखा है वे उपद्रव ये हैं-श्वास, मूर्च्छा, अरुचि, छर्दि, तृषा, अतिसार, विबंध, हिक्का, खांसी, अंगसाद (देखो टिप्पणी) परंतु उपद्रव केवल दशही होते हैं ऐसा नही क्योंकि कंप, वैरस्य, शूलादिक और भी अनेक उपद्रव ज्वरमें होसकते हैं ॥

विशेषमपरे चात्र शृणूपद्रवनाशनम् ॥ मधुकं रजनीं मुस्तं दाडिमं चाम्लवेतसम् ॥ २७९ ॥ अंजनं तिंतिडीकं च नलदं पत्रमुत्प-

---

(श्लो० २७७) समवायिषु द्वंद्वजादिषु ज्वरार्तेषु पित्त दुर्निवार तदेवादौ जयेदिति । तस्माज्ज्वरे पित्तस्य प्राधान्यम् । तदुक्तम्-"उष्मा पित्तादृते नास्ति ज्वरो नास्त्युष्मणा विना ॥ तस्मात्पित्तविरुद्धानि त्यजेत्पित्ताधिकोऽधिकम् ॥ १ ॥" इति (श्लो० २७८) उपद्रवानित्यादि । "व्याधेरुपरि यो व्याधिर्भवेदुत्तरकालजः ॥ उपक्रमविघाती च स तूपद्रव उच्यते" ॥ १ ॥ ज्वरस्य उपद्रवा दश भवति । तद्यथा-"श्वासो मूर्च्छारुचिश्छर्दिस्तृष्णाऽतीसारविड्ग्रहाः ॥ हिक्काकासांगसादाश्च ज्वरस्योपद्रवा दश" ॥ २ ॥ (इति भा० मि०)

लम् ॥ त्वचं व्याघ्रनखं चैव मातुलुंगरसो मधु ॥ २८० ॥ दिह्या-देभिर्ज्वरार्तस्य मधुशुक्तयुतैः शिरः ॥ शिरोभितापसंमोहवमिहि-क्काप्रवेपथून् ॥२८१॥ प्रदेहो नाशयत्येषं ज्वरितानामुपद्रवान्॥२८२॥

सामान्यतासे उपद्रवनाशक यत्न कहे हैं उन्हें उपद्रवहेतुके विपरीत करना यह पूर्व कहचुके हैं अब अगाडी विशेष उपद्रवनाशक यत्न सुनो । मुलेठी, हलदी, मोथा, अनारदाना, अमलवेत ॥ २७९ ॥ रसांजन, तिंतिडीक, खस, पत्रज, कमल, तज, व्याघ्रनखी, नींबूका रस, शहद ॥ २८० ॥ इन सबको पीसकर मधु-शुक्त (शहदका सिरका) मिलाकर ज्वरके उपद्रवोंसे युक्त रोगीके शिरपर लेप करे इसके लेपसे शिरका अभिताप, मूर्च्छा, वमन, हिचकी और कंप ये सब उपद्रव नष्ट होजाते हैं ॥ २८१ ॥ २८२ ॥

(वक्तव्य) मधुशुक्त इस भांति बनताहै कि जंबीरीका रस, आर्द्र पीपलोंका रस और शहद इनको चिकने पात्रमें भरकर धान्यकी राशिमें एक महीना रहनेदे इसे मधुशुक्त कहते हैं यदि यह न हो तो शुक्त (सिरका) ही लेना चाहिये ॥

मधूकमथ ह्रीबेरमुत्पलानि मधूलिकाम् ॥ लीढ्वा चूर्णानि मधुना सर्पिषा च जयेद्वमिम् ॥ कफप्रसेकासृक्पित्तहिक्काश्वासांश्च दारुणान् ॥ २८३ ॥ लिहञ्ज्वरार्त्तस्त्रिफलां पिप्पलीं च समा-क्षिकाम् ॥ कासे श्वासे च मधुना सर्पिषा च सुखी भवेत् ॥ २८४ ॥ विदारीं दाडिमं लोध्रं दाधित्थं बीजपूरकम् ॥ एभिः प्रदिह्यान्मू-र्द्धानं तृड्दाहार्तस्य देहिनः ॥ २८५ ॥ दाडिमस्य सितायाश्च द्राक्षामलकयोस्तथा ॥ वैरस्ये धारयेत्कल्कं गंडूषं च यथा-हितम् ॥ २८६ ॥

महुवा, नेत्रवाला, कमल और मधूलिका (मूर्वा) (डल्हनमिश्र राई कहते हैं) इनका चूर्णकर शहद और घृतके संग चाटनेसे वमन शांत होजाता है तथा मुँहमें कफ भरभर आना, रक्तपित्त, हिचकी और दारुण श्वास ये सब उपद्रव नष्ट हो-जातेहैं ॥ २८३ ॥ ज्वरपीडित मनुष्य त्रिफला और पीपलको शहद मिलाकर

(श्लो० २८०) व्याघ्रनख नखनामकद्रव्यं प्रसिद्धम् । (श्लो० २८१) मधुशुक्तयुतैरिति- "जंबीरस्य फलरसे पिप्पलीरससंयुतम् ॥ मधुभांडे विनिक्षिप्य धान्यराशौ निधापयेत् ॥ १ ॥ मासेन च त्पचरसे मधुशुक्तं प्रकीर्तितम् ॥" (इति नि० सं०)

चाटे अथवा शहद और घृत मिलाकर चाटे तो श्वास और खाँसीसे सुख होवे ॥ ॥ २८४ ॥ विदारी, अनारदाना, लोध, कैथ और बिजौरा इनको पीसकर जिसे तृषा और दाह हो उस मनुष्यके शिर पर लेप करदेवे ॥ २८५ ॥ और मुखमें विरसता हो तो अनार, मिश्री, मुनक्का और आँवले इनका कल्क बनाकर धारण करे तथा इन्हींसे गंडूष (कुल्ले) करे तो भी हित है ॥ २८६ ॥

क्षीरेक्षुरसमाध्वीकसर्पिस्तैलोष्णवारिभिः ॥ शून्ये मूर्ध्नि हितं नस्यं जीवनीयैःश्रृतं घृतम् ॥ २८७॥ चूर्णितत्रिफलाश्यामात्रिवृत्पिप्पलिसंयुतः ॥ सक्षौद्रः शर्करायुक्तो विरेकस्तु प्रशस्यते ॥ २८८ ॥ पक्के पित्तज्वरे रक्ते चोर्द्धगे वेपथौ तथा ॥ कफवातोत्थयोरेवं स्नेहाभ्यंगैर्विशोधयेत् ॥ २८९ ॥ हृतदोषो भ्रमार्त्तस्तु लिह्यात्क्षौद्रसिताभयाः ॥ २९० ॥

दूध, ईखका रस, माध्वीक (मधु या मद्य), घृत, तैल, गरम जल यथोचित इनसे कुल्ले करना मुखवैरस्यमें अति हितकारक है और शिरकी शून्यतामें जीवनीय गणसे सिद्ध किये घृतकी नस्य लेना श्रेष्ठ है ॥ २८७ ॥ और जब पित्तज्वर पक जावे तब तथा ऊर्द्धगत रक्तपित्त हो (मुँह, नाक आदिसे रुधिर आवे) तब त्रिफला और श्यामा निशोथ, पीपल इनमें शहद और खांड मिलाकर विरेचन कराना श्रेष्ठ है और कंप हो तथा कफ, वायुके उपद्रव हों तो स्नेहाभ्यंग कराकर शोधन कराना चाहिये और दोषोंके निकल गये पीछे भी जो भ्रम हो तो शहद, मिश्री और हरीतकी मिलाकर चाटे ॥ २८८ ॥ २८९ ॥ २९० ॥

परिशिष्ट ।

धातुगत ज्वरकी चिकित्साविधि ।

श्लोक–रसस्थे तु ज्वरे तस्मिन्कुर्याद्वमनलंघने ॥ सेकः संशमनो लेपो रक्तमोक्षमसृग्गते ॥ १ ॥ तीक्ष्णं विरेकं च तथा कुर्यान्मांसगते ज्वरे ॥ मेदस्थे मेदसो नाशं कुर्याद्यत्नेन बुद्धिमान् ॥ २ ॥ अस्थिस्थे तु ज्वरे कुर्याद्वातनाशनको विधिः ॥ मज्जगः शुक्रगोऽसाध्यः नात्र कार्यं चिकित्सितम् ॥ ३ ॥ (भा० प्र०)

अर्थ–रसधातुमें ज्वर हो तब वमन तथा लंघन कराने चाहिये और रक्तगत होनेपर सेचन, शमन, लेपन तथा रक्तमोक्ष करावे ॥ १ ॥ मांसगत ज्वर होजानेपर तीक्ष्ण विरेचन देना चाहिये और जो मेदस्थ ज्वर होजावे तो ऐसा यत्न करना चाहिये जिसमें मेद नष्ट हो (अर्थात् शोषण यत्न करना चाहिये) ॥ २ ॥ और यदि

ज्वर अस्थियोंमें पहुँचगया हो तो वातनाशक विधि (अभ्यंग, स्वेद, मर्दनादि) करे और यदि मज्जामें तथा शुक्रमें ज्वर पहुँचगया हो तो उसे असाध्य समझना और चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ३ ॥

ज्वरघ्नवस्तिकर्मका निर्देश ।

वातघ्नैर्मधुरैर्योज्या निरूहा वातजे ज्वरे ॥ विभज्य दोषं प्राणं वा यथास्वं वाऽनुवासनम् ॥ २९१ ॥ उत्पलादिकषायाढ्या चंदनोशीरसंयुता ॥ शर्करा मधुरा शीता पित्तज्वरहरा मता ॥ २९२ ॥ आम्रादीनां त्वचं शंखं चंदनामलकोत्पलैः ॥ गैरिकांजनमंजिष्ठामृणालान्यथ पद्मकम् ॥ २९३ ॥ श्लक्ष्णपिष्टं तु पयसा शर्करामधुसंयुतम् ॥ सुपूतं शीतलं वस्तिं दूयमानाय दापयेत् ॥ ज्वरदाहापहं तेषु सिद्धं चैवानुवासनम् ॥ २९४ ॥

वातज्वरमें वातनाशक (भद्रदार्वादि) द्रव्यों और मधुर द्रव्यों (काकोल्यादि) से निरूहण वस्ति करना श्रेष्ठ है तथा दोष और बलको विचारकर यथायोग्य अनुवासन करना ॥ २९१ ॥ पित्तज्वरमें उत्पलादिके क्राथमें चन्दन, खस युक्तकर खांडसे मधुर करके शीतल ही वस्ति करना पित्तज्वरको नष्ट करताहै ॥ २९२ ॥ अथवा आम्रादिककी छाल, शंख (शंखपुष्पी), चन्दन, आँवले, कमल, गेरू, रसांजन, मँजीठ, कमलकी नाल और पद्माख इनको दूधमें पीसकर खांड और शहद मिलाकर पित्तज्वरसे पीडित मनुष्यको यह वस्ति शीतल ही देनी चाहिये यह ज्वर और दाहको नष्ट करतीहै तथा इन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए स्नेहसे अनुवासनवस्ति करना योग्य है ॥ २९३ ॥ २९४ ॥

आरग्वधगणक्राथाः पिप्पल्यादिसमायुताः ॥
सक्षौद्रा एव देयाः स्युः कफज्वरविनाशनाः ॥ २९५ ॥
कफघ्नैरेव संसिद्धा द्रव्यैश्चाप्यनुवासनाः ॥ २९६ ॥

आरग्वधादिगणके क्राथमें पिप्पल्यादि मिलाकर शहदयुक्त करके कफज्वरमें कफज्वरनाशक वस्ति देना योग्य है ॥ २९५ ॥ तथा कफघ्न द्रव्योंहीसे सिद्धकरके अनुवासनवस्ति देना चाहिये ॥ २९६ ॥

संसर्गे सन्निपाते च संसृष्टा वस्तयो हिताः ॥
संसृष्टैरेव संसृष्टा द्रव्यैश्चाप्यनुवासनाः ॥ २९७ ॥

संसर्गी (द्वंद्वज) और सन्निपातमें उन्हीं दोषोंके द्रव्योंसे मिलाकर वस्ति देना चाहिये तथा उन्हीं दोषोंके द्रव्योंसे सिद्धकरके अनुवासनवस्ति करना उचित है॥ २९७॥

वातरोगापहाः सर्वे स्नेहा ये सम्यगीरिताः ॥ विना तैलं त एव स्युर्योज्या मारुतजे ज्वरे ॥ २९८ ॥ निखिलेनोपयोज्याश्च ते एवाभ्यंजनादिषु ॥ २९९ ॥ पैत्तिके मधुरैस्तिक्तैः सिद्धं सर्पिः प्रयुज्यते ॥ श्लैष्मिके कटुतिक्तैश्च संसृष्टानीतरेषु च ॥ ३०० ॥

वायुरोगनाशक जो स्नेह (घृत, तैल, वसा, मज्जा इत्यादि) कहे हैं वे तैलके विना सब वातज्वरमें उपयोग किये जासकते हैं ॥ २९८ ॥ और अभ्यंगादिकमें वे सभी (तैलसमेत) उपयोगमें लाये जासकतेहैं ॥ २९९ ॥ और पित्तज्वरमें मधुर, तिक्त द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ घृत उपयोग किया जावे और कफके ज्वरमें कटुक (चरपरे) और तिक्त (कड़वे) द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए घृत या तैलका उपयोग करे और द्वंद्वज और सन्निपातमें मिले हुओंका उपयोग करे॥ ३००॥

हृतावशेषज्वरकी चिकित्सा ।

हृतावशेषं पित्तं तु त्वक्स्थं जनयति ज्वरम् ॥ पिबेदिक्षुरसं तत्र शीतं वा शर्करोदकम् ॥ ३०१ ॥ शालिषष्टिकयोरन्नमश्नीयात्क्षीरसंप्लुतम् ॥ कफवातोत्थयोरेव स्वेदाभ्यंगौ प्रयोजयेत्॥३०२॥

शमन, शोधनादिसे कुछ शेष रहाहुआ त्वचागत पित्त भी ज्वरको उत्पन्न कर देता है ऐसा होनेमें ईखका रस पीना (या गन्ना चूसना) या शीतल सरबत पीना श्रेष्ठ होताहै ॥ ३०१ ॥ और दूधके साथ शालि या षष्टिक (चावलों) का भात खाना चाहिये और इसी प्रकार कफवायुके हृतावशेषसे ज्वर हो तो उसमें स्वेद और अभ्यंगका उपयोग करना उचित है ॥ ३०२ ॥

घृतपानकी अवधि ।

घृतं द्वादशरात्रात्तु देयं सर्वज्वरेषु च ॥
तेनांतरेणाशयं स्वं गता दोषा भवंति हि ॥ ३०३ ॥

(श्लो० २९८) इदानीं वातज्वरे अनुवासनविषये तैलनिषेधमाह—"वातरोगापहा" इत्यादि । सर्वे स्नेहाः सर्पिस्तैलवसामज्जानः । योज्या अनुवासना इति शेषः (इति डल्हनः) (श्लो० २९९) वातज्वरे तु पुनः निषिद्धस्यापि तैलस्य अभ्यंगादिप्रयोगमाह—"निखिलेन" इत्यादि । निखिलेन सामस्त्येन । एतेन तैलस्यापि ग्रहणम् (इत्यपि डल्हनः) (श्लो० ३००) अभ्यंगादिषु श्लैष्मिके पानाभ्यंगार्थ स्नेहविशेषमाह—" श्लैष्मिकैः कटुतिक्तैः " इत्यादि । कटुतिक्तैश्चेत्यत्र सर्पिः सिद्धमिति योजनीयम् । यद्यपि कफतुल्यगुणं सर्पिः तथापि विशिष्टसंस्कारवशात्कफेऽपि सर्पिः प्रयुज्यते । अन्ये तु चकारादनुक्तमपि तैलं कषायेत्यत्र संवादभावात् कथयंति (इति नि० सं०)

सब प्रकारके ज्वरोंमें बारह दिन पीछे घृत देना चाहिये क्योंकि इतने समयमें सब दोष पककर अपने अपने स्थानमें प्राप्त होजाते हैं ॥ ३०३ ॥

दोषोंका शांत होनेमें क्षोभ ।

धातून्प्रक्षोभयन्दोषो मोक्षकाले बलीयते ॥
तेन व्याकुलचित्तस्तु म्रियमाण इवेहते ॥ ३०४ ॥

दोष मोक्षके समय (अर्थात् शांत होनेके समय) धातुओंको क्षुभित करके अत्यन्त बलवान्सा होता है जिससे व्याकुलचित्त हुआ मनुष्य मरनेवालेकीसी चेष्टा करने लगता है (अर्थात् जब रोग घटने और अच्छा होने लगता है तब कभी इतना क्षुभित और बलवान् प्रतीत होता है जिससे रोगी म्रियमाणसा मालूम देने लगजाता है परंतु दोषके शांत होजानेपर अच्छा होजाता है) ॥ ३०४ ॥

ज्वरमुक्तके लक्षण ।

लघुत्वं शिरसः स्वेदो मुखमापांडु पाकि च ॥
क्षवथुश्चान्नकांक्षा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥ ३०५ ॥

शिरमें हलकापन होजावे, पसीना (सब शरीरपर आवे), मुखपर सुपेदी लिये पीलापन हो तथा कुछ पाकभी मालूम हो छींके आवें, भोजनकी इच्छा हो इतने लक्षण होनेसे मनुष्य ज्वरसे छूटा ऐसा जानना चाहिये ॥ ३०५ ॥

शंभुक्रोधोद्भवो घोरो बलवर्णाग्निसादकः ॥ रोगराड्रोगसंघातो ज्वर इत्युपादिश्यते ॥ ३०६ ॥ व्यापित्वात्सर्वसंस्पर्शात्कृच्छ्रत्वा-दंतसंभवात् ॥ अंतको ह्येष भूतानां ज्वर इत्युपादिश्यते ॥ ३०७ ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥३९॥

शिवजीके क्रोधसे उपजाहुआ घोर, बल, वर्ण और अग्निको नाश करनेवाला, रोगोंका राजा और अनेक रोगोंका संघट्टकर्त्ता ऐसा (महारोग) ज्वरही कहलाता है ॥ ३०६ ॥ यह सब प्राणियोंमें व्यापक होनेसे और समस्त शरीर (क्या इंद्रिय और मनतक तपायमान कर) के स्पर्श करता है इससे तथा कष्टसाध्य होनेसे तथा अंतमें होनेसे (अन्य व्याधि होनेपर भी अंतमें यह होजाता है) प्रायः यह ज्वरही प्राणियोंका अंतक (मृत्युकर्ता) है ॥ ३०७ ॥

डाक्टरी ज्वरको "फीवर" (Fever.) कहते हैं इसके भेद और उनके डाक्टरी नाम हम इस पुस्तककी दूसरी जिल्द (निदानशारीरकखंड) परिशिष्ट शारीरक-

(श्लो० ३०४) दोषो धातून्प्रक्षोभयन्निति–ननु प्रक्षीणावस्थायां कथं दोषो बलीवाचरति स्नेहाभावात् । यथा दीपो निर्वाणावस्थायां महतीं ज्वाला प्रदर्श्य निर्वाणं याति तद्वत् दोषो बलीयते बली इव आचरतीति ॥

भाग प्रथममें लिख चुके हैं वहां देखो-"डाक्टरीमतसे संक्षिप्त रोगगणनामें" और यूनानीवाले "बुखार" या "हमी" कहते हैं और साधारण मनुष्य "तप" या "ताप" कहते हैं। यूनानी मतसे बुखारोंके भेद और नाम लक्षणादि भी हम उसी खंडमें लिख चुके हैं ॥

परिशिष्ट ।

मोतीज्वरका वर्णन ।

यदि बडे ग्रंथोंके अनुसार देखाजावे तो उनमें यह व्याधि कोई जुदी नहीं लिखी और न कुछ इसकी प्रधानता लिखी इससे ऐसा पायाजाता है कि या तो उस समय यह व्याधि इतनी प्रबल थी ही नहीं और शायद कभी किसीके होती भी हो तो उसे रक्तगत पित्तज्वर ही समझा जाता होगा परंतु इस, समय हमारे भरतखंडमें यह व्याधि एक भयंकर रूपसे बहुधा मनुष्योंको होती है इससे इसका वर्णन हम परिशिष्टरूपसे करते हैं (कोई इसे मधूरक कोई मंथरज्वर और कोई मसूरिकाका भेद मानते हैं) ॥

योगचिंतामणिमें इसप्रकारसे लिखा है कि-

श्लोक-ज्वरो दाहो भ्रमो मोहो ह्यतीसारो वमिस्तृषा ॥ अनिद्रा च मुखं रक्तं तालु जिह्वा च शुष्यति ॥ १ ॥ ग्रीवामध्ये च दृश्यंते स्फोटकाः सर्षपोपमाः ॥ एतच्चिह्नं भवेद्यस्य स मधूरक उच्यते ॥ २ ॥

अर्थ-जिसके ज्वर हो, दाह, भ्रम, मोह, अतिसार, वमन और तृषा हो, निद्रा नहीं आवे, मुख (चेहरा) लाल मालूम देवे, तालु और जीभ सूखे ॥ १ ॥ ग्रीवा (गरदनपर) और नीचे सरसोंके दानेसमान छोटी २ फुन्सियां मालूम पडें जिसके इसप्रकारके लक्षण हों उसे मधूरक ज्वर जानना ॥ २ ॥ कई अंतमें यों पाठ मानते हैं कि-

श्लोक-घृताशनात्स्वेदरोधान्मंथरो जायते नृणाम् ॥ ३ ॥

अर्थ-घृत (चिकनाई) खाने और पसीना रोकने (या रुक जाने) से मनुष्योंके यह पूर्वोक्त मंथरज्वर होता है ॥ ३ ॥ (कोई इन्हें योगशतकके श्लोक बताते हैं, कोई क्षीरपाणिके)

परंतु भावप्रकाशके मतसे यह मसूरिकाहीका एक भेद पाया जाताहै भावमिश्रजीने मसूरिकाके सात भेद लिखेहैं ॥

मसूरिकाके लक्षण और भेद ।

श्लोक-कट्वम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः ॥ दुष्टनिष्पावशाकाद्यैः प्रदुष्टपव-

नोदकैः ॥ १ ॥ क्रूरग्रहेक्षणाच्चापि देशे दोषसमुद्भवाः ॥ जनयंति शरीरेऽस्मिन्दुष्टरक्तेन संगताः ॥ मसूराकृतिसंस्थानाः पिडिकाः सा मसूरिका ॥ २ ॥

अर्थ-चरपरे, खट्टे, लवणके रस, क्षार (यवक्षारादि) विशेष खानेसे, विरुद्ध भोजन करनेसे, भोजनपर भोजन करनेसे, दुष्ट निष्पाव (लोबिया) तथा दूषित शाकोंके खानेसे, पवन और पानीके बिगड़ जानेसे ॥ १ ॥ अथवा खोटे तारागणकी दृष्टि (छाया) देशपर पड़नेसे दूषित रुधिरके संगत होकर मनुष्योंके शरीरमें दोषों (वातादि) से उत्पन्न होनेवाली फुन्सियाँ पैदा होजातीहैं और ये फुन्सियाँ मसूरके समान होतीहैं इससे इन्हें मसूरिका कहते हैं (और साधारण मनुष्य इन्हें शीतला कहते हैं) (यद्यपि यह बडी अवस्थामें भी होसकती है परन्तु विशेष करके यह बालअवस्थामें बहुधा होतीहै और एकवार दोवार जादेसे जादे तीनवारसे अधिक किसीको भी प्रायः नहीं होती) (इसे महर्षि धन्वंतरिजीने उद्देश मात्र क्षुद्ररोगोंके अंतर्गत लिखदिया है । इसके और भेद ये हैं)- ॥ २ ॥

श्लोक-वातश्लेष्मसमुद्भूता कोद्रवा कोद्रवाकृतिः ॥ तां कश्चित्प्राह पक्केति सा तु पाकं न गच्छति ॥ ३ ॥ सप्ताहाद्द्वादशाहाद्वा शांतिं याति विनौषधम् ॥ यदि वा भेषजं दद्यात्खदिराष्टकनिर्मितम् ॥ ४ ॥

अर्थ-कफवायुसे उपजीहुई मसूरिका कोद्रवा नामक कोदोंके बराबर (बडी बडी) फुन्सियाँ होतीहैं कोई उसे पक गई ऐसा कह देतेहैं पर वे जबतक पकी नहीं होतीहैं (अर्थात् वे विना पकेहि पकीसी मालूम पड़तीहैं) यह सात दिनमें या दश दिनमें बहुधा विना ही औषधके शांत हो जातीहै (सूख जाती है) और यदि औषध देनेकी आवश्यकता हो तो खदिराष्टकका क्वाथ देवे ॥ ३ ॥ ४ ॥

श्लोक-ऊष्मणा तूष्मजारूपा सकंडूस्पर्शनप्रिया ॥
नाम्ना पाणिसमाख्याता सप्ताहाच्छुष्यति स्वयम् ॥ ५ ॥

अर्थ-तीसरा भेद यह है कि जैसे गरमीमें गरमीसे दाने (अलाईसे निकलतेहैं और उनमें खाज आतीहै ऐसेही नन्हें दानेसे मालूम पडें यह गरमीसे होतीहै और सात दिनमें स्वयं सूख जातीहै इसे पाणिसमा (पानिसहा या पानीज्वरा) कहतेहैं ॥ ५ ॥

श्लोक-चतुर्थी सर्षपाकारा पीतसर्षपवर्णिनी ॥
नाम्ना सर्षपिका ज्ञेयाऽभ्यंगमत्र विवर्जयेत् ॥ ६ ॥

अर्थ-चौथी सरसोंके दानेके आकार पीली सरसोंसी होतीहै उसे सर्षपिका (खसरा) कहतेहैं इसमें तैलाभ्यंगादि वर्जित हैं ॥ ६ ॥

श्लोक–किंचिदुष्मनिमित्तेन जायते राजिकाकृतिः ॥
एषा भवति बालानां सुखं शुष्यति च स्वयम् ॥ ७ ॥

अर्थ–थोड़ी गरमीके कारणसे जो राईके दाने जैसी होतीहैं उसे राजिका कहते-हैं यह जो बालकोंको होतीहै सो आपही सुखसे सूख जातीहै ॥ ७ ॥

श्लोक–कोठवज्जायते षष्ठी लोहितोन्नतमंडला ॥
ज्वरपूर्वा व्यथायुक्ता ज्वरस्तिष्ठेद्दिनत्रयम् ॥ ८ ॥

अर्थ–छठी वह होतीहै जिसमें उदर्दकी तरहसे सुर्ख, कुछ उभरे हुए चकत्ते पड़जावें इसमें व्यथा होतीहै और तीन दिन आरंभमें ज्वर चढा ही रहताहै ॥८॥

श्लोक–स्फोटानां मिलनादेषा बहुस्फोटाऽपि दृश्यते ॥
एकस्फोटे च वै कृष्णा बोद्धव्या चर्मजाभिधा ॥ ९ ॥

अर्थ–सातवीं वह होती है जिसमें एक फुन्सीमें बहुतसी फुन्सी मिलीसी मालूम पडें और काली हों (छतड़ासा होजावे) इसे चर्मजा कहते हैं ॥ ९ ॥

इन्हीं पाणिसहा राजिका और लोहितमंडला आदिहीमें मोतीज्वर

(वक्तव्य) इसमें यह है कि मसूरिकाका और जिसे मोतीज्वर कहते हैं उसका उपादान (माद्दा) एक ही मालूम पडता है अर्थात् शारीरक रुधिरका दूषित द्रवपदार्थ जब त्वचाकी तरफ प्रवृत्त होताहै तब ये व्याधियां होतीहैं और रुधिरके जोशके समय चढती उमरमें विशेष होतीहैं छोटे बालकोंको जैसे बड़ी मसूरिका या छोटी खसरा होतीहैं इसीप्रकार बडी अवस्थावालोंके मौक्तिकज्वर (मोतीज्वर) हुआ करताहै और जोकि इसका प्रभाव विशेष कर रुधिरमें होता है इससे इसमें रक्तज मसूरिकाके लक्षण होतेहैं जैसे–

श्लोक–विड्भेदश्चांगमर्दश्च दाहस्तृष्णारुचिस्तथा ॥
मुखपाकोक्षिपाकश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः ॥ १० ॥

अर्थ–विड्भेद हो (दस्त लगें या दस्त फटासा हो), अंग टूटे, दाह हो, तृषा अधिक लगे, अरुचि हो, मुख (कंठ) पकजावे, आंखें भी सुरख होजावें और तेज और स्थिर ताप रहे ॥ १० ॥

(वक्तव्य) मसूरिकाके वातजादि भेद तथा धातुगत मसूरिका इत्यादि ग्रंथ बढनेके भयसे हमने नहीं लिखे ।

असाध्य मसूरिकाके लक्षण ।

श्लोक–कासो हिक्का प्रमेहश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः ॥ प्रलापारतिमूर्च्छाश्च तृष्णा दाहोऽतिघूर्णता ॥ ११ ॥ मुखेन प्रस्रवेद्रक्तं तथा घ्राणेन चक्षुषा ॥ कंठे घुर्घु-

रकं कृत्वा श्वसित्यत्यर्थदारुणम् ॥ १२ ॥ मसूरिकाभिभूतस्य यस्यैतानि भिषग्वरैः॥ लक्षणानीह दृश्यंते न देयं तस्य भेषजम् ॥ १३ ॥

अर्थ-खांसी, हिचकी, प्रमेह, तीव्रज्वर, प्रलाप, बेचैनी, मूर्च्छा, तृषा दाह ये सब उपद्रव हों और अत्यन्त घूर्णता हो (घुमेरसी आवे) ॥ ११ ॥ मुँहसे, नाकसे और नेत्रोंसे रक्त टपकने लगे और कंठमें घुर घुर करके अत्यन्त तीव्र श्वास लेवे ॥ ॥ १२ ॥ इतने लक्षण जिस मसूरिका (या मोतीज्वर) वालेके वैद्य देख ले उसे असाध्य समझकर कभी औषध देना योग्य नहीं ॥ १३ ॥

मसूरिकाकी संक्षिप्त चिकित्सा ।

श्लोक-गुडूची मधुकं द्राक्षा मोरटा दाडिमैः सह ॥ पाककाले प्रदातव्यं भेषजं गुडसंयुतम् ॥ तेन कुप्यति नो वायुः पाकं याति मसूरिका ॥ १४ ॥

अर्थ-इसमें मुख्य यत्न यह है कि भीतरका प्रवृत्त हुआ दोष ठिठरा न जावे अर्थात् शीतल वातुल आहार, विहार कदापि आरम्भ और पाकके समय नहीं करे शीत और वातुलसे यह बीचमें ठिठरा जावे तो कष्ट अथवा असाध्य होनेमें संदेह नहीं इसीलिये गिलोय, मुलेठी, मुनक्का, ईखकी जड़ और अनार (अनारका छिलका) इनका काथकर गुड मिलाकर पाकके समय देवे जिससे ठीक पकजावे और वायुका कोप न हो ॥ १४ ॥

मुखपाकमें कुल्ले ।

श्लोक-धात्रीफलं समधुकं क्वथितं मधुसंयुतम् ॥
मुखे कंठे व्रणे जाते गंडूषार्थं प्रशस्यते ॥ १५ ॥

अर्थ-आंवले और मुलेठी इनको उबालकर शहद मिलाकर मुख या कंठके व्रणों (जखमों) के लिये कुल्ले करना श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥ डाक्टरीमें मसूरिकाको "स्माल पाक्स" कहते हैं और छोटी खसराको "चिकनपाक्स" कहतेहैं और मोतीज्वरको "स्कारलेटिक फीवर" अथवा "स्कारलेटीना" कहतेहैं ॥

डाक्टरीमतसे इस मसूरिकारोगका यत्न मुख्य यही है कि पहलेसे बालकोंको टीका लगवा देवे यद्यपि यह यत्न अब बहुत प्रचलित हुआहै परन्तु हमारे ऋषि वैद्य इस यत्नको पूर्वकालहीसे जानते थे क्योंकि टीका लगानेकी विधि हमारे ग्रन्थोंमें भी लिखी मिलती है इस विषयके लिये देखो आयुर्वेदविज्ञान उसमें आर्षग्रन्थके प्रमाणपूर्वक यह बात लिखीहै ॥

॥ इति परिशिष्ट ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतस० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ४०.

अथातोतीसारप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम अतिसारके प्रतिषेधका व्याख्यान करतेहैं ।

अतिसारकी उत्पत्ति ।

गुर्वतिस्निग्धरूक्षोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः ॥ विरुद्धाध्यशनाजीर्णैरसात्म्यैश्चापि भोजनैः ॥ १ ॥ स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषाद्भयात् ॥ शोकाद्दुष्टांबुमद्यातिपानात्सात्म्यर्तुपर्ययात् ॥२॥ जलाभिरमणैर्वेगविघातैः कृमिदोषतः ॥ नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते ॥ ३ ॥

गरिष्ठ भोजनसे, अतिस्निग्ध, अतिरूक्ष, अतिउष्ण, द्रव (पतले) अतिस्थूल ऐसे भोजन करनेसे, अति शीतल खान पान करनेसे, विरुद्ध भोजनसे, अध्यशन (भोजनपर भोजन) करनेसे, अजीर्णसे, असात्म्य (बेमाफक़त) भोजन करनेसे ॥ १ ॥ तथा स्नेहादिके अतियोगसे अथवा मिथ्यायोगसे, विषसे, भयसे, शोकसे, दूषित जल पीनेसे, अत्यंत मद्य पीनेसे, यथोक्त ऋतुके विपरीत होनेसे ॥ २ ॥ जलमें अत्यन्त रमण (पडे रहने) से, वेग (दस्तकी हाजत) रोकनेसे, कृमि (पेटमें कृमि होने) से मनुष्योंके अतिसार रोग होजाता है (अर्थात् अत्यन्त दस्त होनेलगते हैं) इसके लक्षण अगाडी कहते हैं ॥ ३ ॥

अतिसारकी संप्राप्ति और निरुक्ति ।

संशम्यापां धातुरंतःकृशानुं वर्चोमिश्रो मारुतेन प्रणुन्नः ॥ वृद्धोऽतीवाधः सरत्येव यस्माद्व्याधिं घोरं तं त्वतीसारमाहुः ॥ ४ ॥

(श्लो० १) अतिसारस्य निरुक्तिः—"अतिरत्यर्थवचने सरतीति च कर्मणि ॥ तस्मादत्यतसरणादतीसार इति स्मृतः ॥ १ ॥" (इति डल्लनः) गुरु मात्रया स्वभावेन संस्कारेण च । अतिशब्दः स्थूलांतः सह संबध्यते । स्थूलम् असम्यक् पिष्टम् । विरुद्धं क्षीरमत्स्यादि । अध्यशनम्—"अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते ॥" भोजनैरिति गुर्वादिभिर्विषातैः सर्वैः सह संबध्यते (इति भा० मि०)

(श्लो० २) स्नेहाद्यैः स्नेहपानस्वेदनवमनविरेचनानुवासननिरूहांतैः । अतियुक्तैः अतिशयेन प्रयुक्तैः वारंवारं प्रयुक्तैश्च । मिथ्यायुक्तैः अविधिप्रयुक्तैः । विषात् स्थावरात् तस्याधोगत्वात् । (श्लो० ३) जलाभिरमणैः जलक्रीडादिभिः । वेगविघातैर्मूत्रपुरीषयोर्विघातैः । कृमिभिः पक्वाशयगतैः (इति भा० मि०)

(श्लो० ४) अपां धातुः कायद्रवः कफपित्तरसादिकम् । अंतःकृशानुं कोष्ठाग्निम् । संशम्य मृदूकृत्य वर्चोमिश्रः विड्मिश्रितः मारुतेन प्रणुन्नः अपानवायुनाऽधःप्रेरितः ।

पूर्वोक्त कारणोंसे शरीरके द्रवधातु (कफ, पित्त, रसादि) अंतराग्नि (जठराग्नि या पाचकाग्नि) को शमन करके और स्वयं बढकर, विष्ठासे मिलकर, वायुसे प्रेरित हुआ (वह द्रवभाग नीचेको गुदाकी तरफ प्रवृत्त होताहै इससे इस घोर व्याधिको अतिसार कहते हैं ॥ ४ ॥

अतिसारके भेद ।

एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः शोकेनान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः ॥ ५ ॥

केचित्प्राहुर्नैकरूपप्रकारं नैवेत्येवं काशिराजस्त्ववोचत् ॥

दोषावस्थास्तस्य नैकप्रकाराः काले काले व्याधितस्योद्भवंति ॥६ ॥

वातादि एक एक पृथक् दोषसे ऐसे ३ तो ये, चौथे त्रिदोष (सन्निपात) से, पांचवें शोकसे और छठे आमसे इस भांति अतिसार छः प्रकारका कहा है ॥ ५ ॥ इसमें कई ऐसा कहते हैं कि अतिसार कई प्रकारका और कई रूपका (अर्थात् अनेक प्रकारका) होताहै (जैसे द्विदोषका अतिसार, रक्तातिसार, भयातिसार इत्यादि) परंतु काशिराज श्रीधन्वंतरिजी इन्हें मुख्यतासे नहीं मानते इनका मत है कि दोषोंकी अवस्था रोगीके एक प्रकारकी नहीं होती किंतु समय समयपर पलट जाया करती है (प्रयोजन यह कि पूर्वोक्त छः प्रकारके अतिसारमेंही अवस्थाभेदसे और सबका अंतर्भाव होसकता है (जैसे 'सर्वशः' में द्वंद्वज और त्रिदोषज सब आगये और पांचवेंमें आदि शब्द लुप्त प्रतीत होताहै अर्थात् शोकादिसे, इसमें भय आदि सब प्रकारके आगंतुक आचुके इसी प्रकार रक्तातिसारका अंतर्भाव पित्तातिसारमें होसकताहै) ॥ ६ ॥

अतिसारका पूर्वरूप ।

हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोदगात्रावसादानिलसंनिरोधाः ॥

विट्संगआध्मानमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥७॥

हृदय, नाभि, गुदा, पेट और कुक्षि इन स्थानोंमें व्यथासी हो, शरीरमें ग्लानि हो, अधोवायु रुकजावे, दस्त भी रुकजावे (या थोडा आवे), अफारा हो और भोजन ठीक पचे नहीं ये अतिसारके पूर्वरूप हैं (अर्थात् जिसके ये लक्षण हों तो जानलेना चाहिये कि इसके अतिसार होनेवाला है) ॥ ७ ॥

वातज पित्तज और कफज अतिसारके लक्षण ।

शूलाविष्टः सक्तमूत्रोंत्रकूजी स्रस्तापानः सन्नकट्यूरुजंघः ॥

वर्चो मुंचत्यल्पमल्पं सफेनं रूक्षं श्यावं सानिलं मारुतेन ॥ ८ ॥

(श्लो० ८) स्रस्तापानः अधश्च्युतगुदः । सन्नकट्यूरुजंघः शिथिलकट्यूरुजंघः (इति नि० सं०)

दुर्गंध्युष्णं वेगवन्मांसतोयप्रख्यं भिन्नं स्विन्नदेहोतितीक्ष्णम् ॥
पित्तात्पीतं नीलमालोहितं वा तृष्णामूर्च्छादाहपाकज्वरार्तः ॥ ९ ॥
तंद्रानिद्रागौरवोत्क्लेशसादी वेगाशंकी सृष्टविट्कोपि भूयः ॥
शुक्लं सांद्रं श्लेष्मणा श्लेष्मयुक्तं भक्तद्वेषी निःस्वनं हृष्टरोमा ॥१०॥

पेटमें दरद रहे, मूत्र रुक जाय या कम हो, आंत गुड २ शब्द बोलें, गुदा निकलीसी पडे, कमर, ऊरु और जंघा इनमें थकानसी हो और थोडा थोडा दस्त आवे. मलमें झागसे हों, रूखापन भी हो, मलका रंग श्याव (कालापन लिये) हो और दस्तके साथ वायु (और शब्द) भी हों ये वायुज अतिसारके लक्षण हैं॥ ॥ ८ ॥ मल दुर्गंधित और गरम हो और वेगसे दस्त हो, मांसके धोवनसा छेछडे-दार दस्त हो, तीक्ष्ण हो, रंग पीला या नीला या लाल हो, रोगीके पसीना आवे, तृषा, मूर्च्छा, दाह और गुदादिका पाक हो तथा ज्वर हो तो पित्तातिसारके लक्षण जानने चाहिये ॥ ९ ॥ जिसको तंद्रा, निद्रा, गुरुता, जी मिचलाना या मुँहमें पानी आना, अग्निमें मन्दता ये हों और दस्त हो आनेपर भी शंका रहे, दस्त सुपेद, कुछ गाढा, कफसे मिलाहुआ हो, दस्तके साथ शब्द न हो, भोजनमें रुचि न हो, रोमांच हों ये कफातिसारके लक्षण हैं ॥ १० ॥

सन्निपातातिसारके लक्षण ।

तंद्रायुक्तो मोहसादास्यशोषी वर्चः कुर्यान्नैकवर्णं तृषार्तः ॥
सर्वोद्भूतः सर्वलिंगोपपत्तिः कृच्छ्रश्चायं बालवृद्धेष्वसाध्यः ॥ ११ ॥

जो तंद्रा युक्त हो, मोह, अग्निमांद्य और मुख सूखना इनसे भी युक्त हो, तृषा अधिक लगे और दस्तका रूप एक किसी वर्णका न हो (अनेक रंगसे दस्त आवें) और सब दोषोंके लक्षण और उपद्रव पायेजावें तो उसे संनिपातका अतिसार कहते हैं यह कष्टसाध्य होता है और बालक, वृद्ध इन्होंके तो असाध्यही होता है ॥ ११ ॥

(वक्तव्य) जिसमें दो दोषोंके लक्षण और उपद्रव पायेजावें उसे उन्हीं दोषोंका अतिसार समझ लेना चाहिये ॥

शोकातिसारके लक्षण ।

तैस्तैर्भावैः शोचतोऽल्पाशनस्य बाष्पावेगः पक्तिमाविध्य जंतोः ॥
कोष्ठं गत्वा क्षोभयन्यस्य रक्तं तच्चाधस्तात्काकनंतीप्रकाशम् ॥१२॥

(श्लो० ९) दाहपाक इति–दाहः कोष्ठे गुदे च, पाकः गुदे (श्लो० ११) यद्यपि अत्र द्वद्वजस्यातिसारस्य सर्वजेऽन्तर्भावस्तथापि दोषद्वयलक्षणैर्द्वद्वजातिसारोपि बोद्धव्यः प्रत्यक्षदर्शनात् ।

(श्लो० १२) तैस्तैर्भावैः बंधुवित्तक्षयादिभिः शोचतः शोकं कुर्वतः ।

वर्चोमिश्रं निःपुरीषं सगंधं निर्गधं वा सार्यते तेन कोष्ठात् ॥
शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्स्योतिमात्रं रोगो वैद्यैः कष्ट एव प्रदिष्टः॥१३॥

जिन जिन पदार्थोंका क्लेश हो उनको शोच करके (शोक करनेवालेके) और शोकहीसे थोडा भोजन कियाजानेसे बाष्प (अश्रु या अवखरो) का वेग मनुष्यकी पाचकाग्निको दूषित करके कोष्ठमें प्राप्त होकर रुधिरको क्षोभित करके चिरमठी जैसे रक्तको विष्ठामें मिले हुए या केवल गंधयुक्त या निर्गंध कोष्ठसे मलमार्गकी तरफ निकालता है यह शोकातिसार वैद्योंने अत्यन्त कष्टसाध्य और दुश्चिकित्स्य कहा है ॥ १२ ॥ १३ ॥

आमाजीर्णैः प्रद्रुताः क्षोभयंतः कोष्ठं दोषाः संप्रदुष्टाः सभक्तम् ॥
नानावर्णं नैकशः सारयंति कृच्छ्राज्जंतोः षष्ठमेनं वदंति ॥ १४ ॥

आमके न पकनेसे द्रवीभूत हुए दूषित दोष भोजन युक्त कोष्ठको क्षुभित करके अनेक रूपसे अनेक वार मनुष्यके कष्टपूर्वक अतिसरण करते हैं (अर्थात् दस्त आते हैं) इसे छठा आमातिसार कहते हैं (अर्थात् जब आम नहीं पकता है तब वह द्रवीभूत होकर अध कच्चे आहार सहित कोष्ठको क्षुभित करके कष्टसहित अनेक दस्त आने लगते हैं) ॥ १४ ॥

आम और पक्व अतिसारके लक्षण ।

संसृष्टमेभिर्दोषैस्तु न्यस्तमप्स्ववसीदति ॥ पुरीषं भृशदुर्गंधं विच्छिन्नं चामसंज्ञकम् ॥ १५ ॥ एतान्येव तु लिंगानि विपरीतानि यस्य तु ॥ लाघवं च मनुष्यस्य तस्य पक्वं विनिर्दिशेत् ॥१६॥

इन वातादि दोषोंसे मिलाहुआ मल यदि जलमें डालाजावे तो डूबजावे और अति दुर्गंधयुक्त हो, विच्छिन्न (फटा हुआ मल) हो तो जानना कि अतिसार अभी कच्चा है पका नहीं ॥ १५ ॥ और जिसके इनसे विपरीत लक्षण हों (अर्थात् मल पानीमें डूबे नहीं, दुर्गंध न हो, फटा भी न हो) और मनुष्यके शरीरमें हलकापन हो तो जानना चाहिये कि इसके अतिसार पकगया ॥ १६ ॥

असाध्य अतिसारके लक्षण ।

सर्पिर्मेदोवेसवाराम्बुतैलमाजं क्षीरं क्षौद्ररूपं स्रवेद्यत् ॥ मंजिष्ठाभं मस्तुलुंगोपमं वा विस्रं शीतं प्रेतगंध्यंजनाभम् ॥१७॥ राजीमद्वा

चंद्रकैः संततं वा पूयप्रख्यं कर्दमाभं तथोष्णम् ॥ हन्यादेतद्यत्प्रतीपं भवेच्च क्षीणं हन्युश्चोपसर्गाः प्रभूताः ॥ १८ ॥

घृत, मेद, वसाके समान या वेसवारके जल, तैल, बकरीके दूध, और शहदके रूपका मल आवे या मँजीठके समान या मस्तककी मज्जाके तुल्य हो, कच्चे मांसके समान गंधवाला, शीतल, मुर्देकीसी गंधवाला, कज्जलसा काला दस्त हो ॥ १७ ॥ अथवा जिसमें कई वर्णकी रेखा हों, जिसमें मोरपंखके चांदोंकासा वर्ण हो, जो राध जैसा हो तथा कीचडसा गरम दस्त हो अथवा दोषसे विपरीत वर्णका हो ऐसा अतिसार तथा जिसमें उपद्रव विशेष हो वह क्षीण मनुष्यको मृत्युकारक होता है ॥ १८ ॥

असंवृतगुदं क्षीणं दुराध्मातमुपद्रुतम् ॥
गुदे पक्के गतोष्माणमतिसारकिणं त्यजेत् ॥ १९ ॥

जिसकी गुदा संकुचित न हो (खुलीही रहे), क्षीणता होजावे, पेट बुरीतरहसे अफर जावे, उपद्रवोंसे युक्त हो, गुदा पकजावे, अग्नि नष्ट होजावे ऐसे अतिसारके रोगीको असाध्य जानकर त्याग देना चाहिये (इस व्याधिके उपद्रव ग्रंथांतरसे लिखते हैं) ॥ १९ ॥

परिशिष्ट ।

अतिसारके उपद्रव ।

श्लोक–शोफं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम् ॥
छर्दिं हिक्कां च मूर्च्छां च दृष्ट्वाऽतीसारिणं त्यजेत्॥ १॥ (इति नि०सं०)

अर्थ–शोफ, शूल, ज्वर, तृषा, श्वास, खांसी, अरुचि, छर्दि, हिचकी और मूर्च्छा ये अतिसारके उपद्रव होते हैं इनकी विशेषता देखकर असाध्य जान त्याग देना चाहिये ॥ १ ॥

अन्यभेदोंका अंतर्भाव ।

शरीरिणामतीसारः संभूतो येन केनचित् ॥ दोषाणामेव लिंगानि कदाचिन्नातिवर्तते ॥ २० ॥ स्नेहाजीर्णनिमित्तस्तु बहुशूलप्रवाहिकः ॥ विसूचिकानिमित्तस्तु चान्योऽजीर्णनिमित्तजः ॥ विषार्शःकृमिसंभूतो यथास्वं दोषलक्षणः ॥ २१ ॥

(श्लो० १८) यत् प्रतीप दोषलक्षणाद्विपरीतवर्णम् । प्रभूता उपसर्गा विशेषोपद्रवाः ।

मनुष्योंके किसी कारणसे अतिसार हुआ हो परंतु वातादि दोषोंके लक्षणसे पृथक् कभी नहीं होसकता ॥ २० ॥ जो स्नेहके न पचनेसे बहुत शूल और प्रवाहिका युक्त हो या विसूचिकाजन्य हो या अजीर्णसे हुआ हो या विष, अर्श, कृमि इनमेंसे किसीसे हो सबमें यथायोग्य दोषोंके लक्षण पायेही जातेहैं (इससे मुख्य भेद छह ही हैं) ॥ २१ ॥

अतिसारमें चिकित्साक्रमका निर्देश।

आमपक्वक्रमं हित्वा नातिसारे क्रिया यतः ॥
अतः सर्वातिसारास्तु ज्ञेयाः पक्वामलक्षणैः ॥ २२ ॥

आमातिसार है या पक्वातिसार इस क्रमको छोडकर अतिसारमें चिकित्साकी क्रिया नहीं बनसकती इससे सब अतिसारोंमें प्रथम लक्षणोंसे यह देखना चाहिये कि यह आमातिसार है (अपक्व है) अथवा पक्वातिसार है ॥ २२ ॥

पूर्वरूपमें चिकित्सा।

तत्र लंघनमेवादौ पूर्वरूपेषु देहिनाम् ॥ ततः पाचनसंयुक्तयवाग्वादिक्रमो हितः ॥ २३ ॥ अथवा वामयित्वा तु शूलाध्माननिपीडितम् ॥ पिप्पलीसैंधवांभोभिर्लंघनाद्यैरुपाचरेत् ॥ २४ ॥ कार्यं च वमनस्यान्ते प्रायशो लघुभोजनम् ॥ खडयूषयवागूषु पिप्पल्याद्येव योजयेत् ॥ २५ ॥ अनेन विधिना चास्य यस्य वै नो पशाम्यति ॥हरिद्रादिं वचादिं वा पिबेत्प्रातः स मानवः २६॥

पूर्वरूपकी अवस्थामें प्रायः सब अतिसार आम (अपक्व) होतेहैं इससे आदिमें (पूर्वरूपमें) मनुष्योंको लंघन कराना ही श्रेष्ठ है और फिर पाचन द्रव्योंके योगसे बनाई हुई यवागू आदि देना चाहिये यह क्रम हितकारक है ॥ ॥ २३ ॥ और जो पूर्वरूप (आमअवस्था) में शूल और अफारेकी पीडा हो तो उसे पीपल और सैंधवके जलसे वमन करावे और लंघन आदिसे उपचार करे ॥ २४ ॥ तथा वमनके पीछे प्रायः हलका भोजन करावे खडयूष, यवागू इनमें पिप्पल्यादिक पाचन द्रव्योंका योग करके भोजन करावे ॥ २५ ॥ और यदि

(श्लो० २३) यस्मात्सर्व एवातिसारा आदौ आमत्वं भजते अतः आमशमनार्थमादौ लंघनमेव। "तत्र लंघनमेवादौ" इत्यत्र 'हितं लंघनमेवादौ' इति वा पाठांतरम्।

(श्लो० २५) खडयूषाः कपित्थदाडिममरिचादिभिः सुपक्व तक्रम्। अन्ये तु षट् दाडिमतक्रादिसंस्कृता यूषाः मुद्गमसूरचणकादिकृताः (इति नि० सं०)

इस विधिसे मनुष्यका आम नहीं शांत हो (नहीं पके) तो उसे हरिद्रादिक अथवा वचादिकका क्वाथ प्रातःकाल पीना चाहिये ॥ २६ ॥

आमातिसारकी चिकित्सा ।

आमातिसारिणां कार्यं नादौ संग्रहणं नृणाम् ॥ तेषां दोषा विबद्धाः प्राक् जनयंत्यामयानिमान् ॥ २७ ॥ प्लीहपांड्वामयानाह- मेहकुष्ठोदरज्वरान्॥ शोफगुल्मग्रहण्यर्शःशूलालसकहृद्ग्रहान् ॥२८॥

आमातिसारको आरंभहीमें रोक देना उचित नहीं क्योंकि आरंभसे कच्चे दोष रुकजानेसे मनुष्योंके इतने रोग पैदा करदेतेहैं ॥ २७ ॥ प्लीहा (तिल्ली बढना), पांडु, अफारा, प्रमेह, कुष्ठ, उदररोग, ज्वर, शोथ, गुल्म, संग्रहणी, बवासीर, शूल, अलस तथा हृदयग्रहण (आमातिसारके रोक देनेसे इतने उप- द्रव होजाते हैं) ॥ २८ ॥

सशूलं बहुशः कृच्छ्राद्विबंधं योतिसार्यते ॥ दोषान्संनिचितान्वाथ पथ्याभिः संप्रवर्तयेत् ॥ २९ ॥ योऽतिद्रवं प्रभूतं च पुरीषमति- सार्यते ॥ तस्यादौ वमनं कुर्यात्पश्चाल्लंघनपाचनम् ॥ ३० ॥ स्तोकं स्तोकं विबद्धं वा सशूलं योतिसार्यते ॥ अभयापिप्पलीकल्कैः सुखोष्णैस्तु विरेचयेत् ॥ ३१ ॥ आमे च लंघनं शस्तमादौ पाच- नमेव वा ॥ योगाश्चात्र प्रवक्ष्यंते ह्यामातीसारनाशनाः ॥ ३२ ॥

जिसके शूलयुक्त कष्टसे बहुतवार थोडा थोडा दस्त आता हो अथवा दोष संचित होरहे हों तो उसे हरीतकी देकर मलको प्रवृत्त करदेना (निकाल देना) चाहिये ॥ २९ ॥ और जिसके अतिपतला बहुत दस्त आता हो उसको आदिमें वमन करावे फिर लंघन, पाचनका उपयोग करे ॥ ३० ॥ और जिसके थोडा थोड़ा विबंधयुक्त शूलसहित दस्त आवे उसे हरड और पीपलके निवाये कल्कसे विरेचन देवे ॥ ३१ ॥ आमातिसारके आदिमें लंघन श्रेष्ठ है । अब आमातिसारके नाश करनेवाले योग वर्णन किये जातेहैं ॥ ३२ ॥

आम पाचनके २० योग ।

देवदारुवचामुस्तानागरातिविषाभयाः ॥ कलिंगातिविषाहिंगुसौ- वर्चलवचाभयाः ॥ ३३ ॥ अभया धान्यकं मुस्तं वालकं बिल्व- मेव च ॥ मुस्तं पर्पटकं शुंठी वचा सातिविषाभया ॥३४॥ अभया-

तिविषा हिंगु वचा सौवर्चलं तथा ॥ चित्रकं पिप्पलीमूलं वचा कटुकरोहिणी ॥ ३५ ॥ पाठा वत्सकबीजानि हरीतक्यो महौषधम् ॥ मूर्वा निर्दहनी पाठा त्र्यूषणं गजपिप्पली ॥ ३६ ॥ सिद्धार्थका भद्रदारु शताह्वा कटुरोहिणी ॥ एला सावरकं कुष्टं हरिद्रे कौटजा यवाः ॥ ३७ ॥ मेषशृंगी त्वगेले च कृमिघ्नं वृक्षकाणि च ॥ वृक्षादनी वीरतरुर्बृहत्यौ द्वे सहे तथा ॥ ३८ ॥ एरंडत्वक् च तैंदूकी दाडिमी कौटजी शमी ॥ पाठा तेजोवती मुस्तं पिप्पली कौटजं फलम् ॥ ३९ ॥ पटोलं दीप्यको विल्वं हरिद्रे देवदारु च ॥ विडंगमभया पाठा शृंगवेरं घनं वचा ॥४०॥ वचा वत्सकबीजानि सैंधवं कटुरोहिणी ॥ हिंगुवत्सकबीजानि वचा बिल्वशलाटु च ॥ ४१ ॥ नागरातिविषे मुस्तं पिप्पल्यो वात्सकं फलम् ॥ महौषधं प्रतिविषा मुस्तं चेत्यामपाचनाः ॥४२॥ प्रयोज्या विंशतिर्योगाः श्लोकार्द्धविहितास्त्विमे ॥ धान्याम्लोष्णांबुमद्यानां पिबेदन्यतमेन वा ॥ ४३ ॥ निःक्वाथान्वा पिबेदेषां सुखोष्णान्सांबुसाधितान् ॥ निखिलेनोपदिष्टोऽयं विधिरामोपशांतये ॥ ४४ ॥

१ योग-देवदारु, वच, मोथा, सोंठ, अतीस, हरड । २ इंद्रजव, अतीस, हीग, कालानोन, वच और हरड ॥ ३३ ॥ ३ हरड, धनियां, मोथा, नेत्रवाला और बिल्व । ४ मोथा, पित्तपापडा, सोंठ, वच, अतीस और हरड़ ॥ ३४ ॥ ५ हरड, अतीस, हींग, वच, कालानोन । ६ चित्रक, पिप्पलीमूल, वच और कुटकी ॥ ३५॥ ७ पाठ, कुडेके बीज, हरड और सोंठ । ८ मूर्वा, चित्रक, पाठा, त्रिकटु और गजपीपल ॥ ३६ ॥ ९ सुपेद सरसों, देवदारु, सौंफ, कुटकी । १० इलायची, सावरलोध, कूट, दोनों हलदी, इंद्रजव ॥ ३७ ॥ ११ मेढासींगी, तज, दोनों इलायची, वायविडंग, कुडेकी छाल । १२ वंदा, वीरतरु, दोनों कटेली, दोनों सहा (क्षुद्रसहा, महासहा) ॥ ३८ ॥ १३ अरंडकी छाल, तैंदू, अनारदाना, कुडेकी छाल, जाँट । १४ पाठ, तेजोवती, मोथा, पीपल, इन्द्रजव ॥ ३९ ॥ १५ पटोल, अजमोद, बिल्व, दोनों हलदी, देवदारु । १६ विडंग, हरड, पाठ, सोंठ, नागरमोथा, वच ॥ ४० ॥ १७ वच, इन्द्रजव, सैंधानमक और कुटकी । १८

हींग, इंद्रजव, वच, छोटा बिल्व ॥ ४१ ॥ १९ सोंठ, अतीस, मोथा, पीपल, इन्द्रजव। २० सोंठ, अतीस, नागरमोथा ये आमके पकानेवाले हैं ॥ ४२ ॥ ये वीस प्रयोग आधे २ श्लोकमें कहे गये हैं इनको चूर्ण करके (अर्थात् इनमेंसे किसी एक योगका चूर्ण करके) धान्याम्ल (कांजी) या गरम जल या मदिरा इनमेंसे किसीके संग लेवे ॥ ४३ ॥ अथवा इनमेंसे किसी एक योगके औषधोंका क्वाथ विधिपूर्वक वनाकर निवाया २ पीवे यह विधि पूर्णतासे आमके पचाने तथा शांत करनेके लिये कही गई है ॥ ४४ ॥

आम पकानेके अन्य प्रयोग।

हरीतकीमतिविषां हिंगु सौवर्चलं वचा ॥ पिबेत्सुखांबुना जंतुरामातीसारपीडितः ॥ ४५ ॥ पटोलं दीप्यकं बिल्वं वचा पिप्पलिनागरम् ॥ मुस्तं कुष्ठं विडंगं च पिबेद्वाऽपि सुखांवुना ॥ ४६ ॥ शृंगवेरं गुडूचीं च पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ४७ ॥

हरड, अतीस, हींग, कालानोन और वच इनको गरम जलके संग आमातिसारसे पीडित मनुष्य पीवे ॥ ४५ ॥ पटोल, दीप्यक (अजवायन), बिल्व, वच, पीपल, सोंठ, मोथा, कूट, विडंग इनको गरम जलसे पीवे ॥ ४६ ॥ तथा सोंठ और गिलोयको गरम जलसे पान करे ॥ ४७ ॥

आम पकानेके पांच योग।

लवणान्यथ पिप्पल्यो विडंगानि हरीतकी ॥ चित्रकं शिंशपा पाठा शार्ङ्गेष्टा लवणानि च ॥ ४८ ॥ हिंगुवृक्षकबीजानि लवणानि च भागशः ॥ हस्तिदंत्यश्चपिप्पल्यः कल्कावक्षसमौ स्मृतौ ॥ ४९ ॥ वचा गुडूचीकांडानि योगोऽयं परमो मतः ॥ एते सुखांबुना योगा देयाः पंच सतां मताः ॥ ५० ॥

१ योग-पांचों नमक, पीपल, विडंग और हरड। २ चित्रक, शीशम, पाठा, करंज और पांचों नमक ॥ ४८ ॥ ३ हींग, इंद्रजव और इनके बराबर पांचों नमक। ४ हस्तिदंती (कोई मूली कहते हैं, कोई कर्कटी), पीपल इनका अक्ष २ भरका कल्क ॥ ४९ ॥ ५ वच और गिलोयकी गंडल यह परम योग है ये सब पांच योग हैं (इनमेंसे कोईसा एक) गरम जलके साथ देना चाहिये ॥ ५० ॥

पर्यस्युत्क्वाथ्य मुस्तानां विंशतिं त्रिगुणांभसि ॥
क्षीरावशिष्टं तत्पीतं हंत्यामं शूलमेव च ॥ ५१ ॥

बीस नागरमोथे लेकर दूधमें पकावे और दूधसे तिगुना पानी डाले जब दूध-मात्र शेष रहे तब पीवे यह आम और शूलको नष्ट करता है (कई ऐसा भी अर्थ करते हैं कि एक भाग (एक तोला) नागरमोथा इसमें २० तोले दूध और ६० तोले पानी डालकर उबाले जब पानी जलके दूध शेप रहजावे तब पीवे) ॥५१॥

निवृत्तेष्वामशूलेषु यस्य न प्रगुणोऽनिलः ॥ स्तोकं स्तोकं रुजामच्चं सशूलं योऽतिसार्यते ॥ सक्षारलवणैर्युक्तं मंदाग्निः प्रपिवेद्घृतम् ॥ ॥ ५२ ॥ क्षीरनागरचांगेरीकोलदध्यम्लसाधितम् ॥ सर्पिरच्छं पिबेद्वापि शूलातीसारशान्तये ॥ ५३ ॥

आम और शूलके निवृत्त होजानेपर भी यदि किसीके वायु गुणयुक्त (ठीक) न हो किंतु थोडा थोडा मरोडसे और दरदसे दस्त आवे तो ऐसे मंदाग्निवाले रोगीको यवक्षार और लवण सहित घृत पीना चाहिये ॥ ५२ ॥ अथवा दूध, सोंठ, चांगेरी (अम्ललोणी), बेर, दही, अम्ल (अन्य खटाई कांजी आदि) (कई खट्टा दही ऐसा कहते हैं) इनसे सिद्ध कियाहुआ स्वच्छ घृत पान करे यह भी शूलयुक्त अतिसारकी शांति करता है ॥ ५३ ॥

दध्ना तैलघृतं पक्वं सव्योषजातिचित्रकैः ॥ सबिल्वपिप्पलीमूल-दाडिमैर्वारुगन्वितैः ॥ ५४ ॥ निखिलो विधिरुक्तोऽयं वातश्ले-ष्मोपशांतये ॥तीक्ष्णोष्णवर्ज्यमेनं तु विदध्यात्पित्तजे भिषक् ॥५५॥

दहीमें त्रिकटु, जावित्री, चित्रक, बिल्व, पीपलामूल, अनार और ककडी मिलाकर तैल, घृत पकावे (और उपयोग करे) ॥ ५४ ॥ यह जो पूर्व विधि कही गई है वह सम्पूर्ण वायु और कफकी शांतिके लिये है इन्हींको तीक्ष्ण और गरमसे रहित करके पित्तजनितमें भी वैद्य उपयोग करसकते हैं ॥ ५५ ॥

यथोक्तमुपवासांते यवागूश्च प्रशस्यते ॥ बलयोरंशुमत्यां च श्वदं-ष्ट्राबृहतीषु च ॥ ५६ ॥ शतावर्यां च संसिद्धाः सुशीता मधुसं-युताः ॥ मुद्गादिषु च यूषाः स्युर्दीपनैश्च सुसंस्कृताः ॥ ५७ ॥

यथायोग्य लंघनके पीछे यवागू देना श्रेष्ठ है यह यवागू दोनों खरेंटी और अंशुमती (शालपर्णी), गोखरू और कटेली तथा शतावरी इनमें सिद्ध करके शीतल करके, शहद मिलाके देवे अथवा दीपन द्रव्योंसे संस्कार कियेहुए मूँगके यूष इत्यादिक देवे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

(श्लो० ५४) दाडिमैर्वारुगन्वितैरिति–दाडिमैर्वारुकसहितैः ।

पित्तातिसारमें तीन पाचन क्वाथ।

मृदुभिर्दीपनैस्तिक्तैर्द्रव्यैः स्यादामपाचनम्॥ हरिद्रातिविषा पाठा वत्सबीजरसांजनम्॥ ५८॥ रसांजनं हरिद्रे द्वे बीजानि कुटजस्य च॥ पाठा गुडूची भूनिंबस्तथैव कटुरोहिणी॥ ५९॥ एतैः श्लोकार्द्धनिर्दिष्टैः क्वाथाः स्युः पित्तपाचनाः॥ ६०॥

मृदु (कोमल), दीपन, तिक्त (कडुवे) द्रव्योंसे पैत्तिक आमातिसार पक्व होता है जैसे १ हलदी, अतीस, पाठा, इंद्रजव और रसोत॥५८॥ २ रसोत, दोनों हलदी, इंद्रजव। ३ पाठा, गिलोय, चिरायता और कुटकी॥ ५९॥ ये आधे २ श्लोकमें कहेहुए तीन क्वाथ पित्तके पचानेवाले हैं॥ ६०॥

पित्तातिसारनाशक छः योग।

मुस्तं कुटजबीजानि भूनिंबं सरसांजनम्॥ दार्वी दुरालभा बिल्वं वालकं रक्तचंदनम्॥६१॥ चंदनं वालकं मुस्तं भूनिंबं सदुरालभम्॥ मृणालं चंदनं रोध्रं नागरं नीलमुत्पलम्॥ ६२॥ पाठा मुस्तं हरिद्रे द्वे पिप्पली कौटजं फलम्॥ फलत्वचं वत्सकस्य शृंगवेरं घृतं वचा॥ षडेतेऽभिहिता योगाः पित्तातीसारनाशनाः॥ ६३॥

१ योग–मोथा, इंद्रजव, चिरायता और रसोत। २ दारुहलदी, जवासा, बिल्व, नेत्रवाला और लालचंदन॥ ६१॥ ३ चंदन, नेत्रवाला, मोथा, चिरायता, जवासा। तथा ४ कमल, चंदन, लोध, सोंठ और नीलोफर॥ ६२॥ ५ पाठा, मोथा, दोनों हलदी, पीपल, इंद्रजव। ६ कुडेके फल (इंद्रजव) और कुडेकी छाल, सोंठ, घृत, वच। ये (आधे २ श्लोकमें कहेहुए) छः योग पित्तके अतिसारको नाश करनेवाले हैं॥ ६३॥

आमयुक्त पित्तातिसारका यत्न।

बिल्वशक्रयवांभोदबालकातिविषाकृतः॥ कषायो हंत्यतीसारं सामं पित्तसमुद्भवम्॥ ६४॥ मधुकोत्पलबिल्वाम्रह्रीबेरोशीरनागरैः॥ कृतः क्वाथो मधुयुतः पित्तातीसारनाशनः॥ ६५॥

यदि आमसहित पित्तातीसार हो तो बिल्व, इंद्रजव, नागरमोथा, नेत्रवाला और अतीस इनका क्वाथ पीनेसे नष्ट होजाता है॥ ६४॥ तथा मुलेठी, कमल,

बिल्व, आम्र (आमकी गुठली), नेत्रवाला, खस और सोंठ इनका क्काथ बना शहद मिलाकर पीना पित्तके अतिसारको नष्ट करता है ॥ ६५ ॥

पक्क अतिसारमें स्तंभनकारक चार योग ।

यदा पक्कोप्यतीसारः सरत्येव मुहुर्मुहुः ॥ ग्रहण्या मार्दवाज्जंतो-स्तत्र संस्तंभनं हितम् ॥ ६६ ॥ समंगा धातकीपुष्पं मंजिष्ठा लोध्रमुस्तकम् ॥ शाल्मली वेष्टकं रोध्रं वृक्षदाडिमयोस्त्वचौ ॥६७॥ आम्रास्थिमध्यं लोध्रं च बिल्वमध्यं प्रियंगवः ॥ मधुकं शृङ्गवेरं च दीर्घवृंतत्वगेव च ॥ ६८ ॥ चत्वार एते योगाः स्युः पक्कातीसार-नाशनाः ॥ उक्ता य उपयोज्यास्ते सक्षौद्रास्तंडुलांबुना ॥६९ ॥ मौस्तं कषायमेकं वा पेयं मधुसमायुतम् ॥ ७० ॥

और पकाहुआ अतिसार भी ग्रहणीके नरम पड़जानेसे मनुष्यके वारंवार जारी रहे तब स्तंभन करना हितकारक है ॥ ६६ ॥ (इस अवस्थामें ये स्तंभनप्रयोग काममें लावे) जैसे १ योग—लजवंती, धायके फूल, मँजीठ, लोध और नागर-मोथा । २ शेमलकी छाल, लोध, कुडेकी छाल और अनारकी छाल ॥ ६७ ॥ ३ आमकी गुठली, लोध, बिल्व (बेलगिरी) और प्रियंगु । ४ मुलेठी, सोंठ और अरलूकी छाल ॥ ६८ ॥ ये (आधे २ श्लोकोंसे कहे हुए) चार योग पकेहुए अतिसारको नष्ट करते हैं ये उक्तप्रयोग शहद और चावलोंके पानीके संग देने चाहिये ॥ ६९ ॥ अथवा केवल (अकेले) नागरमोथेका क्काथही शहद मिलाकर पीना उचित है ॥ ७० ॥

(वक्तव्य) हमारे शारीरक स्थानके आरंभमें दूसरे पृष्ठपर जो अंत्रप्रदर्शक चित्र है उसमें आमाशयसे नीचे जहां ५ का अंक दिया है वह ग्रहणी है इसका विशेष वर्णन अगाडी संग्रहणी रोगके विषयमें होगा ॥

लोध्रांबष्ठाप्रियङ्ग्वादीन्गणानेव प्रयोजयेत् ॥ पद्मां समंगां मधुकं बिल्वजंबूशलाटु वा ॥ ७१ ॥ पिबेत्तंडुलतोयेन सक्षौद्रमगदंकरम् ॥ कच्छुरामूलकल्कं वा उदुंबरफलोपमम् ॥ ७२ ॥ पयस्या चंदनं पद्मा सिता मुस्ताब्जकेशरम् ॥ पक्कातिसारं योगोऽयं जयेत्पीतः सशोणितम् ॥ ७३ ॥

(श्लो० ७०) कषायमिति पुन्नपुंसक तस्मादेव कषायं पेयमिति अर्द्धमिदम् ।

लोध्रादि, अंबष्ठादि और प्रियंग्वादि गणोंको भी उपयोग करे अथवा भारंगी, लज्जालू, मुलेठी, बिल्व और जामुनके कच्चे फल ॥ ७१ ॥ इनको चावलोंके पानीके संग शहद मिलाके पीनेसे अतिसारके रोगसे निवृत्त होजाते हैं अथवा कच्छुरा (कंकतिका अर्थात् नागवला) के मूलका गूलरके समान कल्क करके (शहद मिला चावलके पानीसे लेना) ॥ ७२ ॥ तथा पयस्या (क्षीरकाकोली या अर्कपुष्पी), चंदन, पद्मा (भारंगी), मिश्री, नागरमोथा और कमलकी केशर इनको पीवे यह प्रयोग रुधिरयुक्त पके अतिसारको नष्ट करता है (अर्थात् पकेहुए अतिसारको और रक्तातिसारको दूर कर देताहै) ॥ ७३ ॥

निराम अतिसारका यत्न ।

निरामरूपं शूलार्तं लंघनाद्यैश्च कर्षितम् ॥ नरं रूक्षमवेक्ष्याग्निं सक्षारं पाययेद्घृतम् ॥ ७४ ॥ वलाबृहत्यंशुमतीकच्छुरामूलसाधितम् ॥ मधूक्षितं समधुकं पिबेच्छूलैरभिद्रुतः ॥ ७५ ॥ दार्वीबिल्वकणाद्राक्षाकटुकेंद्रयवैर्घृतम् ॥ साधितं हंत्यतीसारं वातपित्तकफात्मकम् ॥ ७६ ॥ पयो घृतं च मधु च पिबेच्छूलैरभिद्रुतः ॥ सिताजमोदकट्वंगमधुकैरवचूर्णितम् ॥ ७७ ॥

जिसके आम न हो और शूल हो, जो लंघनादिकसे कृश होगया हो, जो मनुष्य रूक्ष हो उसकी जठराग्निको विचारकर क्षारयुक्त घृत पिलाना चाहिये ॥ ७४ ॥ तथा खरेंटी, बडी कटेली और अंशुमती (शालपर्णी) (कई तेजोवती कहतेहैं), कंकतिकाकी जड़ इनसे साधन किया हुआ घृत मुलेठी और शहद मिलाकर शूलसहित अतिसारसे पीडित रोगी पीवे ॥ ७५ ॥ तथा दारुहलदी, बेलगिरी, पीपल, मुनक्का, कुटकी, इंद्रजव इनसे सिद्ध कियाहुआ घृत वातज, पित्तज तथा कफज तीनों प्रकारके अतिसारको नष्ट करताहै ॥ ७६ ॥ अथवा शूलसे पीडित मनुष्य मिश्री, अजमोदा, श्योनाक और मुलेठी इनके चूर्णसे युक्त दूध घृत और शहदको पान करे ॥ ७७ ॥

पुटपाकका निर्देश ।

अवेदनं सुसंपक्वं दीप्ताग्नेः सुचिरोत्थितम् ॥
नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरुपाचरेत् ॥ ७८ ॥

(श्लो० ७५) मधूक्षित मधुयुक्तम् । समधुक सयष्टीमधुकम् । कच्छुरा शूकशिंबी । कंकतिका नागवला शठी च अत्र नागवला ग्राह्या ।

यदि दीप्ताग्नि मनुष्यके वेदना रहित पकाहुआ बहुत दिनका अनेक वर्णका अतिसार हो तो उसे पुटपाकोंसे उपचार करे ॥ ७८ ॥

त्वक्पिंडं दीर्घवृंतस्य पद्मकेसरसंयुतम् ॥ काश्मरीपद्मपत्रैश्चावेष्ट्य सूत्रेण तं दृढम् ॥ ७९ ॥ मृदावलिप्तं सुकृतमंगारेष्ववकूलयेत्॥ स्विन्नमुद्धृत्य निष्पीडय रसमादाय तं ततः ॥ शीतं मधुयुतं कृत्वा पाययेतोदरामये ॥ ८० ॥

अरलूकी छालमें कमलकेशर मिलाकर (कूटकर) पिंडा बनावे फिर उसपर खँभारीके और कमलके पत्ते लपेटकर दृढ सूतसे बांध देवे ॥ ७९ ॥ ऊपरसे मिट्टी लपेट दे और अच्छी तरह अंगारोंमें (भरतेकी तरह) पकाले, ठीक पक जानेपर निकालकर, मिट्टी हटाकर, निचोड़कर उसका रस निकाल लेवे फिर उसे ठंढा करके शहद मिलाकर पिलावे (इसको उदरके विकार अतिसार रोगमें देना श्रेष्ठ है) ॥ ८० ॥

जीवंतीमेषशृंग्यादिष्वेवं द्रव्येषु साधयेत् ॥ ८१ ॥ तित्तिरं लुंचितं सम्यङ्निःकृष्टांत्रं तु पूरयेत् ॥ न्यग्रोधादित्वचां कल्कैः पूर्ववच्चा-वकल्पयेत् ॥ ८२॥ रसमादाय तस्याथ सुस्विन्नस्य समाक्षिकम् ॥ शर्करोपहितं शीतं पाययेच्चोदरामये ॥ ८३ ॥

जीवंती और मेढासींगी आदिका भी इसी पूर्वोक्त प्रकारसे पुटपाक बनाकर उपयोग करे ॥ ८१ ॥ तथा तीतरके पंख सब उखाड़कर उसकी आंतें निकालकर वटादिककी छालके कल्कसे भरदे फिर पहलेकी भांति पत्रादि लपेटकर भरता बनाले ॥ ८२ ॥ जब वह पकजावे तब उसे निचोडकर रस निकालले फिर उसे ठंढा करके खांड मिलाके और शहद मिलाके उदररोग (अतिसार) वालेको पिलादेवे ॥ ८३ ॥

लोध्रचंदनयष्ट्याह्वदार्वीपाठासितोत्पलान् ॥ तंडुलोदकसंपिष्टान्दी-र्घवृंतत्वगान्वितान् ॥ ८४ ॥ पूर्ववत्कूलितात्तस्माद्रसमादाय शीत-लम् ॥ मध्वाक्तं पाययेच्चैतत्कफपित्तोदरामये ॥ ८५ ॥ एवं प्ररोहैः कुर्वीत वटादीनां विधानवित् ॥ पुटपाकान्तथा योगं जांगलो-पहिताञ्छुभान् ॥ ८६ ॥

लोध, चंदन, मुलेठी, दारुहलदी, पाठा, सुपेदकमल इनमें अरलूकी छाल मिलाकर चावलोंके पानीसे पीसकर पहलेकी भांति पुटपाक पकाकर, रस

निचोड़कर, शीतल करके शहद मिलाकर कफपित्तके उदरविकार (अतिसार) में पिलावे (कई 'सितोत्पलान्' इसका अर्थ मिश्री और कमल ऐसा करतेहैं) ॥ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ इसी प्रकारसे वट आदिकी कोंपलों (कोमल पत्रों) का भी विधिज्ञ वैद्य यथायोग्य जंगली जीवोंके मांस युक्तकर पुटपाक करलेवें ॥ ८६ ॥

बहुश्लेष्मं सरक्तं च मंदवातं चिरोत्थितम् ॥
कौटजं फाणितं चापि हंत्यतीसारमोजसा ॥ ८७ ॥

बहुत कफ और रक्त सहित बहुत दिनका ऐसा अतिसार हो तथा वायु मंद हो (अधोवायु मंद हो) तो उसे कुडेका फाणित अपने पराक्रमसे दूरकर देता है (यह इस तरह बनता है कि कुडेकी छालका रस निचोडकर उसे इतना पकावे कि वह राब जैसा गाढा होजावे) ॥ ८७ ॥

अंबष्ठादिमधुयुतां पिप्पल्यादिसमन्विताम् ॥ पृश्निपर्णीबला-बिल्ववालकोत्पलधान्यकैः ॥ सनागरैः पिबेत्पेयां साधितामुदरा-मयी ॥ ८८ ॥ अरलुत्वक्प्रियंगुं च मधुकं दाडिमाङ्कुरान् ॥ आवाप्य पिष्ट्वा दधि तु यवागूं साधयेद्द्रवाम् ॥ ८९ ॥ एषा सर्वा-न्तीसारान्हंति पकानसंशयम् ॥ ९० ॥

पृश्निपर्णी, खरेंटी, बिल्व, नेत्रवाला, कमल और धनियां तथा सोंठ इनसे साधन की हुई यवागूमें अंबष्ठादिगण, शहद और पिप्पली आदि मिलाकर उदररोगी (अतिसार वाले) मनुष्यको पीनी चाहिये ॥ ८८ ॥ अथवा अरलूकी छाल, प्रियंगु, मुलेठी, अनारकी कोमल पत्ती और दही डालकर पतली यवागू बनावे ॥ ॥ ८९ ॥ यह यवागू सब प्रकारके पकेहुए अतिसारको निःसंदेह नाश करतीहै॥९०॥

रसांजनं सातिविषं खरबीजं कौटजं तथा ॥ धातकीं नागरं चैव पाययेत्तंडुलांबुना॥ सशूलं रक्तजं हंति योगो मधुसमन्वितः ॥९१॥ मधुकं बिल्वपेश्यश्च शर्करामधुसंयुताः ॥ अतीसारं निहन्युश्च शालिषष्टिकयोः कणाः ॥ ९२ ॥ तद्वल्लीढं मधुयुतं बदरीमूलमेव तु ॥ ९३ ॥ बदर्यर्जुनजंब्वाम्रशल्लकीवेतसत्वचः ॥ शर्कराक्षौद्रसं-

(श्लो० ८७) फाणितं मध्वाकृति अत्र कल्पना—कुटजत्वक्स्वरसं गृहीत्वा तावत्क्वाथयेद्यावत्फाणिताकृतिर्भवति (इति नि० स०) (श्लो० ८८) उदरामयी अतीसारी (इति डल्लनः)(श्लो०९१) "सशूलरक्तजं हंति योगो मधुसमन्वितः" इति वा पाठांतरं बहुषु पुस्तकेषु । परंतु "सशूलं रक्तजं हंति योगो मधुसमन्वितः" इति पाठो निबंधसंग्रहे कृत एव ।

युक्ताः पीता घ्नन्त्युदरामयम् ॥ ९४ ॥ एतैरेवं यवागूश्च मंडान्यूषांश्च कारयेत् ॥ पानीयानि च तृष्णासु द्रव्येष्वेतेषु बुद्धिमान् ॥ ९५ ॥

रसोत, अतीस, कुडाकी छाल और बीज, धायके फूल और सोंठ इनको चावलोंके पानीके साथ शहद मिलाकर पान करे तो यह योग शूलसहित रक्तज अतीसारको नष्ट करता है ॥ ९१ ॥ मुलेठी, बेलगिरी इनमें खांड और शहद मिलाकर चाटना तथा शालि और षष्टिक चावलोंके कण (कणी) को खांड और शहद मिलाकर चाटना अतिसारको नष्ट करता है ॥ ९२ ॥ इसी भांति बेरीकी जडको शहदके संग चाटना श्रेष्ठ है ॥ ९३ ॥ तथा बेरी, कुहा, जामुन, आंब, शल्लकी और वेतस इनकी छाल खांड और शहद मिलाके पीना उदरव्याधि (अतिसार) को नाश करता है ॥ ९४ ॥ तथा इन्हीं बदरी आदिकी त्वचाओंसे यवागू, मंड (मांड) या यूष बना सकते हैं तथा तृषा अधिक होनेमें बुद्धिमान् वैद्य इन्हीं द्रव्योंसे पीनेके लिये पानी बनालेवे ॥ ९५ ॥

कृतं शाल्मलिवृंतेषु कषायं हिमसंज्ञकम् ॥
निशापर्युषितं पेयं सक्षौद्रं मधुकान्वितम् ॥ ९६ ॥

तथा शेमलकी डालियोंका शीत कषाय बनाकर रातभर भिगोया हुआ शहद और मुलेठी मिलाकर पीवे (यह भी तृषायुक्त अतिसारमें श्रेष्ठ है) ॥ ९६ ॥

अतिसारमें दुग्धकी व्यवस्था।

विबद्धवातविट्शूलपरीतः सप्रवाहिकः ॥ सरक्तपित्तश्च पयः पिबेत्तृष्णासमन्वितः ॥ ९७ ॥ यथामृतं तथा क्षीरमतीसारेषु पूजितम् ॥ चिरोत्थितेषु तत्पेयमपां भागैस्त्रिभिः शृतम् ॥ दोषशेषं हरेत्तद्धि तस्मात्पथ्यतमं स्मृतम् ॥ ९८ ॥

जिसके वायु (अपान वायु) और दस्त बंद हों (थोडा थोडा दस्त आवे) और शूल तथा प्रवाहिका (मरोडे) हों तथा रक्तपित्त हो या तृषा हो ऐसी अवस्थामें अतिसारके रोगीको दूध पीना उचित है ॥ ९७ ॥ बहुत दिनके पुराने अतिसारोंमें दूध अमृतके समान होता है यह इस भांति पीना चाहिये कि तीन भाग पानी और एक भाग दूध इसे खूब औटाकर पीवे यह शेष रहे हुए दोषको निकाल देता है या नष्ट कर देता है इस लिये यह परम पथ्य कहा है ॥ ९८ ॥

(श्लो० ९५) एतेषु द्रव्येषु च तृष्णासु बुद्धिमान्पानीयानि पातुं योग्यानि कारयेदित्यन्वयः।

अतिसारकी चिकित्सामें अन्य उपदेश ।

हितः स्नेहविरेको वा वस्तयः पिच्छिलाश्च ये ॥
पिच्छिलास्वरसे सिद्धं हितं च घृतमुच्यते ॥ ९९ ॥

अथवा इस अवस्थामें स्नेह (एरंडके तैलादि) का विरेचन देना हित है अथवा पिच्छिलवस्ति देना भी हित है अथवा पिच्छिल द्रव्यों (अरलू, शेमल आदि) के स्वरसमें पकाया हुआ घृत हित है ॥ ९९ ॥

शकृता यस्तु संसृष्टमतिसार्येत शोणितम् ॥ प्राक्पश्चाद्वा पुरीषस्य सरुक्स परिकर्तिकः ॥ १०० ॥ क्षीरिशुंगाश्रृतं सर्पिः पिबेत्सक्षौद्रशर्करम् ॥ दार्वीत्वक्पिप्पलीशुंठीलाक्षाशक्रयवैर्घृतम् ॥ १०१ ॥ संयुतं भद्ररोहिण्या पक्वं पेयादिमिश्रितम् ॥ त्रिदोषमप्यतीसारं पीतं हंति सुदारुणम् ॥ १०२ ॥

जिसके दस्तमें मिलाहुआ या दस्तसे पहले या पीछे दर्दसे और कतरनीसी वेदनासे रुधिर आवे इसे परिकर्तिका (काटनी) कहते हैं ॥१००॥ इसमें चाहिये कि क्षीरिशुंगा (वट आदिकी कोंपलोंसे) सिद्ध किये हुए घृतमें शहद, खांड मिलाके पीवे अथवा दारुहलदी, तज, पीपल, सोंठ, लाख और इन्द्रजव और कुटकी इनसे सिद्ध किया घृत पेया आदिमें मिलाकर पीवे इसके पीनेसे दारुण सन्निपातज अतिसार भी नष्ट होजाता है ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

गौरवे वमनं पथ्यं यस्य स्यात्प्रबलः कफः ॥
ज्वरे दाहे सविड्बंधे मारुताद्रक्तपित्तवत् ॥ १०३ ॥

जिसके कफ अति प्रबल हो, गुरुता हो, ज्वर, दाह और विड्बंध हो (खुलकर दस्त नहीं आते हों) तो उसे वातज अधोगामी रक्तपित्तकी भांति वमन कराना उचित है (वायुके अधोगामी रक्तपित्तमें वमन करानेका वर्णन अगाडी रक्तपित्तके प्रतिषेधमें आवेगा) ॥ १०३ ॥

संपक्वे बहुदोषे च विबंधे मूत्रशोधनैः ॥ कार्यमास्थापनं क्षिप्रं तथा चैवानुवासनम् ॥ १०४ ॥ प्रवाहेण गुदभ्रंशे मूत्राघाते कटिग्रहे ॥

(श्लो० ९) "पिच्छिलास्वरसे सिद्धम्" इत्यत्र 'पिच्छिलस्वरसे सिद्धम्' इति पाठः । पिच्छिलद्रव्याणां स्वरसे सिद्धं घृतमित्यर्थः । पिच्छिला अरलुशाल्मलीप्रभृतयः (इति नि० सं०) (श्लो०१०१) अस्योत्तरार्द्धमग्रिमश्लोके नियोज्यम् । (श्लो० १०३) मारुताद्रक्तपित्तवदिति–मारुतोद्धृते अधोगमनशीले रक्तपित्ते यद्वद्वमनं हित तद्वदत्रापि वमनं पथ्यमित्यर्थः ।

मधुराम्लशृतं तैलं सर्पिर्वाप्यनुवासनम् ॥ १०५ ॥ गुदपाकस्तु पित्तेन यस्य स्यादहिताशिनः ॥ तत्र पित्तहराः सेकास्तत्सिद्धाश्चानुवासनाः ॥ १०६ ॥

बहुत दोषवाले विबन्धयुक्त पके अतिसारमें मूत्रशोधन (गोक्षुरादि) द्रव्योंसे शीघ्रही आस्थापनवस्ति करनी चाहिये तथा अनुवासनवस्ति करनी ॥ १०४ ॥ किनछनेसे गुदा बाहर निकल आवे, मूत्र रुकजावे, कमर अकड जावे ऐसी अवस्थामें मधुर द्रव्यों (काकोल्यादि) तथा अम्ल (बीजपूरादि) द्रव्योंसे सिद्ध किये तैल अथवा घृतसे अनुवासनवस्ति करे ॥ १०५ ॥ और जोकि, अहित भोजन करनेवालेके पित्तसे गुदा पकजावे तो वहां पित्तनाशक द्रव्योंका सेचन करना और उन्हींसे सिद्ध किये स्नेहसे अनुवासन करना ॥ १०६ ॥

दधिमंडसुराबिल्वसिद्धं तैलं समारुते ॥ भोजने च हितं क्षीरं कच्छुरामूलसाधितम् ॥ १०७ ॥ अल्पाल्पं बहुशो रक्तं सरुग्यं उपवेश्यते ॥ यदा वायुर्विबद्धश्च पिच्छावस्तिस्तदा हितः ॥१०८॥ प्रायेण गुददौर्बल्यं दीर्घकालातिसारिणाम् ॥ भवेत्तस्माद्धितं तेषां गुदे तैलावचारणम् ॥ १०९ ॥

यदि वायुसहित अतिसार हो तो दहीका जल, मदिरा और बिल्व इनसे सिद्ध किये तैलसे अनुवासन करे और कच्छुराकी जडसे पकाया दूध भोजनमें देवे ॥ १०७ ॥ और जो थोडा २ बहुतवार रक्त आता हो और अपान वायु बंद हो तो वहां पिच्छिलवस्ति देना हित होता है ॥ १०८ ॥ जिनके बहुत दिनके अतिसारसे गुदा दुर्बल पडगई हो उनकी गुदामें तैलका अवचारण करना चाहिये (अर्थात् तैलके फोहे रखने चाहिये) ॥ १०९ ॥

अतिसारमें आहार ।

कपित्थशाल्मलीफंजीवनकार्पासिदाडिमाः ॥ यूथिका कच्छुरा शेलुः शणश्चूच्चूः सदाधिकाः ॥ ११० ॥ शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहती कंटकारिका ॥ बलाश्वदंष्ट्राबिल्वानि पाठानागरधान्यकम् ॥ १११ ॥ एष आहारसंयोगो हितः सर्वातिसारिणाम् ॥ तिलकल्को हितश्चात्र मौद्गो मुद्गरसस्तथा ॥ ११२ ॥

कैथ, शेमल, फञ्जी (भारंगी), वनके कपासकी कली, यूथिका (पाठा) (कई यहां 'पूतिका' पाठ मानकर पोईका साग कहते हैं), कच्छुरा (यहांपर

शिंबी समझना), शेलु (लहेसुवा), शणकी डोडी तथा चुच्चूका शाक इन्हें दहीके संग या दहीमें पकाके देवे ॥ ११० ॥ शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बडी कटेली, छोटी कटेली, खरेंटी, गोखरू, बिल्व, पाठा, सोंठ और धनियाँ इनको आहारके योगमें देना सब प्रकारके अतिसारवालोंको हितकारक है तथा तिलका कल्क, मूंगका कल्क और मूंगोंका रस (जूस) ये भी यहां हितकारक हैं ॥ १११ ॥ ११२ ॥

रक्तातिसारकी उत्पत्ति ।

पित्तातिसारी यो मर्त्यः पित्तलानि निषेवते ॥
पित्तं प्रदुष्टं तस्याशु रक्तातीसारमावहेत् ॥
ज्वरं शूलं तृषां दाहं गुदपाकं च दारुणम् ॥ ११३ ॥

पित्तातिसारवाला मनुष्य पित्तकारक वस्तु सेवन करे तो शीघ्र उसका पित्त अधिक दूषित होकर रक्तातिसार उत्पन्न करदेता है तथा ज्वर, शूल, तृषा, दाह और दारुण गुदपाक उत्पन्न करदेता है ॥ ११३ ॥

(वक्तव्य) कभी पित्तातिसारके विना भी अति पित्तकारक आहार, विहारसे पित्त वा रक्त कुपित होकर रक्तातिसार होजाता है ॥

रक्तातिसारका यत्न ।

यो रक्तं शकृतः पूर्वं पश्चाद्वा प्रतिसार्यते ॥ सपल्लवैर्वटादीनां ससर्पिः साधितं पयः ॥ ११४ ॥ पिबेत्सशर्कराक्षौद्रमथवाप्यभिमथ्य तत् ॥ नवनीतमथो लिह्यात्तक्रं चानु पिबेत्ततः ॥ ११५ ॥

जिसके दस्तसे पहले या पीछे रुधिर आताहो वह वट आदिके कोमल पत्तोंसे सिद्ध कियाहुआ घृतयुक्त दूध, खांड और शहद मिलाकर पीवे अथवा उस दूधको मथकर मक्खन निकालले और उस मक्खनको (खांड, शहद मिलाके) चाटे और ऊपरसे वही छांछ पीलेवे ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

पियालशाल्मलीप्लक्षशल्लकीतिनिशत्वचः ॥ क्षीरे विमृदिताः पीताः सक्षौद्रा रक्तनाशनाः ॥ ११६ ॥ मधुकं शर्करां लोध्रं पयस्यामथ सारिवाम् ॥ पिबेच्छागेन पयसा सक्षौद्रां रक्तनाशिनीम् ॥ ॥ ११७ ॥ मंजिष्ठां सारिवां लोध्रं पद्मकं कुमुदोत्पलम् ॥ पिबेत्पाद्मं च दुग्धेन छागेनासृक्प्रशांतये ॥ ११८ ॥

(श्लो० ११७) पयस्या अर्कपुष्पी (इति डल्हनः) अन्ये क्षीरकाकोलीमाहुः । (श्लो० ११८) पाद्मं पद्मा भार्ङ्गी तद्भवं च अथवा पद्मबीजम् ।

चिरोंजी, शेमल, पिलखन, शल्लकी और तिनिश इनकी छाल दूधमें मसलकर, शहद मिलाकर पीनेसे रक्तातिसार बन्द होजाताहै ॥ ११६ ॥ अथवा मुलेठी, खांड, लोध, क्षीरकाकोली और सारिवा इनको बकरीके दूधके साथ शहद मिलाकर पीवे ये रक्तातिसारको नष्ट करता है ॥ ११७ ॥ अथवा मँजीठ, सारिवा, लोध, पद्माख, नीलोफर, कमल और कमलफल (कमलगट्टे) इनका कल्क बकरीके दूधसे पीवे तो रक्तातिसार शांत हो ॥ ११८ ॥

शर्करोत्पललोध्राणि समंगा मधुकं तिलाः ॥ तिला मोचरसो लोध्रं तथैव मधुकोत्पलम् ॥ ११९ ॥ कच्छुरा तिलकल्कश्च योगाश्चत्वार एव तु ॥ आजेन पयसा पेयाः सरक्ते मधुसंयुताः ॥ १२० ॥

१ खांड, कमल, लोध, लज्जालू, मुलेठी और तिल । २ तिल, मोचरस और लोध । ३ मुलेठी और कमल । ४ कच्छुरा और तिलका कल्क ये चार योग शहद मिलाकर बकरीके दूधके संग लेनेसे रक्तातिसारमें लाभ होता है ॥११९॥१२० ॥

द्रवे सरक्ते स्रवति बालबिल्वं सफाणितम् ॥ सक्षौद्रतैलं प्रागेव लिह्यादाशु हितं हि तत् ॥ १२१ ॥ कोशकारं घृते भृष्टं लाजचूर्णं सिता मधु ॥ सशूलं रक्तपित्तोत्थं लीढं हंत्युदरामयम् ॥ १२२ ॥ बिल्वमध्यं समधुकं शर्कराक्षौद्रसंयुतम् ॥ तंडुलांबुयुतो योगः पित्तरक्तोत्थितं जयेत् ॥ १२३ ॥ गुदपाके च ये उक्तास्तेऽत्रापि विधयः स्मृताः ॥ रुजायां वा प्रशाम्यंत्यां पिच्छावस्तिर्हितो भवेत् ॥ १२४ ॥

रुधिरसहित पतले दस्त आते हों तो कच्चा बिल्व, फाणित (राब), शहद और तैल इन्हें पहले (भोजनसे पहले चाटना शीघ्रही हितकारक होता है ॥ ॥ १२१ ॥ अथवा कोशकार (एक प्रकारकी ईख) (कई रेशमका कोया बताते- हैं) घृतमें भूनकर धानकी खीलका चूर्ण, मिश्री और शहद मिलाकर चाटना शूलयुक्त रक्तपित्तसे खून आनेके अतिसारको बंद करता है ॥ १२२ ॥ अथवा बेलगिरी, मुलेठी, खांड, शहद इनको मिलाकर चावलोंके पानीसे लेवे यह योग पित्तरक्तसे उपजे रक्तातिसारको बंद करता है ॥ १२३ ॥ और गुदपाकमें जो

(श्लो० १२१) प्रागेवेति-भोजनात्प्राक् (इति डल्हनः) (श्लो० १२२) कोशकारः इक्षुभेदः (इति डल्हनः) (श्लो० १२४) अत्र "वा"-शब्देन रुजायामप्रशाम्यंत्यामपि पिच्छावस्तिर्देय इति ।

जो विधि कही हैं वे भी यहांपर करनी हितकारक होती हैं और रोगके शांत होने पीछे पिच्छावस्ति देनी हितकारक होती है ॥ १२४ ॥

रक्तविड्दोषबहुलं दीप्ताग्निर्योऽतिसार्यते ॥ विडंगत्रिफलाकृष्णाकषायैस्तं विरेचयेत् ॥ १२५ ॥ अथवैरंडसिद्धेन पयसा केवलेन वा ॥ यवागूर्वितरेत्तस्य वातघ्नैर्दीपनैः कृता ॥ १२६ ॥

जो मनुष्य दीप्ताग्निवाला हो और उसके रक्त दस्त बहुत दोषके आवें उसे विडंग, त्रिफला और पीपलके क्वाथमें विरेचन देवे ॥ १२५ ॥ अथवा एरंडसे सिद्ध किये केवल दूधसे विरेचन देवे और उसे वायुनाशक दीपन द्रव्योंसे सिद्ध की हुई यवागू खानेको दे ॥ १२६ ॥

(वक्तव्य) अरंडसे सिद्ध कियेहुए पर डल्हनमिश्रजी तो एरंडकी जडसे सिद्ध किया दुग्ध लिखते हैं (और कई अरंडके तैलसे औटाया हुआ दूध मानते हैं) ॥

मलक्षीणका यत्न ।

दीप्ताग्निर्निःपुरीषो यः सार्यते फेनिलं शकृत् ॥ स पिबेत्फाणितं शुंठी दधि तैलं पयो घृतम् ॥ १२७ ॥ स्विन्नानि गुडतैलाभ्यां भक्षयेद्बदराणि च ॥ सुस्विन्नान्पिष्टवद्वापि समं बिल्वशलाटुभिः ॥ दध्नोपयुज्य कुल्माषान्श्वेतामनुपिबेत्सुराम् ॥ १२८ ॥ शशमांसं सरुधिरं समंगां सघृतं दधि ॥ खादेद्द्विपाच्य सेवेत मृद्वन्नं शकृतः क्षये ॥ १२९ ॥ संस्कृतो यमके माषयवकोलैरसः शुभः ॥ भोजनार्थं च दातव्यो दधिदाडिमसाधितः ॥ १३० ॥ विडं बिल्वशलाटूनि नागरं चाम्लपेषितम् ॥ दध्नः सरश्च यमके

(श्लो० १२५) रक्तविड्विबद्धपुरीषदोषः बहुलमिति दोषशब्दोय पुरीषवचनः (इति नि० सं०)

(श्लो० १२६) अथवैरंडसिद्धेनेति—एरंडमूलसिद्धेन केवलेन क्षीरेण विरेचयेत् । (इति डल्हनः) अन्ये त्वेरंडतैलसिद्धेनेत्याहुः, तैलस्य विरेचनत्वात् । "अथवैरंडसिद्धेन पयसा केवलेन वा" इत्यत्र 'अथवैरंडतैलेन पयसा केवलेन वा' इति पाठान्तरमाहुः । तत्र योगद्वयम् । (श्लो० १२८) बदरः पुंलिंगः कोलवृक्षे । बदरं नपुंसक कार्पासबीजे (इति श० स्तो०) गुडतैलाभ्यां स्विन्नानि तानि भक्षयेत् अथवा स्विन्नानि तानि गुडतैलाभ्यां भक्षयेत् । कुल्माषान् यवपिष्टमयान् । श्वेता सुरा पैष्टी । कुल्माषान् दध्ना सहोपयुज्य पैष्टी सुरां पिबेदित्यर्थः (इति नि० सं०)

(श्लो० १३०) यमके घृततैले । रसोत्र क्वाथः । माषादियूषो वा ।

भृष्टो वर्चःक्षये हितः ॥ १३१ ॥ सशूलं क्षीणवर्चा यो दीप्ताग्निर-तिसार्यते ॥ स पिबेद्दीपनैर्युक्तं सर्पिः संग्राहकैः सह ॥ १३२ ॥

जिस मनुष्यका मल क्षीण होगया हो और झागसे किंचित् दस्त आवें और अग्नि दीप्त हो तो वह राब, सोंठ, दही, तिलका तैल, दूध, घृत इन्हें यथायोग्य पीवे ॥ १२७ ॥ अथवा गुड, तैलमें सिजायेहुए बदर (बेर) सेवन करे (बदर नपुंसकलिंग कर्पासबीजका नाम है और पुँल्लिङ्ग हो तो बेरका नाम है इससे कई यहां कर्पासबीज अर्थात् बिनोलोंको सिजाकर उनकी गिरी सेवन करे ऐसा मानते-हैं और यह ग्राही भी है तथा वायुनाशक भी है) तथा खूब सिजाईहुई जवकी बाकली (जौ सीजकर पिट्ठीसी होजावे उसको) कच्चे बिल्व और दहीके संग खावे और ऊपरसे श्वेता (पैष्टी) मद्य पीवे ॥ १२८ ॥ अथवा शश (सुस्से) का मांस रुधिरयुक्त और लज्जालू, घृत और दही इन्हें पकाकर खावे तथा मल-क्षीण मनुष्य कोमल अन्न खावे ॥ १२९ ॥ अथवा उडद, जव, बेर इनका रस (या मांसरस) इनको यमक (घृत, तैल) से संस्कार देकर दही, अनार इनसे सिद्ध करके भोजनके लिये देवे ॥ १३० ॥ अथवा विष्ठाके क्षय होनेपर विड-लवण और कच्चे बिल्व, सोंठ और दहीके ऊपरकी मलाई इनको खटाई (या कांजीमें पीसकर) (बड़ेसे बनाकर) घृत, तैलमें भूनकर (पकाकर) देने हित-कारक होतेहैं ॥ १३१ ॥ और मलक्षीण वालेको शूल हो और अग्नि दीप्त हो तो दीपनद्रव्योंसे युक्त करके संग्राही औषधोंके संग घृतपान करे ॥ १३२ ॥

प्रवाहिकाकी निरुक्ति और लक्षण ।

वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासं नुदत्यधस्तादहिताशनस्य ॥ प्रवा-हमाणस्य मुहुर्मलाक्तं प्रवाहिकां तां प्रवदंति तज्ज्ञाः ॥ १३३ ॥ प्रवाहिका वातकृता सशूला पित्तात्सदाहा सकफा कफाच्च ॥ स-शोणिताः शोणितसंभवास्तु ताः स्नेहरूक्षप्रभवा मतास्तु ॥ १३४ ॥

जब मनुष्य अहित भोजन करता है तब उसके वायु बढकर संचित हुए कफादिको वारवार दस्तमें मिलाकर किनछनेके साथ निकालता है इसे इस विद्याके जाननेवाले वैद्य प्रवाहिका अर्थात् निवाही या मरोडे कहते हैं (अर्थात्

(श्लो० १३३) निचितं बलासमित्यत्र बलासमुपलक्षणं तेन पित्तमपीत्युक्तं वा निचितमिति ज्ञेयम् (इति नि० सं०) (श्लो० १३४) तत्र रूक्षप्रभवा वातजा । स्नेहप्रभवा कफजा तु शब्दात् तीक्ष्णोष्णप्रभवा पित्तरक्तजा च (इति भा० मि०)

अयोग्य भोजनसे पक्वाशय (अँतडियों) में वायु बढजाता है तब वारवार कफसहित दस्त मरोडसे आतेहैं इसे प्रवाहिका कहते हैं) ॥ १३३ ॥ (प्रवाहिका ४ प्रकारकी होती है वायुकी, पित्तकी, कफकी और रक्तकी) इनमें शूलयुक्त हो तो वायुकी समझनी और दाहयुक्त हो तो पित्तकी और कफयुक्त हो तो कफकी तथा रुधिर सहित हो तो रुधिरकी समझनी चाहिये ये सभी दो प्रकारसे होतीहैं एक स्निग्धतासे, दूसरी रूक्षतासे अर्थात् स्निग्ध अथवा रूक्ष ॥ १३४ ॥

(वक्तव्य) ऊपर संचितकफको वायु प्रेरितकरके मलयुक्त प्रवाहण करना लिखाहै फिर पित्तज और रक्तज कैसे ? इसका समाधान यह है कि बलास अर्थात् कफ उपलक्षणमात्र लिखा है किन्तु इससे पित्तरुधिरादि भी अपने कारणसे निचितहुए वायुसे प्रेरित होतेहैं ऐसा जानना (देखो टिप्पणी)

प्रवाहिकाकी चिकित्साका क्रम ।

तासामतीसारवदादिशेच्च लिंगं क्रमं चामविपक्वतां च ॥ १३५ ॥
न शांतिमायाति विलंघनैर्या योगैरुदीर्णा यदि पाचनैर्वा ॥ ताः
क्षीरमेवाशु शृतं निहंति तैलं तिलाः पिच्छिलवस्तयश्च ॥१३६॥

यद्यपि प्रवाहिकाके लक्षण पूर्व लिखे हैं परन्तु विशेष और सब लक्षण अतिसारके समान समझने चाहिये अर्थात् वातप्रवाहिकामें वातातिसारके तुल्य और पित्तप्रवाहिकामें पित्तातिसारके तुल्य प्रायः अन्य सब लक्षण होते हैं इत्यादि और क्रियाका क्रम भी तथा आम अथवा पक्व है यह भी अतिसारहीके अनुसार जानलेना ॥ १३५ ॥ यदि बढी हुई प्रवाहिका लंघनों और पाचनयोगोंसे शांत न हो तो औटाये हुए दुग्धसे शीघ्र शांत हो जातीहै तथा तैलका उपयोग और तिलोंका उपयोग तथा पिच्छलवस्ति ये भी हितकारक हैं (प्रयोजन यह है कि प्रथम लंघन कराना फिर पाचनयोग देने चाहिये और यदि इनसे शांत न हो तो पाचनद्रव्योंसे पकायाहुआ दुग्ध देवे तथा तैल, तिल और पिच्छलवस्तिका उपयोग करे) ॥ १३६ ॥

आर्द्रैः कुशैः संपरिवेष्टितानि वृंतान्यथार्द्राणि हि शाल्मलीनाम्॥
पक्वानि सम्यक्पुटपाकयोगेनापोथ्य तेभ्यो रसमाददीत॥१३७॥
क्षीरं शृतं तैलहविर्विमिश्रं कल्केन यष्टीमधुकस्य वापि ॥
वस्तिं विदध्याद्भिषगप्रमत्तः प्रवाहिकामूत्रपुरीषसंगे ॥ १३८ ॥

द्विपंचमूलीक्वथितेन शूले प्रवाहमाणस्य समाक्षिकेण ॥
क्षीरेण चास्थापनमर्थ्यमुक्तं तैलेन युंज्यादनुवासनं च ॥ १३९ ॥

शेमलके गीले डंठलोंको (जरा कुचलकर) गीली कुशासे लपेटकर (ऊपर मिट्टी लगाकर) पुटपाकके विधानसे पकाकर उन्हें निचोड़कर रस निकाल लेवे ॥ १३७ ॥ और मुलेठीके कल्कसे औटायाहुआ दूध, तैल और घृत युक्त करके प्रवाहिकामें तथा मल और मूत्र रुक जानेमें सावधान वैद्य वस्ति देवे (पिच्छिल वस्ति देवे) ॥ १३८ ॥ अथवा दशमूलसे पकायेहुए दूधमें शहद मिलाकर शूलयुक्त प्रवाहिकामें आस्थापनवस्ति करना तथा इस दशमूलके ही क्वाथसे सिद्ध किये तैलसे अनुवासन करना श्रेष्ठ है ॥ १३९ ॥

वातघ्नवर्गे लवणेषु चैवं तैलं च सिद्धं हितमन्नपाने ॥
लोध्रं विडं बिल्वशलाटु चैवं लिह्याच्च तैलेन कटुत्रिकालम्॥१४०॥
दध्ना ससारेण समाक्षिकेण भुंजीत निःसारकपीडितस्तु ॥
सुतप्तकुप्यक्वथितेन वापि क्षीरेण शीतेन मधुप्लुतेन ॥ १४१ ॥

वायुनाशक द्रव्यों और लवणोंसे सिद्ध कियाहुआ तैल अन्नके साथमें तथा पानार्थमें देना हितकारक है अथवा लोध, विड लवण और कच्चा बिल्व इनमें त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पीपल) मिलाकर तैलसे युक्त करके चाटे ॥ १४० ॥ और सूखे मरोडे हों तो मलाईयुक्त दहीमें शहद मिलाकर इसके संग भोजन करे अथवा सुवर्ण या चांदीसे अन्य तैजसादि धातुके कलश या पात्रमें औटायेहुए दूधको शीतल करके शहद मिलाकर उसके संग भोजन करे ॥ १४१ ॥

शूलार्दितो व्योषविदारिगंधासिद्धेन दुग्धेन हिताय भोज्यः ॥
वातघ्नसंग्राहकदीपनीयैः कृतान्रसांश्चाप्युपभोजयेच्च ॥ १४२ ॥

जिसके प्रवाहिकामें शूलकी पीडा अधिक हो, उसे त्रिकटु और विदारिगंधा (शालपर्णी) इनसे सिद्ध किये दुग्धके संग भोजन करावे अथवा वायुनाशक, ग्राही, दीपन ऐसे द्रव्योंसे संस्कार कियेहुए रस (लवादिके मांसका रस) भोजन करावे ॥ १४२ ॥

(श्लो० १३९) द्विपचमूली इति–पंचमूलद्वयं दशमूलमित्यर्थः । तत्क्वथितेन क्षीरेणास्थापनं तत्क्वथितेन तैलेन चानुवासनं युंज्यादित्यर्थः (श्लो० १४०) कटुत्रिकाल कटुत्रिकप्रधानं त्रिकटुयुक्तमिति भावार्थः (श्लो० १४१) निःसारकः प्रवाहिकाभेदः पुरीषक्षयापराह्वयः (इति डल्लनः) सुतप्तकुप्य इति–सुतप्ते कुप्ये स्वर्णरूप्यान्यत्तैजसादिधातुपात्रे क्वथितेन क्षीरेणेत्यर्थः । कुप्यं स्वर्णरूप्याभ्यामन्यस्मिन् तैजसादौ धातौ (इति श० स्तो०) (श्लो० १४२) रसान् मांसरसान् ।

खादेच्च मत्स्यान्त्रसमाप्नुयाच्च वातघ्नसिद्धं सघृतं सतैलम् ॥
एणाव्यजानां तु वटप्रवालैः सिद्धानि सार्द्धं पिशितानि खादेत् १४३॥
मेध्यस्य सिद्धं त्वथवापि रक्तं वस्तस्य दध्ना घृततैलयुक्तम् ॥
खादेत्प्रयुक्तैः शिखिलावजैश्च भुंजीत यूषैर्दधि भिश्च मुख्यैः॥१४४॥
माषान्सुसिद्धान्घृतमंडयुक्तान्खादेच्च दध्ना मरिचोपदंशान् ॥ १४५ ॥

प्रवाहिका रोगवाला मछली खावे अथवा वायुनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किया रस (मांसरस), घृत, तैल सहित भोजन करे अर्थात् हिरन, भेड, बकरी इनके मांसको वडकी कोंपलोंके संग सिद्ध करके खावे ॥ १४३ ॥ अथवा अच्छे बकरेके रुधिरको घृत, तैल युक्तकर सिद्ध करके दहीका संस्कार देकर भोजन करे अथवा मोर या लवाके मांसके यूषोंको दहीके संग खावे ॥ १४४ ॥ अथवा उडदोंको खूब सिजाकर घृतका मंड (घृतका ऊपरका भाग) युक्त करके (अर्थात् घृतमंडसे छौंककर या घृतमंड मिलाकर) और कालीमिरच आदि डालकर उन्हें दहीके संग खावे ॥ १४५ ॥

महारुजे मूत्रकृच्छ्रे भिषग्वस्तिं प्रदापयेत् ॥ पयोमधुघृतोन्मिश्रं मधुकोत्पलसाधितम् ॥ १४६ ॥ स वस्तिः शमयेत्तस्य रक्तदाहमथो ज्वरम् ॥ मधुरौषधसिद्धं च हितं तस्यानुवासनम् ॥१४७॥
रात्रावहनि वा नित्यं रुजार्तो यो भवेन्नरः ॥ यथा यथा सतैलैः स्याद्वातशांतिस्तथा तथा ॥ १४८ ॥ प्रशांते मारुते वापि शांतिं याति प्रवाहिका ॥ तस्मात्प्रवाहिकारोगे मारुतं शमयेद्भिषक्॥१४९॥

महारोग (निःसारक अर्थात् सूखे मरोडे हों) अथवा मूत्रकृच्छ्र हो (मूत्र रुकताहो) तो वैद्यको वस्तिकर्म करना चाहिये । मुलेठी, कमल इनसे सिद्ध किये दूधमें शहद और घृत मिलाकर वस्ति (आस्थापन वस्ति करना)॥ १४६॥ यह वस्ति रोगीके रक्त, दाह और ज्वरको शांत करतीहै अथवा मधुरद्रव्योंसे सिद्ध किये तैलसे अनुवासन वस्ति करे ॥ १४७ ॥ रातमें या दिनमें या नित्य जो मनुष्य पीडित हो ज्यों ज्यों उसके (वस्तिद्वारा) तैलका उपयोग हो त्यों त्यों उसके वायुकी शांति होतीहै ॥ १४८ ॥ और वायुके शांत होनेसे प्रवाहिका (और

(श्लो० १४४) मेध्यस्य यज्ञार्हस्य पुष्टस्य वस्तस्य रक्तं घृततैलभृष्टदध्ना संस्कृतं खादेत् रक्त स्त्यानं रक्तं खादेदिति संबंधः (इति नि० सं०) (श्लो० १४५) मरिचोपदंशान् मरिचावचूर्णितान् (इति डल्हनः) (श्लो० १४६) महारुजे अत्र महारुजाकथनेन रूक्षप्रवाहिकाग्रहणम् ।

इसके उपद्रवों) में शांति होजातीहै इससे प्रवाहिकाके रोगमें वैद्यको चाहिये कि वायुकी शांतिके यत्न करे ॥ १४९ ॥

पाठाजमोदा कुटजस्य बीजं शुंठीसमा मागधिकाश्च पिष्टाः ॥
सुखांबुपीताः शमयंति रोगं मेध्यान्नसिद्धं सघृतं पयो वा ॥१५०॥
शुंठी घृतं सक्षवकं सतैलं विपाच्य लीढ्वामयमाशु हन्यात् ॥१५१॥
गजाशनाकुंभिकदाडिमानां रसैः कृते तैलघृते सदध्नि ॥
बिल्वान्विता पथ्यतमा यवागूर्धारोष्णदुग्धस्य तथा च पानम्१५२
लघूनि पथ्यान्यथ दीपनानि स्निग्धानि भोज्यान्युदरामयेषु ॥
हिताय नित्यं वितरेद्धि भोज्यं योगांश्चतांस्तान्भिषगप्रमत्तः॥१५३॥

पाठा, अजमोदा, इन्द्रजौ, सोंठ और पीपल इन सबको समान भाग लेकर पीसले (चूर्ण बनाले) इसे निवाये पानीके संग पीवे तो प्रवाहिका रोग शांत होजाताहै अथवा मेध्यअन्न (जव) से सिद्ध किये दूधमें घृत युक्त करके पीवे (कई 'मेध्यांडसिद्ध' ऐसा पाठ मानकर बकरेके अण्डोंसे सिद्ध किया दूध घृत युक्त पीवे ऐसा अर्थ करते हैं ॥ १५० ॥ अथवा सोंठ, घृत और क्षवक (छिकनी), तैल इन्हें पकाकर चाटे इससे प्रवाहिका शीघ्र नष्ट होवे ॥ १५१ ॥ तथा गजाशन (कैथ कोई शल्लकी मानतेहैं) और कुंभिका (जलकुंभी या नागकेशर) और अनार इनके रससे तैल, घृत और दही युक्त तथा बिल्व सहित बनाईहुई यवागू इसमें अतिपथ्य है अर्थात् श्रेष्ठ है तथा धारोष्ण दूध पीना भी पथ्य है ॥ १५२ ॥ और प्रवाहिका, अतिसार आदि पेटके रोगोंमें हलके पथ्य और दीपन तथा स्निग्ध भोजन करने नित्य हितकारक हैं तथा वैद्यको उचित है कि सावधानीसे ऐसे ही अन्य योग्य प्रयोग और भोजन रोगीके हितके लिये तजवीज करे ॥ १५३ ॥

यवागूभोजन ।

तृष्णापनयनी लघ्वी दीपनी वस्तिशोधनी ॥
ज्वरे चैवातिसारे च यवागूः सर्वदा हिता ॥ १५४ ॥

ज्वर और अतिसारमें सदा यवागू भोजन करना हितकारक है यह यवागू तृषाको शांत करती है, हलकी है, दीपनी है तथा वस्तिको शोधन करने वाली है ॥ १५४ ॥

अन्य उपदेश ।

रौक्ष्याज्जाते क्रियां स्निग्धां रूक्षां स्नेहनिमित्तजे ॥ भयजे

सांत्वनापूर्वा शोकजे शोकनाशिनी ॥ १५५ ॥ विषार्शःकृमिसंभूते हिता चोभयशर्मदा ॥ छर्दिमूर्च्छातृडाद्यांश्च साधयेदविरोधतः ॥ १५६ ॥

जो रूक्षतासे उत्पन्न हुआ अतिसार या (प्रवाहिका) हो उसमें स्निग्ध क्रिया करनी चाहिये और जो स्नेहसे उपजा हो उसकी रूक्ष क्रिया करनी उचित है भयजनित अतिसारमें उसे निर्भय करना और शोकजनितमें शोकनाशक क्रिया करे ॥ १५५ ॥ विषजनित तथा बवासीरसे या कृमिसे अतिसार हो तो दोनोंकी शांति करे (विषादिकी भी और अतिसारकी भी शांतिका यत्न करे) तथा छर्दि मूर्च्छा, तृषा आदि हों तो उन्हें विरोध-रहित यत्नसे साधन करे ॥ १५६ ॥

समवाये तु दोषाणां पूर्वं पित्तमुपाचरेत् ॥
ज्वरे चैवातिसारे च सर्वत्रान्यत्र मारुतम् ॥ १५७ ॥

यदि दोषोंका समवाय अर्थात् मिश्रीभाव या सन्निपात हो तो ज्वर और अतिसारमें पहले पित्तका उपचार करना चाहिये और अन्य सब रोगोंमें प्रथम वायुका उपचार करना योग्य है ॥ १५७ ॥

अतिसारमुक्तके लक्षण ।

यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति ॥
दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य स्थितस्तस्योदरामयः ॥ १५८ ॥

जिसके दस्तके आये विना मूत्र आने लगे और अधोवायु भी विना दस्त आये ठीक ठीक निकलने लगे, अग्नि दीप्त होतीजावे और कोठा हलका हो तो जानलेना चाहिये कि इसके अतिसार (दस्त) बंद होगये (या बंद होनेवाले हैं) ॥१५८॥

(वक्तव्य) ये पूर्वोक्त लक्षण अतिसारमें आरोग्य होनेके हैं परंतु डल्लनमिश्रजीने अपनी टीका निबंधसंग्रहमें इन्हें अतिवृद्ध अतिसारके लक्षण लिखा है सो न जाने क्या कारण है, भावमिश्रजीने तथा वाग्भटाचार्यने इन्हें अतिसारमुक्तहीका लक्षण लिखा है और प्रत्यक्षमें भी ये आरोग्यारंभके ही लक्षण होते हैं (देखो टिप्पणी) ॥

(श्लो० १५८) इदानीमतिसारे अतिवृद्धिलक्षणमाह—"यस्योच्चारम्" इत्यादि । उच्चार पुरीष सम्यगिति शंकारहितं वायुः अधोवातः । दीप्ताग्नेरिति प्रथमापेक्षया लघुकोष्ठस्य गौरवरहितस्य पुरुषस्य अतिवृद्धः उदरामयोतीसारोऽवश्यं दुष्टतया स्थितः (इति डल्लनः) एतत् डल्लनमिश्रविवेचनं भ्रांतिपूर्वकं प्रतीयते । वाग्भटाचार्यभावमिश्रकथनविरोधात् प्रत्यक्षविरोधाच्च । तथाचोक्तं वृद्धवाग्भटे—"यस्योच्चाराद्विना मूत्रं पवनो वा प्रवर्तते ॥ दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य जितस्तस्योदरामयः" ॥ १ ॥ इति । भावप्रकाशेपि—अथातिसारमुक्तलक्षणम्—"यस्योच्चारं विना मूत्रम्" इत्यादि । तथा च प्रत्यक्षेपि उपर्युक्तानि लक्षणानि यस्य भवति तस्य अतिसारः स्थित आरोग्यता प्राप्त इति दृश्यते ।

कर्मजादि तीन प्रकारकी व्याधि ।

कर्मजा व्याधयः केचिद्दोषजाः संति चापरे ॥ कर्मदोषोद्भवाश्चान्ये कर्मजास्तेष्वहेतुकाः ॥ १५९ ॥ नश्यंति त्वक्रियाभिस्ते क्रियाभिः कर्मसंक्षये ॥ शाम्यंति दोषसंभूता दोषसंक्षयहेतुभिः ॥ ॥ १६० ॥ तेषामल्पनिदाना ये प्रतिकष्टा भवंति च ॥ मृदवो बहुदोषा वा कर्मदोषोद्भवास्तु ते ॥ कर्मदोषक्षयकृतास्तेषां सिद्धिर्विधीयते ॥ १६१ ॥

मनुष्योंके तीन प्रकारकी व्याधियां हुआ करती हैं इनमें कोई कर्मयोगसे होती हैं (अर्थात् प्राक्तनकृत पापादिसे होती हैं) और कोई वात, पित्तादि दोषोंसे होती हैं और कोई कर्म और दोष दोनोंसे होती हैं इनमेंसे जो कर्म (पापादि) से होनेवाली व्याधियां होती हैं उनके कारण (प्रत्यक्ष मालूम) नहीं होते ॥ १५९ ॥ वे कर्मज रोग उस पापादि कर्मके भोगलेनेसे क्षय होजानेपर विनाही चिकित्सा किये अथवा (निमित्त मात्र) चिकित्सासे स्वयं नष्ट होजाते हैं और जो दोषज (वातादिदोषजन्य) रोग होते हैं वे उस दोषके क्षय होनेपर नष्ट होते हैं ॥ १६० ॥ और इनमें जिनका कारण तो स्वल्प हो परंतु वे प्रतिदिन प्रतिक्षण कष्टसाध्य और भयंकर होती जावें अथवा मृदु होकर बहुत दोषवाली हों वे व्याधि कर्म और दोष दोनोंसे उत्पन्न हुई समझनी चाहिये इनकी सिद्धि कर्म और दोष दोनोंके क्षय होनेसे होती है ॥ १६१ ॥

संग्रहणीरोगका विवेचन ।

दुष्यंति ग्रहणी जंतोरग्निसादनहेतुभिः ॥ अतीसारे निवृत्तेपि मंदाग्नेरहिताशिनः ॥ भूयः संदूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत् ॥१६२॥ तस्मात्कार्यः परीहारस्त्वतिसारे विरिक्तवत् ॥ यावन्न प्रकृतिस्थः स्याद्दोषतः प्राणतस्तथा ॥ १६३ ॥

अग्नि मंद करनेवाले कारणोंसे मनुष्योंकी ग्रहणी दूषित होजाती है अथवा अतिसारके निवृत्त होनेपर भी मंदाग्नि वाला पुरुष जो अहित भोजन करता है उससे अग्नि दूषित होकर वह ग्रहणीको दूषित करदेती है (बिगाड देती है) ॥ ॥ १६२ ॥ इससे अतिसारके रोगमें और उसके निवृत्त हुए पर विरेचनके समान पथ्यादि करने चाहिये । अतिसारके निवृत्त हुए पीछे जबतक दोषोंसे और बलसे पूर्ण प्रकृतिस्थ (तंदुरस्त और बलवान्) न होजाय तबतक कुपथ्य नहीं करना चाहिये ॥ १६३ ॥

(वक्तव्य) प्रथमके श्लोकार्द्धसे यह प्रयोजन निकलता है कि अतिसार और विरेचनके अन्तमें कुपथ्य किये विना साधारण मनुष्योंके भी मन्दाग्निके कारणोंसे ग्रहणी दूषित होजायाकरतीहै और संग्रहणीका रोग हो सकता है ॥

षष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्तिता ॥ पक्वामाशयमध्यस्था ग्रहणी सा प्रकीर्तिता ॥ १६४ ॥ ग्रहण्या बलमग्निर्हि स चापि ग्रहणीश्रितः ॥ तस्मात्संदूषिते वह्नौ ग्रहणी संप्रदुष्यति ॥ १६५ ॥

पित्तको धारणकरनेवाली, पक्वाशय और आमाशयके मध्यमें स्थित जो छठी कला (पहले शारीरक स्थानमें) वर्णन कीगई है उसे ग्रहणी कहते हैं ॥ १६४ ॥ ग्रहणीका बल अग्नि है और वह अग्नि ग्रहणीके आश्रित है इससे अग्निके दूषित होनेसे ग्रहणी भी दूषित होजाती है ॥ १६५ ॥

(वक्तव्य) यह बात हम पहले कहचुके हैं कि हमारी टीकाके शारीरकस्थानके आदिमें दूसरे चित्रमें जहां ५ का अंक है वह ग्रहणी है यह आमाशयसे नीचे है और पक्वाशय (अँतडियों) से ऊपर है इसीसे यह पक्वामाशयमध्यस्था लिखी है और इसके ऊपर १७ का अंक जहां है वह यकृत् है अर्थात् (जिगर है) यही अग्नि है जो ग्रहणीके ऊपर चिपका है और इसके ऊपर जहां १८ का अंक है वह पित्ता है उसे भी यही धारण किये हुए है इसीसे पित्तधरा कहा है इस ग्रहणीहीके बिगडने (संकोचन और संधारण शक्तिके नष्ट होने या विषम होजाने) सेही संग्रहणी रोग होता है अर्थात् आमाशयगत भोजनको जब यह ठीक २ धारण नहीं करती किन्तु अधपका नीचेको निकाल देती है तब ही संग्रहणी रोग होता है ॥

एकशः सर्वशश्चैव दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः ॥ सा दुष्टा बहुशो भुक्तमाममेव विमुंचति ॥१६६॥ पक्वं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम् ॥ ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः ॥ १६७ ॥

वातादि एक एक पृथक् दोषसे अथवा सबके सन्निपातसे वह ग्रहणी दूषित होती है तब भोजनको कच्चाही (कच्चा या अधकच्चा) वारवार नीचेको निकाल देती है अथवा पक्का वेदना सहित तथा दुर्गंधित और कभी बँधाहुआ मल और कभी पतला नीचेको निकाल देती है इस रोगको आयुर्वेदके जाननेवाले वैद्य ग्रहणी रोग कहते हैं ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

(वक्तव्य) कफदूषित ग्रहणी सदा आम (कच्चा) भोजन निकाल देतीहै और पित्तदूषित पक्व (पकाहुआ) निकालती है तथा वातदूषित कभी कच्चा कभी पक्का या कुछ कच्चा कुछ पक्का निकालती है ।

हम पूर्वके वक्तव्यमें कहचुके हैं कि ग्रहणीकी संकोचन और संधारण शक्तिके नष्ट होने या विषम होनेसे यह रोग होता है अस्तु, यदि संधारण शक्ति ढीली पडजाती है या नष्ट होजाती है तो एक रूपसे प्रायः रोग होता है और जो वह शक्ति विषम होती है तब यह रोग भी विषम होता है अर्थात् कभी मल बन्द, कभी द्रव, कभी दस्त लगजाते हैं, कभी कब्जियत होती है, कभी भोजन पचताहै कभी नहीं इत्यादि ॥

ग्रहणीरोगका पूर्वरूप ।

तस्योत्पत्तौ विदाहोऽन्ने सदनालस्यतृट्क्लमाः ॥
बलक्षयोऽरुचिः कासः कर्णक्ष्वेडांत्रकूजनम् ॥ १६८ ॥

जब यह रोग होनेवाला होता है तब उससे पहले ये लक्षण प्रायः होते हैं- भोजनके पीछे दाह, थकान, आलस्य, तृषा, ग्लानि, बलका नाश, अरुचि, खांसी, कानोंमें शब्दसा होना और आंतें गुडगुडाना ॥ १६८ ॥

ग्रहणीरोगका रूप ।

अथ जाते भवेज्जंतुः शूनपादकरः कृशः ॥ पर्वरुग्लौल्यतृट्छर्दि- ज्वरारोचकदाहवान् ॥ १६९ ॥ उद्गिरेच्छुक्ततिक्ताम्ललोहधूमामगं- धिकम् ॥ प्रसेकमुखवैरस्यतमकारुचिपीडितः ॥ ७० ॥

और जब यह रोग होजाता है तब मनुष्यके पावों, हाथों आदिपर शोथ दीखने लगता है, मनुष्य दुबला होजाता है, संधियोंमें दर्द, चित्तमें लौल्यता, तृषा, छर्दि, ज्वर, अरुचि, दाह ये सब होजाते हैं ॥ १६९ ॥ और सिरके जैसा खट्टा या कडवा पानीसा मुखसे गिरता है और डकारमें लोह, धूम या आमकी- सी गंध आती है, मुखसे पानीसा बहा करता है, विरसता रहतीहै, तमक, श्वास और अरुचिसे भी पीडित रहता है ॥ १७० ॥

वातादिकी ग्रहणीके लक्षण ।

वाताच्छूलाधिकैः पायुहृत्पार्श्वोदरमस्तकैः ॥ पित्तात्संदाहैर्गुरुभिः कफात्त्रिभिस्त्रिलक्षणैः ॥१७१॥ दोषवर्णनखैस्तद्वद्विण्मूत्रनयनान- नैः ॥ हृत्पांडूदरगुल्मार्शःप्लीहाशंकी च मानवः ॥ १७२ ॥

(श्लो० १६८) तस्य ग्रहणीरोगस्य उत्पत्तौ पूर्वरूपे अन्ने विदाहः भोजने भोजनानंतरं विदाह इत्यर्थः । डल्हनस्तु विदाहोन्ने भुक्ते अंरतीत्याह (श्लो० १६९) पर्वरुक् संधिपीडा । लौल्य सर्वरसेषु लोलुपत्वम् ।

वायुकी संग्रहणीमें गुदा, हृदय, पांसू, पेट और शिर इन स्थानोंमें दर्द होता है, पित्तकी संग्रहणीमें इन्हीं स्थानोंमें दाह रहता है, कफकी संग्रहणीमें इन्हींमें भारीपन रहता है और त्रिदोषकीमें तीनोंके चिह्न पायेजाते हैं ॥ १७१ ॥ और जिस दोषकी ग्रहणी हो उसीके अनुसार नख, मल, मूत्र, नेत्र और मुखका वर्ण (रंग) होता है। इस रोगमें मनुष्यको हृद्रोग, पांडु, उदररोग, गुल्म, बवासीर इन रोगोंकी शंका होती है (अर्थात् इन रोगोंकी भ्रांति होती है अथवा इन रोगोंके उत्पन्न होनेकी शंका होती है) ॥ १७२ ॥

ग्रहणीकी चिकित्सा।

यथादोषोच्छ्रयं तस्य विशुद्धस्य यथाक्रमम् ॥ पेयादिं वितरेत्सम्यग्दीपनीयोपसंभृतम् ॥ १७३ ॥ ततः पाचनसंग्राहिदीपनीयगणत्रयम् ॥ पिबेत्प्रातः सुरारिष्टस्नेहमूत्रसुखांबुभिः ॥ १७४ ॥ तक्रेण वाथ तक्रं वा केवलं हितमुच्यते ॥ कृमिगुल्मोदराशोंघ्नी क्रियाश्चात्रावचारयेत् ॥ १७५ ॥ चूर्णं हिंग्वादिकं चात्र घृतं वा प्लीहनाशनम् ॥ कल्केन मगधादेश्च चांगेरीस्वरसेन वा ॥ १७६ ॥ चतुर्गुणेन दध्ना च घृतं सिद्धं हितं भवेत् ॥ सर्वथा दीपनं सर्वं ग्रहणीरोगिणां हितम् ॥ १७७ ॥ ज्वरादीनविरोधाच्च साधयेत्स्वचिकित्सितैः ॥ १७८ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां चत्वारिंशोऽध्यायः॥४०॥

प्रथम बलके अनुसार वमन, विरेचनादिसे शुद्ध करके दोषोंकी उल्वणताके अनुकूल दीपन द्रव्योंसे संस्कार की हुई पेया आदिका उपयोग करे ॥ १७३ ॥ फिर पाचन, ग्राही और दीपन इन तीनों प्रकारके गणोंके क्वाथ या चूर्णको नित्य प्रभातमें सुरा (मद्य), अरिष्ट, स्नेह, गोमूत्र, गरम जल इनमेंसे किसी एकके संग पीवे (जैसे वायुमें स्नेहके संग, कफमें मूत्र, सुरादिके संग इत्यादि) ॥ १७४ ॥ अथवा तक्र (मट्ठे) के संग इन्ही पाचनादिको पीवे अथवा केवल मट्ठाही (लवणादि मिलाकर) पीवे अथवा कृमिनाशक, गुल्मनाशक, उदररोगनाशक, अर्शोनाशक जो क्रियायें पहले कही हैं उनमें जो उचित हो उस क्रियाको यहां करे ॥ ॥ १७५ ॥ अथवा हिंग्वादि चूर्णको या प्लीहनाशक घृतको सेवन करे अथवा पिपल्यादिके कल्कसे या चांगेरीके स्वरससे ॥ १७६ ॥ चौगुने दहीसहित घृत सिद्ध करके देना हित है और सब प्रकारसे दीपनपदार्थ सर्वथा ग्रहणी रोगमें हित

कारक होते हैं ॥ १७७ ॥ और ज्वर, शोथ, अरुचि आदि जो इसमें उपद्रव हों उन्हें ग्रहणीके अविरुद्ध उन्हीं उनकी चिकित्सासे साधन करना योग्य है ॥ १७८ ॥

(वक्तव्य) अतिसार रोग (दस्त लगने) के कई प्रकार हैं परन्तु मुख्यतासे तीनही बडे भेद पाये जाते हैं प्रथम आमाशयमें द्रव भाग बढनेसे जठराग्नि दब जावे, दूसरे ग्रहणीकला और तदाश्रित अग्निके विकारसे, तीसरे पक्वाशय (अँतडियों) के विकारसे, इसीलिये हमारे आचार्योंने इस व्याधिके मुख्य तीनही भेद किये हैं प्रथम जो आमाशयमें द्रव भाग बढकर जठराग्नि दब जानेसे होता है उसे अतिसार कहते हैं और जो ग्रहणीकला और तदाश्रित अग्निके बिगाडसे होनेवालेको संग्रहणी कहते हैं और अँतडियोंके विकारसे होनेवालेको प्रवाहिका (मरोडे) कहते हैं और इनमें बिगाड जिन २ वातादिदोषोंसे होता है सो सर्वत्र अपने २ कारणोंसे होताही है जिससे बहुत भेद होजाते हैं ॥

यूनानीवाले अतिसारको " इसहाल " कहते हैं और प्रवाहिकाको " मगस " कहते हैं इनके यहां भी इस बीमारीके बहुत भेद हैं जैसे " इसहालजिगरी " (जिसमें खून पीब वगैरहके दस्त आवें और जिगरके फितूरसे हो)"इसहालमेदा" (इसमें कच्ची पक्की गिजा दस्तमें आवे, यह मेदेके फितूरसे होता है) "इसहाल-अमआ" (जलकुलअमआ) (ग़िज़ा अँतडियोंमें न ठहरे और दस्त ज्यादे आवें, यह अँतडियोंके फितूर या अँतडियोंमें सफरा सोजिश वगैरहसे होता है) और मगस (मरोडा) भी अँतडियोंमें रीह होनेसे ही होता है और "जदीर राधल हूका" (थोडा २ दस्त आना) तथा " इसहालेखून " (खूनके दस्त अँतडियोंके फितूरसे आना) इत्यादि कई क़िस्म हैं जिनके लक्षण और भेद यहां ग्रन्थ बढनेके भयसे नहीं लिखेजासकते ॥

डाक्टरीमें मुख्य भेद इसके दो हैं १ डायारिया अर्थात् दस्त लगना, दूसरे "डिसेंटरी" (Dysentery) "मरोडे निवाही" मरोडेसे थोडा २ दस्त आना इनके यहां भी डायारिया प्रायः स्टमक (मेदे) के फितूरसे होताहै और डिसेंटरी अँतडियों (मोटी अँतडियों) के फितूरसे होता है ऐसा मानते हैं ॥

इति प० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ४१.

अथातः शोषप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम शोषरोग (जिसमें सब शरीरके धातु, उपधातु सूखकर मनुष्य अतिक्षीण होजाता है) की चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

अनेकरोगानुगतो बहुरोगपुरोगमः ॥
दुर्विज्ञेयो दुर्निवारः शोषो व्याधिमहाबलः ॥ १ ॥

यह शोषरोग बडा ही बलवान् और बडे दुःखसे निवारण करने योग्य और बड़ी कठिनतासे जानने योग्य होता है यह रोग जब होता है तब इसके पीछे अनेक रोग पैदा होजाते हैं तथा जब यह होनेवाला होता है तब इसके पहले भी खांसी आदि अनेक रोग होते हैं ॥ १ ॥

शोष क्षय राजयक्ष्मा इन नामोंका हेतु ।

संशोषणाद्रसादीनां शोष इत्यभिधीयते ॥ क्रियाक्षयकरत्वाच्च क्षय इत्युच्यते पुनः ॥ २ ॥ राज्ञश्चंद्रमसो यस्मादभूदेष किलामयः ॥ तस्मात्तं राजयक्ष्मेति केचिदाहुर्मनीषिणः ॥ ३ ॥

इस व्याधिमें रस आदि सब धातुओंके शोषण होजानेसे इसका नाम शोष हुआ और क्रिया अथवा सब धातुओंको यह क्षय करदेताहै इस लिये क्षय भी इसे कहते हैं ॥ २ ॥ और यह रोग पहले राजा (औषधियों या ब्राह्मणोंके राजा) चन्द्रमाको हुआ था इससे कई वैद्य इसे राजयक्ष्मा भी कहते हैं ॥ ३ ॥

यक्ष्माका विवेचन ।

सर्व्यस्तैर्जायते दोषैरिति केचिद्वदंति हि ॥ ४ ॥ एकादशानामेकस्मिन्सान्निध्यात्तत्र युक्तितः ॥ क्रियाणामविभागेन प्रागेवोत्पादनेन च ॥ ५ ॥ एक एव मतः शोषः सन्निपातात्मको ह्यतः ॥ उद्रेकात्तत्र लिंगानि दोषाणां निपतंति हि ॥ ६ ॥

कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि यह रोग सब दोषोंसे पृथक् पृथक् भी होताहै और सन्निपातसे भी होता है ॥ ४ ॥ परन्तु आगे लिखे ग्यारह लक्षणोंके एकत्रित सन्निधान होनेसे तथा शास्त्रकी युक्तिसे तथा क्रिया (चिकित्साक्रम) में भेद न होनेसे तथा पहलेही उत्पन्न करनेसें (अर्थात् सबसे पहले शुष्कता पैदा करनेसे या शोषके हेतु पहलेही पैदा करनेसे) ॥ ५ ॥ यह शोषरोग एक सन्निपातात्मक ही होता है परंच हां इसमें जौनसे दोषकी प्रधानता या उल्वणता होती है उसके लक्षण प्रायः मालूम पडते हैं ॥ ६ ॥

(श्लो० ३) चंद्रमसः राज्ञः द्विजानां राज्ञः ओषधीनां राज्ञश्च । "ओषधीशो निशापतिः । द्विजराजः शशधरः" इत्यमरः ।

क्षयोद्वेगप्रतीघाताद्व्यायामाद्विषमाशनात् ॥
जायते कुपितैर्दोषैर्व्याप्तदेहस्य देहिनः ॥ ७ ॥

किसी कारण (रोग, शोक, अभिघात, अतिकर्षण आदिसे) कोई एक या कई धातुओंके क्षय होनेसे अथवा वेगोंके रोकनेसे या अतिपरिश्रम करनेसे या विषम भोजनादि करनेसे कुपित हुए दोष जब शरीरमें व्याप्त होते हैं तब यह रोग उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥

अनुलोम और प्रतिलोम क्षय ।

कफप्रधानैर्दोषैर्हि रुद्धेषु रसवर्त्मसु ॥
अतिव्यवायिनो वापि क्षीणे रेतस्यनंतरा ॥
क्षीयंते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः ॥ ८ ॥

यदि कफप्रधान दोषोंसे रसके मार्ग रुकजावें (जिससे रस क्षीण होकर फिर रुधिरमें क्षीणता हो और फिर यथाक्रमसे मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्रमें क्षीणता पहुँचे यह अनुलोमनक्षय कहलाता है) तथा अतिमैथुनादिके द्वारा वीर्य अति क्षीण होजावे (जिससे फिर मज्जामें क्षीणता हो और फिर मज्जासे अस्थि और मेद, मांस, रक्त और रसमें विपरीतभावसे यथाक्रम क्षीणंता पहुँचे यह प्रतिलोमजक्षय कहलाता है) इस भांति सब धातु क्षीण होतीहैं और मनुष्य सूखने लगता है (और सूखजाता है) ॥ ८ ॥

राजयक्ष्माका रूप और लक्षण ।

भक्तद्वेषो ज्वरः श्वासः कासः शोणितदर्शनम् ॥
स्वरभेदश्च जायंते षड्रूपे राजयक्ष्मणि ॥ ९ ॥

भोजनसे द्वेष होना, ज्वर, श्वास, खांसी, खखारमें रुधिर आना और अवाज बैठ जाना ये छह रूप राजयक्ष्मामें होते हैं (उक्त छहों लक्षण होनेसे राजयक्ष्मा समझना) ॥ ९ ॥

वातादिभेदसे राजयक्ष्माके लक्षण ।

स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं संकोचश्चांसपार्श्वयोः ॥ ज्वरो दाहोऽतिसारश्च पित्ताद्रक्तस्य चागमः ॥ १० ॥ शिरसः परिपूर्णत्वमभक्तच्छंद एव च ॥ कासः कंठस्य चोद्ध्वंसो विज्ञेयः कफकोपतः ॥ ११ ॥

(श्लो० ८) कफप्रधानैर्दोषैः रसवर्त्मसु रुद्धेषु रसक्षयात् अनुलोमक्रमेण रक्तादयो धातवः क्षीयंते इत्यनुलोमक्षयः । अतिव्यवायिनः रेतसि क्षीणे शुक्रक्षयात्प्रतिलोमक्रमेण मज्जास्थिमेदोमांसादयो धातवः क्षीयंते इति प्रतिलोमक्षयः ।

वायुकी प्रधानतासे स्वरभंग और शूल और अंस (कांधे) तथा पँसवाडोंका संकोच होना ये लक्षण प्रबलतासे होते हैं । तथा पित्तकी प्रधानतासे ज्वर, दाह, अतिसार और रुधिरका आना ये प्रबलतासे होते हैं ॥ १० ॥ और कफके कोपसे शिरका भारीपन, अरुचि, खांसी और कंठका उद्ध्वंस (गला बैठजाना) ये लक्षण प्रबलतासे होते हैं ॥ ११ ॥

तीनों दोषोंके पूर्वोक्त ११ लक्षण होते हैं जैसे-वायुके ३ (स्वरभेद, शूल और अंसादिका संकोच), पित्तके ४ (ज्वर, दाह, अतिसार और रक्तागम) तथा कफके ४ (शिरका भारीपन, अरुचि, खांसी और गल बैठना)

एकादशभिरेतैर्वा षड्भिर्वाऽपि समन्वितम् ॥ कासातिसारपार्श्वार्तिस्वरभेदारुचिज्वरैः ॥ १२ ॥ त्रिभिर्वा पीडितं लिंगैर्ज्वरकासासृगामयैः ॥ जह्याच्छोषार्दितं जन्तुमिच्छन्सुविमलं यशः ॥ १३ ॥

इन पूर्वोक्त ग्यारह लक्षणोंसे जो युक्त हो तथा (नवम श्लोकमें कहे हुए भक्तद्वेषादिक) छह लक्षणोंसे युक्त हो अथवा खाँसी, अतिसार, पांसूमें दर्द, स्वरभंग, अरुचि और ज्वर इन छह लक्षणोंसे युक्त हो ॥ १२ ॥ अथवा ज्वर, खांसी और रुधिर आना इन तीनहीं लक्षणोंसे जो युक्त हो ऐसे शोष (क्षयी) वाले मनुष्यको निर्मल यश चाहनेवाला वैद्य त्याग देवे अर्थात् ये लक्षण असाध्य राजयक्ष्माके हैं ॥ १३ ॥

अन्य प्रकारका शोष रोग ।

व्यवायशोकस्थाविर्यव्यायामाध्वोपवासतः ॥
व्रणोरःक्षतपीडाभ्यां शोषानन्ये वदंति हि ॥ १४ ॥

अतिमैथुन, शोक, वृद्धता, अतिव्यायाम, मार्गचलना, व्रत, लंघन आदि करना, अतिगंभीर व्रणका होना तथा उरःक्षतकी पीडा (या उरःक्षत और अन्य दीर्घरोग होना) इन कारणोंसे भी शोष रोग होना कहते हैं (अर्थात् इनसे भी क्षयरोग होजाताहै) ॥ १४ ॥

शोषके कारणानुरूप लक्षण ।

व्यवायशोषः शुक्रस्य क्षयलिंगैरुपद्रुतः ॥ पाण्डुदेहो यथापूर्वं क्षीयंते चास्य धातवः ॥ १५ ॥ प्रध्यानशीलः स्रस्तांगः शोकशोष्यपि तादृशः ॥ विनाशुक्रक्षयकृतैर्विकारैरभिलक्षितः ॥ १६ ॥

(श्लो० १५) यथापूर्वं प्रतिलोमक्रमेण ।

अतिमैथुनजन्य शोष वीर्यके क्षयके चिह्नोंसे उपद्रवयुक्त होता है, शरीर पीला पड जाताहै और पूर्वपूर्वकी धातु प्रतिलोमक्रमसे क्षय होती है (जैसे वीर्यका क्षय होकर मज्जाका क्षय हो फिर अस्थि फिर मेद फिर मांस इत्यादि) ॥ १५ ॥ शोकसे क्षयवाला उस ध्यानमें मग्न रहे और शरीर शिथिल हो तथा वीर्यक्षयके सिवाय अन्य लक्षण इसमें भी व्यवायशोषीकेसे जानने ॥ १६ ॥

जराशोषी कृशो मंदः स्वल्पबुद्धिबलेंद्रियः ॥ श्वसनोऽरुचिमान्भिन्नकांस्यपात्रहतस्वरः ॥ १७ ॥ ष्ठीवंति श्लेष्मणा हीनं तथैवारातिपीडितः ॥ संप्रस्नुतास्यनासाक्षः शुष्करूक्षमलच्छविः ॥ १८॥

जरा (बुढापे) के शोषवाला दुवला, मंद होता है और उसके बुद्धि, वल तथा इंद्रियां सब घटजाती हैं, श्वास और अरुचि भी होते हैं, फूटे कांसीके पात्रकेसा हीनस्वर होजाना है ॥ १७ ॥ और थोडा खखार थूँकमें आता है और बेचैनी रहती है तथा मुख, नाक और आंखोंसे पानी टपकता है तथा मल और त्वचा सूखी और रूक्ष होजाती है ॥ १८ ॥

अध्वप्रशोषी स्रस्तांगः संभ्रष्टपरुषच्छविः ॥ प्रसुप्तगात्रावयवः शुष्कक्लोमगलाननः ॥ १९ ॥ व्यायामशोषी भूयिष्ठमेभिरेव समन्वितः ॥ उरःक्षतकृतैर्लिंगैः संयुक्तश्च क्षताद्विना ॥ २० ॥ रक्तक्षयाद्वेदनाभिस्तथैवाहारयंत्रणात् ॥ व्रणितस्य भवेच्छोषः स चासाध्यतमः स्मृतः ॥ २१ ॥

मार्ग चलनेसे शोष होनेवालेका शरीर शिथिल होता है, कांति भ्रष्ट और मलीन होजाती है, शरीरके अंगप्रत्यंग सोये हुएसे होजाया करते हैं, क्लोम, गल और मुँह सूखा होजाता है ॥ १९ ॥ व्यायाम (अतिश्रम या डंड कसरत) से शोष होनेवाले क्षीणमनुष्यके उरःक्षतके सब लक्षण होते हैं, केवल घाव नहीं होता ॥ ॥ २० ॥ व्रणवाले क्षीण मनुष्यके रुधिरके क्षय होनेसे, वेदनासे और आहारकी यंत्रणा (तकलीफ) से शोष (क्षय) होता है वह परम असाध्य होता है ॥ २१ ॥

उरःक्षत।

व्यायामभाराध्ययनैरभिघातातिमैथुनैः ॥ कर्मणा चाप्युरस्येन वक्षो

(श्लो० १८) संप्रस्नुतास्यनासाक्षः इति–संप्रस्नुतं जलस्रावयुक्तम् आस्यं नासा नेत्रं च यस्य: सः अथवा संप्रस्नुतास्यनासाक्ष: सम्प्रसृतानि विस्तृतानि छिद्रबाहुल्ययुतानि आस्यादीनि यस्य सः वृद्धावस्थाजनितत्वे मुखनासानेत्राणां विवराणि विस्तीर्णानि संजायते इत्यर्थः ।

यस्य विदारितम् ॥ २२ ॥ तस्योरसि क्षते रक्तं पूयः श्लेष्मा च गच्छति ॥ कासमानश्छर्दयेच्च पीतरक्तासितारुणम् ॥ २३ ॥ संतप्तवक्षाः सोत्यर्थं दूयनात्परिताम्यति ॥ दुर्गंधवदनोच्छ्वासो भिन्नवर्णस्वरो नरः ॥ २४ ॥

व्यायाम (अतिश्रम या अतिडंड कसरत) करनेसे, बोझा उठानेसे, ज्यादे पुकार २ के पढनेसे, चोट आदिसे, अतिमैथुनसे और उर (छाती फेफडे) पर जोर या कष्ट पहुँचानेवाले काम करनेसे जिसकी छातीके भीतर अर्थात् फेफडों या हृदयमें घाव पड़जावे ॥ २२ ॥ जब मनुष्यके फेफडों या हृदयमें क्षत (घाव) होजाता है तब उससे खखारमें रुधिर, पीब और कफ आता है, कभी खांसनेमें वमन भी होता है, उसमें पीला, लाल, मैला, ऊदा ऐसा मवाद आता-है ॥ २३ ॥ छातीमें संताप रहे और अत्यंत पीडासे आंखोंके अगाडी अँधेरासा आजावे, मुँह और श्वासमें दुर्गंध आवे और वर्ण तथा स्वर बिगड़जावे ॥ २४ ॥

केषांचिदेव शोषो हि कारणैर्भेदमागतः ॥ न तत्र दोषलिंगानां समस्तानां निपातनम् ॥ २५ ॥ क्षया एव हि ते ज्ञेयाः प्रत्येकं धातुसंक्षयात् ॥ चिकित्सितं तु तेषां हि प्रागुक्ते धातुसंक्षये ॥ २६ ॥

कई आचार्योंका यह मत है कि शोष कारणोंके भेदसे क्षयहीके अंतर्गत है (अर्थात् व्यायामाध्वादिजन्य शोष भी कारणभेदसे क्षयही होता है) परंतु उसमें सब दोषोंके लक्षण नहीं आकर पड़ते हैं (इससे क्षय और शोषमें अन्तर है ॥ २५ ॥ और जो क्षय है वह प्रत्येक धातुके क्षयसे होता है और उन धातुजन्य क्षयोंकी चिकित्सा भी पहले प्रत्येककी दोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञानीय अध्यायमें कहीजाचुकी है उसके अनुसार करना ॥ २६ ॥

राजयक्ष्माका पूर्वरूप ।

श्वासांगसादकफसंस्रवतालुशोषच्छर्द्यग्निसादमदपीनसकासनिद्राः ॥ शोषे भविष्यति भवंति स चापि जंतुः शुक्लेक्षणो भवति मांसपरो रिरंसुः ॥ २७ ॥ स्वप्नेषु काकशुकशल्लकिनीलकंठगृध्रास्तथैव कपयः कृकलासकाश्च ॥ तं वाहयंति स नदीर्विजलाश्च पश्येच्छुष्कांस्तरून्पवनधूमदवार्दितांश्च ॥ २८ ॥

(श्लो० २५) केषाञ्चिदिति–केषाञ्चिदाचार्याणां मते (श्लो० २६) तेषां चिकित्सितं तु प्रागुक्ते धातुसंक्षये दोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञानीयेऽध्याये ज्ञेयमित्यर्थः ।

मांसादमांसेषु घृतं च सिद्धं शोषापहं क्षौद्रकणासमेतम् ॥

द्राक्षासितामागधिकावलेहः सक्षौद्रतैलः क्षयरोगघाती ॥ ३८ ॥

मांस पड़ेहुए अरिष्ट (माउल्ल हम) पीवे (या इस प्रकारसे अरिष्ट पीवे कि उसपर मांसका उपदंशानुकल किया जावे) तथा महुवा, मुनक्का या किशमिसके रससे मिलीहुई मदिरा पीवे तथा आक और गिलोयकी भस्मके जलमें रातभर जव भिगोकर उनके पाक बनाकर खावे ॥ ३६ ॥ तथा बकरी या भेडका घृत पान करे और जो दुर्बल हो वह भोजनके समय यवागूमें मिलाकर खावे अथवा त्रिकटुको शहद और घृतमें मिलाकर चव्य और विडंगयुक्त करके क्षयका रोगी चाटे ॥ ३७ ॥ अथवा मांस खानेवाले जीव (गीध आदि) के मांससे सिद्ध किये हुए घृतको शहद और पीपल मिलाकर सेवन करना शोष रोगको नाश करताहै तथा मुनक्का, मिश्री, पीपल इनका अवलेह शहद और तैलयुक्त क्षयरोगका घाती है ॥ ३८ ॥

(वक्तव्य) ये सब उपरोक्त ढंग पहले समयके हैं अब इस भांतिकी चिकित्सा पसन्द नहीं और न की जासके क्योंकि अब समय सफाई और सुकुमारताका है॥

घृतेन चाजेन समाक्षिकेण तुरंगगंधातिलमाषचूर्णम् ॥

सिताश्वगंधामगधोद्भवानां चूर्णं घृतं क्षौद्रयुतं प्रलिह्यात् ॥ ३९ ॥

क्षीरं पिबेद्वाप्यथ वाजिगंधाविपक्वमेवं लभते च पुष्टिम् ॥

तदुत्थितं क्षीरघृतं सिताढ्यं प्रातः पिबेद्वाऽथ पयोनुपानम् ॥४०॥

उत्सादने चापि तुरंगगंधा योज्या यवाश्चैव पुनर्नवे च ॥

कृत्स्ने तुषे तत्कुसुमैश्च सिद्धं सर्पिः पिबेत्क्षौद्रयुतं हिताशी ॥४१॥

यक्ष्माणमेतत्प्रबलं च कासं श्वासं च हन्यादपि पांडुतां च ॥४२॥

बकरीका घृत, शहद, असगंध, तिल, उड़दका चूर्ण इन्हें मिलाके चाटे अथवा मिश्री, असगन्ध, पीपल इनको पीसकर शहद और घृत मिलाके चाटे ॥ ३९ ॥ अथवा असगंधसे पकायाहुआ दूध मिश्री मिलाकर पीवे या इससे निकालाहुआ घृत मिश्रीके संग पीकर ऊपरसे दूध पीवे इससे पुष्टि प्राप्त होतीहै ॥ ४० ॥ उत्सादन (शरीरपर उबटन करने) के लिये असगंध, जौ और दोनों सांठी उपयोग करनी चाहिये तथा बाँसके पंचांग या उसके फूलोंसे सिद्ध कियाहुआ घृत शहद मिलाकर पीवे और हित भोजन करे यह घृत राजयक्ष्मा, प्रबल खांसी, श्वास और पांडुताको नष्ट करता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

यवगोधूमशालींश्च रसैर्भुञ्जीत शोधितः ॥
दृढेऽग्नौ बृंहयेच्चापि निवृत्तोपद्रवं नरम् ॥ ३२ ॥

शोधन करनेके पीछे जव, गेहूं, चावल इन्हें मांसरसके संग भोजन करे और जब जठराग्नि दृढ होजावे तथा कोई उपद्रव नहीं रहे तब उसे बृंहण (बलदायक पदार्थोंका उपयोग करे ॥ ३२ ॥

अति मैथुनजन्य शोषकी चिकित्सा ।

व्यवायशोषिणं प्रायो भजंते वातजा गदाः ॥
बृंहणीयो विधिस्तस्मै हितः स्निग्धोऽनिलापहः ॥ ३३ ॥

जो मनुष्य अतिमैथुनसे क्षीण होताहै उसके वायुके उपद्रव विशेष होतेहैं इस-लिये उसे स्निग्ध वायुनाशक बृंहण विधि करनी श्रेष्ठ है ॥ ३३ ॥

काकानुलूकान्नकुलान्बिडालान्गण्डूपदान्व्यालबिलेशयाखून् ॥
गृध्रांश्च दद्याद्विविधैः प्रकारैः ससैंधवान्सर्षपतैलभृष्टान् ॥ ३४ ॥
देयानि मांसानि च जांगलानि मुद्गाढकीसूपरसाश्च हृद्याः ॥
खरोष्ट्रनागाश्वतराश्वजानि देयानि मांसानि सुकल्पितानि ॥ ३५ ॥

काक, उल्लू, नकुल, बिलाव, गिंडोवे, व्याल (निर्विष, सर्प या हिंसक चतुष्पद), बिलके रहनेवाले तथा चूहे, गीध इनके मांसको सरसोंके तैलमें भूनकर सेंधान-मक मिलाकर अनेक प्रकारसे (पाक बनाके) देना चाहिये ॥ ३४ ॥ तथा जंगली जीवोंका मांस अथवा मूंग या अरहर (तूर) की दालका हृदयप्रिय रस देना योग्य है तथा गधे, ऊँट, हाथी, अश्वतर (खच्चर) और घोडा इनका मांस भी जहां योग्य हो सुंदर कल्पना करके देवे ॥ ३५ ॥

क्षयनाशक अन्य प्रयोग ।

मांसोपदंशांश्च पिबेदरिष्टान्माध्वीकयुक्ता मदिराश्च सेव्याः ॥
अर्कामृताक्षारजलोषितेभ्यः कृत्वा यवेभ्यो विविधांश्च भक्ष्यान् ३६
खादेत्पिबेत्सर्पिरजाविकं वा कृशो यवाग्वा सह भक्तकाले ॥
सर्पिर्मधुभ्यां त्रिकटु प्रलिह्याच्चव्याविडंगोपहितं क्षयार्तः ॥ ३७ ॥

(श्लो० ३६) मांसोपदंशं यथा भवति तथा अरिष्टान् पिबेत् । उपदंशः मद्यपानरोचके भक्ष्यद्रव्ये (इति श० स्तो०)

पक्त्वा जले तेन पचेद्धि सर्पिस्तस्मिन्सुसिद्धे त्ववतारिते च ॥
त्रिंशत्पलान्यत्र सितोपलाया दत्त्वा तुगाक्षीरिपलानि षट् च ॥५०॥
प्रस्थे घृतस्य द्विगुणं च दद्यात्क्षौद्रं ततो मंथहतं विदध्यात् ॥
पलं पलं प्रातरतः प्रलिह्यात्पश्चात्पिबेत्क्षीरमतंद्रितश्च ॥ ५१ ॥
एतद्धि मेध्यं परमं पवित्रं चक्षुष्यमायुष्यमथो यशस्यम् ॥
यक्ष्माणमाशु व्यपहंति चैतत्पांड्वामयं चैव भगंदरं च ॥ ५२ ॥
श्वासं च हंति स्वरभेदकांश्च हृत्प्लीहगुल्मग्रहणीगदांश्च ॥
न चात्र किंचित्परिवर्जनीयं रसायनं चैतदुपास्यमानम् ॥ ५३ ॥

इलायची, अजमोदा, आंवले, हरडे, बहेडा, खैर, नींब, विजैसार, शालसार, (खैरसे लेके शालतकका सार लेना सार न हो तो अन्तरछाल लेनी), विडंग, भिलावें, चित्रक, उग्रा (वच कई अजवायन कहते हैं), त्रिकटु, नागरमोथा और फटकडी ॥ ४९ ॥ इनको जलमें पकाकर क्काथ करे इससे फिर घृत सिद्ध करे और उतारले, तीस पल इसमें मिश्री और छः पल वंशलोचन डाल दे ॥ ५० ॥ प्रस्थभर घृतमें दो प्रस्थ शहद मिलावे और इन सबको रईसे मथकर मिला लेवे फिर इसमेंसे एक पल प्रभात लेवे (चाटे) और ऊपरसे सावधान होकर दूध पीवे ॥ ५१ ॥ यह योग परम पवित्र और मेध्य है, नेत्रोंको हित, आयु बढानेवाला और यश देनेवाला है और राजयक्ष्माको यह शीघ्रही दूर करदेता है तथा पांडुरोग और भगंदरको भी नाश करदेता है ॥ ५२ ॥ तथा श्वास, स्वरभेद, हृदयरोग, प्लीहा, गुल्म, ग्रहणी इन सबको यह दूर करता है इसमें किसी भी बातका त्याग नहीं है और इसका सेवन करना रसायन है ॥ ५३ ॥

प्लीहोदरोक्तं विहितं च सर्पिस्त्रीण्येव चान्यानि हितानि चात्र ॥
उपद्रवांश्च स्वरवैकृतादीञ्जयेद्यथास्वं प्रसमीक्ष्य शास्त्रम् ॥ ५४ ॥

प्लीहोदरमें कहाहुआ घृत तथा अन्य तीन घृत (उदररोगोक्त) भी यहां हितकारक हैं और स्वरभेदादिक अन्य जो जो उपद्रव हों उन्हें यथायोग्य शास्त्र देखकर शांत करे ॥ ५४ ॥

(वक्तव्य) पूर्व जो घृत कहे वे ये हैं–१ "हरीतकीचूर्णप्रस्थम्" इत्यादि। २ "गव्ये पयसि" इत्यादि। ३ "चव्यचित्रक" इत्यादि। देखो चिकित्सितस्थान अध्याय १४ परन्तु ये अनुलोमजक्षयीमें स्रोतोवरोधकी शांतिके लिये विरेचनीय हैं ॥ ५४ ॥

क्षयनाशक घृत ।

शकृद्रसा गोश्वगजाव्यजानां क्वाथाँ मिताश्चापि तथैव भागैः ॥
मूर्वाहरिद्राखदिरद्रुमाणां क्षीरस्य भागस्त्वपरो घृतस्य ॥ ४३ ॥
भागान्दशैतान्विपचेद्विधिज्ञो दत्त्वा त्रिवर्ग मधुरं च कृत्स्नम् ॥
कटुत्रिकं चैवं सभद्रदारु घृतोत्तमं यक्ष्मनिवारणाय ॥ ४४ ॥

गौ, घोडा, हाथी, भेड, बकरी इनका गोबर लेकर रस निचोडलेना सबका रस एक एक भाग ले और मूर्वा, हलदी और खैर इनका क्वाथ जुदा जुदा एकएक भाग ले (ऐसे ये आठ भाग हुए) और एक भाग दूध लेवे और एकही भाग घृत लेवे ॥ ४३॥ फिर इन दश वस्तुओंके दश भागोंको विधिज्ञ वैद्य पकावे इसमें त्रिवर्ग (त्रिफला) और सब मधुरद्रव्य (काकोल्यादि), त्रिकटु और भद्रदारु पकतेमें डाले यह घृत यक्ष्मा (राजयक्ष्मा) के निवारण करनेमें उत्तम है ॥४४॥

द्वे पंचमूल्यौ वरणं करंजं भल्लातकं बिल्वपुनर्नवे च ॥
यवान्कुलत्थान्बदराणि भार्ङ्गीं पाठां हुताशं समहीकदंबम् ॥ ४५ ॥
कृत्वा कषायं विपचेद्धि तस्य षड्भिर्हि पात्रैर्घृतपात्रमेकम् ॥
व्योषं महावृक्षपयोऽभयां च चव्यं सुराख्यं लवणोत्तमं च ॥ ४६ ॥
एतद्धि शोषं जठराणि चैवं हन्यात्प्रमेहांश्च सहानिलेन ॥ ४७॥

दोनों पंचमूल अर्थात् दशमूल, वरणा, करंज, बिल्व, दोनों सांठी, जौ, कुलथी, बेर, भारंगी, पाठा, चित्रक और पृथ्वीकदंब ॥ ४५ ॥ इन सबका क्वाथ बनाकर छः पात्र लेवे इसमें एक पात्र घृत डालकर पकावे और त्रिकटु, थोहरका दूध, हरडे, चव्य, देवदारु, सैंधव इनका कल्क करके इसमें डाले यह घृत शोषरोग, उदरविकार और वायुसहित प्रमेहोंको नष्ट करता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

गोश्वाव्यजेभैणखरोष्ट्रजातैः शकृद्रसक्षीररसक्षतोत्थैः ॥
द्राक्षाश्वगंधामगधासिताभिः सिद्धं घृतं यक्ष्मविकारहारि ॥ ४८ ॥

गौ, घोडी, भेड, बकरी, हथनी, हिरनी, गधी, ऊँटनी इन सबके गोबरका रस, दूध, मांसरस और रुधिर तथा मुनक्का, असगंध, पीपल, मिश्री इनसे सिद्ध किया हुआ घृत राजयक्ष्माके विकारको नष्ट करता है ॥ ४८ ॥

एलाजमोदामलकाभयाक्षगायत्र्यरिष्टासनशालसारान् ॥
विडंगभल्लातकचित्रकोग्राकटुत्रिकांभोदसुराष्ट्रजाश्च ॥ ४९ ॥

(श्लो० ४५) बदराणि बदरीफलानि । पात्रम् आढकप्रमाणम् ।

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ४२.

अथातो गुल्मप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

यहांसे अगाडी अब हम गुल्मचिकित्साकी व्याख्या करतेहैं ॥

गुल्मकी संप्राप्ति और रूप।

यथोक्तैः कोपनैर्दोषाः कुपिताः कोष्ठमागताः ॥ जनयंति नृणां गुल्मं स पंचविध उच्यते ॥ १ ॥ हृद्बस्त्योरंतरे ग्रंथिः संचारी यदि वाऽचलः ॥ चयापचयवान्वृत्तः स गुल्म इति कीर्तितः ॥ २ ॥

पहले सूत्रस्थानमें कहेहुए वातादि दोषोंके कोपके कारणोंसे कुपित हुए वातकफादि दोष जब कोष्ठ (उदर) में स्थित होतेहैं तब मनुष्योंके गुल्म (गोला या गाँठ) उदरमें पैदा करदेते हैं वह गुल्म रोग पांच प्रकारका होताहै ॥ १ ॥ हृदय और वस्तिके बीचमेंसे कहीं स्थिर अथवा चलायमान (टहलनेवाली) जो ग्रंथि हो और घटने बढनेवाली तथा गोल (छोटे बेरसे लेकर बडे कैथके फलतक अनुमानकी प्रायः गोलगाँठसी उदरके भीतर) हो उसे गुल्म कहतेहैं ॥ २ ॥

गुल्मके स्थान और निरुक्ति।

पंच गुल्माश्रया नृणां पार्श्वे हृन्नाभिवस्तयः ॥
कुपितानिलमूलत्वाद्गूढमूलोदयादपि ॥३॥
गुल्मवद्वा विशालत्वाद्गुल्म इत्यभिधीयते ॥ ४ ॥

मनुष्योंके उदरमें गुल्मके पाँच स्थान हैं दोनों पँसवाडोंकी तरफ तथा हृदय (कौडीके पास), नाभि (नाभिके पास) तथा वस्तिस्थान (अर्थात् इन स्थानोंमें गुल्म होताहै) ॥ ३ ॥ कुपित हुई वायु इसका मूल होनेसे तथा गूढ (उदरांतर्गत) मूलके उदय होनेसे तथा गुल्म (कंद) की भांति विशाल होनेसे इसे गुल्म कहते हैं ॥ ४ ॥

स यस्मादात्मनि चयं गच्छत्यप्स्विव बुद्बुदः ॥
अंतः सरति यस्माच्च न पाकमुपयात्यतः ॥ ५ ॥

(श्लो० २) चयापचयवान् वृद्धिक्षयवान् कदाचिद्वर्द्धते कदाचित्क्षीयते इत्यर्थः। (श्लो० ४) गुल्मः एकमूलेषु संघातजातेपु शरेक्षुप्रभृतिपु तृणभेदेषु कंदेषु च तद्वद्विशालत्वाद्गुल्म इत्यभिधीयते ॥

(श्लो० ५) स गुल्मः यस्मात्कारणात् आत्मनि स्वावयवे चयं गच्छति अप्सु जले बुद्बुदः यथा उद्गच्छति तथा गुल्मरूपो दोषः स्वयमेवोद्गच्छति। अंतः अंतरे सरति भ्रमति एवंभूतः प्रायेण वातिको भवति स च न पच्यते इतरे च वदंति गुल्मो यदा रक्तादिस्थानमधिष्ठायावतिष्ठते तदा कदाचित् पचेत् (इति नि० सं०)

अजाशकृन्मूत्रपयोघृतासृङ्मांसालयानि प्रतिसेवमानः ॥
स्नानादिनानाविधिना जहाति मासादशेषं नियमेन शोषम् ॥ ५५ ॥
रसोनयोगं विधिवत्क्षयार्तः क्षीरेण वा नागबलाप्रयोगम् ॥
सेवेत वा मागधिकाविधानं तथोपयोगं जतुनोऽश्मजस्य ॥ ५६ ॥

बकरीकी मैगनी, बकरीका मूत्र, बकरीका दूध, बकरीका घृत, बकरीका रुधिर, बकरी (या बकरे) का मांस और बकरीके रखनेका स्थान इन सबको यथायोग्य स्नान, भोजनादिमें नाना प्रकारसे उपयोग करे तो अवश्य एक महीनेमें शोष (यक्ष्मा) निःशेष नष्ट होजावे। बकरीकी मैगनी उबटनमें डाले, मूत्रसे शरीर धोवे फिर साफ पानीसे साफ करले इसीप्रकार दूध और मांसादिको पीने और खानेमें नियमसे उपयोग करे ॥ ५५ ॥ अथवा क्षयका रोगी लहसनको विधिपूर्वक सेवन करे अथवा दूधसे नागबलाका प्रयोग करे अथवा पीपलोंको या शिलाजीतको दूधके संग उपयोग करे ॥ ५६ ॥

क्षयरोगमें पथ्यापथ्य।

शोकं स्त्रियं क्रोधमसूयनं च त्यजेदुदारान्विषयान् भजेत ॥
वैद्यान्द्विजातींस्त्रिदशान्गुरूंश्च वाचश्च पुण्याः शृणुयाद्द्विजेभ्यः ॥ ५७ ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतन्त्रे कायचिकित्सायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

शोक, स्त्रीसंगम, क्रोध, पराई निंदा और उदार विषय (अति चिंता, श्रम, प्रयास आदिको त्याग देवे और विद्वान् वैद्य, द्विज (ब्राह्मणादि), देवता और गुरुओंको सेवन करे तथा पंडितोंसे पवित्र वाणी (कथा पुराणादि) सुनता रहे (कई उदारविषयोंको " भजेत " के साथ लगाकर यों अर्थ करते हैं कि उदार-विषयोंको जो धर्मके अविरुद्ध और मनके अनुकूल हों उन्हें सेवन करे ॥ ५७ ॥

डाक्टरीमें राजयक्ष्मा (क्षयी) को "थाइसिस" (Pthisis) कहते हैं और उरःक्षतको "न्यूमोनिया" से मिलाते हैं ॥

और यूनानीवाले इनको "सिलही" समझते और कहते हैं पर उसका भी कारण छाती और फेफडोंपर नजूल गिरनेसे वहां जखम पडजाना कहतेहैं ॥

इति प० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

(श्लो० ५५) अजाशब्दः शकृदादिभिः आलयांतैः प्रत्येकं संबध्यते। (श्लो० ५६) रसोनयोगमिति–विधिवद्यथाशास्त्र सेवेतेति नागबलाप्रयोगं च मागधिकाविधानाभ्यां संबध्यते तथेति क्षीरेणेत्यर्थः (इति नि० सं०)

स्वेदज्वराहारविदाहदाहास्तृष्णाऽगरागः कटुवक्रता च ॥
पित्तस्य लिंगान्यखिलानि यानि पित्तात्मके तानि भवंति गुल्मे ॥ ९ ॥

हृदय और कूखमें शूल हो, मुख और कंठ सूखे, वायु रुकजावे, जठराग्नि विषम होजावे तथा वायुके अन्यविकार भी होवें ये लक्षण वायुके गुल्ममें होतेहैं ॥ ॥ ८ ॥ पसीना आवे, ज्वर रहे, भोजनके पीछे विदाह हो (अर्थात् जलीजलीसी डकार आवें), दाह हो, तृषा अधिक लगे, शरीर (तथा चेहरे) का रंग ललाई लिये हो, मुँहमें कटुता (चरकापन) रहे तथा पित्तके अन्य जो जो चिह्न हैं वे भी हों ये लक्षण पित्तगुल्ममें होतेहैं ॥ ९ ॥

कफज सन्निपातज और रक्तज गुल्मके लक्षण ।

स्तैमित्यमन्नेऽरुचिरंगसादश्छर्दिः प्रसेको मधुरास्यता च ॥
कफस्य लिंगानि च यानि तानि भवंति गुल्मे कफसंभवे तु ॥ १० ॥
सर्वात्मकः सर्वविकारयुक्तः सोऽसाध्य उक्तः क्षतजश्च वक्ष्ये ॥
नवप्रसूताऽहितभोजना या याँ चामगर्भं विसृजेदृतौ वा ॥ ११ ॥
वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं करोति गुल्मं सरुजं सदाहम् ॥
पैत्तस्य लिंगेन समानलिंगं विशेषणं चाप्यपरं निबोध ॥ १२ ॥
न स्पंदते नोदरमेति वृद्धिं भवंति लिंगानि च गर्भिणीनाम् ॥
तं गर्भकालातिगमे चिकित्स्यमसृग्भवं गुल्ममुशंति तज्ज्ञाः ॥ १३ ॥

कफके गुल्ममें स्तैमित्य (शरीर गीलासा) हो, अन्नमें अरुचि हो, अंगोंमें शिथिलता हो, वमन हो, मुँहसे लार बहे या पानी भरभर आवे, मुँह मीठा रहे तथा कफके जो और लक्षण हैं (जैसे गुरुता आदि) वे भी कफके गुल्ममें होतेहैं ॥ १० ॥ सन्निपातके गुल्ममें सबके लक्षण और सब दोषोंके विकार होतेहैं यह सन्निपातका गुल्म असाध्य होताहै इससे आगे हम क्षतज गुल्मको कहेंगे क्षतज रक्तगुल्मको समझिये), नवीन प्रसूता स्त्री अहित भोजन करे या जिसके गर्भपात हो वह अहित भोजन करे या ऋतुधर्मके समय अहित वातुल आहार, विहार करे तो वायु उसके रुधिरको रोककर पीडा और दाहसहित गुल्म (रक्त-गुल्म) पैदा करता है इसके लक्षण प्रायः पित्तगुल्मके समानही होते हैं तथा जो विशेष होते हैं उन्हें सुनो ॥ ११ ॥ १२ ॥ गर्भकी भांति फिरे नहीं और न गर्भकी भांति पेट बढे परंतु छर्द्यादिक लक्षण बहुधा गार्भिणीकेसे हों इसे वैद्य रक्तगुल्म कह-तेहैं इसकी चिकित्सा गर्भकी अवधि (दश महीने) पीछे करनी चाहिये ॥ १३ ॥

(श्लो० ११) क्षतज च वक्ष्ये क्षतज रुधिरं तद्भवो गुल्मः क्षतजं रक्तगुल्म इत्यर्थः ।

यह गुल्म अपने समान व्यक्तियोंसे संचित होताहै जैसे जलमें बुलबुला उठकर यदि टूटे तो उसीमें प्रविष्ट होजाताहै इसी कारणसे गुल्म पकता नहीं (और अंतर्विद्रधि अपने असमानदोषों पित्तरक्तादिसे होता है वह शीघ्र पकजाता है)॥५॥

(वक्तव्य) गुल्ममें विशेष भाग वायु या कफका होताहै जो उसके स्थानकी व्यक्तिके प्रायः समानही व्यक्ति है इसीसे यह नहीं पकता है परन्तु हां यदि इसमें भी दूषित रक्तपित्त आदिका माद्दा विशेष हो तो पक भी जाताहै-देखो टिप्पणी ॥

सव्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि वोच्छ्रितैः ॥
पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः ॥ ६ ॥

मनुष्योंके अर्थात् पुरुषोंके वायु आदि पृथक् दोषोंसे तथा सबके सन्निपातसे गुल्म होताहै और स्त्रियोंके रक्तसे भी गुल्म होताहै-(यद्यपि बहुधा रक्तगुल्म स्त्रियोंहीके होताहै जो आर्तव या प्रसूतावशिष्ट रक्तके रुकनेसे होताहै परन्तु कभी२ पुरुषोंके भी शारीरक रक्तधातुसे रक्तगुल्म होजाताहै) ॥ ६ ॥

सदनं मंदता वह्नेराटोपोऽन्त्रविकूजनम् ॥
विण्मूत्रानिलसंगश्च सौहित्यासहता तथा ॥
द्वेषोऽन्ने वायुरूर्द्ध्वं च पूर्वरूपेषु गुल्मिनाम् ॥ ७ ॥

शरीरमें शिथिलता होंना, मंदाग्नि, अफारा, आंतें बोलना, दस्त, पेशाब और अधोवायुका रुककर आना, तृषाकी अक्षमता होना, अन्नपर अरुचि होना और वायुका ऊर्द्ध्वगमन होना ये लक्षण गुल्मके पूर्वरूपमें होते हैं ("सौहित्यासहता" का अर्थ डल्हनमिश्रजीने तृष्णाका अक्षमत्व लिखा है परन्तु वाचस्पत्यादिमें सौहित्यका अर्थ तृप्ति है अर्थात् पेट भरेपर सहा न जाय भोजन भरपेट करनेपर पेट फटासा जावे जौर ऐसाही भावमिश्रजीने लिखा है-देखो टिप्पणी) ॥ ७ ॥

वातगुल्म और पित्तगुल्मके लक्षण ।

हृत्कुक्षिशूलं मुखकण्ठशोषो वायुर्निरुद्धो विषमाग्निता च ॥
ते ते विकाराः पवनात्मकाश्च भवंति गुल्मेऽनिलसंभवे तु ॥ ८ ॥

(श्लो० ६) रक्तेन चापर इत्यत्र चकारात् धातुरक्तेनापि गुल्मो जायते स च पुंसां स्त्रीणां च भवति (इति डल्हनः) वृद्धवाग्भटे अष्टविधो गुल्मः पठितः । तथाचोक्तम्-"गुल्मोऽष्टधा पृथग्दोषैः संसृष्टैर्निचय गतैः ॥ आर्तवस्य च दोषेण नारीणां जायतेऽष्टमः ॥ १ ॥" इति (श्लो० ७) सौहित्यासहता तृष्णासहत्वम् । वायुरूर्ध्वं च इति सन्ततोद्गार इत्यर्थः । (इति नि० सं०) वाचस्पत्ये तु सौहित्य तृप्तिः तस्य असहत्वं तृप्तिपर्यंतकृतभोजने असहत्वम् उदरस्फोटनवद्भवतीति । तथाचोक्त भावप्रकाशे "तृष्ट्यक्षमत्वांत्रविकूजन च" इति ।

नवस्ति करे तथा कफके गुलमवालेके जंगली जीवोंकी मज्जा और तैलकी वस्ति करना उचित है ॥ २१ ॥

वातगुल्मपर घृत ।

धात्रीफलानां स्वरसे षडंगं विपचेद्घृतम् ॥
शर्करासैंधवोपेतं तद्धितं वातगुल्मिने ॥ २२ ॥

आंवलोंके स्वरसमें षडंग घृत पकावे और उसमें खांड तथा सैंधव डाले यह घृत वातगुल्मवालेको (पान कराना) हित है (षडंगशब्दसे पंचकोल यवक्षारका कल्क युक्त करे ऐसा पायाजाता है) ॥ २२ ॥

चित्रकादि घृत ।

चित्रकव्योषसिन्धूत्थपृथ्वीकाश्चव्यदाडिमौ ॥ दीप्यकग्रंथिकाजाजिह्बुषाधान्यकैः समैः ॥ २३ ॥ दध्यारनालबदरमूलकस्वरसैर्घृतम् ॥ तत्पिबेद्वातगुल्माग्निदौर्बल्याटोपशूलनुत् ॥ २४ ॥

चित्रक, त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पीपल), सेंधानमक, हिंगुपत्री, चव्य और अनारदाना, अजमोदा, पीपलामूल, जीरा, हाऊबेर और धनियां इनको समान भाग लेवे ॥ २३ ॥ तथा दही कांजी, बेर और मूलीका रस डालकर घृत पकावे इसे वातगुलममें पान करे यह घृत मंदाग्नि अफारा और शूलको भी नाश करताहै॥२४॥

गुल्मनाशक अनेक घृतोंका उपदेश ।

हिंगुसौवर्चलाजाजीबिडदाडिमदीप्यकैः ॥ पुष्करव्योषधान्याम्लवेतसक्षारचित्रकैः ॥ २५ ॥ शठीवचाजगंधेलासुरसैश्च विपाचितम् ॥ शूलानाहहरं सर्पिर्दध्ना चानिलगुल्मिनाम् ॥ २६ ॥ विडदाडिमसिंधूत्थहुतभुग्व्योषजीरकैः ॥ हिंगुसौवर्चलक्षाररुग्वृक्षाम्लाम्लवेतसैः ॥ २७ ॥ बीजपूररसोपेतं सर्पिर्दधिचतुर्गुणम् ॥ साधितं दाधिकं नाम गुल्महृत्प्लीहशूलजित् ॥ २८ ॥

हिंगु, कालानोन, जीरा, बिडनोन, अनारदाना, अजमोदा, पुष्करमूल, सोंठ, मिरच, पीपल, धनियाँ, अम्लवतेस, यवक्षार और चित्रक ॥ २५ ॥ कचूर, वच, अजगंधा (ममरी), इलायची, तुलसी, चौगुना दही इनसे पकाया हुआ घृत

(श्लो० २२) षडग घृतं विपचेत् । अत्र धात्रीफलाना वरसे चतुर्गुणे । षडंगमिति षट्पलकम् । तेनात्र पंचकोलयवक्षारकल्कमिति लभ्यते (इति डल्हनः

गुल्मकी चिकित्सा ।

वातगुल्मार्दितं स्निग्धं युक्तं स्नेहैर्विरेचनैः ॥ उपाचरेद्यथाकालं निरूहैः सानुवासनैः ॥ १४ ॥ पित्तगुल्मार्दितं स्निग्धं काकोल्यादिघृतेन तु ॥ विरिक्तं मधुरैर्योगैर्निरूहैः समुपाचरेत् ॥ १५ ॥ श्लेष्मगुल्मार्दितं स्निग्धं पिप्पल्यादिघृतेन तु ॥ तीक्ष्णैर्विरिक्तं तद्रूपैः निरूहैः समुपाचरेत् ॥१६॥ सन्निपातोत्थिते गुल्मे त्रिदोषघ्नो विधिर्हितः ॥ पित्तवद्रक्तगुल्मिन्या नार्याः कार्यः क्रियाविधिः॥१७॥

वायुके गुल्मसे पीडित मनुष्यको स्नेहों (यथोचित चतुःस्नेहों) से स्निग्ध करके स्नेह विरेचन देना चाहिये और कालके अनुसार निरूहण और अनुवासनवास्तिका भी उपचार करे ॥ १४ ॥ पित्तगुल्मके रोगीको काकोल्यादिके घृतसे स्नेहन करे और मधुर द्रव्योंके योगसे विरेचन दे और इसी भांति निरूहण वस्तिका उपचार करे ॥ १५ ॥ कफगुल्मवालेको पिप्पल्यादिसे सिद्ध किये घृतसे स्नेहन करे और तीक्ष्ण विरेचन देवे और ऐसेही निरूहण वस्तिका उपचार करना ॥ १६ ॥ सन्निपातका गुल्म हो तो तीनों दोषोंको नाश करनेवाली विधि करनी हितकारक है तथा रक्तगुल्मवाली स्त्रीकी चिकित्सा पित्तगुल्मके समान करनी चाहिये ॥ १७ ॥

विशेषमपरं चास्याः शृणु रक्तविभेदनम् ॥ पलाशभस्मतोयेन सिद्धं सर्पिः प्रयोजयेत् ॥ १८ ॥ दद्यादुत्तरबस्तिं च पिप्पल्यादिघृतेन तु ॥ उष्णैर्वा भेदयेद्भिन्नं विधिरासृग्दरो हितः ॥ १९ ॥

रक्तगुल्म जो स्त्रियोंके होता है उसके भेदनकी विशेष विधि सुनो पलाश (ढाक) की राख (या क्षार) के जलसे सिद्ध किया घृत उपयोग करे ॥ १८ ॥ तथा पिप्पल्यादि घृतकी उत्तरवास्ति दे अथवा उष्ण पदार्थोंसे रक्तगुल्मको भेदन करके फिर असृग्दर (प्रदर) विधि करके साधन करे ॥ १९ ॥

आनूपौदकमज्जानो वसातैलं घृतं दधि ॥ विपक्वमेकतः शस्तं वातगुल्मेऽनुवासनम् ॥ २० ॥ जांगलैकशफानां तु वसा सर्पिश्च पैत्तिके ॥ तैलं जांगलमज्जान एवं गुल्मे कफोत्थिते ॥ २१ ॥

आनूप (जल किनारेके) और जलके जीवोंकी मज्जा, चरबी, तैल, घृत और दही इनको एकत्र पकाकर वायुके गुल्मवालेके अनुवासनवास्ति करे ॥ २० ॥ और पित्तगुल्मवालेके जंगली और एक शफवाले जीवोंकी चर्वी और घृतकी अनुवास-

आरग्वधादौ विपचेद्दीपनीययुतं घृतम् ॥ क्षारवर्गे पचेच्चान्यत्पचेन्मूत्रगणेऽपरम् ॥ घ्नंति गुल्मं कफोद्भूतं घृतान्येतान्यसंशयम् ॥३५॥

आरग्वधादिगणमें दीपनीय युक्त घृत पकावे अथवा क्षारवर्गमें पकावे अथवा मूत्रवर्गमें पकावे ये घृत कफके गुल्मको निःसंदेह नाश करतेहैं ॥ ३५ ॥

यथादोषोच्छ्रयं चापि चिकित्सेत्सान्निपातिकम् ॥ ३६ ॥
चूर्णं हिंग्वादिकं वापि घृतं वा प्लीहनाशनम् ॥
पिबेद्गुल्मापहं काले सर्पिस्तैल्वकमेव वा ॥ ३७ ॥

यदि सन्निपातका गुल्म हो तो उसमें जौनसा दोष बलवान् हो उसीके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३६ ॥ अथवा हिंग्वादिचूर्ण सेवन करे या प्लीहनाशक घृत (जो प्लीहाधिकारमें कहाहै) उसे समयपर पीवे वह भी गुल्मका नाश करनेवाला है तथा तैल्वक घृत (जो वातव्याधिमें कहा है) उसे सेवन करे ॥ ३७ ॥

क्षारविधान ।

तिलेक्षुरकपालाशसार्षपं यवनालजम् ॥ भस्म मूलकजं चापि गोजाविखरहस्तिनाम् ॥ ३८ ॥ मूत्रेण महिषीनां च पालिकैश्चावचूर्णितैः ॥ कुष्ठसैंधवयष्ट्याह्वनागरक्रिमिघातिभिः ॥ ३९ ॥ साजमोदैश्च दशभिः सामुद्राच्च पलैर्युतम् ॥ अयः पात्रेऽग्निनाल्पेन पक्त्वा लेह्यमथोद्धरेत् ॥ ४० ॥ तस्य मात्रां पिबेद्दध्ना सुरया सर्पिषापि वा ॥ धान्याम्लेनोष्णतोयेन कौलत्थेन रसेन वा ॥ ४१ ॥ गुल्मं वातविकारांश्च क्षारोयं हंत्यसंशयम् ॥ ४२ ॥

तिल, तालमखाना, ढाक, सरसों (इनके वृक्ष या पंचांग) और जौकी नाली तथा मूली इन सबको (सुखाकर) भस्म करे और उस भस्मको गौ, बकरी, भेड, गधा, हाथी और भैंस इनके मूत्रमें घोल दे (और चुवाले) फिर कूट, सैंधव, मुलेठी, सोंठ, विडंग और अजमोदा इनको पल पल भर लेकर चूर्ण करके डाले और समुद्रनोन दश पल मिलादे और लोहेकी कड़ाहीमें मन्दी आंचसे पकावे जब अवलेहसा होजावे तब उतार ले ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इसमेंसे मात्राके अनुसार दहीके संग या मद्यसे, घृतसे, दहीके पानीसे, गरम

श्लो० ३५) अत्रापि आरग्वधादौ क्षारवर्गे मूत्रगणेऽपि दीपनीयप्रक्षेपपूर्वकानि घृतानि साधनीयानीत्यर्थः।

शूल और अफारेको नाश करताहै तथा वातगुल्मवालोंको हित है ॥ २६ ॥ विड-नोन, अनारदाना, सैंधानमक, चित्रक, त्रिकटु, जीरा, हींग, सोंचरनोंन, यवक्षार, रुक् (अर्थात् कूट), वृक्षाम्ल (तिंतिडीक) और अम्लवेतस ॥ २७ ॥ इनको एकत्रकर बिजोरेका रस और दही चौगुना डालकर घृत पकावे यह दाधिक नाम घृत गुल्म, हृदयरोग, प्लीहा और शूल इनको जीतनेवाला है ॥ २८ ॥

रसोनस्वरसे सर्पिः पंचमूलरसान्वितम् ॥ सुरारनालदध्यम्लमू-लकस्वरसैः सह ॥२९॥ व्योषदाडिमवृक्षाम्लयवानीचव्यसैंधवैः ॥ हिंग्वम्लवेतसाजाजीदीप्यकैश्च समांशकैः ॥ ३० ॥ सिद्धं गुल्मग्र-हण्यर्शःश्वासोन्मादक्षयज्वरान् ॥ कासापस्मारमंदाग्निप्लीहशूला-निलाञ्जयेत् ॥ ३१ ॥ दधि सौवीरकं सर्पिः काथौ मुद्गकुलत्थजौ ॥ पंचाढकानि विपचेदावाप्य द्विपलान्यथ ॥ ३२ ॥ सौवर्चलं स्वर्जि-कां च देवदार्व्यथ सैंधवम् ॥ वातगुल्मापहं सर्पिरेतद्दीपनमेव च॥३३॥

लहसनका रस और बृहत्पंचमूलका क्काथ, मदिरा, कांजी, दध्यम्ल (दहीका तोड या खट्टा दही) और मूलीका रस इनको मिलावे ॥ २९ ॥ त्रिकटु, अनारदाना, तिंतिडीक, अजवायन, चव्य, सैंधानमक, हींग, अम्लवेतस, जीरा, अजमोदा इन सबको समान भाग लेवे ॥ ३० ॥ और इनसे घृत सिद्ध करले यह घृत गुल्म, ग्रहणी, बवासीर, श्वास, उन्माद, क्षय, ज्वर, खाँसी, मृगी, मंदाग्नि, प्लीहा, शूल और वायुके रोग इन सबको जीत लेताहै ॥ ३१ ॥ दही, सौवीर (एक प्रकारकी कांजी), घृत तथा मूंग और कुलथीका क्काथ इन्हें एक एक आढक लेवे (अर्थात् पांचों पांच आढक हुईं) और इनमें कालानमक, सज्जीखार, देवदारु, सैंधानमक ये दो दो पल डाल देवे और घृत पका लेवे यह घृत वातगुल्मका नाश करनेवाला है और दीपन भी है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

तृणमूलकषाये तु जीवनीयैः पचेद्घृतम् ॥
न्यग्रोधादिगणे वापि गणे वाप्युत्पलादिके ॥
रक्तपित्तोत्थितं घ्नंति घृतान्येतान्यसंशयम् ॥ ३४ ॥

तृणपंचमूलके क्काथमें जीवनीय गणसे घृत पकावे अथवा न्यग्रोधादि गणसे पकावे अथवा उत्पलादि गणसे पकावे ये घृत रक्तज तथा पित्तज गुल्मोंको निःसं-देह नाश करतेहैं ॥ ३४ ॥

(श्लो० ३४) न्यग्रोधादिगणे उत्पलादिगणेऽपि जीवनीयप्रक्षेपपूर्वकानि साध्यानि घृतानि रक्तोत्थं पित्तोत्थं गुल्मं च घ्नंतीत्यर्थः ।

(समान भाग) मिलाकर गोमूत्र डालकर पका लेवे जब वह गाढा होजावे तब गोली बनालेवे इन्हें भोजन बिना किये (बलके अनुसार) खावे ॥ ४९ ॥ इससे गुल्म और मंदाग्नि निःशेष नष्ट होजातेहैं तथा हृद्रोग, ग्रहणीदोष और दारुण पांडुरोग भी नष्ट होजाते हैं ॥ ५० ॥

सशूले सोन्नतेऽस्पंदे दाहपाकरुगन्विते ॥
गुल्मे रक्तं जलौकोभिः शिरामोक्षेण वा हरेत् ॥ ५१ ॥

जो गुल्म शूलयुक्त हो, ऊपरको (बाहरकी तरफ) उठाहुआ हो, चलायमान नहीं हो, उसमें दाह हो, पकावपर आगया हो या पकगया हो उसमें दरदभी हो ऐसी अवस्थावाले गुल्ममें जलौका लगाकर या शिरामोक्ष (फस्त) से रुधिर निकाल देना उचित है ॥ ५१ ॥

गुल्ममें खानपान ।

सुखोष्णा जांगलरसाः सुस्निग्धा व्यक्तसैंधवाः ॥ कटुत्रिकसमायुक्ता हिताः पाने च गुल्मिनाम् ॥ ५२ ॥ पेया वातहरैः सिद्धाः कौलत्थाः संस्कृता रसाः ॥ खलाः सपंचमूलाश्च गुल्मिनां भोजने हिताः ॥ ५३ ॥

गुल्मवाले मनुष्योंको जंगली जीवोंके मांसका रस जो सैंधानमक और त्रिकटुसे युक्त हो और घृतादिसे सुंदर स्निग्ध हो वह निवाया निवाया पिलाना हितकारक होताहै ॥ ५२ ॥ तथा वायुनाशक द्रव्यों (भद्रदार्वादिसे सिद्ध की हुई पेया पिलानी तथा बृहत्पंचमूलयुक्त और यथोक्त संस्कार दियेहुए कुलथीके खल (कैथ, दाडिम, तत्र शाक आदिसे संस्कृत कवल) भोजनमें हित होतेहैं ॥ ५३ ॥

दस्त और वायु रुकनेपर यत्न ।

बद्धवर्चोनिलानां तु सार्द्रकं क्षीरमिष्यते ॥
कुंभीपिंडेष्टकास्वेदान्कारयेत्कुशलो भिषक् ॥ ५४ ॥

जिन गुल्मरोगियोंके दस्त और अधोवायु बंद हों या कम हों उन्हें अदरखको दूधके साथ पिलाना चाहिये तथा कुंभी (घड़ा बोतल आदि) से या पिंडेसे या ईटसे स्वेदन करावे (अर्थात् सेंके) ॥ ५४ ॥

(श्लो० ५१) दाहपाकरुगन्विते इत्यनेन गुल्मस्य कदाचित्पाकोपि भवेदिति बुध्यते । (श्लो० ५३) खलाः कपित्थदाडिमतक्रशाकादिसंस्कृताः कवला इति प्रसिद्धाः (इति नि० सं०)

जलसे या कुलथीके क्वाथसे पीवे (अर्थात् इनमेंसे किसीएकके साथ पीवे) यह क्षार गुल्म और वातविकारोंको अवश्य नष्ट करता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

स्वर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकजोऽपि वा ॥
तैलेन शमयेत्पीतो गुल्मं पवनसंभवम् ॥ ४३ ॥
पीतं सुखांबुना वापि स्वर्जिकाकुष्ठसैंधवम् ॥ ४४ ॥

केतक (केवडे) के क्षारको सज्जी और कूट मिलाकर तैलके संग पीना वायुके गुल्मको शांत करताहै ॥ ४३ ॥ अथवा सज्जीखार, कूट और सैंधानमक इनका चूर्ण बनाके गरम पानीके साथ लेवे ॥ ४४ ॥

गुल्मनाशक अन्य प्रयोग।

वृश्चीकमुरुवूकं च वर्षाभूर्बृहतीद्वयम् ॥ चित्रकं च जलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषितम् ॥ ४५ ॥ मागधीचित्रकक्षौद्रलिप्ते कुंभे निधापयेत् ॥ मधुनः प्रस्थमावाप्य पथ्याचूर्णार्द्धसंयुतम् ॥ ४६ ॥ तुषोषितं दशाहं तु जीर्णभक्तः पिबेन्नरः ॥ अरिष्टोऽयं जयेद्गुल्ममविपाकमरोचकम् ॥ ४७ ॥

सुपेद सांठी, एरंड, रक्त सांठी, दोनों कटेली, चित्रक इनको द्रोणभर पानीमें क्वाथ करे और चौथाई भाग शेष रहनेपर उतार ले ॥ ४५ ॥ फिर एक घडेमें पीपल, चित्रक और शहद लेपन करके उसमें डाल दे और एक प्रस्थ शहद डाल दे और आधे प्रस्थ हरीतकीका चूर्ण भी मिला देवे ॥ ४६ ॥ और मुँह बन्द करके दश दिन तक तुष (यवके भूसे) में दबा देवे फिर इसे निकाल कर भोजन पचेपर पीवे यह अरिष्ट गुल्मको, पचावट न होनेको तथा अरुचिको नष्ट करताहै ॥ ४७ ॥

पाठानिकुंभरजनीत्रिकटुत्रिफलाग्निकम् ॥ लवणं वृक्षबीजं च तुल्यं स्यादनवं गुडम् ॥ ४८ ॥ पथ्याभिः सहितं चूर्णं गवां मूत्रयुतं पचेत् ॥ गुटिकास्तद्घनीभूतं कृत्वा खादेदभुक्तवान् ॥ ४९ ॥ गुल्मप्लीहाग्निसादांश्च नाशयेयुरशेषतः ॥ हृद्रोगं ग्रहणीदोषं पांडुरोगं च दारुणम् ॥ ५० ॥

पाठा, दंती, हलदी, त्रिकटु, त्रिफला, चित्रक, नमक, इन्द्रजौ इन्हें पीसकर सबके समान पुराना गुड मिलावे ॥ ४८ ॥ तथा इस चूर्णमें हरडेका चूर्ण

दंती और चित्रककी जड तथा अन्य वायुनाशक द्रव्योंका आरिष्ट सूत्रस्थानोक्त-विधिसे बनाकर उपयोग करे ॥ ५९ ॥ अथवा करंज या किरमालेके अंकुरोंको स्नेहमें भूनकर खाया करे और जिस गुल्मवालेके ऊर्द्धवायु हो उसे निरूहणवास्ति नहीं देवे ॥ ६० ॥ तथा निशोथ और सोंठको (मद्य या गरम जल आदिसे) पीवे अथवा हरडेकी छाल गुड़में मिलाके खाया करे अथवा गूगल, निशोथ, दंती, द्रवंती (दंतीका भेद), सेंधव और वच ॥ ६१ ॥ इनको गोमूत्र, मदिरा, दूध, दाखका रस इनमेंसे किसीके संग बलाबल देखकर पिलावे इसी प्रकार पीलू और नमक पीसकर सेवन करे ॥ ६२ ॥ अथवा पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सेंधानमक इनके संग मदिरा समयपर पीना गुल्मको नाश करदेता है ॥ ६३ ॥ तथा जिसके दस्त और अधोवायु रुककर आते हों या रुके हों वह जौके पदार्थ यवागू आदिको दूधके संग खावे अथवा जौकेही कुल्माष (उबालकर पिष्टमय पदार्थ) नमकीन बनाकर खूब घृत डालकर खावे ॥ ६४ ॥

गुल्मका उपद्रव शूल और इसके लक्षण ।

अथास्योपद्रवः शूलः कथंचिदुपजायते ॥ शूलं निखानितमिव सुखं येन तु वेत्त्यसौ ॥ ६५ ॥ तत्र विण्मूत्रसंरोधः कृच्छ्रोच्छ्वासः स्थिरांगता ॥ तृष्णा दाहो भ्रमोऽन्नस्य विदग्धे परिवृद्धता ॥ ॥ ६६ ॥ रोमहर्षोऽरुचिश्छर्दिर्भुक्तवृद्धिर्जडांगता ॥ वाय्वादिभिर्यथासंख्यं मिश्रैर्वा वीक्ष्य योजयेत् ॥ ६७ ॥

इस गुल्ममें उपद्रवरूप शूल भी कभी कभी होजाया करता है इस शूलपीडाके होनेमें जैसे कोई कील या शूल गाडता हो ऐसा जान पड़ता है ॥ ६५ ॥ (तीनों दोषोंके शूलके पृथक् २ लक्षण) इसमें मल और मूत्र रुकजावे, कष्टसे श्वास लिया जावे, शरीर कडा होजावे (ये वायुके शूलमें होते हैं) तथा तृषा हो, दाह हो, भ्रम हो और भोजन कियाहुआ अन्न पचने लगे तब शूल बढ जावे (ये लक्षण पित्तशूलके होते हैं) ॥ ६६ ॥ तथा रोंगटे खडे हों, अरुचि हो, भोजन करतेही शूलमें वृद्धि हो, अंगोंमें जडता हो (ये कफके शूलके लक्षण हैं) वातादिके लक्षण यथाक्रम देखकर तथा मिश्र, द्वंद्वज और सन्निपातके शूलमें दो दोषोंके तथा तीनोंके मिले लक्षण होते हैं इसे विचारकर औषधका उपयोग करना चाहिये ॥ ६७ ॥

गुल्मशूलमें यत्न ।

पथ्या त्रिलवणं क्षारं हिंगु तुंबुरु पौष्करम् ॥ यवान्यथ हरिद्रा च

(श्लो० ६८) त्रिलवण सैंधवसौवर्चलविडानि (इति डल्हनः)

गुल्मिनः सर्व एवोक्ता दुर्विरेच्यतमा भृशम् ॥ अतश्चैतांस्तु सुस्विन्नान्स्रंसनेनोपपादयेत्॥५५॥ विलेपनाभ्यंजनानि तथा संदहनानि च ॥ उपनाहाश्च कर्तव्याः सुखोष्णाः शाल्वणादयः ॥५६॥ उदरोक्तानि सर्पींषि चूर्णवर्तिक्रियास्तथा ॥ लवणानि च योज्यानि यान्युक्तान्युदरामये ॥ ५७ ॥ वातवर्चोनिरोधे तु सामुद्रार्द्रकसर्षपैः ॥ कृत्वा पायौ विधातव्या वर्तयो मारिचोत्तराः ॥ ५८ ॥

गुल्मके रोगी प्रायः सभी अतिदुर्विरेच्य होतेहैं (अर्थात् उन्हें दस्तावर दवासे भी दस्त नहीं आया करतेहैं) इस लिये इनको ठीक स्वेद कराकर स्रंसन द्रव्यों (किरमाला आदि) से दस्त करावे ॥ ५५ ॥ तथा लेपन, अभ्यंग (मर्दन) और दहन (अग्निसे दाग देना) और उपनाह तथा निवाये २ शाल्वणादिका भी यथायोग्य उपयोग करना उचित है ॥ ५६ ॥ तथा उदररोगमें कहेहुए घृत, चूर्ण, वर्तिक्रिया (बत्ती देना) तथा लवण जो उदररोगमें कहेहैं उन सबका उपयोग गुल्ममें भी यथायोग्य किया जासकता है ॥ ५७ ॥ और जब अधोवायु और दस्त रुक ही जावें तब समुद्रलवण, अदरख और सरसों इन्हें पीसकर मिरच (स्याहमिर्च) मिलाकर बत्तीमें लपेटकर वह बत्ती गुदामें प्रविष्ट करनी उचित है ॥ ५८ ॥

दंतीचित्रकमूलेषु तथा वातहरेषु च ॥ कुर्यादरिष्टांन्सर्वांश्च सूत्रस्थाने तथेरितान् ॥ ५९ ॥ खादेद्द्रोण्यंकुरान्भ्रष्टान्पूतीकन्नृपवृक्षजान् ॥ ऊर्द्ध्ववातमनुष्यं च गुल्मिनं न निरूहयेत् ॥ ६० ॥ पिबेत्त्रिवृन्नागरं वा सगुडां वा हरीतकीम् ॥ गुग्गुलुं त्रिवृतां दंतीं द्रवंतीं सैंधवं वचाम् ॥ ६१ ॥ मूत्रमद्यपयोद्राक्षारसैर्वीक्ष्य बलाबलम् ॥ एवं पीलूनि पिष्टानि पिबेत्सलवणानि तु ॥ ६२ ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकसैंधवैः ॥ युक्ता हंति सुरा गुल्मं शीघ्रं काले प्रयोजिता ॥६३॥ बद्धविण्मारुतो गुल्मी भुंजीत पयसा यवान् ॥ कुल्माषान्वा बहुस्नेहान्भक्षयेल्लवणोत्तरान् ॥ ६४ ॥

(श्लो० ५६) संदहनानि अग्निना दग्धकरणानि (श्लो० ५८) मरिचोत्तराः मरिचप्रधाना इत्यर्थः ।
(श्लो० ६२) पीलूनि सलवणानि पिष्ट्वा पिबेत् । पीलु करीरवृक्षस्य पक्वं फलम् तं गुडफलमित्याहुः। लोके "पीचू" इति वदंति । अन्ये तु पीलु जालकवृक्षस्य पक्वं फलमाहुः यं लोके "पील" इति वदंति ।

अथ शूलरोग ।

विना गुल्मेन यच्छूलं गुल्मस्थानेषु जायते ॥
निदानं तस्य वक्ष्यामि रूपं च सचिकित्सितम् ॥ ७५ ॥

विना गुल्मके भी गुल्मके स्थानों (पँसवाडे, हृदय, नाभि और वस्ति) में शूल होताहै उसका निदान और रूप तथा चिकित्साका वर्णन अगाडी करते हैं ॥७५॥

शूलका हेतु और संप्राप्ति ।

वातमूत्रपुरीषाणां विग्रहादतिभोजनात् ॥ अजीर्णाध्यशनायास-विरुद्धान्नोपसेवनात् ॥ ७६ ॥ पानीयपानात्क्षुत्काले विरूढानां च सेवनात् ॥ पिष्टान्नशुष्कमांसानामुपयोगात्तथैव च ॥ ७७ ॥ एवंविधानां द्रव्याणामन्येषां चोपसेवनात् ॥ वायुः प्रकुपितः कोष्ठे शूलं संजनयेद्भृशम् ॥ निरुच्छ्वासो भवेत्तेन वेदनापीडितो नरः ॥ ७८ ॥

अधोवायु, मूत्र और दस्तके रोकनेसे, अतिभोजन करनेसे, अजीर्णसे, भोजन पर भोजन करनेसे, विरुद्ध अन्न खानेसे ॥ ७६ ॥ तथा भूँखके समय पानी पीनेसे-विरूढ (जिसमें अंकुर निकल आये हों ऐसे अथवा पुराने) अन्न खानेसे, पिट्ठीके पदार्थ विशेष खानेसे और सूखा मांस खानेसे ॥ ७७ ॥ अथवा इसी प्रकारके अन्य पदार्थोंका सेवन करनेसे, पेटमें वायु कुपित होकर दारुण शूल पैदा करता है, शूल रोग ऐसा दारुण है कि जिसकी पीडासे मनुष्य व्याकुल होकर श्वास भी नहीं ले सकता (अर्थात् यह रोग अच्छे प्रकार श्वास भी नहीं लेने देता) ॥ ७८ ॥

शूलकी निरुक्ति ।

शंकुस्फोटनवत्तस्य यस्मात्तीव्राश्च वेदनाः ॥
शूलासक्तस्य लक्ष्यंते तस्माच्छूलमिहोच्यते ॥ ७९ ॥

शंकु (कांटे या नोंक) के शरीरमें चुभकर टूट जानेकेसी या शूल नाम शस्त्रसे शरीर घायलहुआ जाता हो ऐसी तीव्र पीडा शूलरोगवालेको मालूम पडती है इससे इस रोगको शूल कहते हैं ॥ ७९ ॥

शूलके लक्षण ।

निराहारस्य यस्यैव तीव्रं शूलमुदीर्यते ॥
प्रस्तब्धगात्रो भवति कृच्छ्रेणोच्छ्वसितीव च ॥ ८० ॥

(श्लो० ७९) शंकुस्फोटनवत्कंटकहननवत्तीव्रा वेदना ।

विडंगान्यम्लवेतसम् ॥ ६८ ॥ विदारी त्रिफला भीरु शृंगाटी गुडशर्करा ॥ काश्मरीफलयष्ट्याह्वपरूषकहिमानि च ॥ ६९ ॥ षड्ग्रंथातिविषादारुपथ्यामारिचवृक्षकान् ॥ कृष्णामूलकचव्यं च नागरक्षारचित्रकान् ॥ ७० ॥ उष्णाम्लकांजिकक्षीरतोयैः श्लोकसमापनात् ॥ यथाक्रमं विमिश्रांश्च द्वंद्वे सर्वांश्च सर्वजे ॥ ७१ ॥

हरडेकी छाल, तीनों लवण (सेंधा, काला, विड), यवक्षार, हींग, धनियां, पुष्करमूल, अजवायन और हलदी, वायविडंग और अम्लवेतस (इन्हें वायुशूलमें) ॥ ६८ ॥ विदारी, त्रिफला, शतावर, सिंघाडे, गुड, खांड, खँभारी, मुलेठी और फालसे और, चन्दन (इन्हें पित्तशूलमें) ॥ ६९ ॥ षड्ग्रन्था (वच), अतीस, देवदारु, हरडे, मिरच, इंद्रयव, पीपलामूल और चव्य, सोंठ, यवक्षार और चित्रक (इन्हें कफशूलमें) ॥ ७० ॥ यथाक्रम एक एक श्लोकके इन योगोंको वातादिशूलोंमें वक्ष्यमाण अनुपानोंसे सेवन करे । वायुमें गरम खट्टी कांजीसे, पित्तमें गरम दूधसे और कफमें गरम जलसे उक्त औषधोंके चूर्णको खावे यदि द्विदोषका शूल हो तो दो योगोंकी औषधें और तीनों दोषोंके शूलमें तीनोंकी औषधें मिलाके उपयोग करे ॥ ७१ ॥

तथैव सेकावगाहप्रदेहाभ्यंगभोजनम् ॥ शिशिरोदकपूर्णानां भाजनानां च धारणम् ॥ ७२ ॥ वमनोन्मर्दनस्वेदलंघनक्षपणक्रियाः ॥ स्नेहादिश्च क्रमः सर्वो विशेषेणोपदिश्यते ॥ ७३ ॥

इसी भांति सेक, अवगाहन, प्रदेह (उष्णलेप), अभ्यंग (स्नेहादिमर्दन) तथा भोजन ये वायुके शूलमें करे और ठंढे पानीसे भरे हुए पात्र (शूलपर) रखना यह पित्तशूलमें करे ॥ ७२ ॥ तथा वमन, उन्मर्दन, स्वेदन (तपाना) और लंघन तथा क्षपण (शोधन) ये कफज्वरमें करे तथा द्वंद्वजमें दो और त्रिदोषजमें सब करे और स्नेहादि क्रम विशेष करके सबमें उचित कहा है ॥७३॥

गुल्ममें पथ्य ।

वल्लूरं मूलकं मत्स्याञ्छुष्कशाकानि वैदलम् ॥
न खादेदालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥ ७४ ॥

वल्लूर (सूखा मांस), मूलक (मूलशाक या मूली), मछली, सूखे शाक, वैदल (मूँग, चौले आदि तथा आलुक (आलु पिंडालू, रतालू आदि) और मीठे फल मोचाफल आदि) गुल्मका रोगी नहीं खावे ॥ ७४ ॥

पवनस्तस्मात्तं त्वरया जयेत् ॥ ८६ ॥ तस्य शूलाभिपन्नस्य स्वेदं एव सुखावहः ॥ पायसैः कृसरापिंडैः स्निग्धैर्वा पिशितैर्हितैः॥८७॥

शूलोंके लक्षण तो वर्णन करदिये अब इनकी चिकित्सा श्रवण करो-सब प्रकारके शूलोंमें वायुही शीघ्र शूल करनेवाला है इससे उसे शीघ्रही (बहुत जल्दी) शांत करना चाहिये ॥ ८६ ॥ शूलपीडित मनुष्यको स्वेद कराना (सेककर पसीना दिलाना) ही सुखकारक होताहै इससे दूधके पदार्थों (मावे) आदिसे या कृसरा (खिचडी आदिके पिंडसे स्निग्ध और वायुनाशक मांसोंसे सेक सेककर स्वेद कराना हित है ॥ ८७ ॥

वायूके शूलका यत्न ।

त्रिवृच्छाकेन वा स्निग्धमुष्णं भुंजीत भोजनम् ॥ चिरबिल्वांकुरान्वापि तैलभृष्टांस्तु भक्षयेत् ॥ ८८ ॥ वैहंगांश्च रसान्स्निग्धाञ्जांगलाञ्छूलपीडितः॥यथालाभं निषेवेत मांसानि बिलशायिनाम् ८९॥

निशोथके शाकके साथ स्निग्ध और गरम भोजन करना चाहिये अथवा करंजके अंकुरोंको तैलमें भूनकर खावे ॥ ८८ ॥ तथा शूलरोगसे पीडित मनुष्य पक्षियोंके मांसका रस स्निग्ध सेवन करे तथा जंगली जीवोंके मांसका रस सेवन करे अथवा यथालाभ बिलमें रहनेवाले जीवोंके मांसका रस सेवन करे ॥ ८९ ॥

सुरा सौवीरकं शुक्तं मस्तूदश्वित्तथा दधि ॥ सकालैलवणं पेयं शूले वातसमुद्भवे ॥९०॥ कुलत्थयूषो युक्ताम्लो लावकीयूषसंस्कृतः ॥ ससैंधवः समरिचो वातशूलविनाशनः ॥ ९१ ॥

मद्य, सौवीर (काँजी), सिरका, दहीका तोड तथा उदश्वित् (आधे पानीयुक्त तक्र) तथा दही इनमेंसे कोई काले नमकके साथ वायुके शूलमें पीवे ॥९०॥ कुलत्थका यूष जिसमें खटाई पड़ी हो और लवेके यूषसे संस्कार किया हो तथा सैंधानमक और मिरचें मिली हों यह भी वायुके शूलको नष्ट करता है ॥ ९१ ॥

विडंगं शिग्रुकंपिल्लपथ्याश्यामाम्लवेतसान् ॥ सुरसामश्वकर्णं च सौवर्चलयुतान्पिबेत् ॥ मद्येन वातजं शूलं क्षिप्रमेव प्रशाम्यति ॥ ॥ ९२ ॥ पृथ्वीकाजाजिचविकायवानीव्योषचित्रकाः ॥ पिप्पल्यः पिप्पलीमूलं सैंधवं चेति चूर्णयेत् ॥ ९३ ॥ तानि चूर्णानि पयसा पिबेत्कांबलिकेन वा ॥ ९४ ॥ मद्यासवेन चुक्रेण सुरासौवीरकेन

वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण कुरुते नरः ॥
एतैर्लिंगैर्विजानीयाच्छूलं वातसमुद्भवम् ॥ ८१ ॥

जिसके आहार किये पहले शूल तीव्र हो, शरीर कडा पडजावे, कष्टसे श्वास लिया जावे ॥ ८० ॥ अधोवायु, मूत्र और दस्त कष्टसे कम कम आवें इन लक्षणोंसे वायुका शूल जानना चाहिये ॥ ८१ ॥

तृष्णा दाहो मदो मूर्च्छा तीव्रं शूलं तथैव च ॥ शीताभिकामो भवति शीतेनैव प्रशाम्यति ॥ ८२ ॥ एतैर्लिंगैर्विजानीयाच्छूलं पित्तसमुद्भवम् ॥ ८३ ॥ शूलेनोत्पीड्यमानस्य हृल्लास उपजायते ॥ अतीव कोष्ठपूर्णत्वं तथैव गुरुगात्रता ॥ एतच्छ्लेष्मसमुत्थस्य शूलस्योक्तं निदर्शनम् ॥ ८४ ॥

तृषा अधिक हो, दाह हो, मद हो, मूर्च्छा हो (जी घबराया आवे), शूल तीव्र हो, शीतल आहार, विहारकी इच्छा हो तथा शीतसे शूलमें शांति मालूम दे इन लक्षणोंसे पित्तका शूल जानना ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ शूलपीडित मनुष्यको यदि हृल्लास हो (उबकाई आवें), पेटमें खूब भरासा हो, शरीरमें (और पेटमें) भारीपन हो (तथा वेदना मंद मंद हो) ये लक्षण कफज शूलके जानने ॥ ८४ ॥

सर्वाणि दृष्ट्वा रूपाणि निर्दिशेत्सान्निपातिकम् ॥
सन्निपातसमुत्थानमसाध्यं तं विनिर्दिशेत् ॥ ८५ ॥

सबके लक्षण जिसमें मालूम हों उसे सन्निपातका शूल जानों यह सन्निपातका शूल असाध्य कहा है ॥ ८५ ॥

(वक्तव्य) पहले गुल्मके उपद्रवात्मक शूलमें द्वंद्वज भी कह चुके हैं इससे यहां भी दो दोषोंके मिश्रित लक्षण होनेसे उन्हींका द्वंद्वज शूल जानना तथा कई आचार्योंने दोषभेदसे शूलके स्थान कहेहैं–देखो टिप्पणी ॥

शूलकी चिकित्सा ।

शूलानां लक्षणं प्रोक्तं चिकित्सां च निबोध मे ॥ आशुकारी हि

(श्लो० ८५) कैश्चित्पूर्वाचार्यैर्दोषभेदेन नियतं स्थानं शूलस्योक्तम् । तथाहि–"वातात्मकं वस्तिगतं वदंति पित्तात्मकं चापि वदति नाभ्याम् ॥ हृत्पार्श्वकुक्षौ कफसंनिविष्टं सर्वेषु देहेषु च सन्निपातात् ॥१॥" भावप्रकाशादौ शूलोऽष्टधा लिखितः यथा–"दोषैः पृथक्समस्तामद्वंद्वैः शूलोऽष्टधा भवेत् ॥ सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः ॥ २ ॥"

पित्तके शूलका यत्न ।

अथ पित्तसमुत्थस्य क्रियां वक्ष्याम्यतः परम् ॥ १०२ ॥ ससुखं छर्दयित्वा तु पीत्वा शीतोदकं नरः ॥ शीतलानि च सेवेत सर्वाण्युष्णानि वर्जयेत् ॥१०३॥ मणिराजतताम्राणि भोजनानि च सर्वशः ॥ वारिपूर्णानि तान्यस्य शूलस्योपरि निःक्षिपेत् ॥ ॥ १०४ ॥ गुडशालियवाः क्षीरं सर्पिःपानं विरेचनम् ॥ जांगलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनाम् ॥ १०५ ॥ रसान्सेवेत पित्तघ्नान्पित्तलानि विवर्जयेत् ॥ पालाशं धान्वनं वापि पिबेद्यूषं सशर्करम् ॥ १०६ ॥ परूषकाणि मृद्वीका खर्जूरोदकजान्यपि ॥ तत्पिबेच्छर्करायुक्तं पित्तशूलनिवारणम् ॥ १०७ ॥

इसके अगाडी अब हम पित्तके शूलकी चिकित्सा कहते हैं ॥ १०२ ॥ रोगीको सुखपूर्वक शीतल जलके योगसे वमन कराके शीतल पदार्थोंका सेवन करावे और सब प्रकारके गरम आहार, विहार औषधोंको त्याग दे ॥ १०३ ॥ मणि (बिल्लोर आदि) के, चांदीके, तांबेके पात्रोंको ठंढे पानीसे भरके शूलस्थानपर रक्खे ॥ १०४ ॥ गुड़, चावल और जव खावे तथा घृतपान करे और विरेचन करे तथा जंगली जीवोंका मांस भोजन करे ये पित्तशूलवालेके लिये परम औषध है ॥ १०५ ॥ तथा पित्तनाशक मांसरस सेवन करे और पित्तकारक आहार, विहार त्याग दे और पलाश तथा धान्वनका यूष खांड डालकर पीवे ("पालाशं" की जगह 'पालानां' यहभी पाठांतर है इसका ऐसा अर्थ करते हैं कि पालों (जंगलके पालों) के धान्वन अर्थात् जंगली जीवोंकी मृगयासे उत्पन्न हुए मांसरस शर्करायुक्त पीवे) ॥ १०६ ॥ फालसे, दाख, मुनक्का, खजूर, जलके फल कमलादिक लेकर उनका पन्ना बनाकर खांड मिलाकर पिलावे ये पित्तशूलके निवारण करनेवाले हैं ॥ १०७ ॥

कफशूलका यत्न ।

अशने भुक्तमात्रे तु प्रकोपः श्लैष्मिकस्य च ॥ वमनं कारयेत्तत्र पिप्पलीवारिणा भिषक् ॥ १०८ ॥ रूक्षः स्वेदः प्रयोज्यः स्यादन्याश्चोष्णाः क्रिया हिताः ॥ पिप्पलीशृंगबेरं च श्लेष्मशूले भिष-

(श्लो० १०९) शृंगवेरम् आर्द्रकं शुंठी च ।

वा ॥ अथैवैतानि चूर्णानि मातुलुंगरसेन वा ॥ ९५ ॥ तथा बदरयूषेण भावितानि पुनः पुनः ॥ तानि हिंगुप्रगाढानि सह शर्करया पिबेत् ॥ ९६ ॥ सह दाडिमसारेण वर्तिः कार्या भिषग्जिता ॥ सा वर्तिर्वातिकं शूलं क्षिप्रमेव व्यपोहति ॥ ९७ ॥ गुडतैलेन वा लीढा पीता मद्येन वा पुनः ॥ ९८ ॥

वायविडंग, सोहँजना, कमेला, हरीतकी, निशोथ, अम्लवेतस, तुलसी, अश्वकर्ण (शालका भेद) इन सबको पीसकर कालानमक मिलाकर मदिराके संग पीनेसे वायुका शूल शीघ्रही शांत होजाताहै ॥ ९२ ॥ तथा पृथ्वीका (हिंगुपत्री, कोई काला जीरा कहते हैं), सुपेद जीरा, चव्य, अजवायन, सोंठ, मिरच, पीपल, चित्रक, पिप्पली, पीपलामूल और सैंधव इन सबका चूर्ण बनाले इस चूर्णको भेडके दूधके संग पीवे ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ अथवा इसी चूर्णको मध्वासव (महुवेकी मद्यसे) या शुक्तसे या सुरा (मदिरा) से या कांजीसे पीवे अथवा इसी चूर्णको नींबूके रसकी या बेरके जूसकी वार वार भावना देकर हींग और खांड मिलाकर पीवे ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ अथवा इस चूर्णमें अनारका सार (रस) मिलाकर गोली बनालेवे वह गोली गुड और तैलमें मिलाकर चाटना या मदिराके संग खान वायुके शूलको शीघ्र नष्ट करदेता है ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

बुभुक्षाप्रभवे शूले लघु संतर्पणं हितम् ॥ उष्णैः क्षीरैर्यवागूभिः स्निग्धैर्मांसरसैस्तथा ॥ ९९ ॥ वातशूले समुत्पन्ने रूक्षस्निग्धेन योजयेत् ॥ सुसंस्कृताः प्रदेयाः स्युर्घृतपूरा विशेषतः ॥ १०० ॥ वारुणीं च पिबेज्जंतुस्तथा संपद्यते सुखी ॥ एतद्वातसमुत्थस्य शूलस्योक्तं चिकित्सितम् ॥ १०१ ॥

क्षुधासे होनेवाले शूलमें हलका, तृप्तिकारक, भोजन गरम दूधके संग देना या यवागूको स्निग्ध मांसरसके संग देना हितकारक होताहै ॥ ९९ ॥ यदि वायुके शूलवाला रोगी रूक्ष हो तो उसे स्निग्ध पदार्थोंकी योजना करे तथा विशेष करके वातघ्न द्रव्योंसे संस्कार कियेहुए घृतपूर (घेवर) देने चाहिये ॥ १०० ॥ अथवा वातशूलका रोगी मनुष्य वारुणी मदिरा पान करनेसे सुखी होताहै यह वातजशूलकी चिकित्सा वर्णन की गई है ॥ १०१ ॥

पार्श्वशूलके लक्षण ।

रुणद्धि मारुतं श्लेष्मा कुक्षिपार्श्वव्यवस्थितः ॥ स संरुद्धः करोत्याश्वाध्मानं गुडगुडायनम् ॥११६॥ सूचीभिरिव निस्तोदः कृच्छ्रोच्छ्वासी तदा नरः ॥ नान्नं वांछति नो निद्रामुपैत्यर्तिनिपीडितः ॥ ॥ ११७ ॥ पार्श्वशूलः स विज्ञेयः कफानिलसमुद्भवः ॥ ११८ ॥

जब कूख और पँसवाडोंमें स्थितहुआ कफ वायुको रोक देता है तब वह रुका हुआ वायु शीघ्रही अफारा और गुडगुडाहट पैदा करता है ॥ ११६ ॥ सुई चुभनेकीसी पीडा होतीहै और मनुष्यसे कष्टसे श्वास लिया जाता है, अन्नकी इच्छा नहीं होती और पीडित रोगीको निद्रा नहीं आती है ॥ ११७ ॥ इसे कफवायुसे उत्पन्न हुआ पार्श्वशूल (पँसलीका दर्द) कहतेहैं ॥ ११८ ॥

पार्श्वशूलका यत्न ।

तत्र पुष्करमूलानि हिंगु सौवर्चलं बिडम् ॥ सैंधवं तुंबुरुपथ्याचूर्णं कृत्वा तु पाययेत् ॥ ११९ ॥ पार्श्वहृद्बस्तिशूलेषु यवक्काथेन संयुतम् ॥ सर्पिः प्लीहोदरोक्तं वा घृतं वा हिंगुसंयुतम् ॥ ॥ १२० ॥ बीजपूरकसारं वा पयसा सह साधितम् ॥ एरंडतैलमथवा मद्यमस्तुपयोरसैः ॥ १२१ ॥ भोजयेच्चापि पयसा जांगलेन रसेन वा ॥ १२२ ॥

इस पार्श्वशूलमें पोहकरमूल, हींग, कालानोंन, बिडनोंन, सैंधानोंन, धनियां और हरडेकी छाल इनका चूर्ण करके पार्श्वशूल, हृदयशूल, वस्तिशूल इन सब रोगोंमें जौके क्काथके संग पिलावे अथवा प्लीहोदरमें कहाहुआ घृत पिलावे अथवा घृतमें हींग मिलाकर चटावे ॥ ११९ ॥ १२० ॥ अथवा बिजौरेका सार (अंतछाल) दूधमें पकाकर देवे अथवा एरंडके तैलको मदिरा या मस्तु या दूध या मांसरस इनमेंसे किसीके संग देवे ॥ १२१ ॥ औषध पचनेपर दूध या जंगली जीवोंके मांसरसके संग भोजन करावे ॥ १२२ ॥

प्रकुप्यति यदा कुक्षौ वह्निमाक्रम्य मारुतः ॥ तदाऽस्य भोजनं भुक्तं सोपस्तंभं न पच्यते ॥ १२३ ॥ उच्छ्वसित्यामशकृता शूलेनाहन्यते मुहुः ॥ नैवासने न शयने तिष्ठन्न लभते सुखम् ॥१२४॥ कुक्षिशूल इति ख्यातो वातादामसमुद्भवः ॥ १२५ ॥

(श्लो० १२४) आमशकृता अपक्वपुरीषेणेत्यर्थः ।

ग्जितम् ॥ १०९ ॥ पाठां वचां त्रिकटुकं तथा च कटुरोहिणीम् ॥
चित्रकस्य च निर्यूहे [3]पिबे[2]द्यूषं स सा[1]र्जकम् ॥ ११० ॥

कफका शूल भोजन खाते ही कुपित होताहै इसमें वैद्य पिप्पलीके क्वाथसे वमन करावे ॥ १०८ ॥ तथा रूखा स्वेद करावे तथा अन्य उष्ण क्रिया करे और पीपल तथा अदरख मिलाकर खाना कफशूलकी औषध है ॥ १०९ ॥ तथा पाठा, वच, त्रिकटु और कुटकीको चित्रकके क्वाथके संग पीवे अथवा कफनाशक धान्यों‑के यूषमें अर्जक (कुठेरक) मिलाकर पीवे ॥ ११० ॥

एरंडफलमूलानि मूलं गोक्षुरकस्य च ॥ शालिपर्णीं पृश्निपर्णीं बृहतीं कंटकारिकाम् ॥१११॥ दद्याच्छृगालविन्नां च सहदेवीं तथैव च ॥ महासहां क्षुद्रसहां मूलं चेक्षुरकस्य च ॥ ११२ ॥ एतत्सं‑भृत्य संभारं जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ चतुर्भागावशेषं तु यवक्षार‑युतं पिबेत् ॥ ११३ ॥ वातिकं पैत्तिकं वापि श्लैष्मिकं सान्निपाति‑कम् ॥ प्रसह्य नाश[3]ये[2]च्छूलं छिन्नाभ्रमिव[1] मारु[4]तः ॥ ११४ ॥

एरंडके फल और जड, गोखरूकी जड, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, बडी कटेली, छोटी कटेली ॥ १११॥ शृगालविन्ना (पिठवनका भेद), सहदेवी, माषपर्णी, मुद्ग‑पर्णी, तालमखानेकी जड ॥ ११२ ॥ इन सबको इकट्ठा करके द्रोणभर पानीमें क्वाथ करे और चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार ले इसे यवक्षारके संग (यवक्षार मिलाके) पीवे ॥ ११३ ॥ यह वात, पित्त, कफ और सन्निपातके शूलको बल‑पूर्वक इसप्रकार नाश करता है जैसे पवन बादलोंको नष्ट करता है ॥ ११४ ॥

पिप्पल्यः स्वर्जिकाक्षारो यवाश्चित्रक एव च ॥
सेव्यं चैव समानीय भस्म कुर्याद्विचक्षणः ॥
तदुष्णवारिणा पीतं श्लेष्मशूले भिषग्जितम् ॥ ११५ ॥

पीपल, सज्जीखार, जौ, चित्रक, सेव्य (खस) इन सबको मिलाकर भस्म करलेवे फिर इस भस्मको गरम जलके साथ पीवे यह कफके शूलकी औषध है ॥ ११५ ॥

(श्लो० ११०) पाठादीनां द्रव्याणि चूर्णितानि कल्किताानि वा चित्रकस्य निर्यूहे क्वाथे पिबेदित्येको योगः । यूषं सार्जकमिति द्वितीयो योगः । यूषं शूलहरं शिवीधान्ययूषं सार्जकम् अर्जकेन सह सः पिबेदित्यर्थः (इति डल्हनः) (श्लो० ११२) शृगालविन्ना पृश्निपर्णीभेदः (इति डल्हनः) (श्लो० ११४) प्रसह्य बलात्कारेण (श्लो० ११५) सेव्यम् उशीरम् ।

कफपित्तसे अवरुद्ध हुआ वायु रसमें मिलकर जब हृदयके समीपमें होता है तब वहां शूल पैदा करता है इस हृदयशूलमें श्वास नहीं लिया जाता और बड़ा कष्ट होता है ॥ १३१ ॥ इसे हृच्छूल कहते हैं यह रस और वायुसे होता है इसमें वही यत्न करना चाहिये जो हृद्रोगमें कहा जावेगा ॥ १३२ ॥

(वक्तव्य) यह शूल आमाशयके उपरिभागमें होता है और यह स्थान हृदयके निकट है इसीसे इसे हृच्छूल कहते हैं ॥

वस्तिशूल और मूत्रशूल ।

संरोधात्कुपितो वायुर्वस्तिमावृत्य तिष्ठति ॥ वस्तिवंक्षणनाभीषु ततःशूलोऽस्य जायते ॥ विण्मूत्रवातसंरोधी वस्तिशूलः स मारुतात् ॥ १३३ ॥ नाभ्यां वंक्षणपार्श्वेषु कुक्षौ मेढ्रांत्रमर्दकः ॥ मूत्रमावृत्य गृह्णाति मूत्रशूलः स मारुतात् ॥ १३४॥

मल, मूत्र, अधोवायु इनके रोकनेसे कुपित वायु वस्तिस्थानमें प्राप्त होकर आवर्तरूपसे घूमताहुआ स्थित होता है तब मनुष्यके वस्तिस्थान, वंक्षण (नलें) और नाभि इन स्थानोंमें शूल होता है इसमें दस्त, मूत्र और अधोवायु ये सब रुक जाते हैं यह वायुसे उपजा वस्तिशूल कहलाता है ॥१३३॥ और जब कुपित वायु मेढ्रांत्र (लिंगकी नलियों) को मर्दन करके (दबाकर या रोककर) और मूत्रको रोककर बंद करता है तब नाभि, वंक्षण, पँसवाड़े और कूख इन स्थानोंमें शूल होता है इसे मूत्रशूल कहते हैं यह भी वायुसे होता है ॥ १३४ ॥

विट्शूल ।

वायुः प्रकुपितो यस्य रूक्षाहारस्य देहिनः ॥ मलं रुणद्धि कोष्ठस्थं मंदीकृत्य तु पावकम् ॥ १३५ ॥ शूलं संजनयंस्तीव्रं स्रोतांस्यावृत्य तस्य हि ॥ दक्षिणं यदि वा वामं कुक्षिमादाय जायते ॥ ॥ १३६ ॥ सर्वत्र वर्धते क्षिप्रं शूलं तत्र सघोषवत् ॥ पिपासा वर्द्धते तीव्रा भ्रमो मूर्च्छा च जायते ॥ १३७ ॥ उच्चारितो मूत्रितश्च न शांतिमधिगच्छति ॥ विट्शूलमेतज्जानीयाद्भिषक्परमदारुणम् ॥ १३८ ॥

(श्लो० १३३) संरोधान्मलमूत्रादीनाम् (श्लो० १३४) मेढ्रांत्रमर्दको वायुः मेढ्रनलिका समर्द्य वायुः आवृत्य मूत्रं गृह्णातीति । (श्लो० १३७) सघोषवत् सशब्दवदित्यर्थः ।

यदि जठराग्निको दबाकर (मन्द करके) वायु कूखमें कुपित हो (अर्थात् जब कुक्षिमें वायु कुपित होकर अग्निको रोक ले) तब उसका भोजन किया हुआ ठिठराकर पचता नहीं अर्थात् ज्योंका त्यों विना पचा धरा रहता है) ॥ १२३ ॥ श्वाससा भरजाता है और कच्चे अन्नके दस्त आतेहैं वारवार शूलकी वेदना होती-है, न बैठे चैन पडता है, न लेटे, न खडे हुए ॥ १२४ ॥ इसे कुक्षिशूल कहतेहैं यह वायुसे और कच्चे आम (विनपचे) भोजनसे उत्पन्न होताहै ॥ १२५ ॥

कुक्षिशूलकी चिकित्सा ।

वमनं कारयेत्तत्र लंघयेद्वा यथाबलम् ॥ संसर्गपाचनं कुर्यादम्लैर्दीपनसंयुतैः ॥ १२६ ॥ नागरं दीप्यकं चव्यं हिंगु सौवर्चलं बिडम् ॥ मातुलुंग्याश्च बीजानि तथा श्यामोरुवूकयोः ॥ १२७ ॥ बृहत्याः कंटकार्याश्च क्वाथं शूलहरं पिबेत् ॥ वचा सौवर्चलं हिंगु कुष्ठं सातिविषाभया ॥ १२८ ॥ कुटजस्य च बीजानि सद्यःशूलहराणि तु ॥ विरेचनं प्रयुंजीत ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥ १२९ ॥ स्नेहवस्तीन्निरूहांश्च कुर्याद्दोषनिबर्हणम् ॥ उपनाहाः स्नेहसेका धान्याम्लपरिषेचनम् ॥ १३० ॥

इसमें वमन करावे और बलके अनुसार लंघन करावे और अम्लरस तथा दीपन द्रव्य मिलाकर संसर्ग (कच्चे आम) को पचावे ॥१२६॥ सोंठ, अजवायन, चव्य, हींग, कालानमक, विडनमक, बिजोरेके बीज, निशोथ और एरंड ॥ १२७ ॥ बडी कटेली, छोटी कटेली इनका क्वाथ पीवे यह परम शूलनाशक है अथवा बच, कालानमक, हींग, कूट, अतीस, हरडे ॥ १२८ ॥ और इन्द्रजौ ये भी तत्काल शूलनाश करते हैं (इनका चूर्ण या क्वाथ लेवे) और दोष तथा रोगीका बलाबल देखकर विरेचनका उपयोग करे ॥ १२९ ॥ तथा स्नेहवस्ति और निरूहणवस्ति भी देवे ये दोषको नष्ट करती हैं तथा उपनाह (गरम लेप या भुरता आदि बाँधना)तथा स्नेहका सेक करना अथवा धान्याम्ल (कांजी) का सेचन करना भी श्रेष्ठ है ॥१३० ॥

हृच्छूल ।

कफपित्तावरुद्धस्तु मारुतो रसमूर्च्छितः ॥ हृदिस्थः कुरुते शूलमुच्छ्वासरोधकं परम् ॥ १३१ ॥ स हृच्छूल इति ख्यातो रसमारुतसंभवः ॥ तत्रापि कर्मभिर्हितं यदुक्तं हृद्विकारिणाम् ॥ १३२ ॥

(श्लो० १२६) संसर्गपाचनं कुर्यात् । संसर्गस्य अपक्वस्य पाचनं संसर्गपाचनम् ।

(श्लो० १३१) हृदिस्थः हृत्समीपस्थः अत्र अजहल्लक्षणायाः सामीप्यके बोद्धव्यम् ।

यूनानीवाले गुल्मको " अकद " कहते हैं और साधारण आदमी "गांठ" या "गोला" कहते हैं ॥

डाक्टरीमें गुल्मको "ट्यूमर" (Tumur) कहते हैं यूनानीवाले आमाशयके शूलको " बजेउलमेदा " कहते हैं और दहिनी तरफ यकृत्में या यकृत्के पास हो तो उसे " बजेउलकबद " कहते हैं और आमाशयके ऊपर हृदयके पास हो तो उसे "बजेउलफवाद" जिसे आम आदमी "दरददिल" कहते हैं और छातीमें दरद हो उसे " जातुलरिया" और पँसलियोंके दरदको " जातुलजंब " कहते हैं और मोटी अंतड़ीके दरदको " कुलंज " कहते हैं ॥

डाक्टरीमें मेदेके मुँहपर कौड़ीके नीचे बहुत दरद हो उसे "ग्यास ट्राइटस" कहते हैं और पसलीके दरद (पार्श्वशूल) को "प्लूरिया" कहते हैं अर्थात् पार्श्व-शूलमें कुछ इसके लक्षण मिलते हैं और कुलंजके दरदको "कालक" कहते हैं ॥

(वक्तव्य) यूनानी या डाक्टरीमतसे इन व्याधियोंका विस्तारपूर्वक विवेचन उस मतके बडे २ ग्रंथ देखे विना नहीं आसकता क्योंकि रोगोंके कारणों, रूपों और भेदोंमें मतांतरसे बहुत अंतर होता है ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ४३.

अथातो हृद्रोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम हृद्रोगकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

हृद्रोगका हेतु और संप्राप्ति ।

वेगाघातोष्णरूक्षान्नैरतिमात्रोपसेवितैः ॥ विरुद्धाध्यशनाजीर्णै-रसात्म्यैश्चापि भोजनैः ॥ १ ॥ दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः ॥ कुर्वंति हृदये बाधां हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ २ ॥ चतुर्विधः स दोषैश्च पंचमः कृमिभिस्तथा ॥ पृथग्लिंगं प्रवक्ष्यामि चिकित्सितमनंतरम् ॥ ३ ॥

वेगोंके रोकने (या चोट आदिके आघात) से तथा गरम और रूखे अन्नोंके अधिक सेवनसे, विरुद्ध भोजनसे, भोजनपर भोजन करनेसे, अजीर्ण रहनेसे, असात्म्य (जो माफकत न हो ऐसा) भोजन करनेसे ॥ १ ॥ वातादि दोष रसको दूषित करके विगुण होकर (रसमें मिलकर) हृदयमें पहुँचते हैं तब हृदयमें बाधा करते हैं इसे हृद्रोग कहते हैं ॥ २ ॥ यह हृद्रोग चार प्रकारका तो दोषोंसे (वातसे, पित्तसे, कफसे और सन्निपातसे) होता है और पांचवां

रूक्ष आहार करनेसे मनुष्यके कोष्ठमें वायु कुपित होता है तब कोष्ठके मलको रोक देता है और अग्निको मंद करदेता है ॥ १३५ ॥ स्रोतों (द्वारों) को रोककर तीव्र शूल पैदा करता हुआ दाहिनी या बांई कूखमें प्राप्त होजाता है ॥१३६॥ तथा शीघ्रही सारे पेटमें शूल फैल जाता है और शब्दसा करता हुआ बढता है और तीव्र प्यास बढ जाती है, भ्रम और मूर्च्छा भी होजाती है ॥ १३७ ॥ दस्त आने या पेशाब आनेपर भी शांति नहीं होती इसे वैद्य परम दारुण विट्शूल जाने (यह कोठेमें मल बढ जानेपर रूक्षता होनेसे होता है) ॥ १३८ ॥

क्षिप्रं दोषहरं कार्यं भिषजा साधु जानता ॥ स्वेदनं वमनं चैव निरूहाः स्नेहवस्तयः १३९ ॥ पूर्वोद्दिष्टान्पाययेत योगान्कोष्ठविशोधनान् ॥ उदावर्तहरांश्चास्य क्रियाः सर्वाः सुखावहाः ॥ १४० ॥

जानकार वैद्यको शीघ्रही दोषको हरनेवाली क्रिया करनी चाहिये, स्वेदन कराना, वमन कराना, निरूहणवस्ति और स्नेहनवस्ति करना योग्य है ॥ १३९ ॥ तथा पूर्वोक्त कोष्ठशोधनके योग्य पान कराने चाहिये तथा उदावर्त हरनेवाली सब क्रियायें यहांपर सुख देनेवाली होती हैं ॥ १४० ॥

अतिमात्रं यदा भुक्तं पावके मृदुतां गते ॥ स्थिरीभूतं तु तत्कोष्ठे वायुरावृत्य तिष्ठति ॥ १४१ ॥ अविपाकगतं ह्यन्नं शूलं तीव्रं करोति च ॥ मूर्च्छाध्मानं विदाहं च हृदुत्क्लेशं विलंबिकाम् ॥ १४२ ॥ विरिच्यते छर्दयति कंपतेऽथ विमुह्यति ॥१४३॥

यदि जठराग्नि मन्द होनेपर अधिक भोजन करे तो वह कोष्ठमें (पेटमें) स्थिर होता है (ज्योंका त्यों धरा रहता है) और वायु उसे रोक लेता है ॥१४१॥ इस प्रकार विना पचा अन्न तीव्र शूल पैदा करता है, मूर्च्छा, अफारा और दाह पैदा करता है, जी मिचलाता है (उबकाई आती हैं), विलंबिका होजाती है, वारवार दस्त आते हैं, वमन होते हैं, कंप होजाता है तथा मोह (बेहोशी या बुद्धिभ्रंश) होजाता है ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

क्षाराश्चूर्णानि गुटिकाः शस्यंते शूलनाशनाः ॥
गुल्मावस्थाः क्रियाः कार्या यथावत्सर्वशूलिनाम् ॥१४४॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२ ॥

यहां शूलनाशक क्षार, चूर्ण, गोली इत्यादिका उपयोग करना श्रेष्ठ है तथा सब प्रकारके शूलवालोंके लिये गुल्मनाशक क्रियायें करनी भी श्रेष्ठ हैं ॥ १४४ ॥

भ्रम, क्लम (ग्लानि), थकान (दिलकी कमजोरी) और शोष (राजयक्ष्मा) ये वातजादि हृद्रोगोंके उपद्रव हैं और कृमिजमें वे उपद्रव होतेहैं जो कफज कृमिरोगमें होतेहैं ॥ ८ ॥

वायुके हृद्रोगका यत्न ।

वातोपसृष्टे हृदये वामयेत्स्निग्धमातुरम् ॥ द्विपंचमूलीकाथेन सस्नेहलवणेन तु ॥ ९ ॥ पिप्पल्येलावचाहिंगुयवभस्मानि सैंधवम् ॥ सौवर्चलमथो शुंठीमजमोदांश्च चूर्णितम् ॥ १० ॥ फलधान्याम्लकौलत्थदधिमद्यासवादिभिः ॥ पाययेत् विशुद्धं च स्नेहेनान्यतमेन वा ॥ ११ ॥ भोजयेज्जीर्णशाल्यन्नं जांगलैः सघृतै रसैः ॥ वातघ्नसिद्धं तैलं च दद्याद्बस्तिं प्रमाणतः ॥ १२ ॥

वातके हृद्रोगमें रोगीको स्नेहन कराके दशमूलके काथमें स्नेह और लवण मिलाके इससे वमन करावे ॥ ९ ॥ तथा पीपल, इलायची, वच, हींग, जौकी भस्म, सैंधानमक, कालानमक, सोंठ और अजमोदा इनका चूर्ण बनाले ॥ १० ॥ इसे फलाम्ल या धान्याम्ल या कुलथीके काथ या दही या मदिरा या आसव इनमेंसे किसी एकके संग खिलावे या किसी स्नेहके संग इसी चूर्णको खिलावे परंच पहले वमनादि देकर शोधन करलेवे ॥ ११ ॥ और जंगली जीवोंके घृतयुक्त रसके संग पुराने चावलोंको भोजन करावे और वायुनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये तैलकी प्रमाणसे वस्ति भी देनी उचित है ॥ १२ ॥

पित्तके हृद्रोगका यत्न ।

श्रीपर्णीमधुकक्षौद्रसितोत्पलजलैर्वमेत् ॥ पित्तोपसृष्टे हृदये सेवेत मधुरैः शृतम् ॥ १३ ॥ घृतं कषायांश्चोद्दिष्टान्पित्तज्वरविनाशनान् ॥ तृप्तस्य च रसैर्मुख्यैर्जांगलैः सघृतैर्भिषक् ॥ सक्षौद्रं वितरेद्बस्तिं तैलं मधुकसाधितम् ॥ १४ ॥

पित्तके हृद्रोगमें खंभारी, मुलेठी, शहद, मिश्री, कमल इनके काथसे वमन करावे और मधुर द्रव्यों काकोल्यादिसे सिद्ध किया घृत सेवन करे ॥ १३ ॥ तथा पित्तज्वरके नाश करनेवाले पूर्वोद्दिष्ट काथ पीवे तथा जंगली जीवोंके घृतयुक्त मुख्य मांसरसोंसे तृप्त कियेहुए रोगीके वैद्य मुलेठीसे सिद्धकिये तैलमें शहद मिलाकर वस्तिकर्म करे ॥ १४ ॥

कृमियोंसे होता है इन सबके जुदे जुदे लक्षण कहते हैं और इसके पीछे उनकी चिकित्सा भी कहेंगे ॥ ३ ॥

हृद्रोगके लक्षण ।

आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा ॥ निर्मथ्यते दीर्यते च स्फोटयते पाट्यतेपि च ॥ ४ ॥ तृष्णोपदाहचोषाः स्युः पैत्तिके हृदये क्लमः ॥ धूमायनं च मूर्च्छा च स्वेदः शोषो मुखस्य च ॥ ५ ॥ गौरवं कफसंस्रावोऽरुचिः स्तंभोग्निमार्दवम् ॥ माधुर्यमपि चास्यस्य बलासावतते हृदि ॥ ६ ॥ उत्क्लेशः ष्ठीवनं तोदः शूलो हृल्लासकस्तमः ॥ अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिजे भवेत् ॥ ७ ॥

वायुका हृद्रोग हो तो हृदय खींचासा जावे, व्यथा हो, हृदय मथासा जावे, चीरासा जावे, फोडासा जावे और फाड़ासा जावे ॥ ४ ॥ पित्तका हृद्रोग हो तो तृषा हो, जलन और दाह हो तथा चोष (चूषनेके समान पीडा हो), हृदयमें ग्लानि हो तथा धुवाँसा उठता मालूम पडे, मूर्च्छा (बेहोशी होजावे), पसीना आवे और मुँह सूखे ॥ ५ ॥ कफके हृद्रोगमें भारीपन हो, मुँहसे कफ आवे, अरुचि हो हृदय और शरीर कडे पडजावें, अग्नि मन्द होजावे, मुँह मीठा रहे (और सन्निपातका हृद्रोग हो तो उसमें सब दोषोंके मिले जुले लक्षण हों) ॥ ॥ ६ ॥ और कृमिके हृद्रोगमें मुँहसे पानी (लार) बहे, थूँक ज्यादे आवे, दरद हो, शूल भी हो, जी मिचलावे, उबकाई आवें और अँधेरी आजावे, अरुचि हो, नेत्रोंमें कालापन मालूम पडे और शोष भी हो ॥ ७ ॥

(वक्तव्य) कई ग्रन्थांतरोंमें ऐसा लिखाहै कि सन्निपातका कृमिरोग होनेपर भी यदि मनुष्य गुडादिक कुपथ्यके वस्तु अति भोजन करे तो उसके हृदयमें कृमि उत्पन्न होजातेहैं परन्तु कभी कभी आमाशयके उपरिभागमें कृमि होनेसे भी कृमिका हृद्रोग कहाजाता है क्योंकि यह स्थान हृदयके अत्यन्त समीप है यदि हृदय (अर्थात् कलब यानी हार्ट या मीकाडियम गशा जो इसपर छाई हुई है इन) में कृमि पैदा होजावें तो प्रायः असाध्य होतेहैं पर यदि हृदयके निकट आमाशयके उपरिभागमें हो तो साध्य हो सकतेहैं ॥

भ्रमक्लमौ सादशोषौ ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः ॥
कृमिजे कृमिजातीनां श्लैष्मिकीनां च ये मताः ॥ ८ ॥

(श्लो० ७) यदुक्तं भावप्रकाशे—"त्रिदोषहेतुहृद्रोगे यो दुरात्मा निषेवते ॥ तिलक्षीरगुडादींश्च ग्रंथिस्तस्योपजायते ॥ १ ॥ मर्मैकदेशे सक्लेदं रसश्चाप्युपगच्छति ॥ संक्लेदात्कृमयश्चास्य पतत्युपहतात्मनः ॥ ॥ २ ॥" तस्य लक्षणानि उत्क्लेशादीनि ।

मार्गद्वारा मुखसे कोई एक दो निकलकर दिखाई देसकताहै श्रीभगवान् धन्वंतरिजीने आमाशयगत हृदयके समीपके कृमियोंकाही यह पूर्वोक्त यत्न लिखा है ॥

यूनानीवाले हृद्रोगको "अमराजकलब" याने दिलकी बीमारियां कहतेहैं और डाक्टरीमें "हार्टडजीज" (Heart Disease) कहते हैं

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ४४.

अथातः पांडुरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम पांडुरोगकी चिकित्साका व्याख्यान करतेहैं ।

पांडुरोगके कारण और संप्राप्ति ।

व्यवायमम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमतीवतीक्ष्णम् ॥
निषेवमाणस्य विदूष्य रक्तं कुर्वंति दोषास्त्वचि पांडुभावम् ॥ १ ॥

अति मैथुन करनेसे, खट्टा, नमकीन पदार्थ विशेष खानेसे, मिट्टी खानेसे, अत्यन्त मद्य पीनेसे, दिनके विशेष सोनेसे, अति तीक्ष्ण पदार्थ या औषधादि सेवन करनेसे कुपितहुए दोष, रुधिरको दूषित करके त्वचा आदिमें पीलापन पैदा करते हैं ॥ १ ॥

पांडुके भेद और निरुक्ति ।

पांड्वामयोष्टार्द्धविधः प्रदिष्टः पृथक्समस्तैर्युगपच्च दोषैः ॥
सर्वेषु चैतेष्विह पांडुभावो यतोधिकोऽतः खलु पांडुरोगः ॥ २ ॥

यह पांडुरोग अष्टार्द्ध अर्थात् चार प्रकारका है, सब दोषोंसे पृथक् २ (जैसे वायुका, पित्तका, कफका) और चौथा सन्निपातका इन सब प्रकारके पांडुओंमें प्रायः सब अवयवोंमें पीलापन अधिक होता है इसीसे इसे पांडु (पीलिया) रोग कहते हैं ॥ २ ॥

(वक्तव्य) कई आचार्य इस पांडुका पांचवां भेद मृद्भक्षणजनित और मानतेहैं परंतु वह केवल कारणभेद है जातिभेद नहीं होसकता इसीसे भगवान् धन्वंतरिजीने उसे जुदा नहीं लिखा ॥

पांडुका पूर्वरूप ।

त्वक्स्फोटनं ष्ठीवनगात्रसादौ मृद्भक्षणं प्रेक्षणकूटशोथः ॥
विण्मूत्रपीतत्वमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ ३ ॥

(श्लो० २) अष्टार्द्धविधः चतुर्विधः । (श्लो० ३) प्रेक्षणकूटशोथ इति—नेत्राधोभागस्थकूटे शोथे इत्यर्थः ।

कफके हृद्रोगका यत्न ।

वचानिंबकषायाभ्यां वांतं हृदि कफात्मके ॥ चूर्णं तु पाययेत्तोक्तं वातजे भोजयेच्च तम् ॥ १५ ॥ फलादिमथ मुस्तादिं त्रिफलां वा पिबेन्नरः ॥ श्यामात्रिवृत्कल्कयुतं घृतं वापि विरेचनम् ॥ १६ ॥ बलातैलैर्विदध्याच्च वस्तिं वस्तिविशारदः ॥ १७ ॥

कफके हृद्रोगमें वच और नींबके क्वाथसे वमन करावे और वातज हृद्रोगमें कहा हुआ चूर्ण भी उन्हीं अनुपानोंसे पिलावे और यथायोग्य भोजन करावे ॥ १५ ॥ अथवा मदनफलादिक या मुस्तादिगण या त्रिफलाका क्वाथ पिलावे तथा श्यामा निशोथ और सुपेद निशोथके कल्कसे युक्त घृत पिलाकर विरेचन देवे ॥ १६ ॥ तथा वस्तिक्रियामें चतुर वैद्य बलातैलकी वस्ति देवे ॥ १७ ॥

कृमिहृद्रोगिणं स्निग्धं भोजयेत्पिशितौदनम् ॥ दध्ना वा पललोपेतं त्र्यहं पश्चाद्विरेचयेत् ॥ १८ ॥ सुगंधिभिः सलवणैर्योगैः साजाजिशर्करैः ॥ विडंगगाढैर्धान्याम्लं पाययेताप्यनंतरम् ॥१९॥ हृदयस्थाः पतंत्येवमधस्तात्कृमयो नृणाम् ॥ यवान्नं वितरेच्चास्य सविडंगमतः परम् ॥ २० ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

कृमिके हृद्रोगवाले रोगीको स्निग्ध मांस और भात या दहीके साथ तिलकी पिट्ठीसे तीन दिन तक भोजन करावे फिर विरेचन देवे ॥ १८ ॥ सुगंधियुक्त नमकीन या जीरा और खांडके योगसे जिनमें वायविडंग मिली हों ऐसे विरेचन देवे और फिर ऊपरसे धान्याम्ल पिलावे (और कई "विडंगगाढं" पाठांतर मानकर ऐसा अर्थ करते हैं कि धान्याम्लमें विडंग मिलाकर ऊपरसे पिलावे) ॥१९॥ इससे हृदयस्थ कृमि मनुष्योंके नीचेको दस्तके राहसे निकल जातेहैं इसके पीछे विडंगयुक्त यवका भोजन करावे ॥ २० ॥

(वक्तव्य) हृदयस्थ उन्हीं कृमियोंका यह यत्न है जो आमाशयके ऊर्द्धभागमें हृदयके समीप चिमटेहुए होतेहैं और येही दस्तके राहसे निकल सकतेहैं इन बातोंको वेही वैद्य समझ सकतेहैं जो शारीरकका तत्त्व भली भांति जानतेहैं कि हृत्कमल (अर्थात् दिल यानी हार्ट) में कदाचित् जखम होकर कृमि पैदा हो भी जावें तो वे दस्तके राहसे नहीं निकल सकते, हां शायद श्वासनलका (ट्राकिया) के

ज्वरांगमर्दभ्रमसादतंद्रा क्षयान्वितो लाघरकोऽलसाख्यः ॥
तं वातपित्ताभिपरीतलिंगं हलीमकं नाम वदंति तज्ज्ञाः ॥१०॥

जो पांडु (या अन्य रोग) के अंतमें शीघ्रही अम्ल अन्न (खटाई) खावे अथवा अन्य ऐसे कुपथ्य करे जिससे पित्त अति दूषित होकर विशेष पांडु वर्ण मुखको (तथा शरीरको) कर देता है तथा तंद्रा और निर्बलता तथा पूर्वोक्त लक्षण करता है इसे कामला कहते हैं ॥ ९ ॥ इस कामलाहीका भेद कुंभिका है इसमें शोथ विशेष होता है और जोडोंमें दरद होता है और जिसमें ज्वर, अंग टटना, भ्रम, थकान, तंद्रा और क्षीणता हों उसे लाघरक अलसाख्य कहते हैं और इसमें यदि वात, पित्तके चिह्न पायेजावें तो इसे वैद्य हलीमक कहते हैं ॥ १० ॥

(वक्तव्य) पानकी या पालकिके लक्षण ग्रंथांतरसे लिखते हैं–

श्लोक–संतापो भिन्नवर्चस्त्वं बहिरंतश्च पीडता ॥
पांडुता नेत्ररोगाश्च पानकीलक्षणं वदेत् ॥ १ ॥

अर्थ–संताप हो, मल फटा हो, अंदर और बाहर वेदना हो, पीलापन हो, नेत्रोंमें विकृति हो ये पानकीके लक्षण हैं ॥ १ ॥

पांडुरोगके उपद्रव ।

उपद्रवास्तेष्वरुचिः पिपासा छर्दिर्ज्वरो मूर्धरुजाग्निसादः ॥
शोफस्तथा कंठगतोबलत्वं मूर्च्छाऽक्लमो हृद्यवपीडनं च ॥ ११ ॥

पांडु कामला आदिमें ये उपद्रव होते हैं–अरुचि, तृषा, वमन, ज्वर, शिरका दरद, अग्निकी मंदता तथा कंठमें शोथ, निर्बलता, मूर्च्छा, क्लम और हृदयमें पीडा ॥ ११ ॥

साध्यं तु पांड्वामयिनं समीक्ष्य स्निग्धं घृतेनोर्द्ध्वमधश्च शुद्धम् ॥ संपादयेत्क्षौद्रघृतप्रगाढैर्हरीतकीचूर्णयुतप्रयोगैः ॥ १२ ॥ पिबे-द्घृतं वा रजनीविपक्वं यत्त्रैफलं तैल्वकमेव वापि ॥ विरेचनद्रव्य-कृतं पिबेद्धि योगांश्च वैरेचनिकान्घृतेन ॥ १३ ॥ मूत्रे निकुंभार्द्ध-पलं विपाच्य पिबेदभीक्ष्णं कुडवार्द्धमात्रम् ॥ खादेद्गुडं वाप्य-भयाविमिश्रमारग्वधादिक्वथितं पिबेद्वा ॥ १४ ॥

साध्य पांडुरोगवालेको देखकर (अर्थात् अगाडी जो असाध्यके लक्षण कहे हैं जिसमें वे न हों) रोगीको घृतसे स्निग्ध करके ऊपर नीचेसे शुद्ध करके शहद

त्वचामें फूटनसी होना, मुँहमें थूँक अधिक आना, अंगोंमें शिथिलता होना, मिट्टी खानेकीसी इच्छा होना और नेत्रोंके नीचले डोले सूजेसे मालूम होना, मल और मूत्रमें पीलापन होना, भोजन न पचना ये लक्षण पांडुरोगके पहले पूर्वरूपमें होते हैं ॥ ३ ॥

पांडुके और भेद कामला आदि ।

सकामलापालकिपांडुरोगः कुंभाह्वयो लाघरकोऽलसाख्यः ॥
विभाष्यते लक्षणमस्य कृत्स्नं निबोध वक्ष्याम्यनुपूर्वशस्तत् ॥४॥

इस पांडुरोगके अवस्थाके अनुसार और भी कई भेद हैं जैसे कामला, पालकि या पानकी, कुंभिका लाघर और अलस इन सबके लक्षण अगाडी क्रमसे श्रवण करो हम कहते हैं ॥ ४ ॥

पांडुके लक्षण ।

कृष्णेक्षणं कृष्णशिरावनद्धं तद्वर्णविण्मूत्रनखाननं च ॥
वातेन पांडुं मनुजं व्यवस्येद्युक्तं तथान्यैस्तदुपद्रवैश्च ॥ ५ ॥
पीतेक्षणं पीतशिरावनद्धं तद्वर्णविण्मूत्रनखाननं च ॥
पित्तेन पांडुं मनुजं व्यवस्येद्युक्तं तथान्यैस्तदुपद्रवैश्च ॥ ६ ॥
शुक्लेक्षणं शुक्लशिरावनद्धं तद्वर्णविण्मूत्रनखाननं च ॥
कफेन पांडुं मनुजं व्यवस्येद्युक्तं तथाऽन्यैस्तदुपद्रवैश्च ॥ ७ ॥
सर्वात्मके सर्वमिदं व्यवस्येद्वक्ष्यामि लिंगान्यथ कामलायाः॥८ ॥

वायुके पांडुमें नेत्र काले (पिलाईमें कालापन लिये) हों, नीली २ नसें चमकें और वैसेही कालापन लिये पीले दस्त, मूत्र, नख और मुख हो तथा और भी वायुके उपद्रव उसमें होवें ॥ ५ ॥ पित्तके पांडुमें नेत्र पीले हों और ऐसेही पीले मल, मूत्र नख और मुख हों तथा पीली पीली नसें चमकें और अन्य भी पित्तके उपद्रव हों ॥ ६ ॥ कफके पांडुमें नेत्र सुपेदी लिये पीले हों तथा ऐसे मल, मूत्र, नख और मुख हों तथा सुपेद नसें चमकें और अन्य भी कफके उपद्रव हों ॥७॥ तथा सन्निपातके पांडुमें ये सब लक्षण मिलेहुए मालूम पडें इसके अगाडी हम कामला आदिके लक्षण कहते हैं ॥ ८ ॥

यो ह्यामयांते सहसान्नमम्लमद्यादपथ्यानि च तस्य पित्तम् ॥
करोति पांडुं वदनं विशेषात्तंद्राबलत्वं प्रथमोदितांश्च ॥ ९ ॥
भेदस्तु तस्याः खलु कुंभसाह्वः शोफो महांस्तत्र च पर्वभेदः॥

गोमूत्रयुक्तं त्रिफलादलानां दत्त्वायसं चूर्णमनल्पकालम् ॥ प्रवाल-
मुक्तांजनशंखचूर्णं लिह्यात्तथा कांचनगैरिकोत्थम् ॥ १९ ॥ आजं
शकृद्वा कुडवप्रमाणं विडं हरिद्रा लवणोत्तमं च ॥ पृथक्पलां-
शानि समग्रमेतच्चूर्णं हिताशी मधुनाऽवलिह्यात् ॥ २० ॥ मंडूर-
लोहाग्निविडंगपथ्याव्योषांशकाः सर्वसमानताप्यैः ॥ मूत्रायुतोयं
मधुनावलेहः पांड्वामयं हन्त्यचिरेण घोरम् ॥ २१ ॥ विभीतकायो-
मलनागराणां चूर्णं तिलानां च गुडश्च मुख्यः ॥ तक्रानुपानो
वटकः प्रयुक्तः क्षिणोति घोरानपि पांडुरोगान् ॥ २२ ॥

त्रिफलाके पत्ते, गोमूत्र इनमें लोहचूर्ण (सार) मिलाकर बहुत दिन सेवन करे अथवा मूंगा, मोती, सुरमा और शंख इनको गोमूत्रके संग (या शहदके संग) चाटे अथवा सोना गेरूको चाटे ॥ १९ ॥ अथवा बकरीकी मेंगनी एक कुडव, विडनोन, हलदी, सैंधानमक ये सब एक एक पल लेकर सबका चूर्ण बनाले और शहद मिलाके चाटे और हित भोजन करे ॥ २० ॥ मंडूर (किट्ट) और लोह इनका चूर्ण (भस्म), चित्रक, विडंग, हरडे, त्रिकटु इन सबको समान भाग ले और समान भाग सोनामक्खी (शुद्ध) मिलावे फिर इसमें गोमूत्र मिलाके शहदके संग चाटे यह शीघ्र घोर पांडुरोगको नष्ट करदेता है ॥ २१ ॥ अथवा बहेडा, लोह, किट्ट, सोंठ और तिल इनका चूर्ण गुडमें मिलाके गोली बनाले और छांछके साथ खिलावे यह भी घोर पांडुरोगको नष्ट करदेता है ॥ २२ ॥

सौवर्चलं हिंगु किराततिक्तं कलायमात्राणि सुखांबुना वा ॥
मूर्वाहरिद्रामलकं च लिह्यात्स्थितं गवां सप्तदिनानि मूत्रे ॥ २३ ॥
मूलं बलाचित्रकयोः पिबेद्वा पांड्वामयार्तोऽक्षसमं हिताशी ॥ सुखां-
बुना वा लवणेन तुल्यं शिग्रोः फलं क्षीरभुजोपयोज्यम् ॥ २४ ॥

(श्लो० १९) प्रवालो विद्रुमः । मुक्ता मौक्तिकम् । अंजनं सौवीरांजनम् । अन्ये रसांजनमाहुः शंखः समुद्रभवः । तेषां चूर्णं विधिना कार्यम् । (श्लो० २३) सौवर्चलादीनामेकत्वेन निर्दिष्टानां बहुवचनात्सत्वमभिप्रेत अतः कलायमात्राणि इति विशेषणं, तत् सौवर्चलादीनां प्रत्येकं कलायमात्रमिति बोधनार्थम् (इति डल्हनः) अन्ये तु त्रयाणां मिलित्वा कलायमात्रं प्रमाणं मन्यते । पाडोः पित्तस्य प्रधानत्वात् केचित् योगमेनं कफपाण्डुपरमिति मन्यते (श्लो० २४) लवणेन सैंधवेन तुल्यं शिग्रुफलं कफजे कलायमात्रमित्यनुवर्तनीयम् (इति नि० स०)

और घृतमें मिलाके हरीतकीके चूर्ण सहित प्रयोग करे ॥ १२ ॥ अथवा हलदीसे पके घृतको पीवे या त्रिफलाघृत अथवा तिल्वक (लोध) से सिद्ध किये घृतको पान करे अथवा विरेचनद्रव्यों (त्रिवृता आदि) से सिद्ध किये घृतको पीवे तथा विरेचनके योगोंको घृतके संग पीवे ॥ १३ ॥ अथवा निकुंभ (दंती) आधे पल लेकर सोलहगुने मूत्र (गोमूत्र) में पकाकर इसमेंसे २ पल पीवे अथवा हरडेकी छालको गुड़में मिलाकर खावे अथवा आरग्वधादि गणका क्वाथ पीवे ॥ १४ ॥

अयोरजो व्योषविडंगचूर्णं लिह्याद्धरिद्रां त्रिफलान्वितां वा ॥
सर्पिर्मधुभ्यां विदधीत वापि शास्त्रप्रदर्शाभिहितांश्च योगान् ॥ १५ ॥
हरेच्च दोषान्बहुशोऽल्पमात्राञ्छ्वयेर्द्धि दोषेष्वतिनिर्हृतेषु ॥ धात्रीफलानां रसमिक्षुजं च मंथं पिबेत्क्षौद्रयुतं हिताशी ॥ १६ ॥ उभे बृहत्यौ रजनीं शुकाख्यां शुकादनीं चापि सकाकमाचीम् ॥
आदारिबिंबीं सकदंबपुष्पीं विपाच्य सर्पिर्विपचेत्कषाये ॥ १७ ॥
तत्पांडुतां हंत्युपयुज्यमानं क्षीरेण वा मागधिकां यथाग्नि ॥ हितं च यष्टीमधुकं कषायं चूर्णं समं वा मधुनाऽवलिह्यात् ॥ १८ ॥

लोहका चूर्ण (शोधित मारित लोहभस्म), त्रिकटु, विडंग इनके चूर्णको शहद और घृतके संग चाटे अथवा हलदी, त्रिफला इन्हें शहद और घृतसे चाटे तथा अन्यशास्त्रोक्त प्रयोग करे (यद्यपि लोहचूर्ण इसमें महर्षिजीने शोधित मारित कुछ नहीं लिखा केवल ऐसाका ऐसा लोहचूर्ण उपयोग करना प्रतीत होता है परंतु इस समय विना शोधन मारण किये ठीक नहीं) ॥ १५ ॥ पांडु रोगवालेके दोषोंको थोडा थोडा करके कई वार निकाले क्योंकि ज्यादे एक वार निकालनेसे शोथ होजाता है और हित भोजन करनेवाला रोगी आंवलोंका रस या ईखका रस या मंथ इनमेंसे एकको शहद मिलाके पीवे ॥ १६ ॥ अथवा दोनों कटेली, हलदी, शुकाख्य (चर्मकारवट), शुकादनी (शुकासेंबी कई अनारकी कली कहते हैं) तथा मकोय, आदारिविंबी (आंउली) और कदम्बपुष्पी इनको पकाकर इनके क्राथमें घृत पकावे ॥ १७ ॥ ॥ यह घृत उपयोग करनेसे पांडुताको नाश करता है अथवा अग्निबलके अनुसार पीपलोंको दूधके साथ खावे अथवा मुलेठीके क्राथको शहद मिलाकर पीवे या मुलेठीके चूर्णको शहद समान भागमें मिलाके चाटे ॥ १८ ॥

(श्लो० १७) आदारिविंबी बिंबफलानुकारिविटपा लोहितफला च (इति डल्हनः) कार्तिककुंडस्तु ऑउलीरिति प्रसिद्धा इति व्याख्यानयति ।

कुंभिकाका यत्न ।

धातुं नदीजं जतु शैलजं वा कुंभाह्वये मूत्रयुतं पिबेद्वा ॥
मूत्रस्थितं सैंधवसंप्रयुक्तं मासं पिबेद्वापि हि लोहकिट्टम् ॥३०॥
दग्ध्वाक्षकाष्ठैर्मलमायसं वा गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान् ॥
विचूर्ण्य लीढं मधुनाचिरेण कुंभाह्वयं पांडुगदं निहन्यात् ॥ ३१॥

नदीज धातु (सोनामाक्षिक) या शिलाजीतको गोमूत्रके साथ पीना कुंभिकाको नष्ट करता है अथवा लोहेके किट्टको सैंधानमक मिलाकर गोमूत्रमें भिगोवे और एक महीने तक पीवे (कोई ऐसाभी अर्थ करते हैं कि गोमूत्र और सैंधवमें लोहका किट्ट एक महीनेतक भिगोया रक्खे फिर पीवे) ॥३०॥ अथवा लोहके मैल (मंडूर) को बहेडेकी लकडीकी अग्निमें लाल कर करके आठवार गोमूत्रमें बुझावे फिर इसे पीसकर शहद मिलाकर चाटे यह शीघ्रही कुंभिका नामक पांडुको नष्ट करे ३१

सिंधूद्भवं वाग्निसमं च कृत्वा सिक्त्वा च मूत्रे सकृदेव तप्तम् ॥
लौहं च किट्टं बहुशश्च तप्त्वा निर्वाप्य मूत्रे बहुशस्तथैव ॥ ३२॥
एकीकृतं गोजलपिष्टमेतदेकध्यमावाप्य पचेदुखायाम् ॥
यथा न दह्येत तथा विशुष्कं चूर्णीकृतं पेयमुदश्विता तत् ॥
तक्रौदनाशी विजयेत रोगं पांडुं तथा दीपयतेऽनलं च ॥ ३३ ॥

सैंधव नमकको अग्निमें लाल करके उसे एकवार ही गोमूत्रमें बुझा लेवे और लोहके किट्ट (अर्थात् मंडूर) को अनेकवार अग्निमें लाल कर करके वारवार गोमूत्रमें बुझावे ॥ ३२ ॥ फिर इन दोनोंको मिलाकर गोमूत्रमें पीस लेवे फिर उन्हें गोमूत्रयुक्त ही हांडीमें डालकर इतना पकावे कि वह जल नहीं जावे किंतु सूख जावे फिर उसका चूर्ण बना लेवे और उदश्वित् (आधे जल मिली छाँछ) के संग पीवे और इसके पचजानेपर छाँछके संग भात खावे यह प्रयोग पांडुरोगको नष्ट करदेताहै तथा जठराग्निको दीपन करताहै ॥ ३३ ॥

लाघरकका यत्न ।

द्राक्षागुडूच्यामलकीरसैश्च सिद्धं घृतं लाघरके हितं च ॥
गौडानरिष्टान्मधुशर्कराश्च मूत्रासवान्क्षारकृतांस्तथैव ॥ ३४ ॥

(श्लो० ३०) शैलजं जतु शिलाजतु। (श्लो० ३२। ३३) उखायां स्थाल्यां निक्षिप्य मुखं पिधाय पचेत् (इति नि० स०) (श्लो० ३४) गौडान् अभयारिष्टादीन्। मधुशर्कराश्चेति–मधुशब्देन मध्वासवः सच लोध्रारिष्टप्रभृतिकः। शर्कराशब्देन शर्करासवः मूत्रासवान्कुष्ठचिकित्सोक्तान् क्षारकृतान् आसवान् श्लीपदपाठितान्। (इति डल्लनः)

न्यग्रोधवर्गस्य पिबेत्कषायं शीतं सिताक्षौद्रयुतं हिताशी॥ शालादिकं चाप्यथ सारचूर्णं धात्रीफलं वा मधुनावलिह्यात् ॥ २५ ॥

कालानमक, हींग और चिरायता इनको ले मटरके तुल्य गोली बनाकर निवाये जलके संग खावे अथवा मूर्वा, हलदी और आंवले इन्हें सात दिन गोमूत्रमें भिगोकर चाटे ॥ २३ ॥ अथवा खरेंटी और चित्रककी जडको पांडुरोगी निरंतर कर्षभर पीवे और पथ्यसे रहे अथवा सोहँजनेके फल और नमक समान भाग ले मटरके समान गोली बनावे और इन्हें निवाये पानीसे उपयोग करे और दूध भोजन करे ॥ २४ ॥ अथवा न्यग्रोधादि गणका शीतल कषाय मिश्री और शहद मिलाकर पीवे और हितकारक भोजन करता रहे अथवा शालसारादिके चूर्णको या आंवलोंके चूर्णको शहदके संग चाटे ॥ २५ ॥

विडंगमुस्तत्रिफलाजमोदपरूषकव्योषविनिर्दहन्यः ॥ चूर्णीकृता वा गुडशर्करे च तथैव सर्पिर्मधुनी शुभे च ॥ २६ ॥ संभारमेतं द्विपँचेन्निधाय सारोदके सारवतो गणस्य ॥ जातं च लेह्यं मतिमान्विदित्वा निधापयेन्मोक्षकजे समुद्गे ॥ २७ ॥ हन्त्येष लेहः खलु पांडुरोगं सशोथमुग्रामपि कामलां च ॥ २८ ॥

चूर्ण किये हुए विडंग, नागरमोथा, त्रिफला, अजमोदा, फालसे, त्रिकुटु, चित्रक इन सबके समभागोंको तथा गुड, खांड, घृत और शहद इन सबको शालसारादिक गणके काथमें डालकर पकाता रहे जब पककर अवलेहसा होजावे तब इसे मोक्षक (मोखा) वृक्षकी लकडीके डब्बेमें भर देवे ॥ २६ ॥ २७ ॥ यह अवलेह निश्चय शोथयुक्त पांडुरोगको नष्ट करता है तथा बढी हुई कामलाको भी नष्ट करदेता है ॥ २८ ॥

कामलाका यत्न ।

सशर्करा कामलिनां त्रिभंडी हिता गवाक्षी सगुडा च शुंठी ॥ कालेयके चापि घृतं विपक्वं हितं च तस्याद्रजनीविमिश्रम्॥२९॥

कामला रोगवालेको निशोथमें मिश्री मिलाकर उपयोग करना हित है तथा इन्द्रायन और सोंठको गुड मिलाके खाना भी हित है तथा कालीयक (पीतचन्दन दारुहलदीके भेद) से घृत पकावे उसमें (पकते समय) हलदी मिलावे यह भी हित है ॥ २९ ॥

(श्लो० २५) शालादिकं सारचूर्णं शालसारादिचूर्णम् ।

(श्लो० २७) सारवतो गणस्य सारोदके शालसारादिगणसारक्काथे (इति नि० स०)

तथा जो अतिसार और ज्वरसे पीडित हो ऐसा पांडुरोगी असाध्य होताहै यश चाहनेवाला वैद्य ऐसे रोगीको त्याग देवे ॥ ३७ ॥

यूनानी हकीम पांडुको "यरकान" कहते हैं उनके मतसे पांडु (पीलिया) जिगर और पित्तके फितूरसे होताहै और हलीमक (कालापन लिये पीलिया) प्रायः तिल्लीके फितूरसे होता है ऐसा मानते हैं ॥

डाक्टरीमें इस पांडुरोगको जोंडिस (Jaundice) कहते हैं ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतस० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्साया चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ४४॥

पंचचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ४५.

अथातो रक्तपित्तप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम रक्तपित्तकी चिकित्साका व्याख्यान करतेहैं ।

क्रोधशोकभयायासविरुद्धान्नातपानलान् ॥ कट्वम्ललवणक्षारतीक्ष्णोष्णातिविदाहिनः ॥ १ ॥ नित्यमभ्यसतो दुष्टो रसः पित्तं च कोपयेत् ॥ विदग्धं स्वगुणैः पित्तं विदहत्याशु शोणितम् ॥ २ ॥ ततः प्रवर्तते रक्तमूर्द्ध्वं चाधो द्विधाऽपि वा ॥ आमाशयाद्व्रजेदूर्द्ध्वमधः पक्वाशयाद्व्रजेत् ॥ ३ ॥ विदग्धयोर्द्वयोश्चापि द्विधा भागं प्रवर्तते ॥ केचित्सयकृतः प्लीह्नः प्रवदन्त्यसृजो गतिम् ॥ ४ ॥

क्रोध, शोक, भय, परिश्रम, विरुद्ध अन्न, धूप, अग्नि, कटु (चरपरे), खट्टे, लवणके रस तथा क्षार (यवक्षारादि या तेजाब जैसे गन्धकका तेजाब, शोरेका तेजाब आदि) तथा तीक्ष्ण पदार्थ और गरम पदार्थ तथा विदाही अर्थात् दाहजनक पदार्थ ॥ १ ॥ इनका नित्य (या अत्यन्त) सेवन करनेसे रस दुष्ट होकर पित्तको कुपित करता है और अपने हेतुओंसे विदग्ध हुआ पित्त फिर शीघ्रही शोणित (रुधिर) को दग्ध करता है (दूषित करताहै) ॥ २ ॥ वह दूषित या मूर्च्छित हुआ रक्त ऊपरको (मुखनासिकादिसे) या नीचेको (गुदालिंगादिसे) या दोनों तरफ प्रवृत्त होता है, आमाशयमें प्राप्त हो तो ऊपरको आता है और पक्वाशयमें हो तो नीचेको जाताहै ॥ ३ ॥ और जो दोनों स्थानोंमें दूषित होता-

(श्लो० ३) ततः प्रवर्तते रक्तमिति–रक्तमित्युपलक्षणम् । तेन संसृष्टं पित्तं च । अतएव रक्तं च पित्तं च रक्तपित्तमिति द्वंद्वः । अथवा रक्तं च तत्पित्तं चेति रक्तपित्तं रागप्राप्तं पित्तमित्युच्यते (इति भा० मि०) वृद्धवाग्भटेऽपि–"कुपितं पित्तलैः पित्तं द्रवं रक्तं च मूर्च्छते ॥ ते मिथस्तुल्यरूपत्वमागम्य व्याप्नुतस्ततनुम् ॥ १ ॥ पित्तं रक्तस्य विकृतेः संसर्गाद्दूषणादपि ॥ गंधवर्णानुवृत्तेश्च रक्तेन व्यपदिश्यते ॥ २॥"

मुनक्का, गिलोय और आँवले इनके रसमें सिद्ध किया घृत लाघरक संज्ञक पांडुमें हित है तथा गुडके अरिष्ट, मधुके अरिष्ट (लोहारिष्ट) तथा शर्कराके अरिष्ट और मूत्रासव तथा क्षारारिष्ट ये सब हितकारक हैं ॥ ३४ ॥

(वक्तव्य) मूत्रासव कुष्ठचिकित्साप्रोक्त और क्षारासव श्लीपदोक्त बनाना तथा गौडअरिष्टसे अभयारिष्टादि लेने और मध्वासवसे लोहारिष्टप्रभृति लेना ॥

पांडुपर पथ्य ।

स्निग्धोन्रसांनामलकैरुपेतान्कोलान्वितान्वापि हि जांगलानाम् ॥ सेवेत शोफाभिहितांश्च योगान्पांडवामयी शालियवांश्च नित्यम् ॥ ३५ ॥

स्निग्ध जंगली जीवोंके मांसरसमें आँवले मिलाकर या बेर मिलाकर सेवन करे (भोजन करे) तथा शोथ रोगके पथ्यमें जो योग लिखे हैं उन्हें सेवन करे अथवा नित्य चावल या जौके भोजन करे ॥ ३५ ॥

पांडुकी साध्यता ।

श्वासातिसारारुचिकासमूर्च्छातृट्छर्दिशूलज्वरशोफदाहान् ॥ तथाविपाकस्वरभेदसादाञ्जयेद्यथास्वं प्रसमीक्ष्य शास्त्रम् ॥ ३६ ॥

यदि पांडुरोगके उपद्रव श्वास, अतिसार, अरुचि, खाँसी, मूर्च्छा, तृषा, छर्दि, शूल, ज्वर, शोथ, दाह तथा भोजन नहीं पचना, स्वरभेद (आवाज बैठ जाना) और थकान (कम जोरी शिथिलता) ये हों (इनमेंसे जो हों) उन्हें शास्त्रको देखकर (इनकी चिकित्सा देखकर जो पांडुसे विरुद्ध हो) ऐसी रीतिसे इनको शांत करे ॥ ३६ ॥

पांडुकी असाध्यता ।

अंतेषु शूनं परिहीनमध्यं म्लानं तथांतेषु च मध्यशूनम् ॥ गुदेऽथ शेफस्यथ मुष्कयोश्च शूनं प्रताम्यंतमसंज्ञकल्पम् ॥ विवर्जयेत्पांडुकिनं यशोर्थी तथाऽतिसारज्वरपीडितं च ॥ ३७ ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

जिसके हाथ, पांव, मुख सूजे हों और मध्यभाग (धड) पतला पडगया हो अथवा हाथ, पांव, मुख पतले पडगये हों और धड सूजगया हो तथा गुदा, लिंग और अंडकोश सूजे हों, जिसे अँधेरी आती हो, जिसका ज्ञान कम पडगया हो

भुक्ते चान्ने विदाहस्त्वधृतिरपि सदा हृद्यतुल्या च पीडा ॥
तृष्णा कंठस्य भेदः शिरसि च तपनं पूतिनिष्ठीवनं च
द्वेषो भक्तेऽविपाको विरतिरपि रते रक्तपित्तोपसर्गाः ॥ ८ ॥

दुर्बलता, श्वास, खांसी, ज्वर, वमन, मद, पाण्डुता (शरीर पीला पडना), दाह, मूर्च्छा, भोजन करनेके पीछे जलन, बेचैनी, सदा हृदयको अहितकारक पीडा, तृषा, गल बैठ जाना, शिरमें गरमी रहना, थूकमें पीवसा (या दुर्गंध युक्त पानीसा) आना, भोजनसे द्वेष (अरुचि), अन्न न पचना और विश्राम न होना ये रक्तपित्तके उपसर्ग (उपद्रव) होते हैं ॥ ८ ॥

रक्तपित्तकी असाध्यता ।

मांसप्रक्षालनाभं क्वथितमिव च यत्कर्दमांभोनिभं वा
मेदःपूयास्रकल्पं यकृदिव यदि वा पक्वजंबूफलाभम् ॥
यत्कृष्णं यच्च नीलं भृशमतिकुणपं यत्र चोक्ता विकारा-
स्तद्वर्ज्यं रक्तपित्तं सुरपतिधनुषा यच्च तुल्यं विभाति ॥ ९ ॥

मांस धोवनके समान हो या क्वाथसा हो, कीचड़के पानीसा हो, मेद (चरबी) राध मिले रुधिरसा हो, यकृत्के समान वर्णका हो या पकी जामुनके वर्णका हो, काला हो, नीला हो, मुरदेकेसी गन्धवाला हो ऐसा रुधिर निकले तथा जिसमें ऊपर कहे हुए विकार (उपद्रव) हों या जो इन्द्रधनुषके समान रंग विरंगका हो ऐसा रक्तपित्त असाध्य होता है उसे त्याग देना चाहिये ॥ ९ ॥

रक्तपित्तकी चिकित्सामें उपदेश ।

नादौ संग्राह्यमुद्रिक्तं यदसृग्बलिनो यतः ॥
तत्पांडुग्रहणीकुष्ठप्लीहगुल्मज्वरावहम् ॥ १० ॥

रक्तपित्तके प्रवृत्त हुए उल्वण रुधिरको आरंभहीमें बलवान् रोगीके रोक देना उचित नहीं क्योंकि वह रुका हुआ रुधिर (यदि सूक्ष्म शिराओंद्वारा त्वचाकी तरफ प्रवृत्त होगा तो) पांडुरोग पैदा करेगा और ग्रहणीमें प्राप्त हो तो ग्रहणीको बिगाडेगा तथा शारीरक धातुओंमें प्राप्त हो तो कुष्ठ पैदा कर देगा और जो प्लीहाकी तरफ आवे तो प्लीहवृद्धि और उदरमेंही कहीं इकट्ठा होजावे तो गुल्म पैदा करे (इस प्रकारके अपक्रम आदिसे पुरुषोंके भी रक्तगुल्म होजाता-है) और जो रस और स्वेदवहा शिराओंकी तरफ प्रवृत्त हो तो ज्वर पैदा करेगा ॥ १० ॥

है तो दोनों तरफ निकलताहै । कोई ऐसा कहतेहैं कि यकृत् और प्लीहासे रुधिर प्रवृत्त होता है ॥ ४ ॥

(वक्तव्य) जब अपने हेतुओंसे रस और पित्त दूषित होकर रुधिरको दूषित करते हैं तब वह दूषित रुधिर रुधिरवाहिनी शिराओंमें गमन करके विरुद्धमार्ग हो यकृतस्थानसे आमाशय या पक्वाशयकी तरफ प्रवृत्त होताहै और इस दूषित रक्तमें पित्तभी मिलकर रक्तवर्ण हो जाता है। कोई ऐसा भी कहते हैं कि पित्तही रक्त हो जाता है (देखो टिप्पणी)

और कई ग्रन्थांतरोंमें ऊर्द्ध्व अधोगमन पर इसप्रकार लिखते हैं कि–"ऊर्द्ध्वगं कफसंसृष्टमधोगं मारुतानुगम् ॥ द्विमार्गं कफवाताभ्यामुभाभ्यां तत्प्रवर्तते ॥ १ ॥" अर्थात् कफसे संसृष्ट रक्त पित्त होताहै और वह आमाशयमें प्राप्त होकर ऊर्द्ध्वगामी होताहै और वायुसे अनुगत हुआ पक्वाशयमें प्राप्त होकर अधोगामी होताहै तथा कफ वायु दोनोंसे संसृष्ट दोनों मार्गोंसे प्रवृत्त होताहै ॥

ऊर्द्ध्वं साध्यमधो याप्यमसाध्यं युगपद्गतम् ॥ ५ ॥

ऊर्द्ध्वगामी मुखनासिकादिकी तरफ प्रवृत्त होनेवाला रक्तपित्त साध्य होता है और अधोगामी गुदालिंगकी तरफ प्रवृत्त होनेवाला याप्य होताहै और दोनों तरफका असाध्य होताहै ॥ ५ ॥

रक्तपित्तका पूर्वरूप ।

सदनं शीतकामित्वं कंठधूमायनं वमिः ॥
लोहगंधिश्च निःश्वासो भवत्यस्मिन्भविष्यति ॥ ६ ॥

शरीरमें शिथिलता हो, शीत पदार्थोंको जी चाहे, कंठमें धुवांसा घुटे, वमन हो, श्वासमें लोहेकेसी गंध आवे ये लक्षण रक्तपित्तके पूर्वरूपमें होते हैं ॥ ६ ॥

रक्तपित्तकी संख्या ।

बाह्यासृग्लक्षणैस्तस्य संख्यादोषोच्छ्रितीर्विदुः ॥ ७ ॥

इस रक्तपित्तका संख्याभेद और दोषोंकी प्रधानता शोणितवर्णनीय अध्यायमें कहे हुए लक्षणोंसे जानना (वहां इसके सात भेद लिखे हैं) ॥ ७ ॥

रक्तपित्तके उपद्रव ।

दौर्बल्यश्वासकासज्वरवमथुमदाः पांडुतादाहमूर्च्छाः

(श्लो० ७) बाह्यासृग्लक्षणैरिति–शोणितवर्णनीयोक्तैः "फेनिलमरुणम्" इत्यादिभिः तस्य रक्तपित्तस्य संख्या सप्तविधा (इति नि० सं०)

हितं च शाकं घृतसंस्कृतं सदा तथैव धात्रीफलदाडिमान्वितम् ॥ रसाश्च पारावतशंखकूर्मजास्तथा यवाग्वोऽभिहिता घृतोत्तराः ॥ ॥ १६ ॥ संतानिकाश्चोत्पलवर्गसाधिते क्षीरे प्रशस्ता मधुशर्करोत्तमाः ॥ हिमाः प्रदेहा मधुशर्कराश्च ये घृतानि पथ्यानि च रक्तपित्तिनाम् ॥ १७ ॥

शीतल दूध, जंगली जीवोंके मांसका रस, मटरके यूष, शाली और षष्टिक चावल, परवल, ल्हेसुवे, निषण्ण (सिरयाई) का शाक, यूथिका (जुईका शाक), वट और अतिमुक्त (तिंदुक या तिरिच्छ) इनके कोमल पत्ते, इंदु (कपूर या अश्मंतक), वारिज (कमल) ॥ १५ ॥ तथा घृतसे संस्कार दिये हुए शाक तथा आँवले और अनारयुक्त तथा पारावत (परेवा), शंखका जीव और कछुवा इनका मांस तथा घृतयुक्त यवागू ये भी हितकारक हैं ॥ १६ ॥ और उत्पलादि वर्गसे पकाये दूधकी मलाईमें शहद और मिश्री मिलाकर देना तथा ठंढे लेप करना, शहद और मिश्री या खांड (अथवा मधुशर्करा) और घृत ये सब रक्तपित्तरोग वालेको हितकारक हैं ॥ १७ ॥

मधूकशोभांजनकोविदारजैः प्रियंगुकायाः कुसुमैश्च चूर्णितैः ॥ भिषग्विदध्याच्चतुरः समाक्षिकान्हिताय लेहानसृजः प्रशांतये ॥ ॥ १८ ॥ लिह्याच्च दूर्वावटजांश्च पल्लवान्मधुद्वितीयान्सितकर्णिकस्य ॥ हितं च खर्जूरफलं समाक्षिकं फलानि चान्यान्यपि तद्गुणान्यथ ॥ १९ ॥

महुवा, सोहँजना और कचनाल तथा प्रियंगु इन सबके फूल लेवे और इन्हें पीसकर शहद मिलाकर चतुर वैद्य अवलेह बनावे यह अवलेह रक्तपित्तकी शांतिके लिये हितकारक है (कई ऐसा अर्थ करते हैं कि इन चारों प्रकारके पुष्पोंसे चार अवलेह बनावे) ॥ १८ ॥ अथवा दूध और बडकी कोंपल (अंकुर) इनमें शहद मिलाके चाटे अथवा सुफेद कमलके अंकुरोंमें शहद मिलाके चाटे अथवा खजूरके

–इति । "वटातिमुक्तांकुरमिंदुवारिजम्" इत्यत्र 'वटातिमुक्तांकुरसिंधुवारजम्' इति पाठांतरम् । तत्र अतिमुक्त तिंदुकम् अंकुराः कोमलपल्लवाः । सिंदुवारः निर्गुंडी । परंतु तस्य पित्तकोपकरत्वात् "इंदुवारिजम्" इति पाठः समीचीनः प्रतीयते ।

(श्लो० १८) चतुरो लेहान् विदध्यात् । अथवा चतुरो भिषक् लेहान् विदध्यात् ।

रक्तपित्तकी चिकित्सा।

अधःप्रवृत्तं वमनैरूर्द्धमार्गं विरेचनैः ॥
जयेदन्यतरं चापि क्षीणस्य शमनैरसृक् ॥ ११ ॥

नीचेकी तरफ प्रवृत्त हुए बलवान् रोगीके रक्तपित्तका वमन कराके और ऊर्द्ध्वगामीको विरेचन देकर शांत करना (तथा अन्य क्रियाओंसे भी शांत करना) और रोगी निर्बल हो तो वमन, रेचन नहीं देना किंतु केवल शमनकारक उपायोंसे शांत करना चाहिये चाहे वह किसी मार्गसे प्रवृत्त हो ॥ ११ ॥

अतिप्रवृत्तदोषस्य पूर्वं लोहितपित्तिनः ॥ अक्षीणबलमांसाग्नेः कर्तव्यमपतर्पणम् ॥ १२ ॥ लंघितस्य ततः पेयां विदध्यात्स्वल्पतंडुलाम् ॥ तर्पणं पाचनं लेहान्सर्पींषि विविधानि च ॥ १३ ॥

रोगी यदि क्षीण नहीं हो किन्तु बलवान् पुष्ट और दीप्ताग्निवाला हो और उसके रक्तपित्त अति प्रवृत्त हो तो उसे पहले लंघन करावे ॥ १२ ॥ और उचित लंघनके पीछे थोडे चावलोंकी पेया पिलानी चाहिये तथा तर्पण करना, पाचन वस्तु देना, अवलेह देना और अनेक प्रकारसे यथायोग्य सिद्ध किये हुए घृत देने भी उचित हैं ॥ १३ ॥

द्राक्षामधुककाश्मर्यसितायुक्तं विरेचनम् ॥
यष्टीमधुकयुक्तं च सक्षौद्रं वमनं हितम् ॥ १४ ॥

यदि विरेचन देनेका काम पड़े तो मुनक्का, मुलेठी, खंभारी और मिश्री मिलाकर विरेचन देना और जो वमन करानेका काम पड़े तो मुलेठी और शहद मिलाकर वमन कराना ॥ १४ ॥

पयांसि शीतानि रसाश्च जांगलाः सतीनयूषाश्च सशालिषष्टिकाः॥
पटोलशेलूसुनिषण्णयूथिका वटातिमुक्तांकुरमिंदुवारिजम् ॥१५॥

(श्लो० ११) ननु अधोगं वातानुगं भवति, ऊर्ध्वगं च कफानुगतं, तत्कथं तयोः वमनविरेचनैर्युज्यते, सत्यं, व्याधिप्रत्यनीकत्वात् । अन्यतरम् ऊर्ध्वगमधोगं वा क्षीणस्य पुरुषस्य शमनैर्वमनविरेचनैर्जयेत् तथा च तंत्रान्तरे-"ऊर्ध्वगं वाप्यधोगं वा क्षीणस्य शमनैर्जयेत् ॥" (इति नि० सं०)

(श्लो० १५) पयांसि शीतानीति-शीतलानि पयांसीति स्पष्टोऽर्थः । परंतु श्रीमता डल्हनेनेति व्याख्यातम्-शीतानि उत्पलादीनि द्रव्याणि तत्क्वथितशीतानि पयांसि शीतानि तानि तु पित्तप्राये । जांगला रसा एणादिकृताः तेच वातानुबंधे । सतीनयूषा वर्तुलकलाययूषाः ते च कफानुबद्धपित्ते । तदुक्तं भावप्रकाशेपि-"कफानुगे यूषशाकान् दद्याद्वातानुगे रसम् ॥ पथ्यं सतीनयूषेण ससितैलाजसक्तुभिः ॥ १ ॥"-

नाकसे रुधिर निकल आनेपर यत्न ।

पथ्याश्चैवावपीडेषु घ्राणतः प्रस्रुतेऽसृजि ॥ २७ ॥

और जो नाकसे रुधिर बहता हो तो पूर्वोक्त येही छहों प्रयोग अवपीडनमें (नस्य देनेमें) श्रेष्ठ हैं ॥ २७ ॥

अधिकरक्तनिकले पर यत्न ।

अतिप्रस्रुतरक्तो वा क्षौद्रयुक्तं पिबेदसृक् ॥

यकृद्वा भक्षयेदाजमामं पित्तसमायुतम् ॥ २८ ॥

जिसके किसी मार्गसे अधिक रक्त निकल गया हो वह शहद मिलाकर बकरेका रुधिर पान करे अथवा बकरेका यकृत् (जिगर) पित्त समेत कच्चाही खावे ॥ २८ ॥

रक्तपित्तपर अन्ययोग ।

पलाशवृक्षस्वरसे विपक्वं सर्पिः पिबेत्क्षौद्रयुतं सुशीतम् ॥

वनस्पतीनां स्वरसैः कृतं वा सशर्करं क्षीरघृतं पिबेद्वा ॥ २९ ॥

द्राक्षामुशीराण्यथ पद्मकं सितां पृथक्पलांशान्युदके समावपेत् ॥

स्थितं निशां तद्रुधिरामयं जयेत्पीतं पयो वांबुसमं हिताशिनः ॥ ३० ॥

तुरंगवर्चःस्वरसं समाक्षिकं पिबेत्सिताक्षौद्रयुतं वृषस्य वा ॥

लिहेत्तथा वास्तुकबीजचूर्णं क्षौद्रान्वितं तंडुलसाह्वयं वा ॥ ३१ ॥

ढाकके स्वरसमें पकाये हुए घृतको शीतल करके शहद मिलाके पीवे अथवा वनस्पति (बट, पिप्पलादि) के स्वरसमें पका हुआ घृत इसी भांति पीवे अथवा दूध, घृत, खांड इन्हें मिलाके पीवे ॥ २९ ॥ मुनक्का, खस, पद्माख, मिश्री इन सबको पल पल भर लेकर पानीमें भिगादे और रातभर भीगने दे और प्रभात (शहद मिलाके) पीवे यह रुधिरके विकार (रक्तपित्त) को शांत करताहै अथवा दूधमें बराबरका पानी मिला (लहसी) बनाके पीवे और हितकारक भोजन करे ॥ ३० ॥ अथवा घोडेकी लीदका रस शहद मिलाके पीवे अथवा बैलके गोबरका रस शहद मिलाके पीवे अथवा बथुवेके बीजोंका चूर्ण शहद मिलाके चाटे अथवा चौलाईको शहदके संग सेवन करे ॥ ३१ ॥

लिह्याच्च लाजांजनचूर्णमेकमेवं सिताक्षौद्रयुतां तुगाख्याम् ॥

(श्लो० ३१) तंडुलसाह्वयं तण्डुलीयकम् ।

फल (खजूरिया) को शहद सहित चाटे तथा इसी प्रकारके पित्तनाशक अन्य फलोंको भी शहदके संग चाटना योग्य है ॥ १९ ॥

रक्तातिसारप्रोक्तांश्च योगानत्रापि योजयेत् ॥ शुक्लेक्षुकांडमापोथ्य नवे कुंभे हिमांभसा ॥ २० ॥ योजयित्वा क्षिपेद्रात्रावाकाशे सोत्पलं तु तत् ॥ प्रातः स्रुतं क्षौद्रयुतं पिबेच्छोणितपित्तवान् ॥२१॥

रक्तातिसारमें कहे हुए प्रयोगोंको यहां योजना करना ठीक है अथवा सुफेद इक्षुकांड (पौंडेकी गँडेरियों) को कूटकर रस निकाल लेवे फिर उसे कोरे मिट्टीके घडेमें डाल दे और बराबरका जल मिलादे और कमल भी उसमें डालदे और रातको चौंडेमें रखदे प्रभात छानकर शहद मिलाके रक्तपित्तवाला मनुष्य पीवे ॥ २० ॥ २१ ॥

पिबेच्छीतकषायं वा जंब्वाम्रार्जुनसंभवम् ॥
उदुंबरफलं पिष्ट्वा पिबेत्तद्रसमेव वा ॥ २२ ॥

अथवा जामुन, आम और कुहा इनके पत्रों (कोमल पल्लवों) के शीतकषायको (मधुयुक्त) पीवे अथवा गूलरके फलको पीसकर या उसका रस निकालकर (मधुयुक्त करके) पीवे ॥ २२ ॥

त्रपुषीमूलकल्कं वा सक्षौद्रं तंडुलांबुना ॥ पिबेदक्षसमं कल्कं यष्टीमधुकमेव वा ॥ २३॥ चंदनं मधुकं रोध्रमेकमेवं समं पिबेत् ॥ करंजबीजमेवं वा सिताक्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ २४ ॥ मज्जानमिंगुदस्यैवं पिबेन्मधुकसंयुतम् ॥ सुखोष्णं लवणं बीजं कारंजं दधिमस्तुना ॥२५॥ पिबेद्वापि त्र्यहं मर्त्यो रक्तपित्ताभिपीडितः ॥ रक्तपित्तहराः शस्ता षडेते योगसत्तमाः ॥ २६ ॥

त्रपुषी (ककडी) की जडका कल्क बनाके शहद मिलाके चावलोंके पानीके संग पीवे अथवा कर्षभर मुलेठीका कल्क (शहदके संग) पीवे ॥ २३ ॥ अथवा चन्दन, मुलेठी, लोध इनको समान भाग ले (इनका हिम) पीवे अथवा करंजवेके बीज, मिश्री और शहदके संग (कल्क करके) पीवे ॥ २४ ॥ अथवा हिंगोटकी गिरीको शहदके संग (कल्क करके) पीवे अथवा करंजके बीज, दधिमस्तु और नमक इन्हें जरा निवाया करके तीन दिन रक्तपित्तसे पीडित मनुष्य पीवे ये छह श्रेष्ठ योग रक्तपित्तके नाश करनेवाले हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

रस निकालकर ठंढा २ पीवे और अन्य शीतल और मधुर उपचार विशेष करके रक्तपित्तरोगमें करने चाहिये ॥ ३७ ॥

द्राक्षाघृतक्षौद्रसितायुतेन विदारिगंधादिविपाचितेन ॥
क्षीरेण चास्थापनमग्र्यमुक्तं हितं घृतं चाप्यनुवासनार्थम् ॥३८॥
प्रियंगुरोध्रांजनगैरिकोत्पलैः सुवर्णकालीयकशंखचंदनैः ॥
सिताश्वगंधाम्बुदयष्टिकाह्वयैर्मृणालसौगंधिकतुल्यपेषितैः ॥ ३९ ॥
निरूह्य चैनं पयसा समाक्षिकैर्घृतप्लुतैः शीतजलांबुसेचितम् ॥
क्षीरौदनं भुक्तमथानुवासयेद्घृतेन यष्टीमधुसाधितेन च ॥ ४० ॥

मुनक्का, घृत व मिश्री इनसे मिले हुए विदारिगंधादिगणसे पकाये हुए दूधसे आस्थापन वस्ति करना श्रेष्ठ है तथा इन्हींसे सिद्ध किया हुआ घृत अनुवासन वस्तिके अर्थ लेवे (कई यहां अनुक्त मुलेठीका घृत मानते हैं) ॥ ३८ ॥ तथा प्रियंगु, लोध, रसौत, गेरू, कमल, सुवर्ण (नागकेसर), कालीयक (दारुहलदी, अथवा सुवर्णकालीयक पीत चंदन), शंख और चंदन, मिश्री, असगंध, नागरमोथा, मुलेठी, मृणाल (कमलनाल) और सौगंधिक कमल इन सबको बराबर लेकर पीसले ॥ ३९ ॥ और दूध, शहद, घृत मिलाकर आस्थापन वस्ति करे और फिर शीतल जलसे सेचन करके दूध और चावलका भोजन देवे और मुलेठीसे सिद्ध किये हुए घृतसे अनुवासन वस्ति करे ॥ ४० ॥

अधोवहं शोणितमाशु नाशयेत्तथाऽतिसारं रुधिरस्य दुस्तरम् ॥
विरेकयोगे त्वति चैव शस्यते वाम्यश्च रक्ते विजिते बलान्वितः ॥४१॥
एवंविधा उत्तरवस्तयश्च मूत्राशयस्थे रुधिरे विधेयाः ॥
प्रवृत्तरक्तेषु च पायुजेषु कुर्याद्विधानं खलु रक्तपैत्तम् ॥ ४२ ॥

यह पूर्वोक्त वस्ति अधोगामी (गुदाद्वारा आनेवाले) रुधिरको शीघ्र शांत कर देती है तथा दुस्तर रक्तातिसारको भी बंद करती है और जो विरेचनका अतियोग होगया हो तो उसमें भी श्रेष्ठ है और जब रक्त बंद होजावे तब बलवान् रोगीको वमन करा देवे तो ठीक है ॥ ४१ ॥ और जो मूत्रमार्गसे रुधिर आता हो तो येही ऐसीही उत्तर वस्ति (अर्थात् मूत्रमार्गमें वस्ति देनी चाहिये) और मल-

(श्लो० ३८) तच्च अनुवासनार्थं घृतं यष्टीमधुकसाधितम् । अन्ये विदारिगंधादिसाधिते क्षीरे घृतपाकमिच्छंति (इति डल्लनः) (श्लो० ४२) पायुजेषु रक्तार्शोंकुरेषु तथा अन्यप्रकारेण गुदशोणितनिर्गमेषु च ।

द्राक्षां सितां तिक्तकरोहिणीं च हिमांबुना वा मधुकेन युक्ताम् ॥ पथ्यामहिंस्रां रजनीं घृतं च लिह्यात्तथा शोणितपित्तरोगी॥३२॥

धानकी खील और अंजन-रसौत (कई सौवीरांजन अर्थात् सुरमा कहतेहैं) इनका चूर्ण बनाकर शहदके संग चाटे अथवा वंशलोचन, मिश्री इन्हें शहदमें मिलाके चाटे अथवा दाख (मुनक्का), मिश्री और कुटकी इनको ठंढे पानीसे पीवे और मुलेठी भी मिलाले अथवा हरडे, अहिंस्रा (बालछड या हींस), हलदी और घृत इन्हें चाटे (शहद युक्त चाटे) रक्तपित्तके रोगीको ये सब योग हितकारक हैं ॥ ३२ ॥

वासाकषायोत्पलमृत्प्रियंगुनेत्रांजनांभोरुहकेशराणि ॥ पीत्वा सिताक्षौद्रयुतानि जह्यात्पित्तासृजो वेगमुदीर्णमाशु ॥३३ ॥ गायत्रिजंब्वर्जुनकोविदारशिरीषरोध्राशनशाल्मलीनाम् ॥ पुष्पाणि शिग्रोश्च विचूर्ण्य लेहो मध्वन्वितः शोणितपित्तरोगे ॥ ३४ ॥

अडूसेका क्काथ कर उसमें कमल और मिट्टी (मुलतानी मिट्टी या वानी मिट्टी), गोंदी, रसौत और कमलकी केशर इनमें मिश्री और शहद मिलाकर पीवे तो यह शीघ्रही वढे हुए रक्तपित्तके उग्र वेगको जीतलेताहै ॥ ३३ ॥ तथा खैर, अर्जुन, जामुन, कचनाल, शिरस, लोध, विजयसार और सेमल तथा सोहँजना इन सबके फूल पीसकर शहद मिलाके रक्तपित्तके रोगमें चाटना श्रेष्ठ है ॥ ३४ ॥

सक्षौद्रमिंदीवरभस्मवारि करंजबीजं मधुसर्पिषी च ॥ जम्ब्वर्जुनाम्रक्कथितं च तोयं घ्नंति त्रयः पित्तमसृक् च योगाः ॥ ३५ ॥ मूलानि पुष्पाणि च मातुलुंग्याः पिष्ट्वा पिबेत्तंडुलधावनेन ॥ घ्राणप्रवृत्ते जलमाशु देयं सशर्करं नासिकया पयो वा ॥ ३६ ॥ द्राक्षारसं क्षीरघृतं पिबेद्वा सशर्करं चेक्षुरसं हिमं वा ॥ शीतोपचारं मधुरं च कुर्याद्विशेषतः शोणितपित्तरोगे ॥ ३७ ॥

नीलकमलको जलाकर उसका भस्म शहद मिलाकर चाटे अथवा करंजबीजोंको शहद और घृतसे चाटे अथवा जामुन, कुहा, आम इनका क्काथ पीवे ये तीन प्रयोग रक्तपित्तको नष्ट करतेहैं ॥ ३५ ॥ अथवा बिजोरेकी जड और उसके फूल पीसकर चावलोंके धोवनके संग पीवे और जो नाकसे रुधिर आता हो तो इस जलको नासिकामें धारण करे अथवा दूधमें खांड मिलाके उसकी नस्य ले ॥ ॥ ३६ ॥ अथवा मुनक्काका रस, दूधका घृत, खांड मिलाके पीवे अथवा ईखका

वैश्च तथा भिषक् ॥ ४ ॥ विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुधात्रीफलद्रवैः ॥ ऊर्द्धगं वमनैर्विद्वानधोगं रेचनैर्हरेत ॥ ५ ॥

अर्थ-अम्लपित्तमें परवल, नींब, वासा और मैनफल इनमें शहद मिलाकर वमन करावे अथवा लवणके योगसे वमन करावे ॥ ४ ॥ और निशोथके चूर्णमें शहद मिलाकर आंवलोंके रससे विरेचन करावे यदि ऊर्द्धगामी अम्लपित्त हो तो उसे वमन कराके शांत करे तथा अधोगामी (जिसमें हरे पीले दस्त आते हों, पक्काशयमें अम्ल हुआ पित्त पहुँचा हो) उसमें विरेचन देवे ॥ ५ ॥

श्लोक-निस्तुषयववृषधात्रीक्वथितं सलिलं त्रिगंधमधुयुक्तम् ॥ द्रुततरमपहरति वमिं संजनितामम्लपित्तेन ॥६॥ यवगोधूमविकृतीस्तीक्ष्णसंस्कारवर्जिताः ॥ यथास्वं लाजसक्तून्वा सितामधुयुतान्पिबेत् ॥ ७ ॥

अर्थ-छिले या कुटे हुए जौ, वासा, आंवले इनका क्वाथ त्रिसुगंध (तज, पत्रज, इलायची) युक्त पीनेसे अम्लपित्तकी खट्टी वमन या मुँहसे पानी आना बंद होजाता है ॥ ६ ॥ अथवा जौ या गेहूँके पदार्थ जिनमें तीक्ष्ण संस्कार नहीं हो, द्रव हों उन्हें लेवे अथवा धानकी खीलोंके सत्तूमें मिश्री व शहद मिलाके पीवे ॥ ७ ॥

श्लेष्मपित्तका यत्न ।

श्लोक-पटोलयवधान्याकपिप्पल्यामलकानि च ॥
एषां क्षौद्रयुतः क्वाथः पित्तश्लेष्महरः परः ॥ ८ ॥

अर्थ-परवल, जौ, धनियां, पीपल और आंवले इनका क्वाथ शहदके संग मिलाके पीना श्लेष्मपित्तको नष्ट करता है ॥ ८ ॥

यूनानी हकीम मुँहसे रुधिर आनेको जो छाती और फेफडेसे आवे, उसे "नफसुद्दम" कहते हैं और जो आमाशय (मेंद) से आवे तो उसको " कैउद्दम " कहते हैं (नफसुद्दममें थोडा थोडा खून आता है और कैउद्दममें रक्तकी वमन जैसा होता है) ॥

डाक्टरीमें रक्तपित्तको "कौंजशचन" (Congestion) या "कोंजशचन औफ दी स्टमक" कहते हैं और जब यह रुधिर नीचेको प्रवृत्त होता है तो उसे मेलना (Meelan) कहते हैं और ऊपर मुँहकी तरफसे प्रवृत्त हो तो "हेमाटेमेसम्" (Haematemesis) कहते हैं और जो फेफड़ोंसे मुँहकी तरफ खून आताहै उसे "मापटेसिम्" (Mapatesis) कहते हैं ॥ ॥ इति परिशिष्ट ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

द्वारसे रक्त आनेमें (अर्थात् अर्शादि अन्य कारणोंसे मलमार्गसे रुधिर आता हो तो भी) रक्तपित्तका विधान करना अर्थात् रक्तपित्तकी ही औषधें करना उचित है ॥ ४२ ॥

विधिश्चासृग्दरेऽप्येष स्त्रीणां कार्यो विजानता ॥ शस्त्रकर्मणि रक्तं वा यस्यातीव प्रवर्तते ॥ ४३ ॥ त्रयाणामपि दोषाणां शोणितस्य च सर्वशः॥ लिंगान्यालोक्य कर्तव्यं चिकित्सितमनंतरम् ॥४४॥

इति सुश्रुतसं०उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

जानकार वैद्यको स्त्रियोंके प्रदररोगमें तथा शस्त्रकर्म (फस्त आदि) से अधिक रुधिर निकलनेमें भी रुधिरके तीनों दोषोंमेंसे लक्षण देखकर फिर चिकित्सा करनी चाहिये (अर्थात् इनमें भी रक्तपित्तहीकी विधि करनी चाहिये ॥ ४३॥४४ ॥

परिशिष्ट ।

प्रसंगवशसे अम्लपित्त और श्लेष्मपित्तका वर्णन हम ग्रंथांतरसे करते हैं:-

अम्लपित्तका हेतु और लक्षण ।

श्लोक-विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम् ॥ पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदंति संतः ॥ १ ॥ अविपाकः क्लमोत्क्लेशस्तिक्ताम्लोद्गारगौरवैः ॥ हृत्कंठदाहारुचिभिरम्लपित्तं वदेद्भिषक् ॥ २ ॥

अर्थ-विरुद्ध भोजन करनेसे, विशेष खटाई खानेसे, विदाही (जलन करनेवाले) तथा पित्तकोप करनेवाले तीक्ष्ण पदार्थ खाने व पीनेसे अपने हेतुओंसे पूर्वका संचित पित्त विदग्ध होजावे इसे वैद्य अम्लपित्त कहते हैं (अर्थात् संचित पित्त विदग्ध होकर खट्टा होजावे इसीको अम्लपित्त कहते हैं) ॥ १ ॥ इसके लक्षण ये हैं कि-भोजन ठीक नहीं पचे, ग्लानि रहे, मुँहसे खट्टा पानीसा आवे, कड़वे खट्टे डकार आवें, भारीपन रहे, हृदय और कंठमें दाह रहे और अरुचि हो इसेही वैद्य अम्लपित्त कहते हैं ॥ २ ॥

श्लेष्मपित्तके लक्षण ।

श्लोक-तमोमूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिरालस्यं च शिरोरुजा ॥
प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम् ॥ ३ ॥

अर्थ-अंधेरी आवे, मूर्च्छा होजावे, अरुचि छर्दि, आलस्य, शिरमें दरद, मुँहसे पानी आना, मुख मीठा रहना ये लक्षण श्लेष्मपित्तके हैं (पित्तमें कफके योगसे श्लेष्मपित्त होता है) ॥ ३ ॥

अम्लपित्तका यत्न ।

श्लोक-अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टवासकैः ॥ कारयेन्मदनैः क्षौद्रैः सैंध-

संज्ञाके वहनेवाली नाडियोंमें वातादि दोषोंसे जब तम (तमोगुण) प्राप्त होताहै तब वह तमोगुणही सुखदुःखका ज्ञान नष्ट करनेवाला होताहै (अर्थात् इंद्रियोंके बाह्य द्वारसे आभ्यंतर चैतन्य तक उस इंद्रियके विषयको पहुँचानेवाली जो शिरा हैं जब उनमें तमोगुण (अंधकार) व्याप्त होजाता है तब इंद्रियां अपने विषयको ग्रहण भी नहीं करतीं और न चैतन्य तक पहुँचासकती हैं तब मनुष्यको सुखदुःखादि किसी बातका ज्ञान नहीं रहता ॥ ४ ॥ और सुखदुःख आदिका ज्ञान नहीं रहनेसे मनुष्य काष्ठकी तरह गिर जाताहै इसे मोह या मूर्च्छा कहते हैं (थोडी बेहोशी या होश बिगड़ जानेको मोह और बिलकुल बेहोश होजानेको मूर्च्छा कहतेहैं) यह मूर्च्छा छः प्रकारकी होती है ॥ ५ ॥

वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च ॥
षट्स्वपि तासु पित्तं हि प्रभुत्वेनावतिष्ठते ॥ ६ ॥

वात आदि जुदे एक एक दोषसे (जैसे वातकी मूर्च्छा, पित्तकी मूर्च्छा, कफकी मूर्च्छा), चौथे रक्तसे, पांचवें मद्यसे, छठे विषसे होतीहै परंतु इन छहों प्रकारकी मूर्च्छाओंमें प्रधानतासे पित्तही रहताहै ॥ ६ ॥

(वक्तव्य) इसमें यह है कि पित्त तो सत्त्वगुणप्रधान और चैतन्यताका हेतु है फिर उससे मूर्च्छा कैसे ? इसका समाधान यह है कि यथावस्थित शुद्ध पित्त सत्त्वगुणप्रधान और चैतन्यताका हेतु होताहै दूषित और उद्रिक्त पित्त होनेपर वह भी अज्ञानकारक होजाता है ॥

सूँघनेसे मूर्च्छा ।

पृथिव्यंभस्तमोरूपं रक्तगन्धश्च तन्मयः ॥ तस्माद्रक्तस्य गन्धेन मूर्च्छन्ति भुवि मानवाः ॥ ७ ॥ द्रव्यस्वभाव इत्येके दृष्ट्वा यदभिमुह्यति ॥ गुणास्तीव्रतरत्वेन स्थितास्तु विषमद्ययोः ॥ त एव तस्माज्जायन्ते ताभ्यां मोहा यथेरिताः ॥ ८ ॥

पृथिवी और जल तमोगुणका रूप हैं और रुधिरकी गंध तन्मय है इस कारण रुधिरके गंधसे (रुधिरके सूँघने या सुँघानेसे) मनुष्य मूर्च्छित हो जातेहैं ॥ ७ ॥ और कोई ऐसा कहतेहैं कि कइयोंका ऐसा स्वभाव होताहै कि उन्हें देखकर मूर्च्छा होजाती है और विष और मद्यमें तीव्रतासे ये गुण स्थित हैं (अर्थात् विष और मद्यमें मूर्च्छाके तीव्र गुण हैं) इसीसे उनके उपयोगोंसे उनसे प्रेरित मोह (बेहोशी या बुद्धिमें विकार) उत्पन्न हो जातेहैं ॥ ८ ॥

स्तब्धाङ्गदृष्टिस्त्वसृजा गूढोच्छ्वासश्च मूर्च्छितः ॥ ९ ॥ मद्येन

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ४६.

अथातो मूर्च्छाप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम मूर्च्छाकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ।

मूर्च्छाका हेतु ।

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः ॥ विघातादभिघाताद्वा हीनसत्त्वस्य वा पुनः ॥१॥ करणायतनेषूग्रा बाह्येष्वाभ्यंतरेषु च ॥ निर्विशन्ते यदा दोषास्तदा मूर्च्छन्ति मानवाः ॥ २ ॥

जो मनुष्य क्षीण हो, जिसके बहुत दोष (पित्त) बढ़जावे, जो विरुद्ध आहारका सेवन करे, जो मल मूत्रादिका वेग रोके, जिसके किसी प्रकारकी चोट लगजावे, जो हीनसत्त्व होजावे ऐसे मनुष्यके ॥ १ ॥ इंद्रियोंके बाह्य और आभ्यंतर आयतन (स्थानों) में जब उग्रदोष प्राप्त होजाते हैं तब मनुष्य मूर्च्छित (वेहोश) होजाते हैं ॥ २ ॥

(वक्तव्य) बाह्यकरणायतन कर्मेन्द्रियोंके मूल और आभ्यन्तरकरणायतन ज्ञानेंद्रियोंके मूल समझिये ज्ञानेंद्रियोंका आयतन बहुधा हृदय मानते हैं परंतु कई मूर्द्धा (अर्थात् दिमाग) को ही ज्ञानेंद्रियोंका आयतन मानते हैं ॥

मूर्च्छाका पूर्वरूप ।

हृत्पीडा जृंभणं ग्लानिः संज्ञानाशो बलस्य च ॥ सर्वासां पूर्वरूपाणि यथास्वमुपलक्षयेत् ॥ ३ ॥

हृदयमें पीडा (कलमलाटसा होना), जँभाई आना, ग्लानि होना, संज्ञाका नाश (होश बिगड़ना) और बलका नाश होना सब प्रकारकी मूर्च्छाके पूर्वरूपमें ये लक्षण होते हैं ॥ ३ ॥

मूर्च्छाका स्वरूप ।

संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः॥ तमोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत् ॥ ४ ॥ सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत् ॥ मोहो मूर्च्छेति तां प्राहुः षड्विधा सा प्रकीर्तिता ॥ ५ ॥

(श्लो० १) बहुदोषस्य बहुपित्तप्रधानस्य । विघातात् वेगादीनाम् (श्लो० २) करणायतनेषु बाह्येषु आभ्यन्तरेषु च । तत्र बाह्येषु कर्मेन्द्रियेषु आभ्यंतरेषु ज्ञानेंद्रियेषु (इति भा० मि०)

(श्लो० ३) बलस्य च नाशः ।

चेतमें हो उसे पित्तकी मूर्च्छा जानों ॥ ४ ॥ मेघ जैसा अंधकारसा बादल सहितसा देखकर जो मूर्च्छित हो बहुत देर पीछे होशमें आवे तो कफकी मूर्च्छा जानों ॥ ५ ॥ इति परिशिष्ट ॥

यद्यपि मूर्च्छामें पित्त प्रधान होता है परन्तु फिर दूसरा दोष भी उसके साथ होता है ॥

मूर्च्छाकी चिकित्सा ।

सेकावगाहा मणयः सहाराः शीताः प्रदेहा व्यजनानिलाश्च ॥
शीतानि पानानि च गन्धवन्ति सर्वासु मूर्च्छास्वनिवारितानि ॥१२॥

शीतल परिषेक (ठंढे पानीके छींटे देना), स्नान कराना, सूत्रमें पिरोकर या हारमें गूँथकर मणि धारण कराना, ठंढे (चंदनादिका) लेप करना, पंखेसे पवन करना, ठंढे और सुगंधयुक्त पान कराना (शरबत या गुलाब केंवड़ेके अर्क वगैरह पिलाने) ये सब प्रकारकी मूर्च्छामें निरंतर (जबतक चेतनता न हो) करते रहना श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥

सितापियालेक्षुरसप्लुतानि द्राक्षामधूकस्वरसान्वितानि ॥
खर्जूरकाश्मर्यरसैः शृतानि पानानि सर्पींषि सजीवनानि ॥ १३ ॥
सिद्धानि[3] वर्गे[2] मधुरे[1] पयांसि सदाडिमा जांगलजा रसाश्च ॥
तथा यवा लोहितशालयश्च मूर्च्छासु पथ्याश्च सदा सतीनाः ॥१४॥
भुजंगपुष्पं मरिचान्युशीरं कोलस्य मध्यं च पिबेत्समानि ॥
सतीनतोयेन बिसं मृणालं क्षौद्रेण कृष्णां सितया च पथ्याम् ॥१५॥

मिश्री, चिरोंजीके ऊपरका गूदा, ईखका रस, दाख (मुनक्का), महुवा इनका रस युक्त करके पिलाना या खजूर और खंभारीके रसमें जीवनीय गणयुक्त घृत पकाकर पिलाना ॥ १३ ॥ अथवा मधुर द्रव्योंसे सिद्ध किया दूध पिलाना तथा जंगली जीवोंके मांसका रस, अनारकी खटाई मिलाकर देना अथवा जौ और चावल (लाल चावल) तथा मटर इनके भोजन मूर्च्छामें पथ्य होते हैं ॥ १४ ॥

(श्लो० १२) मणयश्चंद्रकान्तादयः । सहारा हारेण मुक्तापुष्पादिहारसहिताः । अनिवारितानि संततानि (इति डल्लनः) भावमिश्रस्तु इत्याह—"सर्वासु मूर्च्छास्वनिवारितानि" अस्यायमभिप्रायः—सेकादीनि सर्वासु मूर्च्छासु हितान्येव किंतु वातश्लेष्मजासु अपि न निवारितानि । तत्रापि पित्तस्य प्राधान्यात् (श्लो० १३) पियालं चारुकस्य उपरिस्थखाद्यपदार्थः न तु चारुकः (श्लो० १५) "सतीनतोयेन" इत्यत्र 'शीतेन तोयेन' इति पाठान्तरम् । तदुक्तं भावप्रकाशे—"शीतेन तोयेन बिसं मृणालम्" इति ।

विलपंश्छेते नष्टविभ्रांतमानसः ॥ गात्राणि विक्षिपन्भूमौ जरां यावन्न याति तत् ॥ १० ॥ वेपथुस्वप्नतृष्णाः स्युः स्तंभश्च विषमूर्च्छिते ॥ वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वं विषलक्षणैः ॥ ११ ॥

रुधिर सूँघनेकी मूर्च्छामें शरीर और दृष्टि स्तब्ध होजाती है (ये ज्योंके त्यों रहजातेहैं) और औंडे औंडे गँभीर श्वास आतेहैं ॥ ९ ॥ तथा मद्यजनित मूर्च्छामें पड़ा पड़ा प्रलाप किया करताहै और नष्ट तथा भ्रमितसा चित्त होजाता है और हाथ, पावोंको पृथ्वीमें दे दे मारता है जबतक नशा तीक्ष्ण रहे यही दशा रहती है ॥ १० ॥ और विषजनित मूर्च्छामें शरीर कांपता है, नींद आतीहै, तृषा होतीहै और स्तंभ होता है और जैसा जैसा तीव्र विष होताहै वैसीही वैसी मूर्च्छाके तीव्र लक्षण होतेहैं ॥ ११ ॥

परिशिष्ट ।

मूर्च्छाका उग्रभेद संन्यास ।

श्लोक–वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबला मलाः॥ संन्यस्यंत्यबलं जंतुं प्राणायतनमाश्रिताः ॥ १ ॥ स ना संन्याससन्यस्तः काष्ठीभूतो मृतोपमः ॥ २ ॥

अर्थ–दोष यकायक (अचानक) अत्यंत बलवान् होकर मनुष्यकी वाणी, देह और मनकी चेष्टाको नष्ट करदेतेहैं और प्राणोंके स्थान (हृदय) को आच्छादित करलेतेहैं तब मनुष्य इस संन्यास नामक उग्र व्याधिसे आक्रांत हुआ काठके तुल्य और मृतके समान होजाताहै (यहां मृतोपम कहाहै इससे इसमें श्वासनाडीकी गति आदि सब बंद होजातेहैं, मूर्च्छामें श्वास और नाडी रहतीहैं इसमें ये भी बंद होजातेहैं यही अंतर है) इसमें (मृत और संन्यस्तके जाननेकी युक्ति हम पहले कल्पस्थानके पांचवें अध्यायमें बताचुकेहें वहां देख लेना) ॥ १ ॥ २ ॥

वातादि मूर्च्छाके लक्षण ।

श्लोक–नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमथवाऽरुणम् ॥ पश्यंस्तमः प्रविशति शीघ्रं च प्रतिबुद्ध्यते ॥ ३ ॥ रक्तं हरितवर्णं वा वियत्पीतमथापि वा ॥ पश्यंस्तमः प्रविशति सस्वेदं प्रतिबुद्ध्यते ॥ ४ ॥ मेघसंकाशमाकाशं तमोभिर्वा घनैर्वृतम् ॥ पश्यंस्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुध्यते ॥ ५ ॥

अर्थ–जो मनुष्य नीला या काला अथवा ऊदा आकाश (सब कुछ) देखता हुआ मूर्च्छित होवे और शीघ्र ही चेतमें होजावे तो वायुकी मूर्च्छा जानों ॥ ३ ॥ और जो सुरख, हरा या पीला आकाश देखता हुआ मूर्च्छित हो तथा स्वेदयुक्त

वादित्रगीतानुनयैरपूर्वैर्विघट्टनैर्गुप्तफलावघर्षणैः ॥ २१ ॥
आभिः क्रियाभिश्च न लब्धसंज्ञः सानाहलालाश्वसनश्च वर्ज्यः॥
प्रभूतसंज्ञं वमनानुलोम्यैस्तीक्ष्णैर्विशुद्धं लघुपथ्यभुक्तम् ॥ २२ ॥
फलत्रिकैश्चित्रकनागराद्यैस्तथाश्मजाताज्जतुनः प्रयोगैः ॥
सशर्करैर्मासमुपक्रमेत विशेषतो जीर्णघृतं स पाय्यः ॥ २३ ॥

तीक्ष्ण अंजन लगावे और अभ्यंग करे, धूनी देवे तथा नखूनोंमें सुई आदि चुभोवे तथा नये नये बाजे बजावे और गीत गावे तथा अंगादिको मले (या दबावे या ताडे) या केवांचकी फली आदि लगावे (जिससे चैतन्यता होवे) ॥ ॥ २१ ॥ जो इन क्रियाओंसे भी चैतन्य न हो, पेटमें अफारा हो, मुँहसे लार या पानी बहता हो, श्वास चलता हो या श्वास बंद होगया हो उसे त्याग देवे और यदि इन उपायादिसे चैतन्यता होजावे तो वमन और विरेचन तीक्ष्ण देकर शुद्ध करे और हलका तथा पथ्य भोजन करावे ॥ २२ ॥ तथा त्रिफला, चित्रक, सोंठ आदिकी भावना दी हुई शिलाजीतको मिश्रीके संग एक महीना तक उपयोग करे विशेष करके ऐसे रोगीको पुराना घृत पान कराना श्रेष्ठ होता है ॥ २३ ॥

यथास्वं च ज्वरघ्नानि कषायाण्युपयोजयेत् ॥
सर्वमूर्च्छापरीतानां विषजानां विषापहम् ॥ २४ ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

और यथासंभव ज्वरनाशक काथोंका भी यहांपर उपयोग करसकते हैं और सब प्रकारके विषोंसे उपजी मूर्च्छामें वही विषनाशक (कल्पस्थानोक्त) उपचार करे ॥ २४ ॥

यूनानी हकीम मूर्च्छाको "सकता" कहते हैं और संन्यासको "मजूद" कहते हैं ॥ डाक्टरीमें मूर्च्छाको "कैटेलपसी" (Keytelapası) कहते हैं ॥

इति प० मुरलीधरवि० सुश्रुतस० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६ ॥

–ताडनम् । अन्ये तु 'नखाभ्यंतरतोत्रपातैः' इति पाठांतरं मन्यते तेन नखाभ्यंतरे सूच्यादिभी रुधिरपातनं कार्यमिति तात्पर्यार्थः । रक्तागमने जीवने प्रत्याशा । रक्तस्य चानागमने नैव जीवनाशा इति प्रतीयते

(श्लो० २२) सानाहलालाश्वसनः आनाहलालाश्वासयुतश्च असाध्यः । अथवा सानाहलालाऽश्वसनः श्वसनरहितश्चासाध्यः इति युज्यते (श्लो० २३) फलत्रिकैरिति–त्रिफलाचित्रकशुंठीभावितैः सशर्करैः शिलाजतुप्रयोगैः (इति डल्हनः)

नागकेशर, काली मिरच, खस, बेरोंका गूदा इनके समान भाग लेकर पान करे अथवा कमलकी जड़ और नालीको मटरके जलसे (या शीत जलसे) पीवे अथवा (हरी ताजी) पीपलोंको शहदके संग पीवे या हरडे और मिश्री मिलाके पीवे ॥ १५॥

कुर्याच्च नासावदनावरोधं क्षीरं पिबेद्वाप्यथ मानुषीणाम् ॥
मूर्च्छा प्रसक्तां तु शिरोविरेकैर्जयेदभीक्ष्णं वमनैश्च तीक्ष्णैः ॥१६॥
हरीतकीक्राथघृतं पिबेद्वा धात्रीफलानां स्वरसैः कृतं वा ॥
द्राक्षासितादाडिमलाजवन्ति शीतानि नीलोत्पलपद्मवन्ति ॥१७॥
पिबेत्कषायाणि च गन्धवन्ति पित्तज्वरं यानि शमं नयन्ति ॥ १८॥

नाक और मुँहके छिद्रोंको जरा जरा थोडी देर बंद करे और स्त्रीका दूध पीवे जिन्हें मूर्च्छाका दौरा होता हो उन्हें शिरोविरेचन और तीक्ष्ण वमनोंसे शांत करना चाहिये ॥ १६ ॥ अथवा हरडेका काथ घृतयुक्त पीवे (या हरीतकीके काथसे सिद्ध किया घृत पीवे) अथवा आंवलोंके रससे सिद्ध किया हुआ घृत पीवे अथवा मुनक्का, मिश्री, अनार, धानकी खील, नीलोत्पल (नीलकमल नीलोफर) और कमल इनका शीतल पानक बनाकर पीवे ॥ १७ ॥ अथवा पित्तज्वरके नाश करनेवाले जो सुगंधित काथ कहे गये हैं उन्हें पान करे ॥ १८ ॥

प्रभूतदोषस्तमसोऽतिरेकात्संमूर्च्छितो नैव विबुद्ध्यते यः ॥
संन्यस्तसंज्ञो भृशदुश्चिकित्स्यो ज्ञेयस्तदा बुद्धिमता मनुष्यः ॥१९॥
यथामलोष्टं सलिले निषिक्तं समुद्धरेदाश्वविलीनमेव ॥
तद्वच्चिकित्सेत्त्वरया भिषक्तमवेदनं मृत्युवशं प्रयातम् ॥ २० ॥

जिसके दोष बहुत बढ जाते हैं और तमोगुणकी बहुतही अधिकता होती है वह मूर्च्छित चैतन्य नहीं होता उसे संन्यस्तसंज्ञक (संन्यास रोगवाला) कहते हैं इसे बुद्धिमान् वैद्य दुश्चिकित्स्य जाने ॥ १९ ॥ जैसे कच्चा मिट्टीका डला पानीमें गिरे तो उसे बहुतही जलदी जबतक वह भीगे गले नहीं इतना शीघ्र निकाल लेनेसे रह सकता है इसी भांति वेदना (सुख दुःखकी वेदनासे रहित) मृत्युके वशमें हुए संन्यासके रोगीकी बहुतही शीघ्र चिकित्सा करनी चाहिये (नहीं तो शीघ्र मरही जाता है इसमें संदेह नहीं) ॥ २० ॥

तीक्ष्णाञ्जनाभ्यञ्जनधूमयोगैस्तथा नखाभ्यन्तरतोत्रपातैः ॥

(श्लो० २१) नखाभ्यन्तरतोत्रपातैरिति–तोत्राणि सूचीप्रकाराणि (इति डल्हनः) एतेन नखाभ्यन्तरे सूचीपातनम् । शब्दस्तोमे तु तोत्रं गवादिताडनदण्डे "कमची" इति लोके । तेन नखादिषु तोत्रेण—

स्निग्ध अन्नों और मांसके भक्ष्य पदार्थोंके साथ यदि ठीक ठीक मद्यका सेवन किया जावे तो यह आयुको बढाताहै, बल करताहै, शरीरको पुष्ट करता है ॥ ॥ ५ ॥ तथा काम्यता (कामकी प्रवृत्ति या कमनीयता) करताहै, मनको तुष्ट (प्रसन्न) रखताहै, धैर्य, तेज, अति पराक्रम ये सब गुण विधिसे सेवन किये हुए मद्यमें होतेहैं ॥ ६ ॥

अयुक्तिपूर्वक मद्यसेवनसे हानि ।

तदेवानन्नमज्ञेन सेव्यमानममात्रया ॥ कायाग्निना ह्यग्निसमं समेत्य कुरुते मदम् ॥ ७ ॥ मदेन कारणानां तु भावान्यत्वे कृते सति ॥ निगूढमपि भावं स्वं प्रकाशीकुरुतेऽवशः ॥ ८ ॥

वही मद्य अज्ञानी मनुष्य अन्नके विना और अप्रमाण मात्रासे (अधिक) पीवे तो यह अग्निके समान मद्य शारीरक अग्निसे मिलकर मद (नशा) पैदा करताहै ॥ ७ ॥ और जब मद (तेज नशा होताहै उस) से मनुष्य बेवश हो जाताहै तब बुद्धि और इंद्रियोंके भाव अन्यथा होजानेसे अपने गुप्तसे गुप्त आशयोंको भी प्रकाश कर देताहै (अर्थात् न कहनेके लायक़ बात भी चाहे जिसके सामने कहदेताहै) ॥ ८ ॥

मदकी तीन अवस्था ।

त्र्यवस्थश्च मदो ज्ञेयः पूर्वो मध्योथ पश्चिमः ॥ पूर्वे वीर्यरतिप्रीति-हर्षभाष्यादिवर्द्धनम् ॥ ९ ॥ प्रलापो मध्यमे हर्षो युक्तायुक्त-क्रियास्तथा ॥ विसंज्ञः पश्चिमे शेते नष्टकर्मक्रियागुणः ॥ १० ॥

मदकी तीन अवस्था होतीहैं-एक पूर्व (पहली) अवस्था, दूसरी मध्य अवस्था, तीसरी पश्चिम (पिछली) अवस्था इनमें पहली अवस्थामें वीर्य, रति, प्रेम, आनंद और वार्तालाप बढ़ना ये होतेहैं ॥ ९ ॥ मध्य अवस्थामें प्रलाप (बकवाद), हर्ष और कोई युक्त, कोई अयुक्त क्रिया होवें और पिछली अवस्थामें बेहोश पड़ा रहताहै सब कर्म, क्रिया और गुण नष्ट होजाते हैं ॥ १० ॥

मद्यसात्म्यमनुष्य ।

श्लैष्मिकानल्पपित्तांश्च स्निग्धान्मात्रोपसेविनः ॥ पानं न बाधतेऽत्यर्थं विपरीतांस्तु बाधते ॥ ११ ॥

(श्लो० ११) श्लैष्मिकादीनाम् अत्यर्थं न बाधते किंतु सूक्ष्मतया तु तानपि बाधते एव ।

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ४७.

अथातः पानात्ययप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम पानात्यय (मदात्यय) के प्रतिषेधकी व्याख्या करते हैं ।

मद्यके गुण और कर्म।

मद्यमुष्णं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्मं विशदमेव च ॥ रूक्षमाशुकरं चैव व्यवायि च विकासि च ॥ १ ॥ औष्ण्याच्छीतोपचारं तत्तैक्ष्ण्याध्दंति मनोगतिम् ॥ विशत्यवयवान्सौक्ष्म्याद्वैशद्यात्कफशुक्रनुत् ॥ ॥ २ ॥ मारुतं कोपयेद्रौक्ष्यादाशुत्वादाशुकर्मकृत् ॥ हर्षदं च व्यवायित्वाद्विकासित्वाद्विसर्पति ॥ ३ ॥

मद्य उष्ण है, तीक्ष्ण है, सूक्ष्म, विशद, रूक्ष, आशुकर तथा व्यवायी और विकासी है ॥ १ ॥ यह अपनी उष्णतासे शीतोपचारी है (ठंढे उपचार चाहता-है) और तीक्ष्णतासे मनकी गतिको रोक देता है और सूक्ष्म होनेसे शरीरके अवयवोंमें प्रविष्ट होता है और विशदतासे कफ और शुक्रको नष्ट करता है ॥ ॥ २ ॥ रूक्ष होनेसे वायुको कुपित करता है और आशुकर होनेसे शीघ्र प्रभाव करनेवाला है और व्यवायी होनेसे हर्षका देनेवाला है तथा विकासी होनेसे फैलनेवाला है ॥ ३ ॥

तदम्लरसतः प्रोक्तं लघु रोचनदीपनम् ॥
केचिल्लवणवर्ज्यांस्तु रसान्मद्ये वदंति हि ॥ ४ ॥

मद्य प्रधानतासे अम्लरसवाला होता है, हलका, रोचन और दीपन होता है। कोई ऐसा मानते हैं कि नमकीन (खारेपन) के सिवाय मद्यमें सब रस होतेहैं (यह पहलेके समयके गौडी, पैष्टी, माध्वी आदि मद्योंके रस होतेथे अब इस समय यंत्रसे खींचे मद्य प्रायः तीक्ष्ण और चरके रसवाले होतेहैं) ॥ ४ ॥

युक्तिपूर्वक सेवित मद्यके गुण।

स्निग्धैस्तदन्नैर्मांसैश्च भक्ष्यैश्च सह सेवितम् ॥ भवेदायुःप्रकर्षाय बलायोपचयाय च ॥ ५॥ काम्यता मनसस्तुष्टिर्धैर्यं तेजोऽतिविक्रमः ॥ विधिवत्सेव्यमाने तु मद्ये सन्निहिता गुणाः ॥ ६ ॥

च ॥ श्लेष्मात्मके वमथुशीतकफप्रसेकाः सर्वात्मके भवति सर्वविकारसंपत् ॥ १६ ॥

वातजनित पानात्ययमें स्तंभ (शरीर कडा होना), अंगडाई आना, हृदय पकडासा होना, दरद और कंप होना और शिरमें दरद ये लक्षण होतेहैं और पित्तके मदात्ययमें पसीना आवे, बकवाद करे, मुँह सूखे, दाह और मूर्च्छा हो मुँह और नेत्र पीले हों । तथा कफके मदात्ययमें वमन होना, शीत लगना, मुँहसे पानी आना ये लक्षण होतेहैं और सब दोषोंके मदात्ययमें सबके लक्षण मिश्रित होतेहैं ॥ १६ ॥

परमद पानाजीर्ण और पानविभ्रमके लक्षण ।

ऊष्मा शरीरगुरुता विरसाननत्वं श्लेष्माधिकत्वमरुचिर्मलमूत्रसंगः ॥ लिंगं परस्य तु मदस्य वदंति तज्ज्ञास्तृष्णा रुजा शिरसि संधिषु चापि भेदः ॥ १७ ॥ आध्मानमुद्गिरणमम्लरसो विदाहोऽजीर्णस्य पानजनितस्य वदंति लिंगम् ॥ ज्ञेयानि तत्र भिषजा सुविनिश्चितानि पित्तप्रकोपजनितानि च कारणानि ॥ १८ ॥ हृद्गात्रतोदवमथुज्वरकंठधूमसूच्छाकफस्रवणमूर्द्धरुजो विदाहः ॥ द्वेषः सुरान्नविकृतेषु च तेषु तेषु तं पानविभ्रममुशंत्यखिलेन धीराः ॥ १९ ॥

गरमी, शरीरमें भारीपन, मुँहमें विरसता, कफकी अधिकता, अरुचि, मल और सूत्र रुकना, तृषा, शिरमें दर्द, सन्धियोंमें भेद ये लक्षण "परमद"के हैं ॥ ॥ १७ ॥ अफारा हो, डकारें आवें, खट्टापन हो, विदाह हो ये लक्षण "पानाजीर्ण" (अर्थात् पिया मद्य पचा नहीं उस) के हैं इसमें वैद्यको निश्चित पित्तप्रकोप जनित कारण जानने चाहिये ॥ १८ ॥ हृदय और शरीरमें दरद हो, वमन हो, ज्वर हो, कंठमें धुँवासा उठे, मूर्च्छा हो, मुँहसे कफ बहे, शिरमें दर्द हो, विदाह हो और मदिरा तथा उसपर खाये जानेवाले अन्नोंसे द्वेष हो इसे धीर वैद्य "पानविभ्रम" कहतेहैं ॥ १९ ॥

असाध्य मदात्यय ।

हीनोत्तरौष्ठमतिशीतममंददाहं तैलप्रभास्यमतिपानहतं विजह्यात् ॥ जिह्वौष्ठदंतमसितं त्वथवापि नीलं पीते च यस्य नयने

जो कफप्रकृतिवाले हैं, जिनके पित्त कम है, जो स्निग्ध हैं, जो प्रमाणयुक्त सेवन करते हैं उन्हें विशेष करके मद्यपान बाधा नहीं करता और जो इनसे विपरीत हैं उनको बाधा करता है ॥ ११ ॥

मद्यसे विकार।

निर्भुक्तमेकांतत एव मद्यं निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम् ॥
उत्पादयेत्कष्टतमान्विकारानापादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥ १२ ॥
क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन ॥
व्यायामभाराध्वपरिक्षतेन वेगावरोधाभिहतेन चापि ॥ १३ ॥
अत्यम्लभक्ष्यावततोदरेण साजीर्णभुक्तेन तथाऽबलेन ॥
उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं करोति मद्यं विविधान्विकारान् ॥१४॥

जो मनुष्य भोजन किये विना नित्य निरंतर मद्यपान करते हैं उन्हें मद्य अनेक कष्टकारक विकार करता है अथवा शरीरको नष्ट करदेताहै ॥ १२ ॥ क्रोधयुक्त, भयभीत, तृषायुक्त, शोकयुक्त, क्षुधित (भूँखा), परिश्रमसे थका, भारसे थका या मार्गचलनेसे थका या जिसने वेग (मल और मूत्रादिके वेग) रोंके हों ऐसा मनुष्य यदि मदिरा पीवे (तो उसके मद्य अनेक घोर विकार पैदा करता है) ॥१३ ॥ तथा जिसके बहुत खटाई खानेसे पेटमें उपाधि हो या जिसने अजीर्णमें भोजन किया हो या जो निर्बल हो या जो गरमीसे अभितप्त (घबराया) हो ऐसा मनुष्य यदि मदिरा पीवे तो उसे मद्य अनेक प्रकारके भयंकर रोग पैदा करदेता है ॥ १४ ॥

पानात्ययादिक मद्यविकार।

पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापि वा ॥
पानविभ्रममुग्रं च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ १५ ॥

मद्यमें इतने प्रकारके विकार होते हैं जैसे-पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और उग्र पानविभ्रम इनके लक्षण अगाडी कहतेहैं ॥ १५ ॥

पानात्ययके लक्षण।

स्तंभांगमर्दहृदयग्रहतोदकंपाः पानात्ययेऽनिलकृते शिरसो रुजश्च ॥
स्वेदप्रलापमुखशोषणदाहमूर्च्छाः पित्तात्मके वदनलोचनपीतता

(श्लो० १४) अत्यंताम्लभक्ष्येन अवततं व्याप्तम् उदरं यस्य तेन।

रुधिरप्रभे च ॥ हिक्काज्वरौ वमथुवेपथुपार्श्वशूलाः कासभ्रमावपि च पानहतं भजन्ते ॥ २०॥ तेषां निवारणमिदं हि मयोच्यमानं व्यक्ताभिधानमखिलेन विधिं निबोध ॥ २१ ॥

जिसके ऊपरका होंठ छोटा होजाय, अत्यन्त शीत लगे, तीक्ष्ण दाह हो, मुँह तेल जैसा चिकना हो, दांत, जीभ, होंठ ये काले या नीले हों और नेत्र पीले या रुधिरके समान सुरख होजावें वह पानहत अर्थात् अतिमद्य पीनेसे पीडित रोगी त्यागने योग्य (असाध्य) होताहै और इनके सिवाय हिचकी, ज्वर, वमन, कम्प, पसलीका दरद, खांसी, भ्रम ये भी मदात्ययसे क्षीण हुए असाध्य रोगीके हो जाया करते हैं ॥ २० ॥ इससे अगाडी इन मदात्ययके रोगियोंके लिये हम चिकित्साकी विधि कहते हैं उसे सम्पूर्णतया सुनों ॥ २१ ॥

वातज पानात्ययका यत्न ।

मद्यं तु चुक्रमरिचार्द्रकदीप्यकुष्ठसौवर्चलायुतमलं पवनस्य शांत्यै॥ पृथ्वीकदीप्यकमहौषधहिंगुभिर्वा सौवर्चलेन च युतं वितरेत्सुखाय ॥२२॥ आम्रातकाम्रफलदाडिममातुलुंगैः कुर्याच्छुभान्यपि च षाडवपानकानि ॥ सेवेत वा फलरसोपहितान्रसादीनानूपवर्गपिशितान्यपि गंधवंति ॥ २३ ॥

वातज पानात्ययमें वायुकी शांतिके लिये चुक्र (चूका), काली मिरच, अदरख, अजमोदा, कूट और काला नमक मिलाकर थोडी मदिराही पिलावें अथवा बड़ी इलायची, अजमोदा, सोंठ, हींग और काला नमकयुक्त पिलावे ॥ २२ ॥ अथवा आंवला, आंब, त्रिफला, अनार और बिजोरा नींबू इनका षाडवक पान (पन्ना) बनाके पिलावे अथवा त्रिफलारसके सहित और सुगंधयुक्त संस्कारोंसे बनाकर जलके किनारे रहनेवाले जीवोंका मांस सेवन करावे ॥ २३ ॥

पित्त कफादि मदात्ययके यत्न ।

पित्तात्मके मधुरवर्गकषायमिश्रं मद्यं हितं समधुशर्करमिष्टगंधम् ॥ पीत्वा च मद्यमपि चेक्षुरसंप्रगाढं निःशेषतः क्षणमवस्थितमुल्लिखेच्च ॥ लावैणतित्तिरिरसांश्च पिबेदनम्लान्मौद्गान्सुखाय सघृतान्ससितांश्च यूषान् ॥ २४ ॥ पानात्यये कफकृते कफमुल्लिखेच्च

(श्लो० २४) उल्लिखेच्च वामयेत् ।

च ॥ श्लेष्मात्मके वमथुशीतकफप्रसेकाः सर्वात्मके भवति सर्वविकारसंपत् ॥ १६ ॥

वातजनित पानात्ययमें स्तंभ (शरीर कडा होना), अंगडाई आना, हृदय पकडासा होना, दरद और कंप होना और शिरमें दरद ये लक्षण होतेहैं और पित्तके मदात्ययमें पसीना आवे, बकवाद करे, मुँह सूखे, दाह और मूर्च्छा हो मुँह और नेत्र पीले हों । तथा कफके मदात्ययमें वमन होना, शीत लगना, मुँहसे पानी आना ये लक्षण होतेहैं और सब दोषोंके मदात्ययमें सबके लक्षण मिश्रित होतेहैं ॥ १६ ॥

परमद पानाजीर्ण और पानविभ्रमके लक्षण ।

ऊष्मा शरीरगुरुता विरसाननत्वं श्लेष्माधिकत्वमरुचिर्मलमूत्रसंगः ॥ लिंगं परस्य तु मदस्य वदंति तज्ज्ञास्तृष्णा रुजा शिरसि संधिषु चापि भेदः ॥ १७ ॥ आध्मानमुद्गिरणमम्लरसो विदाहोऽजीर्णस्य पानजनितस्य वदंति लिंगम् ॥ ज्ञेयानि तत्र भिषजा सुविनिश्चितानि पित्तप्रकोपजनितानि च कारणानि ॥ १८ ॥ हृद्गात्रतोदवमथुज्वरकंठधूममूर्च्छाकफस्रवणमूर्द्धरुजो विदाहः ॥ द्वेषः सुरान्नविकृतेषु च तेषु तेषु तं पानविभ्रममुशंत्यखिलेन धीराः ॥ १९ ॥

गरमी, शरीरमें भारीपन, मुँहमें विरसता, कफकी अधिकता, अरुचि, मल और मूत्र रुकना, तृषा, शिरमें दर्द, सन्धियोंमें भेद ये लक्षण "परमद"के हैं ॥ ॥ १७ ॥ अफारा हो, डकारें आवें, खट्टापन हो, विदाह हो ये लक्षण "पानाजीर्ण" (अर्थात् पिया मद्य पचा नहीं उस) के हैं इसमें वैद्यको निश्चित पित्तप्रकोप जनित कारण जानने चाहिये ॥ १८ ॥ हृदय और शरीरमें दरद हो, वमन हो, ज्वर हो, कंठमें धुँवांसा उठे, मूर्च्छा हो, मुँहसे कफ बहे, शिरमें दर्द हो, विदाह हो और मदिरा तथा उसपर खाये जानेवाले अन्नोंसे द्वेष हो इसे धीर वैद्य "पानविभ्रम" कहतेहैं ॥ १९ ॥

असाध्य मदात्यय ।

हीनोत्तरौष्ठमतिशीतममंददाहं तैलप्रभास्यमतिपानहतं विजह्यात् ॥ जिह्वौष्ठदंतमसितं त्वथवापि नीलं पीते च यस्य नयने

नेत्रवाला, कमल, परिपेलव (मोथा), कनेरके फूल और कमलके फूल इन्हें पीसकर पद्माख और सारिवादि मिलाकर (हृदय और शिरपर) लेप करे और निर्मल ठंढे पानीके छींटे देवे (या तरडे देवे) ॥ २९ ॥ तथा तज, पत्रज, चोच (केला), काली मिरच, इलायची, नागकेसर और ल्हेसुवेकी कोंपल (नवीन अंकुर) इन्हें पीसकर गुड और मुनक्का मिलाके पन्ना बनाकर कपडेमें छानकर सुगंधित द्रव्य डालकर मदिरासे जो मदार्त हो उसे सेवन करावे ॥ ३० ॥

पिष्ट्वा पिबेच्च मधुकं कटुरोहिणीं च द्राक्षां च मूलमसकृत्त्रपुसीभवं यत् ॥ कार्पासमूलमथ नागबलां च तुल्यां पीत्वा सुखी भवति साधु सुवर्चलां च ॥ ३१ ॥ काश्मर्यदारुबिडदाडिमपिप्पलीषु द्राक्षान्वितासु कृतमंबुनि पानकं यत् ॥ तद्बीजपूरकरसायुतमाशु पीतं शांतिं परां मदंगदेष्वचिरात्करोति ॥ ३२ ॥ द्राक्षासितामधुकजीरकधान्यकृष्णास्वेवं कृतं त्रिवृतया च पिबेत्तथापि ॥ सौवर्चलायुतमुदाररसं फलाम्लं भार्ङ्गीशृतेन च जलेन हिताय सेकः ॥ ३३ ॥

मुलेठी, कुटकी, मुनक्का और ककडी खीरेकी जड इन्हें पीस और छानकर कई वार पीवे अथवा कपासकी जड़, नागबला और सुवर्चला (हुलहुल) इन्हें समान भाग लेकर पीवे तो पानात्ययवाला सुखी होवे ॥ ३१ ॥ खंभारी, दारु (दारुहलदी या देवदारु), बिडनमक, अनार, पीपल, मुनक्का इनका जलमें पन्ना बनाकर बिजोरेका रस मिलाके पीनेसे परमदका रोग शीघ्रही शांत होजाताहै ॥ ३२ ॥ मुनक्का, मिश्री, मुलेठी, जीरा, धनियाँ और पीपल इनका पन्ना बनावे और निशोथके साथ पीवे अथवा उदाररस (जंगली जीवोंके मांसका रस), फलोंकी खटाई इन्हें पान करे तथा भारंगीके क्वाथके जलके तरडे देने हितकारक हैं ॥ ३३ ॥

इक्ष्वाकुधामार्गववृक्षकानि काकाह्वयोदुंबरिकाश्च दुग्धे ॥ विपाच्य तस्यांजलिनावमेद्धि मद्यं पिबेदह्नि गते त्वजीर्णे ॥ ३४ ॥ त्वक्पिप्पलीभुजगपुष्पविडैरुपेतं सेवेत हिंगुमरिचैलयुतं फलाम्लम् ॥ उष्णांबुसैंधवयुतास्त्वथवा विडत्वक्चव्यैलहिंगुमगधाफलमूलशुंठीः ॥ ३५ ॥ हृद्यैः खडैरपि च भोजनमत्र शस्तं द्राक्षाकपित्थफलदाडिमपानकं यत् ॥ तत्पानविभ्रमहरं मधुशर्कराढ्यमाम्रातकोलरसपानकमेव वापि ॥ ३६ ॥

मद्येन बिंबिविदुलोदकसंयुतेन ॥ सेवेत तिक्तकटुकांश्च रसानुदारान्यूषांश्च तिक्तकटुकोपहितान्हिताय ॥ २५ ॥ पथ्यं यवान्नविकृतान्यपि जांगलानि श्लेष्मघ्नमन्यदपि यच्च निरत्ययं स्यात् २६॥

पित्तके पानात्ययमें मधुर द्रव्योंके क्वाथमें मद्य मिलाके उसमें शहद, मिश्री और सुगंध पदार्थ तथा ईखका रस मिलावे और उसे पीकर थोडी देर पीछे निःशेष वमन कर देवे और फिर लवा, हिरन, तीतर इनके मांसका रस विना खटाई पीवे अथवा मूँगका यूष, घृत और मिश्री मिलाकर पीवे तो सुख होवे ॥ ॥ २४ ॥ कफके पानात्ययमें बिंबी और वेतका क्वाथ मिलेहुए मद्यसे वमन करावे और कडुवे, चरपरे, उदाररस तथा ऐसेही कडुवे चरपरे पदार्थोंसे मिलेहुए यूष पिलाने हित हैं ॥ २५ ॥ और जौके पदार्थ अथवा जंगली जीवोंके मांस तथा अन्य कफनाशक पदार्थ पथ्यमें (खानेको) देवे ॥ २६ ॥

कुर्याच्च सर्वमथ सर्वभवे विधानं द्वंद्वोद्भवे द्वयमवेक्ष्य यथाप्रधानम् ॥ सामान्यमन्यदपि यत्सुसमग्रमग्र्यं वक्ष्यामि यच्च मनसोऽमदकृत्सुखं च ॥ २७ ॥

यदि सर्वदोषज पानात्यय हो तो सब विधि करे और द्वंद्वज हो तो दोनोंमें जौनसा दोष प्रधान हो उसे देखकर विधान करे तथा इसके पीछे और भी सामान्य उत्तम विधि हम कहते हैं जो मनको मदरहित करे और सुख देवे ॥ २७ ॥

मदात्ययके अन्य यत्न ।

त्वङ्नागपुष्पमगधैलमधूकधान्यैः श्लक्ष्णैरजाजिमरिचैश्च कृतं समांशैः ॥ पानं कपित्थरसवारिपरूषकाढ्यं पानात्ययेषु विधिवत्स्रुतमम्बरांते ॥२८ ॥ ह्रीबेरपद्मपरिपेलवसंप्रयुक्तैः पुष्पैः प्रलिप्य करवीरजलोद्भवैश्च ॥ पिष्टैः सपद्मकयुतैरपि सारिवाद्यैः सेकं जलैश्च वितरेदमलैः सुशीतैः ॥ २९ ॥ त्वक्पत्रचोचमरिचैलभुजंगपुष्पश्लेष्मांतकप्रसवकल्कगुडैरुपेतम् ॥ द्राक्षायुतं हृतमलं मदिरामदार्तैस्तत्पानकं शुचि सुगंधि नरैर्निषेव्यम् ॥ ३० ॥

तज, नागकेशर, पीपल, इलायची, महुवा, धनियां, जीरा और स्याह मिरच इन सबको बराबर लेकर पीस ले और कैथके रसका पानी या फालसेका रस कपडेमें छानकर उसमें यह चूर्ण मिलाके पानात्ययमें विधिपूर्वक पीवे ॥ २८ ॥

पांचों इंद्रियोंके विषय (अच्छे शब्द सुनना, अच्छे शीतल स्पर्श, सुंदर रूप देखना, अच्छे पदार्थ खाना, अच्छी सुगंध सूँघना), मृदुपानका योग करना हलके थोडे मद्य पीना), हृदयको प्रिय और मनको सुख देनेवाले पदार्थ सेवन करना तथा विस्तारयुक्त जंघा और नितंबवाली मोटे ऊँचे कुचोंके बोझसे कुछ नव-गई है कमर जिनकी ऐसी तरुण और नवीन यौवनवाली, अच्छे पुष्ट शरीरवाली और पांचों विषय (रूप, रस, सुगंध, स्पर्श और शब्द) इनमें है अतिशय स्वभाव जिनका ऐसी स्त्रियोंका संगम करना पानात्ययमें सुखदायक है पंचविषयातिशय-स्वभावका प्रयोजन यह है कि स्त्री ऐसी सजी धजी, सुन्दर सुगंध लगाये, नरम शरीरवाली, मधुरभाषिणी (शौकीन) हो जिसमें पुरुषको पांचों इंद्रियोंके आनन्द प्राप्त हों ऐसी स्त्रीका संगम पानात्ययमें (या मद्य पीके) करना सुख देता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

पिबेद्रसं पुष्पफलोद्भवं वा सितामधूकात्रिसुगंधयुक्तम् ॥
संचूर्ण्य संयोज्य च नागपुष्पैरजाजिकृष्णामरिचैश्च तुल्यैः ॥४२॥
वर्षाभुयष्ट्याह्वमधूकलाक्षात्वक्कर्बुदारांकुरजीरकाणि ॥
द्राक्षां च कृष्णामथ केशरं च क्षीरे समालोड्य पिबेत्सुखोष्णम् ४३॥

पुष्पफल (भूरे कोहले) का रस निकालके उसमें मिश्री, महुवेके फूल और त्रिसुगंध (तज, पत्रज, इलायची) डालकर पीवे अथवा नागकेसरको पीसके जीरा, पीपल, मिरच समान भाग मिलाके (उसी पेठेके रसके संग) पीवे ॥ ॥ ४२ ॥ तथा सांठी, मुलेठी, महुवा, लाख, तज, कर्बुदार (कचनाल या ल्हेसुवे) के अंकुर और जीरा, मुनक्का, पीपल और नागकेशर इन्हें दूधमें घोलके निवाया करके पीवे ॥ ४३ ॥

भवेच्च मद्येन तु येन पातितः प्रकामपीतेन सुरासवादिना ॥
तदेव तस्मै विधिवत्प्रदापयेद्विपर्यये भ्रंशमसौ च गच्छति ॥ ४४॥
यथा नरेंद्रोपहतस्य कस्यचिद्भवेत्प्रसादस्तत एव नान्यतः ॥४५॥

जो जिस भांतिके मद्यके ज्यादे पीनेसे गिरा है (पीडित हुआ है) चाहे वह सुरा या आसवादि किसी प्रकारका हो उसे वही मद्य विधिपूर्वक (मात्रायुक्त थोडा) देना (देते रहना चाहिये) विपर्यय (उलटा पलटा करने या और अट्ट पट्ट औषध) करनेसे मनुष्यका देह नष्ट होजाता है या आराम नहीं होता इसपर

(श्लो० ४२) पुष्पफलं कूष्मांडं "पेठा" इति लोके ।

कड़वी तोंबी, कडवी तोरी, इंद्रजौ और काठगूलर इन्हें दूधमें पकाकर एक अंजली प्रमाण पान करके वमन कर देवे फिर अजीर्ण नष्ट होनेपर उस दिन मद्य (थोडासा) पीवे ॥ ३४ ॥ तज, पीपल, नागकेशर, बिडनमक, हींग, मिरच, इलायची और फलोंकी खटाई मिलाकर सेवन करे अथवा बिडनमक, तज, चव्य, इलायची, हींग, पीपल, पीपलामूल और सोंठ इन्हें सैंधव और गरम जलसे पीवे ॥ ३५ ॥ और इसमें हृदयको हितकारक खड़ नामक यूष (खट्टे यूष) भोजन करने श्रेष्ठ हैं तथा दाख, कैथका फल और अनार इनका पन्ना बनाके पीना यह पन्ना शहद और खांड डालाहुआ पानविभ्रमको हरताहै अथवा आँवले और बेरके रसका पन्नाभी पानविभ्रमको शांत करता है ॥ ३६ ॥

खर्जूरवेत्रककरीरपरूषकेषु द्राक्षात्रिवृत्सु च कृतं ससितं हितं वा ॥ श्रीपर्णियुक्तमथवा तु पिबेदिमानि यष्ट्याह्वयोत्पलहिमांबुविमिश्रितानि ॥ ३७ ॥ क्षीरिप्रवालबिसजीरकनागपुष्पपत्रैलवालुसितसारिवपद्मकानि ॥ आम्रातभव्यकरमर्दकपित्थकोलवृक्षाम्लवेत्रफलजीरकदाडिमानि ॥ ३८ ॥ सेवेत वा मरिचजीरकनागपुष्पत्वक्पत्रविश्वचविकैलयुतान्रसांश्च ॥ सूक्ष्मांबरस्रुतहिमांश्च सुगंधिगंधान्पानोद्भवान्नुदति सप्तगदानशेषान् ॥ ३९ ॥

खजूर, बेंतके अंकुर, फालसे, मुनक्का और निशोथ इनको मिश्री मिलाके पीना हित है अथवा इनमें खंभारी, मुलेठी, कमल और शीतल पानी मिलाकर पीना बहुत श्रेष्ठ है ॥ ३७ ॥ दूधके वृक्षों (गूलर आदि) के कोमल अंकुर, कमलकी जड, जीरा, नागकेशर, पत्रज, एलवालुक, सुफेद सारिवा और पद्माख इन्हें पीवे, आँवले, भव्य (कमरख), करोंदे, कैथ, बेर और वृक्षोंकी खटाई, बेतके फल, जीरा और अनार इनका पान करे (पन्ना बनाकर पीवे) ॥ ३८ ॥ अथवा मिरच, जीरा नागकेसर, तज, पत्रज, सोंठ, चव्य, इलायची इनसे युक्त रस ठंढे और सुगंधियुक्त महीन वस्त्रमें छानकर पीवे तो सातों प्रकारके मद्यपानजनित रोग (चार प्रकारके मदात्यय और परमद, पानाजीर्ण और पानविभ्रम इन) को निःशेष नष्ट करता है ॥ ३९ ॥

पंचेंद्रियार्थविषया मृदुपानयोगा हृद्याः सुखाश्च मनसः सततं नियोज्याः ॥ पानात्ययेषु विकटोरुनितंबवत्यः पीनोन्नतस्तनभरानतमध्यदेशाः ॥ ४० ॥ प्रौढाः स्त्रियोऽभिनवयौवनपीनगात्र्यः सेव्याश्च पंचविषयातिशयस्वभावाः ॥ ४१ ॥

मदात्ययमें शीतविधान ।

शीतं विधानमत ऊर्ध्वमहं प्रवक्ष्ये दाहप्रशांतिकरमृद्धिमतां नराणाम् ॥ तत्रादितो मलयजेन हितप्रदेहश्चंद्रांशुहारतुहिनोदकशीतलेन ॥ ५३ ॥ शीतांबुशीतलतरैश्च शयानमेवं हारैर्मृणालवलयैरबलां स्पृशेयुः ॥ भिन्नोत्पलोज्ज्वलहिमे शयने शयीत पत्रेषु वा सजलबिंदुषु पद्मिनीनाम् ॥ ५४ ॥ आसादयन्पवनैमाहृतमिष्टगंधं कह्लारपद्मदलशैवलसंचयेभ्यः ॥ शीतैर्वनांतपवनैः परिमृश्यमानः प्रीतश्चरेद्भवनकाननदीर्घिकासु ॥ ५५ ॥

इसके अगाडी हम शीतल विधानकी विधि कहते हैं जो ऋद्धिवाले मनुष्योंके दाहको शांत करने वाली है । इसमें आरंभहीसे चंदनका लेप करे और चंद्रकांत मणियोंका हार और ठंढे बरफका पानी छिड़के ॥ ५३ ॥ शीतल पानी जैसे शीतल हारोंसे और कमलनालके कंकणोंसे भूषित स्त्रियोंका स्पर्श करे । खिले हुए कमल जैसे उज्ज्वल ठंढे बिस्तरपर सोवे अथवा जलके बिंदुयुक्त कमोदनीके पत्तोंपर लेटे ॥ ५४ ॥ तथा ठंढी पवन जिसमें अच्छी सुगंध हो उसमें बैठे । नीलकमल, रक्तकमल इनके पत्ते, सिवालका संचय इनकी हवा खावे । बगीचेके पासकी ठंढी हवामें टहले या प्रसन्न होकर ठंढे मकानों या बागों या नदीके किनारों पर टहले ॥ ५५ ॥

दाहाभिभूतमथवा परिषेचयेत्तु शीतैरुशीरजलचंदनवारिभिस्तम् ॥ विस्राविता हृतमलां नववारिपूर्णां पद्मोत्पलोज्ज्वलजलामधिवासितां च ॥ ५६ ॥ वापीं भजेत हरिचंदनभूषितांगः कांताकरस्पृशितकर्कशरोमकूपः ॥ तत्रैनमंबुरुहपत्रसमैः स्पृशंत्यः शीतैः करोरुवदनैः कठिनैः स्तनैश्च ॥ ५७ ॥ तोयावगाहकुशला मधुरस्वभावाः संहर्षयेयुरबला मधुरैः प्रलापैः ॥ धारागृहे प्रगलितोदकदुर्दिनाभे क्रांतः शयीत सलिलानिलशीतकुक्षौ ॥ ५८ ॥

दाहवाले (मद्यके दाहवाले) को ठंढे खसके पानीसे या चंदनके पानीसे तर करे अथवा जिस बावडीका मैला जल, मिट्टी, मल आदि निकाल दिया हो और वह कमल सरीखे उज्ज्वल सुगंधित नवीन जलसे पूर्ण हो उसमें बैठे और

(श्लो० ५५) दीर्घिकासु नदीषु ।

दृष्टांत है कि किसीपर राजा क्रुद्ध होकर प्रतिष्ठादि भंग करदे या क्लेश दे तो उसकी प्रसन्नता फिर राजाहीके प्रसन्न होनेसे होती है अन्यथा नहीं होसकती ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

विच्छिन्नमद्यः सहसा योऽतिमद्यं निषेवते ॥ तस्य पानात्ययोद्दिष्टा विकाराः संभवंति हि ॥ ४६ ॥ मद्यस्याग्नेयवायव्यौ गुणावंबुवहानि च ॥ स्रोतांसि शोषयेयातां तेन तृष्णा प्रजायते ॥ ४७ ॥

विच्छिन्नमद्य मनुष्य (अर्थात् पहलेका पिया मद्य उतरा ही न हो और) फिर उसपर उस समय और अत्यन्त मद्य पीलेवे तो उसके पानात्ययके कहेहुए विकार होजाते हैं ('विच्छिन्नमद्य' का कई ऐसा भी अर्थ करते हैं कि जिसने मद्य छोड दिया हो) वह यदि फिर अतिमद्य यकायक पीले तो उसे पानात्ययके विकार होजाते हैं ॥ ४६ ॥ मद्यमें आग्नेय और वायवीय दो गुण होते हैं ये जलवाहिनी शिराओंको शोषण करलेते हैं इससे उसे तृषा उत्पन्न होजाती है ॥ ४७ ॥

पाटलोत्पलकंदेषु मुद्गपर्ण्यां च साधितम् ॥ पिबेन्मागधिकामिश्रं तत्रांभो हिमशीतलम् ॥ ४८ ॥ सर्पिस्तैलवसामज्जदधिभृंगरसैर्युतम् ॥ क्राथेन बिल्वयवयोः सर्वगंधैश्च पेषितैः ॥ ४९ ॥ पक्कमभ्यंजनैश्चेष्टं सेके क्राथः सुशीतलः ॥ रसवंति च भोज्यानि यथास्वमवचारयेत् ॥ ५० ॥ पानकानि सुशीतानि हृद्यानि सुरभीणि च ५१ ॥

परवल, जलके कंद, मुद्गपर्णी, इनको जलमें औटाले और पीपल मिलाकर ठंढा करके पिलावे ॥ ४८ ॥ तथा घृत, तैल, चरबी और मज्जा, दही, भँगरेका रस इनमें बिल्व और जौका क्राथ मिलाके और एलादिगण पीसकर मिलाकर पकावे और इससे अभ्यंग करे तथा ठंढे काथोंका सेचन करे और रसिले या मांसरसयुक्त यथायोग्य भोजन करावे तथा शीतल हृदयप्रिय और सुगंधित पन्ने पिलावे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥

त्वचं प्राप्तस्तु पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः ॥
दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥ ५२ ॥

जब मद्यपानकी गरमी पित्त और रक्तसे मूर्च्छित (प्रेरित) होकर त्वचामें प्राप्त होती है तब घोर दाह पैदा करती है इसमें पित्तके समान (पित्तजमदात्ययके समान) औषध लेपनादि करने चाहिये ॥ ५२ ॥

दीन चित्तवाले पुरुषको मनके लायक पुष्ट कुचों और जंघावाली सुन्दरी शरीरमें कपूर (अतर आदि) लगाके भिगोयाहुआ वस्त्र (साडी) पहने हुए और जिनकी ढीली होगई हैं मेखला (कांची) और हारयष्टि (हारोंकी लडी) ऐसी वे स्त्रियां उस मद पिये हुए पुरुषके पास निवास करके आलिंगन करें ॥ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

हर्षयेयुः पुनर्नार्यः स्वगुणै रहसि स्थिताः ॥ ताः शैत्याच्छमयेयुश्च पित्तपानात्ययं स्त्रियः ॥ ६३ ॥ रक्तपित्ततृषादाहेष्वयमेव विधिः स्मृतः ॥ सामान्यतो विशेषं तु शृणु दाहेष्वशेषतः ॥६४॥

एकांतमें मदात्ययवालेके पास प्राप्त होकर सुन्दर स्त्रियें अपने गुणों (मुखस्पर्श, आलिंगनादि) से उसे प्रसन्न करें और जो पित्तका मदात्यय हो तो वे स्त्रियें शीतल उपचारोंसे उस पानात्ययको शांत करें ॥ ६३ ॥ रक्तपित्त, तृषा और दाहमें भी सामान्यतासे यही विधि करनी चाहिये परन्तु विशेष २ विधि अन्य उनके उपचारोक्तको भी करे यहांपर दाह शांत करनेकी विधि विशेष करके सुनों ॥ ६४ ॥

दाहरोगका विवेचन ।

कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रिक्तं दहति ह्यति ॥ संचूष्यते दह्यते च ताम्राभस्ताम्रलोचनः ॥ ६५ ॥ लोहगंधांगवदनो वह्निनेवावकीर्यते ॥ तं विलंघ्य विधानेन संसृष्टाहारमाचरेत् ॥ ६६ ॥ अप्रशाम्यति दाहे च रसैस्तृप्तस्य जांगलैः ॥ शाखाश्रयां यथान्यायं रोहिणीं व्यधयेच्छिराः ॥ ६७ ॥ पित्तज्वरसमः पित्ते तस्य चाप्यस्य विधिर्हितः ॥ ६८ ॥

जब समस्त शरीरका रुधिर उद्रेक (उफान) को प्राप्त होताहै तब वह अत्यंत दाह पैदा करताहै इसमें मनुष्य चूसासा जावे और जलासा जावे, तांबे जैसा शरीरका वर्ण होजावे और तांबे जैसे नेत्र होजावें ॥ ६५ ॥ शरीर और मुँहमें लोहेकेसी गंध आवे, शरीरपर जैसे अग्नि डाली हो ऐसा मालूम हो (इसे दाह कहतेहैं) ऐसे मनुष्यको लंघन कराकर संसृष्ट (दाहनाशक संतर्पण) आहार देवे॥ ॥ ६६ ॥ और जंगली जीवोंके मांसका रस देकर तृप्त करे यदि इस भांति उसका दाह शांत न हो तो उसे जंगली जीवोंके रससे तृप्त करके उसके शाखा (हाथ या पावों) की रोहिणी नामक नसकी फस्त खोलनी चाहिये ॥ ६७ ॥ और पित्तके दाहमें पित्तज्वरके समान विधि भी उसके लिये हितकारक होतीहै॥ ६८॥

शरीरपर हरिचंदन लगावे तथा स्त्रियोंके हाथसे शरीरके रोमांचोंका स्पर्श करावे तथा कमलसरीखे शीतल हाथों, हृदयों, मुखों और कठोर कुचोंसे स्त्री उन्हें स्पर्श करे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ अथवा जलक्रीडामें चतुर मधुर स्वभाववाली स्त्रियां उसे जलक्रीडासे आनंदित करें तथा फुँवारेके स्थानोंमें जहां पानीके फुँवारोंसे वर्षाकालसा प्रतीत होता हो और जिसमें शीतल पानी और ठंढी वायुका आनंद हो ऐसे स्थानोंमें आराम पूर्वक सोवे ॥ ५८ ॥

गंधोदकैः सकुसुमैरुपसिक्तभूमौ पत्राम्बुचंदनरसैरुपलिप्तकुड्ये ॥ जात्युत्पलप्रियककेशरपुंडरीके पुन्नागनागकरवीरकृतोपकारे॥५९॥ तस्मिन्गृहे कमलरेणवरुणे शयीत यत्राहतानिलविकंपितपुष्पदाम्नि ॥ ६० ॥ हेमंतविंध्यहिमवन्मलयाचलानां शीतांभसा सकदलीहरितद्रुमाणाम् ॥ उद्भिन्ननीलनलिनाम्बुरुहाङ्कराणां चंद्रोदयस्य च कथाः शृणुयान्मनोज्ञाः ॥ ६१ ॥ ग्लानं सुदीनमनसं मनसोऽनुकूलाः पीनस्तनोरुजघना घनसारदिग्धाः ॥ ताः एवमार्द्रवसनाः सह संविशेयुः श्लिष्टाबलाः शिथिलमेखलहारयष्टयः ॥ ६२ ॥

सुगंधित (एलादिगण) के जलसे पृथ्वीको छिडककर पुष्प डालकर तथा चारों तरफ या एक तरफ पत्रज, कपूर और चंदन इनके जलसे लिपीहुई भीत हो (या छिड़कीहुई टट्टी लगी हो) तथा (बालछड, तमाल, नागरमोथा, केशर, कमलके पत्र), चँवेली, कमल, प्रियक (कदंब) नागकेशर और पुंडरीक ये सब पदार्थ हों ऐसे स्थानमें (शयन करावे) तथा पुन्नाग, नागकेशर, कनेर इनके हार और गुलदस्तोंसे सजा हो तथा जो कमलकी परागसे लाल हो रहाहो ऐसे स्थानमें लेटे तथा जहां तेज हवासे कंपायमान है पुष्पोंकी माला और ठंढे हिमालय, विंध्याचल और मलयाचलके शीतल जल, केले, हरे पौदे, खिले कमल, कमोदनी और जलके पुष्प जिन स्थानोंमें हों ऐसे स्थानोमें चन्द्रोदयके समय मनको प्रसन्न करनेवाली कहानियां श्रवण करे तथा मद्यसे शिथिल,

(श्लो० ५९) बहुषु पुस्तकेषु एकपदमधिकं दृश्यते। तत्पदं मासीतमालेत्यादि । एतत्पद पाठांतरेण पठितं भ्रात्यैव पुस्तकेषु अधिकतया निक्षिप्तम् । तदुक्तं निबंधसंग्रहे अन्ये त्वेवं पठंति—"मांसीतमालतृणकुंकुमपद्मपत्रजात्युत्पलेत्यादि" केचिदिति मन्यते । त्रिपदात्मक पंचपदात्मकमेव पद्यम् आर्षत्वान्न दूषणीयं ते एतत्पदमपि पठंति ।

रोगी अत्यंत पीडित होताहै इस प्रकारके रोगीको रक्तपित्तकी विधि करनी हित है जो चिकनी वायुनाशक भी हो ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

शोचआदिसे दाह ।

क्षतजेनाश्नतश्चांति शोचतो वाऽप्यनेकधा ॥ तेनांतर्दह्यतेऽत्यर्थं तृष्णामूर्च्छाप्रलापवान् ॥ ७५ ॥ तमिष्टविषयोपेतं सुहृद्भिरपि संवृतम् ॥ क्षीरमांसरसाहारं विधिनोक्तेन साधयेत् ॥ ७६ ॥

रुधिरसे भोजन करनेवालेको या अनेक प्रकारके शोच करनेवालेको इनसे अत्यंत अंतर्दाह होताहै, तृषा, मूर्च्छा और प्रलाप भी होताहै ॥ ७५ ॥ ऐसे रोगीको प्रिय विषयोंसे प्यारे मित्रोंके पास बिठानेसे तथा दूध, मांसरस इनके आहारसे तथा उक्त (शीतल) विधियोंसे उपचार करे ॥ ७६ ॥

मर्माभिघातज दाह ।

मर्माभिघातजोऽप्यस्ति सोऽसाध्यः सप्तमो मतः ॥ ७७ ॥ सर्व एव च वर्ज्याः स्युः शीतगात्रेषु देहिषु ॥७८॥ एवंविधो भवेद्यस्तु मदिरामयपीडितः ॥ प्रशांतोपद्रवश्चापि शोधनं प्राप्तमाचरेत् ॥७९॥

मर्मस्थानमें चोट लगने और मर्मपर घात होनेसे भी दाह होताहै यह सातवाँ दाह है और असाध्य होताहै ॥ ७७ ॥ सब प्रकारके दाह ठंढे शरीरवालोंके असाध्य और त्यागने योग्य होते हैं ॥ ७८ ॥ जो मनुष्य मद्यके विकारसे दाह-युक्त हो और उसके उपद्रव शांत होगये हों तो उसे यथाप्राप्त विरेचनादिसे शोधन करे ॥ ७९ ॥

सजीरकाण्यार्द्रकशृंगबेरसौवर्चलान्यर्द्धजलप्लुतानि ॥ मद्यानि हृद्यान्यथ गंधवंति पीतानि सद्यः शमयंति तृष्णाम् ॥८०॥

जीरा, अदरख, सोंठ और काला नमक डालकर आधा पानी मिलाकर सुगंध डालकर हृदयप्रिय मद्यको पीनेसे तृषा शांत हो जातीहै ॥ ८० ॥

जलप्लुतश्चंदनभूषितांगः स्रग्वी सभक्तां पिशितोपदंशाम् ॥ पिबेत्सुरां नैव लभेत रोगान्मनोमतिघ्नं च मदं न याति ॥ ८१ ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७ ॥

जलसे भीगा, चंदनका लेपन कियेहुए, फूलोंकी माला पहनेहुए जो मनुष्य भोजनके साथ मद्य (प्रमाणका मद्य) पीवे वह मद्यजनित रोगोंको नहीं प्राप्त

तृष्णानिरोधज दाह।

तृष्णानिरोधादब्धातौ क्षीणे तेजः समुत्थितम्॥ सबाह्याभ्यंतरं देहं दहेद्वै मंदचेतसः॥ ६९॥ संशुष्कगलताल्वोष्ठो जिह्वां निष्कृष्य वेपते॥ तत्रोपशमयेत्तेजस्त्वब्धातुं च विवर्द्धयेत्॥ ७०॥ पाययेत्काममंभश्च शर्कराढ्यं पयोऽपि वा॥ शीतमिक्षुरसं मंथं वितरेच्चेरितं विधिम्॥ ७१॥

जब तृषाके विशेष रोकनेसे जलसम्बन्धी धातु क्षीण होजातीहैं और अग्नि (शारीरक ऊष्मा) बढजातीहै तब मन्द होगयी है चेतना (बुद्धि) जिसकी ऐसे उस मनुष्यके बाहरी और भीतरी भाग सहित समस्त शरीरको वह अग्नि दाह युक्त करदेताहै (सब शरीरमें दाह पैदा होजाता है)॥ ६९॥ गला, तालु और होठ सूखतेहैं, मनुष्य जीभ बाहर निकाल देता है और कांपता है ऐसी अवस्थामें ऊष्माको शांत करना और जलसम्बन्धी धातुओंको बढाना चाहिये॥७०॥ और इच्छापूर्वक (थोडा थोडा) पानी पिलाना चाहिये अथवा खांड मिलाहुआ दूध या ठंढा ईखका रस या मंथ पिलावे तथा पहले कही हुई विधि भी करे (शीतलस्थानादिमें शीतल उपचार करे)॥ ७१॥

उदरमें रक्तभरजानेसे दाह।

असृजा पूर्णकोष्ठस्य दाहोन्यः स्यात्सुदुस्तरः॥
विधिः सद्योव्रणीयोक्तस्तस्य लक्षणमेव च॥ ७२॥

किसी प्रकार चोट या क्षत लगनेसे जिसका कोठा रुधिरसे भर जावे उसके भी दाह होताहै यह दाह दुस्तर (दुःसाध्य) अन्य होताहै इसके लक्षण सद्योव्रणके अनुसार हैं और यत्न भी सद्योव्रणीय अध्यायोक्त करने चाहिये॥ ७२॥

धातुक्षयका दाह।

धातुक्षयोक्तो यो दाहस्तेन मूर्च्छातृषान्वितः॥
क्षामस्वरः क्रियाहीनः स सीदेद्भृशपीडितः॥ ७३॥
रक्तपित्तविधिस्तस्य हितः स्निग्धोऽनिलापहः॥ ७४॥

धातुक्षयसे भी दाह होताहै, धातुक्षयजनित जो दाह होताहै उससे मूर्च्छा होतीहै, रोगी तृषायुक्त होताहै, आवाज बैठ जातीहै, क्रियाओंसे हीन होकर

(श्लो० ६९) अब्धातौ जलमयद्रवधातौ क्षीणे सति, तेजः पित्तम्। समुत्थितं उल्वणीभूतम्।
(श्लो० ७३) "धातुक्षयोक्तः" इत्यत्र 'धातुक्षयोत्थः' इति पाठांतरम्।

तृष्णाकी संख्या।

तिस्रः स्मृतास्ताः क्षतजा चतुर्थी क्षयात्तथान्याऽऽमसमुद्भवा च ॥

स्यात्सप्तमी भक्तनिमित्तजा तु लिंगानि तासां शृणु चौषधानि ॥४॥

तृषा सात प्रकारकी होती है-तीनों दोषोंसे पृथक् २ तीन (वातज, पित्तज और कफज तृष्णा), चौथी क्षत (घाव या चोट लगने) से, पांचवीं धातुक्षयसे छठी आमसे और सातवीं तृष्णा भोजनके निमित्तसे होती है इनके लक्षण और औषध सुनो ॥ ४ ॥

तृष्णाका पूर्वरूप।

ताल्वोष्ठकण्ठास्यविशोषदाहाः संतापमोहभ्रमविप्रलापाः ॥

पूर्वाणि रूपाणि भवन्ति तासामुत्पत्तिकालेषु विशेषतो हि ॥५॥

तालु, होंठ, कंठ, मुँह ये स्थान सूखें, दाह, संताप, मोह, भ्रम, प्रलाप ये तृषाके पूर्वरूप हैं परंतु ये उत्पत्तिके समयमें विशेषतासे होते हैं अर्थात् उपरोक्त लक्षण तृष्णाके पूर्वरूपमें भी होते हैं और तृष्णाके समय भी होते हैं बल्कि तषा उत्पन्न होनेपर ये विशेषतासे होते हैं) ॥ ५ ॥

वातादिकी तृषाके लक्षण।

शुष्कास्यता मारुतसंभवायां तोदस्तथा शंखशिरोगलेषु ॥

स्रोतोनिरोधो विरसं च वक्त्रं शीताभिरद्भिश्च विवृद्धिमेति ॥६॥

मूर्च्छाप्रलापारुचिवक्त्रशोषाः पीतेक्षणत्वं प्रततश्च दाहः ॥

शीताभिकांक्षा मुखतिक्तता च पित्तात्मिकायां परिधूमनं च ॥७॥

वायुकी तृषामें मुख सूखे, शंख (कनपटी), शिर और गलेमें दरद हो, स्रोत रुकेसे हों, मुखमें विरसता हो और ठंढा पानी पीनेसे यह बढे ॥ ६ ॥ पित्तकी तृषामें मूर्च्छा, प्रलाप, अरुचि, मुँह सूखना, नेत्र पीले होना, निरन्तर दाह रहना, शीतल पदार्थोंकी वांछा होना, मुँह चरपरासा होना और कंठमें धुँवांसा उठना ये लक्षण होते हैं ॥ ७ ॥

कफकी तृषाके लक्षण।

बाष्पावरोधात्कफसंवृतेऽग्नौ तृष्णा बलासेन भवेत्तु तत्र ॥

निद्रा गुरुत्वं मधुरास्यता च तृष्णार्दितः शुष्यति चातिमात्रम् ॥८॥

(श्लो० ४) यद्यपि कफहेतुभिस्तृष्णाजनकत्वं न संभवति तथापि वृद्धश्लेष्मा यदा वातपित्तेन सह आवृणोति तदा ताभ्यां सशोष्यमाणस्तृष्णा जनयति (इति डल्हनः)

होता अर्थात् उसे मद्यके रोग नहीं होते तथा मन और बुद्धिको नष्ट करनेवाला यह (नशा) भी नहीं होता (कई "जलप्लुता" ऐसा पाठ मानतेहैं और यह अर्थ करतेहैं कि पानीमें मिलाकर पूर्वोक्त ढँगसे मनुष्य सुरा अर्थात मदिराको पीवे तो उसे मद्यके रोग नहीं होते और तेज नशा भी नहीं होता) ॥ ८१ ॥

यूनानीके मतसे यह कोई खास व्याधि नहीं केवल शराबकी ज्यादतीका फिसादही समझा जाता है ॥

और डाक्टरीमें इस पानात्ययको "डिलेरियमट्रीमेन्स" (Deliriam Tremens) कहते हैं ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतस० भा० टी० उत्तरतन्त्रे कायचिकित्सायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ४८.

अथातस्तृष्णाप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम तृष्णा (अतितृष्णा) की चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ।

तृष्णाका स्वरूप ।

संततं यः पिबेद्वारि न तृप्तिमधिगच्छति ॥
पुनः कांक्षति तोयं च तं तृष्णार्दितमादिशेत् ॥ १ ॥

जो वार वार पानी पीवे और तृप्ति न हो (प्यास नहीं शांत हो) फिर फिर पानीही पानी मांगता रहे तो उसे तृष्णासे पीडित कहते हैं ॥ १ ॥

तृष्णाके हेतु और संप्राप्ति ।

संक्षोभशोकश्रममद्यपानाद्रूक्षाम्लशुष्कोष्णकटूपयोगात् ॥
धातुक्षयाल्लंघनसूर्यतापात्पित्तं च वातश्च भृशं प्रवृद्धौ ॥ २ ॥
स्रोतांसि संदूषयतः समेतौ यान्यंबुवाहीनि शरीरिणां हि ॥
स्रोतःस्वपां वाहिषु दूषितेषु जायेत तृष्णा प्रबला ततस्तु ॥ ३ ॥

क्रोधसे, शोकसे, परिश्रमसे, मद्यपानसे और रूखे, खट्टे, सूखे, गरम, चरपरे ऐसे पदार्थोंके खानेसे, धातु क्षीण होनेसे, लंघन करनेसे, सूर्यकी धूपसे (या ताप अर्थात् अग्निके तापसे) पित्त और वायु अत्यन्त बढकर ॥ २ ॥ जलके बहनेवाले स्रोतोंको दूषित करदेते हैं और जब मनुष्योंके जलवाही स्रोत दूषित होते हैं तब उसे प्रबल तृषा उत्पन्न होती है ॥ ३ ॥

खानेके पीछे शीघ्र ही तृषा पैदा कर देताहै और जो तृषाका रोगी क्षीण हो, जिसकी बुद्धि नष्ट हो, बहरा होजावे, जिसकी जीभ बाहर निकल आई हो उसे असाध्य जानकर त्याग देवे ॥ १३ ॥

तृष्णाकी चिकित्साका आरंभ ।

तृष्णाभिवृद्धावुदरे च पूर्णे तं वामयेन्मागधिकोदकेन ॥
विलेपनं चात्र हितं वदन्ति स्याद्दाडिमाम्रातकमातुलुंगैः ॥ १४ ॥
तृष्णाप्रयोगैरिह सा निवार्या शीतैश्च सम्यग्रसवीर्यजातैः ॥
गंडूषमम्लैर्विरसे च वक्त्रे कुर्याच्छुभैरामलकस्य चूर्णैः ॥ १५ ॥

तृषाके बढनेपर यदि पेट फूल जावे तो उसे पीपलके जलसे (पीपलोंके काथ या पीपल और जलसे) वमन करावे और अनार, आँवले और बिजोरे इन्हें पीसकर (जिह्वापर) लेप करे (जिससे लार बहे) ॥ १४॥ और रस वीर्यमें शीतल तृषाशांतिकारक प्रयोगोंसे उसे रोके और मुँह विरस हो तो अम्लपदार्थों और आंवलोंके चूर्णसे कुल्ले करे ॥ १५ ॥

सुवर्णरूप्यादिभिरग्नितप्तैर्लोष्टैः कृतं वा सिकतोपलैश्च ॥
जलं सुखोष्णं शमयेत्तु तृष्णां सशर्करं क्षौद्रयुतं हिमं वा ॥ १६ ॥
पञ्चाङ्गिकाः पञ्चगणा य उक्तास्तेष्वंबु ।सद्ध प्रथमे गणे वा ॥
पिबेत्सुखोष्णं मनुजोऽल्पशस्तु तृषो विमुच्यते हि वातजायाः १७॥

सुवर्ण, चांदी आदिको अग्निमें तपाकर या लोहेको गरम करके या बालू रेत या ईंट या पत्थर लाल करके पानीमें बुझाले फिर उसे निवाया (थोडा थोडा) पीवे तो तृषाको शांत करताहै अथवा ठंडे पानीमें खांड और शहद मिलाके पिलानेसे भी तृषा शांत होजातीहै ॥ १६ ॥ अब वातज तृषाका यत्न कहतेहैं— पांच पांच औषधोंके जो पांच गण (सूत्रस्थानके ३८ वें अध्यायके अन्तमें कहेहैं) उनमें सिद्ध किया जल अथवा प्रथम गण विदारिगंधादिमें सिद्ध कियाहुआ जल निवाया थोडा २ पीवे तो वातजनित तृषासे आराम होजाताहै (कई ऐसा भी अर्थ करतेहैं कि पांच पंचमूल जो कहे उनमेसे आदिके गण अर्थात् लघुपंचमूलका जल पिलावे) ॥ १७ ॥

(श्लो० १४) मागधिकोदकेन पिप्पलीमिश्रितजलेन वामयेत् छर्दयेत् । परंतु क्षयजा विहाय तत्र हि क्षीणधातुत्वाद्वमनमनुचितम् । तदुक्तं तंत्रांतरे—"उल्लेखनं तु तृष्णासु क्षयादन्यत्र युज्यते" (इति नि० सं०) विलेपनं हितं स्यादिति वदंतीत्यन्वयः । (श्लो० १७) तृषः इति तृष् हलतस्य पंचम्यंतं वातजायाः विशेषणम् ।

शीतज्वरश्छर्दिररोचकश्च कफात्मिकायां त्वविपाक एव ॥
एतानि रूपाणि भवंति यस्यां तयार्दितः कांक्षति नाति चांभः ॥९॥

बाष्प (पसीने) के अवरोधसे अथवा आंतर्य बाष्पके रुकनेसे और जठराग्निके कफावृत होजानेसे कफसे भी तृषा होती है इसमें निद्रा, शरीरका भारीपन, मुँहमें मिठास ये लक्षण होते हैं और तृषासे पीडित रोगी अत्यन्त शुष्कसा होजाता है ॥ ७ ॥ शीतज्वर, वमन, अरुचि और अन्नका अविपाक (न पचना) ये लक्षण कफकी तृष्णामें होते हैं और इस कफतृष्णाका रोगी अत्यन्त जलकी वांछा भी नहीं करता (अर्थात् प्यास बहुत हो और जल नहीं भावे) ॥ ९ ॥

क्षतस्य रुक्छोणितनिर्गमाभ्यां तृष्णा चतुर्थी क्षतजा मता तु ॥
तयाभिभूतस्य निशादिनानि गच्छंति दुःखं पिबतोऽपि तोयम् ॥१०॥
रसक्षयाद्या क्षयसंभवा सा तयाभिभूतस्तु निशादिनेषु ॥
पेपीयतेऽम्भः स सुखं न याति तां सन्निपातादिति केचिदाहुः ॥११॥

क्षत (घाव या चोट लगे हुए मनुष्य) के पीडा और रुधिर निकलनेसे क्षतजा नामक चौथे प्रकारकी तृष्णा होती है इससे पीडित मनुष्यको रातदिन पानी पीते भी दुःखसे कटते हैं ॥ १० ॥ पांचवीं क्षयज तृषा होती है यह रसादिक धातुओंके क्षय हो जानेसे उत्पन्न होती है इससे पीडित मनुष्य रातदिन पानी पीते पीते भी सुखी नहीं होता (प्यास नहीं बुझती) कोई इसे सन्निपातज तृषा कहतेहैं ॥ ११ ॥

आमज और भुक्तज तृषा ।

रसक्षयोक्तानि च लक्षणानि तस्यामशेषेण भिषक् व्यवस्येत् ॥
त्रिदोषलिंगामसमुद्भवा च हृच्छूलनिष्ठीवनसादयुक्ता ॥ १२ ॥
स्निग्धं तथाऽम्लं लवणं च भुक्तं गुर्वन्नमेवाशु तृषां करोति ॥
क्षीणं विचित्तं बधिरं तृषार्तं विवर्जयेन्निर्गतजिह्वमाशु ॥ १३ ॥

आम शेष रहेकी तृषामें रसक्षय तृषाके सब लक्षण होतेहैं ऐसा वैद्य जाने यह आमज तृषा त्रिदोषके लक्षणोंसे युक्त होतीहै और इसमें हृदयमें शूल, मुँहसे पानीसा आना तथा ग्लानि भी होती है (यह तृषा आमके शेष रहेसे होतीहै) ॥ १२ ॥ चिकना, खट्टा, लवणका तथा भारी (गरिष्ठ) भोजन

(श्लो० ११) रसक्षयाद्या इति—रसक्षयजा रक्तक्षयजा इत्याद्या ।

राजादनक्षीरकपीतनेषु षट् पानकान्यत्र हितानि च स्युः ॥ २५ ॥

कसेरु, सिंघाड़े, कमल, मोचवृक्ष और कमलमूल इनका क्काथ क्षतज तृषाको नष्ट करता है अथवा नीलकमल, खस, पीतचंदन इन्हें भिगोकर रातको मैदानमें रख दे इस उत्तम उदार सुगंधवाले जलमें मिश्री और शहद मिलाके दाख मलकर वैद्य तृष्णापीडितको पिलावे ॥ २२ ॥ २३ ॥ सारिवादिगण और तृणपंचमूल तथा उत्पलादिगण और मधुर (काकोल्यादि) गण इनका क्काथ करके देवे तथा मधूकपुष्पादिकका क्काथ दे तथा खिरनी, दूधके वृक्ष (गूलर आदि) और कपीतन (सुपारी) इनका पानक पिलावे ये छहों पानक यहां हित हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

क्षतकी तृष्णाके यत्न ।

सतुंडिकेरीण्यर्थ वा पिबेत्तु पिष्टानि कार्पाससमुद्भवानि ॥
क्षतोद्भवां रुग्विनिवारणेन जयेद्रसानामसृजश्च पानैः ॥ २६ ॥

तुंडिकेरी (बिंबी) को या कपासके फलोंको पीसकर पीवे तथा घावसे हुई तृषामें घाव (जखम) को अच्छा करनेकी क्रिया करे तथा रसों (मांसरसों) का पान करावे अथवा हिरन आदिका रक्त पिलावे ॥ २६ ॥

क्षयादिकी तृष्णाके यत्न ।

क्षयोत्थितां क्षीरघृतं निहन्यान्मांसोदकं वा मधुकोदकं वा ॥
आमोद्भवां बिल्ववचायुतानां जयेत्कषायैरथ दीपनानाम् ॥ २७ ॥
आम्रातभल्लातबलायुतानि पिबेत्कषायाण्यथ दीपनानि ॥
गुर्वन्नजातां वमनैर्जयेच्च क्षयादृते सर्वकृताश्च तृष्णाः ॥ २८ ॥

क्षयसे उपजी हुई तृषाको दूध व घृतका पान करना या मांसका रस या मुलेठीका रस दूर करताहै और आमज तृषाको बिल्व, वच इनसे मिलेहुए दीपन औषधोंके क्काथ शांत करतेहैं ॥ २७ ॥ अथवा आँवला, भिलावां और खरेंटी मिलाकर दीपन क्काथ पीनेसे आमज तृषा शांत होतीहै और भारी गरिष्ठ अन्नके खानेसे उपजी हुई तृषाको भी दीपन कषाय शांत करतेहैं तथा क्षयके सिवाय सब प्रकारकी तृषाको वमन कराकर शांत करे (और ऐसा भी अर्थ करतेहैं कि गरिष्ठ अन्नसे उपजी हुई तृषाको वमन कराकर शांत करे तथा क्षयजके सिवाय सब दोषोंकी तृषामें वमन करावे) ॥ २८ ॥

श्रमोद्भवां मांसरसो निहन्ति गुडोदकं वाप्यथवापि मंथः ॥
भक्तोपरोधात्तृषितो यवागूमुष्णां पिबेन्मंथमथो हिमं च ॥ २९ ॥

(श्लो० २५) कपीतन आम्रातकम् (इति श० स्तो०) अन्ये पूगमाहुः ।

पित्तजतृषाका यत्न ।

पित्तघ्नवर्गेण कृतः कषायः सशर्करः क्षौद्रयुतः सुशीतः ॥
पीतस्तृषां पित्तकृतां निहन्ति क्षीरं शृतं वाप्यथ जीवनीयैः ॥१८॥

पित्तनाशक (कमल सारिवादि) औषधोंका काथ ठंढा करके खांड और शहद मिलाके पीनेसे पित्तकी तृषा शांत होतीहै अथवा जीवनीयगणसे सिद्ध कियाहुआ दूध पिलावे ॥ १८ ॥

कफकी तृषाका यत्न ।

बिल्वाढकीकण्टकपञ्चमूलीदर्भेषु सिद्धं कफजां निहन्ति ॥
हितं भवेच्छर्दनमेव चात्र तप्तेन निम्बप्रसवोदकेन ॥ १९ ॥

बिल्व, अरहर, कंटक. पंचमूल (सूत्रस्थानके ३८ वें अध्यायमें कहाहुआ) और डाभ इनमें सिद्ध कियाहुआ जल (काथ) कफकी तृषाको शांत करताहै तथा नींबके पत्तोंके काथसे वमन करना भी हित है ॥ १९ ॥

तृषाकी साधारण विधि ।

सर्वासु तृष्णास्वथ वाऽपि पैत्तं कुर्याद्विधिं तेन विना न शान्तिः ॥
पर्यागतोदुम्बरजो रसस्तु सशर्करस्तत्कथितोदकं वा ॥ २० ॥
वर्गस्य सिद्धस्य च सारिवादेः पातव्यमम्भः शिशिरं तृषार्तैः ॥२१॥

अथवा सब प्रकारकी तृष्णामें पित्तनाशक विधि करे क्योंकि पित्तकी शांतिके विना तृषा शांत नहीं होती तथा पकेहुए गूलरका रस पिलावे अथवा उसका काथ करके खांड मिलाके पिलावे ॥ २० ॥ अथवा सारिवादि गणसे सिद्ध किया हुआ जल (अर्थात् काथ) ठंढा करके तृषा पीडितोंको पिलावे ॥ २१ ॥

कशेरुशृंगाटकपद्ममोचबिसेषु सिद्धं क्षतजां निहन्ति ॥
नीलोत्पलोशीरकुचंदनानि दत्त्वा प्रवाते निशि वासयेत्तु ॥ २२॥
तदुत्तमं तोयमुदारगंधि सितायुतं क्षौद्रयुतं तथैव ॥
द्राक्षाप्रगाढं च हिताय वैद्यस्तृष्णार्दितेभ्यो वितरेन्नरेभ्यः ॥ २३ ॥
ससारिवादौ तृणपंचमूले तथोत्पलादौ मधुरे गणे च ॥
कुर्यात्कषायं च तथैव युक्तं मधूकपुष्पादिषु वा परेषु ॥ २४ ॥

(श्लो० २०) पर्यागतं पक्वं पक्वस्योदुम्बरस्य रसः सशर्करः । "सशर्करः" इत्यत्र केचित् 'सशर्करं' इति पठित्वा कथितोदकस्य विशेषणं मन्यंते ।

सात्म्यैश्च भोजनैः ॥१॥ श्रमात्क्षयात्तथोद्वेगादजीर्णात्क्रिमिदोषतः ॥ नार्याश्चापन्नसत्त्वायास्तथाऽतिद्रुतमश्नतः ॥ २ ॥ बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्द्रुतमुत्क्लेशितो बलात् ॥ छादयन्नाननं वेगैरर्दयन्नंगभंजनैः॥ निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावितः ॥ ३ ॥ दोषानुदीरयन्वृद्धानुदानो व्यानसंगतः ॥ ऊर्द्ध्वमागच्छति भृशं विरुद्धाहारसेविनाम् ॥ ४ ॥

अत्यन्त पतला, अति चिकना, हृदयको अप्रिय ऐसे भोजन करनेसे, लवण खाने (खाकर पानी पीने या लवणके पानी) से, वेसमय (वे क्षुधा) भोजन करने, अति भोजन करने तथा असात्म्य (जो माफ़कत न हो ऐसा) भोजन करनेसे ॥ १ ॥ श्रमसे, क्षयसे, उद्वेगसे, अजीर्णसे तथा कृमियोंके दोषसे, स्त्रियोंके गर्भ होनेसे, जलदी २ भोजन करनेसे, बीभत्स (ग्लानिकारक) पदार्थोंके देखने आदि हेतुओंसे जब बलपूर्वक जी मचलाता है तब वेगसे मुँहको रोकताहुआ और अंगोंको पीडित करता हुआ जो दोष मुखमार्गसे निकलता है उसे छर्दि (वमन) कहते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ विरुद्ध भोजन करनेवाले मनुष्योंके बढेहुए दोषोंको, व्यानसे मिलाहुआ उदान वायु ऊपरको ऊर्द्धगामी करता है इससे वमन होता है (कई व्यानकी जगह "प्राणसंगतः" ऐसा पाठ मानते हैं) ॥ ४ ॥

छर्दिका पूर्वरूप ।

हृल्लासोद्गाररोधौ च प्रसेको लवणस्य तु ॥
द्वेषोऽन्नपाने च भृशं वमीनां पूर्वलक्षणम् ॥ ५ ॥

हृल्लास (जी मिचलावे, उबकाई आवें), डकार रुक जावे, मुँहमें पानीसा भर भर आवे, मुखमें खारापन हो, अन्न और पानसे अत्यंत द्वेष हो (अर्थात् ये बुरे लगें) ये लक्षण वमन होनेसे पहले होतेहैं ॥ ५ ॥

प्रच्छर्दयेत्फेनिलमल्पमल्पं शूलार्दितोभ्यर्दितपार्श्वपृष्ठः ॥ श्रांतः सघोषं बहुशः कषायं जीर्णेऽधिकं साऽनिलजा वमिस्तु ॥ ६ ॥ योऽम्लं भृशं वा कटुतिक्तवक्त्रः पीतं सरक्तं हरितं वमेद्वा ॥

(श्लो० २) आपन्नसत्त्वाया गृहीतगर्भाया नार्याः ।

(श्लो० ५) प्रसेको लवणस्य तु इति—लवणस्य प्रसेकः स लवणवत् प्रसेक इत्यर्थः । केचित्तु "प्रसेको लवणस्य तु" इत्यत्र 'प्रसेको लवणास्यता' इति पाठांतरं मन्यन्ते (श्लो० ६) "अभ्यर्दितपार्श्वपृष्ठः" इत्यत्र 'अभ्यर्दितवामपार्श्वः' इति वा पाठांतरम् । जीर्णे रिक्तकोष्ठे अधिकम् ।

यो स्नेहपीतस्य भवेच्च तृष्णा तत्रोष्णमम्भः प्रपिबेन्मनुष्यः ॥
मद्योद्भवामर्द्धजलं निहन्ति मद्यं तृषां यापि हि मद्यपस्य ॥ ३० ॥
उष्णोद्भवां हन्ति जलं सुशीतं सशर्करं चेक्षुरसं तथाऽम्भः ॥
स्वैः स्वैः कषायैर्वमनानि तासां तथा ज्वरोक्तानि च पाचनानि ॥ ३१ ॥

श्रमसे उपजी हुई तृषामें मांसका रस देवे या गुडका पानी या मन्थ पिलावे इससे वह शांत होती है और भक्तके उपरोध (भोजनके अवरोध) से तृषित मनुष्य गरम यवागू पान करे अथवा ठंढा मन्थ पान करे ॥ २९ ॥ और जो स्नेह पीने (या चिकनाई ज्यादे खाने) से तृषा हो उसमें मनुष्यको गरम पानी पीना चाहिये और मदिरा पीनेवालेको यदि मद्य पीनेपर तत्कालही तृषा हो तो आधा पानी मिलाकर पीनेसे वह शांत होजाती है ॥ ३० ॥ गरमीसे पैदा हुई तृषा हो तो शीतल जल खाँड मिलाकर (शरबत बनाकर) पीवे अथवा ईखके रसमें पानी मिलाकर पीवे और जिस जिस प्रकारकी तृषा हो उसमें उसी प्रकारके क्काथसे वमन करावे तथा ज्वरोक्त पाचन भी देवे ॥ ३१ ॥

लेपावगाहौ परिषेचनानि कुर्यात्तथा शीतगृहाणि चापि ॥
संशोधनं क्षीररसौ घृतानि सर्वासु लेहान्मधुरान्हिमांश्च ॥ ३२ ॥
इति सुश्रुतसं० उत्तरतन्त्रे कायचिकित्सायामष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

सब प्रकारकी तृषामें साधारणतासे ये यत्न करने हितकारक होतेहैं-शीतल लेप, स्नान, छिडके देना तथा ठंढे मकानमें रहना, शोधन (वमन, विरेचन), दूध, मांसके रस, घृत और मधुर शीतल अवलेह इनका सेवन करना ॥ ३२ ॥

यूनानी हकीम तृष्णाको "अतशमुफरत" कहते हैं ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतस० भा० टी० उत्तरतन्त्रे कायचिकित्सायामष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ४९.

अथातश्छर्दिप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम छर्दि (वमन अर्थात् कै) के प्रतिषेधके अध्यायका व्याख्यान करते हैं ।

छर्दिका हेतु और संप्राप्ति ।

अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरपि ॥ अकाले चातिमात्रैश्च तथा

(श्लो० ३०) मद्यपस्य या तृषा मद्योद्भवा तामर्द्धजलयुक्तं मद्यं हि निहन्ति इत्यर्थः ।

असाध्य छर्दिके लक्षण ।

क्षीणस्योपद्रवैर्युक्तां सासृक्पूयां सचंद्रिकाम् ॥
छर्दिं प्रसक्तां कुशलो नारभेत चिकित्सितुम् ॥ १२ ॥

क्षीण मनुष्यके यदि उपद्रवोंसहित छर्दि हो और उसमें रुधिरसहित पीब तथा मोरपंखकेसी चमक हो तथा निरंतर होती हो तो चतुर वैद्य ऐसी छर्दिकी चिकित्साका आरंभ न करे (यह असाध्य है) ॥ १२ ॥

छर्दिकी चिकित्सा ।

वमीषु बहुदोषासु छर्दनं हितमुच्यते ॥ विरेचनं वा कुर्वीत यथादोषोच्छ्रयं भिषक् ॥ १३ ॥ संसर्गांश्चानुपूर्व्येण यथास्वं भेषजाय तान् ॥ लघूनि परिशुष्काणि सात्म्यान्यन्यानि वाचरेत् ॥ १४ ॥ यथास्वं च कषायाणि ज्वरघ्नानि प्रयोजयेत् ॥ १५ ॥

बहुत दोषवाली छर्दिमें वमन होना या कराना हितकारक होता है (अर्थात् उसे रोके नहीं) अथवा विरेचन करावे, जैसा दोष हो वैद्य वैसाही करे (कफकी उल्वणता हो तो वमनही करावे और यदि पित्तकी प्रधानता हो तो रेचन देवे) ॥ ॥ १३ ॥ और जो संसर्गज छर्दि हों उन्हें क्रमसे यथायोग्य औषधोंसे शांत करे और फिर हलके, शुष्क, सानुकूल भोजन देवे (पतले द्रव भोजन नहीं देवे ये फिर वमनकारक होते हैं) और यथा अवसर ज्वरनाशक काथोंका उपयोग भी करना उचित होता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

वायुकी छर्दिका यत्न ।

हन्यात्क्षीरघृतं पीतं छर्दिं पवनसंभवाम् ॥ मुद्गामलकयूषो वा ससर्पिष्कः ससैंधवः ॥ १६ ॥ यवागूं मधुमिश्रां वा पंचमूलीकृतां पिबेत् ॥ पिबेद्वाऽव्यक्तसिंधूत्थं फलाम्लं वैष्किरं रसम् ॥ १७ ॥ सुखोष्णलवणं वाऽत्र हितं स्नेहविरेचनम् ॥ १८ ॥

दूध और घृत मिलाकर पीना वायुकी छर्दिको नष्ट करता है अथवा मूँग और आंवलोंका यूष घृतयुक्त लवणमिश्रित पीना ॥ १६ ॥ अथवा पंचमूली (बृहत्पंचमूल) से सिद्ध की हुई यवागूमें शहद डालकर पीना अथवा सैंधानमक और फलोंकी खटाई मिलाकर विष्किरपाक्षियोंके मांसका रस पीवे अथवा निवाया लवणयुक्त स्नेहका विरेचन भी यहां हित होता है ॥ १७ ॥ १८ ॥

(श्लो० १२) प्रसक्ता नैरतर्येण स्थित्वा स्थित्वा भवतीति भावः ।

(श्लो० १४) ससर्गान् छर्देः ससर्गान् तान् आनुपूर्व्येण यथास्वं भेषजाय कुर्यादित्यन्वयः ।

सदाहचोषज्वरवक्त्रशोषमूर्च्छान्विता पित्तनिमित्तजा सा ॥ ७ ॥
यो हृष्टरोमा मधुरं प्रभूतं शुक्लं हिमं सांद्रकफानुविद्धम् ॥
अभक्तरुग्गौरवसादयुक्तो वमेद्वमी सा कफकोपजा स्यात् ॥ ८ ॥

थोडा थोडा झागों सहित वमन हो, शूल हो, पसली और पीठमें दरद हो, थकान हो, बहुत शब्दयुक्त कसेली वमन हो और भोजनपचेपर (खाली कोठेमें) व्याधि अधिक हो ये लक्षण वायुकी छर्दिके हैं ॥ ६ ॥ जो बहुत खट्टा, पीला, कुछ रक्तता मिला या हरा वमन करे, मुँह चरपरा या कडवा हो, दाह, चोष, ज्वर, मुँहमें खुश्की और मूर्च्छा ये भी हों उसे पित्तकी छर्दि जानो ॥ ७ ॥ जिसके रोमांच हों, मीठा बहुतसा सुपेद ठंढा गाढा कफ मिला वमन करे, अरुचि, भारीपन और थकान भी हों ये लक्षण कफकी छर्दिके हैं ॥ ८ ॥

सर्वाणि रूपाणि भवंति यस्यां सा सर्वदोषप्रभवा मता तु ॥
बीभत्सजा दौर्हृदजाऽऽमजा च याऽसात्म्यतो वा कृमिजा च या हि९
सा पंचमी ताश्च विभावयेत्तु दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्तमादौ ॥
आमाशयोत्क्लेशभवाश्च सर्वास्तस्माद्धितं लंघनमेव तासु ॥ १० ॥

जिसमें सब दोषोंके मिलेहुए लक्षण पायेजावें वह सब दोषों (सन्निपात) की छर्दि जाननी चाहिये और ग्लानिकारक पदार्थोंसे उपजी तथा गर्भधारणोंसे उपजी स्त्रियोंकी छर्दि तथा आमज (भोजनादिके न पचनेसे उपजी) तथा असानुकूल भोजन खाये जानेसे उपजी तथा कृमिदोषकी छर्दि पांचवीं ये सब पहले कहेहुए लक्षणोंसे देखनी चाहिये कि इनमें कौनसा दोष उल्वण है और जहां जिस दोषका उत्कर्ष हो उसका यथोक्त प्रतिकार करना चाहिये जोकि सब प्रकारकी छर्दि आमाशयके उत्क्लेशसे पैदा होतीहै इसलिये सबमें प्रथम लंघन कराना हितकारक होता है ॥ ९ ॥ १० ॥

कृमिदोषकी छर्दि ।

शूलहृल्लासबहुला कृमिजा च विशेषतः ॥
कृमिहृद्रोगतुल्येन लक्षणेन च लक्षिता ॥ ११ ॥

आमाशयमें दरद और बहुत जी मिचलाना विशेषकरके कृमिदोषकी छर्दिमें होता है तथा उसमें कृमिके हृद्रोगके समान लक्षण होते हैं ॥ ११ ॥

(श्लो० ८) कफानुविद्ध कफमिश्रम् । अभक्तरुक् अन्नारुचिः (इति डल्हनः)

सानुकूल भोजनोंसे जीते ॥ २३ ॥ और कृमिदोषजनित छर्दिको कृमिके हृद्रोगके अनुसार यत्नसे साधन करे और इसके सिवाय दोषोंके अनुकूल यथायोग्य श्रेष्ठ विधि करे ॥ २४ ॥

दधित्थरससंयुक्तां पिप्पलीं माक्षिकान्विताम् ॥ मुहुर्मुहुर्नरो लीढ्वा छर्दिभ्यः प्रतिमुच्यते ॥ २५ ॥ समाक्षिका मधुरसा पीता वा तंडुलांबुना ॥ तर्पणं वा मधुयुतं तिसृणामपि भेषजम् ॥२६॥ स्वयंगुप्तां सयष्ट्याह्वां तंडुलांबुमधुद्रवाम् ॥ पिबेद्यवागूमथवा सिद्धां पत्रैः करंजजैः ॥ २७ ॥ युक्ताम्ललवणाः पिष्टाः कुस्तुंबुर्योऽथवा हिताः ॥ तंडुलांबुयुतं खादेत्कपित्थं त्र्यूषणेन वा ॥२८॥

कैथके रसमें पीपल और शहद मिलाके वारवार चाटनेसे छर्दिमें आराम होजाताहै ॥ २५ ॥ अथवा मूर्वाको शहदमें मिलाकर उसे चाटे और ऊपरसे चावलोंका पानी पीवे अथवा तर्पणपदार्थोंमें शहद मिलाके पीवे यह तीनों दोषोंकी छर्दिमें श्रेष्ठ औषध है ॥ २६ ॥ अथवा केवाँचके बीजोंको मुलेठीमें मिलाकर चावलोंके पानी और शहदमें घोलकर पीवे अथवा करंजके पत्तोंके काथमें पकाई यवागू पान करे ॥ २७ ॥ अथवा खटाई और नमक मिलाकर धनियाँको पीसे और इस चटनीको चाटे अथवा कैथमें त्रिकटु और चावलोंका पानी मिलाके खावे ॥ २८ ॥

सिताचंदनमध्वाक्तं लिह्याद्वा मक्षिकाशकृत् ॥ पिबेत्पयोग्नितप्तं च निर्वाप्य गृहगोधिकाम् ॥ २९ ॥ सर्पिःक्षौद्रयुतान्वापि लाजसक्तून्पिबेत्तथा ॥ सर्पिःक्षौद्रसितोपेतां मागधीं वा लिहेत्तथा ॥ ३० ॥ धात्रीरसे चंदनं वा शृतं मुद्गदलांबु वा ॥ कोलामलकमज्जानं लिह्याद्वा त्रिसुगंधिकम् ॥ ३१ ॥ सक्षौद्रां शालिलाजानां यवागूं वा पिबेन्नरः ॥ प्रेयाण्युपहरेच्चापि मनोघ्राणसुखानि च ॥ ३२ ॥ जांगलानि च मांसानि स्वादुवत्पानकानि च ॥ भोजनानि विचित्राणि कुर्यात्सर्वास्वतंद्रितः ॥३३॥

इति सुश्रुतसं०उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायामेकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः॥४९॥

अथवा मिश्री, चंदन, शहद इनमें मक्खीकी वीट मिलाकर चाटे अथवा दूधको अग्निपर गरम करके उसमें गृहगोधिका (छपकली) डालकर पीवे ॥ २९ ॥

(श्लो० २६) मधुरसा मूर्वा । अन्ये द्राक्षामाहुः ।

पित्तकी छर्दिका यत्न ।

पित्तोपशमनीयानि पानानि शिशिराणि च ॥ कषायाण्युपयुक्तानि घ्नंति पित्तकृतां वमिम् ॥ १९ ॥ शोधनं मधुरैश्चात्र द्राक्षारससमायुतैः ॥ बलवत्यां प्रशंसंति सर्पिस्तैल्वकमेव च ॥ २० ॥

पित्तके नाशक शीतल पन्ने या कषाय जो योग्य होवें वे पित्तकी वमनको नष्ट करते हैं ॥ १९ ॥ अथवा यहां मधुर द्रव्योंमें द्राक्षाके रसके योगवाले विरेचन देने उचित हैं और जो प्रबल छर्दि हो तो तैल्वक (लोधका) पका घृत देवे ॥ २० ॥

कफकी छर्दिका यत्न ।

आरग्वधादिभिर्यूषं दशांगयोगमेव च ॥
पाययेत्तार्थं सक्षौद्रं कफजायां चिकित्सकः ॥ २१ ॥

आरग्वधादिका क्वाथ अथवा दशांगयोग शहद सहित मिलाके वैद्य कफकी छर्दिमें पिलावे ॥ २१ ॥

(वक्तव्य) यूषसे प्रयोजन यहां क्वाथ है और दशांगयोगको कई दशमूल मानते हैं, कई दशांग क्वाथ मानते हैं (देखो टिप्पणी) ॥

तीनों दोषोंकी छर्दिका यत्न ।

कृतं गुडूच्या विधिवत्कषायं हिमसंज्ञितम् ॥
तिसृष्वपि भवेत्पथ्यं माक्षिकेण समन्वितम् ॥ २२ ॥

गिलोयका हिम (शीत) कषाय विधिपूर्वक बनावे और शहद मिलाकर पिलावे यह तीनों दोषोंकी छर्दिमें श्रेष्ठ है (त्रिदोषकी या पृथक् तीनों दोषोंकी छर्दिमें पथ्य है) ॥ २२ ॥

बीभत्सजनितादि छर्दिकी चिकित्सा ।

बीभत्सजां हृद्यतमैर्दौर्हृदां कांक्षितैः फलैः ॥ लंघनैर्वमनैश्चासां सात्म्यैश्चासात्म्यकोपजाम् ॥ २३ ॥ कृमिहृद्रोगवच्चापि कृमिजां साधयेद्वमिम् ॥ वितरेच्च यथादोषं शस्तं विधिमनंतरम् ॥ २४ ॥

ग्लानिसे उपजीहुई छर्दिको हृदयप्रिय पदार्थोंसे और गर्भवती स्त्रीकी छर्दिको उसके मन चाहे फलोंसे और असानुकूल भोजनजनित छर्दिको लंघन, वमन और

(श्लो० २१) यूषं कषायम् (इति डल्हनः) दशागयोग इति-केचित् दशांगयोगेन दशमूलं मन्यते, केचित् दशांगक्वाथमेव मन्यते । तदुक्तम्-"वासामृतापर्पटकं निम्बभूनिम्बमार्दवैः ॥ त्रिफलाकुलत्थकैः क्वाथः सक्षौद्रः" इति दशांगक्वाथः ।

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सस्वनो यकृत्प्लीहांत्राणि मुखादिवाक्षिपन् ॥ स घोषवानाशु हिनस्त्यसून्यतस्ततस्तु हिक्केति भिषग्भिरुच्यते४

जब पूर्वोक्त कारणोंसे वायु (समान और उदान) शब्द सहित यकृत, प्लीहा और आंतोंको मुखद्वारोंसे क्षेपण करके (उछालके या निकालता या हिलाता हुआसा) घोषणयुक्त (अव्यक्तध्वनियुक्त) उर्द्धगामी हो, मुखकी तरफ प्रवृत्त हो और (बढ जाय तो) शीघ्र प्राणको नष्ट करदेता है इससे इसे वैद्य हिक्का कहते हैं ॥ ४ ॥

(वक्तव्य) इसमें ' सस्वन ' और 'घोषवान्, दो शब्द एक अर्थके क्यों कहे इसका समाधान यह है कि स्वन साधारण अल्पशब्द होता है और घोष ऊँचा जोरका और गंभीर शब्द होता है सो घोषवान् शीघ्र प्राणनाशक हिक्का होती है यह शब्द गंभीरा और महतीमें बहुत भयंकरसा होता है बल्कि कई "सघोषवान्" की जगह "सदोषवान्" ऐसा पाठांतर मानते हैं ॥

वायुसे कई समान और उदान मानते हैं कई उदान और प्राण मानते हैं ॥

हिक्काकी संख्या ।

अन्नजां यमलां क्षुद्रां गंभीरां महतीं तथा ॥
कफेनानुगतो वायुः पंच हिक्काः करोति हि ॥ ५ ॥

कफके अनुगत हुआ वायु पांच प्रकारकी हिकायें पैदा करता है वे पांच प्रकारकी हिक्का ये हैं—अन्नजा, यमला, क्षुद्रा, गंभीरा और महती ॥ ५ ॥

हिक्काका पूर्वरूप ।

मुखं कषायमरतिर्गौरवं कंठवक्षसोः ॥
पूर्वरूपाणि हिक्कानामाटोपो जठरस्य च ॥ ६ ॥

मुँह कसेला हो, बेचैनी हो, कंठ और छातीमें भारीपन हो तथा पेटका फुलावसा हो ये लक्षण हिचकीके पूर्वरूपके हैं ॥ ६ ॥

पांचों हिक्काओंके लक्षण ।

पानान्नैरतिसंयुक्तैः सहसा पीडितोनिलः ॥ हिक्कयत्यूर्द्धगो भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक् ॥ ७ ॥ चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिक्का संप्रवर्तते ॥ कंपयंती शिरो ग्रीवां यमलां तां विनि-

---

(श्लो० ४) मुहुर्मुहुरिति—वायुरत्र सोदानः प्राणो बोद्धव्यः आक्षिपन् निःसारयन् इवेत्यर्थ. यकृत्प्लीहांत्राणि मुखमानीय निःसारयन्निव वायुरुदेतीति । उदेति ऊर्ध्वं याति (इति भा० मि०) "घोषवान्" इत्यत्र 'सदोषवान्' इति पाठः (इति भा० प्र०)

धानकी खीलोंके सत्तू बनाके घृत और शहद मिलाके खावे अथवा घृत, शहद अथवा मिश्री इनमें पीपल मिलाकर चाटे ॥ ३० ॥ अथवा आँवलोंके रसमें चंदन मिलाके चाटे अथवा मूंगकी दालके औटाये पानीको पीवे अथवा बेर और आंवलोंके गूदेमें त्रिसुगंध मिलाके चाटे ॥ ३१ ॥ अथवा चावलोंकी खीलको यवागूमें शहद मिलाके पीवे तथा मन और नासिका इंद्रियको सुख देनेवाले सुगंधित पदार्थोंको सूंघे ॥ ३२ ॥ और जंगली जीवोंके मांस तथा स्वादु (मजेदार) पानक (पीनेके पदार्थ) तथा विचित्र अच्छे भोजन ये सब प्रकारकी छर्दिमें सावधान वैद्यको उपयोग करने उचित हैं ॥ ३३ ॥

यूनानी वाले छर्दिको "कै" या कैआना कहते हैं और डाक्टरीमें वामेटिंग (Wametiug) कहते हैं ॥

इति प०मुरलीधरवि०सुश्रुतस०भा०टी० उत्तरतन्त्रे कायचिकित्सायामेकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ४९.

पंचाशत्तमोऽध्यायः ५०.

अथातो हिक्काप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

यहांसे अगाडी अब हम हिक्का (हिचकी या हुचकी) के प्रतिषेधका व्याख्यान करते हैं।

हिक्काके हेतु।

विदाहिगुरुविष्टंभिरूक्षाभिष्यंदिभोजनैः ॥ शीतपानासनस्थान-रजोधूमानिलानलैः ॥१॥ व्यायामकर्मभाराध्ववेगाघातापतर्पणैः ॥ आमदोषाभिघातस्त्रीक्षयरोगप्रपीडनैः ॥ २ ॥ विषमाशनाध्यशनै-स्तथा संशमनैरपि ॥ हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ॥३॥

विदाही (जलन करनेवाले तीक्ष्ण) वस्तु खानेसे, गरिष्ठ, विष्टंभी (कब्ज़ियत करनेवाले), रूखे अभिष्यंदी भोजन करनेसे, शीतस्थान, शीतल पीनेके पदार्थ, रज (धूलि), धुवां, वायु और अग्नि इनका अधिक संपर्क होनेसे ॥ १ ॥ परिश्रमके काम करनेसे, बोझा उठानेसे, मार्ग अधिक चलनेसे, मलमूत्रादिके वेग रोकनेसे, तृप्ति न करनेवाले पदार्थ खानेसे, आमके दोषसे, चोट आदि लगनेसे, अति स्त्रीसंग करनेसे, क्षयरोगकी पीडासे ॥ २ ॥ विषम भोजन करने और भोजनपर भोजन करनेसे तथा संशमन कर्म करनेसे मनुष्योंके हिक्का, श्वास तथा खांसी पैदा होते हैं ॥ ३ ॥

(श्लो० २) अपतर्पणैः अतृप्तिकैर्लंघनैश्च आमदोषेण "उष्मणाल्पबलत्वेन धातुमाद्यादपाचितम् ॥ दुष्टमामाशयगतं रसमाम प्रचक्षते" (इति नि० सं०)

ध्य होताहै और अंतकी दो हुचकी गंभीरा और महतीवाले रोगी असाध्य त्यागने योग्य होतेहैं ॥ १२ ॥

(वक्तव्य) वास्तवमें अन्नजा हुचकीकी औषध नहीं करनी पडती यह आपही आप दो चार मिनटमें शांत होजातीहै और क्षुद्रा सुखसाध्य होतीहै, यमला कष्टसाध्य होतीहै और कभी असाध्य भी होजातीहै और गंभीरा और महती ये असाध्य होतीहैं और प्रायः मनुष्यके अन्तसमयमें होतीहैं ।

हिक्काकी चिकित्साका आरंभ ।

प्राणायामोद्वेजनत्रासनानि सूचीतोदैः संभ्रमश्चात्र शस्तः ॥
यष्ट्याह्वं वा माक्षिकेणावपीडः पिप्पल्यो वा शर्कराचूर्णयुक्ताः ॥१३॥
सर्पिः कोष्णं क्षीरमिक्षो रसो वा नातिक्षीणे स्रंसनं छर्दनं च ॥१४॥

प्राणायाम कराना, उद्वेग कराना, डराना, सूई चुभोना, भ्रम दिलाना ये(साधारण हिचकियोंके लिये) श्रेष्ठ हैं अथवा मुलेठीका चूर्ण शहदमें मिलाके अवपीडन करे या पीपल और खांड इन्हें मिलाकर खावे ॥ १३ ॥ अथवा निवाया घृत या ईखका रस भी हितकारक है और जो हुचकीका रोगी अति क्षीण नहीं हो तो उसे विरेचन देवे तथा वमन करावे (अर्थात् बलवान् हो तो वमन करावे और विरेचन देवे) ॥ १४ ॥

नारीपयःपिष्टमशुक्लचंदनं घृतं सुखोष्णं च ससैंधवं तथा ॥ चूर्णीकृतं सैंधवमंभसा तथा निहंति हिक्कां च हितं च नस्यतः ॥१५॥

स्त्रीके दूधमें घिसाहुआ लाल चन्दन तथा सैंधव और गरम घृत तथा जलके साथ पिसाहुआ सैंधा नमक इन योगोंकी नस्य लेनेसे हुचकीकी पीडा नष्ट होजातीहै ॥ १५ ॥

युंज्याद्धूपं शालिनिर्यासजातं नैपालं वा गोविषाणोद्भवं वा ॥
सर्पिःस्निग्धैश्चर्मबालैःकृतं वा हिक्कास्थाने स्वेदनं वापि कार्यम् ॥१६॥
क्षौद्रोपेतं गैरिकं कांचनाह्वं लिह्याद्भस्म ग्राम्यसत्त्वास्थिजं वा ॥
तद्वच्छ्वाविन्मेषगोशल्यकानां रोमाण्यंतर्द्धमदग्धानि चात्र ॥ १७ ॥
मध्वाज्याक्तं बर्हिपत्रप्रसूतमेवं भस्मौदुंबरं तैल्वकं वा ॥
स्वर्जिक्षारं बीजपूराद्रसेन क्षौद्रोपेतं हंति लीढाशु हिक्काम् ॥१८॥

(श्लो० १५) नारीपयः इत्यादि नस्यत्रयम् । (श्लो० १८) बर्हिपत्रप्रसूतं मयूरपत्राज्जातम् (इति नि० सं०)

दिशेत् ॥ ८ ॥ विकृष्टकालैर्या वेगैर्मन्दैः समभिवर्तते ॥ क्षुद्रिका नाम सा हिक्का जत्रुमूलात्प्रधाविता ॥ ९ ॥ नाभिप्रवृत्ता या हिक्का घोरा गंभीरनादिनी ॥ शुष्कौष्ठकंठजिह्वास्यश्वासपार्श्वरुजाकरी ॥ अनेकोपद्रवयुता गंभीरा नाम सा स्मृता ॥ १० ॥ मर्माण्यापीडयंतीव सततं या प्रवर्तते ॥ देहमायम्य वेगेन घोषयत्यतितृष्यतः ॥ महाहिक्केति सा ज्ञेया सर्वगात्रप्रकंपिनी ॥ ११ ॥

जलदी जलदी अत्यन्त भोजन करने या पान करनेसे पीडित हुआ वायु (आमाशय वायु) उर्द्धगामी होकर हिक्का पैदा करता है उसे वैद्य "अन्नजा" कहते हैं (अर्थात् जलदी अन्न खायेजानेसे जो वायु उसके संग जाकर भीतर रुक जाता है और वातुल या तीक्ष्ण पदार्थ खायेजानेसे वहांका वायु ऊपरको गमन करनेके लिये हिचकी पैदा करताहै वह "अन्नजा" हिक्का होती है यह प्रायः सब लोगोंके बहुधा हुआ करतीहै और साधारण होती है) ॥ ७ ॥ जो हुचकी देर देरसे दो वेगोंसे आवे, शिर और ग्रीवाको कंपित करे उसे "यमला" कहतेहैं ॥ ८ ॥ जो हुचकी बहुत समयके अनन्तर मन्द वेगोंसे आवे और जत्रुके मूलसे आरम्भ हो उसे "क्षुद्रा" कहतेहैं (जत्रुमूल जैज्जटाचार्य कांख और हृदयकी संधिको बतातेहैं) ॥ ९ ॥ जो हुचकी नाभिसे उठें, घोर और गम्भीर शब्द हो, होंठ, कंठ, जीभ, मुँह ये सूखें, श्वास और पँसलीका दर्द भी हो और अन्य उपद्रव भी हों उसे "गंभीरा" कहतेहैं ॥ १० ॥ जो मर्मोको पीडा करती हुई निरंतर चले और अपने वेगसे देहको फैला दे (देह ढीला पडजाय) और भयानक शब्द हो ,तृषा बहुत रहे, सारा शरीर जिसके वेगसे कांपे उसे "महती" या "महाहिक्का" कहतेहैं (ये दो पिछली असाध्य रोगोंके अन्तमें उपद्रवरूपसे प्रायः होतीहैं और असाध्य होतीहैं) ॥ ११ ॥

हिक्काकी असाध्यता ।

आयम्यंते हिक्कतोऽगानि यस्य दृष्टिश्चोर्द्ध्वं ताम्यते यस्य गाढम् ॥
क्षीणोऽन्नद्विट् कासते यश्च हिक्की तौ द्वावेतौ वर्जयेद्धिक्कमानौ १२

जिसका शरीर हुचकीके समय फैलजावे तथा दृष्टि ऊपर विशेष रहे, अँधेरी आजाय, नेत्र गड जावे, रोगी क्षीण हो, खांसीभी हो ऐसा हुचकीका रोग असा-

(श्लो० ९) जत्रु कक्षोरसोः संधिः (इति जैज्जटः) जत्रुमूलग्रहणेन हृदयक्लोमकठास्यग्रहणम् (इति गयदासः)

हरडेको गरम जलसे पीवे अथवा घृतमें जवाखार और शहद मिलाके पीवे॥ २२॥ अथवा कैथके रसको शहद और पीपल मिलाके कर्षभर पीवे अथवा पीपल, मिश्री, आंवले, सोंठ इन्हें शहदसे चाटे ॥ २३ ॥ अथवा बेरकी गुठलीकी मींगी, रसोत, धानकी खील इन्हें पीसके शहद मिलाके चाटे तो हुचकी बंद होजावे ॥२४॥

पाटलायाः फलं पुष्पं गैरिकं कटुरोहिणी ॥ खर्जूरमध्यं मागध्यः कासीसं मधुनाम च ॥ २५ ॥ चत्वारो यूपयोगाः स्युः प्रतिपादप्रदर्शिताः ॥ मधुद्वितीयाः कर्तव्यास्ते हिक्कासु विजानता ॥ २६ ॥

१ पाटलाके फल और पुष्प । तथा २ गेरू और कुटकी । तथा ३ खजूरकी मींगी और पीपल । तथा ४ कसीस और मुलेठी ॥ २५ ॥ ये चार प्रयोग एक एक पदमें कहे हैं ये शहदमें मिलाकर जानकार वैद्यको हिक्कारोगमें करने (उपयोग करना) चाहिये ॥ २६ ॥

कपोतपारावतलावशल्यकश्वदंष्ट्रगोधावृषदंशजान्रसान् ॥ पिबेत्फलाम्लानहिमान्ससैंधवान्स्निग्धांस्तथैवार्ष्यमृगद्विजोद्भवान् ॥२७॥

कपोत, पारावत (कबूतर), लवा, शल्यक, पक्षी और श्वदंष्ट्र (गोखरू या सेह नामक जंतु), गोधा (गोह), वृषदंश (वनमार्जार) इनके मांसके रसोंको फलोंकी खटाईसे युक्त, सैंधवसहित, स्निग्ध और गरमागरम पीवे तथा ऋष्य (मृगभेद) मृग और पक्षीके मांसका रस भी इसी भांति पीवे ॥ २७ ॥

विरेचनं पथ्यतमं ससैंधवं घृतं सुखोष्णं च सितोपलायुतम् ॥ सदागतावूर्द्ध्वगतेऽनुवासनं वदंति केचिच्च हिताय हिक्किनाम् ॥२८॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

हिक्का रोगमें विरेचन देना बहुत ही पथ्य है जो सैंधव युक्त हो तथा निवाया घृत मिश्री मिलाकर पीना भी हित होता है और कोई ऐसा भी कहते हैं वायु ऊर्द्ध्वगामी होजाताहै तब हिक्कामें अनुवासन वस्ति करना हितकारक होताहै॥ २८॥

यूनानीवाले हिक्का अर्थात् हुचकीको "फवाक" कहते हैं और डाक्टरीमें इसे "हेकप" (Hecup) कहते हैं ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतस० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्साया पचाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

(श्लो० २५ । २६) मधुनाम यष्टीमधुकम् । केचिदत्र "कासीसं दधिनाम च" इति पाठांतर मन्यते । तत्र दधिनाम कपित्थम् । चत्वारो यूषयोगा इति–यूषशब्देनात्र लेशो गृह्यते । केचित्तु "चत्वारो येषु योगाः स्युः" इति पाठांतरं मन्यते तत्र चत्वारो योगाः स्युः येषु प्रतिपादप्रदर्शितास्ते मधुद्वितीयाः कर्तव्या इत्यन्वयः । केचित्तु यूषशब्देनात्र क्वाथं मन्यते । (श्लो० २७) वृषदंशः वनमार्जारः । (श्लो० २८) सदागतौ ऊर्ध्वगते वायौ ऊर्ध्वगते ।

शालका निर्यास (सालका गोंद) या मैनसिल या गौके सींगका टुकडा इनमेंसे किसीकी धूनी देवे अथवा चर्म या बाल इनमें घृत मिलाके धूनी देवे अथवा हुचकीके स्थान (पेट, कुक्षि आदि) का स्वेदन करे (चिकनाई लगाके सेक दे) ॥ १६ ॥ अथवा सुवर्णगेरू (सोनियांगेरू) शहदमें मिलाके चाटे अथवा ग्राम्य पशुओंके हड्डीकी भस्म शहदसे चाटे अथवा सेह, मेंढ़ा, गौ और शल्यक (सेहका भेद) इनके रोंगटोंको अंतरधूमसे दग्ध करके शहदसे चाटे ॥ १७ ॥ अथवा मोरके पंखके चंदे जलाके शहद और घृतसे चाटे या गूलरकी भस्म और लोधकी भस्मको शहद, घृतसे चाटे अथवा सज्जीखार और नींबूके रसको शहद मिलाके चाटे तो शीघ्रही हुचकी बंद होजाती है ॥ १८ ॥

सर्पिःस्निग्धा घ्नंति हिक्कां यवाग्वः कोष्णा ग्रासाः पायसो वा सुखोष्णः ॥ शुंठीतोये साधितं क्षीरमाजं तद्वत्पीतं शर्करासंयुतं वा ॥ १९ ॥ आतृप्तेर्वा सेव्यमानं निहन्याद्भीरवा हिक्कामाशु मूत्रं त्वजाव्योः ॥ २० ॥

घृतसे स्निग्ध यवागू खाना, निवाये २ ग्रास लेने तथा निवायी २ खीर खाना अथवा बकरीका दूध सोंठ सहित औटायाहुआ मिश्री डालकर तृप्तिपर्यंत पीना अथवा बकरी और भेडका मूत्र सूँघना इनसे शीघ्र हुचकी रुकजाती है ॥१९॥२०॥

सपूतिकीटं लशुनोग्रगंधाहिंग्वब्जमाचूर्ण्य सुभावितं तत् ॥
क्षौद्रं सितावारणकेशरं च पिबेद्रसेनेक्षुमधूकजेन ॥ २१ ॥
पिबेत्पलं वा लवणोत्तमस्य द्वाभ्यां पलाभ्यां हविषः समग्रम् ॥
हरीतकीं कोष्णजलानुपानां पिबेद्घृतं क्षारमधुप्रपन्नम् ॥ २२ ॥
रसं कपित्थान्मधुपिप्पलीभ्यां पिचुप्रमाणं प्रपिबेत्सुखाय ॥
क्षुण्णां सितां चामलकं च लीढं सशृंगबेरं मधुनाऽथवापि ॥ २३ ॥
कोलास्थिमज्जांजनलाजचूर्णं हिक्कां निहन्यान्मधुना च लीढम् ॥२४॥

पूतिकीट (एक प्रकारका वर्षाऋतुका कीट होता है अथवा कई ' पूतिकाष्ठ ' पाठान्तर मानते हैं पूतिकाष्ठ देवदारुका नाम) है लहसन, वच, हींग, कमलगट्टे इन्हें पीसकर इनमें शहद, मिश्री और नागकेशर मिलालेवे इसको ईखके रस तथा महुवेके रससे पीवे ॥ २१ ॥ अथवा एक पल सैंधवको दो पल घृतसे पीवे अथवा

(श्लो० २१) भावितम् अत्र मिश्रीकृतामिति ज्ञेयम् । अन्ये तु "हिंग्वब्जमाचूर्ण्य सुभावितम्" इत्यत्र 'हिग्वम्बुना चूर्ण्य सुभावितम्' इति पाठांतरमाहुः । तत्र हिग्वंबुना भावितमित्यर्थः ।

क्षुद्रश्वास ।

किंचिदारभमाणस्य यस्य श्वासः प्रवर्तते ॥
निषण्णस्यैति शांतिं च स क्षुद्र इति संज्ञितः ॥ ५ ॥

जब कोई बलका काम करने लगे तब शीघ्र ही श्वास चलने लगजावे और आरामसे बैठ जानेपर शांत होजावे उसे क्षुद्रश्वास कहते हैं ॥ ५ ॥

तमकश्वास ।

तृट्स्वेदवमथुप्रायः कण्ठो घुर्घुरिकान्वितः ॥
विशेषाद्दुर्दिने ताम्येच्छ्वासः स्यात्तमको मतः ॥ ६ ॥

जिसमें तृषा हो, पसीना आवे, वमन हो, कंठमें घुरघुर शब्द करे, विशेष करके अभ्रके दिनोंमें (सरदीसे) बढे इसे तमक श्वास कहते हैं ॥ ६ ॥

तमकश्वासकी कष्टता ।

घोषेण महताविष्टः सकासः सकफो नरः ॥
यः श्वसित्यबलोऽन्नाद्विट् सुप्तस्तमकपीडितः ॥ ७ ॥

श्वासके साथ खर्राटेकासा शब्द हो, खाँसी और कफ भी हो और बल घट जावे, अन्न नहीं भावे, और सोतेमें भी पीडा रहे ऐसा तमक श्वास कष्टकारक होता है ॥ ७ ॥

प्रतमकश्वास ।

स ताम्यति कफे हीने स्वपतश्च विवर्द्धते ॥
मूर्च्छाज्वराभिभूतस्य ज्ञेयः प्रतमकस्तु सः ॥ ८ ॥

जो कफके निकल जानेपर या शांत होनेपर कुछ शांत होजावे और सोनें (लेटने) पर बढे तथा मूर्च्छा, ज्वर ये भी हों तो उसे प्रतमकश्वास कहतेहैं ॥ ८ ॥

छिन्नश्वास ।

आध्मातो दह्यमानेन वस्तिना सरुजं नरः ॥
सर्वप्राणेन विच्छिन्नं श्वस्याच्छिन्नं तमादिशेत् ॥ ९ ॥

जिसके वस्तिस्थानमें जलन होनेसे पेट फूल जावे और वेदना भी हो, सब प्राणवायु रुक रुककर चले (अर्थात् टूट टूटकर श्वास) लेवे उसे छिन्नश्वास कहते हैं ॥ ९ ॥

महाश्वास और ऊर्द्ध्वश्वास ।

निःसंज्ञः पार्श्वशूलार्तः शुष्ककंठोऽतिघोषवान् ॥ संरब्धनेत्रस्त्वा-

---

(श्लो० १०) सरब्धनेत्रः संरंभः रागः शोफश्च ।

एकपंचाशत्तमोऽध्यायः ५१.

अथातः श्वासप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम श्वासरोगके प्रतिषेधका व्याख्यान करतेहैं ।

यैरेव कारणैर्हिक्का बहुभिः संप्रवर्तते ॥ तैरेव कारणैः श्वासो घोरो भवति देहिनाम् ॥ १ ॥ विहाय प्रकृतिं वायुः प्राणोऽथ कफसंयुतः ॥ श्वासयत्यूर्द्धगो भूत्वा तं श्वासं परिचक्षते ॥ २ ॥

जिन अनेक कारणोंसे हिक्का उत्पन्न होतीहै प्रायः उन्हीं कारणोंसे मनुष्योंके घोर श्वासरोग होजाताहै (जो विदाही, गुरु, रूक्ष भोजनादि हुचकीके कारण पहले कहेहैं उन्हींसे श्वास पैदा होताहै) ॥ १ ॥ जब अपनी प्रकृतिके विरुद्ध होकर प्राणवायु कफसे मिलके ऊर्ध्वगामी होकर श्वास उत्पन्न करता है (श्वासकी गति प्राकृतिक श्वाससे विरुद्ध होजातीहै) तब इसे श्वास रोग कहते हैं ॥ २ ॥

(वक्तव्य) हिक्कामें प्राण और उदान वायु दोनों कारण होतेहैं और श्वासमें केवल प्राणवायु ही विकृत होताहै क्योंकि हुचकीमें आमाशयमें दूषण होताहै इससे उसमें आमाशयका उदान वायु जो कंठनलका और आमाशयतक रहता है वह भी शामिल होताहै और श्वासमें हृदय अर्थात् छाती, फेफडे और श्वासनलकामें विकार होताहै आमाशयमें विकार नहीं होता इससे इसमें केवल प्राणवायु ही प्रधान है यही इन हुचकी और श्वासमें अंतर है यदि श्वास वहनेवाली नाडियाँ कफसे भरजावें या वायुसे रूक्ष खुश्क होकर उनमें खुरदराहट होजावे या वे नाडियां सुकड जावें या अधिक फैल जावें तो उनमें प्रतिलोम वायुके गमन करनेसे श्वासरोग होताहै ॥

श्वासरोगकी संख्या और पूर्वरूप ।

क्षुद्रकस्तमकश्छिन्नो महानूर्द्धश्च पंचधा ॥ भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः॥ ३ ॥ प्राग्रूपं तस्य हृत्पीडा भक्तद्वेषोऽरतिः परा ॥ आनाहः पार्श्वयोः शूलं वैरस्यं वदनस्य च ॥ ४ ॥

श्वासरोग पांच प्रकारका होता है । १ क्षुद्रश्वास, २ तमकश्वास, ३ छिन्नश्वास, ४ महाश्वास और ५ ऊर्ध्वश्वास । महाव्याधि श्वासरोग एक ही है उसीके ये पांच भेद हैं ॥ ३ ॥ इस श्वासरोगका पूर्वरूप यह है कि हृदयमें पीडा हो, भोजन नहीं भावे, अत्यंत बेचैनी रहे, पेट अफरजाया करे, पँसलियोंमें दरद रहे और मुँहका स्वाद बिगड़ जावे ॥ ४ ॥

साध्य भी होसकताहै ॥ ४ ॥ इसका भेद प्रतमकश्वास वह होताहै जिसमें मूर्च्छा और ज्वर आदि हों यह श्वास उदावर्तसे, धूलिकी धांससे, अजीर्णसे, क्लेद (थकान) से और वेगोंके रोकने आदिसे उठ आताहै और तमोगुणी (या उष्ण) पदार्थोंसे अत्यन्त बढजाताहै तथा शीतल आहार, विहारोंसे शांत होजाता है इसमें रोगी अँधेरेमें डूबाहुआसा होजाताहै इसे प्रतमकश्वास कहतेहैं (प्रयोजन यह है कि तमक कफयुक्त वायुसे होताहै और प्रतमक रूक्ष उष्ण वायुसे होताहै इसीसे तमककी औषध गरम कफनाशक और इस प्रतमककी तर और शीतल होतीहैं यही इनमें बडा अंतर है) ॥ ५ ॥ ६ ॥ ॥ इति परिशिष्ट ॥

क्षुद्रः साध्यतमस्तेषां तमकः कृच्छ्र उच्यते ॥
त्रयः श्वासा न सिध्यंति तमको दुर्बलस्य च ॥ १२ ॥

इन पांच प्रकारके श्वासोंमें क्षुद्रश्वास बहुत सुखसाध्य होताहै और तमकश्वास कृच्छ्रसाध्य है तथा छिन्नश्वास, महाश्वास और ऊर्ध्वश्वास ये तीन श्वास सिद्ध नहीं होते अर्थात् असाध्य हैं और यदि रोगी दुर्बल हो तो उसका तमकश्वास भी असाध्य ही समझिये (परंतु यह तमकश्वास बहुत समयतक (वर्षोंतक) कई मनुष्योंके रहताहै कभी दब जाताहै, कभी उठ आताहै प्रायः बुड्ढे और निर्बल आदमियोंके यही तमक या प्रतमक श्वास ही हुआ करताहै पर महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास ये प्रायः मृत्युके समय अंत्य अवस्थामें किसी रोगके उपद्रवमें होते हैं जिनसे बचना परम दुर्लभ होताहै) ॥ १२ ॥

श्वासरोगकी चिकित्साका आरंभ।

स्नेहवस्तिं विना केचिदूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् ॥
मृदु प्राणवतां श्रेष्ठं श्वासिनामादिशंति हि ॥ १३ ॥

कोई ऐसा कहतेहैं कि यदि श्वासरोगवाला बलवान् हो तो उसे मृदु (हलका) वमन और विरेचन देना श्रेष्ठ होताहै परंतु स्नेहवस्ति देना उचित नहीं ॥ १३ ॥

कासे श्वासे च हिक्कायां हृद्रोगे चापि पूजितम् ॥ घृतं पुराणं संसिद्धमभयाबिडरामठैः ॥ १४ ॥ सौवर्चलाभयाविल्वैः संस्कृतं वा नवं घृतम् ॥ पिप्पल्यादिप्रतीवापं सिद्धं वा प्रथमे गणे ॥ १५ ॥ सपंचलवणं सर्पिः श्वासकासौ व्यपोहति ॥ १६ ॥

(श्लो० १२) दुर्बलस्य तमकोपि असाध्य इत्यर्थः ।

यस्य यः श्वस्यात्स महान्स्मृतः ॥ १० ॥ मर्मस्वायम्यमानेषु श्वसन्मूढो मुहुश्च यः॥ऊर्द्ध्वप्रेक्षी हतस्वरस्तमूर्द्ध्वश्वासमादिशेत्॥११॥

जिसमें मनुष्य बेहोश हो जावे, पसलीमें शूल हो, कंठ सूख जावे, श्वासमें खर्राटेका शब्द विशेष हो, नेत्रोंमें शोथ (या सुरखी) हो और श्वास लेते समय मनुष्य ढीला होजावे (या फैल जावे सुकड जावे) उसे महाश्वास कहते हैं ॥ १० ॥ श्वास लेनेमें मर्म स्थान खिचने लगे, मूर्च्छा वार वार होकर श्वास लेवे, ऊपरको देखे और श्वासका शब्द (या बोल) झीना (मन्दा) पडजावे उसे ऊर्द्ध्वश्वास कहतेहैं ॥ ११ ॥

परिशिष्ट ।

यह श्वासरोग प्रायः वृद्धावस्थामें बहुधा मनुष्योंके हुआ करताहै इससे क्षुद्रतमकादि श्वासके विषयमें कुछ विशेष लक्षण ग्रन्थांतरसे लिखते हैं-

क्षुद्रश्वासके लक्षण ।

श्लोक-रूक्षायासोद्भवं कोष्ठे क्षुद्रवातमुदीरयन् ॥
क्षुद्रश्वासो न सोत्यर्थं दुःखेनांगप्रबाधकः ॥ १ ॥

अर्थ-रूक्षता या परिश्रमसे कोठेमें क्षुद्रवायु कुछ उदीर्ण होजाताहै जिससे क्षुद्रश्वास पैदा होताहै यह अत्यन्त दुःखसे शरीरको बाधा नहीं करताहै और सुखसाध्य है॥ १ ॥

तमक और प्रतमकके विशेष लक्षण ।

श्लोक-प्रतिलोमो यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते ॥ ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥ २॥ न चापि निद्रां लभते शयानः श्वासपीडितः ॥ आसीनो लभते सौख्यमुष्णं चैवाभिनंदति ॥ ३ ॥ मेघांबुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्द्धते ॥ स याप्यस्तमकः श्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ॥ ४ ॥ ज्वरमूर्च्छापरीतं च विद्यात्प्रतमकं भिषक् ॥ उदावर्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः ॥ ५ ॥ तमसा वर्द्धतेऽत्यर्थं शीतलैश्च प्रशाम्यति ॥ मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्प्रतमकं तु तम् ॥६ ॥

अर्थ-जब वायु प्रतिलोम होकर कफको उदीर्ण करके स्रोतों (श्वासवाही नालियों- में प्राप्त होताहै तब ग्रीवा और शिरको पकडताहै ॥२॥ रोगी सो कर निद्रा नहीं लेता, सोनेमें श्वासकी पीडा रहतीहै, बैठाहुआ (बैठा रहनेमें) कुछ सुखको प्राप्त होता है और गरम वस्तुओंसे सुख प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ मेह, पानी, शीत ऋतु या शीतलवस्तु, पूर्वकी पवन, कफकारक आहार, विहार इनसे यह बढताहै इसे तमकश्वास कहतेहैं यह याप्य (या कष्टसाध्य) होताहै अथवा नया हो तो

सौवर्चलयवक्षारकटुकव्योषचित्रकाः ॥ वचाभयाविडंगैश्च साधितं श्वासशांतये ॥ २४ ॥

सुवहा (निर्गुंडीका भेद सेफालिका), कालिका (कृष्णअगर), भारंगी, शुकशिंबी, वेतका फल, काकादनी, अदरख, साठी, दोनों कटेली ॥ २२ ॥ इन सबको दो दो टंक प्रमाण लेकर प्रस्थभर घृतमें पकावे और दूना जल डाल दे यह निवाया निवाया घृत पीना श्वासरोगको नष्ट करता है ॥ २३ ॥ अथवा काला नमक, जवाखार, कुटकी, त्रिकटु, चित्रक, वच, हरडे और वायविडंग इनसे सिद्ध कियाहुआ घृत भी श्वासरोगको शांत करता है ॥ २४ ॥

गोपवल्ल्युदके सिद्धं स्यादन्यद्द्विगुणे घृतम् ॥ तालीसतामलक्यु-ग्राजीवंतीकुष्ठसैंधवैः ॥ २५ ॥ विल्वपुष्करपूतीकसौवर्चलकणा-ग्निभिः ॥ पथ्यातेजोवतीयुक्तैः सर्पिर्जलचतुर्गुणम् ॥ २६ ॥ हिंगु-पादयुतं सिद्धं सर्वश्वासहरं परम् ॥ पंचैतानि हवींष्याहुर्भिषजः श्वासकासयोः ॥ २७ ॥

गोपवल्ली (सारिवा) के दुगुने क्वाथमें सिद्ध किया घृत श्रेष्ठ है अथवा तालीसपत्र, तामलकी (भूम्यामलकी), वच, जीवंती, कूट, सैंधानमक ॥ २५ ॥ बिल्व, पुष्करमूल, पूतिकरंज, कालानमक, पीपल, चित्रक, हरडे, तेजवती ये सब लेकर चौगुने पानीमें घृत पकावे और एक औषधसे चौथाई हींग डाल दे यह घृत ॥ २६ ॥ सब प्रकारके श्वासरोगको नष्ट करता है ये पूर्व कहेहुए पांचों घृत वैद्योंने श्वास और खांसीपर श्रेष्ठ कहे हैं ॥ २७ ॥

वासाघृतं कट्फलं च घृतं चात्र हितं भवेत् ॥ २८ ॥
तैलं दशगुणे सिद्धं भृंगराजरसे शुभे ॥
सेव्यमानं यथान्यायं श्वासकासौ व्यपोहति ॥ २९ ॥

तथा वासा (अडूसा) का सिद्ध किया घृत अथवा कायफलसे सिद्ध किया घृत भी श्वासरोगमें हित होता है ॥२८॥ अथवा दशगुने भंगरेके रसमें सिद्ध किया तैल भी यथोचित रीतिसे सेवन किया हुआ श्वास और खांसीको दूर करता है ॥२९॥

फलाम्ला विष्किररसाः स्निग्धाः प्रव्यक्तसैंधवाः ॥
एणादीनां शिरोभिर्वा कौलत्था वा सुसंस्कृताः ॥
हन्युः श्वासं च कासं च संस्कृतानि पयांसि च ॥ ३० ॥

खाँसीमें, श्वासमें और हुचकी इन रोगोंमें पुराना घृत पीना श्रेष्ठ है जो हरडे बिडनमक और हींग इनसे सिद्ध कियाहुआ होवे ॥ १४ ॥ अथवा नया घृत सौंचरनमक, हरड़े, बिल्व इनसे सिद्ध किया हो वह भी श्रेष्ठ है अथवा पिप्पल्यादिगणका प्रतीवाप देकर प्रथमगण (विदारिगन्धादि) से सिद्ध किया होवे ॥ ॥ १५ ॥ अथवा पांचों लवणयुक्त घृत सेवन करना श्वास और खाँसी दोनोंमें श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥

हिंस्राविडंगपूतीकत्रिफलाव्योषचित्रकैः ॥ द्विक्षीरं साधितं सर्पिश्चतुर्गुणजलान्वितम् ॥ १७ ॥ कोलमात्रः पिबेत्तद्धि श्वासकासौ व्यपोहति ॥ अर्शांस्यरोचकं गुल्मं शकृद्भेदं क्षयं तथा ॥ १८ ॥

हिंस्रा (बालछड, कोई हींसवृक्षको बताते हैं), विडंग, पूतिकरंज, त्रिफला, त्रिकटु, चित्रक इनमें दुगुना दूध चौगुना पानी डालकर घृत साधन करे ॥ १७ ॥ इसमेंसे कोलप्रमाण पान करनेसे श्वास, खाँसी, बवासीर, अरुचि, गुल्म, विडभेद तथा क्षय इतने रोग नष्ट होते हैं ॥ १८ ॥

कृत्स्ने वृषकषाये वा पचेत्सर्पिश्चतुर्गुणे ॥ तन्मूलकुसुमावापं शीतं क्षौद्रेण योजयेत् ॥ १९ ॥ शृंगीमधुरिकाभार्ङ्गीशुंठीतार्क्ष्यसितांबुदैः ॥ सहरिद्रैः सयष्ट्याह्वैः समैरावाप्य योगतः ॥ २० ॥ घृतप्रस्थं पचेद्धीमाञ्छीततोये चतुर्गुणे ॥ श्वासं कासं तथा हिक्कां सर्पिरेतन्नियच्छति ॥ २१ ॥

समस्त अडूसेका क्काथ चौगुना डालकर उसमें घृत पकावे और उसमें अडूसेके फूल और जड भी डाल दे फिर ठंढा करके शहदके संग पीवे ॥ १९ ॥ अथवा काकड़ासींगी, मधुरिका (एक प्रकारकी) घास भारंगी, सोंठ, रसोत, मिश्री, नागरमोथा, हलदी और मुलेठी सब समान भाग लेकर कूटकर डाले और चौगुना पानी ठंढा डाले इसमें एक प्रस्थ घृत पकाले यह घृत श्वास, खांसी और हुचकी इनको दूर करता है ॥ २० ॥ २१ ॥

सुवहा कालिका भार्ङ्गी शुकाख्या नैचुलं फलम् ॥ काकादनीं शृंगबेरं वर्षाभूं बृहतीद्वयम् ॥ २२ ॥ कोलमात्रैर्घृतप्रस्थं पचेदेभिर्जलार्द्धकम् ॥ कदुष्णं पीतमेतद्धि श्वासामयविनाशनम् ॥ २३ ॥

(श्लो० २२) सुवहा निर्गुंडीभेदः । कालिका कृष्णागुरुः मांसी वा (इति श० स्ता०)
(श्लो० २३) जलार्द्धकं द्विगुणजलमित्यर्थः (इति नि० सं०)

सप्तच्छद (छतौना) के फूल और पीपल इन्हें, चूर्ण कर दहीके जलसे पीवे अथवा शहदसे मिलाकर जौकी धानी चावे ॥ ३४ ॥ अथवा आकके कोमल पत्तोंके रसकी जवोंमें भावना देकर उनके सत्तू आदि अनेक पदार्थ शहद मिलाके श्वास रोगवाला पीवे ॥ ३५ ॥ अथवा शिरस, केला और कुंद इनके फूल, पीपल मिलाकर चावलोंके पानीसे पीवे यह सब प्रकारके श्वास रोगोंको जीत लेताहै ॥ ३६ ॥

कोलमज्जस्तालमूलमृष्यचर्ममसीमपि ॥ लिह्यात्क्षौद्रेण भार्ङ्गीं वा सर्पिर्मधुसमायुताम् ॥ ३७ ॥ निंबैः कदंबबीजं वा सक्षौद्रं तंडुलांबुना ॥ द्राक्षां हरीतकीं कृष्णां कर्कटाख्यां दुरालभाम् ॥ सर्पिर्मधुभ्यां विलिहन्हंति श्वासान्सुदारुणान् ॥ ३८ ॥

बेरका गूदा (या बेरकी मींगी), तालमूली (मुशली), ऋष्य (एक भांतिके मृग) के चर्मकी स्याही इन्हें शहदसे चाटे अथवा भारंगीको शहद और घृत मिलाके चाटे ॥ ३७ ॥ नींब और कदंबके बीज शहद मिलाके चावलोंके पानीसे पीवे (कई "नीपं" पाठांतर मानते हैं–नीप पके कदंबबीजको कहते हैं) तथा मुनक्का, हरडे, पीपल, काकड़ासींगी और जवासा इन्हें घृत और शहदके साथ चाटे यह दारुण श्वासरोगोंको नष्ट करताहै ॥ ३८ ॥

हरिद्रां मरिचं द्राक्षां गुडं रास्नां कणां शठीम् ॥ लिह्यात्तैलेन तुल्यानि श्वासार्तो हितभोजनः ॥ ३९ ॥ गवां पुरीषस्वरसं मधुमागधिकायुतम् ॥ लेहः श्वासेषु कासेषु वाजिनां वा शकृद्रसः ॥४०॥ पांडुरोगेषु शोथेषु ये योगाः संप्रकीर्तिताः ॥ श्वासकासापहास्तेपि कासघ्ना ये च कीर्तिताः ॥ ४१ ॥ भार्ङ्गीत्वक्त्र्यूषणं तैलं हरिद्रां कटुरोहिणीम् ॥ पिप्पलीं मरिचं चंडां गोशकृद्रसमेव च ॥ ॥४२॥ तलकोटस्थं बीजेषु पचेदुत्कारिकां शुभाम् ॥ सेव्यमानानि हंत्येषां श्वासानाशु सुदुस्तरान् ॥ ४३ ॥

हलदी, मिरच, दाख, गुड, रास्ना, पीपल, कचूर इनको समान भाग लेकर पांसे और तैलमें मिलाकर चाटे और हित भोजन करे ॥ ३९ ॥ गौके गोबरका

(श्लो० ३८) निंबैः कदंबबीजं वा इति–निंबैर्निंबबीजं कदंबबीजं च क्षौद्रयुतं तंडुलांबुना पीतम् । अथवा 'निंबैः' इत्यत्र 'नीपं' इति पाठांतरम् । तत्र नीपं पक्वं कदंबबीजम् ।

फलोंकी खटाईसे युक्त स्निग्ध और सैंधवसे नमकीन बनायेहुए विष्किर (जीवों लवादि) के मांसके रस देने श्रेष्ठ हैं अथवा हिरन इत्यादिके शिरके रस अथवा कुलथीके रस संस्कार किये (बघार दिये हुए) श्वास और कासको नष्ट करते हैं तथा वायुनाशक द्रव्योंसे संस्कार कियेहुए दूध भी श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥

तिनिशस्य च बीजानि कर्कटाख्या सुवर्चिका दुरालभाऽथ पिप्पल्यः कटुकाख्या हरीतकी ॥ ३१ ॥ श्वाविन्मयूररोमाणि कोला मागधिका कणा ॥ भार्ङ्गीत्वक्छृंगबेरं च शर्करा शल्लकांगजम् ॥ ॥ ३२ ॥ त्रिकंटकस्य बीजानि चूर्णितानि तु केवलम् ॥ पंच श्लोकार्द्धिकास्त्वेते लेहा ये सम्यगीरिताः ॥ सर्पिर्मधुभ्यां ते लेह्याः कासश्वासार्दितैर्नरैः ॥ ३३ ॥

१ योग-तिनिश वृक्षके बीज, काकडासिंगी और सज्जीखार । तथा २ जवासा, पीपल, कुटकी और हरडेकी छाल ॥ ३१ ॥ तथा ३ सेहके कांटे और मोरके पंख (ये भस्म किये), कोल (बेर, डल्लनमिश्रजी चव्य कहते हैं), मागधिका कणा (छोटी पीपल) । तथा ४ भारंगी, तज, अदरख, खांड, शल्लका (शालवृक्ष) और गज (नागकेशर) (कई शल्लकांगज शालका निर्यास मानते हैं) ॥ ॥ ३२ ॥ तथा ५ केवल देशी गोखरूके बीज कूट लेवे ये पांच प्रयोग आधे २ श्लोकसे कहे गये हैं ये शहद और घृत मिलाकर श्वा खांसीके रोगियोंको चाटने चाहिये ॥ ३३ ॥

श्वासके अन्य प्रयोग ।

सप्तच्छदस्य पुष्पाणि पिप्पलीश्चापि मस्तुना ॥ पिबेत्संचूर्ण्य मधुना धानाश्चाप्यथ भक्षयेत् ॥ ३४ ॥ अर्काङ्कुरैर्भावितानां यवानां साध्वनेकशः ॥ तर्पणं वा पिबेदेषां सक्षौद्रं श्वासपीडितः ॥३५॥ शिरीषकदलीकुंदपुष्पं मागधिकायुतम् ॥ तंडुलांबुयुतं पीत्वा जयेच्छ्वासानशेषतः ॥ ३६ ॥

(श्लो० ३२) श्वाविन्मयूररोमाणि इति-सजारुजीवस्य । सेह इति ख्यातस्य । कटकानि तथा मयूरपिच्छानि तानि भस्मीकृतानि ग्राह्याणि । कोला बदराणि । डल्लनमते तु कोला चव्यम् । मागधिका कणा । मगधोद्भवा पिप्पली । शल्लकागजं शल्लकावृक्षनिर्यासम् । केचित् शल्लकांगजम् इति पठित्वा शल्लका शल्लकी । गजं नागकेशरम् (इति नि० सं०) (श्लो० ३४) धानाः भर्जितयवाः । तदुक्तं भावमिश्रेण-"यवास्तु निस्तुषा भृष्टाः स्मृता धाना इति स्त्रियाम् ॥"

रस्नायुत्वक्समस्तं गवामपि ॥४९॥ तुरुष्कशल्लकीनां च गुग्गुलोः पद्मकस्य च॥ एते सर्वे ससर्पिष्का धूमाः कार्या विजानता ॥५०॥

जब जाने कि रोगी स्नेहनसे स्निग्ध होगया तब मांसरस और भातसहित भोजन करावे और वायु, कफ तथा विबंध हो तो वैद्य धूम (धूमपान) का उपयोग करावे ॥ ४७ ॥ मैनसिल, देवदारु, हलदी, पत्रज, गूगल, लाख और रक्तएरंडकी जड़ इनकी विधिपूर्वक बत्ती बनावे ॥ ४८ ॥ अथवा नवीन घृत, मोम, शालका गोंद इनकी बत्ती बनाके धूमपान करे तथा गौके सींग, बाल, खुर, स्नायु और त्वचा इनको उपयुक्त करे ॥ ४९ ॥ तथा तुरुष्क (श्रीवास) और शल्लकीवृक्ष, गूगल और पद्माख ये सब लेकर घृत मिलाकर जानकार वैद्य धूमपान करावे ॥ ५० ॥

बलीयसि कफग्रस्ते वमनं सविरेचनम् ॥
दुर्बले चैव रूक्षे च तर्पणं हितमुच्यते ॥
जांगलैर्धन्वजैर्मांसैरानूपैर्वा सुसंस्कृतैः ॥ ५१ ॥

यदि बलवान् रोगीको कफ ग्रस्त करले (कफ बढजावे, श्वास हो) तो उसे वमन करावे और विरेचन देवे और जो रोगी दुर्बल और रूक्ष हो तो उसे जंगली जीवों या दुंबेके मांसके रसोंसे या जलकिनारेके जीवोंके मांसरससे जिनमें संस्कार दियाहुआ हो उनसे तर्पण करना हित होताहै ॥ ५१ ॥

निदिग्धिकां चामलकप्रमाणां हिंग्वर्द्धयुक्तां मधुना सुयुक्ताम् ॥
लिहन्नरः श्वासनिपीडितो हि श्वासं जयत्येव बलात्र्यहेण ॥५२॥
यथाग्निरिद्धः खलुकाष्ठसंघैर्वज्रं यथा वा सुरराजमुक्तम् ॥
रोगास्तथैते खलु दुर्निवाराः श्वासश्च कासश्च विलंविका च ॥५३ ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायामेकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

आँवलेके बराबर छोटी कटेली पीसले और उसमें आधी हींग मिलावे इसे शहदके संग चाटे तो श्वाससे पीडित रोगी तीन दिनमें बलपूर्वक श्वासरोगको जीतलेवे॥५२॥ जैसे लकडीके ढेरमें प्रविष्ट हुआ अग्नि और इंद्रका छोड़ा हुआ वज्र दुर्निवार होते हैं उसी भांति ये श्वास, कास और विलंबिका रोग भी निश्चय ही दुर्निवार होतेहैं ॥५३॥

यूनानीवाले श्वासरोगको "रबू" कहते हैं और साधारण लोग इसे "दमा" कहते हैं ॥ डाक्टरीमें इसे "अस्थमा" (Asthma) कहते हैं और एक प्रकारके श्वास रोगको "इमपाइजिमा" (Impiejima) भी कहते हैं ॥

इति प० मुरलीधरवि० सुश्रुतस० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायामेकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

रस शहद और पीपल मिलाके श्वास और खांसीमें चाटे अथवा घोडेकी लीदका रस शहद और पीपल मिलाके चाटे ॥ ४० ॥ जो प्रयोग पांडुरोगमें तथा शोथमें कहे हैं वे श्वास और खांसीमें भी हित होतेहैं तथा खांसीके प्रयोग भी श्वासमें हित होतेहैं ॥ ४१ ॥ तथा भारंगी, तज, त्रिकटु, तैल, हलदी, कुटकी, पीपल, मिरच, चंडा (चोरक गन्धद्रव्य) और गोबरका रस इनका लेह चाटे ॥ ४२ ॥ तलकोट (कोई ताड बतातेहैं पर ठीक पता नहीं) के बीजोंकी लप्सी बनाकर सेवन करनेसे दुस्तर श्वास शीघ्र नष्ट होजातेहैं (तलकोटके विषयमें डल्हनमिश्र-जीने कुछ भी नहीं लिखा परन्तु कई चिलगोजे बतातेहैं और यह ठीक भी जचता-है, कोई खसखसको ही तलकोट बीज मानतेहैं और इसका हलवा फायदा भी करताहै ॥ ४३ ॥

श्वासमें पथ्य और स्नेहस्वेदादि ।

पुराणसर्पिः पिप्पल्यः कौलत्था जांगला रसाः ॥ सुरा सौवीरकं हिंगु मातुलुंगरसो मधु ॥ ४४ ॥ द्राक्षामलकबिल्वानि शस्तानि श्वासहिक्किनाम् ॥ श्वासहिक्कापरिगतं स्निग्धैः स्वेदैरुपाचरेत् ॥ ॥ ४५ ॥ युक्तैर्लवणतैलाभ्यां तैरस्य ग्रथितः कफः ॥ स्वस्थो विल-यनं याति मारुतश्चास्य शाम्यति ॥ ४६ ॥

पुराना घृत, पीपल, कुलथीके रस, जंगली जीवोंके मांसरस, सुरा नामक मद्य, सौवीर (एक प्रकारकी कांजी), हींग, नींबूका रस और शहद ॥ ४४ ॥ मुनक्का (या किसमिस या अंगूर), आंवले, बिल्व ये श्वास और हुचकीवालोंको हितकारक होते हैं और जिसे श्वास और हिक्काका रोग हो उसे स्नेहन कराके स्वेद करावे ॥ ४५ ॥ और तैलमें सेंधानमक मिलाकर इसका उपयोग स्नेहनार्थ करे इससे उनका जमाहुआ नालियोंमें स्थित हुआ कफ विलायमान (अर्थात पतला) होजाताहै और निकलजाताहै तथा वायु भी शांत होजाताहै ॥ ४६ ॥

स्निग्धं ज्ञात्वा ततश्चैवं भोजयित्वा रसौदनम् ॥ वातश्लेष्म-विबंधो वा भिषग्धूमं प्रयोजयेत् ॥ ४७ ॥ मनःशिलादेवदारु-हरिद्राच्छदनामिषैः ॥ लाक्षोरुबूकमूलैश्च कृत्वा वर्तीर्विधानतः ॥ ॥ ४८ ॥ सर्पिर्नवमधूच्छिष्टं शालनिर्यासजं तथा ॥ शृंगबालखु-

(श्लो० ४८) मनःशिलादिभ्यः विधानतः पूर्वोद्दिष्टविधानात् वर्तीः कृत्वा भिषक् धूमं प्रयोजये-दित्यन्वयः । उरुबूकः रक्तैरण्डस्तस्य मूलैः ।

वह कास पांच प्रकारका होता है–वातज, पित्तज और कफज तथा क्षतज (घावसे या चोट लगनेसे) और क्षयसे इसे वैद्योंने ऐसे पांच भांतिका कहा है यह खांसी रोग बढजानेपर राजयक्ष्मा और उरःक्षत जैसे बडे २ भयंकर विकार पैदा कर देता है ॥ ४ ॥

कासका पूर्वरूप।

भविष्यतस्तस्य तु कंठकंडूर्भोज्योपरोधो गलतालुलेपः ॥
स्वशब्दवैषम्यमरोचकोऽग्निसादश्च लिंगानि भवंत्यमूनि ॥ ५ ॥

जब यह कास रोग होनेवाला होता है तब पूर्वरूपमें ये लक्षण होते हैं-कंठमें खाजसी होना, भोजन कुछ २ रुकना, गल और तालुमें लेपसा रहना, अपनी आवाज विगड़ जाना (भारी या खखराईसी होना), अरुचि और अग्निमंदता ॥ ५ ॥

वातकी खाँसीके लक्षण।

हृच्छंखमूर्द्धोदरपार्श्वशूली क्षामाननः क्षीणबलस्वरौजाः ॥
प्रसक्तवेगश्च समीरणेन कासेत्तु शुष्कं स्वरभेदयुक्तः ॥ ६ ॥

हृदय, कनपटी, शिर और पँसवाडोंमें दरद हुआ करे, मुखकी कांति विगड-जावे, बल, ओज और स्वर ये क्षीण होजावें और ठहर ठहरके खांसीका वेग उठे और सूखी खांसी हो, अवाज बैठजावे ये लक्षण वायुकी खांसीके होतेहैं ॥६॥

पित्तकी खाँसीके लक्षण।

उरोविदाहज्वरवक्त्रशोषैरभ्यर्दितस्तिक्तमुखस्तृषार्तः ॥
पित्तेन पीतानि वमेत्कटूनि कासेत्सपांडुः परिदह्यमानः ॥ ७ ॥

पेट और छातीमें जलन रहे, ज्वर होआवे, मुँह सूखा रहे और चरपरापन मालूम दे, तृषा ज्यादा हो तथा खांसीमें कभी पीला पीला चरपरासा पित्त गिरे, चेहरा पीला मालूम पडे और गरमी रहे ये लक्षण पित्तकी खांसीके होते हैं ॥ ७ ॥

कफकी खाँसीके लक्षण।

विलिप्यमानेन मुखेन सीदञ्छिरोरुगार्तः कफपूर्णदेहः ॥
अभक्तरुग्गौरवसादयुक्तः कासेद्भृशं सांद्रकफः कफेन ॥ ८ ॥

मुख लिपासा रहे, थकान (शिथिलता) हो, शिरमें दरद हो, शरीर कफसे भरासा मालूम हो, अरुचि हो, भारीपन और ग्लानि हो, गाढा कफ खांसनेसे आवे ये लक्षण कफकी खांसीके हैं ॥ ८ ॥

(श्लो० ५) भोज्योपरोध इति–भोज्यस्य ग्रासस्य कंठे रोध इत्यर्थः। अथवा भोज्यस्य उपरोधः आकांक्षाराहित्यम् अरुचिः इत्यर्थश्च।

द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ५२.

अथातः कासप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः।

यहांसे अगाडी अब हम कासप्रतिषेध नामक अध्यायका व्याख्यान करते हैं।

उक्ता ये हेतवो नृणां रोगयोः श्वासहिक्कयोः ॥
कासस्यापि हि ते ज्ञेयास्त एवोत्पत्तिहेतवः ॥ १ ॥

जो हेतु मनुष्योंके श्वास रोग और हुचकीके पहले हमने वर्णन किये हैं प्रायः वेही कास (खांसी) रोगके भी हेतु होते हैं (अर्थात जिन विदाहभोजनादिसे श्वास और हुचकी पैदा होती है उन्हींसे प्रायः खांसी पैदा होजाया करतीहै ॥१॥

खाँसीके तात्कालिक कारण और संप्राप्ति।

धूमोपघाताद्रजसस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च ॥
विमार्गगत्वादपि भोजनस्य वेगावरोधात्क्षवथोस्तथैव॥ २ ॥
प्राणो ह्युदानानुगतः प्रदुष्टः संभिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः ॥
निरेति वक्त्रात्सहसा सदोषः कासः स विद्भिर्द्विरुदाहृतस्तु ॥ ३॥

धुवां लगनेसे, धूलिसे (धुवां और धूलि श्वासके साथ कंठकी श्वासनलकामें घुसजानेसे), परिश्रम करनेसे, रूखा अन्न विशेष खानेसे तथा भोजन (पानादि) विपरीत मार्गमें (श्वासकी नालीमें) चलेजानेसे, वेग (मल, मूत्रके) तथा छींकके वेग रोकनेसे ॥ २ ॥ प्राणवायु उदानके अनुगत होकर दूषित होजाता है तब फूटे कांसेकेसा (धों धों या खां खां) शब्द दोष सहित (कफवायुसहित) मुँहसे निकलता है इसे वैद्य कास (खांसी) कहते हैं ॥ ३ ॥

(वक्तव्य) तत्कालमें धुवां, धूलि आदि या भोजन, पानी, आदि श्वासनलकामें चले जाने आदिसे जो खांसी आजाती है उसे धांस कहते हैं और यह शीघ्र अच्छी होजाती है परंतु जो आरम्भके हेतुओं (श्वास और हिक्काके कारणों विदाहिभोजनादि) से कासरोग (खांसी) होता है वह तत्काल ही शांत नहीं होता-है इस पूर्वोक्त श्लोकसे श्वास और आहारके मार्ग जुदे जुदे स्पष्ट मालूम होते हैं-देखो हमारे शारीरक स्थानके आरम्भके चित्र ॥

कास रोगकी संख्या।

स वातपित्तप्रभवः कफाच्च क्षतात्तथाऽन्यः क्षयजोऽपरश्च ॥
पंचप्रकारः कथितो भिषग्भिर्विवर्द्धितो यक्ष्मविकारकृत्स्यात् ॥ ४ ॥

घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयो मलाः ॥
कुपिताः क्षयजं कासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम् ॥ १४ ॥

विषम भोजनसे, असात्म्य (बेमाफकतके) भोजनसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे, वेगोंके रोकनेसे, अत्यन्त घृणा करनेसे और शोच करनेसे मनुष्योंकी जठराग्निमें विकार होजाता है जिससे फिर वायु, पित्त, कफ ये तीनों दोष कुपित होके क्षयज कास पैदा करते हैं यह क्षयज कास देहका क्षय करनेवाला होताहै (अर्थात् विषम भोजनादिसे जब जठराग्नि बिगडजातीहै तब रस ठीक नहीं बनता और जब रस नहीं बनता तब रुधिर आदि सब शुक्र पर्यन्त धातुओंमें क्षय पैदा होजाताहै जिससे क्षयज खाँसी पैदा होती है यह खाँसी विशेष करके वीर्यक्षयमें होतीहै) ॥ १४ ॥

क्षयजकासके लक्षण।

स गात्रशूलज्वरदाहमोहान्प्राणक्षयं चोपलभेत कासी ॥
शुष्कं विनिष्ठीवति दुर्बलस्तु प्रक्षीणमांसो रुधिरं सपूयम् ॥ १५ ॥

इस क्षयज खाँसीसे रोगीके शरीरमें शूल, ज्वर, दाह, मोह ये होतेहैं और इस खाँसीवालेका बल क्षीण होजाताहै, दुर्बल होकर सूखे झागसे थूँकताहै और जब मांस क्षीण होने लगे तब पीच मिला रुधिर खखारमें आताहै ॥ १५ ॥

तं सर्वलिंगं भृशदुश्चिकित्स्यं चिकित्सितज्ञाः क्षयजं वदंति ॥
वृद्धत्वमासाद्य भवत्यथो वै याप्यं तमाहुर्भिषजस्तु कासम् ॥ १६ ॥

यह क्षयज खाँसी सब दोषोंसे होतीहै इसमें सब दोषोंके लक्षण होतेहैं इससे इसे वैद्य दुश्चिकित्स्य कहतेहैं और जब यह वृद्धत्वको प्राप्त होकर होतीहै तब इसे वैद्य याप्य कहतेहैं ॥ १६ ॥

खाँसीके सामान्य प्रयोग।

शृंगीवचाकट्फलकत्तृणाब्दधान्याभयाभार्ङ्ग्यमराह्वविश्वम् ॥
उष्णांबुना हिंगुयुतं तु पीत्वा बद्धास्यमप्याशु जहाति कासम् ॥ १७ ॥
फलत्रिकव्योषविडंगशृंगीरास्नावचापद्मकदेवकाष्ठैः ॥
लेहः समैः क्षौद्रसिताघृताक्तः कासं निहन्यादचिरादुदीर्णम् ॥ १८ ॥
पथ्यां सितामामलकानि लाजां समागधीं चापि विचूर्ण्य शुंठीम् ॥
सर्पिर्मधुभ्यां विलिहीत कासी ससैंधवां कोष्णजलेन कृष्णाम् ॥ १९ ॥

(श्लो० १४) यद्यपि सामान्यक्षयशब्देन रसादिक्षयः प्राप्तस्तथाऽप्यत्र शुक्रक्षयो ग्राह्यः (इति नि० सं०).

क्षतज कास ।

वक्षोऽतिमात्रं विहतं च यस्य व्यायामभाराध्ययनाभिघातैः ॥
विश्लिष्टवक्षाः स नरः सरक्तं ष्ठीवत्यभीक्ष्णं क्षतजः स उक्तः ॥ ९॥

परिश्रम करनेसे, ज्यादे बोझा उठानेसे, बहुत चिल्लाकर पढनेसे, चोट आदिके लगनेसे, जिसके वक्षःस्थल (छाती फेफडों) को पीडा (सदमा) पहुँचे और उनमें क्षत (जखम) होजावे तब मनुष्यके खांसनेमें रुधिर मिला कफ विशेष आवे यह क्षतज कास (खांसी) कहलाता है ॥ ९ ॥

अतिव्यवायभाराध्वयुक्ताश्वगजविग्रहैः ॥ रूक्षस्योरःक्षतं वायु-
र्गृहीत्वा कासमावहेत् ॥ १० ॥ स पूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्ठी-
वेत्सशोणितम् ॥ कंठेन रुजताऽत्यर्थं विभिन्नेनेव चोरसा ॥११॥
सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना ॥ दुःखस्पर्शेन शूलेन
भेदपीडाभितापिना॥१२॥पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्यपीडितः ॥
पारावत इवाकूजन्कासवेगात्क्षतोद्भवात् ॥ १३ ॥

अत्यन्त मैथुन करनेसे, बोझा उठानेसे, मार्ग अधिक चलनेसे, घोडे, हाथी आदिके संग बल करनेसे, रूखे मनुष्यके उर (छाती फेफडों) को वायु कडा करके उसमें जखम डाल देताहै जिससे खाँसी आतीहै ॥ १० ॥ पहले (जबतक जखम न पडे किंतु छातीके फेफडोंमें कडापन या सूजन हो) मनुष्यको सूखी खाँसी रहतीहै और फिर छाती फेफडोंमें जखम होजावे तब मनुष्यके खखारके संग रुधिर आने लगताहै, कंठमें वेदना (खुरदराहटसी) होतीहै और छातीमें चीरनेकेसी पीडा मालूम पडती है ॥ ११ ॥ तथा सूई चुभनेकेसी तीक्ष्ण पीडा और शूल होताहै और इतनी वेदना हो कि हाथ नहीं लगाया जावे (या शूल सही न जावे), भेदन, पीडा और अभिताप (घबराहट) ये भी हों ॥ १२ ॥ संधि (जोड जोड) दूखें, ज्वर हो, श्वास होजावे, तृषा अधिक हो, स्वर विगड-जावे जिससे मनुष्य कबूतरकी तरह कुडकुडावे ये सब क्षतज कासमें होतेहैं ॥१३॥

(वक्तव्य) इसीप्रकार डाक्टरलोग खांसीसे "न्यूमोनिया" होजाना कहतेहैं उसमें (न्यूमोनियामें) प्रायः सब ये ही लक्षण होतेहैं ॥

क्षयज खाँसी ।

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात् ॥

(श्लो० ९) विश्लिष्टवक्षाः विदीर्णवक्षःस्थल इति ।

पीवे अथवा दंती और द्रवंतीको चौथाई लोध मिलाकर गरम पानीसे पीवे अथवा वेरीके पत्तोंको घृतमें भूनकर सेंधानमक मिलाके खावे ॥ २३ ॥ अथवा कोल प्रमाण हींगको सौवीर (कांजी) से या अम्लरससे पीवे (इस समय इसकी मात्रा कम लेनी चाहिये-चने बराबर ही बहुत है) अथवा काली मिरचोंको शहदके संग चाटे अथवा भारंगी, वच और हींग इनकी बत्ती बनाकर धूमपान करे, कई ऐसा अर्थ करते हैं कि इनकी गोली बनाकर खावे) ॥ २४ ॥

खाँसीमें धूमपान ।

धूमे प्रशस्ता घृतसंप्रयुक्ता वेणुत्वगेलालवणैः कृता च ॥ २५ ॥
मुस्तेंगुदीत्वङ्मधुकाह्वमांसीमनःशिलालैश्छेगलांबुपिष्टैः ॥
विधाय वर्तीः स पयोनुपानं धूमं पिबेद्वातबलासकासी ॥ २६ ॥

बाँसकी छाल, इलायची, नमक इनकी बत्ती बना घृत मिलाके अथवा नागरमोथा, हिंगोट, तज, मुलेठी, जटामांसी, मैनसिल और हरताल इन्हें बकरेके मूत्रमें पीसकर बत्ती बनाके (घृत चुपडकर) धूमपान करे और ऊपरसे दूध पीवे यह धूमपान वायु और कफकी खांसीमें श्रेष्ठ है ॥ २५ ॥ २६ ॥

पिबेच्च सीधुं मरिचान्वितं वा तेनाशु कासं शममभ्युपैति ॥
द्राक्षांबुमंजिष्ठसुराह्वयाभिः क्षीरं शृतं माक्षिकसंप्रयुक्तम् ॥ २७॥
निदिग्धिकानागरपिप्पलीभिः खादेच्च मुद्गान्मधुना सुसिद्धान् ॥
उत्कारिकां सर्पिषि नागराढ्यां पक्त्वा समूलैस्त्रुटिकोलपत्रैः ॥
एभिर्निषेवेत्कृतां च पेयां तन्वीं सुशीतां मधुना विमिश्राम्॥२८॥

अथवा सीधु (मद्य) को काली मिरच मिलाके पीवे इससे शीघ्रही खांसी (कफकी खांसी) शांत होजाती है अथवा मुनक्का, नेत्रवाला, मँजीठ और देवदारु इनसे दूध पकाकर उसमें शहद मिलाके पीवे ॥ २७ ॥ अथवा छोटी कटेली, सोंठ, पीपल इनके काथसे मूँग पकाकर शहदके संग खावे अथवा सोंठ और पीपलामूल, इलायची और कोलपत्र (पत्रज) (कई बेरीके पत्ते कहते हैं) इनके योगसे हलवा बनाकर खावे अथवा ये ही डालकर पतली पेया बनावे उसे ठंढी करके शहद मिलाके पीजावे (लप्सी या पेया गोधूमादि धान्यों या तंडुलादिकी यथायोग्य बनावे उसमें पूर्वोक्त औषधोंका योग कर दे) ॥ २८ ॥

काकड़ासींगी, वच, कायफल, कतृण (एक प्रकारकी घास, कई रोहिष तृण बताते हैं), नागरमोथा, धनियां, हरडे, भारंगी, देवदारु और सोंठ इनमें हींग मिलाके गरम पानीके संग पीवे इससे बहुत दिनकी खांसी भी शीघ्र जाती रहे ॥ ॥ १७ ॥ अथवा त्रिफला, त्रिकटु, विडंग, काकड़ासींगी, रास्ना, वच, पद्माख और देवदारु इन सबको समान भाग लेकर शहद, मिश्री और घृत मिलाकर अवलेह बनावे यह बढी हुई खांसीको भी शीघ्र नष्ट करता है ॥ १८ ॥ तथा हरडे, मिश्री, आंवले और धानकी खील इन्हें घृत और शहद मिलाके चाटे अथवा पीपल और सोंठ मिलाके घृत, शहदसे चाटे अथवा पीपल, सैंधानमक इन्हें गरम पानीसे लेवे ॥ १९ ॥

खादेद्गुडं नागरपिप्पलीभ्यां द्राक्षां च सर्पिर्मधुनावलिह्यात् ॥
द्राक्षां सितां मागधिकां च तुल्यां सशृंगवेरं मधुकं तुगां च॥२०॥
लिह्याद्घृतक्षौद्रयुतां समांशां सितोपलां वा मरिचांशयुक्ताम् ॥
धात्रीकणाविश्वसितोपलाश्च संचूर्ण्य मंडेन पिबेच्च दध्नः ॥ २१ ॥

अथवा सोंठ और पीपल, गुड (पुराने गुड) में मिलाके खावे अथवा मुनक्काको घृत और शहदके संग पीसके चाटे अथवा मुनक्का, मिश्री, पीपल इन्हें समान भाग लेकर या अदरख, मुलेठी, वंशलोचन इन्हें लेके शहद और घृतसे चाटे ॥ २० ॥ अथवा शहद, घृत, मिश्री इनमें चौथाई मिरच मिलाके चाटे अथवा आंवले, पीपल, सोंठ, मिश्री इन्हें पीस चूर्ण बना दहीके मांडसे पीवे ॥ २१ ॥

हरेणुकां मागधिकां च तुल्यां दध्नां पिबेत्कासगदाभिभूतः ॥
उभे हरिद्रे सुरदारु शुंठीं गायत्रिसारं च पिबेत्समांशम् ॥ २२ ॥
वस्तस्य मूत्रेण सुखांबुना वा दंतीं द्रवंतीं च सतिल्वकांशाम् ॥
भृष्टानि सर्पिष्यथ बादराणि खादेत्पलाशानि ससैंधवानि ॥ २३ ॥
कोलप्रमाणं प्रपिबेद्धि हिंगु सौवीरकेणाम्लरसेन वापि ॥
क्षौद्रेण लिह्यान्मरिचानि वाऽपि भार्ङ्गीवचाहिंगुकृता च वर्तिः२४॥

हरेणुका, पीपल इन्हें बराबर लेकर खांसीका रोगी दहीके संग पीवे अथवा दोनों हलदी, देवदारु, सोंठ, खैरसार इन्हें बराबर लेकर ॥ २२ ॥ बकरेके मूत्रसे

(श्लो० २४) अस्य श्लोकस्य चतुर्थपादस्यान्वयोऽग्रिमेण श्लोकेन सह कार्यः । यथा "भार्ङ्गीवचाहिंगुकृता च वर्तिः घृतसंप्रयुक्ता धूमे प्रशस्ता" इत्यन्वयः । अथवा केचिदेवमाहुः—भार्ङ्गीवचाहिंगुकृतां च वर्तिं गुटिकामपि क्षौद्रेण लिह्यात् ।

सेंधानमक, गोखरू, रास्ना, चित्रक, खरेंटी, काकड़ासींगी, वच, मोथा, देवदारु, दुरालभा (जवासा), भारंगी, हरडे और कचूर इन सबको लेकर सबसे दूना छोटी कटेलीका रस डालकर घृत पकावे यह घृत श्वासरोगों, मंदाग्नि, स्वरभेद तथा भिन्नहुए (क्षतजों) (अथवा स्वरभंगके भेदों) को तथा पांचों प्रकारके उग्र कासों (खांसी) को नष्ट करदेताहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

पित्तज खाँसीके यत्न ।

विदारिगंधोत्पलसारिवादीन्निः क्वाथ्य वर्गान्मधुकं च कृत्स्नम् ॥
घृतं पचेदिक्षुरसांबुदुग्धैः काकोलिवर्गे च सशर्करं तत् ॥
प्रातः पिबेत्पित्तकृते च कासे रतिप्रसूते क्षयजे च कासे ॥३६॥
खर्जूरभार्ङ्गीमगधापियालमधूलिकैलामलकैः समांशैः ॥
चूर्णं सिताक्षौद्रघृतप्रगाढं त्रीन्हंति कासानुपयुज्यमानम् ॥ ३७॥

विदारिगन्धादिगण, उत्पलादि और सारिवादिगण, मधुरगण सब इनका क्वाथ बनाके तथा ईखका रस, जल और दूध भी डाले तथा काकोल्यादि गणका कल्क डालकर घृत पकालेवे इसे नित्य प्रभात मिश्री मिलाकर पान करे यह घृत पित्तकी खांसीको तथा अति मैथुनसे उपजी क्षयज खांसीको दूर करताहै ॥ ॥ ३६ ॥ तथा खर्जूर (खजूरिये), भारंगी पीपल, चिरोंजीके ऊपरका खाद्य पदार्थ, मधूलि (मूर्वा कोई गोधूम और कोई मर्कटक कहते हैं), इलायची, आंवले इनको समान भाग लेकर चूर्ण बनावे इसे मिश्री, शहद और घृतमें सानकर खावे यह तीनों प्रकारकी खांसीको दूर करता है ॥ ३७ ॥

क्षतज और क्षयज खाँसीके यत्न ।

रक्ताहरिद्रांजनवह्निपाठासूर्वोपकुल्या विलिहेत्समांशाः ॥
क्षौद्रेण कासे क्षतजे क्षयोत्थे पिबेद्घृतं चेक्षुरसे विपक्वम् ॥३८॥
चूर्णं पिबेच्चामलकस्य वापि क्षीरेण पक्वं सघृतं हिताशी ॥
चूर्णानि गोधूमयवोद्भवानि काकोलिवर्गश्च कृतः सुसूक्ष्मः ॥३९॥
कासेषु पेयास्त्रिषु कासवद्भिः क्षीरेण सक्षौद्रघृतेन वापि ॥
गुडोदकं वा क्वथितं पिबेद्धि क्षौद्रेण शीतं मरिचोपदंशम् ॥ ४०॥

मंजीठ, हलदी, अंजन (रसांजन, कोई सौवीरांजन कहतेहैं), चित्रक, पाठा, मूर्वा, पीपल इन्हें समान भाग लेके शहद मिलाकर क्षतज और क्षयज खांसीमें

(श्लो० ३६) रतिप्रसूते अतिमैथुनजन्ये ।

वायुकी खाँसीका यत्न ।

यत्प्लीहि सर्पिर्विहितं षडंगं तद्वातकासं जयति प्रसह्य ॥
विदारिगंधादिकृतं घृतं वा रसेन वा वासकजेन पक्वम् ॥ २९ ॥
विरेचनं स्नैहिकमत्र चोक्तमास्थापनं चाप्यनुवासनं च ॥
धूमं पिबेत्स्नैहिकमप्रमत्तः पिबेत्सुखोष्णं घृतमेव चात्र ॥ ३० ॥
हिता यवाग्वश्च रसेषु सिद्धाः पयांसि लेहाः सघृतास्तथैव ॥ ३१ ॥

जो प्लीह रोगमें षडंग घृत कहाहै वह वायुकी खांसीको बलपूर्वक नष्ट करता-है अथवा विदारिगन्धादिक गणसे सिद्ध किया या अडूसेके रससे सिद्ध किया घृत भी श्रेष्ठ है ॥ २९ ॥ विरेचन यहां स्नेहसहित देना उचित है और आस्थापन तथा अनुवासनवस्ति करना ठीक है तथा सावधान होकर स्नेहोंके धूमपान करना तथा गरम घृत पीना भी श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥ तथा मांसके रसोंमें पकाईहुई यवागू पिलाना या घृतयुक्त दूध या अवलेह भी श्रेष्ठ होते हैं ॥ ३१ ॥

कफज खाँसीका यत्न ।

प्रच्छर्दनं कायशिरोविरेकास्तथैव धूमाः कवलग्रहाश्च ॥
उष्णाश्च लेहाः कटुका निहन्युः कफं विशेषेण विशोषणं वा ॥३२॥
कटुत्रिकं चापि वदंति पथ्यं घृतं कृमिघ्नस्वरसे विपक्वम् ॥
निर्गुंडिपत्रस्वरसे विपक्वं सर्पिः कफोत्थं वि निहंति कासम् ॥ ३३ ॥
पाठाबिडव्योषविडंगसिंधुत्रिकंटराग्नाहुतभुग्बलाभिः ॥
शृंगीवचांभोधरदेवदारुदुरालभाभार्ङ्ग्यभयाशठीभिः ॥ ३४ ॥
सम्यग्विपक्वं द्विगुणेन सर्पिर्निदिग्धिकायाः स्वरसेन चैतत् ॥
श्वासाग्निसादस्वरभेदभिन्नान्निहंत्युदीर्णानपि पंच कासान् ॥३५॥

वमन कराना, देहका और शिरका विरेचन करना, धूमपान और उष्ण कवल धारण करना तथा ऐसे ही अवलेह चाटना तथा कटुक (चरपरे) द्रव्य सेवन करना और विशेष करके शोषण द्रव्योंका उपयोग करना ये सब यत्न कफको (कफज कासको) हरनेवाले हैं ॥ ३२ ॥ त्रिकटु भी इसमें पथ्य कहते हैं तथा वाय-विडंगके स्वरसमें पकायाहुआ घृत अथवा सिम्हालूके पत्तोंके रसमें पकाया घृत कफकासको नष्ट करदेताहै ॥ ३३ ॥ अथवा पाठा, बिडनमक, त्रिकटु, बिडंग

(श्लो० २९) प्रसह्य बलेन इत्यर्थः ।

द्रोणे जलस्याढकसंयुते च क्वाथे कृते पूतचतुर्थभागे ॥ ४६ ॥
पचेत्तुलां शुद्धगुडस्य दत्त्वा पृथक्च तैलात्कुडवं घृताच्च ॥
चूर्णं च तावन्मगधोद्भवाया देयं च तस्मिन्मधु सिद्धशीते॥४७॥
रसायनात्कल्कमतो विलिह्याद्द्वे चाभये नित्यमथाशु हन्यात् ॥
तद्राजयक्ष्मग्रहणीप्रदोषशोफाग्निमांद्यस्वरभेदकासान् ॥ ४८ ॥
पांड्वामयश्वासशिरोविकारान्हृद्रोगहिक्काविषमज्वरांश्च ॥
मेधाबलोत्साहमतिप्रदं च चकार चैतद्भगवानगस्त्यः ॥ ४९ ॥

दशमूल, गजपीपल, केवांच, भारंगी, कचूर, पुष्करमूल, सोंठ, पाठा, गिलोय, पीपलामूल, शंखपुष्पी, रास्ना, चित्रक, ओंगा, खरेंटी और जवासा ॥ ४५ ॥ ये सब दो २ पल लेकर चूर्ण करे और जौ एक आढक ले और हरड बडीबडी १०० लेवे इन (यव और हरीतकी) को द्रोणभर पानीमें सिजावे, चतुर्थांश शेष रहे पर छान ले ॥ ४६ ॥ फिर शुद्ध गुड एक तुला लेकर इसमें पकावे और ४ पल तेल (तिलका) और ४ पल घृत और ४ पल ही पीपलका चूर्ण डाले वे हरडे भी डालदे और जब सिद्ध होके ठंढा हो तब इतनाही शहद डाल दे ॥ ४७ ॥ इस रसायनमेंसे दो हरडे नित्य खावे और उस लेहमेंसे भी चाट लिया करे यह राजयक्ष्मा, ग्रहणीके दोष, शोथ, मंदाग्नि, स्वरभंग और खांसी इन सबको नष्ट करे ॥ ४८ ॥ तथा पांडुरोग, श्वास, शिरके विकार, हृद्रोग, हुचकी और विषमज्वर इन्हें भी नष्ट करे तथा बुद्धि, बल, उत्साह और धारणाशक्ति इन्हें बढावे यह रसायन प्रयोग भगवान् अगस्त्य ऋषिने निर्माण किया है ॥ ४९ ॥

कुलीरशुक्तीचटकैणलावान्निःक्वाथ्य वर्गैर्मधुरैस्तथान्यैः ॥
पचेद्घृतं तत्तु निषेव्यमाणं हन्यात्क्षतोत्थं क्षयजं च कासम्॥५०॥
शतावरीनागबलाबलादिभिर्घृतं विधेयं च हिताय कासिनाम् ॥५१॥

इति सुश्रुतसं०उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

केकडा, जलकी सीप, चिड़ा, हिरन, लवा इन्हें तथा अन्य मधुरवर्ग, काकोल्यादिगण इन सबका क्वाथ करके घृत पकावे इस घृतका सेवन करनेसे क्षतज और क्षयज खांसी नष्ट होजाती है ॥ ५० ॥ तथा शतावरी, नागबला (गुलशकरी), बला (खरेंटी) (और 'आदि' शब्दसे अतिबला, महाबला भी लेनी इनसे सिद्ध किया हुआ घृत खांसीके रोगवालोंके लिये हितकारक है ॥ ५१ ॥

चाटे अथवा ईखके रसमें पकाये हुए घृतको पीवे ॥ ३८॥ तथा आंवलोंके चूर्णको दूधमें पकावे फिर उसे घृतयुक्त करके पान करे और हित भोजन करे अथवा गेहूँ और जौका चूर्ण (रवा) और काकोल्यादिगणका महीन चूर्ण इन्हें दूधसे (दूधमें पकाके) शहद और घृत मिलाके तीनों प्रकारके (पित्तज, क्षतज और क्षयज) खाँसीके रोगमें पीना उचित है अथवा गुडोदक (गुडका क्वाथ) ठंढा करके शहद डालकर काली मिरच मिलाके पीवे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

कल्याण गुड़ ।

प्रस्थत्रयेणामलकीरसस्य शुद्धस्य दत्त्वार्द्धतुलां गुडस्य ॥
चूर्णीकृतैर्ग्रंथिकचव्यजीरव्योषेभकृष्णाहवुषाजमोदैः ॥ ४१ ॥
विडंगसिंधुत्रिफलायवानीपाठाग्निधान्यैश्च पिचुप्रमाणैः ॥
दत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि चाष्टावष्टौ च तैलस्य पचेद्यथावत् ॥४२॥
तं भक्षयेदक्षफलप्रमाणं यथेष्टचेष्टं त्रिसुगंधियुक्तम् ॥
अनेन सर्वे ग्रहणीविकाराः सश्वासकासस्वरभेदशोषाः ॥ ४३ ॥
शाम्यंति चायं चिरमंतरग्नेर्हतस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतुः ॥
स्त्रीणां च वंध्यामयनाशनः स्यात्कल्याणको नाम गुडः प्रतीतः ४४

आँवलोंका रस तीन प्रस्थ और स्वच्छगुड आधा तुला लेवे और पीपलामूल, चव्य, जीरा, त्रिकटु, गजपीपल, हाऊवेर, अजमोदा ॥ ४१ ॥ विडंग, सैंधानमक, त्रिफला, अजवायन, पाठा, चित्रक, धनिया ये सब पिचु (कर्ष कर्ष) प्रमाण लेकर चूर्ण करले और आठ पल निशोथ लेके पीसले और आठ पलही तैल लेवे और विधिसे पकालेवे ॥ ४२॥ और दालचीनी, इलायची, तेजपात ये यथारुचि डाले और इसमेंसे एक कर्ष भरके अनुमान नित्य खावे इससे ग्रहणीके सब विकार श्वास, खांसी, स्वरभेद और क्षय ये रोग सब दूर होजाते हैं ॥ ४३ ॥ और जठराग्निको तथा नष्ट हुए पुरुषसत्त्वको भी यह बढाताहै तथा स्त्रियोंके वन्ध्यापनको नष्ट करताहै यह कल्याण नामक गुड कहाहै ॥ ४४ ॥

अगस्त्यावलेह ।

द्विपंचमूलेभकणात्मगुप्ताभार्ङ्गीशठीपुष्करमूलविश्वान् ॥
पाठामृताग्रंथिकशंखपुष्पीरास्नाग्न्यपामार्गबलायवासान् ॥ ४५॥
द्विपालिकान्नस्य यवाढकं च हरीतकीनां च शतं गुरूणाम् ॥

कफके स्वरभंगमें सदा कंठ कफसे भरासा रहे और मंद मंद स्वरसे धीरे धीरे बोले, दिनमें कुछ ज्यादे होजावे और सब दोषोंके सान्निपातिक स्वरभेदमें सबके लक्षण और विकार होते हैं और जो वचनमें अव्यक्तता हो (बिलकुल समझा नहीं जावे) तो वह असाध्य होता है ॥ ३ ॥ क्षयज स्वरभेदमें वाणी बोलते समय धुवांसा भरजाताहै और वाणी क्षीण होती चलीजाती है और इसमें भी यदि बिलकुल आवाज नहीं निकले तो असाध्य होता है और मेदके स्वरभेदमें भीतर ही भीतर शब्द बेमालूमसा होता है और देरसे शब्द निकलता है और होंठ, गला और तालु ये लिपेसे (चिकने) रहते हैं ॥ ४ ॥

स्वरभेदकी असाध्यता ।

क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्य चापि चिरोत्थितो यश्च सहोपजातः ॥
मेदस्विनः सर्वसमुद्भवश्च स्वरामयो यो न स सिद्धिमेति ॥५॥

क्षीण मनुष्यके, वृद्धके, दुबले आदमीके जो स्वरभंग होजावे, जो बहुत दिनका पुराना होजावे तथा जो जन्महीसे स्वर बिगडा हुआ होवे, मेदवाले मनुष्यके तथा जो सन्निपातसे उपजा हुआ हो इतने प्रकारके स्वरभेद सिद्ध नहीं होते ॥ ५ ॥

स्वरभेदकी चिकित्साका आरंभ ।

स्निग्धान्स्वरातुरनरानपकृष्टदोषान्संयोजयेद्वमनरेचनवस्तिभिश्च ॥
नस्यावपीडमुखधावनधूमलेहैः संपादयेच्च विविधैः कवलग्रहैश्च ॥६॥
यः श्वासकासविधिरादित एव चोक्तस्तं चाप्यशेषमवतारयितुं यतेत॥
वैशेषिकं च विधिमूर्द्धमतो वदामि तद्वैस्वरातुरहितं निखिलं निबोध७

स्वरभेदके रोगियोंको स्नेहन कराके वमन, विरेचन और वस्तिकर्म विधिपूर्वक करके दोषोंको दूर करे और फिर नस्य, अवपीडन, मुखधावन (मुखको भीतरसे धोना अर्थात् कुल्ले करना),धूमपान और अवलेह तथा अनेक प्रकारके कवलग्रहोंका उपयोग करना श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥ तथा जो विधि श्वास और खाँसीके विषयमें कह आये हैं उन सबके करनेका यहांपर यत्न करे (अर्थात् श्वासकासोक्त सब विधि यहां भी कर सकते हैं) और इससे अगाडी अब हम विशेष करके स्वरभेदके रोगियोंको हितकारक विधि कहते हैं उसे पूर्णतया सुनो ॥ ७ ॥

वायुके स्वरभंगका यत्न ।

स्वरोपघातेऽनिलजे भुक्तोपरि घृतं पिबेत् ॥ कासमर्दकवार्ताकुमार्क-

यूनानी हकीम खांसीको "सुआल" या "सुरफा" कहते हैं ।
और डाक्टरीमें खांसीको "काफ" (Calf) और सूखी खांसीको "होपिंग-काफ" कहते हैं ।

इति प० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ५३.

अथातः स्वरभेदप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम स्वरभेद (अवाज बैठजाने) के प्रतिषेधके अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

स्वरभेदके हेतु और संख्या ।

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघातशीतादिभिः प्रकुपिताः पवनादयस्तु ॥ ते शब्दवाहिधमनीषु गताः प्रतिष्ठां हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः सः ॥ १ ॥

अत्यन्त ऊंचे स्वरसे बोलने (पुकारने अथवा गाने) से, विषसे, चिल्लाकर पढनेसे, चोट आदिसे और शीतल पदार्थोंके सेवन करनेसे वातादिक दोष कुपित होकर शब्दवाहिनी धमनियोंमें स्थित होकर स्वर (अवाज) को बिगाड़ देते हैं इसे स्वरभेद या स्वरभंग कहते हैं यह छः प्रकारका होता है (जैसे वायुका, पित्तका, कफका, सन्निपातका, क्षयका और मेदोदोषका) ॥ १ ॥

वातादि स्वरभेदके लक्षण ।

वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा भिन्नं शनैर्वदति गर्दभवत्स्वरं च॥ पित्तेन पीतवदनाक्षिपुरीषमूत्रो ब्रूयाद्गलेन च विदाहसमन्वितेन ॥ ॥ २ ॥ कृच्छ्रात्कफेन सततं कफरुद्धकंठो मंदं शनैर्वदति वापि दिवा विशेषात् ॥ सर्वात्मके भवति सर्वविकारसंपदव्यक्तता च वचसस्तमसाध्यमाहुः ॥ ३ ॥ धूप्येत वाक्क्षयकृते क्षयमाप्नुयाच्च वागेष वापि हतवाक्परिवर्जनीयः ॥ अंतर्गतस्वरमलक्ष्यपदं चिरेण मेदोन्वयाद्वदति दिग्धगलौष्ठतालुः ॥ ४ ॥

वायुके स्वरभेदमें नेत्र, मुँह, मूत्र और मल इन सबमें कालापन मालूम देताहै, टूटे शब्द धीरे धीरे बोले, गधेकासा स्वर हो और पित्तके स्वरभेदमें मुँह, नेत्र, मल, मूत्र ये सब पीले पडजावें तथा बोलते समय गलेमें जलनसा होवे ॥ २ ॥

भेदके स्वरभेदमें कफस्वरभेदकेसी विधि करना श्रेष्ठ है और सन्निपातके स्वरभेदमें तथा क्षयके स्वरभेदमें (आराम हो या न भी हो ऐसा) कहकर चिकित्सा करे ॥ १४ ॥ और जिसके ऊँचे स्वरसे बोलने, गाने, पढने आदिसे स्वरभंग होगया हो उसे मधुरद्रव्योंसे औटाया हुआ दूध मिश्री और शहद मिलाकर पीना चाहिये ॥ १५ ॥

यूनानी हकीम स्वरभंगको "फसादुस्सौत" कहतेहैं डाक्टरीमें इसे "होर्सन्यस" (Hoorsness) कहतेहैं ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

चतुःपंचाशत्तमोध्यायः ५४.

अथातः कृमिरोगमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम कृमिरोगके अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ।

कृमिरोगके लक्षण ।

अजीर्णाध्यशनासात्म्यैर्विरुद्धमलिनाशनैः॥ अव्यायामदिवास्वप्नगुर्वतिस्निग्धशीतलैः ॥१॥ माषपिष्टान्नविदलबिसशालूकसेरुकैः ॥ पर्णशाकसुराशुक्तदधिक्षीरगुडेक्षुभिः ॥ २ ॥ पललानूपपिशितपिण्याकपृथुकादिभिः ॥ स्वाद्वम्लद्रवपानैश्च श्लेष्मा पित्तं च कुप्यति ॥ ३ ॥ कृमीन्बहुविधाकारान्करोति विविधाश्रयान् ॥ आमपक्वाशयस्तेषां प्रसवः प्रायशः स्मृतः ॥ ४ ॥

अजीर्णके रहनेसे, भोजनपर भोजन करनेसे, बेमाफकतके भोजनसे, विरुद्ध और मलिन भोजनसे, परिश्रम न करने (पडे या बैठे रहने) से, दिनके सोनेसे, गरिष्ठ अति चिकना, ठंढा खानेसे ॥ १ ॥ उडद पिट्ठीके पदार्थ, विदल (जिनके दो भाग हों ऐसे अन्न) विशेष खानेसे, बिस (कमलकी जड), कमलकंद और कसेरु इत्यादि और पत्तोंके शाक, मदिरा, सिरका, दही, दूध, गुड, ईखके पदार्थ ॥ ॥ २ ॥ तिलका चूरा (या मांस), जलकिनारेके जीवोंका मांस, खल और पृथुक (दोवार उबाला या पकाया हुआ अन्न) इनके विशेष खानेसे, मिठाई, खटाई, पतले पन्ने अधिक खाने पीनेसे, कफ और पित्त कुपित हो जातेहैं ॥ ३ ॥ और अनेक प्रकारके कृमियोंको जिनके अनेक स्थान हैं पैदा करतेहैं परन्तु विशेष करके इनकी उत्पत्तिका स्थान आमाशय और पक्वाशयही होताहै (अर्थात् कृमि उक्त कारणोंसे विशेष करके आमाशय और पक्वाशयमें ही पैदा होतेहैं) ॥ ४ ॥

(श्लो० ३) पृथुकादिभिरिति–पृथुकम्–"व्रीहिस्विन्नमन्नं पृथुकम्" (इति श० स्तो०)

वस्वरसैर्युतम् ॥ ८ ॥ पीतं घृतं हन्त्यनिलं सिद्धमार्तगले रसे ॥ यवक्षाराजमोदाभ्यां चित्रकामलकेषु वा ॥९॥ देवदार्वग्निकाभ्यां वा सिद्धमाज्यं समाक्षिकम् ॥ सुखोदकानुपानो वा ससर्पिष्को गुडौदनः ॥ १० ॥

वायुके स्वरभंगमें भोजनके ऊपरसे कसौंधी, बडी कटेली, भंगरा इनके रससे युक्त (रससे सिद्ध किये) घृतको पीवे ॥ ८ ॥ अथवा आर्तगल (नीले फूलके कुरंट) के रससे सिद्ध किया घृत पीवे अथवा जवाखार, अजमोदा तथा चित्रक और आंवले इनसे सिद्ध किया घृत पीवे ॥९॥ अथवा देवदारु चित्रक इनसे सिद्ध किया बकरीका घृत शहद मिलाकर पान करे और गुडके मीठे चावल घृतयुक्त बनाकर उन्हे भोजन करे ऊपरसे निवाया पानी पीलिया करे ॥ १० ॥

क्षीरानुपानं पित्ते तु पिबेत्सर्पिरतंद्रितः ॥ अश्नीयाच्च ससर्पिष्कं यष्टीमधुकपायसम् ॥ ११ ॥ लिह्यान्मधुरकाणां वा चूर्णं मधुघृताप्लुतम् ॥ शतावरीचूर्णयोगं बलाचूर्णमथापि वा ॥ १२ ॥ पिबेत्कटूनि मूत्रेण कफजे स्वरसंक्षये ॥ लिह्याद्वा मधुतैलाभ्यां भुक्त्वा खादेत्कटूनि च ॥ १३ ॥

पित्तके स्वरभेदमें घृत पीकर ऊपरसे दूध पियाकरे अथवा सावधान होकर मुलेठीकी खीर बनाके घृत मिलाकर खावे ॥ ११ ॥ अथवा मधुर द्रव्यों (काकोल्यादि) का चूर्ण शहद और घृत मिलाके चाटे अथवा शतावरीके चूर्णको या खरेंटीके चूर्णको शहद और घृतके संग चाटे ॥ १२ ॥ कफके स्वरभंगमें कटुक द्रव्यों (त्रिकटु आदि) को गोमूत्रके संग पीवे अथवा शहद और तैल मिलाके इसके संग त्रिकटुको चाटे तथा भोजन करके ऊपरसे चरपरे पदार्थ (मिरच, पीपल आदि) खाया करे ॥ १३ ॥

स्वरोपघाते मेदोजे कफवद्विधिरिष्यते ॥ सर्वजे चापि क्षयजे प्रत्याख्यायाचरेत्क्रियाम् ॥ १४ ॥ शर्करामधुमिश्राणि शृतानि मधुरैः सह ॥ पिबेत्पयांसि यस्योच्चैर्वदतोऽभिहतः स्वरः ॥ १५ ॥

इति सुश्रुतसं०उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

(श्लो० ९) आर्तगलः नीलपुष्पकुरंटः। डल्लनस्तु आर्तगलः ककुभ इत्याह।

मज्जादा नेत्रलेढारस्तालुश्रोत्रभुजस्तथा ॥ शिरोहृद्रोगवमथुप्रतिश्यायकराश्च ते ॥ १२ ॥

दर्भपुष्प, महापुष्प, प्रलून, चिपिट, पिपीलिका और दारुण ये छः प्रकारके कफकोपसे उत्पन्न होनेवाले कृमि होते हैं ॥ १० ॥ ये रोमवाले होते हैं, इनके शिरपर भी रोम होते हैं, पूँछभी होती है, काले मंडलवाले और बोयेहुए धान्यके अंकुर जैसे सुपेद और पतले होते हैं ॥ ११ ॥ ये कृमि मज्जाको खाते हैं, नेत्रोंकोभी चाटजाते हैं, तालु और कानोंको भी खाते हैं, शिरके रोम तथा हृदयके रोग, वमन, जुखाम इन व्याधियोंको करते हैं ॥ १२ ॥

रक्तज कृमि ।

केशरोमनखादाश्च दंतादाः किकिशास्तथा ॥ कुष्ठजाश्च परीसर्पी ज्ञेयाः शोणितसंभवाः ॥ १३ ॥ ते सरक्ताश्च कृष्णाश्च स्निग्धाश्च पृथवस्तथा ॥ रक्ताधिष्ठानजान्प्रायो विकाराञ्जनयंति ते ॥ १४ ॥

केशोंमें होनेवाले कृमि, रोमोंमें होनेवाले, नखूनोंमें होनेवाले और इन्हेंही खानेवाले तथा दांतोंके कीडे और किकिश, कुष्ठज और परिसर्पि या सात प्रकारके कृमि रक्तसे (रक्तके मैल, पसीने आदिसे) पैदा होनेवाले हैं ॥ १३ ॥ ये कुछ सुरखी लिये कालेसे प्रायः होते हैं, चिकने और मोटे भी इनमें होते हैं ये प्रायः रक्तस्थानमें होनेवाले विकार (कुष्ठ, फुन्सी, खाज आदि) उत्पन्न करते हैं॥१४॥

(वक्तव्य) केशादकृमि बालोंकी जड़में होते हैं जिनसे बाल गिरजाते हैं बाहर पसीने, मैल आदिसे होनेवाले जूँ और लीख आदि इनसे पृथक् होते हैं ॥

माषपिष्टान्नलवणगुडशाकैः पुरीषजाः ॥ मांसमाषगुडक्षीरदधिशुक्तैः कफोद्भवाः ॥ विरुद्धाजीर्णशाकाद्यैः शोणितोत्था भवंति हि ॥ १५ ॥ ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः ॥ भक्तद्वेषोऽतिसारश्च संजातकृमिलक्षणम् ॥ १६ ॥ दृश्यास्त्रयोदशाद्यास्तु कृमीणां परिकीर्तिताः ॥ केशादाद्यास्त्वदृश्यास्ते द्वावाद्यौ परिवर्जयेत् ॥ १७ ॥

उडद पिट्ठीके अन्न, लवण, गुड और शाक इनसे (इनके विशेष सेवनसे) पुरीषके कृमि होते हैं और मांस, उड़द, गुड़, दूध, दही, सिरका इनसे कफके कृमि होते हैं तथा विरुद्ध भोजन, अजीर्ण और शाकादिसे रुधिरके कृमि उत्पन्न

कृमियोंके भेद।

विंशतेः कृमिजातीनां त्रिविधः संभवः स्मृतः ॥
पुरीषकफरक्तानि तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ५ ॥

कृमि बीस प्रकारके होतेहैं और इनकी उत्पत्ति तीन भांतिसे होतीहै पुरीषसे या कफसे या रुधिरसे इनके लक्षण अगाडी कहतेहैं ॥ ५ ॥

पुरीषज कृमि।

अयवा वियवाः किप्याश्चिप्या गंडूपदास्तथा ॥ चुरवो द्विमुखाश्चैव सप्तैवैते पुरीषजाः ॥ ६ ॥ श्वेताः सूक्ष्मास्तुदंत्येते गुदं प्रति सरंति च ॥ तेषामेवापरे पुच्छैः पृथवश्च भवंति हि ॥ ७ ॥ शूलाग्निमांद्यपांडुत्वविष्टंभबलसंक्षयाः ॥ प्रसेकारुचिहृद्रोगविड्भेदास्तु पुरीषजैः ॥ ८ ॥ रक्ता गंडूपदा दीर्घा गुदकंडूनिपातिनः ॥ शूलाटोपशकृद्भेदपक्तिनाशकराश्च ते ॥ ९ ॥

अयव, वियव, किप्य, चिप्य, गंडूपद और चुरव तथा द्विमुख ये सात प्रकारके कृमि पुरीष (विष्ठा) में (या विष्ठासे) पैदा होतेहैं ॥ ६ ॥ ये पुरीषज कृमि सुपेद पतले होतेहैं और गुदामें चुभनसी पैदा करतेहैं और गुदाकी तरफ गमन भी करतेहैं इनमेंसे दूसरी भांतिके कृमि पूँछवाले और अन्य मोटे (कद्दूदानेसे) भी होतेहैं ॥ ७ ॥ ये शूल, मन्दाग्नि, पांडुरोग, विष्टंभ (कब्जियत) और बलका नाश करतेहैं तथा मुँहसे पानी आना, अरुचि, हृद्रोग और विड्भेद ये उपद्रव भी इन पुरीषज कृमियोंहीसे होतेहैं ॥ ८ ॥ और इनहीमें जब लंबे लंबे लाल गिडोवे होते हैं तब गुदामें खाज, शूल, पेट अफराना, मल फटना और पाचनशक्ति नष्ट होना इत्यादि उपद्रव करतेहैं ॥ ९ ॥

(वक्तव्य) पुरीषज कृमि कहनेसे आहारनलका (आमाशय, पक्वाशय, मेदा और आँतडे तथा मलाशय) मात्रके कृमि जानने ॥

कफज कृमि।

दर्भपुष्पा महापुष्पाः प्रलूनाश्चिपिटास्तथा ॥ पिपीलिका दारुणाश्च कफकोपसमुद्भवाः ॥ १० ॥ रोमेशा रोममूर्द्धानः सपुच्छाः श्यावमंडलाः ॥ मूढधान्यांकुराकाराः शुक्लास्ते तनवस्तथा ॥ ११ ॥

(श्लो० ५) रक्तजत्वेन स्वेदजा अपि ग्राह्याः।

क्षिकम् ॥ पत्रैर्मूषिकपर्ण्या वा सुपिष्टैः पिष्टमिश्रितैः ॥ २५ ॥ खादेत्पूपालिकान्पक्कान्धान्याम्लं च पिबेदनु ॥ सुरसादिगणे तैलं पक्कं वा पानमिष्यते ॥ २६ ॥ विडंगचूर्णपिष्टाभ्यां तस्मिन्भक्ष्यन्तु कारयेत् ॥ तत्कषायप्रपीतानां तिलानां स्नेहमेव वा ॥ २७ ॥

नींबके पत्तोंका रस शहद मिलाके पीवे अथवा सिरयाईका रस या सुरसादिगणका क्वाथ (शहद डालके) पीवे ॥ २४ ॥ अथवा घोडेकी लीदका चूर्ण या वायविडंगका चूर्ण शहदके संग चाटे अथवा मूसापर्णीके पत्तोंको पीस ले और उसमें जौकी पिट्ठी मिलाकर पकोडी पूरी आदि बनावे उन्हें खाकर ऊपरसे धान्याम्ल (कांजी) पीवे अथवा सुरसादिगणसे पकायाहुआ तैल पान करे ॥ ॥ २५ ॥ २६ ॥ अथवा वायविडंगके चूर्णको पिट्ठीमें (या आटेमें) मिलाकर उसके पाक (खानेकी वस्तु) बनावे अथवा बिडंगके क्वाथमें तिलोंको खूब भिगोकर उनका तैल निकलवाकर उपयोग करे ॥ २७ ॥

श्वाविधः शकृतश्चूर्णं सप्तकृत्वः सुभावितम् ॥ विडंगानां कषायेण त्रैफलेन तथैव च ॥ २८ ॥ क्षौद्रेण लीढ्वानुपिबेद्रसमामलकोद्भवम् ॥ अक्षाभयारसं चापि विधिरेषोऽयसामपि ॥ २९ ॥ पूतिकस्वरसं वापि पिबेद्वा मधुना सह ॥ पिबेद्वा पिप्पलीमूलमजामूत्रेण संयुतम् ॥ ३० ॥ सप्तरात्रं पिबेद्धृष्टं त्रपु वा दधिमस्तुना ॥ पुरीषजान्कफोत्थांश्च हन्यादेवं कृमीन्भिषक् ॥ ३१ ॥

सेहकी मेंगनी (विष्ठा) के चूर्णको सातवार विडंगके क्वाथकी भावना देवे और फिर सात भावना त्रिफलाके क्वाथकी देवे ॥ २८ ॥ फिर इसे शहदमें मिलाकर चाटे और ऊपरसे आंवलोंका रस पीवे तथा हरडे और बहेडेका रस भी पीवे (अर्थात् त्रिफलाका रस ऊपरसे पीवे) यही विधि सब लोहों (धातुओंके चूर्ण) खानेकी है (कि पहले लोहादिके चूर्णमें विडंगके क्वाथकी और त्रिफलाके क्वाथकी भावना देकर शहदसे चाटे ऊपरसे त्रिफलाका रस पीवे) ॥ २९ ॥ अथवा करंजका रस शहदयुक्त पीवे अथवा बकरीके मूत्रसे पिप्पलीमूल पीवे ॥ ॥ ३० ॥ अथवा रांगको घिसकर सात दिन तक दहीके पानीसे पीवे इन विधियोंसे वैद्य पुरीषज और कफज कृमियोंको नष्ट करे ॥ ३१ ॥

(श्लो० २५) पिष्टमिश्रितैरिति–यवपिष्टमिश्रितैः । पिष्टकथनेन यवपिष्टं ज्ञेयम् ।

होते हैं ॥ १५ ॥ यदि ज्वर होआवे, वर्ण बिगड जावे, शूल हो, हृदय दूखे, शिथिलता रहे, भ्रम हो, अरुचि और अतिसार ये भी हों तो जानो कि इसके कृमिरोग उत्पन्न हुआ ॥ १६ ॥ इन बीस प्रकारके कृमियोंमेंसे आदिके १३ प्रकारके कृमि तो दिखलाई देते हैं और केशादको आदि लेके तीन दिखलाई नहीं दे सकते और आरम्भमें कहेहुए दो असाध्य होते हैं ॥ १७ ॥

एषामन्यतमं ज्ञात्वा जिघांसुः स्निग्धमातुरम् ॥ सुरसादिविपक्केन सर्पिषा वांतमादितः ॥ १८ ॥ विरेचयेत्तीक्ष्णतरैर्योगैरास्थापयेच्च तम् ॥ यवकोलकुलत्थानां सुरसादेर्गणस्य च ॥ १९ ॥ विडंगस्नेहयुक्तेन क्वाथेन लवणेन च ॥ २० ॥

इनमेंसे कोईसे कृमि मालूम पडें तभी उनके नष्ट करनेकी इच्छावाला वैद्य रोगीको स्नेहन करावे और फिर सुरसादिगणसे पकायेहुए घृतसे वमन करावे ॥ १८ ॥ और फिर तीक्ष्ण योगोंसे विरेचन करावे फिर जव, बेर, कुलथी और सुरसादिगणके क्वाथ और वायविडंगसे सिद्ध किये स्नेह और लवण इनसे आस्थापनवस्ति करे ॥ १९ ॥ २० ॥

प्रत्यागते निरूहे तु नरं स्नातं सुखांबुना ॥ युंज्यात्कृमिघ्नैरशनैस्ततः शीघ्रं भिषग्वरः ॥ २१ ॥ स्नेहेनोक्तेन चैनं तु योजयेत्स्नेहवस्तिना ॥ ततः शिरीषकिणिहीरसं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ २२ ॥ केबूकस्वरसं वापि पूर्ववत्तीक्ष्णभोजनः ॥ पलाशबीजस्वरसं कल्कं वा तंडुलांबुना ॥ २३ ॥

जब निरूहण वस्ति उलटी निकल चुके (साफ होजावे) तब रोगीको निवाये पानीसे स्नान करावे और फिर कृमिनाशक भोजन शीघ्रही वैद्य खिलावे (अर्थात् कृमिनाशक द्रव्योंके संस्कारसे बना भोजन देवे) ॥ २१ ॥ और फिर उक्त स्नेह (विडंगादिसे सिद्ध किये हुए) से अनुवासनवस्ति भी करे फिर शिरस और किणिही (कटभी) इनके रसमें शहद मिलाकर कुछ दिन पिलावे ॥ २२ ॥ अथवा केबूक वृक्षके स्वरसको शहद मिलाके पिलावे और पूर्वोक्त रीतिसे तीक्ष्ण भोजन करे तथा ढाकके बीजों (पलाशपापडे) के स्वरसको या कल्कको चावलोंके पानीके संग पिलावे ॥ २३ ॥

पारिभद्रकपत्राणां क्षौद्रेण स्वरसं पिबेत् ॥ पत्तूरस्वरसं वापि पिबेद्वा सुरसादिजम् ॥ २४ ॥ लिह्यादश्वशकृच्चूर्णं विडंगं वा समा-

सब प्रकारके दूध, घृत और दही तथा पत्तोंके शाक, खटाई मिठाई और ठंढे पदार्थ कृमिरोग नष्ट करनेकी वांछावाले रोगियोंको सामान्यतासे ही नहीं खाने चाहिये किंतु त्याग देने चाहिये ॥ ३८ ॥

(वक्तव्य) शार्ङ्गधराचार्य बाईस प्रकारके कृमि लिखते हैं जिनमें बाहर शरीरपर बालोंमें होनेवाले जूँ, लीख जुदे लिखते हैं और स्नायुक (न्हारवे) रोगको भी कफरक्तज कृमि लिखतेहैं ॥

यूनानीवाले पेटके केचुवोंको "दीदानां" कहतेहैं और कद्दूदानोंको "हुब्बुल्किरा" कहतेहैं और न्हारूको "अरकेमुदनी" या "रिशता" कहते हैं सब भांतिके कृमियोंको साधारणतासे इनके यहां भी किरमही कहतेहैं ॥

और डाक्टरीमें ऊपर बालोंमें होनेवाले जूं, लीख आदि कृमियोंको "अपीज़ुवा" कहते हैं और पेटमें होनेवालोंको "ऐंटजुवाँ" तथा "वर्मस्" कहतेहैं ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतस० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ५५.

अथात उदावर्तप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम उदावर्तके प्रतिषेधके अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ।

उदावर्तका हेतु ।

अधश्चोर्द्ध्वं च भावानां प्रवृत्तानां स्वभावतः ॥ न वेगान्धारयेत्प्राज्ञो वातादीनां जिजीविषुः ॥ १ ॥ वातविण्मूत्रजृंभाश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः ॥ व्याहन्यमानैरुदितैरुदावर्तो निरुच्यते ॥ २ ॥ क्षुत्तृष्णाश्वासनिद्राणामुदावर्तो विधारणात् ॥ तस्याभिधास्ये व्यासेन लक्षणं च चिकित्सितम् ॥ ३ ॥

जीवनकी वांछा रखनेवाले बुद्धिमान्को चाहिये कि नीचेको और ऊपरको स्वभावसे प्रवृत्त होनेवाले वातादिक वेगोंको कभी नहीं रोंके ॥ १ ॥ वे वेग ये हैं कि अधोवायु, मल (दस्त), मूत्र, जँभाई, आंसू, क्षव (छींक) (या हिक्का), डकार, वमन और वीर्य इनके उद्गत होनेपर रोंक लेनेसे उदावर्त रोग होजाताहै ॥

(श्लो० २) उदावर्त इति–ऊर्ध्वं वातविण्मूत्रादीनाम् आवर्तो भ्रमण यस्मिन् स उदावर्तः। वातात्रि अधःप्राप्तोऽपानवायुः । क्षवः क्षवथुः । डल्हनस्तु हिक्का इत्याह । इंद्रियशब्देन शुक्र बोद्धव्यम् ।

(श्लो० ३) ननु अधोवेगावरोधादपानप्रकोपे उदावर्तसंभवो युक्तः । परंतु अश्रुजृंभादिकानामूर्ध्ववेगानामवरोधे कथमुदावर्तस्य संभवः । ऊर्ध्ववेगावरोधेपि वायोः प्रकोपोपहतेनापानेन उदावर्तस्य संभवः ।

शिरोहृद्घ्राणवक्त्राक्षिसंसृतांश्च पृथग्विधान् ॥ विशेषेणाञ्जनैर्नस्यैरवपीडैश्च साधयेत् ॥ ३२ ॥ शकृद्रसं तुरंगस्य सुशुष्कं भावयेद्‌दतिं ॥ निःक्राथेन विडंगानां चूर्णं प्रधमनं तु तत् ॥ ३३ ॥ अयश्चूर्णान्यनेनैव विधिना योजयेद्भिषक् ॥ सकांस्यनीलं तैलं च नस्यं स्यात्सुरसादिके ॥ ३४ ॥

शिर, हृदय, नासिका, मुख और नेत्रोंमें होजानेवाले कई प्रकारके कृमियोंको विशेषकर अंजनों, नस्यों और अवपीडों आदिसे साधन करे ॥ ३२ ॥ घोडेकी लीदका रस सुखाकर उसमें विडंगके क्वाथकी भावना देवे और फिर सुखाकर पीसकर उसका प्रधमन नस्य देवे ॥ ३३ ॥ और इसी विधिसे लोहेके चूर्णकी भी उपयोजना करे अथवा वैद्य सुरसादिगणसे सिद्ध किये तैलमें कांसीकी स्याही मिलाकर नस्य देवे ॥ ३४ ॥

इंद्रलुप्तविधिश्चापि विधेयो रोमभोजिषु ॥ दंतादानां समुद्दिष्टं विधानं मुखरोगिकम् ॥ ३५ ॥ रक्तजानां समुद्दिष्टं कुर्यात्कुष्ठचिकित्सिते ॥ सुरसादिं तु सर्वेषु सर्वथैवोपयोजयेत् ॥ ३६ ॥

रोमपंक्तियोंमें होनेवाले कृमियोंके लिये इंद्रलुप्तकी विधि करना श्रेष्ठ है और दांतोंके खानेवालों (दांतोंके कृमियों) के लिये मुखरोगमें कहीहुई कृमिदंतकी विधि करना उचित है ॥ ३५ ॥ और रक्तज कृमियोंके लिये कुष्ठमें कहे हुए विधान करे परन्तु सुरसादिगणका उपयोग तो सब प्रकारके कृमियोंमें सब तरहसे जहां जैसा उचित हो सर्वत्र ही करना उचित होताहै ॥ ३६ ॥

कृमिरोगमें पथ्य ।

प्रव्यक्ततिक्तकटुकं भोजनं च हितं भवेत् ॥
कुलत्थक्वाथसंसृष्टं क्षीरपानं च पूजितम् ॥ ३७ ॥

जिनमें चरपरापन और कडुवापन प्रगट हो ऐसे भोजन करने प्रायः हितकारक होतेहैं और कुलथीके क्वाथसे संस्कार किया हुआ दूध पीना ठीक है ॥ ३७ ॥

क्षीराणि मांसानि घृतानि चैव दधीनि शाकानि च पर्णवंति ॥
समासतोम्लान्मधुरान्हिमांश्च कृमीञ्जिघांसुः परिवर्जयेत्तु ॥ ३८ ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

जृंभाके रोंकनेका उदावर्त ।

मन्यागलस्तंभशिरोविकारा जृंभोपघातात्पवनात्मकाः स्युः ॥
श्रोत्राननघ्राणविलोचनोत्थाः भवंति तीव्राश्च तथा विकाराः ॥ ९ ॥

जृंभा (जंभाई) के रोंकनेसे मन्यास्थान और गलमें स्तंभ, शिरमें विकार और वातके रोग तथा कानके, मुँहके, नाकके और नेत्रोंके तीव्र रोग होजाते हैं ॥ ९ ॥

अश्रुनिरोधज और क्षवथुनिरोधज उदावर्त ।

आनंदजं शोकसमुद्भवं वा नेत्रोदकं प्राप्तममुंचतो हि ॥
शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च भवंति तीव्राः सह पीनसेन ॥ १० ॥
भवंति गाढं क्षवथोर्विघातात्छिरोक्षिनासाश्रवणेषु रोगाः ॥
कंठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः कूजश्च वायोरथवा प्रवृत्तिः ॥ ११ ॥

आनन्दसे अथवा शोकसे आये हुए नेत्रोंके जल (आंसुओं) को जो नहीं निकलने देवे (रोंक ले) उसके शिरमें भारीपन और तीव्र नेत्रोंके रोग और पीनसरोग होजाते हैं ॥ १० ॥ क्षवथु (छींक) के रोंकनेसे शिरमें, नेत्रोंमें, नासिकामें और कानोंमें भारी रोग होजाते हैं, कंठ और मुँह भरेसे होजाते हैं पीडा भी होती है, वायुका शब्द या प्रवृत्ति ये भी होते हैं ॥ ११ ॥

उद्गार-छर्दि-शुक्रज-उदावर्तोंके लक्षण ।

उद्गारवेगे विहते भवंति जंतोर्विकाराः पवनप्रसूताः ॥
छर्देर्विघातेन भवेच्च कुष्ठं येनैव दोषेण विदग्धमन्नम् ॥ १२ ॥
मूत्राशये वा गुदमुष्कयोश्च शोफो रुजा मूत्रविनिग्रहश्च ॥
शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेद्वा ते ते विकारा विहते तु शुक्रे ॥१३॥

डकारके रोंकनेसे मनुष्यके वायुके विकार होते हैं (और कई "कण्ठास्यपूर्णत्वं" इस उक्त श्लोकार्द्धको इसीके संग लगाकर यह अर्थ करते हैं कि कंठ और मुखकी पूर्णता, अतिपीडा, वायुका शब्द और अप्रवृत्ति ये डकार रोंकनेके उदावर्तमें होते हैं), वमनके रोंकनेमें कुष्ठ होजाता है और इससे अन्न विदग्ध होजाता है ॥ १२ ॥ और स्खलित होतेहुए वीर्यके रोकनेसे मूत्राशय (मसाने) में, गुदामें, वृषणोंमें

(श्लो० ११) अस्योत्तरार्धं "कंठास्यपूर्णत्वम्" इत्यादिकं केचित् अग्रिमे उद्गारोदावर्ते कथयंति एवमेव भावमिश्रेणापि पठितम् । परंतु डल्हनमिश्रेण क्षवथुविनिग्रहोदावर्तेपि व्याख्यातम् । डल्हनमिश्रमते क्षवथुः हिक्का इत्यपि विचित्रम् ।

॥ २ ॥ तथा क्षुधा, तृषा, श्वास, निद्रा इनके (विशेष या अयोग्य) रोकनेसे भी उदावर्त होजाताहै अब अगाड़ी विस्तारसे इसके जुदे २ लक्षण और चिकित्सा वर्णन करतेहैं ॥ ३ ॥

उदावर्तकी संख्या ।

त्रयोदशविधश्चासौ भिन्न एतैस्तु कारणैः ॥
अपथ्यभोजनाच्चापि वक्ष्यते च यथाऽपरः ॥ ४ ॥

पूर्वोक्त वातविण्मूत्रादिके कारणोंसे यह उदावर्त रोग तेरह प्रकारका होताहै तथा एक भांतिका उदावर्त अपथ्य भोजनसे भी होजाताहै ॥ ४ ॥

अपानवायुके रोकनेका उदावर्त ।

आध्मानशूलौ हृदयोपरोधं शिरोरुजं श्वासमतीव हिक्काम् ॥
कासप्रतिश्यायगलग्रहांश्च बलासपित्तप्रसरं च घोरम् ॥
कुर्यादपानोऽभिहतः स्वमार्गे हन्यात्पुरीषं मुखतः क्षिपेद्वा ॥ ५ ॥

अधोवायुके रोकनेसे इतने उपद्रव होते हैं—पेट अफरना, शूल, हृदयका रुकजाना, शिरमें दर्द, श्वास, अत्यन्त हुचकी, खांसी, जुखाम, गल रुकना, कफ और पित्तका उद्रेक घोर होना तथा अपने मार्गसे रुकाहुआ अपानवायु विष्ठाको रोक देता है अथवा मुखमार्गसे विष्ठाका वमन होता है ॥ ५ ॥

मलके रोकनेका उदावर्त ।

आटोपशूलौ परिकर्तनं च संगः पुरीषस्य तथोर्द्ध्ववातः ॥
पुरीषमास्यादपि वा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥ ६ ॥

पेट अफरना, शूल होना, कतरनेकेसी पीडा होना, मलकी किटीसी बँधकर बंद होजाना तथा वायुका ऊर्द्ध्वगमन होना, मुखसे विष्ठाका वमन होना दस्तके वेग रोकेजानेसे मनुष्यके इतने उपद्रववाला उदावर्त होता है ॥ ६ ॥

मूत्रके रोकनेका उदावर्त ।

मूत्रस्य वेगेऽभिहते नरस्तु कृच्छ्रेण मूत्रं कुरुतेऽल्पमल्पम् ॥
मेढ्रे गुदे वंक्षणमुष्कयोश्च नाभिप्रदेशेष्वथ वापि मूर्ध्नि ॥ ७ ॥
आनद्धवस्तिश्च भवंति तीव्राः शूलाश्च शूलैरिव भिन्नमूर्तेः ॥ ८ ॥

मूत्रका वेग रोकनेसे मनुष्यके कष्टसे थोडा थोडा मूत्र आता है तथा लिंग, गुदा, वंक्षण (नलों), अंडकोश, नाभि और शिरमें तीव्र शूल चलने लगते हैं और वस्तिस्थान फलजाता है और ऐसी पीडा होती है जैसे कोई शूलोंसे धवलता हो ॥७॥८॥

अधोवायु और पुरीषके उदावर्तकी चिकित्सा।

आस्थापनं मारुतजे स्निग्धे स्विन्ने विशिष्यते ॥
पुरीषजे तु कर्तव्यो विधिरानाहिको भवेत् ॥ १८ ॥

अधोवायु रुकनेके उदावर्तमें स्नेहन, स्वेदन कराकर आस्थापनवास्ति करना श्रेष्ठ है और दस्त रुकनेके उदावर्तमें आनाह (अफारे) की विधि करनी उचित होतीहै ॥ १८ ॥

मूत्रोदावर्तकी चिकित्सा।

सौवर्चलाढ्यां मदिरां मूत्रे त्वभिहते पिबेत् ॥ एलामप्यथ मद्येन क्षीरं वापि पिबेन्नरः ॥ १९ ॥ धात्रीफलानां स्वरसं सजलं वा पिबेत्त्र्यहम् ॥ रसमश्वपुरीषस्य गर्दभस्याथ वा पिबेत् ॥ २० ॥ मांसोपदंशं मधु वा पिबेद्वा सीधु गौडिकम् ॥ भद्रदारु घनं मूर्वां हरिद्रां मधुकं तथा ॥ २१ ॥ कोलप्रमाणानि पिबेदांतरिक्षेण वारिणा ॥ दुस्पर्शास्वरसं वापि कषायं कुंकुमस्य च ॥ २२ ॥ एर्वारुबीजं तोयेन पिबेद्वा लवणीकृतम् ॥ पंचमूलीशृतं क्षीरद्राक्षारसमथापि वा ॥ २३ ॥ योगांश्च वितरेत्तत्र पूर्वोक्तानश्मरीभिदः ॥ मूत्रकृच्छ्रक्रमं वापि कुर्यान्निरवशेषतः ॥ भूयो वक्ष्यामि योगांश्च मूत्राघातोपशांतये ॥ २४ ॥

मूत्र रुकनेके उदावर्तमें मदिरामें काला नमक मिलाके पीवे अथवा मद्यको इलायची मिलाकर या दूध मिलाके पीवे ॥ १९ ॥ अथवा आंवलोंके स्वरसमें पानी मिलाके तीन दिन पीवे अथवा घोडेकी लीदका रस या गधेकी लीदका रस (पानी मिलाके) पीवे ॥ २० ॥ मद्य पीकर (सीधु या गौडी मद्य पीकर) मांस खावे अथवा भद्रदारु, नागरमोथा, मूर्वा, हलदी और मुलेठी इनको दो दो टंक लेकर वर्षाके पानीसे पीवे अथवा जवासेका स्वरस तथा केसरका क्वाथ पीवे ॥ ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ अथवा ककडीके बीज पानीके संग ज़रासा नमक मिलाकर पीवे अथवा पंचमूल (लघुपंचमूल) के संग पकाया दूध या दाखका रस पीवे ॥ २३ ॥ अथवा पूर्वोक्त पथरीके भेदन करनेवाले योगोंका उपयोग करे अथवा आद्योपांत मूत्रकृच्छ्रका क्रम करे और मूत्राघात (मूत्र बंद होने) की शांतिके लिये हम अगाडी योग वर्णन करेंगे (वे भी यहां यथायुक्त उपयोगमें आसकते हैं) ॥ २४ ॥

शोथ और पीडा होती है, मूत्र रुकता है, शुक्रकी पथरी होजाती है और शुक्र झिरने लगजाता है, तत्संबंधी अनेक विकार (कृच्छ्रादि) होजाते हैं ॥ १३ ॥

(वक्तव्य) हमने पहले कंठास्यपूर्णत्वादि लक्षण क्षवथुनिरोधज उदावर्तमें डल्लन मिश्रकी व्याख्याके अनुसार लिखाहै परन्तु वास्तवमें यह अग्रिम उद्गारावरोधके साथ ही उचित है (देखो टिप्पणी) ॥

क्षुधा-तृषा-श्वास-और निद्रा रोकनेके उदावर्तोंके लक्षण ।

तंद्रांगमर्दावरुचिः श्रमश्च क्षुधोभिघातात्कृशता च दृष्टेः ॥
कंठास्यशोषः श्रवणावरोधस्तृष्णाभिघाताद्धृदये व्यथा च ॥ १४ ॥
श्रांतस्य निःश्वासविनिग्रहेण हृद्रोगमोहावथवापि गुल्मः ॥
जृंभांगमर्दाङ्गशिरोक्षिजाड्यं निद्राभिघातादथवापि तंद्रा ॥ १५ ॥

क्षुधा रोकनेसे तन्द्रा, अंगोंका टूटना (अंगडाई), अरुचि और श्रम होतेहैं तथा दृष्टिमें दुर्बलता ये उपद्रव होतेहैं और तृषाके रोकनेसे कंठ और मुखका सूखना, कानोंका रुक जाना और हृदयमें व्यथा ये उपद्रव होतेहैं ॥ १४ ॥ परिश्रम करके थके मनुष्यके श्वास रोकनेसे हृद्रोग, मोह (मूर्च्छा) अथवा गुल्म होजाताहै और निद्राके अयोग्य रोकनेसे जँभाई आना, अंग टूटना, शिर और आँखोंमें जडता (भारीपन) होना तथा तन्द्रा (ऊंघसी आना) ये उपद्रव होतेहैं ॥ १५ ॥

उदावर्तकी असाध्यता ।

तृष्णार्दितं परिक्लिष्टं क्षीणं शूलैरभिद्रुतम् ॥
शकृद्वमंतं मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् ॥ १६ ॥

तृष्णासे पीडित, क्लेशयुक्त, क्षीण, शूलयुक्त और विष्ठाका वमन करता हुआ ऐसा उदावर्तका रोगी असाध्य (त्यागने योग्य) होताहै ॥ १६ ॥

उदावर्तकी चिकित्सा ।

सर्वेष्वेतेषु विधिवदुदावर्तेषु कृत्स्नशः ॥
वायोः क्रिया विधातव्या स्वमार्गप्रतिपत्तये ॥
सामान्यतः पृथक्त्वेन क्रियां भूयो निबोध मे ॥ १७ ॥

इन सब प्रकारके उदावर्तोंमें समग्रतया ऐसी क्रिया करनी चाहिये जिससे अपने २ मार्गोंमें ठीक २ वायुका संचार होवे (क्योंकि इसमें प्रधान कारण वायुही हुआ करताहै) सामान्यतासे तो मुख्य चिकित्सा सबकी यही है और विशेषतासे सबकी जुदी २ चिकित्सा सुनो (उसे हम अगाडी कहतेहैं ॥ १७ ॥

क्षुधा रोंकने आदिके उदावर्तोंकी चिकित्सा ।

क्षुद्विघाते हितं स्निग्धमुष्णमल्पं च भोजनम् ॥ तृष्णाघाते पिबे-न्मंथं यवागूं वापि शीतलाम् ॥ ३१ ॥ भोज्यो रसेन विश्रांतः श्रमश्वासातुरो नरः॥निद्राघाते पिबेत्क्षीरं स्वप्याच्चेष्टकथारतः॥३२॥

क्षुधा रोंकनेके उदावर्तमें चिकना गरम गरम थोड़ा भोजन देना उचित है और तृषा रोंकनेके उदावर्तमें मंथ पीना या ठंढी यवागू पीना चाहिये ॥ ३१ ॥ श्रमसे बढेहुए श्वासको रोंकनेके उदावर्तमें मांसरसके संग भोजन करावे और निद्रा रोंकनेके उदावर्तमें दूध पीकर अच्छी २ बातें (कहानियें) सुनता हुआ इच्छापूर्वक सोवे ॥ ३२ ॥

आध्मानोत्थेषु रोगेषु यथास्वं प्रयतेत हि ॥
यच्च यस्मिन्भवेत्प्राप्तं तच्च तस्मिन्प्रयोजयेत् ॥ ३३ ॥

उदावर्तमें जो प्रायः अफारा होता है और उससे जो जो शूल आदि रोग होते हैं उनका यथायोग्य प्रयत्न करे जो जो जिस जिस रोगमें यत्न कहे हैं उन रोगोंके यहां होनेमें वही यत्न करने चाहिये ॥ ३३ ॥

अपथ्यभोजनका उदावर्त ।

वायुः कोष्ठानुगो रूक्षैः कषायकटुतिक्तकैः ॥ भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्तं करोति हि ॥ ३४ ॥ वातमूत्रपुरीषासृक्कफमेदो-वहानि वै ॥ स्रोतांस्युदावर्तयति पुरीषं चातिवर्तयेत् ॥ ३५ ॥ ततो हृद्वस्तिशूलार्तो गौरवारुचिपीडितः ॥ वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण कुरुते नरः ॥ ३६ ॥ श्वासकासप्रतिश्यायदाहमोहवमि-ज्वरान् ॥ तृष्णाहिक्काशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान् ॥ लभते च बहूनन्यान्विकारान्वातकोपजान् ॥ ३७ ॥

रूखे भोजन करनेसे, कसेले, चरपरे और कडुवे पदार्थ विशेष खानेसे कोठेका वायु (अपानवायु) कुपित होकर सद्यः ही उदावर्त पैदा करताहै ॥ ३४ ॥ वायु, मूत्र, विष्ठा, रुधिर, कफ, मेद इनके बहनेवाले स्रोतोंमें उदावर्त (ऊर्द्ध विपरीत गति और भ्रमण) करदेताहै और वायु ऊर्द्धगामी होजाताहै और बहुतसे दस्त आकर ॥ ३५ ॥ फिर हृदय और बस्तिमें शूल होताहै, भारीपन और अरुचिकी पीडा होतीहै तथा अधोवायु, मूत्र और दस्त कष्टसे आतेहैं ॥ ३६ ॥ और श्वास,

जृंभाके उदावर्तादिकी चिकित्सा ।

स्नेहस्वेदैरुदावर्तं जृंभाजं समुपाचरेत् ॥ अश्रुमोक्षोऽश्रुजे कार्यः स्निग्धस्विन्नस्य देहिनः ॥२५॥ तीक्ष्णांजनावपीडाभ्यां तीक्ष्णगंधोपहिंसनैः ॥ वर्तिप्रयोगैरथवा क्षवशक्तिं प्रवर्तयेत् ॥ २६ ॥ तीक्ष्णौषधप्रधमनैरथवाऽऽदित्यरश्मिभिः ॥ २७ ॥

जंभाईके रुकनेवाले उदावर्तमें स्नेहन, स्वेदन करना और अश्रु रुकनेके उदावर्तमें स्निग्ध स्वेदन कराके अश्रु निकालदेने उचित हैं ॥ २५ ॥ और छींक रुकनेके उदावर्तमें तीक्ष्ण अंजन करने, अवपीडन नस्य देने, तीक्ष्ण वस्तु सुँघानी अथवा नाकमें बत्ती डालकर छींक लेनी ठीक है तथा तीक्ष्ण औषधोंकी प्रधमन नस्य लेना या सूर्यकी तरफ देखकर सूर्यकी किरणोंका प्रकाश नाकमें पहुँचाके छींक लेना हित है ॥ २६ ॥ २७ ॥

उद्गारजे क्रमोपेतं स्नैहिकं धूममाचरेत् ॥ सुरां सौवर्चलवतीं बीजपूर्णरसान्विताम् ॥ २८ ॥ छर्द्याघातं यथादोषं सम्यक्स्नेहादिभिर्जयेत् ॥ सक्षारलवणोपेतमभ्यंगं चात्र दापयेत् ॥ २९ ॥

डकार रुकनेके उदावर्तमें क्रमयुक्त स्निग्ध धूमपान करे और सुरा (मदिरा) में कालानमक तथा बिजोरे नींबूका रस मिलाकर पीवे ॥ २८ ॥ और वमन रुकनेके उदावर्तमें दोषके अनुसार स्नेहनोंसे उसे जीते और जवाखार नमक मिले (तैलादिकी) मालिश करे ॥ २९ ॥

शुक्रज उदावर्तका यत्न ।

बस्तिशुद्धिकरावापं चतुर्गुणजलं पयः ॥
आवारिनाशात्क्वथितं पीतवंतं प्रकामतः ॥
रमयेयुः प्रिया नार्यः शुक्रोदावर्तिनं नरम् ॥ ३० ॥

शुक्रावरोधज उदावर्तमें वस्ति शुद्ध करनेवाले द्रव्य (गोक्षुरादि) डालकर चौगुना पानी डालकर दूधको उबाले और पानी जलनेतक उबलने दे फिर उसे भरपेट पिलाकर प्यारी स्त्रियोंसे रमण करावे ॥ ३० ॥

(वक्तव्य) इस समयका सुजाक रोग प्रायः इस शुक्रज उदावर्तसे मिलता है ॥

(श्लो० ३०) शुक्रोदावर्ते रमणाय नार्योऽत्र श्यामाऽभिप्रेताः । गौराणा तु अतिरमणं कृच्छ्रकरम् । तदुक्तं हारीते मूत्रकृच्छ्रे "गौरस्त्रीसेवनेनापि रक्तं वापि प्रवर्तते" इति ।

देवदारु, चित्रक, कूट, वच, हरडे, गूगल और पुष्करमूल इन्हें आधे आढक (दो प्रस्थ) पानीमें पकावे ॥ ४२ ॥ चौथाई शेष रहनेपर उतार ले और इसे पीवे यह उदावर्तको नष्ट करताहै और मूलक (कोई मूली कहतेहैं कोई पीपलामूल मानतेहैं) मूली माननेवाले सूखी मूली और गीली मूली ऐसा अर्थ करतेहैं और पिप्पलीमूल माननेवाले पीपलामूल और अदरख ऐसा अर्थ करतेहैं और सोंठी, बृहत्पंचमूल और किरमालेकी फली इन्हे पानीमें काथ करके उसमें घृत पकावे यह घृत पीना सब उदावर्तोंको नष्ट करताहै ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ तथा वच, अतीस, कूट, जौखार, हरडे, पीपल और निर्दहनी (अरणी) इनको गरम जलसे पीवे ॥ ४५ ॥ अथवा इक्ष्वाकु (कटुतुंबी) की जड, मैनफल, इंद्रायन, अतीस, वच, कूट, किण्व (मद्यका बीज) और चित्रक इनको पहलेके भांति गरम पानीसे पीवे ॥ ४६ ॥

मूत्रेण देवदार्वग्निंत्रिफलावृहतीः पिबेत् ॥ ४७ ॥ यवप्रस्थं फलैः सार्द्धं कंटकार्या जलाढके ॥ पक्त्वार्द्धं प्रस्थशेषं तु पिबेद्धिंगुसमन्वितम् ॥ ४८ ॥ मदनालावुबीजानि पिप्पलीं सनिदिग्धिकाम् ॥ संचूर्ण्य प्रधमेन्नाड्यो विशत्येतद्यथा गुदम् ॥ ४९ ॥

अथवा देवदारु, चित्रक, त्रिफला और बडी कटेली इन्हें गोमूत्रके संग पीवे ॥ ४७ ॥ अथवा एक प्रस्थ जौ और कटेलीके फल मिलाके एक आढक जलमें पकावे और आधा प्रस्थ शेष रहनेपर हींग मिलाके इसमेंसे पीवे ॥ ४८ ॥ अथवा मैनफल, कडवी तोंबीके बीज, पीपल और कटेली इन्हें पीस चूर्ण बनाकर नालीसे गुदामें फूँके (अर्थात् नालीमें भरके नाली गुदामें देकर ऐसे फूँक मारे जिससे वह चूर्ण गुदामें चला जावे । यह भी उदावर्तनाशक है) ॥ ४९ ॥

चूर्णं निकुंभकंपिल्लश्यामेक्ष्वाकग्निकोद्भवम् ॥ कृतवेधनमागध्यो लवणानां च साधयेत् ॥ ५० ॥ गवां मूत्रेण ता वर्तीः कारयेत्तु गुदानुगाः ॥ सद्यः शर्मकरावेतौ योगावमृतसंभवौ ॥ ५१ ॥

इति सुश्रुतसं०उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

अथवा दंती, कमेला, निशोथ, कडवी तुंबी, चित्रक, कडवी तोरी और पीपल तथा पांचों नमक इनको गोमूत्रमें पीसकर बत्ती बनावे और गुदामें प्रवेश करदे ये दोनों योग (एक ऊपरवाली नालीसे गुदामें औषध पहुँचना और दूसरे यह बत्ती) उदावर्त रोगवालेके लिये अमृतके समान हैं और तत्काल आराम करनेवाले हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥

इति प०मुरलीधरवि०सुश्रुतस०भा०टी०उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां पंचपचाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

खांसी, प्रतिश्याय, दाह, मोह, वमन, ज्वर, तृषा, हुचकी, शिरमें पीडा, मन और श्रवण (शब्द सुनने) का भ्रम ये उपद्रव होतेहें तथा अन्य वायुके बहुतसे विकार भी होजातेहैं जैसे कंप आदि ॥ ३७ ॥

(वक्तव्य) कभी तो यह व्याधि दस्त बहुतसे आ आ कर बढतीहै और कभी दस्त, पेशाव, अधोवायु ये बंद होकर बढतीहे ॥

उदावर्तकी चिकित्सा ।

तत्तैलं लवणाभ्यक्तं स्निग्धं स्विन्नं निरूहयेत् ॥ दोषतो भिन्न-वर्चस्कं भुक्तं चाप्यनुवासयेत् ॥ ३८ ॥ न चेच्छांतिं प्रयात्येव-मुदावर्तः सुदारुणः ॥ अथैनं बहुशः स्विन्नं युंज्यात्स्नेहविरेचनैः ॥ ॥ ३९ ॥ पाययेत त्रिवृत्पीलुयवानीरम्लपानकैः ॥ हिंगुकुष्ठवचा-स्वर्जिविडंगं वा द्विरुत्तरम् ॥ ४० ॥ योगावेतावुदावर्तं शूलं चापि नियच्छतः ॥ ४१ ॥

इस उदावर्तवाले रोगीको लवण मिले तैलका मर्दन कराके स्निग्ध कियेहुएको स्वेदन करावे और निरूहण वस्ति करे और दोषके कारणसे पुरीष भिन्न होगया हो तो उसे उचित भोजन कराकर अनुवासनवस्ति करे ॥ ३८ ॥ और यदि दारुण बढाहुआ उदावर्त हो और इस विधिसे शांत न हो तो रोगीको बहुतसा स्वेदित करके स्नेहका (एरंडतैलादिका) विरेचन देवे ॥ ३९ ॥ और निशोथ, पीलु, अजवायन इन्हें खट्टे पन्नोंके संग पीलेवे अथवा हींग, हींगसे दूनी कूट, कूटसे दूनी वच, वचसे दूनी सज्जीखार और इससे दूनी विडंग इन्हें लेवे ॥ ४० ॥ ये दोनों योग उदावर्त और शूलको नष्ट करदेतेहैं ॥ ४१ ॥

देवदार्वग्निकं कुष्ठं वचां पथ्यां पलंकषाम् ॥ पौष्कराणि च मूलानि तोयस्यार्द्धाढकं पचेत् ॥ ४२ ॥ पादावशिष्टं तत्पीतमुदावर्तं व्यपोहति ॥ मूलकं शुष्कमार्द्रं च वर्षाभूः पंचमूलकम् ॥ ४३ ॥ आरेवतफलं चाप्सु पक्त्वा तेन घृतं पचेत् ॥ तत्पीयमानं शमये-दुदावर्तमशेषतः ॥४४॥ वचामतिविषां कुष्ठं यवक्षारं हरीतकीम् ॥ कृष्णां निर्दहनीं चापि पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ४५ ॥ इक्ष्वाकुमूलं मदनं विशल्यातिविषे वचाम् ॥ कुष्ठं किण्वाग्निकौ चापि पिबे-त्तुल्यानि पूर्ववत् ॥ ४६ ॥

कूख अत्यन्त फूलजावे, अँधेरीसी आवे, आंतें बोलें, अधोवायु रुकजावे और कूखोंमें ऊपर ऊपरको चढे ॥ ५ ॥ वायु और दस्त रुकजावें और कूखमें दरद हो, हुचकी और डकारें आवें ये लक्षण जिसके हों उसके अलस रोग (विसूचिकाका भेद) जानना ॥ ६ ॥

विलंबिकाके लक्षण ।

दुष्टं तु भुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्तते नोर्द्ध्वमधश्च यस्य ॥
विलंबिकां तस्य विवर्जनीयामाचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः ॥ ७ ॥

जिसके कियाहुआ भोजन कफ और वायुसे दुष्ट होकर न ऊपरको वमनसे निकलताहै और न नीचेको दस्तसे निकलताहै उसके शास्त्रज्ञ पुराने वैद्य असाध्य (त्यागने योग्य) विलंबिका (बंध हैजा) कहतेहैं ॥ ७ ॥

यत्रस्थमामं विरुजेत्तमेव देशं विशेषेण विकारजातैः ॥
दोषेण येनावततं स्वलिंगैस्तं लक्षयेदामसमुद्भवैश्च ॥ ८ ॥

जिस जगह आम (विना पका भोजन) होताहै उसी स्थानमें विकारसे विशेष पीडा होतीहै (वहां ही दरद होतीहै) और जिस दोषसे वह व्याप्त होवे उसीके लक्षणोंसे उसे जानना चाहिये जो जो आमके दोषसे उपद्रव होतेहैं उन्हें इसी भांति जानना चाहिये ॥ ८ ॥

विसूचीकी असाध्यता ।

यः श्यावदंतौष्ठनखोऽल्पसंज्ञश्छर्द्यर्दितोऽभ्यंतरयातनेत्रः ॥
क्षामस्वरः सर्वविमुक्तसंधिर्यायान्नरोऽसौ पुनरागमाय ॥ ९ ॥

जिसके दांत, होंठ, नख ये काले पडजावे, संज्ञा घटजावे, वमनकी पीडासे नेत्र भीतरको घुसजावें, आवाज बैठजावे, सब संधियां ढीली पडजावें ऐसा विसूचीका रोगी मृत्युको प्राप्त होवे ॥ ९ ॥

विसूचीकी चिकित्साका निर्देश ।

साध्यासु पार्ष्ण्योर्दहनं प्रशस्तमग्निप्रतापो वमनं च तीक्ष्णम् ॥
पक्वे ततोऽन्ने तु विलंघनं स्यात्संपाचनं चापि विरेचनं वा ॥ १० ॥

साध्यविसूची और अलसादिमें पार्ष्णिस्थान (टकने) में दाग देना श्रेष्ठ होता है और अग्निसे तपाना, तीक्ष्ण वमन कराना और भोजन पकनेपर लंघन कराना और पकता न हो तो पाचन औषध देना अथवा विरेचन देके निकाल देना उचित है ॥ १० ॥

षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ५६.

अथातो विसूचिकाप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम विसूचिका (हैजे) के प्रतिषेधका व्याख्यान करतेहैं ।

विसूचीका हेतु और निरुक्ति ।

अजीर्णमामं विष्टब्धं विदग्धं च यदीरितम् ॥ विसूच्यलसकौ तस्माद्भवे च्चापि विलंबिका ॥ १ ॥ सूचीभिरिव गात्राणि तुदन्संतिष्ठतेऽनिलः ॥ यस्याजीर्णेन सा वैद्यैरुच्यते तु विसूचिका ॥ २ ॥

पहले जो आम विष्टब्ध और विदग्ध अजीर्ण कहा जा चुका है उसीसे विसूची, अलस और विलंबिका रोग होतेहैं ॥ १ ॥ जिसके अजीर्णमें सूईके चुभनेकेसी पीडा देता हुआ वायु स्थित होजावे (न नीचेको अधोवायुसे निकले न ऊपरको डकारसे) तब उसे वैद्य विसूचिका कहतेहैं ॥ २ ॥

न तां परिमिताहारा लभंते विदितागमाः ॥
मूढास्तामजितात्मानो लभंतेऽशनलोलुपाः ॥ ३ ॥

जो विचारपूर्वक प्रमाणका यथायोग्य भोजन करनेवाले बुद्धिमान् होतेहैं उन्हें यह व्याधि नहीं होती और जो मूर्ख अजितेंद्रिय और खानेके लालची विशेष होतेहैं उनको हुआ करतीहै ॥ ३ ॥

विसूचिकाके उपद्रवसहित लक्षण ।

मूर्च्छातिसारौ वमथुः पिपासा शूलं भ्रमोद्वेष्टनजृंभदाहाः ॥
वैवर्ण्यकंपौ हृदये रुजश्च भवंति तस्यां शिरसश्च भेदः ॥ ४ ॥

इस विसूचीरोगमें मूर्च्छा, अतिसार, वमन, प्यास, शूल, भ्रम, उद्वेष्टन, जंभाई, दाह, वर्ण बिगडजाना, कंप होना, हृदयमें पीडा और शिरमें वेदना ये लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥

अलसके लक्षण ।

कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं ताम्यत्यथ च कूजति ॥ निरुद्धो मारुतश्चापि कुक्षावुपरि धावति ॥ ५ ॥ वातवर्चोनिरोधश्च कुक्षौ यस्य भृशं भवेत् ॥ तस्यालसकमाचष्टे हिक्कोद्गारौ तु यस्य तु ॥ ६ ॥

(श्लो० ३) विदितागमाः आयुर्वेदज्ञाः । अजितात्मानः क्षुद्रमनसः अजितेंद्रियाश्च । (श्लो० ५) कुक्षौ उपरि धावतीति कुक्षौ उदरे च उपरि उपरि धावतीत्यर्थः ।

पीपल, अजमोद, और क्षवक (राई) इनको अथवा पीपल और दंतीको बराबर पीवे अथवा दंती और पीपलके कल्कको कडवी तोरीके रससे पीवे अथवा पीपल और सोंठके कल्कको गरम पानीसे पीवे ॥ १५ ॥ और त्रिकटु, करंजके फल, दोनों हलदी और बिजोरेकी जड इनको समान भाग लेकर गोली बनाके छायामें सुखाले इनका नेत्रोंमें अंजन लगानेसे विसूची नष्ट होवे ॥ १६ ॥

भोजनका उपदेश ।

सुवांतितं साधु विरेचितं वा सुलंघितं वा मनुजं विदित्वा ॥
पेयादिभिर्दीपनपाचनीयैः सम्यक् क्षुधार्तं समुपक्रमेत ॥ १७ ॥

अच्छी तरह वमन हुआ या विरेचन दिया या लंघन किया इत्यादि प्रकारसे शुद्ध हुए मनुष्यको सब तरह ठीक क्षुधा लगी ऐसा जानकर उसे दीपन, पाचन और पेयादि भोजन देने चाहिये ॥ १७ ॥

आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानिलेन ॥
प्रवर्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरंति ॥ १८ ॥
तस्मिन्भवत्यामसमुद्भवे तु तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः ॥
आमाशये शूलमथो गुरुत्वं हृल्लासउद्गारविघातनं च ॥ १९ ॥
स्तंभः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रे शूलोऽथ मूर्च्छा च शकृद्वमिश्च ॥
श्वासश्च पक्वाशयजे भवंति लिंगानि चात्रालसकोद्भवानि ॥ २० ॥

यदि क्रमसे संचित हुए आम या मल विगुण वायुसे रुककर यथायोग्य प्रवृत्त नहीं होते तो इसे आनाहका विकार कहते हैं ॥ १८ आमके दोषसे हुए आनाहमें तृषा, प्रतिश्याय, शिरमें गरमी, आमाशयमें शूल और भारीपन, जी मिचलाना और डकारें बंद होना ये लक्षण होते हैं ॥ १९ ॥ कमर, पीठ, दस्त और मूत्र ये बंद होजावें, शूल और मूर्च्छा हो और विष्ठाकैसी वमन हो, श्वास हो ये लक्षण पक्वाशयज (पुरीषज) आनाहके हैं तथा येही लक्षण अलसके भी होते हैं (अथवा इसीसे अलसके लक्षण पैदा होजाते हैं अर्थात इसीसे अलस होजाता है) ॥ २० ॥

आनाहकी चिकित्सा ।

आमोद्भवे वांतमुपक्रमेत संसर्गभक्तक्रमदीपनीयैः ॥
अथेतरं यो न शकृद्भमे तमामं जयेत्स्वेदनपाचनैश्च ॥ २१ ॥

(श्लो० २१) संसर्गभक्तक्रमः पेयादिक्रमः (इति नि० सं०) इतरं पक्वाशयानाहम् ।

विशुद्धदेहस्य हि सद्य एव मूर्च्छातिसारादिरुपैति शांतिम् ॥
आस्थापनं चापि वदंति पथ्यं सर्वासु योगामपरान्निबोध ॥ ११ ॥

जब वमन, रेचनादिसे शरीर शुद्ध होजाताहै तब मूर्च्छा, अतिसारादिक उपद्रव शांत होजातेहैं और इस अवस्थामें आस्थापनवस्तिको भी पथ्य कहतेहैं इनके सिवाय सबके लिये और योग सुनों ॥ ११ ॥

पथ्यावचाहिंगुकलिंगगृंजसौवर्चलैः सातिविषैश्च चूर्णम् ॥
सुखांबुपीतं विनिहंत्यजीर्णं शूलं विसूचीमरुचिं च सद्यः ॥ १२ ॥

हरडे, वच, हींग, इन्द्रजौ, लहसन, कालानमक और अतीस इनका चूर्णकर गरम पानीसे पीवे यह अजीर्ण, शूल, विसूची और अरुचि इनको तत्काल नष्ट करताहै ॥ १२ ॥

क्षारागदं वा लवणं विडं वा गुडप्रगाढानथ सर्षपान्वा ॥
अम्लेन वा सैंधवहिंगुयुक्तौ सबीजपूर्णौ सघृतौ त्रिवर्गौ ॥ १३ ॥
कटुत्रिकं वा लवणैरुपेतं पिबेत्स्नुहीक्षीरविमिश्रितं तु ॥
कल्याणकं वा लवणं पिबेत्तु यदुक्तमाँदावनिलामयेषु ॥ १४ ॥

कल्पस्थानके दुंदुभिस्वनीयाध्यायोक्त क्षारागदका उपयोग करे अथवा बिडनमक खावे अथवा गुडमें सरसों मिलाके अम्लरससे पीवे अथवा सैंधव, हींग, बिजोरा, घृत और त्रिवर्ग (कई त्रिफला, कई त्रिगन्ध कहतेहैं, कोई त्रिफला, त्रिकटु दोनों कहतेहैं) को मिलाकर सेवन करे ॥ १३ ॥ अथवा त्रिकटुमें नमक और थोहरका दूध मिलाके पीवे अथवा कल्याणलवण जो वातव्याधिमें कहाहै उसे पीवे ॥ १४ ॥

कृष्णाजमोदक्षवकाणि वापि तुल्यौ पिबेद्वा मगधानिकुंभौ ॥
दंतीयुतं वा मगधोद्भवानां कल्कं पिबेत्कोषवतीरसेन ॥
उष्णाभिरद्भिर्मगधोद्भवानां कल्कं पिबेन्नागरकल्कयुक्तम् ॥ १५ ॥
व्योषं करंजस्य फलं हरिद्रे मूलं समं वाप्यथ मातुलुंग्याः ॥
छायाविशुष्का गुटिकाः कृतास्ता हन्युर्विसूचीं नयनांजनेन ॥ १६ ॥

(श्लो० १२) गृंज लशुनम् । केचित्पलाण्डुमाहुः । (श्लो० १३) त्रिवर्गौ द्विवचनवशेन त्रिफलात्रिकटुकौ एव ज्ञेयौ ।

दोषैः पृथक्सह च चित्तविपर्ययाच्च भक्तायनेषु हृदि चावतते प्रगाढम् ॥ नान्ने रुचिर्भवति तं भिषजो विकारं भक्तोपघात-मिह पंचविधं वदंति ॥ १ ॥

तीन दोषों वायु, पित्त और कफ इनसे पृथक् पृथक्, चौथे सन्निपातसे, पांचवें चित्तके विगड जानेसे (शोक, भयादिसे), भोजनके मार्गों (जिह्वा, जिह्वामूल और आहारनलका आदि) तथा हृदय इनमें प्रगाढता प्राप्त होजाती है जिससे अन्नपर रुचि नहीं होती और भोजन नहीं खाया जाता इस अरुचि विकारको वैद्य उक्त क्रमसे पांच प्रकारका कहते हैं ॥ १ ॥

(वक्तव्य) भक्तोपघात शब्दसे अरुचि, भक्तद्वेष और अभक्तच्छंद इत्यादि भोजन नहीं खाया जानेके सभी पर्यायोंका ग्रहण होता है कई वैद्य इनके लक्षण पृथक् २ मानते हैं परन्तु चरक, सुश्रुत आर्ष ग्रंथोंमें इसके पृथक् भेद नहीं किये हां भोजसंहितामें इनके जुदे लक्षण लिखे हैं पर उन्हें कई वैद्य ठीक नहीं मानते क्योंकि भोजने लिखा है कि–"प्रक्षिप्तं तु मुखे चान्नं यत्र नास्वादते नरः ॥ अरोचकः स विज्ञेयो भक्तद्वेषमतः शृणु ॥ १ ॥ चिंतयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा तु भोजनम् ॥ द्वेषमायाति यो जंतुर्भक्तद्वेषः स उच्यते ॥ २ ॥" अर्थात् मुखमें डाला-हुआ अन्न नहीं भावे उसे वे अरुचि कहते हैं परंतु वास्तवमें अरुचि वह होती है जिसमें अन्नकी तरफ रुचिही न हो इसी प्रकार वे भक्तद्वेष चिन्तवनादिसे द्वेष होनेको मानते हैं और वास्तवमें भोजन खाये जाने या मुखमें लेनेसे द्वेष जब हो तब भक्तद्वेष कहाजाता है इसीसे उन भोजोक्त लक्षणोंको कई वैद्य विरुद्ध मानकर अंगीकार नहीं करते ।

वास्तवमें जिसमें अन्नपर रुचिही न हो उसे अरुचि समझिये और जिसमें रुचि तो भोजनपर हो परंतु मुँहमें लेतेही बुरा लगे या उकलाई आजावे उसे भक्तद्वेष जानना चाहिये ।

अरुचिके लक्षण ।

हृच्छूलपीडनयुतं विरसाननत्वं वातात्मके भवति लिंगमरोचके तु ॥ हृद्दाहचोषबहुता मुखतिक्तता च मूर्च्छा सतृड् भवति पित्तकृते तथैव ॥२॥ कंडूगुरुत्वकफसंस्रवसादतंद्राश्लेष्मात्मके मधुरमास्यमरोचके तु ॥ सर्वात्मके पवनपित्तकफा बहूनि रूपाण्यथास्य हृदये

आमज आनाहमें पेयादिक्रमसे जो दीपन हो वायुको शांत करे और दूसरेमें जो विष्ठाकी वमन न करता हो उसके आमको स्वेदन और पाचनोंसे पकावे ॥ २१ ॥

विसूचिकायां परिकीर्तितानि द्रव्याणि वैरेचनिकानि यानि ॥
तान्येव वर्तीर्वितरेद्विचूर्ण्य माहिष्यजावीभगवां तु मूत्रैः॥ २२॥
स्विन्नस्य पायौ विनिवेश्य ताश्च चूर्णानि चैषां प्रधमेत्तु नाड्या ॥२३॥

विसूचिकामें जो विरेचन द्रव्य (दंती आदि) कहे हैं उन्हें ही पीसकर भैंस, बकरी, भेड, हथिनी और गौ इनके मूत्रसे बत्ती बनावे और रोगीको स्वेदन कराकर उसकी गुदामें वह बत्ती प्रविष्टकरे अथवा इस चूर्णको नाली द्वारा गुदामें प्रधमन करे ॥ २२ ॥ २३ ॥

मूत्रेण संसाध्य यथाविधानं द्रव्याणि यान्यूर्द्ध्वमधश्च यांति ॥
क्वाथेन तेनाशु निरूहयेच्च मूत्रार्द्धयुक्तेन समाक्षिकेन ॥ २४ ॥
त्रिभंडियुक्तं लवणप्रकुंचं दत्त्वा विरिक्तक्रममाचरेच्च ॥
एभ्यैर्व तैलेन च साधितेन प्राप्तं यदि स्यादनुवासयेच्च ॥ २५ ॥

इति सुश्रुतसं०उत्तरतन्त्रे कायचिकित्सायां षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

जो द्रव्य ऊर्द्धगामी तथा अधोगामी हैं अर्थात् वमन और विरेचनको प्रवृत्त करनेवाली हैं उनको यथायोग्य गोमूत्रमें सिद्धकर और उन्हींका क्वाथकर उनमें आधा गोमूत्र और शहद मिलाकर निरूहणवस्ति करना श्रेष्ठ है ॥२४॥ तथा निशोथ और एक प्रकुंच (पल) लवण देवे और विरेचनकासा क्रम (पथ्यादि) करावे और इन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए तैलसे यदि उचित हो तो अनुवासन वस्ति करे ॥ २५ ॥

यूनानीवाले इसे " हैजा " कहते हैं और डाक्टरीमें " कालरा " (Cholera) कहते हैं, यह महाभयंकर व्याधि है इसके समान शीघ्र मारक अन्य कोई व्याधि प्रायः नहीं है ।

इति प०मुरलीधरवि०सुश्रुतस०भा०टी०उत्तरतन्त्रे कायचिकित्सायां षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ५७.

अथातोऽरोचकप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम अरुचिके प्रतिषेधके अध्यायका व्याख्यान करते हैं ।

(श्लो० २२) इभकथनेन हस्तिनी ग्राह्या ।

की अरुचिमें जो चूर्ण कहाहै वही देवे और संनिपातकी अरुचिमें सब यत्न करे (जो दोष उल्वण हो उसीके प्रधानयत्नपूर्वक मिश्रित यत्न करे) ॥ ६ ॥

द्राक्षापटोलविडवेत्रकरीरनिंबमूर्वाभयाक्षबदरामलकेंद्रवृक्षैः ॥ वीजैः करंजनृपवृक्षभवैश्च पिष्टैर्लेहं पचेत्सुराभिमूत्रयुतं यथावत् ॥७॥ मुस्तां वचां त्रिकटुकं रजनीद्वयं च भार्ङ्गीं च कुष्ठमथ निर्दहनीं च पिष्ट्वा ॥ मूत्रेविजे द्विरदमूत्रयुते पचेद्वा पाठां तु गामतिविषां रजनीं च मुख्याम् ॥८॥ मांडूकिमर्कममृतां च सलांगलाख्यां मूत्रे पचेत्तु माहिषस्य विधानविद्वा ॥ एतान्नि संति चतुरो लिहतस्तु लेहान्गुल्मारुचिश्वसनकंठहृदामयाश्च ॥ ९ ॥

दाख, परवल, बिडलवण, वेत, करीर, नींब, मूर्वा, हरडे, बहेडा, आंवले, बेर, इन्द्रजौ, करंज और अमलतासके बीज इन्हे पीसकर गोमूत्रसे पकाकर लेह (चटनी) बनावे ॥ ७ ॥ अथवा नागरमोथा, वच, त्रिकटु, दोनों हलदी, भारंगी, कूट और निर्दहनी (चित्रक या अरनी) इनको पीसकर भेडके मूत्रमें पकाके अवलेह बनावे अथवा पाठा, वंशलोचन (तवाशीर), अतीस और हलदी इनको पीसके हाथीके मूत्रमें पकाके चटनी बनावे ॥ ८ ॥ अथवा मांडूकी (ब्राह्मीभेद) आक (आकके फूलका जीरा), गिलोय और लांगलाख्या (पृश्निपर्णी) इनको पीस भैंसके मूत्रमें पकाके विधि जाननेवाला वैद्य चटनी बनावे इन चारों अवा, लेहोंके चाटनेसे गुल्म, अरुचि, श्वास तथा कंठ और हृदयके रोग नष्ट होजातेहैं॥९॥

अरुचिमें पथ्य ।

सात्म्यान्स्वदेशरचितान्विविधांश्च भक्ष्यान् पानानि मूलफलषाडवरागयोगान् ॥ अद्याद्रसांश्च विविधान् विविधैः प्रकारैर्भुजीत वापि लघुरूक्षमनःसुखानि ॥ १० ॥

जो सानुकूल हों (माफकत हों) अपने देशके अनेक प्रकारसे बने हुए भक्ष्य पदार्थ तथा पीनेके पदार्थ और मूल, फल तथा षाडव (खाटे कढी आदिके) पदार्थ और जो अच्छे लगें ऐसे पदार्थ खावे और अनेक प्रकारके रसों और (शोरवों) को अनेक प्रकारसे खावे तथा हलके, रूखे और मनको सुख देनेवाले पदार्थ खाने पीने उचित होते हैं ॥ १० ॥

(श्लो० ९) सलागलाख्यामिति–लागला पृश्निपर्णी (इति शा० नि०) (श्लो० १०) अरोचके मुख्यत्वेन कफः । तस्माद्रूक्षस्योपयोगोऽहितः तथा शीघ्रपाकित्वाल्लघुपदार्थस्योपयोगः तथा चारोचकस्य: मनोपि अधिष्ठ नं तस्मान्मनसुखानि पदार्थानि उपयोज्यानीति ।

समुदीरयंति ॥ ३ ॥ संरागशोकभयविप्लुतचेतसस्तु चिंताकृतो भवति सोऽशुचिदर्शनाच्च ॥ ४ ॥

वायुकी अरुचिमें ये लक्षण होते हैं-हृदयमें शूल और पीडा हो, मुँह विरस हो और पित्तकी अरुचिमें हृदयमें दाह, चोष, मुँहमें बहुत कड़वापन, मूर्च्छा, तृषा ये लक्षण होते हैं ॥ २ ॥ और कफकी अरुचिमें ये लक्षण होते हैं कि खाज हो, भारीपन रहे, मुँहसे कफ या पानी झिरे, शिथिलता हो, तंद्रा और मुँह मीठा रहे और सन्निपातके अरोचकमें वायु, पित्त, कफ सबके लक्षण हों और मुख तथा हृदयमें भी अनेक रूप मालूम पडें ॥ ३ ॥ और रागसे या शोकसे या भयसे या अशुद्ध खराब वस्तुके देखनेसे जो चित्त बिगड़ जाता है उसको प्रायः उसी भांतिकी विशेष चिंता रहती है ॥ ४ ॥

अरुचिकी चिकित्सा ।

वाते वचांबुवमनं कृतवान्पिबेच्च स्नेहैः सुराभिरथवोष्णजलेन चूर्णम् ॥ कृष्णाविडंगयवभस्महरेणुभार्ङ्गीरास्नैलाहिंगुलवणो-त्तमनागराणाम् ॥ ५ ॥

वायुकी अरुचि हो तो वचके जलसे वमन कराकर पीपल, विडंग, जौकी राख, हरेणु, भारंगी, रास्ना, इलायची, हींग, सैंधानमक और सोंठ इनके चूर्णको स्नेहसे या मदिरासे या गरम पानीसे पीवे ॥ ५ ॥

पित्ते गुडांबुमधुरैर्वमनं प्रशस्तं स्नेहैः ससैंधवसितामधुसर्पिरिष्टैः ॥ निंबांबुवामितवतः कफजेऽनुपानं राजद्रुमांबुमधुना तु सदीप्यकं स्यात् ॥ चूर्णं यदुक्तमथवाऽनिलजं तदेव सेवेश्च सर्वकृतमेव-मुपक्रमेत ॥ ६ ॥

पित्तकी अरुचिमें गुडके जल, और मधुर द्रव्योंसे वमन करावे और सैंधा नमक, मिश्री, शहद, घृत इनसे युक्त स्नेह देवे (अर्थात् मक्खन, मिश्री या शहद आदि डालकर चटावे) कफकी अरुचिमें नींबके क्वाथसे वमन कराके किर-मालेके क्वाथमें अजमोदा युक्त करके शहद मिलाके ऊपरसे पिलावे अथवा वायु-

---

(श्लो० ४) सरागः कामः अथवा उत्साहः संरागादिभिर्विप्लुतचेतसः विप्लुतचित्तात् उत्सादेपि कदाचित्तद्भ्रमचित्तत्वादरुचिः सजायते तथा अपवित्रदर्शनादेश्च स अरोचकः चिताकृतो भवतीति भावः । डल्हनस्तु इत्याह-विप्लुतचित्तस्य अशुचिदर्शनात् चिताकृतस्य च अरोचकस्य वातादिभेदेन लक्षणानि पठति इति ।

इच्छाके भंग होनेसे, भयसे और शोकसे अंतराग्निके नष्ट होने (अरुचि होने) में यथाशक्ति उन्हीं उन भावोंके होनेका यत्न करे (भयशोकमें उन्हें दूर करनेका यत्न करे) और धनसंतानादिके नष्ट होनेके कारणसे हो तो उनके फिर होजाने आदि कथनोंसे संतोष दिलावे तथा पुराणोंकी कथा आदि सुनाकर मनको संतोष करावे ॥ १४ ॥ और जो मनमें दीनता (गरीबी सुस्ती या वैराग्य) आजानेसे हो तो उसे ज्ञान देना (शिक्षा करना) ही श्रेष्ठ होताहै और जो उसे अच्छा लगे वही इस अरुचिमें सेवन करावे ॥ १५ ॥

यूनानी हकीम अरुचिको "जूउलवकर" कहतेहैं तथा एकप्रकारकी अरुचिको "नुकसान" और "बतलान शहवततुआम" कहतेहैं अर्थात् भक्तद्वेषको जूउलवकर और अरुचि (क्षुधानाश) को नुकसान और बतलान शहवततुआम कहतेहैं ॥

इति प० मुरलीधरवि० सुश्रुतस० भा० टी० उत्तरतन्त्रे कायचिकित्सायां सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५७॥

अष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ५८.

अथातो मूत्राघातप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम मूत्राघात (मूत्र बंद हो जाने) के प्रतिषेधके अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ।

वातकुंडलिकाष्ठीला वातबस्तिस्तथैव च ॥ मूत्रातीतः सजठरो मूत्रोत्संगः क्षयस्तथा ॥ १ ॥ मूत्रग्रंथिर्मूत्रशुक्रमुष्णवातस्तथैव च ॥ मूत्रौकसादौ द्वौ चापि रोगा द्वादश कीर्तिताः ॥ २ ॥

वातकुंडलिका, वाताष्ठीला, वातबस्ति, मूत्रातीत, मूत्रजठर, मूत्रोत्संग, मूत्रक्षय॥ ॥ १ ॥ मूत्रग्रंथि, मूत्रशुक्र और उष्णवात और दो प्रकारके मूत्रौकसाद (एक पित्तका मूत्रौकसाद, दूसरा कफका) इस भांतिसे मूत्राघात १२ प्रकारका होताहै (अर्थात् मूत्रावरोधसंबंधी ये बारह प्रकारके रोग होते हैं) ॥ २ ॥

वातकुंडलिकाके लक्षण ।

रौक्ष्याद्वेगाविघाताद्वा वायुर्बस्तौ सवेदनम् ॥ मूत्रं संगृह्य चरति विगुणः कुंडलीकृतः ॥ ३ ॥ सृजेदल्पाल्पमथवा सरुजस्कं शनैः शनैः ॥ वातकुंडलिकां तां तु व्याधिं विद्यात्सुदारुणम् ॥ ४ ॥

रूक्ष पदार्थोंके सेवनसे रूक्षता होनेपर अथवा मूत्र और मलके वेग रोंकनेसे विगुण हुआ वायु बस्तिस्थानमें प्राप्त होकर वेदनासहित मूत्रको रोंककर कुंडलाकार

आस्थापनं विधिवदत्र विरेचनं च कुर्यान्मूर्द्धनि शिरसश्च विरेचनानि ॥ त्रीण्यूषणानि रजनीत्रिफलायुतानि चूर्णीकृतानि यवशूकविमिश्रितानि ॥ ११ ॥ क्षौद्रायुतानि वितरेन्मुखधावनार्थमन्यानि तिक्तकटुकानि च भेषजानि ॥ मुस्तादिराजतरुवर्गदशांगसिद्धैः क्वाथैर्जयेन्मधुयुतैर्विविधैश्च लेहैः ॥ १२ ॥ मूत्रासवैर्गुडकृतैश्च तथारिष्टैः क्षारासवैश्च मधुमाधवतुल्यगंधैः ॥ स्यादेष एवं कफवातहते विधिश्च शांतिं गते हुतभुजि प्रशमाय तस्य १३॥

यहाँ विधिपूर्वक आस्थापनवस्ति भी करे और विरेचन भी देवे और हलका शिरोविरेचन भी करे और त्रिकटु, हलदी, त्रिफला, जवाखार इनका चूर्ण बनाकर उपयोग करे ॥ ११ ॥ और इस चूर्णमें शहद मिलाकर (जलसे पतला करके) कुल्ले करे तथा और कडुवे चरपरे औषध करे (जैसे अदरख और नमक मिलाके खाना इत्यादि) अथवा मुस्तादि और आरग्वधादि गण और दशमूल इनके क्वाथमे शहद मिलाके अनेक प्रकारके अवलेह बनावे और उन्हें अरुचिमें उपयोग करे ॥ १२ ॥ मूत्रासवोंसे, गुडके अरिष्टोंसे तथा क्षारासवोंसे तथा शहदवाले अथवा शहदके पदार्थोंकेसी गंधवाले आसवोंसे अरुचिका उपचार करे और जब कफ, वायुसे जठराग्नि मंद होजातीहै तब भी उसके शमन करनेको यही विधि करनी श्रेष्ठ होती है ॥ १३ ॥

इच्छाभिघातभयशोकहतेऽतरग्नौ भावान्भवाय वितरेत्खलु शक्यरूपान् ॥ अर्थेषु चाप्युपचितेषु पुनर्भवाय पौराणिकैः श्रुतिपथैरनुभावयेत्तम् ॥ १४ ॥ दैन्यं गते मनसि बोधनमत्र शस्तं यद्यत्प्रियं तदुपसेव्यमरोचके तु ॥ १५ ॥

इति सुश्रुतसं०उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायां सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

(श्लो०११)यद्यपि तेजोन्मादभयशोकेत्यादिना अरोचके आस्थापननिषेधः तथापि वमनादिक्रमोत्तरकाले वातनिबद्धे सति देयं न च आदौ (इति नि० सं०) । (श्लो० १२) मुखधावनार्थं मुखशुद्ध्यर्थंकवलगण्डूषादिभिर्मुखशोधनार्थमिति भावः । दशांगं दशमूलम् । (श्लो० १३) मूत्रासवैर्गुडकृतैः कुष्ठचिकित्सितोक्तविधिना गुडमध्वादिकृतैरित्यर्थः । अरिष्टैः अभयारिष्टादिभिः । क्षारासवैः मध्वादिभिः पलाशक्षारपानीयेन सह निष्पादितैर्महाकुष्ठाभिहितैः । मधुमाधवतुल्यगंधैरिति—मधु क्षौद्रं माधवं मधुकृतं तयोस्तुल्यगंधैः (इति नि० सं०)

मूत्रजठर और मूत्रोत्संगके लक्षण ।

मूत्रस्य विहते वेगे तदुदावर्तहेतुना ॥ अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद्भृशम् ॥ ११ ॥ नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनम् ॥ तं मूत्रजठरं विद्यादधोवस्तिनिरोधजम् ॥ १२ ॥ वस्तौ वाप्यथवा नाले मणौ वा यस्य देहिनः ॥ मूत्रं प्रवृत्तं सज्जेत सरक्तं वा प्रवाहतः ॥ १३ ॥ स्रवेच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वाऽथ नीरुजम् ॥ विगुणानिलजो व्याधिर्मूत्रसंगः स संज्ञितः ॥ १४ ॥

मूत्रके वेग रोंकनेसे उदावर्तके कारणसे अपान वायु कुपित होकर पेटको अत्यंत पूरण करदे (फुलादे) ॥ ११ ॥ और नाभिके नीचे तीव्रवेदनावाला आध्मान (अफारा) पैदा करदेवे तो इसे "मूत्रजठर" रोग कहते हैं यह वस्तिके अधोभागके निरोधसे होताहै ॥ १२ ॥ जिस मनुष्यके वस्तिमें या नालीमें मणि (लिंगके अग्रभाग) में प्रवृत्त हुआ मूत्र रुकजावे और प्रवाहण करनेसे थोडा धीरे धीरे निकले अथवा रक्तसहित निकले, पीडा होवे या न होवे विगुणवायुसे पैदा हुई यह व्याधि "मूत्रोत्संग" संज्ञक होतीहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

मूत्रक्षय और मूत्रग्रंथिके लक्षण ।

रूक्षस्य क्लांतदेहस्य वस्तिस्थौ पित्तमारुतौ ॥ सदाहवेदनं कृच्छ्रं कुर्य्यातां मूत्रसंक्षयम् ॥ १५ ॥ अभ्यंतरे वस्तिमुखे वृत्तोऽल्पः स्थिर एव च ॥ वेदनावाननिस्यंदी मूत्रमार्गनिरोधनः ॥ १६ ॥ जायते सहसा यस्य ग्रंथिरश्मरिलक्षणः ॥ स मूत्रग्रंथिरित्येवमुच्यते वेदनादिभिः ॥ १७ ॥

रूक्ष और क्लांत देहवालेके वस्तिस्थानमें पित्त और वायु प्राप्त होकर दाह, वेदना और कृच्छ्रसहित मूत्रका क्षय करतेहैं इसे "मूत्रक्षय" कहतेहैं (यह मूत्रके शोषण होनेसे होताहै) ॥ १५ ॥ वस्ति (मसाने) के मुँहपर भीतरको छोटी, गोल, स्थिर वेदनावाली और न झिरनेवाली मूत्रके मार्गको रोंकनेवाली ॥ ॥ १६ ॥ अकस्मात् जिसके मूत्रकी गांठसी बँधजावे और पथरीकेसे सब लक्षण हों उसे "मूत्रग्रंथि" कहतेहैं ॥ १७ ॥

(वक्तव्य) 'क्लांतदेह' का प्रयोजन यह है कि इस रोगवालेका देह सदा क्लांत अर्थात् गीला गलगलायासा रहता है (पसीना ज्यादे आताहै)

(श्लो० १३) मणी लिंगाग्रे । मणिः लिंगस्याग्रभागः (इति डा०)

होजाताहै (अर्थात् वस्तिस्थानमें चक्कर खाने लगताहै) और मूत्रको बंद करदेताहै ॥ ३ ॥ अथवा थोड़ा थोडा पीडासहित धीरे धीरे मूत्र आताहै इस दारुण व्याधिको "वातकुंडलिका" कहते हैं ॥ ४ ॥

वाताष्ठीलाके लक्षण ।

शकृन्मार्गस्य वस्तेश्च वायुरंतरमाश्रितः ॥ अष्ठीलावद्घनं ग्रंथिं करोत्यचलमुन्नतम् ॥ ५ ॥ विण्मूत्रानिलसंगश्च तत्राध्मानं च जायते ॥ वेदना जायते वस्तौ वाताष्ठीलेति तां विदुः ॥ ६ ॥

मलमार्ग और वस्ति (मसाना) इनके मध्यमें प्राप्त हुआ वायु जब पत्थर जैसी स्थिर और कडी गांठसी बांध देता है ॥ ५ ॥ तब दस्त, पेशाव और अधोवायु सब रुकजाते हैं और उस स्थानपर अफाराभी होजाता है और वस्तिस्थानमें दर्दभी होता है इस व्याधिको "वाताष्ठीला" कहते हैं ॥ ६ ॥

वातवस्तिके लक्षण ।

वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः ॥ निरुणद्धि मुखं तस्य वस्तेर्वस्तिगतोऽनिलः ॥ ७ ॥ मूत्रसंगो भवेत्तेन वस्तिकुक्षिनिपीडितः ॥ वातवस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसादनः ॥ ८ ॥

यदि कोई मूर्ख पुरुष मूत्रके वेगको रोंक लेवे तो उसके वस्तिस्थानमें वायु प्राप्त होकर उसके मुखको रोंक देताहै ॥ ७ ॥ जिससे मूत्र बंद होजाता है और वस्ति और कूखमें पीडा होती है उसे "वातवस्ति" कहते हैं यह व्याधि कष्टसाध्य है ॥ ८ ॥

मूत्रातीतके लक्षण ।

संधार्य वेगं मूत्रस्य यो भूयः स्रष्टुमिच्छति ॥ तस्य नाभ्येति यदि वा कथंचित्संप्रवर्तते ॥ ९ ॥ प्रवाहतो मंदरुजमल्पमल्पं पुनः पुनः ॥ मूत्रातीतं तु तं विद्यान्मूत्रवेगविघातजम् ॥ १० ॥

जो मनुष्य मूत्रके वेगको (पेशाव करते करते) रोंक लेवे और फिर त्यागनेकी इच्छा करे तो या तो मूत्र उतरताही नहीं और यदि कदाचित् उतरता भी है तो उतरते समय पीडा होती है और थोडा २ वारवारमें उतरता है यह मूत्रवेगके रोंकनेसे होनेवाली "मूत्रातीत" नामक व्याधि कहलाती है ॥ ९ ॥ १० ॥

(श्लो० ५) अष्ठीलावत् पाषाणवद्घनीभूतम् । उन्नतम् उग्रम् ।
(श्लो० ७) मूत्रस्य वेग मूत्रितः सन् संधार्य भूयः मूत्रं स्रष्टुं इच्छतीत्यर्थः ।

मूत्राघातमें चिकित्साका निर्देश।

कषायकल्कसर्पींषि भक्ष्यांल्लेहान्पयांसि च ॥ क्षारमध्वासवस्वेदान्वस्तींश्चोत्तरसंज्ञितान् ॥ २५ ॥ विदध्यान्मतिमांस्तत्र विधिं चाश्मरिनाशनम्॥ मूत्रोदावर्तयोगांश्च कात्स्न्र्येनात्र प्रयोजयेत्॥२६॥

(यहांपर मूत्रके) कषाय, कल्क, घृत, भक्ष्य, लेह और दुग्ध इन सबका उपयोग करे तथा क्षार, मध्वासव और स्वेद तथा उत्तरवस्ति (मूत्रनलीमें पिचकारी देना) इत्यादिको यथायोग्य बुद्धिमान् वैद्य उपयोग करे तथा पथरीनाशक विधियोंको और मूत्रोदावर्तमें कहेहुए प्रयोगोंको भी यहांपर पूर्णतया उपयोग करे ॥ २५ ॥ २६ ॥

कल्कमेर्वारुबीजानामक्षमात्रं ससैंधवम् ॥ धान्याम्लयुक्तं पीत्वैव मूत्रकृच्छ्रात्प्रमुच्यते ॥ २७ ॥ सुरां सौवर्चलवतीं मूत्रकृच्छ्री पिबेन्नरः ॥ मधु मांसोपदंशं वा पिबेद्वाप्यथ गौडिकम् ॥ २८ ॥ पिबेत्कुंकुमकर्षं वा मधूदकसमायुतम् ॥ रात्रिपर्युषितं प्रातस्तथा सुखमवाप्नुयात् ॥ २९ ॥

ककडी खीरेके बीजोंको कर्षभर पीसकर उनमें सैंधानमक मिलाके धान्याम्ल (एक प्रकारकी कांजी) से युक्तकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्र जाता रहता है ॥ २७ ॥ अथवा सुरा (मदिरा) में कालानमक मिलाकर मूत्रकृच्छ्रवाला पीवे अथवा मद्य या गौडी मद्य पीके ऊपरसे मांस खावे ॥ २८ ॥ अथवा कर्षभर केशर और शहद पानीमें मिलाकर रातभर रहने दे प्रभात उसे पीवे तो मूत्रकृच्छ्रमें आराम होजावे ॥ २९ ॥

दाडिमाम्लयुतां मुख्यामेलाजीरकनागरैः ॥ पीत्वा सुरां सुलवणां मूत्रकृच्छ्रात्प्रमुच्यते ॥ ३० ॥ पृथक्पर्ण्यादिवर्गस्य मूलं गोक्षुरकस्य च ॥ अर्द्धप्रस्थेन तोयस्य पचेत्क्षीरं चतुर्गुणम् ॥३१॥ क्षीरावशिष्टं तच्छीतं सिताक्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ नरो मारुतपित्तोत्थं मूत्राघातनिवारणम् ॥ ३२ ॥ निष्पीड्य वाससा सम्यक् वर्चो रासभवाजिनाम् ॥ रसस्य कुडवं तस्य पिबेन्मूत्ररुजापहम् ॥३३ ॥

(श्लो० ३०) मुख्या सुराम् उत्तमा सुरामित्यर्थः। (श्लो० ३२) मारुतपित्तोत्थम् उष्णवाताख्यम्। अथवा अग्निमाध्यायोक्तं मारुतपित्तोत्थम्।

मूत्रशुक्र और उष्णवायुके लक्षण ।

प्रत्युपस्थितमूत्रस्तु मैथुनं योऽभिनंदति ॥ तस्य मूत्रयुतं रेतः सहसा संप्रवर्त्तते ॥ १८ ॥ पुरस्ताद्वाऽपि मत्रस्य पश्चाद्वाऽपि कदाचन ॥ भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥ १९ ॥ व्यायामाध्वातपैः पित्तं वस्तिं प्राप्यानिलावृतम् ॥ वस्तिमेढ्रगुदं चैवं प्रदहन्स्रावयेदधः ॥ २० ॥ मूत्रं हारिद्रमथवा सरक्तं रक्तमेव वा ॥ कृच्छ्रात्प्रवर्तते जंतोरुष्णवातं वदंति तम् ॥ २१ ॥

मूत्रकी हाजत होनेपर जो पुरुष मैथुन करे उसके मूत्रयुक्त वीर्य तभी प्रवृत्त होताहै ॥ १८ ॥ अथवा मूत्रसे पहले और कभी मूत्रसे पीछे वीर्यपात होताहै वह भस्मिले जलके समान होताहै इसे "मूत्रशुक्र" कहतेहैं ॥ १९ ॥ परिश्रम करने, मार्ग चलने, धूपमें रहने (या गरम पदार्थ विशेष खाने) से जब पित्त वस्तिस्थानमें प्राप्त होजाताहै और वायुसे मिलजाताहै तब वस्ति, लिंग, गुदा इन स्थानोंमें जलन पैदा करता हुआ पीला या रक्त सहित मूत्र उतरताहै और कभी रुधिर ही आनेलगताहै और कष्टसे मूत्र उतरताहै इस रोगको "उष्णवात" कहतेहैं ॥ २० ॥ २१ ॥

पित्तज और कफज मूत्रौकसादके लक्षण ।

विशदं पीतकं मूत्रं सदाहं बहुलं तथा ॥ शुष्कं भवति यच्चापि रोचनाचूर्णसन्निभम् ॥ मूत्रौकसादं तं विद्याद्रोगं पित्तकृतं बुधः ॥२२॥ शुष्कं भवति यच्चापि शंखचूर्णप्रपांडुरम् ॥ पिच्छिलं संहतं श्वेतं तथा कृच्छ्रं प्रवर्त्तते ॥ २३ ॥ मूत्रौकसादं तं विद्यादामयं चापरं कफात् ॥ २४ ॥

"मूत्रौकसाद" रोग दो प्रकारका होताहै एक पित्तका, दूसरा कफका इनमेंसे जिसमें पतला, पीला, दाहयुक्त, बहुतसा पेशाब आवे और सूखने पर (या धरे रहने पर) गोरोचनका चूरासा मालूम देवे उसे पित्तका मूत्रौकसाद रोग कहते हैं ॥ ॥ २२ ॥ और गाढा जमाहुआसा सफेद कुछ कष्टसे पेशाब आवे तथा सूखने पर या धरा रहनेपर उसमें शंखके चूर्ण जैसा सुपेदी लिये पीला भाग मालूम दे उसे कफका मूत्रौकसाद रोग जानना चाहिये ॥ २३ ॥ २४ ॥

(वक्तव्य) मूत्रौकसाद रोग मूत्रके स्थानों और आश्रयों मूत्रवहा शिराओं आदिमें विकृति होनेसे होताहै इसका शब्दार्थ भी यही है ॥

बलाश्वदंष्ट्राक्रौंचास्थिकोकिलाक्षकतंडुलान् ॥ शतपर्वकमूलं च देवदारु सचित्रकम् ॥ ४१ ॥ अक्षबीजं च सुरया कल्कीकृत्य पिबेन्नरः ॥ मूत्रदोषविशुद्ध्यर्थं तथैवाश्मरिशोधनम् ॥ ४२ ॥ पाटलाक्षारमाहृत्य सप्तकृत्वः परिस्रुतम् ॥ पिबेन्मूत्रविकारघ्नं संसृष्टं तैलमात्रया ॥४३॥ नलेक्षुदर्भाश्मभेदत्रपुसैर्वारुबीजकम् ॥ क्षीरे परिस्रुतं तत्र पिबेत्सर्पिःसमायुतम् ॥ ४४ ॥ पाटल्या यावशूकाच्च पारिभद्रात्तिलादपि ॥ क्षारोदकेन मतिमान्त्वगेलोषणचूर्णकम् ॥४५॥ पिबेद्गुडेन मिश्रं वा लिह्याल्लिहान्पृथक् पृथक् ॥ ४६ ॥

खरेंटी, गोखरू, क्रौंच पक्षीकी हड्डी, तालमखाने और शतारु नामक पौंडेकी जड़ (कई शतपर्वक बांस कहतेहैं उसकी जड़), देवदारु, चित्रक ॥ ४१ ॥ बहेडेकी मींगी इन सबको मदिरामें पीसकर पीवे इससे मूत्रदोष शुद्ध होतेहैं और पथरीका भी शोधन होजाता है ॥ ४२ ॥ अथवा पाटलकी राख लेकर उसे पानीमें घोलकर सातवार चुवाले फिर इसमें थोडा तैल मिलाकर पिया करे यह भी मूत्रविकारनाशक है ॥ ४३ ॥ अथवा नरसल, ईख, डाभ, पाषाणभेद, खीरे और ककड़ीके बीज इनको दूधमें (घोटकर) छान ले और घृत मिलाकर पीवें (इसमें मिश्री अनुक्त भी मिलाईजासकती है) ॥ ४४ ॥ अथवा पाटलाका क्षार, यवक्षार, निंबक्षार, तिलक्षार इनके पानीके संग तज (दालचीनी), इलायची और त्रिकटु इनका चूर्ण करके पीवे अथवा गुड मिलाकर या जुदे जुदे अवलेह बनाकर चाटे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

मूत्रदोषमें चिकित्साका क्रम ।

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि मूत्रदोषे क्रमं हितम् ॥
स्नेहस्वेदोपपन्नानां हितं तेषु विरेचनम् ॥ ४७ ॥
ततः संशुद्धदेहानां हिताश्चोत्तरवस्तयः ॥ ४८ ॥

यहांसे अगाडी अब हम मूत्रदोषमें हितकारक क्रमको बताते हैं वह यह है कि स्नेहन, स्वेदन कराकर रोगीको विरेचन देवे और जब शरीर शुद्ध होजावे तब उत्तरबस्ति (मूत्रद्वारमें पिचकारी) देना हित होताहै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

(श्लो० ४३) 'तैलमात्रया संसृष्टं' अत्र मात्राशब्दोऽल्पवाची (इति नि० सं०)

अनारकी खटाई मिलाके इलायची, जीरा सोंठ, और नमक डालकर सुरा (मदिरा) को पीनेसे मूत्रकृच्छ्र दूर होजाता है ॥ ३० ॥ अथवा पृथक्पर्णी आदि वर्ग और गोखरूकी जड़ आधा प्रस्थ पानी डालकर- चौगुना दूध पकावे ॥ ३१ ॥ दूधमात्र शेष रहनेपर ठंढा करके मिश्री और शहद मिलाके पीवे यह वायु और पित्तके मूत्राघातको निवारण करदेता है ॥ ३२ ॥ अथवा गधे या घोडेकी लीदको कपडेमें निचोडके उसका रस १ कुडव पीजानेसे मूत्रकृच्छ्रका रोग जातारहताहै॥ ३३॥

मुस्ताभयादेवदारुमूर्वाणां मधुकस्य च ॥ पिवेदक्षसमं कल्कं द्राक्षाया जलसंयुतम् ॥३४॥ पिवेत्पर्युषितं वारि शीतं मूत्ररुजापहम् ॥ निदग्धिकायाः स्वरसं पिवेत्कुडवसंमितम् ॥ ३५ ॥ मूत्रदोषहरं कल्कमथवा क्षौद्रसंयुतम् ॥ प्रपीड्यामलकानां तु रसं कुडवसंमितम् ॥३६॥ पीत्वाऽगदी भवेज्जंतुर्मूत्रदोषरुजातुरः॥ धात्रीफलरसेनैव सूक्ष्मैलां वा पिवेन्नरः ॥ ३७ ॥

नागरमोथा, हरडे, देवदारु, मूर्वा, मुलेठी इन्हें अक्षभर (एक कर्ष) लेकर कल्क बनावे और उसे दाखके पानीमें घोलकर पीजावे ॥ ३४ ॥ अथवा रातको कोरे मिट्टीके पात्रमें पानी भरके मैदानमें रखदे प्रभात उस ठंढे पानीके पीनेसे मूत्ररोग जाते रहते हैं अथवा छोटी कटेलीका स्वरस एक कुडव (चार पल) अथवा इसीका कल्क बना शहद मिलाके पीवे तो मूत्रदोष नष्ट होजावे अथवा हरे आंवलोंको कुचलकर निचोड़कर इनका रस निकाले यह रस चार पल लेकर शहद मिलाके पीवे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इसके पीनेसे मूत्रदोषका रोगी अच्छा होजाता है अथवा आंवलोंके रसमें छोटी इलायची मिलाकर पीवे ॥ ३७ ॥

पिष्ट्वाऽथवा सुशीतेन शालितंदुलवारिणा ॥ तालस्य तरुणं मूलं त्रपुसस्वरसं तथा ॥ ३८ ॥ श्वेतकर्कटकं चैव प्रातस्तं पयसा पिबेत् ॥ शृतं वा मधुरैः क्षीरं सर्पिर्मिश्रं पिवेन्नरः ॥ ३९॥ मूत्रदोषविशुद्ध्यर्थं शुक्रदोषहरं परम् ॥ ४० ॥

तालवृक्षकी ताजी जड़ पीसकर चावलोंके धोवनके ठंढे पानीसे पीवे अथवा ककड़ीका स्वरस पीवे ॥ ३८ ॥ अथवा सुपेद ककड़ी (वालनकांकडी) को दूधके साथ प्रातःकाल पीवे अथवा मधुर द्रव्योंमें पकाया हुआ दूध घृत डालकर पीवे यह मूत्रके और वीर्यके भी दोषोंको दूर करता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

(श्लो० ३६) कल्कं केचिन्निदिग्धिकाया मन्यते । केचित् आमलकानां च । (श्लो० ३७) पिवेदिति शेषेणान्वयः ।

वीजानि क्षुरकस्य च ॥ ५५ ॥ सहस्रवीर्यांशुमती पयस्या सह कालया ॥ शृगालविन्नाऽतिबला बृंहणीयो गणस्तथा ॥ ५६ ॥ एतानि समभागानि मतिमान्सह साधयेत् ॥ चतुर्गुणेन पयसा गुडस्य तुलया सह ॥ ५७ ॥ द्रोणावशिष्टं सत्पूतं पचेत्तेन घृताढकम् ॥ तत्सिद्धं कलशे स्थाप्यं क्षौद्रप्रस्थेन संयुतम् ॥ ५८ ॥ सर्पिरेतत्प्रयुंजानो मूत्रदोषात्प्रमुच्यते ॥ ५९ ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायामष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

खेरंटी, बेरकी गुठली (मींगी), मुलेठी, गोखरू, शतावरी, कमलनाल, कसेरू, तालमखाने ॥ ५५ ॥ सहस्रवीर्या (महाशतावरी), अंशुमती (शालिपर्णी), पयस्या (काकोली या अर्कपुष्पी) और काला (श्यामा निशोथ), शृगालविन्ना, (पृश्निपर्णी), अतिबला और बृंहणीयगण (काकोल्यादि गण) ॥ ५६ ॥ इन सबको समान भाग ले चौगुना दूध और एक तुला गुड डालकर सिद्ध करे (कई यहां "पयसा" का अर्थ जलसे करतेहैं) ॥ ५७ ॥ जब द्रोण भर शेष रहे तब छानकर इसमें एक आढकभर घृत पकावे जब घृत सिद्ध होजावे तब उसे एक चिकने पात्रमें डालदे और उसीमें एक प्रस्थ शहद डाल दे ॥ ५८ ॥ इस घृतके उपयोग करनेसे मूत्रदोष दूर होजातेहैं ॥ ५९ ॥

(वक्तव्य) इस घृतके साधनमें कई तो ऐसा मानते हैं कि बलादिक सब द्रव्य समान भाग लेकर एक तुला गुड और ४ तुला दूध डालकर पकावे और कई 'सह' पदके होनेसे ऐसा अर्थ करतेहैं कि दुग्ध गुडयुक्त करके जलमें साधन करे ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतस० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायामष्टपचाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

ऊनषष्टितमोऽध्यायः ५९.

अथातो मूत्रदोषप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम मूत्रदोषप्रतिषेधके अध्यायका व्याख्यान करते हैं (कोई इस अध्यायको जुदा नही मानते किन्तु पिछले अध्यायमेंही इसके पाठको मानतेहैं और कइ ऐसा मानतेहैं कि यद्यपि अश्मरी और मूत्रघातादि रोग पहले कहे गयेहैं तथापि चिकित्सा, लक्षण और कार्यके भेदसे जुदा अध्याय मानना चाहिये । मूत्रदोषसे यहां मूत्रकृच्छ्रादि रोग समझना चाहिये) ॥

(श्लो० ५६) सहस्रवीर्या महाशतावरी दूर्वा च (इति श० स्तो०) अंशुमती शालिपर्णी । पयस्या क्षीरकाकोली अर्कपुष्पी च । शृगालविन्ना पृश्निपर्णी । बृंहणीयो गणः काकोल्यादिः ।

मूत्रदोषघ्न अन्य प्रयोग।

स्त्रीणामतिप्रसंगेन शोणितं यस्य सिच्यते ॥ मैथुनोपरमस्तस्य बृंहणश्च विधिः स्मृतः ॥ ४९ ॥ ताम्रचूडवसातैलं हितं चोत्तरवस्तिषु ॥ विधानं तस्य पूर्वं हि व्यासतः परिकीर्त्तितम् ॥ ५० ॥

स्त्रियोंके संग अति मैथुनसे जो पुरुषके रुधिर निकलने लगे तो उसे मैथुन छोडदेना चाहिये और बृंहणविधि करनी श्रेष्ठ होती है ॥ ४९ ॥ मुरगेकी चरबीका तैल उत्तरवस्तिमें देना हितकारक होता है इसका विधान हम विस्तारपूर्वक पहले कहचुके हैं ॥ ५० ॥

क्षौद्रार्द्धपात्रं दत्त्वा तु पात्रं तु क्षीरसर्पिषोः ॥ स्वयंगुप्ताफलं चैव तथैवेक्षुरकस्य च ॥५१॥ पिप्पलीचूर्णसंयुक्तमर्द्धभागं प्रदापयेत् ॥ एतदैकध्यमानीय खजेनाभिप्रमन्थयेत् ॥ ५२ ॥ तस्य पाणितलं चूर्णं लीढ्वा क्षीरं ततः पिबेत् ॥ एतत्सर्पिः प्रयुंजानः शुद्धदेही नरः सदा ॥ ५३ ॥ मूत्रदोषाञ्जयेत्सर्वानन्ययोगैः सुदुर्जयान् ॥ जयेच्छोणितदोषांश्च वंध्या गर्भं लभेत च ॥ नारी चैतत्प्रयुंजाना योनिदोषात्प्रमुच्यते ॥ ५४ ॥

शहद आधा पात्र तथा दूध और घृत एक पात्र (एक पात्र ६४ पलका होता है) लेवे, केवाँचके बीज और तालमखाने और पीपल ये उनसे आधे लेकर चूर्ण करके मिलादे और इकट्ठा करके रईसे मथकर खूब मिलावे ॥ ५१ ॥ ॥ ५२ ॥ इसमेंसे एक कर्षभर चाटले ऊपरसे दूध पीलिया करे इस घृत (लेह) को जो मनुष्य विरेचनादिसे शुद्ध देह होकर प्रयोग करे ॥ ५३ ॥ तो सब प्रकारके मूत्रदोषोंको जो और योगोंसे आराम नहीं हुए उन सबको इस प्रयोगसे आराम होताहै तथा रुधिरके भी सब दोष मिट जाते हैं (अर्थात् स्त्रियोंके आर्तव रक्तके दोष दूर होजाते हैं) और वंध्या स्त्रीको गर्भ प्राप्त होजाताहै और जो स्त्री इसका सेवन करे उसके सब प्रकारके योनिदोष दूर होजातेहैं ॥ ५४ ॥

बला कोलास्थि मधुकं श्वदंष्ट्राऽथ शतावरी ॥ मृणालं च कसेरुश्च

(श्लो० ४९) तस्य मैथुनोपरमः । मैथुनादुपरमः मैथुननिषेध इति प्रयोजनम् ।

येत् ॥ ६ ॥ शकृतस्तु प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः॥ आध्मानं च सशूलं च मूत्रसंगं करोति हि ॥ ७ ॥ अश्मरीहेतुकः पूर्वं मूत्राघात उदाहृतः ॥ ८ ॥

मूत्रके बहनेवाले (मूत्र प्राप्त करनेवाले) स्रोतोंपर किसी शस्त्रादिसे घाव होजानेसे अथवा ताडनादिकी चोट पहुँचनेसे बहुत वेदनावाला मूत्राघात होजाता है (अर्थात् पेशाब बंद होजाता है और पीडा भी होती है) इसके लक्षण वातबस्तिके लक्षणोंके समान होते हैं ॥ ६ ॥ दस्तके वेग रोंकनेसे वायु दूषित और प्रतिलोम होकर अफारा, शूल पैदा करता है तथा मूत्रको भी रोंक देता है ॥ ॥ ७ ॥ पथरीके विकारसे जो (मूत्रकृच्छ्र) मूत्राघात होता है वह हम पहले अश्मरीरोगमें कहचुके हैं (वहां देख लेवें) ॥ ८ ॥

शर्कराजनित मूत्रकृच्छ्र ।

अश्मरी शर्करा चैव तुल्ये संभवलक्षणैः ॥ शर्करायां विशेषं तु शृणु कीर्तयतो मम ॥ ९ ॥ पच्यमानस्य पित्तेन भिद्यमानस्य वायुना ॥ श्लेष्मणोऽवयवा भिन्नाः शर्करा इति संज्ञिताः ॥ १० ॥ हृत्पीडा वेपथुः शूलं कुक्षौ वह्निः सुदुर्बलः ॥ ताभिर्भवति मूर्च्छा च मूत्राघातश्च दारुणः ॥ ११ ॥ मूत्रवेगनिरस्तासु तासु शाम्यति वेदना ॥ यावदन्या पुनर्नैति गुटिका स्रोतसो मुखम् ॥ १२ ॥ शर्करासंभवस्यैतन्मूत्राघातस्य लक्षणम् ॥ चिकित्सितमतस्तूर्द्ध्वमष्टानामपि वक्ष्यते ॥ १३ ॥

उत्पत्ति और लक्षणोंसे पथरी और शर्करा (पेशावमें रेता या दानेसे आना) एकहीसे मालूम पडते हैं अर्थात् इन दोनोंका कारण वास्तवमें एकही होता है, मसानेमें इकट्ठी होकर बडा एक या कई ढेपेसे हों तो पथरी कहलाती है और यदि बिखरे रेत या छोटे दानेसे रहें तो शर्करा कहलाती है अब शर्कराके विषयमें कुछ हम विशेष कहते हैं सो सुनों ॥ ९ ॥ पित्तसे पकेहुए और वायुसे पृथक् २ किये हुए कफके जुदे जुदे टुकडोंको शर्करा कहते हैं ॥ १० ॥ इनके होनेसे हृदयमें पीडा, कंप, कुक्षिमें शूल और मंदाग्नि ये होते हैं और फिर इनसे मूर्च्छा और दारुण मूत्राघात होता है ॥ ११ ॥ और जब ये मूत्रके संग निकलजाते हैं तब

(श्लो० १२) मूत्रवेगनिरस्तासु तासु मूत्रस्य वेगेन सह निर्गतासु तासु शर्करागुटिकासु वेदना शाम्यति यावदन्या स्रोतसो मुखं नायाति तावत् ।

वातेन पित्तेन कफेन सर्वैस्तथाभिघातैः शकृदश्मरीभ्याम् ॥
तथाऽपरः शर्करया सुकष्टो मूत्रोपघातः कथितोऽष्टमस्तु ॥ १ ॥

मूत्रोपघात (मत्रदोष अर्थात मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्रविकार) आठ प्रकारका होता है वायुसे, पित्तसे, कफसे, सन्निपातसे, चोट आदिके लगनेसे, मल (विष्ठा) के विकारसे, पथरीसे और आठवां शर्करा (रेत या छिनों) से यह मूत्रोपघात रोग कष्टसाध्य (और कष्ट देनेवाला) होताहै ॥ १ ॥

वातज और पित्तज मूत्रदोषके लक्षण ।

अल्पमल्पं समुत्पीड्य मुष्कमेहनवस्तिभिः॥ फलद्भिरिव कृच्छ्रेण वाताघातेन मेहति ॥२॥हारिद्रमुष्णं रक्तं वा मुष्कमेहनवस्तिभिः॥ अग्निना दह्यमानाभैः पित्ताघातेन मेहति ॥ ३ ॥

अंडकोश, लिंग और वस्ति इनमें पीडा होकर कष्टके साथ थोडा थोडा मूत्र आवे, फटे जानेकीसी वेदना हो ये लक्षण वायुके मूत्रकृच्छ्रके हैं ॥ २ ॥ पित्तके मूत्रकृच्छ्रमें पीला, गरम, सुर्ख मूत्र आवे और वृषण, लिंग तथा वस्ति इनमें जलन बहुत होवे ॥ ३ ॥

कफज और संनिपातज मूत्रदोषके लक्षण ।

स्निग्धं शुक्लमनुष्णं च मुष्कमेहनवस्तिभिः॥ संहृष्टरोमा गुरुभिः श्लेष्माघातेन मेहति ॥ ४ ॥ दाहशीतरुजाविष्टो नानावर्णं मुहुर्मुहुः ॥ ताम्यमानः सुकृच्छ्रेण संन्निपातेन मेहति ॥ ५ ॥

कफके मूत्रोपघातमें चिकना, सुपेद, (गाढा), ठंढा मूत्र आवे, अंडकोश, लिंग और वस्तिस्थान ये भारी रहें, रोमांच होजावें ॥ ४ ॥ सन्निपातके मूत्रदोषमें कभी जलन, कभी ठंढापन और कभी पीडा हो, मूत्रका रंग भी बार बार अनेक प्रकारका हो तथा वारंवार पेशाब करते समय अँधेरीसी आजावे ॥ ५ ॥

चोट आदिसे तथा शकृत् और पथरीसे उत्पन्न मूत्रदोष ।

मूत्रवाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु च ॥ स्रोतःसु मूत्राघातस्तु जायते भृशवेदनः ॥ वातवस्तेस्तु तुल्यानि तस्य लिंगानि लक्ष-

(श्लो० १) अत्र 'मूत्रदोषप्रतिषेधम्' इत्यत्र मूत्रकृच्छ्रप्रतिषेधमिति केचित् पठति । ननु अश्मरीमूत्राघातोदावर्तादिषु मूत्रकृच्छ्रस्य उक्तत्वात् किमर्थं पुनरत्र तदभिधानम् । सत्यम्, चिकित्सालक्षणकार्यभेदात्, तथाच समानतन्त्रेऽपि पृथक् निर्दिष्टत्वात्पुनस्तेषामुपादानम् । केचिच्च पुनरुक्तिभयादेव पुनरिममध्याय न पठति, केचिदत्र पठंति (इति नि० स०)

कृच्छ्रोपशांतये ॥ एभिरेव कृतः स्नेहस्त्रिविधेष्वेव वस्तिषु ॥ हितं विरेचनं चेक्षुक्षीरद्राक्षारसैर्युतम् ॥ २० ॥

तृण (तृणपंचमूल), उत्पलादिगण, काकोली और न्यग्रोधादिगण इनसे सिद्ध किया घृत पीनेसे शीघ्रही पित्तके मूत्रकृच्छ्रको नाश करदेताहै ॥ १९ ॥ और पित्तकृच्छ्रकी शांतिक लिये उत्तरवस्ति भी देवे और इन्हीं पूर्वोक्त द्रव्योंसे सिद्ध किये स्नेह तीनों प्रकारके कृच्छ्रोंमे वस्तिकर्ममें ले सकतेहैं और इस पित्तकृच्छ्रमें ईखके रस, दूध और दाखके रससे मिलाकर विरेचन देना भी हितकारक होता है ॥२०॥

कफकृच्छ्रादिकी चिकित्सा।

सुरसोषकमुस्तादिवरुणादौ च संस्कृतम् ॥ तैलं तथा यवाग्वश्च कफकृच्छ्रे प्रशस्यते ॥ २१ ॥ यथादोषोच्छ्रयं कुर्यादेतानेवं च सर्वजे ॥ फल्गुवृश्चीकदर्भाश्मसारचूर्णं च वारिणा ॥ सुरेक्षुरसदर्भाम्बु पीतं कृच्छ्ररुजापहम् ॥ २२ ॥ तथाऽभिघातजे कुर्यात्सद्योव्रणचिकित्सितम् ॥ २३ ॥

सुरसादिगण, ऊषकादिगण, मुस्तादिगण और वरुणादिगण इनसे सिद्ध किया हुआ तैल अथवा इनके क्वाथमें यवागू बनाके पिलाना कफके मूत्रकृच्छ्रमें श्रेष्ठ है ॥ ॥ २१ ॥ सन्निपातके मूत्रकृच्छ्रमें इन्हीं तीनोंकी औषधोंमेंसे जो दोष उल्वण हो उसीकी औषध प्रधानतापूर्वक मिश्रित चिकित्सा करना तथा कठगूलर, सुपेद साँठी, डाभ और अश्मसार (लोह) इन सबके चूर्णको पानीके संग पीना और मदिरा, ईखका रस, डाभका क्वाथ इन्हें मिलाकर पीना कृच्छ्ररोगको नाश करताहै ॥ २२ ॥ और शस्त्रके अभिघातसे उपजे हुए कृच्छ्रमें सद्योव्रणकी विधि करनी श्रेष्ठ होती है (और जिसमें घाव न हो ऐसी चोटके कृच्छ्रमें वातनाशक विधि करनी) ॥ २३ ॥

मूत्रकृच्छ्रे सदा चास्य कार्या वातहरी क्रिया ॥
स्वेदावगाहावभ्यंगवस्तिचूर्णक्रियास्तथा ॥
शकृज्जे द्वौ तथाऽन्यौ यौ तयोः प्रोक्तः क्रियाविधिः ॥२४॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायामेकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९॥

विष्ठावरोधसे उपजेहुए मूत्रकृच्छ्रमें मनुष्यको वातनाशक क्रिया करनी चाहिये स्वेद कराना, अभ्यंग (तैलादिका मर्दन) कराना, स्नान कराना, वस्तिकर्म और चूर्णादिका उपयोग इत्यादि क्रिया करनी उचित हैं और अंतके दो मूत्रकृच्छ्रों

कुछ वेदना शांत होजाती है जबतक फिर भीतरी मूत्रद्वारके अगाडी कोई उसकी गांठसी न आवे (जब फिर शर्कराकी गांठ अगाड़ी आकर मूत्रको रोक देती है तब फिर वही वेदना होती है ॥ १२ ॥ ये शर्कराजनित मूत्राघातके लक्षण कहे हैं अब आगे आठों प्रकारके मूत्रोपघातकी चिकित्सा कहते हैं ॥ १३ ॥

चिकित्साका निर्देश ।

अश्मरीं च समाश्रित्य यदुक्तं प्रसमीक्ष्य तत् ॥
यथादोषं प्रयुंजीत स्नेहादिकमपि क्रमम् ॥ १४ ॥

हमने पहले अश्मरीकी चिकित्सामें जो कहा है उसे देखकर दोषोंके अनुसार यहां उपयोग करे और स्नेहादिक्रम भी यथायोग्य करे ॥ १४ ॥

वातके मूत्रकृच्छ्रका यत्न ।

श्वदंष्ट्राश्मभिदौ कुंभी हवुषां कंटकारिकाम् ॥ बलां शतावरीं रास्नां वरुणं गिरिकर्णिकाम् ॥ १५ ॥ तथा विदारिगंधादिं संहृत्य त्रैवृतं पचेत् ॥ तैलं घृतं वा तत्पेयं तेन वाऽप्यनुवासयेत् ॥१६॥ दद्यादुत्तरवस्तिं च वातकृच्छ्रोपशांतये ॥ १७ ॥ श्वदंष्ट्रास्वरसे तैलं सगुडक्षीरनागरम् ॥ पक्त्वा तत्पूर्ववद्योज्यं तत्रानिलरुजापहम् ॥ १८ ॥

गोखरू, पाखानभेद, कुंभी (वारिपर्णी), हाऊबेर, कटेली, खरेंटी, शतावरी, रास्ना, वरणा, गिरिकर्णिका (अपराजिताका भेद) ॥ १५॥ और विदारीगंधादिक गण इन सबको इकट्ठा करके विधिपूर्वक त्रैवृत घृत या तैल पकावे (त्रैवृतको पहले कई वार लिख चुकेह कि जिसमें तीन स्नेह-घृत, तैल, वसा और मज्जामेंसे कोईसे मिले हों उसे त्रैवृत कहतेहैं) उसका पान करे और उसीसे अनुवासनवस्ति करे ॥ ॥ १६ ॥ वायुके मूत्रकृच्छ्रकी शांतिके लिये उत्तरवस्ति (मूत्रद्वारमें पिचकारी) भी देवे ॥ १७ ॥ अथवा गोखरूके स्वरसमें तैल पकावे उसमें गुड, दूध और सोंठ भी डाल दे इसे पहलेके अनुसार उपयोग करे यह भी वायुके रोग (कृच्छ्र) को नष्ट करनेवाला है ॥ १८ ॥

पित्तके मूत्रकृच्छ्रका यत्न ।

तृणोत्पलादिकाकोलीन्यग्रोधादिगणे कृतम् ॥ पीतं घृतं पित्तकृच्छ्रं नाशयेत्क्षिप्रमेव च ॥ १९ ॥ दद्यादुत्तरवस्तिं च पित्त-

(श्लो० १९) तृणशब्देनात्र तृणपञ्चमूलं ग्राह्यम् ।

जिनको गुप्त और भावी बातोंका ज्ञान हो और अनवस्था (क्षणमें रुष्टता क्षणमें ही तुष्टता) तथा सहनशीलता दोनों हों और मनुष्योंसे विचित्र कर्म कर-सकते हों (जैसे शाप, वरदान, असंभव बात इत्यादि कर सकें) उनको ग्रह कहते हैं ॥ २ ॥ अपवित्र, मर्यादरहित जो घाववाला या विना घावका रोगी होता है उसे ये ग्रह हिंसा अथवा विहार (क्रीडा) करनेको या अपने सत्कारके लिये मारते हैं या पीडा देते हैं ॥ ३ ॥ यद्यपि ग्रहोंके गण असंख्य हैं और उनके अधिपति भी अनेक प्रकारसे प्रगट होते हैं तथापि मुख्यतासे उनके आठ भेद होते हैं ॥ ४ ॥

देवास्तथा शत्रुगणाश्च तेषां गंधर्वयक्षा पितरो भुजंगाः ॥
रक्षांसि या चापि पिशाचजातिरेषोऽष्टधा देवगणो ग्रहाख्यः ॥५॥

देवता तथा इनके शत्रु–दैत्य, गंधर्व, यक्ष, पितर, भुजंग, राक्षस और पिशाच यह आठ प्रकारका देवगण ग्रह कहलाता है ॥ ५ ॥

देवताजुष्ट और दैत्यजुष्टके लक्षण ।

संतुष्टः शुचिरपि चेष्टगंधमाल्यो निस्तंद्रो ह्यवितथसंस्कृतप्रभाषी ॥ तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता ब्रह्मण्यो भवति च यः स देव-जुष्टः ॥ ६ ॥ संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता जिह्माक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः ॥ संतुष्टो भवति न चान्नपानजातैर्दुष्टात्मा भवति च देवशत्रुजुष्टः ॥ ७ ॥

जो संतोषी होजाय, पवित्र रहे और सुहावनी सुगंध तथा पुष्पमाला धारण करे, तंद्रासे रहित हो, निरंतर संस्कृत वाणी बोले, तेजस्वी हो, स्थिर नेत्रवाला हो, वरदान देवे और ब्रह्मण्य हो ये लक्षण देवतासे ग्रहण किये (अर्थात् देवपी-डावाले) मनुष्यके होते हैं ॥ ६ ॥ और जो मनुष्य दैत्यसे पीडित हो (जिसपर दैत्यग्रहकी छाया हो) उसके ये लक्षण होते हैं कि पसीना आवे, ब्राह्मण, गुरु, देवता इनके दोष वर्णन करे, निगाह टेढी हो, भय न हो, कुमार्गदृष्टि हो और खाने पीनेसे संतोष नहीं हो और दुष्टात्मा होजावे ॥ ७ ॥

गन्धर्व और यक्षसे पीडितके लक्षण ।

हृष्टात्मा पुलिनवनांतरोपसेवी स्वाचारः प्रियपरिगीतगंधमाल्यः॥

(श्लो० ६) अवितथसंस्कृतप्रभाषी । निरंतरसंस्कृतवक्ता ।

(अश्मरी और शर्कराके मूत्रकृच्छ्रों) की क्रियाविधि पहले कह ही चुके हैं अश्मरीकी चिकित्सामें वर्णन कर चुके हैं) ॥ २४ ॥

यूनानी हकीम मूत्राघातको "एहतबासुलबोल" कहते हैं और थोडा टपके टपके मूत्र आनेको "तकतीरूलबोल" कहते हैं और मूत्रमें रुधिर (रुधिरके पेशाब) आनेको "बोलुदम" कहते हैं.

डाक्टरीमें मूत्र रुक जानेको "रिटैनशन आफ युराइन" (Retention of urine) कहते हैं और मूत्रकृच्छ्रको "डिज्यूरिया" (Dysnria) और मूत्रमें रुधिर आनेको "हिमिटोरिया" (Himitoria) कहते हैं ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायामेकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

॥ इति कायचिकित्सा समाप्ता ॥

अथ भूतविद्या।



षष्टितमोऽध्यायः ६०.

अथातोऽमानुषप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम अमानुष (देवग्रहादिके उपद्रव) के प्रतिषेधके अध्यायका व्याख्यान करते हैं ।

निशाचरेभ्यो रक्ष्यस्तु नित्यमेव क्षतातुरः ॥
इति यत्प्रागभिहितं विस्तरस्तस्य वक्ष्यते ॥ १ ॥

यह हम पहले कहचुके हैं कि नित्य रोगीकी रक्षा निशाचरों (राक्षसादि) से करनी चाहिये अब उसका विस्तारसे वर्णन करते हैं (क्षतातुर यह उपलक्षणमात्र है किन्तु क्षतवाले तथा विना क्षतवाले सभी रोगियोंकी रक्षा करनी चाहिये) ॥१॥

गुह्यानागतविज्ञानमनवस्थासहिष्णुता ॥ क्रिया वाऽमानुषी यस्मिन्स ग्रहः परिकीर्तितः ॥२॥ अशुचिं भिन्नमर्यादं क्षतं वा यदि वाऽक्षतम् ॥ हिंस्युर्हिंसाविहारार्थं सत्कारार्थमथापि वा ॥ ३ ॥ असंख्येया ग्रहगणा ग्रहाधिपतयस्तु ये ॥ व्यज्यंते विविधाकारा भिद्यंते ते तथाऽष्टधा ॥ ४ ॥

(श्लो० २) गुह्यानागतविज्ञान गुह्यं गुप्तम् अनागत भावि तयोर्विज्ञानं यस्मिन् । अनवस्था अनवस्थानः । असहिष्णुता नैचनिया । अन्ये सहिष्णुता सहनशीलता इत्याहुः

भृशमशुचिस्तथाऽतिलोलः ॥ बह्वाशी विजनहिमांबुरात्रिसेवी व्याचेष्टं भ्रमति रुदन्पिशाचजुष्टः ॥ १३ ॥

राक्षसके आवेशवाले मनुष्यके ये लक्षण होतेहैं कि मांस, रुधिर और अनेक भांतिके मद्योंकी वांछा करे, निर्लज्ज हो, और बहुत कठोर और शूरवीर हो, क्रोधी हो, बहुत बलवान् होजावे, रातमें घूमे, शुद्धताका विरोधी हो (अशुद्ध रहे) ॥ ॥ १२ ॥ पिशाचपीडित मनुष्यके ये लक्षण हैं कि ऊपरको हाथ विशेष रक्खे, दुबला हो, कठोर वचन बहुत कहे, बहुत दुर्गंध आवे, अपवित्र रहे और अति चपल होजावे, बहुत खावे, शून्यस्थानोंमें ठंढे पानी और रात्रि - इनका सेवन करे (ये प्रिय लगें), विरुद्ध चेष्टा करे, रोता हुआ फिरे ॥ १३ ॥

स्थूलाक्षस्त्वरितगतिः स्वफेनलेही निद्रालुः पतति च कंपते च योऽति ॥ यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतः सन्संसृष्टो न भवति वार्द्धकेन जुष्टः ॥ १४ ॥

जिसकी आँखें मोटी होजावें (आगेको निकल आवें), जल्दी चले, अपने झाग चाटे, अति निद्रा आवे और, जो कांपे और गिर २ पडे ऐसा ग्रहपीडित रोगी तथा जो पहाड, हाथी, वृक्ष इत्यादिसे गिरकर ग्रहसे पीडित होजावे वह अतिक्रूर ग्रहसे पीडित असाध्य जानना वह अच्छा नहीं होता ॥ १४ ॥

देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः संध्ययोरपि ॥ गंधर्वाः प्रायशो षष्ठ्यां यक्षाश्च प्रतिपद्यथ ॥ १५ ॥ कृष्णपक्षे च पितरः पंचम्यामपि चोरगाः ॥ रक्षांसि निशि पैशाचाश्चतुर्दश्यां विशंति च ॥ १६ ॥

देवग्रह पूर्णमासीके आसपास और असुर सन्ध्यामें गंधर्व प्रायः छठको और यक्ष प्रतिपदाको ॥ १५ ॥ पितर कृष्णपक्षमें (अमावास्याके समीप), उरग पंचमीको, राक्षस रात्रिको और पिशाच चतुर्दशीको देहमें प्रवेश करतेहैं ॥ १६ ॥

दर्पणादीन्यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा ॥
स्वमणिं भास्करार्चिश्च यथा देहं च देहभृत् ॥
विशंति च न दृश्यंते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणम् ॥१७॥

(श्लो० १४) वार्द्धकेन जुष्टः वृद्धभावेन गृहीत इत्यर्थः । अन्ये वर्द्धकेनेति पठंति । वर्द्धकेन हिंसार्थिना केनचित् ग्रहेण जुष्ट इति व्याख्यानयति (इति नि० सं०) संसृष्टो न भवति इति विनश्यतीत्यर्थः (इति डल्हनः)

नृत्यन्वा प्रहसति चारु चाल्पशब्दं गंधर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः॥ ॥ ८ ॥ ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी गंभीरो द्रुतमतिरल्पवाक्सहिष्णुः ॥ तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै यो यक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ ९ ॥

गंधर्व (अप्सरा जिन्हें परी कहते हैं) से पीडित मनुष्यके ये लक्षण होतेहैं प्रसन्न रहे, जलाशयों और वनोंका विहार पसंद करे, अपने आचारमें रहे, प्यारे मीठे गीत गावे, अच्छी सुगंध और पुष्प धारण करे, कभी नाचने लगे, कभी हँसे, सुहावने थोडे शब्द बोले ॥ ८ ॥ यक्षग्रहसे पीडित मनुष्यके ये लक्षण हैं कि आँखें तांबे जैसी लाल हों, अच्छे हलके (महीन) सुरख वस्त्र पहरे, गंभीर हो, चंचलबुद्धि हो, थोडा बोले, सहनशीलता (बरदाश्त) रक्खे, तेजस्वी हो और ऐसा कहे कि किसको क्या देदूं ? ॥ ९ ॥

पितृ और भुजंग पीडितके लक्षण ।

प्रेतेभ्यो विसृजति संस्तरेषु पिंडाञ्छांतात्मा जलमपि चापसव्यवस्त्रः ॥ मांसेप्सुस्तिलगुडपायसाभिकामस्तद्भक्तो भवति पितृग्रहाभिभूतः ॥ १० ॥ भूमौ यः प्रसरति सर्पवत्कदाचित्सृक्किण्यौ विलिहति जिह्वया प्रसक्तम् ॥ निद्रालुर्गुडमधुदुग्धपायसेप्सुर्विज्ञेयो भवति भुजंगमेन जुष्टः ॥ ११ ॥

पितरोंके दोषसे पीडित मनुष्य कुश या तृण बिछाकर प्रेतोंको पिंड देनेकी भांति आचरण करे, शांतात्मा हो और जल भी अपसव्य होकर देवे, मांस, तिल, गुड, खीर इनकी इच्छा करे और इन्हींको खाना चाहे ॥ १० ॥ जो भुजंग (सर्पराजों) से पीडित मनुष्य हो वह पृथ्वीमें कभी सर्पकी तरह गिरे, होठोंके जोडोंको जीभसे चाटे, अतिनिद्रा रहे और गुड, शहद, दूध, खीर इनके खानेकी इच्छा करे॥ ११॥

राक्षस और पिशाचसे पीडितके लक्षण ।

मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सुर्निर्लज्जो भृशमतिनिष्ठुरोऽतिशूरः ॥ क्रोधालुर्विपुलबलो निशाविहारी शौचद्विड् भवति च रक्षसा गृहीतः ॥ १२ ॥ उद्धस्तः कृशपरुषश्चिरप्रलापी दुर्गंधो

(श्लो० ८) अल्पशब्दं यथा स्यात्तथा चारु प्रहसति । (श्लो० १०) संस्तरेषु तृणकुशादिषु । (श्लो० ११) सृक्किण्यौ ओष्ठप्रांतौ । भुजंगमेन सर्पसत्त्वग्रहेण सर्पराजेन वा ।

नैर्ऋतेया दुहितरस्तासां सः प्रसवः स्मृतः ॥ सत्त्वत्वादपवृत्तेषु वृत्तिस्तेषां गणैः कृता ॥ २४ ॥ हिंसाविहारा ये केचिद्दिव्यं भाव-मुपाश्रिताः ॥ भूतानीति कृता संज्ञा तेषां संज्ञाप्रवक्तृभिः ॥२५॥

और निर्ऋतिकी पुत्रीसे जिन (दैत्य ग्रहादि) की उत्पत्ति है वे दैवी सत्त्वसे विपरीत हैं इससे उनके गणाधिपोंने उनकी यही वृत्ति कल्पना की है (और कोई "सत्यत्वादपवृत्तेषु" ऐसा पाठ मानकर यह अर्थ करतेहैं कि जो सत्याचारसे भ्रष्ट मनुष्य हैं उनमें ग्रहोंकी वृत्ति नियत की है) ॥ २४ ॥ और जो ये हिंसामें विहार करनेवाले दिव्यभावको प्राप्तहुए ग्रह हैं संज्ञा करनेवालोंने इनका भूत नाम रक्खाहै २५॥

भूतविद्याकी निरुक्ति ।

ग्रहसंज्ञाभिभूतानि यस्माद्वेत्त्यनया भिषक् ॥
विद्यया भूतविद्यात्वमत एव निरुच्यते ॥ २६ ॥

जिस विद्यासे वैद्य यह जानजावे कि यह रोगी इन देवग्रहादि भूतोंसे अभिभूत अर्थात् पीडित है उस विद्याको भूतविद्या कहतेहैं ॥ २६ ॥

देवादिपीडितकी चिकित्सा ।

तेषां शांत्यर्थमन्विच्छेन्वैद्यस्तु सुसमाहितः ॥ जप्यैः सनियमैर्होमै-रारभेत चिकित्सितम् ॥ २७ ॥ रक्तानि गंधमाल्यानि बीजानि मधुसर्पिषाम् ॥ भक्ष्याश्च सर्वे सर्वेषां सामान्यो विधिरुच्यते ॥२८॥ वस्त्राणि मद्यमांसानि क्षीराणि रुधिराणि च ॥ यानि येषां यथेष्टानि तानि तेभ्यः प्रदापयेत् ॥२९॥ हिनस्ति मनुजान्येषु प्रायशो दिवसेषु तु ॥ दिनेषु तेषु देयानि तद्भूतविनिवृत्तये ॥ ३० ॥

इनकी शांतिकी इच्छा करनेवाले वैद्यको उचित है कि सावधान होकर जप, नियम, होम इत्यादि करके चिकित्सा आरंभ करे ॥ २७ ॥ सुरख चन्दन, कुंकुमादि गंध और रक्तही पुष्प तथा वैसेही बीज (सरसों, राई), शहद और घृत और सब प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे पूजा करनी यह सब ग्रहोंकी सामान्य विधि है ॥ २८ ॥ और जैसे वस्त्र, मद्य, मांस, दूध रुधिर जो जिसे प्रिय हों उन ग्रहोंको वही समर्पण करने चाहिये ॥ २९ ॥ जिस २ दिनमें (या समयमें) जो

(श्लो० ३०) तेषु दिवसेषु । यथा–गंधर्वः षष्ठ्याम् । यक्षः प्रतिपदि इत्यादि । तत्तद्भूतविनिवृत्तये तेषु तेषु तत्तद्दिवसेषु तत्तत्समये एव बलिर्देय इत्यर्थः ।

जैसे दर्पणादिकोंमें प्रतिबिंब और जीवोंमें शरदी, गरमी और सूर्य्यकान्त मणिमें सूर्यकी किरन और शरीरमें जीवात्मा प्रवेश होता दीखता नहीं उसी प्रकार मनुष्योंमें ग्रह प्रवेश करते मालूम नहीं पडते ॥ १७ ॥

तपांसि तीव्राणि तथैव दानं व्रतानि धर्मो नियमश्च सत्यम् ॥ गुणस्तथाष्टावपि तेषु नित्या व्यस्ताः समस्ताश्च यथाप्रभावम् ॥ ॥ १८ ॥ न ते मनुष्यैः सह संविशंति न वा मनुष्यान्क्वचिदाविशंति ॥ ये वा विशंतीति वदंति मोहात्ते भूतविद्याविषयादपोह्याः ॥ १९ ॥ तेषां ग्रहाणां परिचारका ये कोटीसहस्रायुतपद्मसंख्याः ॥ असृग्वसामांसभुजः सुभीमा निशाविहाराश्च तमाविशंति ॥ २० ॥

इन देवादि ग्रहोंमें तीव्र तप तथा दान, व्रत, धर्म, नियम, सत्य और प्रभाव ये आठ गुण सब या थोडे रहते हैं ॥ १८ ॥ वे देवग्रह मनुष्योंके पास कभी नहीं रहते और मनुष्योंके देहमें कभी प्रवेश भी नहीं करते और जो मोहसे (मूढतासे) ऐसा कहते हैं कि देवता मनुष्योंके देहमें आवेश करते हैं वे कहनेवाले भूतविद्याके विषयसे अनभिज्ञ हैं ॥ १९ ॥ उन महाऐश्वर्यवाले देवादिके परिचारक क्रोडों, हजारों, लाखों, पद्मों हैं वे रुधिर, वसा, मांस इनके खानेवाले और भयंकर रात्रिमें विचरनेवाले होते हैं वे मनुष्योंके देहमें आवेश करतेहैं (स्वयं देवादिक आवेश नहीं करते)॥ २० ॥

निशाचराणां तेषां हि ये देवगणसंसृताः ॥ ते तु तत्सत्त्वसंसर्गाद्विज्ञेयास्तु तदंजनाः ॥ २१ ॥ देवग्रहा इति पुनः प्रोच्यंते शुचयश्च ये ॥ देववच्च नमस्यंते प्रत्यर्थ्यंते च देववत् ॥ २२ ॥ स्वामिशीलक्रियाचाराः क्रम एव सुरादिषु ॥ २३ ॥

उन निशाचरों (ग्रहों) मेंसे जो देवगणोंसे संसर्ग रखनेवाले हैं वे अपने स्वामीके सत्त्वके संसर्गसे उन्हीं जैसे लक्षणोंवाले होतेहैं ॥ २१ ॥ और ये देवग्रह कहलातेहैं और पवित्र होतेहैं ये देवताओंकी भांति नमस्कार करने योग्य हैं और वैसेही प्रार्थना करनेयोग्य हैं इनमें स्वामी (अपने अधिष्ठाता देवता) कैसा स्वभाव, क्रिया और आचार होताहै देवग्रहादिकका तो यह क्रम है ॥ २२ ॥ २३ ॥

(श्लो० १८) तेषु ग्रहेषु अष्टौ गुणा यथाप्रभावं समस्ता व्यस्ताश्च नित्यं निवसति तत्र महाप्रभावेषु समस्ता अल्पप्रभावेषु व्यस्ता ऊना इति भावार्थः ।

वचाम् ॥ मंजिष्ठां रजनीं कृष्णां बस्तमूत्रेण पेषयेत् ॥ ३९ ॥ वर्तीश्छायाविशुष्कास्ताः सपित्ता नयनांजनम् ॥ नक्तमालफलं व्योषं मूलं श्योनाकबिल्वयोः ॥ ४० ॥ हरिद्रे च कृता वर्तिः पूर्ववन्नयनाञ्जनम् ॥ ये ये ग्रहा न सिध्यंति सर्वेषां नयनांजनम् ॥ ४१ ॥ सैंधवं कटुकं हिंगु वयस्थां च वचामपि ॥ बस्तमूत्रेण तत्पिष्टं मत्स्यपित्तेन पूर्ववत् ॥ ४२ ॥

गजपीपल, पीपलामूल, त्रिकटु, आंवले, सरसों इनको गोह, नौला और बिलाव तथा रीछ इनके पित्तकी भावना देवे ॥ ३६ ॥ इसे नस्य, मर्दन, अंजन और सेचन (छिडके देना) इन सब कामोंमें लावे अथवा गधा, घोडा, खच्चर, उल्लू, ऊँट, कुत्ता और गीदड इनकी बीट ॥ ३७ ॥ तथा गीध काग और सूकरकी विष्ठा इनको बकरेके मूत्रमें पीसकर उससे तैल सिद्ध करे यह तैलभी पहलेकी भांति सब कार्योंमें हित है ॥ ३८ ॥ अथवा शिरसके बीज, लहसन, सोंठ, सुपेद सरसों, वच, मँजीठ, हलदी, पीपल इनको बकरेके मूत्रमें पीसले ॥ ३९ ॥ और बत्ती बनाकर छायामें सुखाले और इसे पित्तमें घिसकर नेत्रोंमें अंजन करे अथवा करंजके बीज, त्रिकटु, अरलू और बिल्वकी जड़ ॥ ४० ॥ दोनों हलदी इनकी बत्तीसी बनाकर पहलेकी तरह अंजन करे और जो ग्रह इनसे शांत न हों उन सबके- लिये यह वक्ष्यमाण अंजन लगावे ॥ ४१ ॥ सैंधानमक, त्रिकटु, हींग, गिलोय और वच इनको बकरेके मूत्रसे पीसकर मछलीके पित्तेकी भावना देकर पूर्वोक्त प्रकारसे अंजन करे ॥ ४२ ॥

अपराजितवर्ग ।

पुराणसर्पिर्लशुनं हिंगु सिद्धार्थकं वचा ॥ गोलोमी चाजलोमी च भूतकेशी जटा तथा ॥ ४३ ॥ कुकुटी सर्पगंधा च तथा काणविषाणिके ॥ ऋष्यप्रोक्ता वयस्था च शृंगी मोहनवल्लिका ॥ ४४ ॥ अर्कमूलं त्रिकटुकं लता स्रोतोंजनांजनम् ॥ नेपाली हरितालं च

(श्लो० ४०) सपित्ता नयनांजनम् अत्र सपित्ताः पित्तेन घृष्टाः । (श्लो० ४३ से ४५ तक) सिद्धार्थकं श्वेतसर्षपम् । गोलोमी श्वेतदूर्वा । अजलोमी दूर्वा । जटा गधमांसी । कुकुटी कुक्कुटसदृशकदा । सर्पगधा नाकुली डल्लनमते तु वर्षासु छत्राकारा । काणविषाणिके–अत्र काणा क्षीरकाकोली । ऋष्यप्रोक्ता शतावरी शूकशिंबी वा (इति अ० स्तो०) वयस्था गुडूची । मोहनवल्लिका वटपत्री । लता प्रियगुः (इति नि० सं०)

जो ग्रह मनुष्योंपर प्रायः घात करते हैं (जैसे पहले कहचुके हैं) उन्हीं उन दिनोंमें उनकी शांतिके लिये बलि भेंट आदि देनी चाहिये ॥ ३० ॥

देवग्रहे देवगृहे हुत्वाग्निं प्रापयेद्बलिम् ॥ कुशास्वस्तिकपूपाज्यच्छत्रपायससंभृतम् ॥ ३१ ॥ असुराय यथाकालं विदध्याच्चत्वरादिषु ॥ चतुष्पथे राक्षसस्य भीमेषु गहनेषु वा ॥ ३२ ॥ शून्यागारे पिशाचस्य तीव्रं बलिमुपाहरेत् ॥ पूर्वमाचरितैर्मंत्रैर्भूतविद्यादिदर्शितैः ॥ ३३ ॥ न शक्या बलिभिर्जेतुं योगांस्तान्समुपाचरेत् ॥ अजर्क्षचर्मरोमाणि शल्यकोलूकयोस्तथा ॥ ३४ ॥ हिंगु मूत्रं च बस्तस्य धूममस्य प्रयोजयेत् ॥ एतेन शाम्यति क्षिप्रं बलवानपि यो ग्रहः ॥ ३५ ॥

देवग्रह हो तो देवमंदिरमें अग्निहोत्र करे, बलि निवेदन करे और कुशा स्वस्तिक (एकभांतिका भक्ष्य), पूवे, घृतच्छत्र और खीर ये निवेदन करे ॥ ३१ ॥ और असुर ग्रह हो तो उसके समयमें चत्वर (मैदान या चौक) में बलिदान करे और राक्षसकी पीडा हो तो चतुष्पथ (चौराहे) या भयंकर गहन वनमें बलि देवे ॥ ३२ ॥ पिशाचकी पीडा हो तो शून्य मकानमें तीव्र (रुधिरादि) बलिदान करे और पहले कहेहुए भूतविद्याके मंत्र पढे (इस कथनसे पाया जाता है कि पहले कोई भूतविद्याका पृथक् तंत्र महर्षि धन्वंतरिजीने रचा होगा) ॥ ॥ ३३ ॥ और जो ग्रह बलिप्रदान आदिसे शांत न हों तो उनके लिये ये प्रयोग करे कि बकरे और रीछके बाल, सेहके कांटे, उल्लूके पर ॥ ३४ ॥ हींग, बकरेका मूत्र इनको मिलाकर धूनी देवे इस धूनीसे बलवान् ग्रह भी शीघ्र शांत होजाते हैं ॥ ३५ ॥

गजाह्वपिप्पलीमूलव्योषामलकसर्षपान् ॥ गोधानकुलमार्जारऋक्षपित्तप्रभावितान् ॥ ३६ ॥ नस्याभ्यंजनसेकेषु विदध्याद्योगतत्त्ववित् ॥ खराश्वाश्वतरोलूककरभश्वशृगालजम् ॥३७॥ पुरीषं गृध्रकाकानां वराहस्य च पेषयेत् ॥ बस्तमूत्रेण तत्सिद्धं तैलं स्यात्पूर्ववार्द्धितम् ॥ ३८ ॥ शिरीषबीजं लशुनं शुंठीं सिद्धार्थकं

(श्लो० ३१) स्वस्तिकमत्र भक्ष्यपदार्थः । यवादिचूर्णैरूर्द्धभागेन क्षाममध्यवलित्रयमुद्राङ्कितः (इति डल्हनः) (श्लो० ३३) तीव्रं बलिम् आमपक्कं मासम् । अन्ये रुधिरादिनिर्मितमाहुः ।

नं चायुक्तं प्रयुंजीत प्रयोगान्देवताग्रहे ॥ ऋते पिशाचादन्येषु प्रतिकूलं न चाचरेत् ॥ वैद्यातुरौ निहन्युस्ते ध्रुवं क्रुद्धा महौजसः ॥५१॥

हिताहितविधानं च नित्यमेवं समाचरेत् ॥
ततः प्राप्स्यति सिद्धिं च यशश्च विपुलं भिषक् ॥ ५२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे भूतविद्यायां षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

देवताग्रहके उपचारमें कोई अयुक्त उपयोग नहीं करना चाहिये तथा पिशाचके सिवाय अन्य ग्रहोंमें प्रतिकूल आचरण नहीं करने चाहिये क्योंकि वे महापराक्रमी ग्रह हैं क्रोध युक्त होजावें तो वैद्य और रोगी दोनोंको अवश्य मार डालें ॥ ५१ ॥ इस लिये वैद्यको चाहिये कि नित्य हित और अहित विधानका विचार करके सब आचरण करे ऐसा करनेसेही सिद्धि और पूरा यश प्राप्त होताहै ॥ ५२ ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतन्त्रे भूतविद्याया षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमोऽध्यायः ६१.

अथातोऽपस्मारप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम अपस्मार (मृगी रोगके प्रतिषेधके अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ।

अपस्मारकी निरुक्ति ।

स्मृतिर्भूतार्थविज्ञानमपश्च परिवर्जने ॥
अपस्मार इति प्रोक्तस्ततोऽयं व्याधिरंतकृत् ॥ १ ॥

भूतार्थके विज्ञानको स्मृति या स्मार कहतेहैं और अपका अर्थ परिवर्जन है इस कारणसे इस व्याधिको अपस्मार कहतेहैं (अर्थात इससे स्मृति ज्ञान नष्ट होताहै इसीसे इसे अपस्मार कहतेहैं) ॥ १ ॥

अपस्माररोगके कारण ।

मिथ्यादियोगेंद्रियार्थकर्मणामभिसेवनात् ॥ विरुद्धमलिनाहारविहारकुपितैर्मलैः ॥ २ ॥ वेगनिग्रहशीलानामहिताशुचिभोजिनाम् ॥ रजस्तमोभिभूतानां गच्छतां च रजस्वलाम् ॥ ३ ॥ तथा

(श्लो० १ स्मारः स्मरणम् अपगतः स्मारो यस्मिन् सोऽपस्मारः (श्लो० २) मिथ्यादियोगेनेति— अत्र आदिशब्देन केचित् अतियोगमयोग च गृह्णति शब्दादीना मिथ्यायोगादयः कथ्यते तत्र । पटहादेः विनाशादिश्रवणं मिथ्यायोगः पटहाद्यतिशब्दश्रवणम् अतियोगः । सर्वथा अश्रवणम् अयोगः (इति नि - सं०) एवमेव सर्वेषामिन्द्रियाणा ज्ञेयम् । (श्लो० ३) रजस्तमोभिभूतानां रजस्तमोबाहुल्यानाम् ।

रक्षोघ्ना ये च कीर्तिताः ॥४५॥ सिंहव्याघ्रर्क्षमार्जारद्वीपिवाजिगवां तथा ॥ श्वाविच्छल्यकगोधानामुष्ट्रस्य नकुलस्य च ॥ ४६ ॥ विट्त्वग्रोमवसामूत्ररक्तपित्तनखादयः ॥ अस्मिन्वर्गे भिषक्कुर्यात्तैलानि च घृतानि च ॥ ४७ ॥

पुराना घृत, लहसन, हींग, सुपेद सरसों, वच, गोलोमी (सुपेद दूब), अजलोमी (दूब) भूतकेशी (जटामांसी) और जटा (गंधमांसी) ॥ ४३ ॥ कुक्कुटी (कुडड़ी वर्षामें सुपेद कुकडीसी होतीहै) और सर्पगंधा (नाकुली), काण (क्षीरकाकोली), काकडासींगी, शतावर, गिलोय, मेढासींगी, मोहनवल्ली (वटपत्री) ॥ ॥ ४४ ॥ आककी जड, त्रिकटु, लता (प्रियंगु या स्पृक्का), सुरमा, रसोत, मैनसिल, हरिताल तथा रक्षोघ्न अन्य द्रव्य ॥ ४५ ॥ सिंह, भँगेरा, रीछ, बिलाव, गेंडा, घोडा और गौ तथा सेह, शल्यकी (सेहका भेद जिसे फोकरी कहतेहैं), गोह, ऊँट और न्यौला ॥ ४६ ॥ इनके विष्ठा, त्वचा (चर्म), रोम, चरबी, मूत्र, रुधिर, पित्त और नख इत्यादि यथासंभव इकट्ठे करके इनमें वैद्य तैल तथा घृत सिद्ध करे ॥ ४७ ॥

अपराजितका उपयोग और गुण।

पानाभ्यंजननस्येषु तानि योज्यानि जानता ॥ अवपीडेऽञ्जने चैव विदध्याद्गुटिकीकृताम् ॥ ४८ ॥ विदधीत परीषेके क्वथितं चूर्णितं तथा ॥ उद्धूलने श्लक्ष्णपिष्टं प्रदेहे चावचारयेत् ॥ ४९ ॥ एष सर्वविकारांस्तु मानसानपराजितः ॥ हन्यादल्पेन कालेन स्नेहादिरपि च क्रमात् ॥ ५० ॥

यह पूर्व जो औषधोंका वर्ग कहा उसमें पकाये घृतको पान करावे और तैलादिको अभ्यंग तथा नस्यादिमें जानकार वैद्य उपयोग करे और उसी वर्गकी गोली बनाले उनका अवपीड (नस्य) देव तथा अंजन करे ॥ ४८ ॥ और इन्हींका क्काथ करके परिषेक करे तथा चूर्ण बनाकर उद्धूलन करे (शरीरपर सूखा मले) और इन्हीं सबको गीला पीसकर प्रदेह (लेप या उबटन) करे ॥ ४९ ॥ यह ऊपर जो औषधोंका वर्ग कहाहै इसका नाम अपराजित है यह सब प्रकारके मनोसंबन्धी विकारोंको थोडे ही समयमें शांत करदेताहै इसमें पहले स्नेहन, स्वेदन, वमन, रेचनादि क्रम भी करना उचित है ॥ ५० ॥

(वक्तव्य) वैद्यकमें संज्ञा और बुद्धिका मूल विशेष करके हृदय माना है परंतु कई आचार्य मूर्द्धाको भी मानतेहैं जो हृदयको बुद्धिका स्थान मानते हैं उनके मतसे यह हृदयमें होनेवाली व्याधि समझी जाती है और जो मूर्द्धाको मानते-हैं उनके मतसे मूर्द्धामें विकार होनेसे यह व्याधि होती है ऐसा माना जाता है ॥

अपस्मारका पूर्वरूप ।

हृत्कंपः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्च्छा प्रमूढता ॥
निद्रानाशश्च तस्मिंस्तु भविष्यति भवंत्यथ ॥ ९ ॥

हृदयमें कंप हो, शून्यता हो, पसीना आवे, ध्यानमें स्थितसा होजावे, मूर्च्छा हो, मूढता (बुद्धि बिगडना), निद्राका नाश ये लक्षण इसके पूर्वरूपके हैं (अर्थात् जब ये लक्षण हों तो जानना कि इसके मृगीका रोग होनेवाला है) ॥ ९ ॥

वातादि अपस्मारके लक्षण।

वेपमानो दशेद्दंताञ्श्वसन्फेनं वमन्नपि ॥ यो ब्रूयाद्विकृतं सत्त्वं कृष्णं मामनुधावति ॥ १० ॥ ततो मे चित्तनाशः स्यात्सोऽपस्मारोऽनिलात्मकः ॥ तृट्तापस्वेदमूर्च्छार्तो धुन्वन्नंगानि विह्वलः ॥ ११ ॥ यो ब्रूयाद्विकृतं सत्त्वं पीतं मामनुधावति ॥ ततो मे चित्तनाशः स्यात्स पित्तभव उच्यते ॥ १२ ॥

जो कांपताहुआ दांतोंके मींचे, श्वास जल्दी जल्दी लेवे, मुँहसे झाग आवें और जो ऐसा कहे कि काला काला भयंकर कोई मेरे पीछे दौडा आता है (या सामने काला ही काला दीखता है) ॥ १० ॥ तब मुझे बेहोशी होती है ये वायुके अपस्मारके लक्षण हैं और जो ताप, तृषा, पसीना और मूर्च्छा इनसे पीडित हो और अंगोंको धुनता हुआ बेहोश होजावे ॥ ११ ॥ और ऐसा कहे कि पीले रंगका कोई भयंकर रूपसा मेरे पीछेसे (या आगेसे) दौडा आताहै तब मुझे बेहोशी होजातीहै ये लक्षण पित्तके अपस्मारके होतेहैं ॥ १२ ॥

शीतहृल्लासनिद्रार्तः पतन्भूमौ वमन्कफम् ॥ यो ब्रूयाद्विकृतं सत्त्वं शुक्लं मामनुधावति ॥ १३ ॥ ततो मे चित्तनाशः स्यात्सोऽपस्मारः कफात्मकः ॥ हृदि तोदस्तृडुत्क्लेदस्त्रिष्वप्येतेषु संख्यया ॥ १४ ॥ प्रलापः कूजनं क्लेशः प्रत्येकं तु भवेदिह ॥ सर्वलिंगसमावायः सर्वदोषप्रकोपजे ॥ १५ ॥

कामभयोद्वेगक्रोधशोकादिभिर्भृशम् ॥ चेतस्यभिहते पुंसामप-स्मारोऽभिजायते ॥ ४ ॥

इंद्रियार्थोंके मिथ्यादियोगसे (श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना और घ्राण इनके अर्थ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इनके अयोग अतियोग और मिथ्यायोगसे जैसे शब्द को कभी बिलकुल सुने ही नहीं यह अयोग और अल्प शब्दको भी तोपके शब्दके समान बहुत भारी शब्द सुनना अतियोग और बेसुहावना शब्द सुनना मिथ्या-योग श्रोत्रका हुआ इसी भांति सबका जानना) तथा कर्मोंके मिथ्यायोग, अति-योग और अयोगसे जैसे चलना फिरना ही नहीं अयोग, बहुत फिरना अतियोग और अयोग्य फिरना मिथ्यायोग इसी प्रकार अनेक कर्मोंके समझना इन मिथ्या-दियोगोंके सेवनसे तथा विरुद्ध और मलिन आहार, विहारों आदिसे मल कुपित होजातेहैं जिससे ॥ २ ॥ वेग रोंकनेवालोंके, अहित और अपवित्र भोजन करने-वालोंके, रजोगुण और तमोगुण प्रकृतिवालोंके, रजस्वला स्त्रीका संगम करनेवा-लोंके ॥ ३ ॥ काम, भय, उद्वेग, क्रोध शोकादिसे कुपित हुए दोषोंसे मनुष्योंके चित्तमें जब आघात पहुँचाताहै तब यह अपस्मार रोग होताहै ॥ ४ ॥

अपस्मारकी संप्राप्ति रूप और भेद ।

संज्ञावहेषु स्रोतःसु दोषव्याप्तेषु मानवः ॥ रजस्तमःपरीतेषु मूढो भ्रांतेन चेतसा ॥ ५॥ विक्षिपन्हस्तपादौ च विजिह्मभ्रूविलोचनः ॥ दंतान्खादन्वमन्फेनं विवृताक्षः पतेत्क्षितौ ॥ ६ ॥ अल्पकालां-तरं चापि पुनः संज्ञां लभेत सः ॥ सोऽपस्मार इति प्रोक्तः स च दृष्टश्चतुर्विधः ॥ ७ ॥ वातपित्तकफैर्नृणां चतुर्थः संनिपाततः ॥ ८ ॥

संज्ञाके बहनेवाले (इंद्रियादि विषयोंके ज्ञान प्राप्त करनेवाले) स्रोतों (द्वारों धमनियों अर्थात् रगों) में जब रज और तम युक्त वातादि दोष व्याप्त होजाते हैं तब चित्त भ्रांत होकर मूढ (मोह या मूर्च्छामें प्राप्त हुआ) मनुष्य ॥ ५ ॥ हाथ और पावोंको फैलाता या पटकताहुआ पृथ्वीमें गिरजाता-है, जिह्वा, भ्रू और नेत्र विकृत होजातेहैं, दांत कटकटाते हैं, मुंहसे झाग आतेहैं और आँखें फटीसी होजाती हैं ॥ ६ ॥ थोडी देरके पीछे फिर चैतन्य होजाता है (होशमें होजाता है) (इसी प्रकार इस रोगका दौरा होने लगता है) इसे अपस्मार कहते हैं यह चार प्रकारका होताहै वायुका, पित्तका, कफका और सन्निपातका ॥ ७ ॥ ८ ॥

(श्लो० ४) एतैर्हेतुभिश्चित्ते अभिहते सति दूषित अपस्मारोऽभिजायते । एतैर्हेतुभिश्चित्ताभिघातहेतुभिः ।

यत्नके चलीजानाही चाहिये, तीसरे आगमसे अर्थात् शास्त्रकारोंने इसे दोषज चार भांतिका लिखाहीहै, चौथे यह कि ये वातादि दोष विश्वरूप सर्वत्र सब जगह रहनेवाले हैं इससे इनके विना कुछ होही नहीं सकता इसलिये वैद्योंने इसे दोषजही माना है और यही ठीक भी है ॥ १७ ॥ इसमें फिर यह शंका होसकतीहै कि भला जी आराम रहनेके दिनोंमें वे दोष कहाँ चलेजातेहैं ? इसका समाधान यह है कि जैसे पृथ्वीमें पडेहुए कोई बीज मेह वर्षनेपर भी शरदऋतुमें ही उगते हैं (नहीं तो पृथ्वीमें दबेपडे रहतेहैं) इसी भांति वे वातादि दोषभी कारण और समयपाकर कुपित होतेहैं तब व्याधिका दर्शन होताहै ॥ १८ ॥ और जैसे कोई बीज स्थायी (देरसे उगते) हैं और कोई थोडेही समयमें उगकर बढजातेहैं इस प्रकार इन वातादि दोषोंमेंसे भी अपने स्वभावसे कोई शीघ्र और कोई देरसे विकार दिखातेहैं ॥ १९ ॥ इन्हीं कारणोंसे यह अपस्मार महाव्याधि दोषोंहीसे उत्पन्न होनेवाली है अन्यथा नहीं और इसकी चिकित्सा भी (दोषोंकेही अनुसार) जैसे उन्मादमें कही जावेगी वैसे करनी उचित है ॥ २० ॥

मृगीकी सामान्य चिकित्सा ।

पुराणसर्पिषः पानमभ्यंगश्चैव पूजितः ॥ उपयोगो ग्रहोक्तानां योगानां तु विशेषतः ॥२१॥ शिग्रुकट्वंगकिण्वं हि निंबत्वग्रससाधितम् ॥ चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलमभ्यंजने हितम् ॥२२॥ गोधानकुलनागानां पृषतर्क्षगवामपि ॥ पित्तेषु सिद्धं तैलं च पानाभ्यंगेषु पूजितम् ॥ २३ ॥ तीक्ष्णैरुभयतो भागैः शिरश्चापि विशोधयेत् ॥ पूजां रुद्रस्य कुर्वीत तद्गणानां च नित्यशः ॥ २४ ॥

पुराना घृत पिलाना और मर्दन करना श्रेष्ठ है तथा जो उपयोग ग्रहोंके लिये कहेहैं उनका भी यहां विशेषकर उपयोग करे ॥ २१ ॥ तथा सोहँजना, अरलू, सुराबीज, नींबकी छाल और रस (या नींबकी छालका रस) इनमें चौगुना गोमूत्र डालकर तैल पकावे और उसका मर्दन करे ॥ २२ ॥ अथवा गोह, नौला, सर्प और साबर, रीछ, गौ इनके पित्तोंमें सिद्ध किया तैल पान और अभ्यंगमें श्रेष्ठ है॥ ॥ २३ ॥ तथा तीक्ष्ण योगोंसे वमन और विरेचन देकर नीचे ऊपरसे शोधन करे और शिरका भी शोधन (नस्य देकर) करे तथा नित्य शिवजीकी और उनके गणोंकी पूजा किया करे ॥ २४ ॥

(श्लो० २२) किण्व श्वेतस्यद (इति डल्लनः)

जो शीत हृल्लास (मुँहमें पानी भर आना) और निद्रासे पीडित हो पृथ्वीमें गिरताहुआ मुँहसे झाग डाले और ऐसा कहे कि सुपेद रंगका कोई भयंकरसा रूप मेरे पीछेसे (या आगेसे) दौडा आताहै ॥ १३ ॥ तब मैं बेहोश होजाताहूं ये लक्षण कफके अपस्मारके होतेहैं और सन्निपातके अपस्मारमें हृदयमें पीडा, तृषा, उत्क्लेद ये तीनों दोषोंके चिह्न होवें और प्रलाप, कूजन (अव्यक्त शब्द) और क्लेश ये भी प्रत्येक होतेहैं तथा सब दोषोंके मिले अन्य लक्षण (जैसे सब रंगका विकृत रूप दीखे या कभी कैसा कभी कैसा दीखे) ॥ १४ ॥ १५ ॥

अपस्मारोत्पत्तिमें मतान्तर ।

अनिमित्तागमाद्व्याधेर्गमनादकृतेऽपि च ॥
आगमाच्चाप्यपस्मारं वदन्त्यन्ये न दोषजम् ॥ १६ ॥

कोई ऐसा भी कहते हैं कि विना कारणही इसके उत्पन्न होनेसे और विना प्रतिकार किये ही इस व्याधिके दूर होजानेसे तथा आगमसे (किसी शास्त्रके प्रमाणसे) यह व्याधि दोषज (वातादि दोषोंसे उपजनेवाली) नहीं किंतु अमानुष भूतादिजन्य या मानस विकारसे होनेवाली है ॥ १६ ॥

मतान्तरका खण्डन ।

क्रमोपयोगाद्दोषाणां क्षणिकत्वात्तथैव च ॥ आगमाद्वैश्वरूपाच्च स तु निर्वर्ण्यते बुधैः ॥ १७ ॥ वर्षत्यपि यदा देवे भूमौ बीजानि कानिचित् ॥ शरदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधिसमुद्भवः ॥ ॥ १८ ॥ स्थायिनः केचिदल्पेन कालेनाभिप्रवर्द्धिताः ॥ दर्शयन्ति विकारांस्तु विश्वरूपान्निसर्गतः १९ ॥ अपस्मारो महाव्याधिस्तस्माद्दोषज एव तु ॥ तस्य कार्यो विधिः सर्वो य उन्मादेषु वक्ष्यते २० ॥

श्रीधन्वंतरिजी कहतेहैं कि प्रथम तो यह वातादिदोषोंके क्रमके उपयोगसे उत्पन्न होती है (अर्थात् वातादि–वायु, जल, शीत, उष्णादिके उपयोग होनेसे पैदा होती है) इससे अनिमित्तागम नहीं रही, दूसरे यह क्षणिक स्वभावहीसे होतीहै अर्थात् जब दोषोंका वेग हटजाताहै तब स्वयं शांत होजातीहै इससे विना

(श्लो० १६) अनिमित्तागमात् आकस्मिकोद्भवात् । प्रतीकारे अकृते च गमनात् नाय दोषजो व्याधिरिति वदंति । किंतु भूतादिजन्यः मनोभवश्च इति वदंति । आगमाच्च मंत्रशास्त्रादौ अस्य प्रतीकारबाहुल्याच्च । (श्लो० १७) दोषाणां क्रमोपयोगात् संचयादिक्रमेण विकारजननयोगात् तथा दोषाणामेव क्षणिकत्वात् । आगमात् आयुर्वेदात् । वैश्वरूपाच्च वातपित्तश्लेष्मणा सर्वत्र सद्भावात् ।

त्रिवृत्पाठानिशायुग्मं सारिवाद्वयपौष्करैः ॥ ३२ ॥ कटुकामदयंत्युग्रानीलिनीकृमिशत्रुभिः ॥ सर्पिरेभिश्च गोक्षीरदधिमूत्रशकृद्रसैः ॥ ३३ ॥ साधितं पंचगव्याख्यं सर्वापस्मारभूतनुत् ॥ चातुर्थिकक्षयश्वासानुन्मादांश्च नियच्छति ॥ ३४ ॥

दशमूल, कुड़ाकी छाल, मूर्वा, भारंगी, त्रिफला, किरमाला, हरडे, सातला, ओंगा और पीलू ॥ ३१ ॥ इनका कल्क करे और चिरायता, करंज, त्रिकुटु, चित्रक, निशोथ, पाठा, दोनों हलदी, दोनों सारिवा, पुष्करमूल ॥ ३२ ॥ कुटकी, मदयंती, वच, नीलिनी, विडंग ये भी मिलादे इनमें गौका दूध, गौका दही, गौका मूत्र और गौके गोबरका रस डालकर गौकाही घृत सिद्ध करे ॥ ३३ ॥ यह पंचगव्य नामक घृत सब अपस्मार, भूत, चौथिया ज्वर, क्षय, श्वास और उन्मादको नष्ट करता है ॥ ३४ ॥

वातिकं वस्तिभिश्चापि पैत्तिकं तु विरेचनैः ॥
कफजं वमनैर्धीमानपस्मारमुपाचरेत् ॥ ३५ ॥

वायुके अपस्मारको वस्तिकर्मसे और पित्तके अपस्मारको, विरेचनसे कफके अपस्मारको वमनसे वैद्य उपचार करे ॥ ३५ ॥

भार्ङ्गीशृते पचेत्क्षीरे शालितंडुलपायसम् ॥ त्र्यहं शुद्धाय तद्भोज्यं वराहायोपकल्पयेत् ॥ ३६ ॥ ज्ञात्वा च मधुरीभूतं तं विषस्थं तदुद्धरेत्॥ त्रीन्भागांस्तस्य चूर्णस्य किण्वभागेन संसृजेत् ॥ ३७ ॥ मंडोदकार्थं देयश्च भार्ङ्गीक्वाथः सुशीतलः ॥ शुद्धकुंभे निदध्याच्च संभारं तं सुरां ततः ॥ ३८ ॥ जातगंधां जातरसां पाययेदातुरं भिषक् ॥ शिरां विध्येदथ प्राज्ञा मांगल्यानि च धारयेत् ॥ ३९ ॥

इति सुश्रुतसं० उत्तरतंत्रे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

(श्लो० ३६ से ३९ तक) भार्ङ्गीशृत इत्यादि—भार्ङ्गीशृते क्षीरे शालितडुलपायसं पचेदिति संबंधः। तत्र चतुर्थांशं भार्ङ्गीकल्कं दत्त्वा चतुर्गुणेन जलेन क्षीरं साधयेत् । शुद्धाय त्रिदिनमुपोषिताय वराहाय तत्पायसं भोक्तुं प्रकल्पयेत् । मधुरीभूतं श्लेष्मसंसृष्टं विदाहावस्थानप्राप्तम् । अन्ये तु मधुरीभूतं विषीभूतं व्याख्यानयंति । यतो मधुररसे विषविशेषो वर्तते अथ पायस कथं विषविशेष भवतीति चेत् आधारप्रभावात्—विषीभूतं च वराहस्यैव लालास्रावमूर्च्छादिलिंगैर्ज्ञातव्यम् । तं वराहं विषस्याजीर्णविषीभूतमुद्धरेत् । तस्य उद्धृतस्य अन्नस्य शोधितचूर्णीभूतस्य त्रीन्भागान् किण्वभागेन संसृजेत् । मंडोदकार्थं संधानार्थं भार्ङ्गीक्वाथो देयः शुद्धे संस्कृते कुंभे संधाय यावत् सम्यक्सुराभावं प्राप्नोति—जातरसा तामपस्मारातुरं पाययेत् (इति नि० सं०)

वातादिके अपस्मारकी चिकित्सा।

कुलत्थयवकोलानि शणबीजं पलंकषाम् ॥ जटिलां पंचमूल्यौ द्वे पथ्यां चोत्क्वाथ्य यत्नतः ॥ वस्तमूत्रयुतं सर्पिः पिबेत्तद्वातिके हितम् ॥ २५ ॥ काकोल्यादिप्रतीवापं सिद्धं वा प्रथमे गणे ॥ पयोमधुसितायुक्तं घृतं तत्पैत्तिके हितम् ॥ २६ ॥ कृष्णावचामुस्तकाद्यैर्युक्तमारग्वधादिकैः ॥ पक्वं तन्मूत्रवर्गेषु श्लेष्मापस्मारिणे हितम् ॥ २७ ॥

कुलथी, जौ, बेर, शणके बीज, लाख, जटामांसी, दशमूल और हरडे इनका क्काथ कर बकरेका मूत्र मिला घृत सिद्ध कर ले इसे वायुके अपस्मार रोगमें पीना हितकारक होता है ॥ २५ ॥ प्रथम विदारिगंधादिगणमें काकोल्यादिका प्रतिबाप देकर घृत पकालेवे फिर इस घृतमें दूध, शहद, मिश्री मिलाकर पीना पित्तके अपस्मारमें हित है ॥ २६ ॥ और आरग्वधादि गणमें पीपल, वचा और मोथा आदि डालकर और मूत्रवर्ग मिलाकर घृत पकावे यह कफके अपस्मारमें हितकारक है ॥ २७ ॥

सिद्धार्थक घृत।

सुरद्रुमवचाकुष्ठसिद्धार्थव्योषहिंगुभिः ॥ मंजिष्ठारजनीयुग्मसमंगात्रिफलांबुदैः ॥ २८ ॥ करंजबीजशैरीषगिरिकर्णीहुताशनैः ॥ सिद्धं सिद्धार्थकं नाम सर्पिर्मूत्रचतुर्गुणम् ॥ २९ ॥ कृमिकुष्ठगरश्वासवलासविषमज्वरान् ॥ सर्वभूतग्रहोन्मादानपस्मारांश्च नाशयेत् ॥ ३० ॥

देवदारु, वच, कूट, सुपेद सरसों, त्रिकटु, हींग, मँजीठ, दोनों हलदी, लज्जालू, त्रिफला, नागरमोथा ॥ २८ ॥ करंजबीज, शिरसके बीज, गिरिकर्ण (श्वेतस्यंद) और चित्रक इनमें चौगुना गोमूत्र मिलाकर घृत पकाले ॥ २९ ॥ यह घृत कृमि, कुष्ठ, विष, श्वास, कफ, विषमज्वर, सब भूतग्रह, उन्माद और अपस्मार इतने रोगोंको नष्ट करता है इसका नाम सिद्धार्थ घृत है ॥ ३० ॥

पंचगव्य घृत।

दशमूलेंद्रवृक्षत्वङ्मूर्वाभार्ङ्गीफलत्रयैः ॥ संपाकश्रेयसीसप्तपर्ण्यपामार्गपीलुभिः ॥३१॥ एतैः कल्कैश्च भूनिंबपूतीकव्योषचित्रकैः ॥

यको दूषित करतेहैं वहां उन्मार्गमाश्रित और उद्धत होकर दोषोंका हृदयमें प्राप्त होना महर्षिजीने नहीं लिखा जैसा कि इन व्याधियोंमें लिखा, दूसरे यह कि इन व्याधियोंमें शिरका शोधन प्रथमहीसे लिखाहै और हृदय रोगमें शिरके शोधनकी विशेष आवश्यकता नहीं इससे यह सिद्ध होताहै कि उन्माद दोनों तरहसे होताहै हृदयसे भी होसकताहै और मूर्द्धासे भी ॥

उन्मादके भेद।

एकैकशः समस्तैश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः ॥ मानसेन च दुःखेन स पंचविध उच्यते ॥ २ ॥ विषाद्भवति षष्ठश्च यथास्वं तत्र भेषजम् ॥ स चाप्रवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां बिभर्ति च ॥ ३ ॥

एक एक वातादि दोषसे ऐसे तीन तो ये और चौथा सन्निपातसे ये वातादि दोष जब अत्यन्त मूर्च्छित होतेहैं तब यह होताहै और पांचवां मनके दुःखसे, इस भांति यह उन्माद पांच प्रकारका हुआ॥२॥ और छठा विष (अथवा तीक्ष्ण नशे) से होजाताहै इसमें यथायोग्य दोषोंके अनुसार चिकित्सा होतीहै और यह जबतक ताजा होताहै या बढाहुआ नहीं होता (अर्थात् ज्यादे नहीं बढता) तब तक इसकी मदसंज्ञा होतीहै ॥ ३ ॥

उन्मादका पूर्वरूप।

मोहोद्वेगौ स्वनः श्रोत्रे गात्राणामपतर्पणम् ॥ अत्युत्साहोऽरुचि-[२] श्चान्ने स्वप्ने कलुषभोजनम् ॥ ४ ॥ वायुनोन्मथनं चापि भ्रमश्चं-क्रमतस्तथा ॥ यस्य स्यादचिरेणैवमुन्मादं सोऽधिगच्छति ॥ ५॥

कभी मोह और कभी उद्वेग हो, कानोंमें शब्द हो और शरीर दुबला होजावे, अत्यंत उत्साहसे रहे, अन्नमें रुचि न हो और स्वप्नमें कलुषित (खराब) भोजन खावे ॥ ४ ॥ और वायुसे (हृदयका) मथनसा होना मालूमदे और कुम्हारके चाककी तरह घूमनासा हुआ करे जिसके ये लक्षण हों उसे थोडेही दिनमें उन्माद होजावेगा (ऐसा जानना चाहिये ये उन्मादके पूर्वरूप हैं) ॥ ५ ॥

वातोन्मादके लक्षण।

रूक्षच्छविः परुषवाग्धमनीततो वा श्वासातुरः कृशतनुः स्फुरि-

(श्लो० ३) स च अप्रवृद्धः तरुणः मदसंज्ञां बिभर्ति । डल्लनमते तु मदसंज्ञा विषजस्योन्मादस्यैव अप्रवृद्धत्वे भवति । भावमिश्रमते उन्मादमात्रस्य अप्रवृद्धस्य तरुणस्य नवीनस्य मदसंज्ञा भवतीति

(श्लो० ५) चंक्रमतः कुलालचक्रस्थितस्येव भ्रमः (इति डल्लनः) अन्ये च क्रमतः क्रमात् भ्रमः क्रमेण भ्रमवृद्धिरित्याहुः । (श्लो० ६) धमनीततः धमनीभिः स्फुटत्वेन व्याप्तः ।

भारंगीमें औटाये हुए दूधसे (भारंगीका चूर्ण चतुर्थांश डालकर दूधमें चौगुना पानी डालके पकावे जब दूधमात्र शेष रहे तब) उसमें शाली चावलोंकी खीर पकावे और एक सूकरको जो तीन दिनका भूँखा हो उसे वह खीर खिलावे और जब वह पेटमें मधुरभावको प्राप्त हो तब उस विषभागको प्राप्त हुई खीरको निकाल ले फिर तीन भाग इस चूर्णमें एकभाग सुराका बीज मिलादे ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥ और मण्डोदक (मद्यके जल) के जगह उसमें भारंगीका काथही ठण्ढा करके डालदे और एक शुद्ध पूर्वोक्त संस्कार किये घडेमें उसे भर दे और जबतक वह मद्य बने तबतक भरारहने दे ॥ ३८ ॥ और जब उसमें मद्यकी गंध और रस आजावे (मद्य बनजावे) तब इसमेंसे वैद्य मृगीके रोगीको पिलाया करे और यथार्थ हो तो यथायोग्य शिरावेधन भी करे और पूर्वोक्त मंगल धारण करे (अर्थात् मांगलिक पदार्थों सिद्धार्थकपुष्पादिको धारण करे) ॥ ३९ ॥

यूनानीवाले मृगीको "मुरआ" कहते हैं और डाक्टरीमें इसे एपेलेपसी कहते हैं ॥

इति प० मुरलीधरवि० सुश्रुतस० भा० टी० उत्तरतंत्रे कायचिकित्सायामेकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः ६२.

अथात उन्मादप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम उन्मादप्रतिषेधके अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ।

मदयंत्युद्गता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः ॥
मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः ॥ १ ॥

इस व्याधिमें जोकि प्रतिलोम मार्गोंमें समाश्रित हुए दोष ऊर्द्धगामी होकर मद उत्पन्न करते हैं इससे यह मानस व्याधि उन्माद कहलातीहै (इसे भाषामें बावलापन या दीवानगी और खफगांन वगैरह कहतेहैं) ॥ १ ॥

(वक्तव्य) ये उन्माद और अपस्मारादि व्याधि मन और बुद्धिकी विकृतिसे होतीहैं इन्हें वैद्यकमें प्रायः हृदयके विकारसे मानतेहैं परन्तु यदि विचार कर देखें तो हमारे वैद्यकके सिद्धांतसे यह मूर्द्धाजन्य (दिमागसे होनेवाली) भी प्रतीत होतीहै क्योंकि महर्षि धन्वंतरिजीने पहलेही लिखा है कि-"उन्मार्गमाश्रिता उद्गता दोषा मदयंति" अर्थात् प्रतिलोम मार्गमें ऊपरको प्राप्त हुए दोष जब ऊर्द्धगामी होतेहैं तब मद करतेहैं अर्थात् मूर्द्धामें पहुँचतेहैं तब मद करतेहैं(उन्माद पैदा करते हैं) और यदि ऐसा कहो कि उन्मार्गाश्रित और ऊर्द्धगामी होकर दोषोंका हृदयमें ही प्राप्त होना समझिये तो हृद्रोगमें जहां अवश्यमेव दोष हृद-

शोकोन्माद और विषोन्मादके लक्षण ।

चौरैर्नरेंद्रपुरुषैररिभिस्तथान्यैर्वित्रासितस्य धनबांधवसंक्षयाद्वा ॥ गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिरंसोर्जायेत चोत्कटतरो मनसो विकारः ॥ १० ॥ चित्रं स जल्पति मनोनुगतं विसंज्ञो गायत्यथो हसति रोदिति चापि मूढः ॥ रक्तेक्षणो हतबलेंद्रियभः सुदीनः श्यावाननो विषकृतेन भवेद्विसंज्ञः ॥ ११ ॥

चोरोंने और राजा या राजपुरुषोंने, शत्रुओंने जिसे बहुत त्रास दिया हो या जिसके धनपुत्रादिक नष्ट होगये हों या जिसके मनपर तीक्ष्ण आघात पहुँचा हो या प्यारी स्त्रीसे रमणकी अत्यंत वांछा हो इन बातोंसे मनमें उत्कट विकार होजाता है जिससे मनुष्य उन्मत्त होकर चित्रविचित्र बातें कहता है अथवा मनके अनुकूल मिथ्या प्रलाप करता है, कभी गाने लगता है, कभी हँसता है, कभी मूढ होकर रोने लगता है ये लक्षण मनके दुःखसे हुए उन्मादमें होते हैं और विषके उन्मादमें नेत्र लाल होजाते हैं, बल, इंद्रिय और कांति ये नष्ट होजाते हैं, मनुष्य दीन होजाता है, चेहरा काला पडजाता है और बेहोश होजाता है ॥ १० ॥ ११ ॥

उन्मादकी चिकित्सा ।

स्निग्धं स्विन्नं तु मनुजमुन्मादार्तं विशोधयेत् ॥ तीक्ष्णैरुभयतो भागैः शिरसश्च विरेचनैः ॥ १२ ॥ विविधैरवपीडैश्च सर्षपस्नेह-संयुतैः ॥ योजयित्वा च तच्चूर्णं घ्राणे नस्यं तु योजयेत् ॥ १३ ॥ सततं धूपयेच्चैनं श्वगोमांसैः सुपूतिभिः ॥ सर्षपाणां च तैलेन नस्याभ्यंगौ हितौ सदा ॥ १४ ॥

उन्मादके रोगीको स्नेहन, स्वेदन करके तीक्ष्ण वमन, विरेचन देकर ऊपर नीचे दोनों तरफसे खूब शोधन करे और शिरोविरेचनसे शिरका भी खूब शोधन करे ॥ १२ ॥ अनेक प्रकारका अवपीडन सरसोंके तैलमें मिलाकर देवे और सरसोंहीका चूर्ण मिलाकर नासिकामें नस्य दे ॥ १३ ॥ और कुत्ते तथा गौके मांसको सडाकर उसकी निरंतर धूनी देवे तथा सरसोंके तेलका नस्य देना और उसीका मर्दन करना सदा उन्मादवालेको हितकारक है ॥ १४ ॥

(श्लो० १३) तच्चूर्णं सर्षपचूर्णम् (इति नि० सं०)

तांगसंधिः ॥ आस्फोटयन्पठति गायति नृत्यशीलो विक्रोशति भ्रमति चाप्यनिलप्रकोपात् ॥ ६ ॥

शरीरकी कांति रूखी हो, कठोर शब्द बोले और नसें कडी होजावें, श्वाससे पीडित हो, शरीर दुबला पडजावे, शरीरकी संधियोंमें फरकन हो, तोड तोड कर पढे और गान तथा नृत्य भी करने लगे, गाली देवे और भ्रमता फिरे ये लक्षण वायुके उन्मादमें होते हैं ॥ ६ ॥

पित्तोन्मादके लक्षण ।

तृट्स्वेददाहबहुलो बहुभुग्विनिद्रश्छायाहिमानिलजलांतविहार- सेवी ॥ तीक्ष्णो हिमांबुनिचयेपि सवह्निशंकी पित्ताद्दिवा नभसि पश्यति तारकाश्च ॥ ७ ॥

तृषा, पसीना, दाह ये बहुत रहें, बहुत खावे, निद्रा नहीं आवे, छाया, ठंढक, पवन, पानी इनमें विहार करना चाहे, तीक्ष्णता हो, बरफ और पानी इनके समूहमें भी अग्निकी शंका करे और दिनमें भी आकाशमें तारेसे देखे ये पित्तज उन्मादके लक्षण हैं ॥ ७ ॥

कफोन्माद और सन्निपातोन्मादके लक्षण ।

छर्द्यग्निसादसदनारुचिकासयुक्तो योषिद्विविक्तरतिरल्पमतिप्र- कारः ॥ निद्रापरोल्पकथनोल्पभुगुष्णसेवी रात्रौ भृशं भवति चापि कफप्रकोपात् ॥८॥ सर्वात्मके त्रिभिरपि व्यतिमिश्रितानि रूपाणि वातकफपित्तकृतानि विद्यात् ॥ संपूर्णलक्षणमसाध्यमुदाहरंति सर्वात्मकं क्वचिदपि प्रवदंति साध्यम् ॥ ९ ॥

वमन हो, अग्नि मंद होजाय, शिथिलता, अरुचि और खांसी ये भी हों स्त्रियोंसे रहस्यमें रमण करना चाहे, बुद्धि मंद होजावे, निद्रा बहुत आवे, कम बोले, थोडा खावे, गरम पदार्थोंका सेवन करे, रात्रिमें अधिक होजावे ये कफोन्मादके लक्षण हैं ॥ ८ ॥ सन्निपातके उन्मादमें वायु, पित्त, कफ तीनों दोषोंके लक्षण और रूप मिले हुए होते हैं यह संपूर्ण लक्षणों (उपद्रवों) से युक्त हो तो असाध्य होताहै और कभी यह सन्निपातका उन्माद साध्य भी होताहै ॥ ९ ॥

(श्लो० ८) योषिद्विविक्तरतिः योषिति सुविविक्ते एकांते रती रमणं यस्य सः । (श्लो० ९) त्रिभिः वातादिभिः व्यतिमिश्रितानि मिश्रितानि रूपाणि सर्वात्मके भवंतीति ।

वारणम् ॥ २१ ॥ एतदेव हि संपकं जीवनीयोपसंभृतम् ॥ चतुर्गुणेन दुग्धेन महाकल्याणमुच्यते ॥ २२ ॥ अपस्मारं ग्रहं शोषं क्लैब्यं कार्श्यमवीजताम् ॥ घृतमेतन्निहंत्याशु ये चादौ गदिता गदाः ॥२३॥

विडंग, त्रिफला, मोथा, मँजीठ, अनार, कमल, प्रियंगु, एलवालुक, इलायची, चन्दन, देवदारु ॥ १९ ॥ नेत्रबाला, हलदी, कट, पृश्निपर्णी, सारिवा, हरेणु, निशोथ, दंती, वच, तालीशपत्र और नागकेशर ॥ २० ॥ इनमें दोनों दूध (गौ और बकरीका (और कई दुगना दूध ऐसा मानते हैं) डाले और मालतीके पुष्प डालकर घृत पकाले यह (कल्याण घृत पहले ज्वरमें कहाभी जा चुका है), गुल्म, खांसी, ज्वर, श्वास, क्षय और उन्माद इन्हें दूर करता है ॥ २१ ॥ और इसी घृतको जीवनीयगणकी औषधोंके साथ चौगुने दूधसे पकावे तो यह महाकल्याण घृत होजाता है ॥ २२ ॥ यह मृगी, ग्रहदोष, शोष, नपुंसकता, कृशता और निर्वीर्यता इन रोगोंको तथा जो पहले कहे (कल्याणघृतोक्त) रोगोंको भी दूर करता है ॥ २३ ॥

फलघृत ।

बर्हिष्ठकुष्ठमंजिष्ठाकटुकैलानिशाह्वयैः ॥ तेनेदं त्रिफलाहिंगुवाजिगंधामरद्रुमैः ॥ २४ ॥ वचाजमोदाकाकोलीमेदामधुकपद्मकैः ॥ सशर्करं हितं सर्पिः पक्वं क्षीरचतुर्गुणम् ॥ २५ ॥ बालानां ग्रहजुष्टानां पुंसां दुष्टाल्पमेधसाम् ॥ ख्यातं फलघृतं स्त्रीणां वंध्यानां चाशु गर्भदम् ॥ २६ ॥

नेत्रबाला, कूट, मँजीठ, कुटकी, इलायची, हलदी, त्रिफला, हींग, असगंध देवदारु ॥ २४ ॥ वच, अजमोदा, काकोली, मेदा, मुलेठी और पद्माख इनमें घृत पकावे और चौगुना दूध डाले तथा खांड भी डाले यह फलघृत ग्रहपीडित बालकोंको तथ दुष्टबुद्धिवाले और अल्पबुद्धिवाले पुरुषोंको श्रेष्ठ है तथा वंध्या स्त्रियोंको शीघ्रही गर्भ देनेवाला है ॥ २५ ॥ २६ ॥

अन्यप्रयोग ।

ब्राह्मीमैंद्रीं विडंगानि व्योषं हिंगु सुरां जटाम् ॥ विषघ्नीं लशुनं रास्नां विशल्यां सुरसां वचाम् ॥ २७ ॥ ज्योतिष्मतीं नागविन्ना-

---

(श्लो० २४ से २६ तक) एतत्फलघृतपाठोपि समाश्रितः प्रतीयते । तत्र तेनेदमिति असमम् अशुद्धं वा प्रतीयते ।

अन्य यत्न ।

दर्शयेदद्भुतान्यस्य वदेन्नाशं प्रियस्य च ॥ भीमाकारैर्नरैर्नागैर्दान्तैर्व्यालैश्च निर्विषैः ॥ १५ ॥ भीषयेत्सततं पाशैः कशाभिर्वाथ ताडयेत् ॥ यंत्रयित्वा सुतप्तं वा त्रासयेत्तं तृणाग्निना ॥ १६ ॥ प्रतुदैर्दारयेच्चैनं मर्माघातं विवर्जयेत् ॥ सापिधाने जरत्कूपे सततं वा निवासयेत् ॥ १७ ॥

इसे अद्भुत वस्तु दिखलावे तथा प्यारे मनुष्य या प्यारी चीजका नाश होगया ऐसा झूठ मूठ ही उससे कहदे अथवा भयानक मनुष्योंसे, हाथियोंसे, दांतसे काटनेवालोंसे और निर्विष सर्पोंसे डरावे ॥ १५ ॥ अथवा रस्सोंसे बांध कर डरावे अथवा चाबुक मारे या मारनेका भय देवे अथवा बांधकर उसको तृणकी अग्नि लेजाकर डरावे ॥१६॥ अथवा बाज, सिकरे आदिसे नोचावे परन्तु मर्मपर आघात न पहुँचे इस बातका ध्यान रक्खे अथवा मुँह ढके हुए अँधेरे कुएमें कुछ दिन पडा रक्खे (प्रायः ऐसा करनेसे दिल ठिकाने आजाया करताहै)॥१७॥

त्र्यहात्त्र्यहाद्यवागूं च दद्यात्सक्तुं जलेन वा ॥
केवलानंबुयुक्तान्वा कुल्माषान्वा बहुश्रुतः ॥
हृद्यं यद्दीपनीयं च तत्पथ्यं तस्य योजयेत् ॥ १८ ॥

तीन तीन दिनमें इसे यवागू खानेको देवे अथवा जलके संग घुले हुए सत्तू देवे अथवा केवल या जलके साथ कुल्माष (बांकली) देवे और बहुश्रुत वैद्यको चाहिये कि हृदयप्रिय और दीपन जो हों उन्हे अग्निबलके अनुसार भोजनार्थ पथ्य देवे ॥ १८ ॥

महाकल्याण घृत ।

विडंगत्रिफलामुस्तमंजिष्ठादाडिमोत्पलैः ॥ श्यामैलवालुकैलाभिश्चंदनामरदारुभिः॥ १९ ॥ बर्हिष्ठरजनीकुष्ठपर्णिनीसारिवाह्वयैः॥ हरेणुकात्रिवृद्दंतीवचातालीशकेशरैः ॥ २० ॥ द्विक्षीरं साधितं सर्पिर्मालतीकुसुमैः सह ॥ गुल्मकासज्वरश्वासक्षयोन्मादनि-

(श्लो० १६) कशाभिः चर्मयष्टिभिः । कशा चर्मयष्टिः "कोडा" इति लोके । (श्लो० १७) सापिधाने जरत्कूपे छायायुक्ते निर्जले कूपे । (श्लो० १९ से २३ तक) एषां श्लोकानां पदच्छेदान्वयादिकं पूर्वे उत्तराध्याये कृतमेव । अत्र बहुषु पुस्तकेषु लिखितत्वान्मयापि लिखिताः परंतु वास्तवेनैषां लिखितेन पुनरुक्तिरेव ।

रके सूक्ष्म उन्मादको "मेलनकोलिया" (Melancholia) कहतेहैं जिसे यूनानी "माली खोलिया" कहतेहैं ॥

इति पं० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतंत्रे भूतविद्याया द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

॥ इति भूतविद्या समाप्ता ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः ६३.

अथातो रसभेदविकल्पमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम रसके भेदकल्पनाके अध्यायका व्याख्यान करते है (अर्थात् पहले जो छः रस वर्णन कियेगये हैं उनके मिलनेसे कितने भेद होतेहैं इसका वर्णन करतेहैं)

दोषाणां पञ्चदशधा प्रसरोऽभिहितस्तु यः ॥ त्रिषष्ट्या रसभेदानां तत्प्रयोजनमुच्यते ॥ १ ॥ अविदग्धा विदग्धाश्च भिद्यन्ते ते त्रिषष्टिधा ॥ रसभेदान्त्रिषष्टिं तु वीक्ष्य वीक्ष्यावचारयेत् ॥ २ ॥ एकैकेनानुगमनं भागशो यदुदीरितम् ॥ दोषाणां तत्र मतिमान्त्रिषष्टिं तु प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥

दोषोंका जो पंद्रह प्रकारका प्रसर (कोप या उफान) पहले वर्णन किया (उसके अगाड़ी त्रेसठ भेद कहेंगे अर्थात् उल्वणता और हीनतादिसे दोषोंके त्रेसठ भेद होतेहैं) उनमें रसोंके त्रेसठ भेदोंका प्रयोग करना रसभेद कहनेका प्रयोजन है ॥ १ ॥ अविदग्ध और विदग्ध (एक वस्तुमें समवाय संबन्धसे कई रसोंका योग हो और संयोगसे रसोंका योग हो इसप्रकारसे) रसोंके त्रेसठ भेद होतेहैं इन त्रेसठ प्रकारके रसभेदोंको (दोषोंके अनुसार) देख देख कर प्रयोग करे ॥ २ ॥ एक एकके अनुगत होकर जो विभागपूर्वक भेद कहे जातेहैं उनसे त्रेसठ प्रकारके दोषभेदोंको योजना करे ॥ ३ ॥

दोदो रसोंके योगसे भेद ।

यथाक्रमं प्रवृत्तानां द्विकेषु मधुरो रसः ॥ पंचानुक्रमते योगानम्लश्चतुर एव च ॥ ४ ॥ त्रींश्चानुगच्छति रसो लवणः कटुको द्वयम् ॥ तिक्तः कषायमन्वेति त द्विका दश पंच च ॥ ५ ॥

(श्लो० १) रसभेदकथने प्रयोजनमाह–त्रिषष्टिप्रकाराणामपि रसभेदानामुपयोगार्थं दोषभेदा उक्ताः। तेन दोषभेदानां त्रिषष्टिरपि गृह्यते (श्लो० २) अविदग्धा असंयुक्ता समवायतो भिद्यंत इत्यर्थः । विदग्धा संयुक्ता रसांतरसंयोगात् भिद्यंते तत्र यथासंभवं केचित् संयोगतः केचित्समवायतः इत्यादिभेदैर्न द्रव्यांतरद्वारेण कथ्यंते (इति नि० स०)

मनंतामभयां तथा ॥ सौराष्ट्रीं च समांशानि गजमूत्रेण पेषयेत् ॥ ॥ २८ ॥ छायाविशुष्कास्तद्वर्तीर्योजयेद्विधिकोविदः ॥ अवपीडेऽञ्जनेऽभ्यंगे नस्ये धूमे प्रलेपने ॥ २९ ॥

ब्राह्मी, इंद्रायण, विडंग, त्रिकटु, हींग, सुरा (सुराह्व देवदारु), जटामांसी, (बालछड़), हलदी, लहसन, रास्ना, विशल्या (गिलोय), तुलसी, वच ॥२७॥ मालकांगनी, नागविन्ना (इंद्रायनका भेद नागदमनी), उत्पलसारिवा, हरडे, फटकडी इनको समान भाग लेकर हाथीके मूत्रमें पीसे ॥ २८ ॥ और गोली बनाके छायामें सुखाले इन्हें विधि जाननेवाला वैद्य इस उन्माद रोगमें अवपीडनमें, अंजनमें, मर्दनमें, नस्यमें, धूनी देनेमें और लेपमें सब जगह उपयोग करे ॥२९॥

उन्मादचिकित्सामें विषेश उपदेश ।

उरोपांगललाटेषु शिराश्चास्य विमोक्षयेत् ॥ अपस्मारक्रियां चापि ग्रहोदिष्टां च कारयेत् ॥ ३० ॥ शांतदोषं विशुद्धं च स्नेहवस्तिभिराचरेत् ॥ शोकशल्यं व्यपनयेदुन्मादे पंचमे भिषक् ॥ ३१ ॥ उन्मादेषु च सर्वेषु कुर्याच्चित्तप्रसादनम् ॥ मृदुपूर्वां मदेष्वेवं क्रियां विद्वान्प्रयोजयेत् ॥ ३२ ॥ विषजे मृदुपूर्वां च विषघ्नीं कारयेत्क्रियाम् ॥ ३३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे भूतविद्यायां द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

हृदय, अपांग तथा ललाट इन स्थानोंमें उन्मादवालेका शिरामोक्षण करे तथा अपस्मारोक्त और ग्रहोक्त क्रिया भी करे ॥ ३० ॥ जब दोष शांत होजावे और शोधनादिसे शुद्ध होजावें तब स्नेहवस्ति करे और पांचवें शोकके उन्मादमें शोकरूपी शल्यको ज्ञानादिसे दूर करे ॥ ३१ ॥ सब भांतिके उन्मादोंमें चित्तका प्रसन्न करना मुख्य है और जो मद हो उसमें विद्वान् वैद्य पहले मृदु (हलकी) क्रिया करे ॥ ३२ ॥ और विषजन्य उन्मादमें मृदुतापूर्वक विष दूर करनेवाली क्रिया करनी चाहिये ॥ ३३ ॥

यूनानी हकीम मूर्द्धा (दिमागसे होनेवाले उन्मादको "जनूं" कहते हैं और दिलके फितूर (धड़कने या बे ठिकाने जरा टहलजानेसे) होनेवालेको "खफगान" कहते हैं और उन्मादके सूक्ष्मांगमदको " मिराक " कहते हैं ॥

डाक्टरीमें दिमागसे होनेवाले उन्मादको "इन्सानिटी" (Insanity) कहतेहैं और दिल धड़कनेसे होनेवालेको "पलपेटीशन" (Palpetition) कहतेहैं और एकप्रका-

मधुराम्ललवणः । मधुराम्लकटुकः। मधुराम्लतिक्तः । मधुराम्ल-कषायः । मधुरलवणकटुकः । मधुरलवणातिक्तः । मधुरलवणक-षायः । मधुरकटुकातिक्तः । मधुरकटुककषायः मधुरतिक्तकषायः । एवमेषां त्रिकसंयोगानां दशानामादौ मधुरः प्रयुज्यते ॥ १३ ॥ अम्ललवणकटुकः । अम्ललवणातिक्तः । अम्ललवणकषायः । अम्लकटुकषायः । अम्लकटुतिक्तः । अम्लातिक्तकषायः । एव-मेषामादावम्लः प्रयुज्यते ॥ १४ ॥ लवणकटुतिक्तः । लवणकटु-कषायः । लवणातिक्तकषायः। एवमेषां त्रयाणामादौ लवणः प्रयु-ज्यते ॥ १५ ॥ कटुतिक्तकषायः । एवमेकस्यादौ कटुकः प्रयु-ज्यते ॥ १६ ॥ एवमेते त्रिकसंयोगा विंशतिर्व्याख्याताः ॥ १७ ॥

तीन तीन रसोंके मेलसे २० भेद इस भांति होतेहैं जैसे—१ मीठा खट्टा खारा।२ मीठा खट्टा चरका । ३ मीठा खट्टा कडुवा । ४ मीठा खट्टा कसेला । ५ मीठा खारा चरपरा । ६ मीठा खारा कडुवा । ७ मीठा खारा कसेला । ८ मीठा चरका कडुवा । ९ मीठा चरका कसेला । १० मीठा कडुवा कसेला । इस भांति तीन रसोंके योगोंमें दश भेद ये ऐसे हैं जिनके आदिमें मधुर रस मिलताहै ॥ १३ ॥ फिर १ खट्टा खारा चरका। २ खट्टा खारा कडुवा । ३ खट्टा खारा कसेला। ४ खट्टा चरका कसेला । ५ खट्टा चरका कडुवा। ६ खट्टा कडुवा कसेला। इस भांति तीन रसोंके योगमें छः भेद ये ऐसेहैं जिनके आदिमें अम्ल रस मि-लताहै ॥ १४ ॥ फिर १ खारा चरका कडुवा । २ खारा चरका कसेला। ३ खारा कडुवा कसेला। इस प्रकार ये तीन भेद ऐसेहैं जिनके आदिमें लवण रस मिलाहै ॥ १५ ॥ फिर १ चरपरा कडुवा कसेला। यह एक ऐसाहै जिसके आदिमें कटुक रस मिलाहै ॥ १६ ॥ इस प्रकारसे तीन रसोंके संयोगके ये बीस भेद कहेहैं ॥ १७ ॥

चार चार रसोंके योगके १५ भेद ।

चतुष्कान् वक्ष्यामः । चतुष्करससंयोगान्मधुरो दश गच्छति ॥
चतुरोऽम्लस्तु गच्छेच्च लवणस्त्वेकमेव तु ॥ १८ ॥

अब चार चार रसोंके मिलनेसे जिस प्रकार भेद होतेहैं उन्हें कहतेहैं इन चार रसोंके संयोगोंमें मधुर रस दशोंके आदिमें आताहै और अम्लरस

मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय इन छह रसोंके यथाक्रम प्रवृत्त होनेमें दो २ रसोके योग करनेमें मधुररस पांचोंसे मिलता है और पांच भेद होतेहैं तथा अम्ल चारोंसे मिलता है, लवण तीनोंसे मिलता है, कटुक दोसे मिलता है और तिक्त केवल एकहीसे मिलता है ऐसे दो दो रसके मेलसे १५ भेद होजाते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

तद्यथा–मधुराम्लः । मधुरलवणः । मधुरतिक्तः । मधुरकटुकः । मधुरकषायः । एते पंचानुक्रांता मधुरेण ॥ ६ ॥ अम्ललवणः । अम्लकटुकः । अम्लतिक्तः । अम्लकषायः । एते चत्वारोऽनुक्रांता अम्लेन ॥ ७ ॥ लवणकटुकः । लवणतिक्तः । लवणकषायः । एते त्रयोऽनुक्रांता लवणेन ॥ ८ ॥ कटुतिक्तः । कटुकषायः । द्वावेतावनुक्रांतौ कटुकेन ॥ ९ ॥ तिक्तकषायः । एक एवानुक्रांतस्तिक्तेन ॥ १० ॥ एते पंचदश द्विकसंयोगा व्याख्याताः ॥ ११ ॥

दो दो रसोंके मेलसे पंद्रह भेद इस भांति होतेहैं जैसे १ मीठा खट्टा । २ मीठा नमकीन । ३ मीठा कडुवा । ४ मीठा चरपरा । ५ मीठा कसेला । इस भांति मधुरसे पांच रस मिलकर ये पांच भेद होतेहैं ॥ ६ ॥ फिर १ खट्टा नमकीन । २ खट्टा चरपरा । ३ खट्टा कडुवा । ४ खट्टा कसेला । इसभांति खट्टेमें मिलकर चार भेद हुए ॥ ७ ॥ फिर १ नमकीन चरपरा । २ नमकीन कडुवा । ३ नमकीन कसेला इस भांति नमकीनमें मिलके ये तीन भेद हुए ॥ ८ ॥ फिर १ कटु अर्थात् चरपरेमें कडुवा । २ चरपरेमें कसेला । इसभांति चरपरेसे मिलाके ये दो भेद हुए ॥ ९ ॥ फिर १ तिक्त अर्थात् कडुवा, कसेला दो मिलकर एकही भेद हुआ ॥ १० ॥ इस प्रकार दो दो रसोंके परस्पर सबमें सबके मेलसे पंद्रह भेद कहेहैं ॥ ११ ॥

तीन तीन रसोंके योगसे २० भेद ।

त्रिकं वक्ष्यामः । आदौ प्रयुज्यमानस्तु मधुरो दश गच्छति ॥
षडम्लो लवणस्तस्मादर्द्ध रत्वेकं रसः कटु ॥ १२ ॥

अब तीन तीन रसोंके मिलनेसे जिस प्रकार भेद होतेहैं उन्हें कहतेहैं । प्रथम प्रयुज्यमान हुए मधुर रसके दश भेद होतेहैं और खट्टेसे मिलकर छः भेद होतेहैं और लवणसे मिलके तीन भेद होतेहैं और कटुकसे मिलकर एक ही होताहै ॥ १२ ॥

मधुराम्ललवणकटुतिक्तः । मधुराम्ललवणकटुकषायः । मधुराम्ललवणतिक्तकषायः । मधुराम्लकटुतिक्तकषायः । मधुरलवणकटुतिक्तकषायः । एवमेषां पंचानां पंचरससंयोगानामादौ मधुरः प्रयुज्यते ॥ २४ ॥ अम्ललवणकटुतिक्तकषायः । एवमेकस्यादावम्लः प्रयुज्यते॥२५॥एवमेते षट् पंचसंयोगा व्याख्याताः ॥२६॥

१ मीठा खट्टा खारा चरका कडुवा । २ मीठा खट्टा खारा चरका कसेला । ३ मीठा खट्टा खारा कडुवा कसेला । ४ मीठा खट्टा चरका कडुवा कसेला । ५ मीठा खारा चरका कडुवा कसेला । इस भांति पांच रसोंके योगोमेंसे पांचोंके आदिमें मधुर रस मिला है ॥ २४ ॥ फिर १ खट्टा खारा चरका कडुवा कसेला । इसप्रकार एकके आदिमें अम्लरस मिलाहै ॥ २५ ॥ इस प्रकार पांच पांच रसोंके योगके छः भेद हुए ॥ २६ ॥

षट्कमेकं वक्ष्यामः । एकस्तु षट्कसंयोगो मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषायः । एवमयमेकः षट्कसंयोगः ॥ २७ ॥

छहों रसोंके मेलको भी कहतेहैं-छहोंरसोंके मिलनेसे एक ही भेद होताहै जैसे–मीठा खट्टा खारा चरका कडुवा और कसेला । इसप्रकार यह एकही छः रसोंके संयोगका भेद है ॥ २७ ॥

एकैकश्च षड्रसा भवंति । मधुरोऽम्लो लवणः कटुकस्तिक्तः कषाय इति ॥ २८ ॥ भवति चात्र–

और जुदे जुदे एक एक रस छह ही हैं जैसे–मीठा खट्टा खारा चरपरा कडुवा और कसेला ॥ २८ ॥ इस विषयमें श्लोक है–

एषा त्रिषष्टिर्व्याख्याता रसानां रसचिंतकैः ॥
दोषभेदे त्रिषष्टिस्तु प्रयोक्तव्या विचक्षणैः ॥ २९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतंत्रे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

रसभेदके जाननेवाले वैद्योंने रसोंके ये त्रेसठ भेद वर्णन किये हैं इन्हें बुद्धिमान दोषभेदोंमें त्रेसठ ही यथायोग्य बरतें (ये ६३ भेद इस भांति होतेहैं १५ दो दो रसके । २० तीन तीन रसके । १५ चार चार रसके । ६ पांच पांच रसके और १ छहों रसका । तथा ६ जुदे जुदे रस । ऐसे ये सब ६३ हुए) ॥ २९ ॥

(वक्तव्य१) रसोंके संयोगमें प्रधानता अप्रधानता न्यूनाधिकता और अंशांशोंको विचार किया जावे तो अनन्त भेद होसकतेहैं जिनकी कदापि गणना नहीं होसकती ।

चारोंके आदिमें आताहै और लवण एक भेदके आदिमें आताहै ऐसे ये १५ भेद होतेहैं ॥ १८ ॥

(वक्तव्य) रसके योगोंमें मधुर जैसे यहां दशके आदिमें आया इत्यादि इनमें आदिमें आनेकी कोई बात नहीं यह केवल गणनाके क्रमके लियेहै नहीं तो आदि, अंत, मध्य कुछ नहीं रसमें रसोंके मेलसे ही भेद होतेहैं ॥

मधुराम्ललवणकटुकः । मधुराम्ललवणतिक्तः । मधुराम्ललवणकषायः । मधुराम्लकटुकतिक्तः । मधुराम्लकटुकषायः । मधुरलवणतिक्तकटुकः । मधुराम्लतिक्तकषायः । मधुरलवणकटुककषायः । मधुरकटुतिक्तकषायः । मधुरलवणतिक्तकषायः । एवमेषां दशानामादौ मधुरः प्रयुज्यते ॥ १९ ॥ अम्ललवणकटुतिक्तः । अम्ललवणकटुकषायः । अम्ललवणतिक्तकषायः । अम्लकटुतिक्तकषायः । एवमेषां चतुर्णामम्लः ॥ २० ॥ लवणकटुतिक्तकषायः । एवमेकस्यादौ लवणः ॥ २१ ॥ एवमेते चतुष्करससंयोगा पंचदश कीर्तिताः ॥ २२ ॥

१ मीठा खट्टा खारा कटुक । २ मीठा खट्टा खारा तिक्त । ३ मीठा खट्टा खारा कसेला । ४ मीठा खट्टा कटु तिक्त । ५ मीठा खट्टा कटु कषाय । ६ मीठा खारा तिक्त कटु । ७ मीठा खट्टा तिक्त कषाय । ८ मीठा खारा चरका कसेला । ९ मीठा चरपरा कडुवा कसेला । १० मीठा नमकीन कडुवा कसेला । इसभांति दशोंके आदिमें मधुररस मिलाहै ॥ १९ ॥ फिर १ खट्टा खारा चरका कडुवा । २ खट्टा खारा चरका कसेला । ३ खट्टा खारा कडुवा कसेला । ४ खट्टा चरका कडुवा कसेला । इसभांति चारोंके आदिमें अम्ल रस है ॥ २० ॥ और १ खारा चरका कडुवा कसेला । इस भांति आदिमें लवण एकहीमें है ॥ २१ ॥ इस प्रकारसे चार रसोंके संयोगसे पंद्रह १५ भेद हुए ॥ २२ ॥

पांच पांच रसोंके योगके ६ भेद ।

पंचकान्वक्ष्यामः । पंचकान्पंच मधुरः एकमम्लस्तु गच्छति ॥ २३ ॥

अब पांच पांच रसोंके मिलनेसे जिस प्रकार भेद होतेहैं उन्हें कहतेहैं ॥ इन पांच रसोंके संयोगमें मधुररस पांचोंके आदिमें आताहै और अम्ल एकहीके आदिमें (इस भांति ६ भेद हैं) ॥ २३ ॥

प्रयोजन है ॥ २ ॥ स्वस्थ मनुष्योंके वर्त्ताव (विहार, आहार आदि) वह चिकित्सास्थानके अनागतव्याधिप्रतिषेधनीयाध्यायमें) तथा और कई जगा संक्षेपसे कहेगये अब उनको यहांपर और विस्तारसे वर्णन करते हैं ॥ ३ ॥

स्वास्थ्यरक्षाका निर्देश ।

यस्मिन्यस्मिन्नृतौ ये ये दोषाः कुप्यंति देहिनाम् ॥
तेषु तेषु प्रदातव्या रसास्ते ते विजानता ॥ ४ ॥

जिन जिन ऋतुओंमें जो जो दोष मनुष्योंके देहमें कुपित होते हैं (यह बात भी हम पहले सूत्रस्थानके ऋतुचर्याध्यायमें कहचुके हैं) जानकार वैद्यको चाहिये कि उन्हीं उनकी शांति करनेवाले जो रस हैं वे उन ऋतुओंमें मनुष्योंके लिये देने चाहिये ॥ ४ ॥

ऋतुभेदसे आहारविहारादिका विस्तारसे वर्णन ।

वर्षाऋतुका वर्त्ताव ।

प्रक्लिन्नत्वाच्छरीराणां वर्षासु खलु देहिनाम् ॥
मंदेऽग्नौ कोपमायांति संहर्षान्मारुतादयः ॥ ५ ॥

वर्षाकी ऋतुमें मनुष्योंके शरीर गीले (नम) रहतेहैं जिससे अग्नि मन्द हो जाती है और संहर्ष (रोमहर्ष हो होकर अथवा नमवायुके कारण वातादिक दोष कोपको प्राप्त होतेहैं) ॥ ५ ॥

तस्मात्क्लेदविशुद्ध्यर्थं दोषसंहरणाय च ॥ कषायतिक्तकटुकै रसैर्युक्तमथाद्रवम् ॥ ६ ॥ नातिस्निग्धं नातिरूक्षमुष्णं दीपनमेव च ॥ देयमन्नं नृपतये यज्जलं चोक्तमादितः ॥ ७ ॥ तप्तावरतमंभो वा पिबेन्मधु समायुतम् ॥ अह्नि मेघानिलाविष्टेऽत्यर्थशीतांबुसं-

---

(श्लो० ४) ते रसास्तेषु तेषु दोषेषु शांतिकराः । (श्लो० ५) प्रक्लिन्नत्वात् अत्यतार्द्रत्वात् । संहर्षात् रोमाञ्चत्वात् । अथवा वायोः । संहृष्यत्यनेन इति संहर्षो वायुः (इति शब्दस्तोमः) मारुतादय वातपित्तकफाः कोपमायाति । ननु वर्षासु सञ्चयरूपं पित्तं कुपितमस्ति नेतरौ तत्कथं 'कुप्यंति मारुतादय' इत्युक्तम् । प्रावृट्प्रकोपतो वायुर्वर्षास्वपि कुपित एव वर्तते । कफश्च मेघनिःस्यंदादिहेतुभिः असञ्चितोपि कुप्यति अतो युक्त एषः दोषत्रयकोपः । अथवा अग्निमांद्याद्दोषत्रयकोपः (इति नि० सं०) (श्लो० ७) देयमन्नं नृपतये इत्यत्र नृपतये इत्युपलक्षणं किंतु मनुष्येभ्यो इत्यर्थः । यज्जलमादितश्चोक्तम् आंतरिक्षं तद्वर्षाया अंते आश्वयुजि पेयं वर्षारंभे तु तस्य दूषणयुक्तत्वात्कदापि न पेयमिति भावः। (श्लो० ८) तप्तावरतं क्वथितशीतीकृतम् ।

(वक्तव्य २) इन रसोंके संयोगके साथ डल्लनमिश्रजीने कुछ उदाहरण भी लिखे हैं जैसे कपित्थ मधुराम्ल है । कुत्ते और शृगालका मांस मधुर कटुक है इत्यादि तथा कीरके मांससे युक्त सुरा अम्ल तिक्तकषाय है इत्यादि परंतु मिलेहुए इन स्वादोंके पदार्थ रसोंकी न्यूनाधिकतासे असंख्य हैं उन्हें वैद्य स्वयं जानसकते हैं अथवा किसी अन्यको खिलाकर या आप ही चाखकर जानसकतेहैं और संयोगज वस्तुओंमें संयोग और संस्कारसे जानसकते हैं इनके लिखनेकी विशेष आवश्यकता नहीं इसीसे हमने वे उदाहरण नहीं लिखे क्योंकि वैद्य उन्हें स्वयं जानसकते हैं ॥

इति प०मुरलीधरवि० सुश्रुतस०भा०टी०उत्तरतन्त्रे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः ६४.

अथातः स्वस्थवृत्तमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम स्वस्थवृत्त (अर्थात् तंदुरस्त मनुष्योंके वर्त्ताव) के अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

स्वस्थके लक्षण ।

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः ॥
प्रसन्नात्मेंद्रियमनाः सुस्थ इत्यभिधीयते ॥ १ ॥

जिसके वातादि दोष समान हों (कोई उल्वण और क्षीण न हो) तथा जठराग्नि भी सम हो (मंदाग्नि, तीक्ष्णाग्नि, विषमाग्नि न हों) जिसके सातों धातु और मल सम हों (कोई धातु अतिबढी या घटी न हो, मल भी बढा या क्षीण न हो) और क्रिया भी समान हो (अर्थात् जागना, सोना, बोलना, चलना, फिरना ये कम या बहुत बढे न हों) और आत्मा (जीवात्मा) मन और इंद्रिय ये प्रसन्न हों (अर्थात् इंद्रियोंकी शक्ति भी यथायोग्य हो) ऐसे मनुष्यको सुस्थ (स्वस्थ अर्थात् निरोगी या तन्दुरुस्त कहते हैं ॥ १ ॥

सूत्रस्थाने समद्दिष्टः सुस्थो भवति यादृशः ॥ तस्य यद्रक्षणं तद्धि चिकित्सायाः प्रयोजनम् ॥ २ ॥ तस्य यद्वृत्तमुक्तं हि रक्षणं हि समासतः ॥ तस्मिन्नर्थाः समासोक्ता विस्तरस्तस्य वक्ष्यते ॥ ३ ॥

सूत्रस्थानके दोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञानीयाध्यायमें जैसा स्वस्थ बताया है उसकी रक्षा रख रोग नहीं होने देना यही चिकित्साशास्त्रका (मुख्यतासे)

श्लो० १) सुखेन नैरोग्येण तिष्ठति इति सुस्थः रोगरहितः । 'सुस्थ' इत्यत्र स्वस्थ इति वा पाठः । तत्र स्वेन स्वभावेन सुखेन वा तिष्ठतीति स्वस्थः नैरोग्यः (इति श्रा० स्तो०)

शरदृतुका बरताव।

सेव्याः शरदि यत्नेन कषायस्वादुतिक्तकाः ॥ क्षीरेक्षुविकृतक्षौद्रशालिमुद्गादिजांगलाः ॥ १३ ॥ सलिलं च प्रसन्नत्वात्सर्वमेव तदा हितम् ॥ सरःस्वाप्लवनं चत्र कमलोत्पलशालिषु ॥ प्रदोषे शशिनः पादाश्चंदनं चानुवासनम् ॥ १४ ॥ तिक्तस्य सर्पिषः पानैरसृक्स्रावैश्च युक्तितः॥वर्षासूपचितं पित्तं हरेच्चापि विरेचनैः १५

शरद् ऋतुमें यत्नसे कसेले, मीठे और कडुवे रसोंका सेवन करना चाहिये तथा दूध (खीर), ईखके विकार (खांड, मिश्री), शहद, चावल, मूंग आदि धान्य और जंगली जीवोंका मांस सेवन करे ॥ १३ ॥ और शरद्में सब जल निर्मल होजातेहैं इससे उस समय उन सबका पान करना हित है और जिनमें कमल खिले हों ऐसे तडागोंमें तैरना अच्छा होताहै और सामको चन्द्रमाकी किरण (चांदनी) सेवन करना और चन्दन लगाना श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥ और वर्षाके संचित हुए पित्तको तिक्त घृत पीकर अथवा फस्त खुलाकर (शिरामोक्षसे) और विरेचनसे (जुलाब लेकर) निकाल देना चाहिये ॥ १५ ॥

नो पेयं तीक्ष्णमम्लोष्णं क्षारं स्वप्नं दिवातपम् ॥ रात्रिजागरणं चैवं मैथुनं चापि वर्जयेत् ॥ १६ ॥ स्वादुशीतजलं मद्यं शुचि स्फटिकनिर्मलम् ॥ शरच्चंद्रांशुनिर्धौतमगस्त्योदयनिर्विषम्॥१७॥ प्रसन्नत्वाच्च सलिलं सर्वमेव तदा हितम् ॥ सचंदनं वा कर्पूरं वासश्चामलिनं लघु ॥ १८ ॥ भजेच्च शारदं माल्यं सीधोः पानं च युक्तितः ॥ पित्तप्रशमनं यच्च तच्च सर्वं समाचरेत् ॥ १९ ॥

तीक्ष्ण, खट्टा, गरम क्षार ये नहीं पीने चाहिये, दिनमें सोना और रातको जागना और मैथुन इन्हें भी त्याग देना चाहिये ॥ १६ ॥ मीठा, ठंढा पानी और निर्मल मद्य पीना उचित है तथा शरद्के चन्द्रमाकी किरणोंसे धोया हुआ और अगस्त्य मुनि (तारे) के उदयसे निर्विष हुआ सुन्दर स्फटिक जैसा निर्मल जल सभी होजाताहै ॥ १७ ॥ जब सभी जलमात्र स्वच्छ होजाताहै तो सभी पीनेमें इन दिनोंमें अच्छा है और चन्दन कपूरसे सुगंधित निर्मल और हलके वस्त्र पहरने योग्य हैं ॥ १८ ॥ और शरद्ऋतुके पुष्प रखना तथा युक्तिसे सीधु नामक

(श्लो० १४) आप्लवनं तरणम् । शशिनः पादा चंद्रस्य किरणाः प्रदोषे सेव्याः न तु सर्वरात्रौ
(श्लो० १८) "सचदन वा कर्पूरम्" इत्यत्र 'सचंदनं सकर्पूरम्' इति वा पाठः ।

कुले ॥ ८ ॥ तरुणत्वाद्विदाहं च गच्छंत्योषधयस्तदा ॥ मतिमां-स्तन्निमित्तं च नैव व्यायाममाचरेत् ॥ ९ ॥

तिस लिये क्लेदनताकी शुद्धिके लिये और दोषोंके शांत रखनेके लिये कसेले-कडुवे और चरपरे रसोंसे युक्त अद्रव जो (विशेष पतले नहीं हो ऐसे) पदार्थ (खाने चाहिये) ॥ ६ ॥ जो न बहुत चिकने (तरवतर) और न बहुत रूखे हों ऐसे गरमागरम और अग्नि दीपन करनेवाले भोजनादि राजाको (बडे आदमि-योंको) खानेको दिलावे और जल जैसा पहले उत्तम कहाहै वैसा दिलावे ॥ ॥ ७ ॥ अथवा पानीको औटाकर उसे ठंढाकरके दिलावे या शहद मिलाकर पीवे मेघ (बादल), हवा इनसे व्याप्त और ठंढे पानीसे संयुक्त ऐसे दिनोंमें नवीन होनेसे औषधें (शाक, फलादि) विदाहको प्राप्त होतीं (अर्थात् सब पित्त और जलन पैदा करनेवाली होतीहैं इस लिये बुद्धिमान् अत्यन्त परिश्रम इन दिनोंमें नहीं करे) क्योंकि अति व्यायामसे विदाह अधिक बढताहै परन्तु निर्व्यायाम भी नहीं रहे जिससे अग्नि और भी मंद होजातीहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

अत्यंबुपानावश्यायग्राम्यधर्मातपांस्तथा ॥ १० ॥ भूबाष्पपरिहा-रार्थं शयीत च विहायसि ॥ शीते साग्नौ निर्वाते च गुरुप्रावरणे गृहे ॥ ११ ॥ यायान्नागवधूभिश्च प्रशस्तागुरुभूषितः ॥ दिवास्व-प्नमजीर्णं च वर्जयेत्तत्र यत्नतः ॥ १२ ॥

ज्यादे पानी पीना, ओसमें रहना, सोना, मैथुन करना (अतिमैथुन) और धूप इन्हें त्याग देवे ॥ १० ॥ और पृथ्वीकी भाफ (सीलके अवखरे या मेलेरिया) से बचे रहनेके किये अधर सोवे (अर्थात् पृथ्वीपर न सोवे ऊपरकी मंजिलके चौवारेमें पलँगोंपर सोवे और ऐसे स्थानोंमें रहे जो ठंढे हों परन्तु उनमें अग्नि जरूर रहती हो तथा तेज हवा नहीं आतीहो और वहां भी भारी कपडा ओढ-कर सोया करे ॥ ११ ॥ और श्रेष्ठ अगुरु शरीरपर लगाके हस्तिनी स्त्रियोंसे संगम करे और दिनका सोना तथा अजीर्णकारक भोजन इन दिनोंमें अवश्य त्याग दे ॥ १२ ॥

(श्लो० ९) "नैव व्यायाममाचरेत्" इत्यत्र 'नातिव्यायाममाचरेत्' इति पाठांतरम् ।
(श्लो० १०) अवश्यायाः रात्रिनिपातिनः सूक्ष्मजलकणाः (श्लो० ११) विहायसीति–विहायः-शब्देनात्र गृहोपरिभूः अभिप्रेता । अन्ये मचादिकं मन्यंते । शीते साग्नौ अग्नियुते शीतगृहे । गुरुप्रावरणो गुरुवस्त्रावृतः सन् । केचित् गुरुप्रावरणे गृहे दृष्टाच्छादितगृहे इति मन्यते (श्लो० १२) नागवधूभिः हस्तिनीस्त्रीभि. (इति नि० सं०)

मेव च ॥ अन्नपानं तिलान्माषाञ्छाकानि च दधीनि च ॥ २६ ॥ तथेक्षुविकृतीः शालीन्सुगंधांश्च नवानपि ॥ प्रसह्यानूपमांसानि क्रव्यादबिलशायिनाम् ॥ २७ ॥ औदकानां प्लवानां च पादिनां चोपजायते ॥ मद्यानि च प्रसन्नानि यच्च किंचिद्बलप्रदम् ॥ २८ ॥ कामतस्तं निषेवेत पुष्टिमिच्छन्हिमागमे ॥ एष एव विधिः कार्यः शिशिरे समुदाहृतः ॥ २९ ॥

पुष्ट साथल, नितंब और स्तनोंवाली सुन्दर स्त्रियोंको अगुरुधूप आदिसे सुगंधित करके राजा उनका आलिंगन करे और इच्छापूर्वक वाजीकरणसे तृप्त होके खूब मैथुन करे ॥ २५ ॥ और इस हेमन्तमें मनुष्य मीठे, कडुवे, चरपरे, खट्टे और सलोने अन्न (भोजन) खावे और पान करे तथा तिल, उडद, शाक और दही इन्हे भी खावे ॥ २६ ॥ तथा ईखके विकार (गुड), शाली, चावल जो सुगंधित हों और नये भी हों तथा 'प्रसह्य' अर्थात् हठसे अथवा 'प्रसह' पाठ मानकर प्रसहसंज्ञक कुरर, श्येन आदि पक्षियोंका मांस और जलकिनारेके जीवोंका मांस और मांसाशी तथा बिलवासियोंका मांस भोजन करे ॥ २७ ॥ तथा जलके पक्षियोंका और पैरोंवाले पक्षियोंका मांस भी खावे और निर्मल मद्य पीवे और जो जो बलदायक वस्तु हैं उनका सेवन इच्छापूर्वक करे । पुष्टि चाहनेवाले मनुष्य हेमंत ऋतु (सरदी) में पूर्वोक्त सब विधि करें और यही विधि शिशिर ऋतुमें भी करनी श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥ २९ ॥

वसंत ऋतुका बरताव ।

हेमंते निचितः श्लेष्मा शैत्याच्छीतशरीरिणाम् ॥ औष्ण्याद्वसंते कुपितः कुरुते च गदान्बहून् ॥ ३० ॥ ततोम्लमधुरस्निग्धलवणानि गुरूणि च ॥ वर्जयेद्वमनादीनि कर्माण्यपि च कारयेत् ॥ ३१ ॥ षष्टिकान्नं यवाञ्छीतान्मुद्गान्नीवारकोद्रवान् ॥ लावादिविष्किररसैर्दध्याद्यूषैश्च युक्तितः ॥ ३२ ॥ पटोलनिंबवार्ताकुतिक्तकैश्च हिमात्यये ॥ सेवेन्मध्वासवारिष्टान्सीधुमाध्वीकमासवान् ॥ ३३ ॥ व्यायाममंजनं धूमं तीक्ष्णं च कवलग्रहम् ॥ सुखांबुना च सर्वार्थान्सेवेत कुसुमागमे ॥ ३४ ॥

(श्लो० २७) प्रसह्य हठादेव अथवा "प्रसह्य" इत्यत्र 'प्रसह' इति पाठान्तरत्वात्प्रसहसंज्ञकानां श्येनकुररादिपक्षिणां मांसं ग्राह्यम् ।

मद्य पीना तथा और और जो पित्तशामक आहार विहार, हैं वे सब इस ऋतुमें करने उचित हैं ॥ १९ ॥

हेमंत ऋतुका बरताव ।

हेमंतः शीतलो रूक्षो मंदसूर्यानिलाकुलः ॥ ततस्तु शीतमासाद्य वायुस्तत्र प्रकुप्यति ॥ २० ॥ कोष्ठस्थः शीतसंस्पर्शादंतः पिंडीकृतोऽनिलः ॥ रसमुच्छोषयत्याशु तस्मात्स्निग्धं तदा हितम् ॥ २१ ॥ हेमंते लवणक्षारतिक्ताम्लकटुकोत्कटम् ॥ ससर्पिस्तैलमहिममशनं हितमुच्यते ॥ २२ ॥ तीक्ष्णान्यपि च पानानि पिबेदगुरुभूषितः ॥ तैलाभ्यक्तः सुखोष्णे च वारिकोष्ठेऽवगाहयेत् ॥ २३ ॥ सांगारयामे महति कौशेयास्तरणास्तृते ॥ शयीत शयने वापि वृतो गर्भगृहोदरे ॥ २४ ॥

हेमंत (जाडेकी) ऋतु शीतल और रूक्ष होताहै इसमें सूर्यकी ताप कम होतीहै और वायु अधिक चलाकरताहै इस लिये शीतको प्राप्त होकर इस ऋतुमें वायु कुपित होजाया करताहै ॥ २० ॥ और कोष्ठस्थ होकर शीतके स्पर्शसे भीतर वायु पिंडीसा बँध जाताहै और शीघ्रही रसको शोषण कर लेताहै इससे इस ऋतुमें स्निग्ध भोजन करना हित है (कई "अनिल" के स्थानमें "अनल" पाठ मानतेहैं और उसका यह अर्थ करतेहैं कि कोष्ठस्थ अग्नि शीतस्पर्शसे पिंडीभूत होकर रसको शीघ्र शोषताहै । हेमंतमें लवण, क्षार, कडुवा, खट्टा, चरपरा, तेज रस खाना और घृत तैलसे खूब स्निग्ध करके गरमागरम भोजन करना चाहिये ॥२१॥ ॥ २२ ॥ और तीक्ष्णपान (मद्यादि) पीवे और शरीरपर अगर (या अगरका अतर) लगावे, तैलका मर्दन करे और निवाये पानीसे भरे हुए होजों या बालटियोंमें बैठ २ कर स्नान करे ॥ २३ ॥ और ऐसे मकानमें सोवे जहां अंगारोंसे भरी अंगीठी (पहियोंदार अँगीठी हो) और स्थान भी विशाल हो जिसके बाहर बरामदे दालान इत्यादि और भी स्थान हों (अर्थात् भीतरके कोठोंमें) पलँगपर रेशमी (या सूती रुई भरे) गदेले बिछाकर रजाई ओढके सोवे ॥२४॥

स्त्रीः श्लिष्टाऽगुरुधूपाढ्याः पीनोरुजघनस्तनीः ॥ प्रकामं च निषेवेत मैथुनं तर्पितो नृपः ॥ २५ ॥ मधुरं तिक्तकटुकमम्लं लवण-

(श्लो० २४) सांगारयाने अगारपूर्णशकटिकासहिते । वृतः इति आच्छादितागः (इति नि० सं०)
(श्लो० २५) प्रकाम यथेच्छ मैथुनं निषेवेत । तर्पित इति—वाजीकरणादिभोज्यैस्तर्पितः ।

तालवृंतानिलाहारांस्तथा शीतगृहाणि च ॥ घर्मकाले निषेवेत वासांसि सुलघूनि च ॥ ४० ॥

निदाघ अर्थात् ग्रीष्मऋतु (गरमी) में व्यायाम (डंड कसरत), उष्ण पदार्थ (या गरम स्थान), परिश्रम (मेहनत), मैथुन और अति शोषण पदार्थ (जो खुश्की करे) तथा अग्नि गुणवाले अर्थात् उष्ण प्रकृतिवाले रस (चरपरे, खारे. खट्टे) त्यागने चाहिये ॥ ३८ ॥ और तालाब, नदी, बावडी अथवा रुचिर वन सेवन करने, उत्तमोत्तम चन्दन लगाना, कमल, कमोदनी आदिकी माला पहरना॥ ॥ ३९ ॥ ताडके पंखोंकी हवा, हार और ठंढे मकान और उजले, हलके, बारीक कपडे ये सब गरमीमें सेवन करने चाहिये ॥ ४० ॥

शर्कराखंडदिग्धानि सुगंधीनि हिमानि च ॥ पानकानि च सेवेत मंथांश्चापि सशर्करान् ॥ ४१ ॥ भोजनं च हितं शीतं सघृतं मधुर-द्रवम् ॥ शृतेन पयसा रात्रौ शर्करामधुरेण च ॥ ४२ ॥ प्रत्य-ग्रकुसुमाकीर्णे शयने हर्म्यसंस्थिते ॥ शयीत चंदनार्द्रांगः स्पृश्यमानोऽनिलैः सुखैः ॥ ४३ ॥

खांड (या ओले) डालकर और केनक, केवडा, इलायची आदि सुगंधित मिलाके पानक (पीनेका सरबत बनाकर पिया करे या मन्थोंमें खांड मिलाके पीवे) ॥ ४१ ॥ और घृत सहित मीठे, पतले, ठंढे भोजन और रातको औटाया हुआ दूध ठंढाकर खांड मिलाके पीवे ॥ ४२ ॥ और नये २ पुष्पोंसहित शय्या (पलंग) मकानोंके ऊपर बिछाकर शरीरपर चन्दन लगाकर और सुहाती हुई पवनका स्पर्श करते हुए शयन करे ॥ ४३ ॥

प्रावृट् ऋतुका बरताव ।

तापात्यये हिता नित्यं रसा ये गुरवस्त्रयः ॥ पयोमांसरसाः कोष्णास्तैलानि च घृतानि च ॥ बृंहणं चापि यत्किंचिदभिष्यंदि तथैव च ॥ ४४ ॥ निदाघोपचितं चैव प्रकुप्यंतं समीरणम् ॥ निहन्यादनिलघ्नेन विधिना विधिकोविदः ॥ ४५ ॥ नदीजलं रूक्षमुष्णमुदमंथं तथाऽतपम् ॥ व्यायामं च दिवास्वप्नं व्यवायं चात्र वर्जयेत् ॥ ४६ ॥

(श्लो० ४०) तालवृंतानिलाहारान् । तालपत्रव्यजनपवनं हाराश्च ।

हेमन्तमें शीत शरीरवालोंके शीतके कारण संचित हुआ कफ वसंतमें गरमीसे (गरमी पाकर) कुपित होता है और बहुत रोग पैदा करता है ॥ ३० ॥ इस लिये खट्टे, मीठे, चिक्कने, नमकीन, भारी पदार्थ त्याग देने चाहिये और वमनादिक (वमन, विरेचनादि) कर्म भी करने उचित हैं ॥ ३१ ॥ और सांठी, चावल, जौ, शीतल अन्न, मूँग, नीवार, कोदों इत्यादिको लवा आदि विष्किर जीवोंके मांसरससे या यूषोंसे युक्तिपूर्वक देवे ॥ ३२ ॥ परवल, नींब, वृंताक और तिक्त पदार्थोंको वसंतमें सेवन करे और मधुके आसव अरिष्टों (मद्यों) को तथा सीधु और माध्वीक मदिराओंको सेवन करे ॥ ३३ ॥ और व्यायाम (डंड कसरत तथा परिश्रम), अंजन, धूमपान और तीक्ष्ण कवलग्रह और निवाये जलसे सब कार्य करे ये सब वसंतऋतुमें सेवन करने योग्य हैं ॥ ३४ ॥

तीक्ष्णरूक्षकटुक्षारकषायं कोष्णमद्रवम् ॥ यवमुद्गमधुप्रायं वसंते भोजनं हितम् ॥ ३५ ॥ व्यायामोत्र नियुद्धाध्वशिलानिर्वातजो हितः ॥ उत्सादनं तथा स्नानं वानिताः काननानि च ॥ ३६ ॥ सेवेत निर्हरेच्चापि हेमंतोपचितं कफम् ॥ शिरोविरेकवमननिरूहकवलादिभिः ॥ वर्जयेन्मधुरस्निग्धदिवास्वप्नगुरुद्रवान् ॥ ३७ ॥

वसंतमें तीक्ष्ण (चरपरे), रूखे, कटुक, खारे, कसेले और निवाये जो विशेष पतले न हों, जिनमें जौ, मूँग, शहद इत्यादि प्रायः मिले हों या इनसे बने हों ऐसे भोजन करने हितकारक होते हैं ॥ ३५ ॥ और इस ऋतुमें व्यायाम, नियुद्ध (कुस्ती), मार्ग चलना, पत्थर (या गोले) फेंकना इत्यादिकी कसरत करे और उबटन लगाना, स्नान करना, स्त्रियोंका संग और वनविहार इन सबका सेवन करे ॥ ३६ ॥ और हेमंतमें संचित हुआ कफ शिरोविरेचन (नस्यों) से, वमन, (विरेचन), निरूहण और कवलधारण आदिसे दूर करे और मीठे, चिकने पदार्थोंको, भारी (गरिष्ठ) और पतले भोजनोंको तथा दिनके सोनेको त्याग देवे ॥ ३७॥

ग्रीष्म ऋतुका बरताव।

व्यायाममुष्ण ायासं मैथुनं चातिशोषि च ॥ रसांश्चाग्निगुणोद्रिक्तान्निदाघे परिवर्जयेत् ॥ ३८॥ सरांसि सरितो वापीर्वनानि रुचिराणि च ॥ चंदनानि पराध्यानि स्रजः सकमलोत्पलाः ॥ ३९ ॥

(श्लो० ३६) उत्सादनादीनि सेवेत इत्यन्वयः (श्लो० ३९) पराध्यानि श्रेष्ठानि परार्घ्य श्रेष्ठम् (इति श० स्तो०) अन्ये पराध्यानि सुगन्धियुतानि चाऽऽहुः।

जो मनुष्य ऋतु ऋतुमें पूर्व कही हुई विधिके अनुसार आहार, विहारादि करते हैं उनके ऋतुसम्बन्धी भयंकर रोग कदापि नहीं होते हैं ॥ ५१ ॥

भोजनके बारह भेद ।

अत ऊर्द्ध्वं द्वादशाशनप्रविभागान्वक्ष्यामः ।
तत्र शीतोष्णस्निग्धरूक्षद्रवशुष्कैककालिकद्विकालिकौषधयुक्तमात्राहीनदोषप्रशमनवृत्त्यर्थाः ॥ ५२ ॥

यहांसे अगाडी अब हम भोजनके बारह भेदोंका वर्णन करतेहैं । यहांपर वे बारह भेद ये हैं कि शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, द्रव, शुष्क, एककाल, द्विकाल, औषधयुक्त, मात्राहीन, दोषशमन और वृत्त्यर्थ (देहधारणार्थ) ॥ ५२ ॥

शीत और उष्ण अन्नका उपयोग ।

तृष्णोष्णमददाहार्तान्रक्तपित्तविषातुरान् ॥ मूर्च्छार्त्तान्स्त्रीषु च क्षीणाञ्छीतैरन्नैरुपाचरेत् ॥ ५३ ॥ कफवातामयाविष्टान्विरिक्तान्स्नेहपायिनः ॥ प्रक्लिन्नदेहांश्च नरानुष्णैरन्नैरुपाचरेत् ॥ ५४ ॥

जो मनुष्य तृषा, गरमी, मद, दाह इनसे पीडित हों, रक्तपित्तके रोगी अथवा विषसे पीडित हों, जिन्हे मूर्च्छा आया करती हो, जो स्त्रीसंगसे क्षीण होगये हों उन मनुष्योंको शीतल भोजन (खान पान) देना उचित होताहै ॥ ५३ ॥ और जो कफवायुके रोगी हों या विरेचन लिये हों, स्नेहपान किये हों, जिनके देह क्लेदित (गीलीसे) रहते हों उन मनुष्योंको गरम खान पान देना चाहिये ॥ ५४॥

स्निग्ध और रूक्षका उपयोग ।

वातिकान्रूक्षदेहांश्च व्यायामोपहतांस्तथा ॥ व्यायामिनश्चापि नरान्स्निग्धैरन्नैरुपाचरेत् ॥ ५५ ॥ मेदसाभिपरीतांस्तु स्थूलान्मेहातुरानपि ॥ कफाभिपन्नदेहांश्च रूक्षैरन्नैरुपाचरेत् ॥ ५६ ॥

वातप्रधान (वातप्रकृति) तथा वायुके रोगी और रूक्ष देहवाले तथा जो परिश्रमसे थके हों या परिश्रम करते हों उन्हें स्निग्ध खान पान देवे ("व्यायामोपहत" के स्थानमें कई 'व्यवायोपहत' ऐसा पाठ मानतेहैं और मैथुनसे क्षीण ऐसा अर्थ करते हैं) ॥ ५५ ॥ और जो मेदसे व्याप्त हों (स्थूल हों), प्रमेहसे पीडित हों, कफसे व्याप्त देहवाले हों उन्हें रूक्ष भोजन देवे ॥ ५६ ॥

(श्लो० ५५) "व्यायामोपहतान्" इत्यत्र "व्यवायोपहतान्' इति पाठान्तरम् ।

ग्रीष्मके पीछे (प्रावृट् ऋतुमें) तीन जो भारी रस हैं (मधुर, अम्ल और लवण) वे नित्य सेवन करने हित हैं तथा निवाया दूध और मांसरस तथा तैल और घृत ये भी हित हैं इनके सिवाय जो वस्तु बृंहण और अभिष्यंदी हैं वे भी श्रेष्ठ हैं ॥ ४४ ॥ तथा ग्रीष्मके संचित हुए और प्रकुपित होनेवाले वायुको वायु नाशक द्रव्योंसे विधिमें चतुर वैद्य शांत करे ॥ ४५ ॥ और नदीका पानी, रूक्ष-तथा गरम वस्तु, उदमंथ (छांछ), धूप, परिश्रम, दिनका सोना और मैथुन करना ये सब इस ऋतुमें त्याग देवे ॥ ४६ ॥

यवषष्टिकगोधूमाञ्छालींश्चाप्यनवांस्तथा ॥ हर्म्यमध्ये निवाते च भजेच्छय्यां मृदूत्तराम् ॥ ४७ ॥ सविषप्राणिविण्मूत्रलालानिष्ठीवनादिभिः ॥ समाप्लुतं तदा तोयमांतरिक्षं विषोपमम् ॥ ४८ ॥ वायुना विषदुष्टेन प्रावृष्येण विदूषितम् ॥ तद्धि सर्वोपयोगेषु तस्मिन्काले विवर्जयेत् ॥ ४९ ॥ निरूहैर्वस्तिभिश्चान्यैस्तथाऽन्यैर्मारुतापहैः ॥ कुपितं शमयेद्वायुं वार्षिकं वाऽचरेद्विधिम् ॥ ५० ॥

इस प्रावृट् ऋतुमें जौ, साठी, चावल, गेहूँ और पुराने शाली चावल खाने चाहिये और जिसमें तीव्र वायु न हो ऐसे स्थानमें कोमल शय्यापर मुलायम बिछोना बिछाकर सोवे ॥ ४७ ॥ और इस ऋतुमें वर्षाका जल अथवा वर्षणानन्तर नदी आदिमें प्राप्तहुआ पानी कदापि नहीं पीना चाहिये क्योंकि वह विषयुक्त जीवोंके विष्ठा, मूत्र, लार, थूँक आदिसे मिश्रित होताहै इस लिये उसे विषके समान समझिये ॥ ४८ ॥ और विषदूषित प्रावृट्की वायुसे भी वह जल दूषित होताहै इस लिये इस समयमें उसे सब कामसे त्यागना चाहिये (उस जलको पीना भी उचित नहीं, उसमें न्हाना भी योग्य नहीं इत्यादि) ॥ ४९ ॥ और निरूहण वस्तियोंसे अथवा अन्य वस्तियोंसे तथा और वायुनाशक यत्नोंसे इस समय कुपित हुए वायुको शांत करना चाहिये अथवा वर्षामें जो विधि कहीहैं वे भी जो उचित हों सो करनी चाहिये ॥ ५० ॥

ऋतावृतौ य एतेन विधिना वर्तते नरः ॥
घोरानृतुकृतान्रोगान्नाप्नोति स कदाचन ॥ ५१ ॥

(श्लो० ४८) आंतरिक्षं वर्षाभवं तत्त मेघो वर्षति । अथवा वर्षणानंतरं नद्यादिषु समायातं सर्वमेव त्याज्यम् ।

इनमेंसे निर्भक्त उसे कहते हैं जो विना अन्नके केवल औषधकाही उपयोग किया जावे ॥ ६३ ॥ यह विना अन्नके साथके केवल औषध अधिक पराक्रमवाली होती है और रोगको शीघ्रही निःसंदेह नाश करती है परंतु इसे पीनेसें बालक, बूढे, स्त्री, कोमल स्वभावके पुरुष (अमीर) ये ग्लानिको प्राप्त होते हैं (नफरत आजाती है) और बलका भी इससे क्षय होता है (इसका समय प्रभातहीका होता है) ॥ ६४ ॥

प्राग्भक्त ।

प्राग्भक्तं नाम यत्तु प्राग्भक्तस्योपयुज्यते ॥ ६५ ॥ शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हिंस्यादन्नावृतं न च मुहुर्वदनान्निरेति ॥ प्राग्भक्तसेवितमथो बलमादधाति देयाच्च वृद्धशिशुभीरुवरांगनाभ्यः ६६॥

प्राग्भक्त उसे कहते हैं जो भोजनके पहले दीजावे ॥ ६५ ॥ यह भोजनके पहले दीहुई औषध शीघ्रही पचजाती है और बलको नाश नहीं करती और भोजनसे दबजानेके कारण बारबार मुँहसे नहीं निकलती और यह भोजनसे पहलेकी औषध बल देती है यह बालक, बूढे, डरपोक और स्त्रियोंको देनी चाहिये ॥ ६६ ॥

अधोभक्त ।

अधोभक्तं नाम यद्भक्तांते पीयते ॥ ६७ ॥ पीतं यदन्नमुपयुज्य तदूर्ध्वकाये हन्याद्गदान्बहुविधांश्च बलं दधाति ॥ ६८ ॥

अधोभक्त उसे कहते हैं जो भोजन खाये पीछे पिई या खाई जावे ॥ ६७ ॥ जो भोजन करके पीछे औषध पिई या खाई जाती है वह देहके ऊर्ध्वभागके अनेक प्रकारके रोग दूर करती है और बल देती है ॥ ६८ ॥

मध्येभक्त ।

मध्येभक्तं नाम यन्मध्ये भक्तस्य पीयते ॥ ६९ ॥ मध्ये तु पीतमुपहंत्यविसारिभावाद्ये मध्यदेहमभिभूय भवंति रोगाः ॥ ७० ॥

मध्येभक्त उसे कहते हैं जो भोजनके बीचमें पिई या खाई जावे ॥ ६९ ॥ भोजनके बीचमें उपयोग की हुई औषध अति प्रसरण होनेसे रसमें मिलकर शरीरमें फैलनेसे मध्यदेह (धड) में होनेवाले रोगोंको दूर करती है ॥ ७० ॥

(श्लो० ६७ । ६८) अत्र पीयते पीतं च निदर्शनमात्रम् । तेन पीतम् अशितं लीढम् इत्यादि सर्वप्रकारेणोपयुक्तं गृह्यते । यद्भोजनांते उपयुज्यते तदधोभक्तम् । अधो भक्तं यस्मादित्यर्थः ।

शुष्कदेहान्पिपासार्तान्दुर्बलानपि च द्रवैः ॥ प्रक्लिन्नकायान्व्रणिनः शुष्कैर्मेहितमेव च ॥ ५७ ॥ एककालं भवेद्देयो दुर्बलाग्निविवृद्धये ॥ समाग्नये समाहारो देयः कालमथोभयम् ॥ ५८ ॥ औषधद्वेषिणे देयस्तथौषधसमायुतः ॥ मंदाग्नये रोगिणे च मात्राहीनः प्रशस्यते ॥ ५९ ॥ यथार्थदत्तश्चाहारो दोषप्रशमनः स्मृतः ॥६०॥ अतः परं तु स्वस्थानां वृत्त्यर्थं सर्वमेव च ॥ द्वादशान्नप्रविचारानेतानेव प्रचक्षते ॥ ६१ ॥

सूखी देहवाले, तृषार्त्त और दुर्बलोंको द्रव (पतले) (अन्न भोजन) देवे और जिनकी देह गीली रहती हो, जिनके व्रण हों या प्रमेह हो उन्हें शुष्क भोजन प्रायः देने चाहिये ॥ ५७ ॥ और दुर्बलको अग्नि बढानेके लिये एकवार भोजन देवे ॥ और जिनकी जठराग्नि समान (ठीक) हो उन्हें दोनों वार सम आहार (न बहुत पतला न सूखा, न बहुत गरम न शीत) देवे ॥ ५८ ॥ जो औषधके द्वेषी हों उन्हें भोजनमें औषध मिलाकर देवे और जो मन्दाग्निवाले तथा रोगी हों उन्हें मात्राहीन (थोडा) भोजन देवे ॥ ५९॥ और जो दोष उत्कर्ष हो उसकी शांतिकारक यथार्थ दिया भोजन दोषशमन कहलाताहै ॥ ६० ॥ और इसके अनन्तर स्वस्थोंके लिये वृत्तिके तौरपर (क्षुधानिवृत्तिके लिये) इन्हीं बारह प्रकारके ही भोजनोंमेंसे उपयुक्त करे ॥ ६१ ॥

औषध देनेके दश समय ।

अत ऊर्द्ध्वं दशौषधकालान्वक्ष्यामः ।

तत्र निर्भक्तं प्राग्भक्तमधोभक्तं मध्येभक्तमंतराभक्तं सभक्तं सामुद्गं मुहुर्मुहुर्ग्रासं ग्रासांतरं चेति दशौषधकालाः ॥ ६२ ॥

यहांसे अगाडी अब हम औषधके दश कालोंका वर्णन करते हैं जैसे निर्भक्त, प्राग्भक्त, अधोभक्त, मध्येभक्त, अन्तराभक्त, सभक्त, सामुद्ग, मुहुर्मुहु, ग्रास, ग्रासान्तर ॥ ६२ ॥

निर्भक्त।

तत्र निर्भक्तं केवलमेवौषधमुपयुज्यते ॥ ६३ ॥ वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं हन्यात्तथाऽऽमयमसंशयमाशु चैव ॥ तद्बालवृद्धयुवतीमृदवोऽथ पीत्वा ग्लानिं परां समुपयांति बलक्षयं च ॥ ६४ ॥

(श्लो० ५७) अत्र उपाचरेदिति पूर्वोक्तेनान्वयः ।

वितरेद्वमनीयधूमांश्चश्वासादिषु प्रथितदृष्टगुणांश्च लेहान् ॥ ८० ॥ एवमेते दशौषधकालाः ॥ ८१ ॥

ग्रास और ग्रासांतर उन्हें कहते हैं जो ग्रासकी भांति मुँहमें रक्खें तथा ग्रासमें मिलाकर खावे (इन्हें मुखमें कवलसा रखना ग्रास समझिये और ग्रासमें मिला मिलाकर या ग्रासके संग उपयोग करनेको ग्रासांतर समझिये) ॥ ॥ ७९ ॥ यह वमनीय धूम अथवा श्वासादिकोंमें परीक्षा किये लेह इस भांति उपयोग किये जाते हैं (या जैसे तृषामें मुँहमें द्रव्य रक्खे जाते हैं) ॥ ८० ॥ इस प्रकारसे ये दश औषधके समय वर्णन किये गये हैं ॥ ८१ ॥

(वक्तव्य) ग्रास ग्रासांतरको एक मानों तो ऊपर लिखे ९ भेद होते हैं इसीसे यह दशवां भेद ग्रास और ग्रासांतरके जुदा जुदा करनेसे होताहै और ठीक भी है कवल धारण करना ग्रासही है और ग्रास ग्रासमें औषध लेना ग्रासांतर है सो भेद प्रत्यक्ष ही है डल्हनमिश्रजीने भी यही भेद करके दश पूरे कियेहैं ॥

विसृष्टे विण्मूत्रे विशदकरणे देहे च सुलघौ विशुद्धे चोद्गारे हृदि सुविमले वाते च सरति ॥ तथाऽन्नश्रद्धायां क्षुदुपगमने कुक्षौ च शिथिले प्रदेयस्त्वाहारो भवति भिषजां कालः स तु मतः ॥८२॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

जब दस्त और पेशाब खुलकर साफ आचुकें, इंद्रियें निर्मल हों, शरीर हलका हो, शुद्ध डकारें आवें, हृदय भी हलका और शुद्ध हो, अधोवायु ठीक सरता हो (बन्द न हो), भूँख लगी हुई हो, अन्नमें श्रद्धा (रुचि हो, कुक्षि ढीली पड़गई हो वैद्योंने ऐसे समयमें आहार (भोजन) देना ठीक कहाहै और इसे ही भोजनका समय समझिये ॥ ८२ ॥

(वक्तव्य) कई इस आहारके समयको दशवां काल मानतेहैं वे कहतेहैं कि प्राग्भक्त, मध्येभक्त, सभक्त, सामुद्गादि सब भोजनकेही आश्रय हैं इससे मुख्य भोजनका समय भी तो विचारना और ग्रहण करना चाहिये ।

इति प०मुरलीधरवि०सुश्रुतस०भा०टी० उत्तरतन्त्रे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पंचषष्टितमोऽध्यायः ६५.

अथातस्तंत्रयुक्तिनामाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम तन्त्रयुक्ति (चिकित्साशास्त्रकी प्रयोजनीय युक्तियोंके विषय) के अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ।

अंतराभक्त ।

अंतराभक्तं नाम यदंतरा पीयते पूर्वापरयोर्भक्तयोः ॥ ७१ ॥ हृद्यं मनोबलकरं त्वतिदीपनीयं पथ्यं च संभवति चांतरभक्तमेतत् ॥७२॥

अंतराभक्त उसे कहते हैं जो दोनों समयके भोजनोंके बीचमें पिई या खाई जावे ॥ ७१ ॥ यह अंतराभक्त हृदयको हित है, मन (दिल) को ताकत देतीहै और अत्यंत दीपन होतीहै और पथ्य है ॥ ७२ ॥

सभक्त ।

सभक्तं नामौषधेषु यत्साध्यते भक्तम् ॥ ७३ ॥ पथ्यं सभक्तमब-लाबलयोर्हि नित्यं तद्द्वेषिणामपि तथा शिशुवृद्धयोश्च ॥ ७४ ॥

सभक्त उसे कहते हैं जिससे भोजन बनाया जावे (भोजनके संग पकाई जावे या उसके काथादिमें भोजन बनावे ॥ ७३ ॥ यह सभक्त पथ्य है और स्त्रियोंको, निर्बलोंको, औषधके द्वेषियोंको, बालकोंको, वृद्धोंको सदा देनी चाहिये ॥ ७४ ॥

सामुद्ग ।

सामुद्गं नाम यद्भक्तस्यादावंते च पीयते ॥ ७५ ॥ दोषे द्विधा प्रतिसृते तु समुद्गसंज्ञमाद्यंतयोर्दशनस्य निषेव्यते तु ॥ ७६ ॥

सामुद्ग उसे कहते हैं जो भोजनके पहले और पीछे पिई खाई जावे ॥ ७५ ॥ यह भोजनके आदि अंतमें उपयोग की हुई सामुद्गसंज्ञक औषध दोनों तरफ (ऊपर नीचेको) प्रवृत्त हुए दोषोंको शांत करनेमें श्रेष्ठ है ॥ ७६ ॥

मुहुर्मुहु ।

मुहुर्मुहुर्नाम सभक्तमभक्तं वा यदौषधं मुहुर्मुहुरुपयुज्यते ॥७७॥ श्वासे मुहुर्मुहुरति प्रसृते च कासे हिक्कावमीषु च वदंत्युपयो-ज्यमेतत् ॥ ७८ ॥

मुहुर्मुहु उसे कहते हैं जो भोजन खाये विना या खाकर बारबार उपयोग की जावे ॥ ७७ ॥ यह श्वास रोगमें, बढी हुई खांसीमें हुचुकीमें, वमनमें उपयोग करना चाहिये ॥ ७८ ॥

ग्रास और ग्रासान्तर ।

ग्रासं ग्रासांतरं नाम यत्पिंडं व्यामिश्रम् ॥ ७९ ॥ ग्रासांतरेषु

(वाक्य) ७९ ग्रासमाह–यत्पिंडं ग्रासं व्यामिश्रमिति–कवलं व्यामिश्रमित्यर्थः । ग्रासांतरमाह–ग्रासांतरं तु यत् ग्रासांतरेषु कवलांतरेषु इत्यर्थः (इति डल्हनः)

धनम् ॥ ४ ॥ यथाम्बुजवनस्यार्कः प्रदीपो वेश्मनो यथा ॥ प्रबोध्यस्य प्रकाशार्थास्तथा तंत्रस्य युक्तयः ॥ ५ ॥

असद्वादी (मिथ्यावादी प्रतिपक्षी) के कहे हुए वाक्योंका खंडन और अपने (सत्य) वाक्योंका मंडन तंत्रयुक्तियोंसेही किया जाता है ॥ ३ ॥ और जो अर्थ प्रगट रूपसे नहीं कहे तथा गूढ शब्दोंमें लीन हैं या निर्मल नहीं जाने जाते या कहीं ग्रंथमें लेशमात्र (बीजमात्र बहुत ही सूक्ष्मतासे) वर्णन करदिये हैं ॥ उन सबकी सिद्धि इन तंत्रयुक्तियोंसे ही होती है ॥ ४ ॥ जैसे कमलोंके समूहको सूर्य और घरको (अंधेरे घरको) दीपक प्रकाशमान करताहै उसी प्रकार प्रबोध्य (जानने योग्य) वाक्योंके अर्थका प्रकाश करनेवाली ये तंत्रयुक्तियां हैं (शास्त्रार्थ करनेमें ये बहुत ही काम आतीहैं) ॥ ५ ॥

अधिकरणका लक्षण।

यमर्थमधिकृत्योच्यते तदधिकरणम् । यथा रसं दोषं वा ॥ ६ ॥

जिस अर्थका अधिकार करके और अर्थोंका वर्णन कियाजावे उसे अधिकरण कहतेहैं जैसे रस अथवा दोष अर्थात् रस या दोषको अधिकार करके और बातें कहीं गईं या यों कहो कि रसके ग्रहणार्थ रस शब्द कहागया (कई जगह विना कहे भी उसका ग्रहण किया जाता है ये सब अधिकरणही होते हैं) ॥ ६ ॥

योगका लक्षण।

येन वाक्यं युज्यते स योगः । यथा तैलं पिबेच्चामृतवल्लिनिंबहिंस्राभयावृक्षकपिप्पलीभिः ॥ सिद्धं बलाभ्यां च सदेवदारु हिताय नित्यं गलगंडरोगे ॥ सिद्धं पिबेदिति प्रथमं वक्तव्ये तृतीयपादे सिद्धं प्रयुक्तमेवं दूरस्थानामपि पदानामेकीकरणं योगः ॥ ७ ॥

योग उसे कहते हैं जिससे वाक्य जोडे जावें (अर्थात् जिससे निकट या दूरके पदोंको जोडकर वाक्यकी योजना की जावे) जैसे चिकित्सास्थानके अठारहवें अध्यायके ४९ वें श्लोकमें (ऐसा कहाहै कि गलगंडरोगमें गिलोय, नींब, हिंस्रा, हरडे, कुडा, पिप्पली, दोनों खरेंटी इनसे देवदारु सहित सिद्ध किया तैल पीवे (इस श्लोकमें) "तैलं सिद्धं पिबेत्" ऐसा प्रथम ही कहना था परंतु "तैलं

(वा० ६) यमर्थमधिकृत्य अपरे अर्था अभिधीयंते तदधिकरणसंज्ञं भवतीति । रसं दोषं वा इति । एतेनैतदुक्तं भवति रसं दोषं वा अधिकृत्योच्यते । उल्लेखाभावेपि अर्थजातमभिहितं तत्सर्वं तदधिकारे प्रतीयते (इति नि० स) (वा० ७) येन वाक्यं युज्यते इति-तत्र व्यासोक्तानां सन्निकृष्टविप्रकृष्टानां पदानाम् एकीकरणं योगः (इति डल्लनः)

द्वात्रिंशत्तंत्रयुक्तयो भवंति । तद्यथा अधिकरणं योगः पदार्थो हेत्वर्थं उद्देशो निर्देश उपदेशोऽपदेशः प्रदेशोऽतिदेशोऽपवर्गो वाक्यशेषोऽर्थापत्तिर्विपर्ययः प्रसंग एकांतोऽनेकांतः पूर्वपक्षो निर्णयोऽनुमतं विधानमनागतावेक्षणमतिक्रांतावेक्षणं संशयो व्याख्यानं स्वसंज्ञा निर्वचनं निदर्शनं नियोगो विकल्पः समुच्चय ऊह्यमिति ॥ १ ॥

तंत्रकी युक्तियां बत्तीस हैं जैसे-१ अधिकरण, २ योग, ३ पदार्थ, ४ हेत्वर्थ, ५ उद्देश, ६ निर्देश, ७ उपदेश, ८ अपदेश, ९ प्रदेश, १० अतिदेश, ११ अपवर्ग, १२ वाक्यशेष, १३ अर्थापत्ति, १४ विपर्यय, १५ प्रसंग, १६ एकांत, १७ अनेकांत, १८ पूर्वपक्ष, १९ निर्णय, २० अनुमत, २१ विधान, २२ अनागतावेक्षण, २३ अतिक्रांतावेक्षण, २४ संशय, २५ व्याख्यान, २६ स्वसंज्ञा, २७ निर्वचन, २८ निदर्शन, २९ नियोग, ३० विकल्प, ३१ समुच्चय, ३२ ऊह्य ॥ १ ॥

तंत्रयुक्तियोंका प्रयोजन ।

अत्रासां तंत्रयुक्तीनां किं प्रयोजनमित्युच्यते ॥

वाक्ययोजनमर्थयोजनं च ॥ २ ॥ भवन्ति चात्र श्लोकाः

यहांपर इन तंत्रयुक्तियोंका क्या प्रयोजन है इसपर कहते हैं कि एक तो वाक्ययोजन, दूसरा अर्थयोजन ये दो प्रयोजन इन तंत्रयुक्तियोंसे हैं (प्रयोजन यह है कि वाक्यके ठीक जोडनेमें और अर्थके जोडनेमें ये काम आती हैं) ॥२॥ इस विषयमें श्लोक हैं–

असद्वादिप्रयुक्तानां वाक्यानां प्रतिषेधनम् ॥ स्ववाक्यसिद्धिरपि च क्रियते तंत्रयुक्तितः ॥ ३ ॥ व्यक्ता नोक्तास्तु ये ह्यर्था लीना ये चाप्यनिर्मलाः ॥ लेशोक्ता ये क्वचित्तंत्रे तेषां चापि प्रसा-

---

(वा० १) तंत्रयुक्तय इति–त्रायते शरीरमनेनेति तत्रं चिकित्साशास्त्रं तस्य युक्तयः योजनाः तंत्रयुक्तयः (इति डल्हनः) वाचस्पत्ये तु तनोति अर्थान् इति तत्रं शास्त्र चिकित्साशास्त्रम् "तनु–विस्तारे" एतस्माद्धातोष्ट्रन्प्रत्यये कृते तंत्रमिति सिद्धं तस्य युक्तयः तंत्रयुक्तयः । युक्तिः अर्थावधारणे तत्साधकलिंगज्ञानादौ न्याये व्यवहारे अनुमाने च (इति शब्दस्तोमः) (वा० २) वाक्ययोजनमर्थयोजनं चेति–वाक्यस्य असंबद्धस्य योजनं सबंधनं वाक्ययोजनम् । लीनस्य असंगतस्य चार्थस्य योजनं संगतीकरणं अर्थयोजनम् । तत्र कासांचित्तंत्रयुक्तीनां योगोद्देशनिर्देशादीनां वाक्ययोजनम् । कासांचिदधिकरणहेत्वर्थादीनां अर्थयोजनम् (इति नि० सं०) (श्लो० ३) असद्वादिप्रयुक्तानामिति–असद्वादिनो हि प्रतिपक्षवादिनः एकाश्रयवादिनो वा । प्रतिषेधनम् अपदेशादिभिस्तंत्रयुक्तिभिः परपक्षदूषणम् । स्ववाक्यसिद्धिः-स्ववाक्यसाधनं निर्णयाख्यया तंत्रयुक्त्या (श्लो० ४) व्यक्ताः नोक्ताः स्पष्टाः तथा न उक्ता ये अर्थाः लीना असम्यग्दर्शिताः अनिर्मला गूढाः । लेशेन उक्ता अतिसूक्ष्मतया बीजरूपेण उक्ताः ।

उडद दूध आदिसे व्रण भी गीला होताहै ॥ ९ ॥ संक्षेपसे जो वर्णन किया जावे उसे " उद्देश " कहतेहैं जैसे शल्य (अर्थात् शल्यके कहनेसे शल्यचिकित्सामात्रका बोध होताहै) (इसमें शारीरक या आगंतुकका प्रपंच नहीं है) ॥ १० ॥

निर्देश उपदेश और अपदेश।

विस्तरवचनं निर्देशः। यथा शारीरमागंतु चेति ॥११॥ एवमित्युपदेशः। यथा। तथा न जागृयाद्रात्रौ दिवास्वप्नं च वर्जयेत् ॥ ॥ १२ ॥ अनेन कारणेनेत्यपदेशः। यथोपदिश्यते मधुरेण श्लेष्माभिवर्द्धत इति ॥ १३ ॥

विस्तार पूर्वक जो वर्णन किया जावे उसे " निर्देश " कहतेहैं जैसे शारीरक और आगंतुक (अर्थात् शल्य दो प्रकारका होताहै १ शारीरक, २ आगंतुक) यह शल्यका भेद विस्तारसे कहागया ॥ ११ ॥ यह इसी प्रकारसे है या होताहै या होना चाहिये इसे " उपदेश " कहतेहैं जैसे रातको जागना नहीं चाहिये और दिनमें नहीं सोवे ॥ १२ ॥ इस कारणसे यह होताहै इसे " अपदेश " कहतेहैं जैसे कहतेहैं कि मीठा खानेसे कफ बढताहै (अर्थात् कफवृद्धिका कारण मधुर रस है) ॥ १३ ॥

प्रदेश और अतिदेश।

प्रकृतस्यातिक्रांतेन साधनं प्रदेशः। यथा देवदत्तस्यानेन शल्यमुद्धृतं तस्माद्यज्ञदत्तस्याप्ययमेवोद्धरिष्यतीति ॥ १४ ॥ प्रकृतस्यानागतेन साधनमतिदेशः। यथानेनास्यवायुरूर्द्धमुपलिष्ठते तेनोदावर्तः स्यादिति ॥ १५ ॥

जहां प्रकृतका अतिक्रमण करके साधन किया जावे उसे " प्रदेश " कहतेहैं जैसे इसने देवदत्तका शल्य निकाला (या रोग दूर किया) इससे यह यज्ञदत्तकाभी शल्य निकाल देगा (रोग दूर कर देगा) (यहां यज्ञदत्तका रोग दूर करना रूप जो प्रस्तुत है वह देवदत्तके रोगरूपी करणका अतिक्रमण करके साधन कियागया) ॥ १४ ॥ और जहां प्रकृतका अनागत (भविष्यत्) से साधन किया जावे उसको "अतिदेश" कहतेहैं जैसे अमुक कारणसे इसका वायु ऊर्द्धगामी होताहै इससे इसे उदावर्त होगा यहां वायुका ऊर्द्धगमन प्रकृत है इसका साधन अगाडी होनेवाले उदावर्तसे होताहै ॥ १५ ॥

अपवर्ग और वाक्यशेष।

अभिव्याप्यापकर्षणमपवर्गः। यथाऽस्वेद्या विषोपसृष्टा अन्यत्र

पिबेत्" तो पहले पदमें और "सिद्धं" तीसरे पदमें कहागया इन दूरके पदोंका जो एकत्र मिलाकर अर्थ करना है उसे "योग" कहतेहैं ॥ ७ ॥

पदार्थ ।

योऽर्थोऽभिहितः सूत्रे पदे वा स पदार्थः। अपरिमिताश्च पदार्थाः। यथा स्नेहस्वेदांजनेषु निर्दिष्टेषु द्वयोस्त्रयाणामर्थानामुपपत्तिर्दृश्यते तत्र योऽर्थः पूर्वापरयोगसिद्धो भवति स ग्रहीतव्यो यथा वेदोत्पत्तिं व्याख्यास्याम इत्युक्ते संदिह्यते बुद्धिः। कतमस्य वेदस्यायमुत्पत्तिं विवक्षुरिति। ऋग्वेदादयस्तु वेदास्तत्र पूर्वापरयोगमुपलभ्य विद विचारणे विद विंदेत्येतयोश्च धात्वोरनेकार्थयोः प्रयोगः। पश्चात्प्रतिपत्तिर्भवति आयुर्वेदोत्पत्तिमयं विवक्षुरित्येवं पदार्थः ॥ ८ ॥

सूत्रमें या पदमें जिस अर्थका प्रतिपादन किया जावे उसे पदार्थ कहतेहैं परं च पदार्थ (पदोंके अर्थ) बहुत होते हैं जैसे स्नेह, स्वेद, अंजन इन्हीं पदोंमें देखिये दो दो तीन तीन अर्थोंकी उपपत्ति दीखतीहै (अर्थात् दो दो तीन तीन अर्थ दिखाई देते हैं) (स्नेहसे घृत, तैल, वसा आदि बहुतोंका बोध होता है। स्वेदसे कैसा स्वेद, अंजन स्रोतोंजन या रसांजन इत्यादि) इनमेंसे जो अर्थ पूर्वापर योगके विचारसे सिद्ध हो वही ग्रहण करना चाहिये जैसे एक दृष्टांत है कि सूत्रस्थानमें पहले ही कहा है कि " वेदोत्पत्तिं व्याख्यास्यामः " इस वाक्यमें बुद्धिमें संदेह होता है कि ग्रंथकार कौनसे वेदकी उत्पत्ति कहना चाहते हैं वेद तो ऋग्वेदादिक हैं इसमें अब पूर्वापर योगके विचारनेसे जाना जाता है कि विद् विचारणे या विद विदति इन अनेकार्थक धातुओंका प्रयोग है (अर्थात् जिससे जाना जावे या ज्ञान हो वही वेद) फिर निश्चय हुआ कि ग्रंथकार आयुर्वेद (आयुके ज्ञानके वेदकी) उत्पत्तिका वर्णन किया चाहते हैं बस यही " पदार्थ" (निश्चितपदार्थ) हुआ ॥ ८ ॥

हेत्वर्थ और उद्देश ।

यदन्यदुक्तमन्यार्थसाधकं भवति स हेत्वर्थः। यथा मृत्पिंडोऽद्भिः प्रक्लिद्यते तथा माषदुग्धप्रभृतिभिर्व्रणः प्रक्लिद्यते इति ॥ ९ ॥

समासकथनमुद्देशः। यथा शल्यमिति ॥ १० ॥

जो कहा हुआ वाक्य अन्य अर्थका साधक हो वह " हेत्वर्थ" कहलाताहै जैसे मिट्टीका कच्चा ढेला पानीसे गीला होजाताहै (घुलने लग जाताहै) इसी प्रकार

कहकर वाक्य समाप्त किया जावे तो) उसे "प्रसंग" कहते हैं जैसे पहले वेदोत्पत्ति अध्यायमें कहा कि पंचमहाभूतशरीरी (जीव) का समवाय पुरुष होता है और उसीमें क्रियाओंका अधिष्ठान होता है और अगाडी फिर ऐसा ही कहा कि पंचमहाभूत शरीरिका समवाय पुरुष होता है वही कर्मपुरुष चिकित्सामें अधिकार किया गया है (यहां यह फिर प्रसंगसे कहागया इसे ही प्रसंग कहते हैं ॥ २० ॥

एकांत और अनेकांत।

सर्वत्र यदवधारणेनोच्यते स एकांतः । यथा त्रिवृद्विरेचयति मदनफलं वामयतीति ॥ २१ ॥ क्वचित्तथा क्वचिदन्यथेति यः सोऽनेकार्थः । यथा केचिदाचार्या ब्रुवते द्रव्यं प्रधानं केचिद्रसं केचिद्वीर्यं केचिद्विपाकमिति ॥ २२ ॥

जो सर्वत्र निश्चयरूपसे कहा जावे वह "एकांत" कहलाता है जैसे निशोथ विरेचनकारक है और मैनफल वमनकारक है ॥ २१ ॥ कोई ऐसा कहे और कोई अन्यथा (और तरह) वह "अनेकार्थ" कहलाता है जैसे कोई आचार्य द्रव्यको प्रधान मानतेहैं, कोई रसको प्रधान कहते हैं, कोई वीर्यको और कोई विपाकको प्रधान कहते हैं ॥ २२ ॥

पूर्वपक्ष और निर्णय।

आक्षेपपूर्वकः प्रश्नः पूर्वपक्षः । यथा कथं वातनिमित्ताश्चत्वारः प्रमेहा असाध्या भवंतीति ॥ २३॥ तस्योत्तरं निर्णयः यथा शरीरं प्रपीड्य पश्चादधो गत्वा वसामेदोमज्जानुविद्धं मूत्रं प्रसृजति वात एवमसाध्या वातजा इति । तथा चोक्तम्-कृत्स्नं शरीरं निःपीड्य मेदोमज्जावसायुतः ॥ अधः प्रकुप्यते वायुस्तेनासाध्यास्तु वातजाः ॥ २४ ॥

आक्षेपपूर्वक जो प्रश्न किया जावे उसे "पूर्वपक्ष" कहतेहैं जैसे, क्यों वायुके चारों प्रमेह असाध्य होतेहैं ? ॥ २३ ॥ इसका उत्तर (यथार्थ) देना "निर्णय" कहाताहै जैसे वायु सब शरीरको निचोडकर नीचे जाकर वसा, चरबी और मज्जासे मिला मूत्र निकालताहै इससे वातज प्रमेह असाध्य होतेहैं कहा भी है

(वा० २१) अवधारणेन अनन्यविकल्पेन उच्यते स एकांतः । 'अवधारेण' इति वा पाठांतरम् । अवधारः निर्धारः । निर्धारेण निश्चितत्वेन उच्यते स एकांतः ।

कीटविषादिति ॥ १६ ॥ येन पदेनानुक्तेन वाक्यं समाप्यते स वाक्यशेषः। यथा शिरःपाणिपादपार्श्वपृष्ठोदरोरसामित्युक्ते पुरुषग्रहणमपि गम्यते पुरुष एवोक्त इति ॥ १७ ॥

अभिव्याप्यमेंसे अपकर्षण करनेको "अपवर्ग" कहतेहैं जैसे विषोपसृष्ट स्वेदयुक्त नहीं होते सिवाय कीड़ोंके विषवालोंके। यहां विषोपसृष्ट अस्वेद्य यह व्यापक था इसमेंसे कीटविषवाले पृथक् किये गये ॥ १६ ॥ जहां विना कहे पदसे वाक्य समाप्त किया जावे उसे "वाक्यशेष" कहतेहैं जैसे शिर, हाथ, पांव, पँसवाड़े, पीठ, पेट कहे गये इससे मनुष्यका ग्रहण होगया, अर्थात् मनुष्य (पुरुषशरीर) कहागया (ऐसेही "तत्राव्यापन्नानामोषधीनामपां चोपयोगः" यहां "कार्यः" इस अनुक्त पदसे वाक्य समाप्त हुआ) ॥ १७ ॥

अर्थापत्ति और विपर्यय।

यदकीर्तितमर्थादापद्यते सार्थापत्तिः। यथौदनं भक्ष्ये इत्युक्तेऽर्थापन्नं भवति नायं पिपासुर्यवागूमिति ॥१८॥ यद्यत्राभिहितं तस्य प्रातिलोम्यं विपर्ययः। यथा कृशाल्पप्राणभीरवो दुश्चिकित्स्या इत्युक्ते विपरीतं गृह्यते दृढादयः सुचिकित्स्या इति ॥ १९ ॥

जो विनाही कहा हुआ अर्थसे जानाजावे उसे "अर्थापत्ति" कहतेहैं जैसे किसीने कहा मैं भात खाऊँगा तो इस कथनसे जानागया कि यह यवागू पीनेका इच्छुक नहीं है ॥ १८ ॥ जो जहां कहा गया उसके विपरीतको "विपर्यय" कहतेहैं जैसे किसीने कहा कि दुबले, निर्बल, डरपोंक ये दुश्चिकित्स्य होते हैं तो इसके विपरीत ग्रहणसे दृढ, बलिष्ठ और निडर ये सुचिकित्स्य हैं ऐसा समझना ॥ १९॥

प्रसंग।

प्रकारांतरेण समापनं प्रसंगः। यथा प्रकारांतरितो योऽर्थोऽसकृदुक्तः समाप्यते स प्रसंगः। यथा पंचमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुषस्तस्मिन्क्रिया तदधिष्ठानमिति वेदोत्पत्तावभिधाय पुनरुक्तं यतोऽभिहितं पंचमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इति। स खल्वेवं कर्मपुरुषश्चिकित्सायामधिकृतः ॥ २० ॥

प्रकारांतरसे जो समाप्त किया जावे तथा प्रकारांतरमें जो अर्थ वारवार कहा हुआ समाप्त किया जावे (एक जगह कहकर दूसरी जगह फिर कहा जावे या

(वा० २०) "यथा प्रकारांतरितो योर्थः" इत्यत्र 'तथा प्रकारांतरितो योर्थः' इति पाठांतरम्।

स्थानादिभेदसे प्राणहरत्वका संशय होताहै) ॥ २९ ॥ शास्त्रमें अतिशयसे वर्णन करना "व्याख्यान" कहलाता है जैसे इस ग्रंथमें पच्चीस तत्त्वोंवाला पुरुष कहाहै और अन्य आयुर्वेद ग्रंथोंमें भूतादि और प्रकृतिकेही आरंभसे चिंता कीगई है॥ ३०॥

स्वसंज्ञा उदाहरण निर्वचन और निदर्शन ।

अन्यशास्त्रासामान्या स्वसंज्ञा । यथा मिथुनमिति मधुसर्पिषो· ग्रहणम् ॥ ३१ ॥ लोके प्रथितमुदाहरणम् । यथोष्णभयाच्छी- तमनुधावति ॥ ३२ ॥ निश्चितं वचनं निर्वचनम् । यथायुर्विद्यते- ऽस्मिन्ननेन वाऽऽयुर्विन्दतीति आयुर्वेदः ॥ ३३ ॥ दृष्टांतेनार्थः प्रसाध्यते यत्र तन्निदर्शनम् । यथाग्निर्वायुना सहितः कोष्ठे वृद्धिं गच्छति । तथा वातपित्तकफदुष्टो व्रण इति ॥ ३४ ॥

अन्यशास्त्र (व्याकरणादि) से जो असामान्य (अपनेही शास्त्रमें मान्य) हो उसे "स्वसंज्ञा" कहतेहैं जैसे मिथुन कहनेसे (वैद्यकमें) शहद और घृतका ग्रहण होताहै । और जो लोकमें अतिप्रसिद्ध होता है वह "उदाहरण" कहाताहै जैसे गरमीके भयसे शीतकी तरफ दौडताहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ निश्चित वचनको "निर्व- चन" कहतेहैं जैसे आयु विद्यमान हो या जानीजावे जिसमें अथवा जिससे उसे आयुर्वेद कहतेहैं ॥ ३३ ॥ जहां दृष्टांतसे अर्थ साधन किया जावे उसे "निद- र्शन" कहतेहैं जैसे जिस भांति वायु सहित अग्नि कोठेमें वृद्धिको प्राप्त होती है उसी तरह वात, पित्त और कफसे दूषित व्रण वृद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥

नियोग समुच्चय और विकल्प ।

इदमेव कर्तव्यमिति नियोगः । यथा पथ्यमेव भोक्तव्यमिति ॥ ॥ ३५ ॥ इदं चेदं चेति समुच्चयः । यथा मांसवर्गे एणहारिण- लावतित्तिरिसारंगाः प्रधानमिति ॥ ३६ ॥ इदं वेति विकल्पः । यथा रसौदनः सघृता यवागूर्वा ॥ ३७ ॥

यह ऐसेही करना चाहिये इसे "नियोग" कहतेहैं जैसे पथ्य ही भोजन करना चाहिये ॥ ३५ ॥ यह भी और यह भी इत्यादिको "समुच्चय" कहतेहैं (बहुत पदार्थ एकत्र होनेको समुच्चय कहतेहैं) जैसे मांसवर्गमें कालामृग, हिरन, लवा, तीतर और सारंग ये प्रधान हैं ॥ ३६ ॥ यह अथवा यह (दोनोंमेंसे कोईसा) इसे "विकल्प" कहतेहैं जैसे मांसरस सहित भात अथवा घृतयुक्त यवागू (खावे) ॥ ३७ ॥

कि समस्त देहको पीडन करके मेद, वसा, मज्जासे मिलकर नीचे वायु कुपित होताहै इसीसे वायुके प्रमेह असाध्य होते हें (वायुके प्रमेह यों असाध्य होतेहैं कि प्रमेहकी चिकित्सा मुख्य शोषण है और शोषण क्रिया वायुको बढाती हैं यही विरुद्धता पडती है) ॥ २४ ॥

अनुमत और विधान ।

परमतमप्रतिषिद्धमनुमतम् । यथान्यो ब्रूयात्सप्त रसा इति ॥ २५ ॥ प्रकरणानुपूर्वाभिहितं विधानम् । यथा सक्थिमर्माण्येकादश प्रकरणानुपूर्वाभिहितानि ॥ २६ ॥

जहां पराये मतका निषेध नहीं किया जावे (स्वीकार किया जावे) उसे "अनुमत" कहते हैं जैसे किसीने कहा कि सात रस होतेहैं और दूसरेने इसे मान लिया (यही अनुमत हुआ) ॥ २५ ॥ जो बात प्रकरणपूर्वक कही जावे उसे "विधान" कहतेहैं जैसे सक्थिमर्म ग्यारह हैं उनका प्रकरणानुपूर्व वर्णन किया गया ॥ २६ ॥

अनागतावेक्षण और अतिक्रांतावेक्षण ।

एवं वक्ष्यतीत्यनागतावेक्षणम् । यथा श्लोकस्थाने ब्रूयाच्चिकित्सितेषु वक्ष्यामीति ॥ २७ ॥ यत्पूर्वमुक्तं तदतिक्रांतावेक्षणम् । यथा चिकित्सितेषु ब्रूयाच्छ्लोकस्थाने यदीरितमिति ॥ २८ ॥

अगाडी इसे कहेंगे (या ऐसा कहेंगे) इसे "अनागतावेक्षण" कहते हैं जैसे श्लोकस्थानमें (सूत्रस्थान या अन्यत्र) कहा कि इस बातको चिकित्सास्थानमें कहेंगे ॥ २७ ॥ और जो बात पहले कहीगई उसे "अतिक्रांतावेक्षण" कहते हैं जैसे चिकित्सास्थानमें कहा कि श्लोकस्थानमें यह बात हम कह चुके हैं ॥ २८ ॥

संशय और व्याख्यान ।

उभयहेतुदर्शनं संशयः । यथा तलहृदयाभिघातः प्राणहरः । पाणिपादच्छेदनमप्राणहरमिति ॥ २९ ॥ तत्रातिशयोपवर्णनं व्याख्यानम् । यथेह पंचविंशतिकः पुरुषोऽत्र व्याख्यायते अन्ये-ष्वायुर्वेदेषु भूतादिप्रकृत्यारभ्य चिंता ॥ ३० ॥

जहां दो हेतु दीखें वह "संशय" कहाताहै जैसे तलहृदयमें अभिघात प्राणहर होताहै और हाथ, पाँवोंमें अभिघात प्राणहर नहीं होता (यहाँ अभिघातमें

(वा० २५) अप्रतिषिद्धं स्वीकरणम् । (वा० २८) श्लोकस्थानं सूत्रस्थानम् ।

षट्षष्टितमोऽध्यायः ६६.

अथातो दोषभेदविकल्पनामाध्यायं व्याख्यास्यामः।

यहांसे अगाडी अब हम दोषभेदविकल्पनामक अध्यायका व्याख्यान करतेहैं (अर्थात् वात, पित्त, कफ इन दोषोंके सान्निपातिक वृद्धक्षीणादि भेदोंकी विकल्पनाका वर्णन करते हैं)।

सुश्रुतऋषिका प्रश्न।

अष्टांगायुर्वेदविदं दिवोदासं महामतिम् ॥ छिन्नशास्त्रार्थसंदेहं सूक्ष्मागाधमिवोदधिम् ॥ १ ॥ विश्वामित्रसुतः श्रीमान्सुश्रुतः परिपृच्छति ॥ द्विषष्टिर्दोषभेदा ये पुरस्तात्परिकीर्तिताः ॥ २ ॥ कति तत्रैकशो ज्ञेया द्विशो वाप्यथवा त्रिशः॥ ३ ॥

अष्टांग आयुर्वेदके ज्ञाता, शास्त्रार्थके संदेह दूर करनेवाले, परम बुद्धिमान्, सूक्ष्म अर्थज्ञतामें समुद्रके समान अगाध ऐसे दिवोदास श्रीधन्वंतरिजी महाराजसे विश्वामित्रके पुत्र श्रीमान् सुश्रुतऋषिने पूछा कि हे भगवन् ! जो पहले दोषोंके बासठ भेद उद्देशमात्रसे वर्णन किये उनमेंसे एक एकसे कितने और दोदोसे मिलकर कितने और तीनोंसे मिलकर (वृद्धिक्षयभेदसे) कितने भेद क्योंकर होते हैं ? ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

धन्वंतरिजीका उत्तर।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा संशयच्छिन्महातपाः ॥ प्रीतात्मा नृपशार्दूलः सुश्रुतायाह तत्त्वतः ॥ ४ ॥ त्रयो दोषा धातवश्च पुरीषं मूत्रमेव च ॥ देहं संधारयन्त्येते ह्यव्यापन्ना रसैर्हितैः ॥ ५ ॥

सुश्रुत ऋषिके इस वचनको सुनकर संशयके छेदन करनेवाले महातपस्वी राजाओंमें शार्दूल श्रीधन्वंतरिजीने सुश्रुतके प्रति सबका सारांश कथन किया ॥४॥ कि हे सुश्रुत ! तीन दोष, सात धातु, मल और मूत्र ये निर्विकार शुद्ध और यथोचित हितकारक रसोंसे युक्त (पोषित होकर शरीरको धारण कर रहे हैं ॥ ५ ॥

पुरुषः षोडशकलः प्राणाश्चैकादशैव ये ॥ रोगाणां तु सहस्रं यच्छतं

(श्लो० ६) पुरुषः षोडशकल इति—कलाशब्दः पञ्चमहाभूतानि एकादशेंद्रियाणीति । षोडशविकारवाचक इत्येके व्याचक्षते । अन्ये तु कलाशब्दमगप्रत्यंगेषु आमनन्ति । तद्यथा शिरोग्रीवापाणिपादपार्श्वपृष्ठोदरांसेत्यष्टांगानि चिबुकनासौष्ठश्रवणांगुष्ठांगुलिपार्ष्णिगुल्फाः प्रत्यगानीति। अन्यैश्च कलाशब्दो गुणवाचकः पठितः । तेन पुरुषः षोडशगुणः (इति नि० स०) एकादश प्राणा इति । अग्निः सोमो वायुः सत्त्वरजस्तमः पंचेन्द्रियाणि भूतात्मेति ।

ऊह्य।

यदनिर्दिष्टं बुद्धिमता तदूह्यम्। यथाभिहितमन्नपानविधौ चतुर्विधं चान्नमुपदिश्यते। भक्ष्यं भोज्यं लेह्यं पेयमेवं चतुर्विधे वक्तव्ये द्विविधमभिहितमत्रोह्यमिति। अन्नपाने विशिष्टे द्वयोर्ग्रहणे कृते चतुर्णामपि ग्रहणं भवति । किंचान्यत्। अन्नेन भक्ष्यमवरुद्धं त्वन्नसाधर्म्यात्। पेयेन लेह्यं द्रवसाधर्म्यात् । चतुर्विधश्चाहारः प्रायेण द्विविधः प्रसिद्ध इति ॥ ३८ ॥

जो अनिर्दिष्ट बुद्धिमानोंकरके जानाजावे उसे ऊह्य कहतेहैं (अथवा जो बुद्धिमानोंकरके अनिर्दिष्ट है (प्रगट नहीं कहा) उसे ऊह्य कहिये जैसे अन्नपानविधि यहां अन्नपान कहनेसे चारों प्रकारके भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेयको समझना चाहिये यहां चार प्रकारका कहना योग्य था इसमें दो प्रकारका कहा और दो प्रकारका ऊह्य युक्तिसे जानना इसेही ऊह्य कहते हैं वस्तुतः अन्नपान दोनोंका ग्रहण करनेसे चारोंका ग्रहण होताहै क्योंकि अन्न कहनेसे भोज्य तो है ही पर भक्ष्यकाभी ग्रहण होताहै, अन्नके साधर्म्य होनेसे। और पेय कहनेसे लेह्यका ग्रहण भी होजाताहै, द्रव पतले पानके साधर्म्यसे । अस्तु चार प्रकारका आहार प्रायः दोही भांतिका प्रसिद्ध है ॥ ३८ ॥

द्वात्रिंशद्युक्तयो ह्येतास्तंत्रसारगवेषणे ॥ मया सम्यग्विनिहिताः शब्दन्यायार्थसंयुताः ॥ ३९ ॥ यो ह्येता विधिवद्वेत्ति दीपीभूतास्तु बुद्धिमान् ॥ स पूजार्हो भिषक्छ्रेष्ठ इति धन्वंतरेर्मतम् ॥ ४० ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतंत्रे पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

ग्रन्थका सारार्थ जाननेके निमित्त ये बत्तीस युक्तियां शब्द और न्यायार्थसे युक्त हमने यथायोग्य वर्णन कर दी हैं ॥ ३९ ॥ ग्रन्थकार महर्षि सुश्रुतजी महाराज कहतेहैं कि जो इन दीपकके तुल्य बत्तीस युक्तियोंको विधिपूर्वक समझ जाता है वह वैद्योंमें श्रेष्ठ होकर पूजाके योग्य हो जाताहै ऐसा श्रीधन्वंतरिजीका मत है ॥ ४० ॥

इति प० मुरलीधरवि० सुश्रुतसं० भा० टी० उत्तरतंत्रे पचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

(श्लो० ३९) तंत्रसारगवेषणे । ग्रंथस्य सारार्थ ज्ञाननिमित्तं मया युक्तयो विनिहिताः ।
(श्लो० ४०) दीपीभूतास्ता यो भिषक् विधिनद्वेत्ति स पूजार्हो भवतीति धन्वंतरेर्मतमित्याह सुश्रुतः ।

मिश्रधातुमलैर्दोषा यांत्यसंख्येयतां पुनः ॥
तस्मात्प्रसंगं संयम्य दोषभेदविकल्पनैः ॥ १० ॥
रोगं विदित्वोपचरेद्रसभेदैर्यथेरितैः ॥ ११ ॥

धातुओं और मल आदिसे मिलकर इन दोषोंके असंख्य भेद होजातेहैं इस लिये प्रसंग (मौका) देखकर विचारकर दोषभेदोंकी विकल्पनासे रोगोंको निश्चय करके और पूर्वोक्त यथायोग्य रसभेदोंसे चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १० ॥ ११

भिषक्कर्ताऽथ करणं रसा दोषास्तु कारणम् ॥
कार्यमारोग्यमेवैकमनारोग्यमतोऽन्यथा ॥ १२ ॥

चिकित्साविषयमें वैद्य कर्ता है और रस करण है दोष कारण और आरोग्य कार्य है और इसके विरुद्ध अनारोग्य (बीमारी) है (अर्थात् वैद्य रसोंके द्वारा दोषोंको ठीक करके आरोग्यता करे) ॥ १२ ॥

अध्यायानां तु षट्षष्ट्या ग्रंथितार्थपदक्रमम् ॥ एवमेतदशेषेण तंत्रमुत्तरमृद्धिमत् ॥१३॥ स्पष्टगूढार्थविज्ञानमगाढं मंदचेतसाम् ॥
यथाविधि यथाप्रश्नं भवतां परिकीर्तितम् ॥ १४ ॥

श्रीधन्वंतरिजी कहते हैं कि हे ऋषियो ! यह छासठ अध्यायात्मक जिसमें अर्थ और पदक्रम सब ग्रथित हैं ऐसा सम्पूर्ण ऋद्धिवाला उत्तरतन्त्र जिससे गूढार्थोंका स्पष्ट विज्ञान होताहै और मन्दबुद्धिवालोंको अगाढ है (अर्थात् मन्द बुद्धिवालोंके भी समझमें आसकता है) यथाविधि और जिस जिस भांति आपने प्रश्न किये उनके अनुसार हमने वर्णन कियाहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

सहोत्तरं त्वेतदधीत्य सर्वं ब्राह्मं विधानेन यथोदितेन ॥
न हीयतेऽर्थान्मनसोभ्युपेताद्देतद्वचो ब्राह्ममतीव सत्यम् ॥ १५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतंत्रे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

॥ समाप्तमिदमुत्तरतन्त्रम् ॥

इस ब्राह्म (ब्राह्मसंहिताके अनुसार) संहिताको उत्तरतंत्र सहित समस्त यथोपदिष्ट विधानपूर्वक जो पढता है उसके मनोवांछित अर्थोंकी कभी कमी नहीं रहती यह ब्रह्माजीका अत्यन्त सत्य वचन है ॥ १५ ॥

परिशिष्ट ।

दोषोंके सन्निपात (संसंग) से जो ६२ भेद ग्रंथमें कहे हैं उनका हम विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं-इनमें २५ भेद दोषोंकी वृद्धिसे और २५ क्षीणतासे तथा १२ वृद्धिक्षयसे ये सब मिलकर ६२ भेद होतेहैं ।

विंशतिरेव च ॥ ६ ॥ शतं च पंच द्रव्याणां त्रिसप्तत्यधिकोत्तरम् ॥ व्यासतः कीर्तितं तद्धि भिन्नदोषास्त्रयो गुणाः ॥ द्विषष्टिधा-वदंत्येते भूयिष्ठमिति निश्चयः ॥ ७ ॥

पुरुष सोलह कलावाला है और इसमें ग्यारह प्राण हैं तथा एक हजार एकसौ बीस (११२०) रोग हैं ॥ ६ ॥ और द्रव्य पांचसौ तिहत्तर (५७३) हैं ये सब अपने अपने मौकेपर विस्तारसे कह दियेहैं और तीन दोष और तीन गुण हैं तथा ये दोष बासठ भेदवाले होतेहैं इन्हें अगाडी कहेंगे ॥ ७ ॥

(वक्तव्य) सोलह कला कोई पंचमहाभूत और ग्यारह इंद्रिय इन्हें मानते हैं और कोई अंगप्रत्यंगोंको मानते हैं। एकादश प्राण ये हैं-अग्नि, सोम, वायु, सत्त्व, रज, तम और पांच इंद्रियें । रोगोंकी सब संख्या जो सब स्थानोंमें कहे गये हैं ११२० हैं । और द्रव्यसंग्रहणीय आदि सूत्रस्थानके अध्यायोंमें कहे हुए द्रव्य ५७३ है । और दोषोंके भेद ६२ तथा एक भेद दोषोंकी समता (स्वस्थता) का त्रेसठवॉं है (वृद्धवाग्भटने भी लिखा है कि-"द्विषष्टिभेदा निर्दिष्टास्त्रिषष्टिः स्वास्थ्य-कारणम्" अर्थात् ६२ भेद दोषोंके कहे और सबकी समानताका ६३ त्रेसठवॉं भेद स्वास्थ्यका कारण है)

त्रिदोषोंके बासठ भेद ।

त्रय एव पृथग्दोषा द्विशो नव समाधिकैः ॥ त्रयोदशाधिकैक-द्विसमध्योल्वणैस्त्रिशः॥पंचाशदेवं तु सह भवंति क्षयमार्गतैः॥८॥ क्षीणमध्याधिकक्षीणक्षीणवृद्धैस्तथापरैः ॥ द्वादशैवं समाख्याता-स्त्रयो दोषा द्विषष्टिधा ॥ ९ ॥

तीन दोष तो पृथक् पृथक् और नौ दोषोंकी समता, अधिकतासे ऐसे १२ ये हुए और एक दोष दो दोष तथा तीन दोषोंके समता, मध्यता और उल्वण-तासे १३ भेद ये हुए, ये सब मिलकर २५ भेद वृद्ध (अर्थात् उल्वणताके) ही हैं और इसी क्रमसे दोषोंकी क्षीणता (क्षयता) के भी २५ भेद होते हैं तब ये दोनों मिलकर ५० भेद हुए ॥ ८ ॥ और क्षीण मध्य, अधिक क्षीण तथा क्षीण वृद्ध, अधिक वृद्ध, १२ भेद इनके हुए ऐसे ये पूर्वोक्त ५० से मिलकर सब ६२ भेद होगये (उन सबका उदाहरण विस्तार सहित हम परिशिष्टमें लिखेंगे और सब दोषोंकी समताको त्रेसठवां भेद समझना चाहिये) ॥ ९ ॥

दोषोंकी वृद्धिक्षय।

श्लोक-एको वृद्धः समश्चैकः क्षीणस्त्वेको यदा भवेत् ॥ क्षीण एकः प्रवृद्धौ द्वौ क्षीणौ द्वौ वृद्धिमाँस्तथा ॥ एक एव स्थितस्तत्र व्यक्तरूपेण देहिनः ॥ १ ॥

अर्थ-कभी एक दोष वृद्ध तथा एक सम और एक क्षीण होताहै. कभी एक दोष क्षीण होताहै और दो वृद्ध होतेहैं और कभी दो दोष क्षीण होतेहैं और एक वृद्ध होताहै और कभी ऐसा होताहै कि एकही दोष प्रगट (उल्वण) रूपसे स्थित हो और दो सम हों ॥ १ ॥

दोषोंकी वृद्धिक्षयादिके संक्षिप्त लक्षण।

श्लोक-प्रवृद्धो मारुतः पित्तं प्रकृतिस्थं कफक्षये ॥ गृहीत्वा स्थानतो यत्र यत्रांगेषु विसर्पति ॥ २ ॥ तत्र तत्र स्थिरो दाहः श्रमभेदौ बलक्षयः ॥ क्षीणे पित्ते यदा वायुर्वृद्धावस्थः समः कफः ॥ विदधाति तदा शूलं शैत्यमत्यंतगौरवम् ॥ ३ ॥ वृद्धं कफक्षये पित्तं प्रकृतिस्थं प्रभंजनम् ॥ निरस्य च यथावह्नि दाहः शूलः प्रजायते॥४॥

अर्थ-जब वायु बढा हुआ हो, पित्त सम हो और कफ क्षीण हो तब उसे अपने स्थानसे ग्रहण करके जिस स्थानमें वह प्राप्त हो वहांही दाह, शिथिलता, भेद (दर्द) और बलक्षय होताहै ॥ २ ॥ और पित्त क्षीण, वायु वृद्ध और कफ सम हो तब शूल पैदा हो और शीत हो तथा अत्यंत भारीपन होवे ॥ ३ ॥ और यदि कफ क्षीण हो, पित्त वृद्ध हो और वायु सम हो तो उससे बाहरकी तरफ प्रवृत्त होवे और दाह तथा शूल होवे ॥ ४ ॥

श्लोक-वृद्धं वातक्षये पित्तं प्रकृतिस्थं यदा कफम् ॥ निरुणद्धि तदा तस्य स्युस्तंद्रागौरवज्वराः ॥ ५ ॥ श्लेष्मा वृद्धो यदा वायुः समः पित्तपरिक्षये ॥ निरुद्धः स्यात्तदा तस्य गौरवं शीतकज्वरे ॥ ६ कफानिलक्षये पित्तं प्रकृतिस्थं यदा बलि ॥ निरुणद्धि तदा तस्य मृद्वग्नित्वं शिरोऽन्यथा ॥ ७ ॥ प्रलापो गुरुता तंद्रा निद्रा स्यात्तु मरुत्क्षये ॥ ष्ठीवनं पित्तकफयोर्नखादीनां च पातनम् ॥ ८ ॥ कफपित्तेन संयुक्तो बलहानिं भृशं क्षयम् ॥ करोत्यपाकमरुचिं गौरवं गात्रसादताम् ॥ ९ ॥

अर्थ-वायुके क्षीण होनेमें पित्त बढे और कफ समान रहे तो शरीरको रोंक दे तंद्रा, भारीपन और ज्वर हो ॥ ५ ॥ कफ वृद्ध हो, वायु सम हो और पित्त क्षीण हो तो शरीरको रोंक दे, भारीपन हो और शीतज्वर हो ॥ ६ ॥ और यदि कफ वायु क्षीण हों और पित्त सम होकर बली हो तो अग्नि मृदु हो और शिरमें दर्द हो ॥ ७ ॥ और जो वायु क्षीण होजावे तो प्रलाप, भारीपन, तंद्रा, निद्रा और थूँकमें कफपित्तका आना और नखून गिरना ये लक्षण होतेहैं ॥ ८ ॥ और जो वह कफ पित्तसे संयुक्त हो तो बलकी हानि अतिक्षीणता, परिपाक न होना, अरुचि, भारीपन और शरीरमें शिथिलता करताहै ॥ ९ ॥

दोषोंकी वृद्धिके २५ भेद.

१ वातवृद्ध, २ पित्तवृद्ध, ३ कफवृद्ध, ४ वातपित्तवृद्ध, ५ वातकफवृद्ध, ६ पित्तकफवृद्ध, ७ वातपित्तकफवृद्ध, ८ वातहीनवृद्ध पित्तमध्य कफअधिक वृद्ध, ९ वातहीन कफमध्य पित्तअधिकवृद्ध, १० पित्तहीन वातमध्य कफअधिक वृद्ध, ११ पित्तहीन कफमध्य वात अधिकवृद्ध, १२ कफहीन पित्तमध्य वात अधिकवृद्ध, १३ कफहीन वातमध्य पित्त अधिकवृद्ध, १४ वातातिवृद्ध, १५ पित्तातिवृद्ध, १६ कफातिवृद्ध, १७ वातपित्तातिवृद्ध, १८ वातकफातिवृद्ध, १९ कफपित्तातिवृद्ध, २० वातवृद्ध पित्तातिवृद्ध, २१ पित्तवृद्ध वातातिवृद्ध, २२ कफवृद्ध पित्तातिवृद्ध, २३ पित्तवृद्ध कफातिवृद्ध, २४ कफवृद्ध वातातिवृद्ध और २५ वातवृद्ध कफातिवृद्ध ऐसे ये वृद्धदोषोंके एक दो तीनकी सम मध्य और अधिक वृद्धिसे २५ भेद हुए ॥

ऐसेही दोषोंकी क्षीणताके २५ भेद ।

१ वातक्षीण, २ पित्तक्षीण, ३ कफक्षीण, ४ वातपित्तक्षीण, ५ वातकफक्षीण, ६ कफपित्तक्षीण, ७ वातपित्तकफक्षीण, ८ वात स्वल्पक्षीण पित्तमध्यक्षीण कफ अधिकक्षीण, ९ वातस्वल्प कफमध्य पित्त अधिकक्षीण, १० पित्तस्वल्प वातमध्य कफ अधिकक्षीण, ११ पित्तस्वल्प कफमध्य वात अधिकक्षीण, १२ कफस्वल्प पित्त मध्य वात अधिकक्षीण, १३ कफस्वल्प वातमध्य पित्त अधिकक्षीण, १४ वातातिक्षीण, १५ पित्तातिक्षीण, १६ कफातिक्षीण, १७ वातपित्तातिक्षीण, १८ वातकफातिक्षीण, १९ कफपित्तातिक्षीण, २० वातक्षीण पित्तातिक्षीण, २१ पित्तक्षीण वातातिक्षीण, २२ कफक्षीण पित्तातिक्षीण, २३ पित्तक्षीण कफातिक्षीण, २४ कफक्षीण वातातिक्षीण और २५ वातक्षीण कफातिक्षीण इसप्रकार २५ भेद ये क्षीणतासे हुए ये और पूर्वोक्त वृद्धिके २५ मिलकर ५० भेद हुए ॥

वृद्धिक्षयके १२ भेद ।

१ वातवृद्ध पित्तमध्य (सम) कफक्षीण, २ पित्तवृद्ध वातसम कफक्षीण, ३ कफवृद्ध पित्तसम वातक्षीण, ४ कफवृद्ध वातमध्य पित्तक्षीण, ५ वातवृद्ध कफमध्य पित्तक्षीण, ६ पित्तवृद्ध कफसम वातक्षीण, ७ वातक्षीण पित्तकफवृद्ध, ८ पित्तक्षीण वातकफवृद्ध, ९ कफक्षीण वातपित्तवृद्ध १० वातपित्तक्षीण कफवृद्ध, ११ वातकफक्षीण पित्तवृद्ध, १२ कफपित्तक्षीण वातवृद्ध इसप्रकार १२ भेद ये वृद्धिक्षय मिलकर हुए ये और पूर्वोक्त ५० मिलकर ६२ भेद सब दोषोंके वृद्धि और क्षय तथा वृद्धि क्षय भेदसे होगये और जिसमें वायु, पित्त, कफ तीनों सम हों न कोई वृद्ध हो न क्षीण वह त्रेसठवाँ भेद स्वस्थ (तंदुरुस्त) मनुष्योंका समझे अर्थात् उक्त ६२ भेदोंमेंसे कोईसा होगा उसीके अनुसार व्याधि होगी और जिसके सब दोष समान होंगे उसके कोई व्याधि नहीं ऐसा जानना चाहिये ॥

विशेष आवश्यक भी नहीं था क्योंकि संहितामें सब रोगोंकी गणना अपने अपने स्थानपर मौजूद ही है ॥

यद्यपि श्रीधन्वंतरिजीने स्थूलतासे जितने रोग इस संहितामें लिखे हैं तथा जितने द्रव्यासे इसमें काम लिया है उनकी गणनाकी संख्या मात्र बतादी है, नहीं तो वास्तवमें विचार करदेखें तो रोगभी देश समय और प्रकृति, तथा दोषोंके अंशांश आदिके कारण असंख्य हैं तथा देश, देशकी प्रकृति जल, पवन तथा समय समयके उद्भिज्ज और जांतविक पदार्थोंकी न्यूनाधिकता तथा सूर्य, चंद्र, तारा, पृथिवी, पर्वत, समुद्र इत्यादिके हेर फेरसे अनेकानेक व्याधियाँ नवीन तथा रूपान्तरप्राप्त भी हुआही करती हैं. जिनकी गणना और संख्या कदापि नहीं कही जा सकती और इसीप्रकार द्रव्य (वस्तु औषधादि) भी असंख्य हैं उनकीभी संख्या और गणना नहीं होसकती ॥

(वक्तव्य ३) हमारा विचार था कि टीकामें हरेक रोगके साथ डाक्टरी और यूनानीसे उसका पूरा विवेचन और यत्न लिखें. परंतु यह बात नहीं होसकी क्योंकि विवेचन उनका उनके मतसे प्रायः और ही और ढंगसे है और उनके विवेचन और यत्नका बहुधा मार्ग ही दूसरा है जो यहां लिखा जानेमें पूरा संबंधित नहीं होता इसीसे कुछ कहीं २ नाम मात्र डाक्टरी यूनानीसे लिख दियेहैं विशेष भेद और उनकी चिकित्सा विना उनकी विद्याके ग्रंथ पढे ठीक समझमें नहीं आसकती. इसीसे हमने उनका विस्तार बहुत नहीं लिखा और औषधें भी डाक्टरी यूनानीकी नहीं लिखीं इस कारणसे कि विना उस क्रमसे रोगका और औषधका पूर्ण तत्त्व पाये उपयोग करना ठीक नहीं होताहै हां जितना कुछ हमने टीकामें डाक्टरी यूनानीका मत लिखाहै और शारीरककी टीकाके साथमें डाक्टरी और यूनानी मतके शारीरकका संक्षेप वर्णन किया है वह इस समयके वैद्योंको बहुतही आवश्यक और उपयोगी है और इसी प्रकार गूढ पदों और आशयों पर संस्कृतटिप्पणी तथा वक्तव्य और ग्रंथांतरकी आवश्यकीय बातें जाननेके लिये परिशिष्ट ये भी इसके पाठकोंके लिये अति उपयोगी और आनंदवर्द्धक होंगे ॥

इति सुश्रुतसंहितायां राजवैद्यपंडितमुरलीधरशर्मविरचितसान्वयसटिप्पणीकसपरिशिष्ट-
भाषाटीकायामुत्तरतंत्रे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

पूर्ति श्लोक ।

श्लोक–दिल्लीप्रांते पवित्रे स्फुरकनगरके वासमाकुर्वतैव
शैलानाराजधान्यां नरपतिसदसि प्राश्रितो राजवैद्यः ॥
तेनेदं सुश्रुतस्य स्वजनपदगिरा टीकयालंकृतस्य
पूर्तिं चागाच्छुभाय प्रभवतु भिषजामुत्तरं तंत्रमुख्यम् ॥ १ ॥

(श्लो० १) स्वजनपदगिरा स्वदेशभाषया ।

श्लोक-मारुतेन युतः श्लेष्मा हीनपित्तो यदा भवेत् ॥ करोति मृदुतां वह्नेर्भुक्ते नान्नाभिलाषितः ॥ १० ॥ वेपनं गौरवं स्तंभशैत्यतोदास्तथा चिरात् ॥ शुक्लत्वं च नखादीनां पारुष्यं वपुषोऽपि च ॥ ११ ॥ कुपितौ पित्तपवनौ परिक्षीणः कफो यदा ॥ उद्वेष्टनं श्रमं तोदं कुरुते स्फोटनं तथा ॥ १२ ॥

अर्थ-यदि कफ वायुसे युक्त हो और पित्त हीन होजावे तो अग्निमें मृदुता करे और भोजनकी रुचि न हो ॥ १० ॥ तथा कंप, भारीपन, स्तंभ, शीतता, दरद, नखून आदिमें सपेदी और शरीरमें खरदरापन होजावे ॥ ११ ॥ यदि पित्त और वायु कुपित हों और कफ क्षीण हो तो उद्वेष्टन, श्रम, तोद और स्फोटन (हडफूटन) ये व्याधियां होजावें ॥ १२ ॥

श्लोक-श्लेष्मा भिद्यते स्रोतांसि यदा पित्तानिलक्षये ॥ चेष्टानाशं तदा कुर्यान्मूर्च्छांवाग्भंगमेव च ॥ १३ ॥ देहौजः स्रंसयेत्पित्तं वातश्लेष्मक्षये तृषाम् ॥ कुर्यादिंद्रियदौर्बल्यं मूर्च्छां ग्लानिं क्रियाक्षमम् ॥ १४ ॥ मर्माणि पीडयन्वायुः श्लेष्मपित्तपरिक्षये ॥ संज्ञाप्रणाशं कुरुते प्रकंपं विदधाति च ॥ १५ ॥

अर्थ-यदि पित्त और वायु ये क्षय होनेपर कफ स्रोतोंमें प्राप्त हो तो चेष्टाका नाश कर देवे और मूर्च्छा तथा वाणीको भंग करदेवे ॥ १३ ॥ और वायु कफके क्षीण होनेपर पित्त देह और ओजमें समाश्रित हो तो तृषा और इंद्रियोंमें दुर्बलता, मूर्च्छा, ग्लानि तथा क्रियाओंमें अक्षमता (कोई काम नहीं किया जाना, इंद्रिय शिथिल होना) ये लक्षण होते हैं ॥ १४ ॥ और यदि कफ पित्त क्षीण हो जानेपर वायु मर्मस्थानोंको पीडित करे (मर्मस्थानोंमें प्राप्त हो) तो संज्ञानाश (मूर्च्छा बेहोशी) कर देवे तथा कंप करदे (शरीर काँपने लगे) ॥ १५ ॥

(वक्तव्य १) वायु, पित्त और कफकी वृद्धिक्षयके लक्षण पहले सूत्रस्थानके पंद्रहवें (१५) अध्यायमें लिखे जाचुके हैं और मिश्रितके लक्षण संक्षेपसे यहाँ लिखे हैं इन्हें विचार कर चिकित्सा करनी चाहिये यही मुख्य प्रयोजन है ॥

(वक्तव्य २) इस अध्यायमें जो श्रीधन्वंतरिजीने कहा है कि इस संहितामें ११२० रोग कहे हैं और ५७२ द्रव्य औषधादि हैं जिस पर रोगोंकी गणनाके कुछ श्लोक निबंधसंग्रहटीकामें लिखे हैं, परंतु न जाने क्या कारण है कि बहुत जगह उनकी रोगसंख्या मूलसंहिताकी रोगसंख्यासे नहीं मिलती. जैसे संहितामें क्लैब्य ६ प्रकारका लिखा है और इस गणनामें ४ प्रकारका, इस प्रकारकी कई जगह गड़बड है इससे हमनें उन्हें यहाँ नहीं लिखा और उनका लिखना कुछ

(श्लो० ११) मारुतेन युतः श्लेष्मा तथा हीनपित्तः श्लेष्मा चँ । अत्र मारुतेन युतश्चेत्तदा वह्नेर्मृदुतां करोति भुंक्ते अनभिलाषितश्च । तथा हीनपित्तः श्लेष्मा हीनं पित्तं यस्मिन् एवंभूतः श्लेष्मा गौरवं वेपनं स्तंभादींश्च करोतीत्यर्थः ।

अर्थ-दिल्लीप्रांत पवित्रदेशमें स्फुरक नगर (फरुखनगर) नामक ग्रामके निवासी जो सैलाना राजधानीके महाराजाधिराजकी सभाके समाश्रित राजवैद्य पं० मुरलीधरशर्मा हैं उनने यह सुश्रुतसंहिताकी उत्तम भाषाटीका बनाकर उसका श्रेष्ठ "उत्तरतन्त्र" समाप्त किया जो वैद्यजनोंको तथा सबको शुभदायक हो ॥ १ ॥

श्लोक-रसेषुनंदचन्द्रेऽब्दे चैत्रशुक्लेऽष्टमे तिथौ ॥
टीकापूर्तिमगाच्चेयं मुरलीधरशर्मणः ॥ २ ॥
श्रेष्ठिना क्षेमराजेन स्वकीये मुद्रणालये ॥
श्रीवेङ्कटेश्वराभिख्ये मुद्रयित्वा प्रकाशितः ॥ ३ ॥

अर्थ-संवत् १९५६ की चैत्रशुक्ला अष्टमीको पण्डितमुरलीधरशर्मकृत सुश्रुतसंहिताकी भाषाटीका समाप्त हुई ॥ २ ॥ जिसको श्रीयुत सेठ क्षेमराज श्रीकृष्णदासजीने निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्प्रेसमें छापकर प्रकाशित किया ।

॥ समाप्तमिदमुत्तरतन्त्रम् ॥

॥ समाप्तोयं ग्रन्थः ॥

सूचना ।

यदि किसी महाशयको किसी भारी रोगका निश्चय कराना हो और पूर्णतया निदान औषधी पूँछना हो तो हमें पत्रद्वारा पूरा हाल लिखे और एक १) रुपया फीसका पत्रके साथही भेज दे हम रोगका पूरा निदान, औषधादि सब लिख भेजेंगे ।

और यदि कोई प्रतिष्ठित महाशय किसी कठिन रोगके निदान, चिकित्सादिके लिये कुछ दिनोंके वास्ते हमें बुलाना चाहें तो वह भी परस्पर पत्रव्यवहारसे निश्चय होसकताहै ॥

तथा हमारे "आरोग्यसुधाकर" कार्यालयमें प्रायः सभी रोगोंकी सभी प्रकारकी सिद्ध औषधें मिलसकती हैं जिन्हें आवश्यकता हो लिखें ॥

शुभचिंतक-

पंडित मुरलीधरशर्मा राजवैद्य,

मेनेजर-"आरोग्यसुधाकर" फरुखनगर-पंजाब.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-



खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बम्बई.

पुस्तक मिलनेका पता-खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बम्बई.